

* ओ३म् *

आर्यमित्र का ऋष्यङ्क ।

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो, नन्वो योन्याथ कृच्छुचि ।
भूयात्तमा सहायो नो, दयालु सर्वशक्तिमान् ॥ १ ॥

वर्ष २०] अक्षयतिथार-दीपावली, स०१६७३ वि०-ना० २६ अक्टूबर सन् १९२६ [अंक ४१-४२

ईश्वरप्रणिधान-पञ्चक ।

- १—अन्न, अद्वितीय, अखण्ड, अक्षर, अर्यमा, अविकार है ।
अभिराम, अध्याहत, अगीश्वर अग्नि, अखिलाधार है ॥
मनु, मुक्त, मङ्गलमूल, मायिक, मानहीन, महेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥
- २—वसु, विष्णु, ब्रह्मा, बुध, बृहस्पति, विश्वव्यापक, बृहू है ।
वरुणेन्द्र, वायु-वरिष्ठ, विश्रुत, घन्दनीय, विशुद्ध है ॥
गुणहीन, गुरु, विज्ञानसागर, ज्ञान-गम्य-गणेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥
- ३—निरुपाधि-नारायण निरञ्जन, निर्भयामृत-नित्य है ।
अत्ता, अनादि, अनन्त, अनुपम, अन्न, जल, आदित्य है ॥
परिभ, पुरोहित, प्राण, प्रेरक, प्राज्ञ-पूज्य-प्रजेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥
- ४—कवि, काल, कालानल, कृपाकर, केतु, करुणा-कन्द है ।
सुखधाम, सत्य, सुपर्ण, सच्छिव, सर्व-प्रिय, स्वच्छन्द है ॥
भगवान्, भावुक-भक्त-वत्सल, भू, विभू भुवनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥
- ५—अव्यक्त, अकल, अकाय, अच्युत, अङ्गिरा, अविशेष है ।
श्रीमच्छुभाशुभशून्य, शंकर, शुक्र, शासक, शेष है ॥
जगदन्त-जीवन-जन्मकारण, जातवेद, जनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है, ॥
“शङ्कर”

एक प्रश्न की मीमांसा ।

भीमान् १० प. सीराम एम० ए०, एल एल०, बी०, प्र गान सभा



जकल जाति के सन्मुख यह प्रश्न बड़ा विकटरूप धारण करके उपस्थित हो रहा है कि सन्तानको किस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिये । वास्तव में यह प्रश्न बहुत ही मर्मस्पृक है—इसी पर जाति का भविष्य निर्भर है—यदि हम उपयुक्त प्रणाली का अवलम्बन कर सकेंगे तो हमारा भविष्य अवश्य ही सुनहरा होगा और यदि दौर्भाग्य से हम उस का ग्रहण न कर पायेंगे तो इस में भी अशुभात्र सन्देह नहीं कि हमारा भविष्य नैराश्रय होगा—इसलिए हमें इस प्रश्न का ठीक उत्तर ढूँढने में भरसक यत्न करना चाहिये ।

प्रचलित शिक्षाप्रणाली बहुत ही निराली है । वह ऐसे लोगों ने प्रचरित की जिन्हें हमारी सभ्यता, हमारी धार्मिक और सामाजिक अवस्था और आवश्यकताओं का बहुत ही न्यून और अधूरा ज्ञान था । सम्भवतः वह हमारी सभ्यता की सभ्यता ही नहीं समझते थे । ईसाई पादरियों ने हमारा ऐसा भ्रष्टा चित्र अंग्रेज शासकों के साम्हने रक्खा था जिसे देखकर वह हमें जंगलियों से कुछ ही अच्छा समझते थे । उन्हें हमारी दशा पर दया आती थी और वह हमें योरुपीय सभ्यता के भूषणों से भूषित करके हमारी असभ्यतारूपी अशुन्दरता को दूर करना चाहते थे ।

इन्ही या ऐसे ही भावों से प्रभावित होकर हमारे शासकों ने योरुपीय विद्यामन्दिर का द्वार हम पर खोला । हम यह नहीं कहते कि उन्होंने हमारे साथ कोई अत्याचार किया बल्कि हम मुक्तकण्ठ से उन के प्रति कृतज्ञता के भाव प्रकट करते हैं और उन्हें अपना हित-साधक समझते हैं । यदि उनके दान से हमारा दारिद्र्य पूर्वतया दूर नहीं हुआ तो हम उन को कोई दोष नहीं देते । उसके कारण और ही हैं । जिन्हें

हम संक्षेपतः इन शब्दों में वर्णन कर सकते हैं कि नवीन शिक्षाप्रणाली में हमारी सभ्यता और साहित्य, हमारी सामाजिक व्यवस्था और जीवन, हमारी धार्मिकदृष्टा पर कुछ भी विचार नहीं किया गया। इसलिए यदि नवीन शिक्षाप्रणाली के फल उतने सरस और स्वादु नहीं हुए जितने सरस और स्वादु होने की आशा की जाती थी या कोई २ फल कटु भी हुए जिस की कभी भी आशा नहीं की जाती थी तौ कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जब नवीन शिक्षा का श्रीगणेश हुआ तौ जनता ने उसे बड़ी मंदिरिध दृष्टि से देखा, जैसे कि हर एक नई वस्तु देखी जाती है। पहिला ही विचार जो उम के मन में उत्पन्न हुआ यह था कि नवीन शिक्षा भारत-वामियों को ईसाई बनाने के लिए प्रचरित की गई है और इसकी पुष्टि किसी अंग तक इस घटना से भी हुई कि सबसे पहले जो अंग्रेजी स्कूल खुले वह ईसाई पादरियों की ओर से खुले जिन का वास्तव में उद्देश्य ईसाई मत का प्रचार करना था और इस घटना से भी हुई कि आरम्भ में बहुत से स्थानों में अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा प्राप्त किये हुए हिन्दु युवक अपने पैतृक धर्म को तिलाञ्जलि देकर ईसा की भेड़ें बन गये। परन्तु धीरे २ जब लोगों ने देखा कि अंग्रेजी की थोड़ीसी शिक्षा पाकर भी मनुष्य सरकारी कर्मचारी बन जाते हैं तौ अंग्रेजी शिक्षा के प्रति उन की उपेक्षा कम होने लगी और समय पाकर यह उपेक्षा अंग्रेजी शिक्षा के प्रति उत्कट उत्कण्ठा में परिणत हो गई और बहुत ही अल्प समय के पश्चात् यह दृश्य उपस्थित हो गया कि हर एक पिता यही स्वप्न देखने लगा कि उस का पुत्र अंग्रेजी शिक्षा पाकर सरकारी कर्मचारी बने। और इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी शिक्षा ही उद्दरपोख का एक मात्र साधन समझी जाने लगी और लोग अपनी पैतृक जीविकाएं छोड़ २ कर नौकरियों के पीछे दौड़ने लये। किसान का पुत्र पढ़ लिखकर हलवाहना छोड़कर सरकारी दफ्तर में सफेद कागज पर लेखनीसे काली काली क्यारियां बनाने लगा। वैश्य पुत्र दूटी फूटी अंग्रेजी सीखकर हाट के कपाट बन्द करके नौकरी की दफ्तर जोड़ने लगा। ब्राह्मण वंशवत्स भी शास्त्राध्ययन तजकर सेवा सेवा भजने लगा। समासत, विद्या क्रय विक्रय की वस्तु बन गई। जैसे लकड़हारा जंगल से लकड़ी

काटकर इसलिए लाता है कि मैं उसे बाजार में चार आने को बेचूंगा ऐसे ही लोग मैट्रिक आदि की परीक्षाएं केवल इसलिए पास करने लगे कि हमें उनका मूल्य इतने रुपया मासिक की नौकरी मिले ।

एक और तो विद्या का उद्देश्य इस प्रकार नीचा हुआ दूसरी और एक और भयंकर परिणाम हुआ । जिन लोगों ने उच्च अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की उनके मन की दशा बिलक्षण हो गई । उनका शरीर तौ भारतवर्षीय रहा, जो रहता ही, क्योंकि उसे योरुपियन बनाना उस के सामर्थ्य से बाहर था और जहां तक उनका बस चला उन्होंने योरुपियन चालढाल, रंगढंग, वेषभूषा, रहनसहन की अनुकृति करके उसे योरुपियन बनाया भी । अस्तु, परन्तु उनका मन योरुपियन ही गया था ही सा गया । अपनी सभ्यता, साहित्य और धर्म के विषय में उन के वही विचार हूँ गये जो उन के शिक्षकों के थे । जो जो उन्हें त्यागकर ईसाई हो गये उन की तौ कुछ बात ही नहीं परन्तु जिन्होंने उन्हें खुलमखुला नहीं त्यागा उन्होंने मन में अप्रकट रूप से अवश्य त्याग दिया । वेदों को वह जंगली या अधिक से अधिक अर्द्ध जंगली गड़रिधों की वाही मानने लगे । वैदिक संस्कारों को ढकीसला सरुफने लगे । कोई २ तौ सम्भवतः मन ही मन में यहा तक कुड़ते हों कि वे वैदिक आर्यों के वंशधर ही क्यों हुए । उन की दशा बिलकुल वैसी ही होगई जैसी उस नाव की होती है जिसकी रस्सी काट दी जाय और फिर वह लूँों के थपेड़ों और हवा के झोंकों से डावाडोल होकर बहती हुई चली जाय । ऐसे लोगों का मानसिक सम्बन्ध अपने जनों से बहुत न्यून रह गया । पुत्र और पिता, पति और पत्नी के विचारों में पश्चिम और पूर्व का अन्तर हो गया । उन्होंने अपनी को पराया बना लिया परन्तु पराये अपने नहीं बने ।

अनेक शिक्षित जन यूरोप के इतिहास और साहित्य को पढ़कर असन्तोष सागर में मग्न हो गये । यूरोप में प्रजा की स्वतन्त्रता को देखकर वह स्वयं भी उसी स्वतन्त्रता का आस्वाद लेने के लिये लालायित होने लगे । उनमें बहुत बड़े भाग ने तो अपने अधिकारों की रक्षा और विस्तार के लिये नियमानुकूल आन्दोलन का आश्रय लिया जिसका अवतार नेशनल कांग्रेस है । परन्तु कुछ (यद्यपि बहुत ही कम) ने न्याय, न्यायदा, नियम को भाङ् में भौंक कर उस कुटिल, कराल

और चिनौनी अराजकता का अनुकरण किया जिसने सब से पहिले यूरोप में ही जन्म लिया था। यह विप्लव भारत की अवतमयी भूमि में बोया गया—जिसका परिणाम यह हुआ कि अनेक निरपराधियों की जानें गईं, जीत के माये कलंक का टीका लगा—राजा और प्रजा के बीच में अविश्वास का सूत्र पात हो गया और सरकार ने कठोर कानून बनाए जिससे प्रजा को अनेक कष्ट हुए और हो रहे हैं।

सरकार भी और प्रजा भी इस अनिष्ट का कारण प्रचलित शिक्षा को ही बताती है। जिसमें धर्म और देव्यर के लिए कोई स्थान ही नहीं रक्खा गया। सर्व साधारण में भी जो सोचने और समझने वाला भाग है वह प्रचलित शिक्षा प्रणाली से सन्तुष्ट नहीं है और प्रचलित प्रणाली में उदासीनता के भाव का अभाव नहीं है। यद्यपि यह देख कर कि स्कूलों और कालिजों में हर वर्ष विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती चली जाती है और इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि लोगों में प्रचलित प्रणाली के लिए उत्साह और चाव है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। लोग शिक्षा के लिये उत्साह और चाव रखते हैं और जब सिवाय स्कूलों और कालिजों के शिक्षा के द्वार है ही नहीं तो उन्हें खिच होकर अपनी सन्तान को उन्हीं में भेजना पड़ता है। दूसरा कारण जो बहुत ही प्रबल है वही है जिसकी ओर हम पहले संकेत कर चुके हैं। सरकारी शिक्षा रोटियों की दुकान समझी जाती है और इसी लिए वहाँ भूखों का जमघट रहता है। वही प्रतिष्ठा की टकसाल गिनी जाती है और इसी लिये लोग अपने सोने चांदी तांबे को उसमें देते हैं।

यह बात कि प्रचलित प्रणाली से जनता में असन्तोष का अंकुर उत्पन्न हो गया है इस बात से स्पष्ट है कि ऐसी पाठशालाएं स्थापित हो रही हैं जिनमें सरकारी प्रणाली से भिन्न ढङ्ग की शिक्षा का यत्न किया जा रहा है। सरकार भी उससे असन्तुष्ट है। जिसका प्रमाण यह है कि शिक्षाविभाग स्कूलों और कालिजों को अधिक से अधिक अपने अधिकार में लाने का यत्न करता जाता है।

गुरुकुल भी शिक्षा प्रणाली के सुधार और परिवर्तन के अभिप्राय से ही स्थापित किये गये हैं। ऋषि दयानन्द ने जहाँ जाति के और

का ऐसा रोग लगा है और उसे वकीलों की बढ़ोतरी ने ऐसा बढ़ा दिया है कि उसका अन्त ही होता दिखाई नहीं देता। पश्चिमी विचार रखने वालों की सम्प्रति में मुकद्दमा बाजी का बढ़ना सनाज के सद्गु होने का चिन्ह है। परन्तु हम तो यह जानते हैं कि उसका परिणाम दरिद्रता, कलह, क्रोध और पाप कर्मों की वृद्धि है। यह कहा जाता है कि वृक्ष अपने फलों से पचिना जाता है। हम पूछते हैं कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली कैसी लता है स्वर्गीय वा २

जो कुछ हमने कहा उस से यह न समझ लेना चाहिए कि हम अंग्रेजी की शिक्षा के विरुद्ध है या उसे अनुपयोगी समझते हैं। यूरोपीय साहित्य और विज्ञान से लाभ न उठाना बुद्धिमत्ता का काम नहीं। हम यदि विरुद्ध हैं तो उस ईश्वर हीन (Godless) और लक्ष्यहीन (Aimless) प्रणाली के हैं जिस की कार्यप्रशस्ति हम ऊपर कर आए हैं। गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली इस बुद्धि को दूर करती है— नवीन साहित्य, पाश्चात्य विज्ञान में जो उपयोगी है उस से लाभ उठाना वर्जित नहीं करती। हा, वह बल देती है चरित्र की पवित्रता पर, मनुष्य के कर्तव्य परायण होने पर, प्राचीनादर्शप्रिय होने पर, वैदिक सभ्यता की प्रतिष्ठा करने पर। हमें विश्वास है परन्तु अन्धा विश्वास नहीं कि केवल भारतवर्ष की ही सारे संसार की इस प्रणाली की आवश्यकता है। क्योंकि हम सभी देशों में एक प्रकार की विकलता और व्याकुलता पाते हैं, मनुष्य का जीवन शान्ति मय नहीं बन रहा बल्कि अशान्त हो रहा है। पश्चिम में विज्ञान की हर प्रकार की उन्नति होते हुए भी आत्मिक सुख का ह्रास हो रहा है। इन्द्रियविलास बढ़ रहा है। बलवान निर्बल का सहायक नहीं प्रत्युत विनाशक हो रहा है।

परन्तु गुरुकुलशिक्षा—प्रणाली आदर्श प्रणाली सही, सब सुख दिलाने वाली सही, उसको पूर्णतया उपयोग में लाने के लिए भी बहुत से अनुभव, विद्या व्यय, सहानुभूति, और सब से अधिक अनथक परिश्रम और धैर्य की आवश्यकता है। इस प्रणाली के नाम में कोई जादू नहीं है कि सब कुछ इस महा मन्त्र के जाप से ही सिद्ध हो जाय। लोग कभी कभी बहुत ही अधीर हो उठते हैं। हमारी श्रद्धा की भित्ति

रेत पर जो तनिक से दबाव से खिसक जाती है। अभी इस प्रणाली पर कार्य होते हुए २० वर्ष भी नहीं हुए और आक्षेप वाक्यों की भरमार होने लगी। हर ओर से यही शब्द सुनाई देने लगे कि गुरुकुल से हमें यह आशाएं दिलाई गई थी कि इस से कणाद और गौतम उत्पन्न होंगे। जो स्नातक निकले हैं वह विलक्षण प्रकृति और आकृति के नहीं हैं। साधारण डील डील और साधारण ही ज्ञान के मनुष्य हैं। यह आक्षेप सत्य भी हों तो भी गुरुकुल प्रणाली को स्पर्श नहीं करते। इस समय में यः प्रणाली एक परीक्षण है जिस का सफल होना बहुत से साधनों पर निर्भर है। कोई परीक्षण भी प्रतिकूल घटना समूह में सफल नहीं हो सकता। तनिक सी भूल भी सारे श्रम, व्यय को व्यर्थ कर सकती है। जब साधन, सामग्री, उपकरण सभी ठीक होंगे, परीक्षक भी आवश्यक गुण सम्पन्न होगा तभी सफलता प्राप्त होगी। मानलो गुरुकुलों से अभी गौतम और कणाद उत्पन्न नहीं हुए और हम कहते हैं कि यह भी मानलो कि अभी एक दो शताब्दि तक और भी उत्पन्न न हों। और गुरुकुल के पन्तवालों ने जो आशाएं दिलाई थीं वह अभी पूरी नहीं हुईं तोभी क्या इस से गुरुकुलों की निष्कलता हो गई। यह भी क्या दस बीस वर्ष का काम है? दस बीस लाख रुपया के व्यय से सिद्ध हो सकता है? गुरुकुलों की सफलता पूर्वक कार्य करते हुए देखना हमें क्या, स्यात् हमारी सन्तान को भी न मिले। लाखों रुपया व्यय होजाने और कितनों के ही जीवन भी इस में लगजाने पर भी संभव है कि पूरी सफलता का मुख देखना न मिले परन्तु अधीर होने का कोई कारण नहीं है। सफलता अवश्य होगी परन्तु कब होगी और किस को उसका सुन्दर बदन देखना मिलेगा यह प्रश्न अलग है। हमें नेराश्रय नहीं क्योंकि यह परीक्षण नया होते हुए भी सर्वथा नया नहीं। इसी देश में यद्यपि अन्यकाल और अवस्था में वह सिद्ध हो चुका है। यही राम, कृष्ण, गौतम, कणाद उत्पन्न कर चुका है। ऋषि प्राचीन शास्त्रों और इतिहास के आधार पर इसी प्रणाली के अनुसार शिक्षा देने का उपदेश कर गये हैं। क्या ऋषि के बचन निर्मूल हैं? क्या इतिहास के उदाहरण भूटे हैं? यदि नहीं तो हम अश्रद्धालु क्यों हैं? हमें फिर यह संशय क्यों होता है कि गुरुकुल सफलता प्राप्त नहीं

कर सकेंगे । यदि हमें अभी सफलता प्राप्त नहीं हुई है तो अवश्यमेव हमने कुछ भूल की है, अवश्यमेव हमारे साधनों में न्यूनता रही है, अवश्यमेव हमें पर्याप्त और उपयुक्त सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है अवश्यमेव हम में श्रम की मात्रा कम है । और वास्तव में ऐसा है भी, माना आर्य्य जनता ने अपनी शक्ति भर गुरुकुलों को दान दिया परन्तु यह सत्य ही है कि वह पर्याप्त नहीं । अभी पूरी बिल्डिंग भी नहीं बन पाई है । पुस्तकालय और परीक्षालय, व्यायामशाला इत्यादि के ही लिए लक्षों रुपया चाहियें । अध्यापकों और संरक्षकों की कमी है । अच्छे अध्यापक और संरक्षक नहीं मिलते । जो ब्रह्मचारी हमें मिलते हैं वह भी सुसंस्कृत नहीं होते । यह त्रुटियाँ हैं जिन्हें हमें दूर करने का यत्न करना चाहिये । निःशुल्क शिक्षा का प्राचीन आदर्श बहुत कंषा है । समय के हेर फेर से हम अभी उस तक नहीं पहुँच सके और बहुत काल तक नहीं पहुँच सकेंगे परन्तु इस आदर्श को हमें सदैव अपने सम्मुख रखना चाहिए और इसके लिये सदैव यत्नशील रहना चाहिये । अध्यापक मनुष्य हैं कई गृहस्थी भी हैं उन्हें खाने की भी चाहिये, पहनने की भी चाहिये बिना कुछ लिये वह कैसे कार्य्य कर सकते हैं । सभी कुछ धन साध्य है जब तक इतना धन गुरुकुल के कोष में न हो जावे जिससे सब व्यय चल सके तब तक निःशुल्क शिक्षा हमारे लिये स्वप्नवत् रहेगी ।

एक बहुत बड़ा परन्तु हमारी दृष्टि में सब से छोटा आक्षेप यह किया जाता है कि गुरुकुल के स्नातक क्या करेंगे ? उन्हें सरकारी नौकरियाँ नहीं मिल सकेंगी । ठीक है । गुरुकुल के सञ्चालकों ने यह कब कहा था कि वह गुरुकुलों से सरकारी दफ्तरों के लिये कर्क उत्पन्न करेंगे । जिन्हें अपने पुत्रों को नौकरी करानी है उन्हें गुरुकुल में अपने पुत्रों को भेजना ही नहीं चाहिये । वह एनजिनियर और डाक्टर नहीं बन सकेंगे । ऐसा होने से क्या अनिष्ट हो जायगा ? कोई आसमान टूट पड़ेगा या धरती फट जायगी । परन्तु यह ठीक नहीं है गुरुकुलों में श्रम नहीं तो आगे की वैद्यक और उसके साथ डाक्टरी की शिक्षा का प्रबन्ध ही सकेगा । और फिर गुरुकुल के ब्रह्मचारी सरकारी सनद न

रखते हुए भी लोगों की व्याधियाँ हर सकेंगे। एनजिनियर बन कर सरकारी कारखानों में न सही प्राइवेट कारखानों में काम कर सकेंगे या उनमें से कोई अपने ही कारखाने खोल सकेंगे जिसमें वह स्वयं और अपने दस भाइयों को जीविका दे सकेंगे। और यदि ऐसा प्रबन्ध न भी हो सके तो भी क्या हानि होगी अब भी कितने प्रोजेक्ट एनजिनियर या डाक्टर बन सकते हैं ? उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। हमारे ब्रह्मचारी वकील बैरिटर न बन सकेंगे। हा जी नहीं बन सकेंगे। क्या आप चाहते हैं कि बनें, तो वास्तव में आपने गुरुकुल के आदर्श को बहुत ही नीचा समझ रक्खा है। समाज में मुकद्दमा बाजी का खटना अच्छा नहीं है इसलिये यह श्रेणी तो जितनी कम हो उतना ही समाज का अत्याज होगा परन्तु इन दो चार द्वारों के सिवाय अन्य सब द्वार हमारे ब्रह्मचारियों पर खुले रहेंगे। कृषि का विस्तृत क्षेत्र उनके लिये उपस्थित है। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश के लिए उत्तम किसानों की कितनी आवश्यकता है आप यदि लाखों उत्तम कृषक उत्पन्न कर दें तो भी उनकी मांग पूरी न हो सकेगी फिर व्यापार का बाजार खुला हुआ है। सत्य व्यवहार के न होने से उद्यम और व्यवसाय के अभाव से देश का करोड़ों रुपया नष्ट हो रहा है और अन्वियों की जेबों में जा रहा है क्या इसे रोकने का कोई यत्न नहीं होना चाहिये ? क्या देश की कारीगरी को जो दिन प्रति दिन लुप्त होती चली जा रही है स्थिर और पुनरुज्जीवित करने का कोई उपाय नहीं करना चाहिये ? हमारे ब्रह्मचारी यदि व्यापारी और व्यवसायी बनें तो अन्वियों से कुछ घाटे में रहेंगे। इसमें भी लाखों मनुष्यों की खपत है। इसके अतिरिक्त वह लेखक सम्पादक, अध्यापक, उपदेशक, रियासतों के सैनेजर इत्यादि सभी कुछ बन सकेंगे। बिद्या, बुद्धि, शुद्धाचरण, सदा व्यवहार, अपने भाइयों से प्रेम और दीन दरिद्रों पर अनुकम्पा, परिश्रम शीलता, निर्भयता, सत्य प्रियतादि गुण कभी निष्फल गये हैं जो अश्व निष्फल जायगे। हा यदि दास वृत्ति करने वाले उदारम बुद्धि के ही मनुष्य आपको चाहिये तो गुरुकुल से आपका यह अनुरोध सिद्ध नहीं हो सकता।

दूसरा एक विचार और भी है जिसकी और हम संकेत करना चाहते हैं वह यह कि जो लोग यह देखकर कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी नौकरी न कर सकेंगे, घबरा उठते हैं, यह स्मरण नहीं रखते कि जितने विद्यार्थी प्रति वर्ष सरकारी ढङ्ग की शिक्षा की शिक्षा देने वाले स्कूलों और कालों से निकलते हैं उन में से सरकारी नौकरी और फिर भी उच्च पद कितनों को मिलता है—भारतवर्ष भर में ऐसे पद पांच सौ साल सौ से अधिक को नहीं मिल सकते—और छोटे दर्जे की नौकरी की इच्छा करना और अपनी सन्तान को दुर्दम्य प्रलोभनों में डालना तो हमारी सम्मति में उन का अनिष्ट चिन्तन करना है—हमारे आक्षेपकर्ता यह भूल जाते हैं कि गुरुकुलों से जितने ब्राह्मण निकलेंगे उन के लिये तो यह प्रश्न करना ही अनावश्यक है कि वह क्या करेंगे वित्तोपाजन उन का उद्देश्य ही नहीं होगा और इस की उन्हें स्वयम् चिन्ता न होगी फिर आप को क्यों ? विद्या और तप ही उन का धन होगा जो क्षत्रिय निकलेंगे उन के लिये भी यह चिन्ता व्यर्थ ही है प्रथम तो सरकारी सेवा में ही उन की खपत हो सकती है और दूसरे देशी रजबाड़ी में उन की खपत हो जायगी और वैश्य तो कृषि और व्यापार करेंगे ही वह तो मिट्टी में से भी सोना निकालने की शक्ति रखेंगे। जैसा हम कह आये है शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य बनना है न कि टका धर्मी उत्पन्न करना। जो लोग विद्या की रोटियों की दुकान बनाना चाहते हैं वर विद्या का अपमान करते हैं। वह भर्तृहरि के इस वाक्य को भूल जाते हैं "विद्वान् सर्वत्र पूज्यते,, ।

—○:○:○—

"सर्व दानों में वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है। इस लिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें। जिस देश में यथा योग्य ब्रह्मचर्य्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान होता है।,,

“मैं संसार को क़ैद कराने नहीं आया हूँ वरन क़ैद से छुड़ाने आया हूँ यदि कोई अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें ।,,

—ऋषि दयानन्द सरस्वती ।



महेश वृत्त ।

मूल शङ्कर एक, तू संसार का ।
बीज वैदिक-धर्म, के विस्तार का ॥
अर्थ तू गुरु-संज्ञ, का निर्दिष्ट है ।
इष्ट मानव जाति, के उद्धार का* ॥

लावण्यवात्मक लावणी ।

* १ *

कर सत्य-सनातन-धर्म, आप अपनाते ।
यदि दयानन्द-गुरुदेव, उदार न आते ॥
अवतार कहा कर जो न, कुभार उतारे ।
बन कर जो बुद्ध विशुद्ध, न यज्ञ विस्तारे ॥
जनता पर जिस का पुत्र, न प्रेम पमारे ।
कर प्यार न जिस का दूत, नमाज सुधारे ॥
उस एक सर्व-गत के न, भक्त बन जाते ।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते ॥

* २ *

जिस में मत-भेद प्रबाह, घने बहते हैं ।
जिस में अनमेल कुभाव, भरे रहते हैं ॥
जिस के कुल घोर-दरिद्र, दुःख सहते हैं ।
हँस हँस हिन्दू बन "हिन्दू", जिसे कहते हैं ॥
उस भारत में सुविचार, प्रचार न पाते ।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते ॥

"महेशवृत्त" नया रचा गया है। इस का रूप यों है (S. १॥S. 555।S यह बर्णो वृत्त है। इसी चाल का "पीयूषवर्ष", नामक एक प्राचीन मात्रिक छन्द है। उसका प्रत्येक चरण १०,६ के विराम से पूरा होता है । (गङ्गार)

* ३ *

कर घोर घृणा मुख मीड़, पाहनी हर से ।
 चन दिये महा-व्रत धार, पिता के घर से ॥
 पढ़ विरजानन्द विरक्त, ज्ञान सागर से ।
 बन वैदिक सिद्ध प्रसिद्ध, मिले शङ्कर से ॥
 किस के यों अनुकरणीय, चरित्र सुनाते ।
 यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते ॥

* ४ *

दृढ़ ब्रह्मचर्य्य-बल धार, विवेक बढाया ।
 तज भोग सिद्ध कर योग, जन्म फल पाया ॥
 करखी-धरणी पर धर्म, मेघ बरसाया ।
 सब को देकर उपदेश, देश अपनाया ॥
 बुध-खरद संविदादर्श, किसे दत्ताते ।
 यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते ॥

* ५ *

भारत भर में भय त्याग, बिबरते डोले ॥
 सब के गुण दूषण टेक टिकाय टटोले ॥
 धर तर्क तुला पर कूट, कथानक तोले ।
 कर परम सत्य स्वीकार, असत्य न बोले ॥
 किस के गुण यों जय बोले, बोल कर गाने ।
 यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते ॥

* ६ *

नव द्रव्य, धर्म, गुण, कर्म, शुभाशुभ जाने ।
 अनुभूत प्रमाण प्रयोग, विधान बखाने ॥
 समझे, ऋषि तंत्र सुधार, सुधा रस माने ।
 भ्रम जाल भरे नर ग्रन्थ, विशुद्ध न माने ॥
 किस पर नारालिक न्याय, निदान कराते ।
 यदि दयानन्द गुरु-देव उदार न आते ॥

१

समुचित आचार विचार, शोध समझाये ।
 कर पुरय प्रकाशित पाप, जघन्य जनाये ॥

रघु पङ्क्ति वैदिक-याग, अतादि बतार्ये ।
लिख लेख सदर्थ अन, मेद दरसाये ॥
विधि और निषेध अमान, न जान जनाते ।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते ॥

* ६ *

जड़ पूजन की जड़ काट मोहमठ फोड़े ।
कर दूर अद्वैतिक दर्प, दम्भ गड़ तोड़े ॥
मत पन्थ प्रसारक पन्न, न जीवित छोड़े ।
सटकी भ्रम की भरमार, भिडे न भगोड़े ॥
नट खट खगहन की भार, कही कथ खाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* ६ *

कथ लम्पट लोलुप लखट, लयार लताड़े ।
प्रतिवाद, प्रमाद, प्रपञ्च, प्रचण्ड पडाड़े ॥
उलझे भुक फिक्कड़ भुङ्ग, भड़ाभङ्ग भाड़े ।
उखड़े अक्खड़ खल खबे, उखाड़ अखाड़े ॥
कथ ऊत भयानक भूत, कपूत कहाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १० *

कर कोप न कल्पित प्रेत, पिशाच पुकारें ।
भुमिया भैरव हनुमान, न अन्न हुंकारें ॥
बड़ चामड़ चेत बुझैल, न फूक पजारें ।
जखड़े जिन पीर मसान, मसोस न मारें ॥
मिल ऊत मरे यमदूत, सदैव सताते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* ११ *

जब गुरुकुल विद्यापीठ सदा बढ़ते थे ।
बटु ब्रह्मचर्य ब्रत शील, वेद पढ़ते थे ॥
जब शिष्य यथोचित वर्ण, धार कइते थे ।
गीरव गिरि वै प्रल रोप, रोप चढ़ते थे ॥

अब क्या तब के अनुसार, बड़ङ्ग पढ़ाते ।
यदि दयानन्द गुरु देव, उदार न आते ॥

* १२ *

प्रतिभा धर दत्त दयालु, विप्र पद पावें ।
क्षत्रिय पढ़ वेद बलिष्ठ, वरिष्ठ कहावें ॥
करकृषि याशिष्य सुशोध, वैश्य बन जावें ।
वह ऋषि जिसे द्विज दास अशोध बनावें ॥
गुण, कर्म, स्वभाव न वर्ण, विभाग बनाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १३ *

पिय साथ सुहागिनि का न, समीद बितावे ।
सधवा पुनि अज्ञत मोनि, राड बनजावे ॥
विधवा क्षत गोनि निरोग, सिद्ध फल पावे ।
कुलटा बनके कुल धी न, कलङ्क लगावे ॥
द्विज दम्पति क्या इस ओर, ध्यान कुञ्ज लाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १४ *

कर ब्रह्म कथामृत पान, बिसार उदासी ।
बनगये मृत्यु भय त्याग, अमर सन्यासी ॥
उमगे बुध सज्जन देश, विदेश निवासी ।
चिड़ गये विदूषक धीर, खबोर बिसासी ।
किसके बल से किस भॉति, किसे समझाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १५ *

सब ओर सुधार पसार, सुनीति बिराजी ।
मंगल मुख दुन्दुभिधर्म, विजय की बाजी ॥
गरजे सुन वैदिक नाद, सुजान समाजी ।
छुपगये उलूक उतार, प्रतारक पाजी ॥
कब देख सभ्य दल दृश्य, दस्यु दब जाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १६ *

अवनी पर आर्यसमाज, कल्पतरु फूले ।
 शुभ सिद्ध मनोरथ रूप, धार फल भूले ॥
 कुल घातक तक्षक क्रूर, कुभाव न भूले ।
 अटके धर कोप कुठार, विरोध वसूले ॥
 इन असुरों का कब घोर, घमण्ड घटाते ।
 यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

—○:○:○—

महर्षि दयानन्द और शान्ति युग

(श्रीयुत मास्टर आत्माराम जी ऐज्यूरेशन इंस्पेक्टर)

आर्य ग्रन्थों में तीन वार शान्ति उच्चारण करने की प्रथा किसी शुभकाम वा शुभलेख की समाप्तिपर देखने में आती है। जर्मन देश का विद्यानिधि शोपनहार लिखता है, कि इस सेबद्धकर उत्तम प्रार्थना कि हम सभा, समाज के विसर्जन समय पर शान्तिपाठ करें, कही दृष्टि नहीं पड़ती। सोलह संस्कार हों वा विशेष हवनयज्ञ, पहिले शान्तिपाठ करना ही होगा। यूरुप का जीवन चरित्र दर्शा रहा है कि वहाँ इन बातों को जीवन में लाना कठिन है। आजकल भारतवर्ष में अंग्रेजी लिखे पढ़े १०० में ९५ पुरुष तो सच्चे मन से महोदय डारविन के मत के भक्त बन रहे हैं और कह रहे हैं कि शान्ति युग के भाव कवियों के मनोद्वन्द्व नहीं तो क्या हैं? ऐसी विकट शताब्दी में ऋषि दयानन्द ने भारत में काम किया—युक्ति तथा प्रमाण से उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि शान्ति युग लाना असंभव नहीं, यदि मनुष्य सच्चे आस्तिक होजावे। इसी उद्देश्य अर्थात् शान्ति युग लाने के दृढ़ विचार से उन्होंने हम अयोग्य, शक्तिहीन, शुभसंस्कार शून्य मनुष्यों को जो वेदविद्या तथा संस्कृत विद्या से रहित थे वा किसी अंश तक ही जानते थे, समाज में संगठन किया। गुरुदत्त से मेधावी, पण्डित, जिज्ञासु ने

ऋषि के मार्ग की समझलिया, पर उनकी आयु ने उन का साथ न दिया। उनके पीछे आर्य्यसमाज गुरुकुलों, तथा वैदिकधर्म प्रचार द्वारा शिर तोड़ कीशिश कर रहा है कि देश में जाग्रति फैले, पर धन हीन, शक्तिहीन, आर्य्यसमाज अभी १० लाख भी तो आर्य्यसभासद बना नहीं सका। ऋषि ने अपने जीवन की एक शान्तिमय जीवन बना कर दिखा दिया था। जो उस पर पत्थर पर पत्थर फैंकते थे, यह उन की आशीश ही देते रहे। जिन्होंने उनका अपमान किया, इन्होंने वहाँ शान्ति का ही उच्चारण किया। बुद्धदेव शान्तियुग लाने में सफल मनोरथ हुए, यह इतिहास दर्शा रहा है। महर्षि दयानन्द का जीवन बुद्धदेव से कई अंशों में बहुत ही उच्च था तिस पर भी यदि आज तक भारतसंतान शान्तियुग के महत्व की नहीं समझी तो दोष ऋषि का नहीं, पर हमारे जन्म जन्मान्तरों के मन्द संस्कारों का है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक ऋषि का जीवन चरित्र पढ़ जाओ, उस के ज्ञान में परिवर्तन हुआ, उस के मत में फेर हुआ। वह शैव से वैदिक आर्य्य बना और तिलक छाप से सच्चा आस्तिक बनकर वेदों का प्रचार करने लगा। उसने गुरुकुल वा संस्कृत शालाएं खोलीं उसमें उसको सफलता न हुई, यह सब परिवर्तन और अनुभव उसने प्राप्त किये। अनुभव पर नया अनुभव उसने प्राप्त किया—पर एक बात जिसमें हम परिवर्तन नहीं देखते, जो मानो माता के दूध के साथ ही उसने अमृतव्रतपान की थी वह उस की परोपकारी वृत्ति वा शान्तियुग लाने की चेष्टा थी। उसने मत बदला पर उत्तमोत्तम वृत्ति नहीं बदली। न मासूम कितने जन्मों के शुभ संस्कार लेकर वह योगिराज जन्मा था—अहो! उस के मन में कितनी उत्कट इच्छा थी कि:—

“सब से सब को सुख लाभ पहुँचे।”,

वह अविद्या का शत्रु था। वह भ्रान्त विचारों की खंडन करता था, पर उसने मनुष्य शान्ति का कभी खंडन किया? नहीं, कभी नहीं। विष खाकर, प्राण देते हुए, औरों का भला ही चाहता रहा। ऐसा ऋषि, सच्चा योगी इस समय में हमारे सामने नहीं पड़ता। संभव है कि वैसे ही योगिराज अब भी हिमालय और आबू में सच्चे जिज्ञासुओं को दर्शन दें। पर हम से आलसी प्रमादियों की हमारे घरों में

आकर उपदेश देने वाला योगिराज यदि कोई था तो वह शान्ति युग की शिला रखने वाला महर्षि दयानन्द ही था। लोग कहते हैं कि दयानन्द ने "प्राचीन वाद," की मात्रा का अधिक प्रचार कर भारत की भावी उन्नति और भावी आविष्कारों को रोक दिया। हम कहेंगे कि यदि वादी तीसरे नियम को "प्राचीन वाद," के अर्थों में ही लेते हैं तो वह कृपा कर के इससे अगला चौथा नियम साथ ही क्यों नहीं पढ़ लेते, जिसका भाव यह है कि सबको सत्यज्ञान के ग्रहण करने में सर्वदा उत्थत रहना चाहिये। प्रथम तो यह कथन ठीक नहीं कि वेद प्रचार प्राचीन वाद है, यदि मान भी लें तो फिर नवीनवाद का उपदेश क्या साथ नहीं? इन दोनों वादों व सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए जो शान्ति वाद नहीं २ शान्ति के अटल सिद्धान्त का ऋषि ने प्रचार छूटे नियम में किया है, उनको देखकर यूरोप का एक भारी विद्वान् भी आश्चर्य के रागर में निमग्न हो जाता है। शान्ति प्रेम, इसका दयानन्द एक मात्र प्रचारक था। उसका जीवन शान्त जीवन है। किसी से बैर काना कभी स्वप्न में भी उसके मन में नहीं आया। जो कुछ उसने किया एक मात्र ईश्वराज्ञा के पालन तथा शान्तियुग लाने के लिये। इस ऋषिवर के मुक्ति पा जाने से भारत शताब्दियों उन्नति के मार्ग से दूर होगया। भूगोल पर एक भी महर्षि वा आदर्श सन्यासी इस समय उस के समान नहीं है। ईश्वर कृपा करें जिस से भारत अपने जगने वाले के लक्ष्य को अनुभव कर सके।

—○.○:○—

दयानन्द की अपूर्वता

(ले० वेदनीधे पण्डित नरने शास्त्री)

दयाशाली दयानन्द की किस २ अपूर्वता का वर्णन किया जाय जिस ने स्वदेश और स्वहर्म की ठीक पहिचान करादी। जिसने सुरावर और स्वारावर (नोज) का यथार्थ भेद बतलाया, जिसने भारतवासियों का परिचय की ओर उठा हुआ मुख फिर पूर्व की ओर

कट ज्ञानरूपी सूर्य के-वेद रूपी भगवान् के साक्षात् दर्शन कराये, गुजरात ही होकर भी जिस ने केवल गुजरात ही नहीं-भारतवर्ष ही नहीं-किन्तु समस्त संसार के कल्याण के हेतु यत्र किया; उदीच्य कुल का होकर भी जिस ने अपनी संकुचित मर्यादा छोड़ कर समस्त भारतवर्ष और तद्वारा सकल संसार को अपना कुल बनाया; सामवेदी होकर भी जिस ने केवल सामवेद ही नहीं, ऋग्वेद ही नहीं, यजुर्वेद ही नहीं किन्तु चारों वेदों के उद्धार के लिये यत्र किया और सब से पूर्व यजुर्वेद और तत्पश्चात् ऋग्वेद का भाष्य कर सच्चे ब्रह्मा बनने का सौभाग्य प्राप्त किया-उस मूलशंकर की, उस यति दयानन्द की, मुनि दयानन्द की, महादेव की तलाश में घनघोर जंगलों में भटकने वाले दयानन्द की, योगिराज दयानन्द की, मृत्यु को जीतने वाले दयानन्द की, गुरुभक्त दयानन्द की, सत्य के लिये अपने ही देश के-भारतवर्ष के लोगों के हाथों से सैकड़ों असह्य कष्ट सहने वाले दयानन्द की किस २ अपूर्वता का वर्णन करें ?

प्राचीन समय की शिक्षा के दृश्य दिखला कर गुरुकुल का मनो-हारि अनुपम चित्र खेंचने वाला चित्रकार दयानन्द, मनुस्मृति में उप-वर्णित धर्ममर्यादाओं पर पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष द्वारा विवेचन करने वाला धर्मशास्त्रकार दयानन्द; राजा प्रजा के कर्त्तव्याकर्त्तव्य की नीमासा करने वाला प्रतिवाद भयङ्कर दयानन्द; किसी न किसी अंश में वेद शास्त्रों का सहारा लेने वाले परन्तु परस्पर अत्यन्त विभिन्न रूप को प्राप्त हुये नौसौ निन्यानवे मतमतान्तरों का भगड़ा मिटा कर शान्ति स्थापना करने की चेष्टा कराने वाले न्यायाधीश दयानन्द; पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान-संस्कृत में शून्य होने पर भी पौरस्त्य ज्ञान-विज्ञान-संस्कृत की छाप समस्त भूमण्डल पर बिठाने वाले दयानन्द; इन भिन्न २ दयानन्द की चित्रच्छायाओं को देख कर कौन विद्वान् पुरुष है जो दयानन्द की अपूर्वता को नहीं समझ सकेगा ? कुशल से कुशल चित्रकार भी इन समस्त छायाओं से यक्त दयानन्द के चित्र को नहीं खींच सकता । यदि कोई चित्रकार दावा करता है तो वह सामने आवे ।

गीता शास्त्र के सदृश दयानन्द को समझना भी कठिन कार्य है । जैसे भिन्न २ सम्प्रदाय वाले गीता से ही अपने २ अभिप्राय निकाल लेते

हैं और प्रत्येक गीता को अपनाता है। कुछ काल से कुछ ऐसी ही गति दयानन्द के विषय में हो रही है। जैसे गीताशास्त्र चतुर्धर से भीटा लगा है वैसे अब दयानन्द सबको प्यारा लगने लगा है। और इसी लिये प्रत्येक सम्प्रदाय अपनी २ दृष्टि से दयानन्द को विशिष्ट स्थान देने लगा है। प्रथम प्रथम तो लोगों ने न दयानन्द को ही समाज का आर्यसमाज को, फिर ऐसा काल आया कि लोग दोनों को ही अपनाते लगे। अब दयानन्द को तो अपनाते हैं और आर्यसमाज को छोड़ते जाते हैं। अहिर्मण्डल तथा अन्तर्मण्डल दोनों में यह दशा है। उदारभाव वाले महाशय चक्रवर्ती दयानन्द को समझने के लिये उदार बनने की आवश्यकता है, संकुचित भाव, संकुचित विचार वाले लोग दयानन्द को कभी भी ठीक २ नहीं समझ सकेंगे। जो किसी विशेष दृष्टि से ही दयानन्द की प्रशंसा करने पर उतरते हैं और अपने अभीष्ट बातों को मानकर अन्य अंशों में त्याग्य समझते हैं वे एक देशीय दयानन्द के ग्राहक हैं न कि सर्व देशीय दयानन्द के।

“दया भी प्यारी और आनन्द भी प्यारा दोनों मिलाकर दयानन्द प्यारा,, ऐसा गाने वालों ने भी किसी २ अंश में दयानन्द की इतना संकुचित कर दिया है कि इनके हाथों से खोचा हुआ चित्र नहीं पहिचाना जाता कि यह किस दयानन्द का चित्र है ? ये तो रहे मानसिक चित्र। अब लौकिक चित्र भी देखिये ये भी कहाँ एक दूसरे से मिलते हैं ? नये २ फोटो वाले और चित्रकार स्वामी को भिन्न २ विस्खलित रूप में दिखाते हैं। यदि फोटोग्राफर ठीक २ फोटो नहीं ले सकता तो फोटोग्राफर का दोष है न कि फोटो खिचवाने वाले का। यदि चित्रकार ठीक चित्र नहीं खींच सकता तो वह चित्रकार का दोष है न कि ध्यानावस्थित मूर्ति का, जिस चित्र या फोटो से उस पुरुष की यथार्थ दशा का बोध नहीं होता या स्वरूप विरूप हो जाता है वह चित्र चित्र नहीं, वह फोटो फोटो नहीं। जिस दिशा में स्वा० दयानन्द की बातें नहीं आईं वह दयानन्द का यथार्थ चित्र नहीं बना सकता। दयानन्द। स्वामी दयानन्द। आपही बतलाइये कि वह कौनसा निपुण शिल्पकार है, वह कौनसा चित्रकार है जो आपको यथार्थ रूप में दिखा सकता हो। वैसे तो सबके दीखते हो और फिर भी सब

से अलग हो, जैसे तो दया का इतना भण्डार है, उधर सफाई का भी कुछ ठिकाना नहीं, एक एक की वह खबर ली है कि जिस जिस को लगी है वही जानता है, उधर समस्त संसार के उपकार का प्रण है तो इधर भारतवर्ष के करुणान्तक नाटक का भी हृदय विदारक दृश्य खींचते हो, क्या समझे, क्या कहे, क्या बतलाएँ देवों के देव ! आओ तुम्हीं सम-भाओ कि तुम क्या हो ? हमतो "अपूर्व दयानन्द", इतना ही कह कर चुप हो जाते हैं। हम तो एक लुच्छ अनुचर हैं—जब कुछ समझने योग्य होंगे तब हम भी अपने मनका सा एक सुन्दर चित्र खिंचकर लोगों को दिखलाएंगे और कहेंगे "यह देखो उस दयानन्द की तसवीर जो प्राचीन भारत को जगा गया—जगा गया,,

—○:○.○—

सहस्रि दयानन्द सरस्वती ।

(ने० श्रीगुप्त प्रो० पीतमलाल गुप्त, एम० एस सी०)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो जाति अथवा देश अथवा नस्ल की दशा को पहुंच जाता है, वहां परमात्मा की अपार कृपा से सुधारक उत्पन्न होते हैं। यह महात्मा आत्म परित्याग कर के अपने देश तथा जाति की दशा को उत्पन्न करते हैं, अपने जीवन को सफल करते हैं और मरने के पश्चात् आने वाली सन्तान के लिये पथ प्रदर्शक बनते हैं। अर्पि दयानन्द सरस्वती, सुहृम्मद साहब, तथा ईमा मसीह इत्यादि की गणना ऐसे ही सुधारकों में है। स्वामी दयानन्द जी अन्य सुधारकों की अपेक्षा अत्यन्त उच्च श्रेणी के सुधारक थे। उन्होंने मत-चक्र में घूमते हुये अशांत जिज्ञासुओं के लिये बतलाया कि केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान के भंडार हैं। और इस बात की जांच के लिये 'विज्ञान और तर्क' की कसौटी बतवाई। जो पुस्तकें विज्ञान और तर्क के प्रतिकूल हैं, उनको सर्वथा असत्य, और जो पुस्तकें उन के अनुकूल हैं उनको सत्य और माननीय मानना चाहिये। समस्त मतों के मान्य ग्रन्थों की परीक्षा की कसौटी पर कसने से केवल वेद ही सच्चे

सिद्ध होते हैं। स्वामी दयानन्द की शिक्षा के आधार वेद ही हैं।

स्वामी दयानन्द के समय में परमात्मा, आत्मा, और प्रकृति के विषय में लोगों के विचार ठीक नहीं थे। कोई २ मत तो नास्तिक थे। किसी ने आत्मा को कुचल २ कर मूल प्रायः कर दिया था। किसी ने आत्मा, और किसी ने प्रकृति को ही सब कुछ माना था। और किसी ने "प्रकृति निरर्थक है और आत्मा शक्ति हीन है, ऐसे सिद्धान्तों का प्रचार किया। भारतवर्ष में बात यह है कि स्वामी जी के समय से पहिले के सुधारकों ने इन मर्मों को समझा ही नथा। परन्तु स्वामीजी ने बताया कि वेद मतानुसार परमात्मा, आत्मा, और प्रकृति भिन्न २ हैं। परमात्मा सब सत्य गुण सम्पन्न निर्णकार, निर्विकार इत्यादि है। आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र और फल भोगने में परतंत्र है, कर्मों द्वारा ईश्वरीय गुण धारण करना ही इसका परम कर्तव्य है। प्रकृति एक बड़ा साधन है, जिसके ठीक उपयोग से सब मनोरथ सिद्ध हंते है।,

पाठक गण ! इस सिद्धान्त की महत्ता पर विचार कीजिये। इस सिद्धान्त ने सब मतों पर पानी फेर दिया। सांसारिक सुख और पारलौकिक सुख दोनों का एक ही साधन बतलाया। आत्मा को कुचलने के स्थान में प्रबल और कर्मवीर बनाने का धर्म सिखाया। किसी विशेष मनुष्य की उपासना न कराकर एक ही सत्यरूप परमात्मा की उपासना कर्मयोग द्वारा करने का उपदेश किया। किसी मन्दिर अथवा मसजिद में परमात्मा को क़ैद न करके तथा उनको दीन जनों से दूर न रख कर, सर्व व्यापक बतलाया और उपदेश किया कि "प्यारे भाइयो ! ईश्वरीय नियमों को शिरोधार्य समझो। वे अटल हैं। उन नियमों का अनुकरण करना पुण्य और विरोध करना पाप है। यदि आप उसकी आज्ञा पालन करेंगे तो वह आपकी सहायता करेंगे और बल और सफलता प्रदान करेंगे और यदि आप आज्ञा का उल्लंघन करेंगे तो परमात्मा आप को निर्बल बनावेगे,।

महर्षि ने हम को बतलाया कि केवल वैदिक धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो प्रत्येक जाति, प्रत्येक देश और प्रत्येक जीव के लिये प्रत्येक समय में हितकारी है। उन्होंने अन्य

संकुचित मन और हृदय वाले सुधारकों की तरह दूसरे मत वालों पर तलवार चलाने का आदेश नहीं किया, उन्हें ने किसी पुरुष को धर्म-पुस्तक पढ़ने या सुनने से वंचित नहीं रक्खा, किन्तु उनका उपदेश है कि ईश्वरीय ज्ञान अथवा वेद उसी प्रकार सबकी सम्पदा है जैसे सूर्य और वायु ।

एक और महत्वपूर्ण बात जिसका स्वामी जी ने उपदेश दिया वह वही गीता का रहस्य श्री भगवान कृष्ण के वाक्य है, "निष्काम कर्म करना ही परम धर्म और मोक्ष का साधन है,, कर्म को कर्तव्यहित करना चाहिये न कि फल प्राप्ति की इच्छा से,, इस उपदेश से लोगों को ज्ञात हुआ कि अकर्मस्यता कोई गुण नहीं किन्तु वह एक भूटा बैराग्य, कायरता और आलसी पन है जिसके आशय से सदैव दुःख भोगना पड़ेगा ।

मनुष्य सामाजिक जीव है । वह समाज बिना नहीं रह सकता है । अतः मनुष्य का परम कर्तव्य है कि वह समाज के हित में लगा रहे । समाज के हित को अपना हित और समाज के अनहित को अपना अनहित समझे । स-से मिल कर संगठन द्वारा समाज की उन्नति के लिये प्रयत्न करता रहे । समाज सेवा को सर्वोत्तम कर्म समझे । वर्तमान आर्यसमाजों तथा उसके नियमों की स्थापना इसी महान् सिद्धान्त की क्रियात्मकता है । ऋषि चाहते थे कि मनुष्य उनके इस संदेश को सुन कर संगठन में रहकर काम करना सीखें और "गुरुद्वय, के भूत का सर्वनाश करें ।

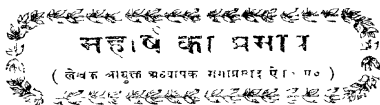
स्वामी दयानन्द कर्मयोगी थे । जो बात वह सत्य मानते थे उसकी कार्यरूप में कर दिखाते थे और ऐसा करने में वह प्रत्येक कष्ट को सहन करते थे । वह ऐसे लोगों को बहुरूपिया बताते थे जो मन में कुछ मानते हों और कर्म कुछ करते हों । ऐसा करने से आत्मघात होता है और मनुष्य का मनुष्यत्व जाता है । उनके जीवन से यह प्रत्यक्ष है कि उन्होंने अपने सिद्धान्त के प्रचार में अनेक दुःख सहे और अन्त में प्राणों का भी परित्याग किया । परन्तु आत्मा के विकृत आचरण करना असम्भव था ।

ऋषि का प्रत्येक सुधार बतलाता है कि उन का हृदय मनुष्य

राज्य के विभिन्न कुल कुल का। दुर्दिन, मरण, सुपुत्रता की रक्षापना, विधवा विवाह, अनाथों के पालन-पोषण आदि ऐसी ऐसी संस्थाएं इस विचार का प्रत्यक्ष प्रतीक हैं।

प्रायश्चित्त के अनेक कार्यों से आप सहज ही में इस परिणाम पर आबूझ सकते हैं कि महाशिव दयानन्द सरस्वती की हृदय से मन, उनका ईश्वर ब्रह्म पर गिरावट तथा उनके सर्व सिद्धान्त ऐसे हैं जो वैज्ञानिक आचार्य पर विद्यमान हैं और अत्युच्च मात्र के लिये उपयोगी हैं। यद्यपि वह ब्राह्मण थे, परन्तु वे अपने ही प्रायश्चित्त के उत्तर में हों जाते हैं तो प्रायश्चित्त को। उन प्रायश्चित्त के पवित्र जीवन के महत्त्व की समझ, प्रायश्चित्त के सर्वोत्तमों के सर्वोत्तमों। उनकी शिक्षाओं को कार्यरूप में परिणत करें। अर्थमत्तव्यता का नाश करके कर्मयोगी बनें। सब की हित की भावना हो और सब की दुःखों को अपना दुःख समझें। स्वयम् सदाधारी बनकर सब दुःख मात्र को दूर कर दें। उनके दुःखों का नाश करें। और सदा इस वाक्य पर ध्यान दें "कर्मण्येव अधिकारोऽस्ति न च फलेषु कदाचन,, ऐसा करना ही ऋषि का सच्चा आदर करना है। उसके श्रेय से उन्नत होने का यही मार्ग है। ईश्वर सहायता दे कि हम सदा श्रेयस्कर कार्यों में लगे हुये धर्म में लगे रहें। यही प्रायश्चित्त है।

—०.०.—



ऋषि दयानन्द ईसा को १९ वीं और प्रिन्स को २० वीं शताब्दी के संसार भर में सब से बड़े पुरुष थे। उनके सहत्त्व का प्रसाद यह नहीं है कि सनस्त सुशिक्षित जनता ने एक स्वर होकर ईश्वर की सानमान्यता ली है। वस्तुतः सहस्रों विद्वानों ने ऋषि दयानन्द का नाम भी नहीं मुना सर्व साधारण की तो बात ही क्या है। भारत वर्ष के विद्वानों से यद्यपि ऋषि का नाम छिपा नहीं है तथापि बहुत कम लोग ऐसे हैं जिन्होंने इन के ग्रन्थों का अवलोकन किया तथा इन के

सिद्धान्तों का मर्म जाना है। परन्तु ऋषि दयानन्द की सहता का सब से अशुभ प्रमाण उन का प्रभाव है जो आज संसार नहीं तो भारतवर्ष की प्रत्येक संस्था पर पाया जाता है। विश्वव्यापी विद्युत् के नाम तथा गुणों से बहुत कम लोग अभिन्न हैं। परन्तु जड़ पदार्थों से लेकर कीट, पतंग, पशु, पक्षी तथा मनुष्य सब ही इस के प्रभाव से प्रभावित हो रहे हैं। अस्तुतः जितनी महान शक्तियाँ हैं वे अज्ञात अवस्था में भी प्रभाव डालती हैं और ज्ञात तो यह केवल विचक्षण पुरुषों ही की होती हैं। ऋषि दयानन्द मर गये, उन के शरीर की राख हो गई। उनके आत्मा ने अन्य अवस्था प्राप्त करली, उनका सिद्धान्त तथा कार्यरूपी आत्मा विभू होकर भारत वर्ष के प्रत्येक कार्य को चलापमान कर रहा है। और न केवल भारत किन्तु समस्त संसार पर कुछ न कुछ प्रभाव डाल रहा है। ऋषि के अनुयायी, अननुयायी, मित्र, विरोधी तथा उदासीन सब ही उस के सिद्धान्त के आगे जाने या ब्रेजाने शिर झुका रहे हैं। इस से अधिक सहत्व का प्रमाण दिया नहीं जा सकता।

धार्मिक संसार की लीजिये। इस समय के प्रकृति-उपासक जगत् में भी संसार ईश्वर-हीन नहीं हो गया, अब भी धार्मिक नियम ही जगत् को चला रहे हैं। और यदि हम विचार दृष्टि से देखें तो स्वामी दयानन्द की शिक्षाने समस्त मत मतान्तरों में खलवली पैदा करदी है। एग्जिड्यू जैक्सन डेविस ने जो यह लिखा था कि आर्यसमाज रूपी भट्टी में सब मत मतान्तर भस्म हो जायेंगे। उन की यह घोषणा अक्षरशः सत्य हो रही है। इस का यह तात्पर्य नहीं है कि आर्यसमाज के सभासद अधिक हो रहे हैं किन्तु देखना प्रभाव का है। ऋषि दयानन्द की स्वर्गवासी हुये ३३ वर्ष हुये। यदि विचार करें तो मालूम होगा कि जो सिद्धान्त किसी धर्म के ३३ वर्ष पूर्व थे उन में और उस मत के आजकल के सिद्धान्तों में आकाश पाताल का भेद है। पौराणिक लोगों में शैव और शाक्त के भगड़े एक प्रसिद्ध बात थी परन्तु आज सनातन-धर्म सभा के मेटफार्म पर सब पौराणिक संयुक्त हो गये हैं। पौराणिकों की असंख्य शाखाओं का एक करना स्वामी दयानन्द का काम था। आज शैवों के त्रिपुरह से वैष्णवों की श्री नही शमांती, आज सनातन-धर्म के प्रचारक मान गये हैं कि शिव और विष्णु दो नहीं। ऋषि

दयानन्द ने पुराणों का विरोध किया। पौराणिकों की बुरा लगा। और उनके प्रतिपादन के लिये सनातनधर्म सभाएँ खोलीं। बहुत विष उगला गया परन्तु परिष्कार क्या हुआ ?—स्वामी के लगाये दोषों की कोई दूर न कर सका। सनातनधर्म सभा के प्रचारक स्वामी दयानन्द को अपने “सत्यार्थविवेक,” में मानना तड़ा कि “पुराण के भी बहुत ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं और बहुत स्थानों में प्रक्षिप्त शंश भी आगये हैं,, । (देखो पृ० २९०) । अभी संसदन में शास्त्रार्थ करते हुये स्वामी केशवानन्द ने सनातनधर्म सभा की ओर से पुराण मानने से निषेध किया। ऋषिकुल के श्री पं० गिरिधर शर्मा और श्री० पं० इन्द्र जीमें जो शास्त्रार्थ हुआ और जिस में आर्यसमाज की ओर से पुराणों के प्रमाणा देने पर आग्रह किया गया उस पर पौराणिकों की ओर से कितनी हिचा-किची और संकोच हुआ। यह सब क्यों ? केवल इस लिये कि ऋषि दयानन्द ने इन के आत्मा पर अंकित कर दिया है कि पुराण दोष युक्त हैं। इस से भी विचित्र बात यह है कि कई महानुभाव पुराणों के छापने में उन में से वह श्लोक निकाल डालने का प्रयत्न कर रहे हैं जिन की ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश आदि में उद्धृत किया है। इस से शापद् उनका प्रयोजन इतना ही है कि आर्यसमाज के साथ शास्त्रार्थ करते हुये यह कह सकें कि ऋषि दयानन्द ने झूठ झूठ इन श्लोकों को लिखा दिया है। परन्तु वस्तुतः इस से ऋषि का निजय ही सिद्ध होता है क्योंकि उस के दोष युक्त बताये हुये श्लोकों की लोग अपने धर्म ग्रन्थों में रखना भी नहीं चाहते। इस से अधिक ऋषि की और क्या इच्छा थी ? वह भी जो यही चाहता था कि पवित्र ग्रन्थों से अपवित्र बातें निकाल कर शुद्ध करलो। बहुत से लोग पुराणों की घटनाओं की सच्ची न मान कर केवल उनको आलङ्कारिक सिद्ध करने का उद्योग करते हैं। एक पौराणिक महाशय ने मुझ से कहा कि विष्णु क्षीरसागर में नहीं सोते और न लक्ष्मी उन के पैर दाबती हैं। यह केवल आलङ्कार है। मैंने कहा बहुत अच्छा ! आप इन सब बातों को आलङ्कार मानिये। हमारा भगड़ा निबट गया। यही हम कहते हैं कि इन बातों की सच्ची कथायें मानना भूल है पौराणिक धर्म का सिद्धान्त था कि वेद मन्त्र शूद्र के आगे न पढ़ो। यदि शूद्र श्रुति की सुनले तो उस के कान में

सीसा पिघला कर डाल दी। परन्तु आज सनातनधर्म के प्लैटफार्म पर वेद मन्त्र पड़े जाते हैं। यह सब ऋषि की शिक्षा का फल है। पौराणिक लोग नान के लिये जन्म से वर्षा व्यवस्था मानते हैं। परन्तु व्यवहार गुणकमानुसार ही होता है। आर्यसमाज ने सर्वों की सुख की लोभ बढ़े बिगड़े परन्तु आज सनातन सभार्यें 'गङ्गा गङ्गातियोद्भवात्, आदि से स्वयम् शुद्ध कर रहीं हैं। क्या एक हजार वर्ष से लोगों को यह श्लोक याद नहीं रहा था ? फिर क्यों ऋषि से पहले लोगों ने तु-सत्मानों की शुद्धि नहीं की। बाल विधवा विवाह के प्रचार कितने सनातन धर्म हैं। श्रोत्रिय शंकरलाल आर्यसामाजिक न थे। पं० राधावल्लभ गोस्वामी भी सामाजिक नहीं हैं। 'अष्ट वर्षा भवेत्सौरी, वाला श्लोक और उस के पूर्ववत् अनुयायी अथ सनातन धर्म सनातन प्लैटफार्म से लुप्त होगये; क्यों ? केवल ऋषि की शिक्षा के प्रभाव से। मूर्तिपूजा भी अथ वह नहीं रही जो ऋषि के प्रचार करने से पूर्व थी। नये नये प्रमाण गढ़े जाते हैं। शब्दार्थ में खीना तानी हो रही है। पंडित लोग धरारा रहे हैं कि किस प्रकार प्रतिमा पूजन रूपी मिलते हुने दुर्ग की रक्षा की जाय।

मुसलमानों के सिद्धान्तों में जो परिवर्तन हुए हैं उसे वही जानते हैं जिन्होंने कभी शास्त्रार्थ सुनने का अवसर प्राप्त किया हो। जबलपुर के शास्त्रार्थ में मौ० सनातना साहेब हदीसों से इन्कार कर गये। एक समय एक लौलवी ने इलहाम की परिभाषा जही की जो आर्यसमाज करता है। स्वर्ग और नरक को केवल "अवस्था, बदलाया। जिद्दीय को अरिष्टता न मान कर केवल ईश्वर की शक्ति बसलाया। क्या ऐसी बात ऋषि से पूर्व भी सुनि से आती थी। यहि से बतलाया कि ईश्वरीय ज्ञान में पदार्थ विद्या भी ऐसी बतलिते। प्रथम लोग खीचातानी कर के पदार्थ विद्या सिद्ध कर रहे हैं यही हाल ईसाइयों का है। बरतुनः जिघा देखो लोग ऋषि के सिद्धान्तों को मानते चले जा रहे हैं। केवल स्पष्ट रूप से ऋषि की धनद्वारा नहीं देते। यह नहीं कर्ते कि हय ऋषि के अनुयायी हैं पर इस से क्या ? ऋषि का दृष्टेय लोग की अपन अनुयायी बनाना न था किन्तु सदाई सिखसाना ! और यह रुबाई वह भले प्रकार सिखला रहा है।

वस्तुतः ऋषि का उद्देश पूरा हो रहा है केवल नाम का है। ऋषि के मौलिक सिद्धान्तों में से एक भी नहीं जिस को किसी न किसी रूप से लोगों ने नहीं ग्रहण किया।

शिक्षा के विषय में तो ऋषि दयानन्द स्वतः प्रमाण ही होगये हैं। उन के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में प्रत्येक गितक के हृदय में घर कर लिया है। गुणकुल की देखा देखी ऋषिकुल और आचार्यकुल खुल जाना तो एक साधारण बात है। पाश्चात्य विद्वान भी मान गये हैं कि ऋकुल प्रणाली से अच्छी कोई गिता प्रणाली नहीं।

भारतवर्षीय धार्मिक सभाओं और समितियों के जन्मदाता तो ऋषि दयानन्द ही थे। क्योंकि सनातनधर्म सभा, अंजमन इशायत इस्लाम तथा अन्य कई सभायें स्वामी दयानन्द का विरोध करने के लिये ही खोली गईं थीं। परन्तु विरोध करते ही यह सब ऋषि के विचारों को शनैः ग्रहण करती जा रही हैं। जिस प्रकार भूमि में दबा हुआ बीज फूल कर इधर उधर की भूमि को तडका देता है परन्तु उस का अंकुर दिखाई नहीं देता वही प्रकार ऋषि के सिद्धांत रूपी बीज ने लोगों की हृदय रूपी भूमिदा तडका दी है। इधर उधर खलबली पड़ रही है। परिवर्तन की आवश्यकता सर्वत्र अनुभूत हो रही है। परन्तु जब इस बीज से अद्भुत निकलेंगे उस समय लोगों को ऋषि दयानन्द की विचित्र शक्ति का ज्ञान होगा। जो लोग ऋषि के मिशन से निराश हो गये हैं उन्हें संसार की अद्भुत गतियों पर विचार करना चाहिये।

ऋषि दयानन्द और वर्ण व्यवस्था

(श्री मनीषी नारायण प्रसाद जी, मुख्य अध्यापक, गुरुकुल रुन्दावन)



न्दुस्तान को छोड़कर कोई देश, हिन्दू जाति को छोड़ कर कोई सभ्य जाति पृथिवी तल पर नहीं है जो जन्म से जाति (वर्ण) मानती हो। जाति के सम्बन्ध में दी बड़ी भूँ हिन्दू जाति में प्रचलित है एक जन्म से जाति का मानना दूसर इस प्रकार की कल्पित जातियों में

नीच ऊँव का भेद करना, जाति (वर्ण) का वास्तविक रूप क्या है ? इसको मनु महाराज भली भाँति प्रकट करते हैं। मनुस्मृति में ब्राह्मणादि वर्णों के जो कर्म बतलाये गये हैं उन पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि वे कर्म दो प्रकार के कर्तव्यों का समुदाय है। एक पारलौकिक कर्म (दीनी) दूसरे लौकिक कर्म (दुनियवी)। नीचे का षित्र प्रत्येक वर्ण के कर्म उपयुक्त विभाग के साथ प्रकट करेगा:—

वर्ण	परतोक सम्बन्धी कर्म	लोक सम्बन्धी कर्म
(१) ब्राह्मण	(१) पढ़ना, (२) यज्ञ करना (३) दान देना	(१) पढ़ाना (२) यज्ञ कराना (३) दान लेना
(२) क्षत्री	”	प्रज, की रक्षा करनाआदि
(३) वैश्य	”	(१) कृषि (२) व्यापार (३) पशु-रक्षा
(४) शूद्र	का एक ही कर्म सेवा बतलाया गया है ।	

उपयुक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कर्मविभाग से स्पष्ट है कि परलोक सम्बन्धी कर्म तीनों वर्णों के एक ही है। लोक सम्बन्धी कर्मों में भेद है। लोक सम्बन्धी कर्म जीविका उपलब्ध करने के लिये हैं। ब्राह्मण को पढ़ाकर, यज्ञ कराके, दान लेकर, जीविका उपलब्ध करनी चाहिये। क्षत्रिय को प्रजा के रक्षादि और वैश्य को कृषि आदि से धनोपाजन करना चाहिये। इस प्रकार वर्णभेद जीविका उपलब्ध करने सम्बन्धी कर्मों में है। जीविका किस आश्रम में उपलब्ध की जाती है? केवल गृहस्थ आश्रम में। प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह न केवल अपने लिये किन्तु शेष तीनों आश्रम वाले पुरुषों के लिये भी जीविका पैदा करे। तो प्रकट होगया कि वर्ण व्यवस्था का सम्बन्ध केवल गृहस्थ आश्रम से है इसी लिये ब्रह्मचर्य्य, वानप्रस्थ और सन्यस्य आश्रमों में कोई वर्ण भेद नहीं होता। वस व्यवस्था श्रम भेद Division of labour के नियमों पर अवलम्बित है और एक Scientific नियम है। जब वर्ण व्यवस्था चार आश्रमों में से केवल बीस के एक आश्रम (गृहस्थ) से सम्बन्धित है तो फिर उसे जन्म पर निर्भर ठहराना कितनी बड़ी

भूज है। ऋषि दयानन्द ने वरुण व्यवस्था को धेद शाखानुसार गुण कर्म पर निर्भर बतलाकर हिन्दू जाति के साथ बड़ा उपकार किया है जाति हतिभागिनी होगी यदि इससे लाभ न उठाये। दूसरी बात वरुणों में शिवाई ऊंचाई की है। वस्तुओं में भेद दो प्रकार का होता है Kind (श्रेणी) और उसके अन्तर्गत Degrees (दरजों) का, जिन वस्तुओं में (Kind) श्रेणी का भेद होता है उनमें दरजों का भेद बुद्धिमान नहीं दूढ़ सकते हा एक श्रेणी की वस्तुओं में दरजों का भेद हुआ करता है। कोई यह नहीं पूछ सकता कि भेज अच्छी है या दावात, क्योंकि उनमें Kind का भेद है। हां एक श्रेणी की वस्तु भेज या दावात में यह प्रश्न हो सकता है कि कतिपय भेजों में कौन सबसे अधिक अच्छी और किसका नम्बर किसके पीछे है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यों में जीविका सम्बन्धी कर्मों में भेद के लिहाज से श्रेणी का भेद है इस लिये उनमें यह प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि ब्राह्मण अच्छा है या क्षत्री, हा ब्राह्मण अथवा क्षत्री अथवा वैश्य में से प्रत्येक एक श्रेणी का समुदाय है उनमें दरजों का भेद हो सकता है अर्थात् कतिपय ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों में यह प्रश्न हो सकता है कि कौन ब्राह्मण किस ब्राह्मण से अथवा कौन क्षत्री किस क्षत्री से अथवा कौन वैश्य किस वैश्य से अच्छा है।

ऐसी दशा में हिन्दू जाति में प्रचलित विचार कि ब्राह्मण क्षत्री से ऊंचा और क्षत्री वैश्य से; सर्वथा अनुचित अतंगत और परस्पर विरोध बढ़ाने वाली प्रथा है इस लिये इस दुर्विचार को भी जाति से निकालना चाहिये अन्यथा यह सम्भव नहीं हो सकता कि जाति से वैर विरोध दूर होकर उन का स्थान प्रेम को दिया जा सके। यह दिन बड़े सौभाग्य का होगा जब जाति (वर्ण) के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोनों भूलें सुधार कर ऋषि दयानन्द के आदेशानुसार गुण कर्मानुसार वर्णों की व्यवस्था होगी। उसी समय हिन्दू (आर्य्य) जाति, जाति शब्द के सब्ध अर्थों में प्रयुक्त भी हो सकेगी।

स्वामी दयानन्द की प्रकृतता का रहस्य

(लेख : श्रीमत् ए० शिवनाथयण मुकुल, बी० ए०, ऐन ऐन० बी)



प्रेजी जिज्ञासा प्राप्त सज्जनों की कोटि में प्रायः ऐसे बहुत से जठरुभाव मितते हैं जिनका विचार यह है कि यदि स्वामी दयानन्द अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त होते तो उन्हें अपने बहुत से विचारों में परिवर्तन करना होता। यदि ऐसा विचार ठीक समय प्रकट किया जाता जब

स्वामी जी अपनी श्रीजन्मिनी, जगतमयी वारी से अपनी प्रभावशालिनी लेखनी से, धूर्त रचित, बालू पर खड़े हुए अजेय दुर्गों पर अनवरत बाण चला रहे थे, तो सम्भवतः इसमें कुछ मत्तय की फलक आती परन्तु प्रसन्नता की बात है कि समय स्वयं प्रकट कर रहा है कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त सज्जनों का यह विचार नितान्त भ्रम मात्र है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक मनुष्य जिनी ही अधिक भाषाएं जानता ही रतना ही उसकी अभिव्यक्ति अधिक होगा और हम यह भी स्वीकार करने के लिए तैयार हैं कि यदि स्वामी जी अंग्रेजी जानते होते तो वे अवश्य अंग्रेजी वैज्ञानिकों के मतों की दृष्टि से देख कर उन पर विशेष रूप से समालोचना कर सकते। परन्तु हम यह कदापि मानने के लिए तैयार नहीं कि उनके सिद्धान्त-या यों कहिये कि वैदिक सिद्धान्त अंग्रेजी विज्ञान ने झिलझिल असत्य ठहरा दिये हैं। इसे आप चाहे गर्व कहें, परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि विज्ञान ने एक भी वैदिक सिद्धान्त को इस ५० वर्ष के भीतर विज्ञान-विरुद्ध प्रकाशित न कर पाया। मैंने असीन आश्चर्य और प्रसन्नता के साथ ८ सितम्बर सन् १९१६ के पापोनियर को पढ़ा। दूसरे पृष्ठ पर वैज्ञानिक उन्नतिया (Scientific development) शीर्षक एक लेख एक अंग्रेज विद्वान का लिखा हुआ प्रकाशित हुआ है। मेरा विचार है मैं इस लेख का अनुवाद आपके सम्मुख रखूँ परन्तु इस लेख में केवल दो एक बातों का उल्लेख करूँगा।

एक स्थल पर लिखा है कि "एक समय था जब वैज्ञानिकों का यह मत था कि सूर्य की उष्णता शनैः २ घट रही है जैसे धीरे २ कीई जलमयी वस्तु ढक्के में ढलती है परन्तु अब सिद्धान्त पर हँसी आती है, ।

थोड़ी दूर आगे चल कर प्रशंसित लेखक ने लिखा है कि "चाहै हम उसे जिस नाम से संबोधित करें परन्तु हमें एक शक्ति अवश्य माननी पड़ेगी जो परिमाणुओं को मिलाने या प्रथक करने की सामर्थ्य रखती है और जो परिमाणुओं से भिन्न और चैतन्य गुण वाली है, ।

यह हैं विचार इस बीसवीं शताब्दि में उन वैज्ञानिकों के जिनकी चरण रज के उपासक स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों को विज्ञान विरुद्ध बतलाते हैं । ज्यों २ समय जीवित जाता है स्वामी के सिद्धान्त ठीक दिखलाई पड़ते हैं । फिर भना यह कैसे सत्य माना जा सकता है कि यदि स्वामी दयानन्द इस वैज्ञानिक समय में जीवित होते तो उन्हें अपने विचारों में परिवर्तन करना पड़ता । मैं तो यह कहता हूँ कि यदि वे अंग्रेजी जानते होते तो शायद उन्हें अपने विचारों में परिवर्तन करना पड़ता । आधुनिक सभा तथा कान्फ़ेसों की प्रस्ताव-सूचियों को उठाकर पढ़ जाइये और बतलाइये वह कौनसा विषय है जो स्वामी दयानन्द के विचारों के अनुकूल नहीं है । आप साहित्य सम्मेलनों सोशल कान्फ़ेसों की कार्यवाही पढ़ जाइये और बतलाइये कि निज भाषा का प्रचार क्या दयानन्द ५० वर्ष पूर्व ही नहीं बतला गए हैं । स्वामी ने शास्त्रार्थ किए हिन्दी भाषा में, पुस्तकें लिखी तो अपनी देश भाषा में, समाजों के लिए नियम बना गये तो वे भी यह कि नागरी भाषा में ही सब कार्यवाही हो । आज सोशलकान्फ़ेस क्या कर रही हैं । क्या सोशल कान्फ़ेस बाल-बिवाह का पक्षपात कर रही है ? क्या सोशल कान्फ़ेस शूद्रों को त्याग्य मान रही है ? क्या सोशल कान्फ़ेस जाति पाति का भेद करने का परामर्श दे रही है ? सज्जनों जो बातें ऋषि दयानन्द पचास वर्ष पूर्व कह रहा था वह आज सत्य प्रमाणित हो रही हैं । मैंने बहुत से सुशिक्षित सज्जनों को यह कहने सुना है कि अजी हवन से क्या फ़ायदा है बस ॥ वायु की शुद्धि से तात्पर्य है आज पश्चिमी विज्ञान वाले गला फाड़ फाड़ कर कह रहे हैं कि हवन में जो पदार्थ डाले जाते हैं वे सभी प्रायः रोग नाशक

(germicide) हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को हास्यजनक दृष्टि से देखते हुये अंग्रेजी शिक्षा के विद्वान प्रायः कहते थे कि यह सता सता से छुड़ा कर गुरुकुल में रख कर वृशी पैदा कर रहे हैं। बहुत अच्छा ! मगर लाईट हाईड्रिजमहोदय भारत से चलते समय महात्मा भुशी-राम जी से कहते हैं कि भारतवासियों को शिक्षा देशीय भाषा द्वारा दी जानी चाहिये कौन जानता था कि महात्मा रोकाने का गुरुमंत्र एक शताब्दी के पश्चात् उन के शिष्य छोड़ना उचित समझेंगे।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि स्वामी दयानन्द जी महाराज के अंग्रेजी न जानने से कोई अधूरा पन, कोई अदूरदर्शिता उनके विचारों में प्रमाणित नहीं हो सकती। जिन महानुभावों ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके देश का उपकार करना चाहा उनके कार्य से स्वामी दयानन्द का कार्य कहीं गुणा अधिक तथा चिरस्थायी है। और फिर क्या आपने बहुत से अंग्रेज विद्वानों को यह कहते नहीं सुना कि भारत वासियों में जो जाग्रति है वह अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव है स्वामी दयानन्द का कार्य, स्वामी दयानन्द का जीवन इन आक्षेपों का बहुत अच्छा उत्तर है। मेरा तो विचार यह है कि स्वामी दयानन्द के जीवन से सब से उत्तम शिक्षा जो हमें मिल सकती है वह यह कि अपनी भाषा जानता हुआ भां विदेशी वायु के फोकों से बचा हुआ भी, विदेश की ओर मुहं न करने वाला भी, आधुनिक उपाधियों न होने पर भी एक भारतवासी चाहे तो बहुत कुछ कर सकता है। मैं कहता हूँ हमारे लिए यह क्या कम अभिमान की बात है कि स्वामी दयानन्द देशी भाषा, और केवल देशी भाषा जानते हुए भी हमारा इतना उपकार कर गए कि जिस को आने वाली सन्तानें कभी भूल नहीं सकतीं आइये आतृगण ! दीपावली आगई। ऐसे महान् ऋषि के जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण करें। जो लोग देशी बातों को बुरा कह कर परिषदीय सभी बातों के अनुकरण करने वाले हैं वे देखलें कि भारत में उत्पन्न हुआ, भारत के जल वायु से पालित पोषित, भारत की ही भाषाओं को जानने वाला एक अज्ञात स्थान का रहने वाला, कोई उपाधि न रखने वाला, यदि चाहे तो संसार में अपनी यशपताका फैलाता हुआ, अपना नाम चिरस्थायी कर सकता है। भगवन हमें शक्ति

दीजिये कि हम में से कोई दो चार दयानन्द, गुरुदत्त पैदा होकर संसार का उपकार करें। माता, भगवती वसुधरा क्या तुम्हारी कोख खाली है ?

—○.○.○—

निवेदन ।

(रविवर श्री० बा० मैथिलीशरण जी गुप्त)

भावुक ! भरो भाव-रत्नों से
 भाषा का भाण्डार भरो ।
 देश न करो देश वासी गण ।
 अपनी उन्नति आप करो ॥
 एक हृदय मे एक ईश का
 धरो विविध विध ध्यान धरो ।
 शिष्य-प्रेमगत रीस रोम से
 गद्गद निर्भर मद्गुण करो ॥
 मन से वाली मे कर्माँ मे
 आधि-व्याधि-उपाधि हरो ।
 अन्न व आत्मा के अधिकारी
 किसी विग्र-भय से न हरो ॥
 विश्वरो अपने पैरों के बल
 भुज-बल से भव-सिन्धु तरो ।
 जियो कर्म के लिए जगत में
 और धर्म के लिए सरो ॥

—○.○.○—



श्रीगुरु प० रत्नाकर शास्त्री, एम० ए०, एल एल० बी०, विद्यार्थी

ऋषि ने मानव जाति के स्त्री भाग को पुरुष भाग के बराबर आसन दिय तथा उनकी सच्ची प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार किया और उनपर जो २ अत्याचार किये जाते हैं उनका निवारण किया। पूर्व पुरुषाश्रोंके पवित्र जीवनो को स्वार्थियों ने कलङ्कित किया हुआ था उनके जीवनोको आदर्श जीवन सिद्ध किया। स्वामी जी ने अपने पवित्र जीवन से उदाहरणतया संसार को दिखा दिया कि ईश्वर के सच्चे भक्त, वेदों के सच्चे अनुगामी ऋषि मुनि कैसे हुआ करते थे। उन्होंने गुरुकुलशिक्षा प्रणाली का उपदेश देकर हमको बतलादिया कि यदि पूर्वकाल का आर्य्यगौरव फिर किसी प्रकार से प्राप्त हो सकता है तो वह गुरुकुल शिक्षाप्रणाली द्वारा वैदिक शिक्षा से ही हो सकता है। अन्यथा चाहे वह आज ही चाहे कल सामाजिक संगठन की वह नीम डाली है कि यदि उसके सभासद् निःस्वार्थ भाव से कार्य करें तो वैदिक धर्म का डूना संसारभर में बज सकता है, संसार को आर्य्य जाति के सन्मुख अपना सिर झुकाना पड़े क्योंकि इस संगठन को उस सार्वभौमिक, सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक ईश्वरी ज्ञान के आधार पर बांधा है जिससे उत्तम संसार में कुछ हा ही नहीं सकता। वेद ने जो मानव जाति के समय का विभाग चारों आश्रमों में किया है तथा वर्णव्यवस्था द्वारा कार्यविभाग हो सकता है? इन विभागों के अनुसार जिस आर्य्य जाति का संगठन हो उस की उन्नति में संदेह ही क्या हो सकता है। मनुष्य जाति ही नहीं किंतु अन्य जीवधारिजातियां भी स्वामी की दया का पात्र है, उन्होंने जीवमात्रको पर दया करने का उपदेश हम को दिया है, लोग यज्ञ में पशुघात कर के ढोंगके साथ मांस भक्षण करते थे उन के सिद्धान्त की पील खोल कर पशुओं पर असीम दया दिखाई है। पाखण्डों तथा मतमतान्तरों की निर्मूल सिद्ध कर एक सच्चे वैदिक धर्म की स्थापना कर आर्य्य जाति को प्रेम सूत्र में बद्ध होने का अवसर देना भी उन की दयाका प्रमाण है। भारत

में किसी न किसी रूप में जो जागृति दिखाई दे रही है वह उन की ही असीम दया और असीम निःस्वार्थ परोपकार का स्पष्ट परिणाम है। हे दयालो ! स्वामिन् ! हम कहां तक आप की दयानुता का वर्णन करें आप का प्रत्येक उपदेश, प्रत्येक कार्य तथा प्रत्येक अङ्क दया से परिपूर्ण है। आप की दयानुता का चित्र खीचना हमारी शक्ति के बाहर है जिन पर कि आपने दया की है। कहीं कार्य भी अपने कर्ता के अतली स्वरूप को जान सकता है। कहां तक कहें आप यहा तक दयापूर्ण हैं कि आज दिवाली से संसार यात्रा समाप्त करते हुये भी आपने जो उपदेश इन वाक्यों में हम को दिया है कि "प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो,, उस से बढ़ कर क्या हो सकती है ? यह वाक्य हमारे सारे संदेहों को मिटाने वाला है। यह दिन सदा आप की दया का स्मरण कराता रहेगा। भगवन् ! आप सचमुच दयापूर्ण थे।

—○:○:○—

महर्षि दयानन्द का उपकार ।

(भीयत कर्ण कवि गी)

जिसने फैला हुआ अवैदिक जाल हटाया,
खोया भ्रम, तम आर्यधर्म ही शुभ बतलाया ।
मत वादी जिस से न विजय कोई भी पाया,
जिसने सब का युक्ति वाद से, पत्त गिराया ।
कवि कर्ण प्रेम के साथ उस दयानन्द ऋषि राज के,
गुण गाओ, बनकर वेग ही सेवक आर्यसमाज के ॥ १ ॥
जिस ने देशोद्धार किया, शुभ नाम कमाया,
खोया हित का बीज, अहित को मार भगाया ।
रखना जिसने मेल मिलाप सप्रेम सिखाया,
धील सभी का भला, काम कर खूब दिखाया ।
कवि कर्ण कभी भूलो न उस दयानन्द देवेश को ।
फैला दो अब सर्वत्र ही उसके शुभ आदेश को ॥ २ ॥

जिम पर हमने खूब झूट-पतथर बरसाये,
 अज्ञ दशा में परख ही न जिसको हम पाये ।
 जिस ने तो भी हमें प्रेम का पाठ पढ़ाया;
 शुभि साहित्य प्रदान किया, निज मान्य बढ़ाया ।
 कवि कर्ष अधिश उतसाह से उस नरेन्द्र पर रीकिए,
 वह अमर हुआ, उसकी लभी, मित्र से भुला न दीजिए ॥३॥
 हमे दयानन्दर्षि जो न उपदेश सुनाने;
 जो वह, हिन के साथ, चेत हम को न कागते ।
 जो वह कर वेदार्थ न वेदिक तत्व सिखाते,
 तो हम अपने मे न आज वेदिकता पाते ।
 कविकर्ष उन्होंने सत्य का, पत्र सदा ही तो लिया ।
 अन्त समय लों जो काम भी किया भसा ही तो किया ॥ ४ ॥

—○'○:○—

ऋषि दयानन्द का गौरव ।

(श्री० प० भीमसेन शर्मा शस्त्री)

महा पुरुष, अपने उच्च गुणों के कारण स्वपक्ष में अनन्य सा-
 जो धारण गौरव स्थापित करते चले आए हैं, उन महा पुरुषों
 में ऋषि दयानन्द की गणना करना सर्वथा समुचित है ।

स्वामी जी की जीवन लीला हमें शिक्षा देती है कि बिना किसी
 भेद भाव के देशोद्धार और धर्म प्रचार को अपना लक्ष्य बनाओ ।

सच पूछो तो इन दो बातों में वे बहुत से पूर्वकालीन आचार्यों
 से बढ़ गये हैं, यह अत्युक्ति नहीं किन्तु यथार्थ है । अथवा यों कहना
 चाहिये कि इन दोनों बातों में वैसी बहुतसे पूर्वोचार्यों की मति गति
 हुई ही नहीं । इस बात को साययिक व्यवस्था स्पष्ट बतला रही है ।

अपनी सद्युक्ति और विचित्र बुद्धिमत्ता से जो परिरक्षित मार्ग उ-

न्होंने प्राणिसात्र को बताया है वैसे जायद किसी ने ही बताया ही। हिन्दू जाति (आर्य जाति) से उनका घनिष्ठ संबन्ध रहा है। इस लिये आर्य जाति यदि ब्रिचार दृष्टि से काम लगी तो उसे मानना पड़ेगा कि यह सनातन धर्मियों में यन् क्रिश्चियन् ज्योति और जाति जो कुछ दिखाई देती है उसकी तरह मे ऋषि दयानन्द का तपो जल भी काम कर रहा है।

संगठन शक्ति के लो वे परमाचार्य थे परन्तु उनका सिद्धान्त था कि "धर्म एव हतो हन्ति धर्मा रक्षति रक्षितः", अर्थात् चाहे व्यक्ति हो या समिष्टि यदि उनमें धर्म है तो वही धर्म भाव उसका रक्षक होगा। यदि धर्म का अनादर किया गया तो वही नाशक होगा।

दीपावली के दिवस उनके अन्तरात्मा ने स्वर्ग की राह बड़ी प्रसन्नता पूर्वक ली है इसका कोई दुःख नहीं परन्तु उनकी संस्थापित आर्यसमाज के कुछेक लोग प्रायः ब्रिचक से काम नहीं लेते यही दुःख है। ऐसी मेरी बुद्धि है—मैं समझता हूँ वह भ्रमात्मिका नहीं है। आचार्य के गौरव की—आचार्य के सिद्धान्तों की रक्षा का भार उनके परवर्तियों यो य व्यक्तियों पर हुआ करता है वैसे योग्य व्यक्तियाँ स्वतः भी उत्पन्न होती हैं और बनाई भी जा सकती है।

हमें आशा रखनी चाहिये कि जैसे आर्यसमाज में विद्वत्ता बढ़ती जायगी वैसे ऋषि दयानन्द का गौरव प्रकटित हो जायगा।

-----:o:-----

➤ महर्षेः प्रशस्तिः ➤

(श्रीमुक्त ब्रह्मचारी द्विजेन्द्र जी गुरुकुल - ८८ १११)

श्रीमन् यशो महर्षे भवता सदैव गेयम् ।

मुनिनोपदिष्टमसृतं—सुहृदा मुदैव पेयम् ॥१॥

नितरां मुदां विधानं, कमलासना निधानं, •

दन्ति सद्गिरां प्रधानं, शुभशिक्षणं न हेयम् ॥२॥

याऽभदमुष्यरीतिः क्रियता हि सैवनीतिः ।

नंदात्ययेऽपि भीति—स्फुरणं न तत्र धेयम् ॥३॥

दययातुलं तिमिस्त्रं, दक्षितं दिशाम जस्त्रं ।

सहसाप्यलं सहस्रं किमु भास्वतां प्रमेयम् ॥४॥

रम्यायदीय शक्ति-निर्गमागमानु रक्तिः ।

स्वच्छन्द देश भक्ति-विमलश्च भागधेयम् ॥५॥

तीरेस वेद सिन्धोः परमेश्वरैक बन्धुः ।

सं थाय मस्य सन्धः कृतवान् न कि विधेयम् ॥६॥

सारस्वतं तपस्वी-श्रुति विन्महामनस्वी ।

रसयन् रसं यशस्वी-विततार योऽप्रमेयम् ॥७॥

प्रभुरस्तु कोविशा उं-गातु सुकीर्तिं जालं-

बं धोऽस्तिमेतुना ं-किकिमदान्नगेयम् ॥८॥

धर्ममती निधाय-प्रभुमग्रं विधाय ।

कर्माखिलं विहाय-श्रौतं सदाविधेयम् ॥९॥

-----:०:-----



यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त देवेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥ (भगवद्गीता)

अर्थात् जिस २ प्रकार श्रेष्ठ पुरुष आचरण करते हैं उन ही प्रकार अन्य लोग भी उनका अनुकरण करते हैं कि कतिपय शान्तिमय तथा प्रशस्त श्रमियों से वृत्त होकर अपने को कृत कृत्य माने ।

मानसिक जागृति ।

शिवरात्रि का पर्व है, शैव कुलोत्पन्न बालक मूत्र शर अपने पिता की आज्ञानुसार प्रती बना शिव के मन्दिर में अन्य उपवासियों के व्रत विरुद्ध सो जाने पर भी जाग रहा है । यह देखता है कि वही शिव की प्रतिमा जिसको लोग ईश्वर माने हुवे थे एक सुदृग्जन्तु (मूषिका) से तिरस्कृत की जा रही है । मन मूर्ति के प्रति शक्ति होता है, पिता की आज्ञाता है शङ्का को प्रस्तुत करता है, समाधान नहीं होता, अब दयानन्द शक्ति होकर प्रतिमा

पूजन और वन एक साथ भी नहीं कर सकता वर जाकर कुछ भोजन करके लौ जाता है और इसके बाद पठन पाठन में लग जाता है।

वस्तुन जागने वाले ही और उन में भी वह जिनमें मानसिक तात्पर्य हो, वस्तु का यथार्थ ध्यान कर सकते हैं, असह्य मनुष्य मित्य प्रति वस्तुओं को ऊपर से गिरते देखते हैं, प्रत्येक भागनपाकी भोजन करते समय बटलोई के टकन को आप से उठता हुआ देखता है और कितने मन्दिरोँ में जाने वाले कभी न कभी यह दृश्य नहीं देखते कि चूड़ा कुत्ता आदि पुद्गल जन्तु मूर्तियाँ को तिरस्कार करते हैं परन्तु अपनी मानसिक आर्पणता के प्रताप से केवल न्यूटन (Newton) प्रथमशर एक सेव के गिरने से भूमि आकर्षण नियम (Law of Gravitation) को विचार निकालना है। कबल जॉन वाट्स (John Watts) बटलोई के टकन को आप से उठता हुआ देख वाष्पयान (Steam-engine) का आविष्कार करता है, और केवल हमारा बालक मूलशर शिव-प्रतिमा को एक मूर्तिका से निरन्कृत देख मूर्ति पूजा में शक्ति होता है और सभे महादेव की शोच में तत्पर होकर अपने और उत्तर के भाग्य जीवन की आधार शिला का स्थापन करता है।

पाठको ! आइये हम इन महानुभाव से मानसिक जगृति का पाठ सीखें, प्रयत्न करें तब ही हमारा और हमारे देश का कल्याण हो सकता है।

दृढ़ संकल्प ।

उपरोक्त घटना के दो वर्ष पश्चात् हमारे शर की छोटी बहन की मृत्यु का समय आता है, परिवार के लोग शाकानुर होकर रोते हैं परन्तु हमारे शर अपने स्वभावानुकूल मृत्यु के विचित्र दृश्य को देख कर विचार सागर में मग्न हो स्तब्ध हो जाते हैं। कुछ काल पश्चात् आचा की मृत्यु हमारे शर को और भी विरक्त कर देती है, और अब वह मृत्यु पर विजय पाने का दृढ़ संकल्प करते हैं। एतदर्थ और विधा की प्रप्ति के लिये वह घर छोड़ना चाहते हैं। किन्तु माता पिता उन्हें विवह पाश में बाँध कर घर ही रखना चाहते हैं। परन्तु दृढ़ संकल्प के सामने कौन से बन्धन टूट सकते हैं। हमारे जी वर को छोड़ ही देते हैं। आर शूद्र चेतन ब्रह्मचारी बनते हैं और एक वार पिता के हाथ ब्राजने पर भी फिर वह आगे दृश्य सोता के अधिहार से निकल जाते हैं। क्या न हो (Where there is a will there is the way) अर्थात् दृढ़ संकल्प हीना चाहिये बड़ों से बड़ी अडिना या हानि दृश्य भी मार्ग साक हो जाता है। जिन प्रकार महात्मा बुद्ध को उन का राज्य और महात्मा शर को उनकी मिय माता उन के दृढ़ संकल्प से विचलित न कर सकी उस ही प्रकार हमारे मूल शर को भी दृढ़ संकल्प हीने दृश्य कौन डिला सकता था ? कोई नहीं। कुछ बाल कोई अपने दृढ़ संकल्प के प्रताप से शूद्र चेतन ब्रह्मचारी जिन को गृहस्थी बनना था दीक्षित होकर स्वामी दयानन्द सस्वती बन जाते हैं और तृप्त योग की जिज्ञासा से नाना प्रकार के कष्ट सहते दृश्य भ्रमण करते फिरते हैं। अहा ! ब्रह्म जिज्ञासा और दृढ़ संकल्प ।

हम में से कितने केवल व्यर्थ लज्जा शका भय और मोह के कारण छोटे २ कामों के करने में भी असमर्थ रहने हैं। क्या हम अपने नव युवक मूल शर से कुछ जिज्ञा प्राप्त नहीं कर सकते ? ।

आज्ञा पालन और धैर्य ।

आज्ञाहि गुरुखाम विचारशीया (उत्तर चरित)

अर्थात् गुरु की आज्ञा पालन करने में किसी प्रकार का सकोच न होना चाहिये ।

हमारे स्वामी दयानन्द विद्या अध्यायन और योगान्धास करते स्थान २ पर धूमते फिरते हैं । उन्होंने अपने भ्रमण में सुना कि मथुरा में एक प्रशासक सन्यासी स्वामी ब्रह्मानन्द जी व्याकरण के अद्वितीय परिदत्त हैं । बड़ा जाते थे और इनसे सर्व प्रकार शिष्य भाव से विद्यापयन करते हैं । अध्यायन समाप्त होता है और गुरुदक्षिणा में गुरु जी शिष्य स्वामी जी को इन प्रकार आदेश देते हैं कि "वेद और वैदिक धर्म को लोग भूल कर भ्रम और अन्धकार में डूब डूब बड़ा रहे हैं आज तो तुम समर्थ हो, वेदा का प्रचार करो वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करो और लोगों को भ्रमान्धकार से निकाल कर प्रकाश में लाओ दुःख से मुक्त कर के सुख के अधिकाारी बनाओ"—अतो गुरु की आज्ञा और आज्ञा ! शिष्य और शिष्य की उक्ति ! हमारे दयानन्द गुरु की आज्ञा की शिरोधार्य मानते हैं, और अपने योगानन्द को भी कि एक मर्त्य के जिन परमानन्द हो सक्त है, छोड़ कर सनार के लुब्ध सागर में डूबने डूबने की चञ्चल के लिये अपना बलिदान देना स्वीकार करते हैं । और पदान्त और समाधि की छोड़ कर स्वामी जीवन सपाम में प्रविष्ट हो एक सैनिक के कठोर जीवन को व्यतीत करते हैं । यदि प्रज्ञापालन में लोग उनके सामने तलवार तक खींच कर प्राण हरण का भय देते अथवा उनको बड़े ऐश्वर्य का प्रयोजन देते हैं तो वे सब निरर्थक होते हैं । न भय और नही लोभ उनको अपनी प्रतिज्ञा से तनिक भी विचलित करने के लिये समर्थ है,—ठीक है "लक्ष्मी समानिशतु गच्छतु वायधेष्टम, अथैव वा मरुत्तमस्तु वा युगान्तरे वा, न्याप्यात् पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा धीर और वीर पुरुष ऐसे ही हुआ करते हैं । हमारे दयानन्द, नहीं अब महर्षि दयानन्द को विरोधियों से डूँटें और गाजिया, और कभी २ विष मिलता है, परन्तु यह व्रती अपने व्रत में मस्त हैं, डूँटें मस्त हैं यह होगा लोगों को छुड़ाने आये हैं न कि क्रोध करने अन्तत समय आता है कि जोधपुर में इन इश्यबल्य सचचे सशोधक को अन्तिम विष का प्याला मिलता है कि जो केवल इन के ज्योतिर्मय जीवन को अधिक ही प्रकाशपूर्ण बनाता है ।

ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो ।

उपरोक्त विष प्रयोग शरीर में कष्ट बढ़ता हुआ आता अर्थात् के अश्लिष्ट तन को पूरा करा रहा है । उनके धैर्य और आरिभक बलका पूर्ण परिचय दिक्काने के लिये कसौटी का काम दे रहा है । जोधपुर से स्वामी जी आबू और आबू से अजमेर पहुँचते हैं । रोग बढ़ता ही जाता है परन्तु स्वामी जी की शान्ति और उनके सहस का तनिक भी ह्रास देखने में नहीं आता । डाक्टर उनके धैर्य को देखकर चकित हैं ।

मन्थ्या के छू बने है दिवाली का दिन और १९४० विक्रमी है लोकोपकारी अर्थात् दयानन्द सत्यु शैल्या पर विराजमान हैं । दूर २ से आये हुये आर्य पुरुष स्वामी जी के पीछे छडे हैं । स्वामी जी सब द्वार और लिडरिया खोलने की आज्ञा देते हैं । इनके खून जाने पर वह प्रथम कुछ वेद मन्त्रों का पाठ करते हैं, तत्पश्चात् ईश्वरोपासना और फिर गायत्री मंत्र का पाठ करने लगते हैं, तत्पश्चात् कुछ देर समाधि युक्त होकर नयन खोल यो कहते हैं "हे द-

याग्य । हे सर्व शक्तिमान् ईश्वर ! तेरी यत्नी इच्छा है ! तेरी यत्नी इच्छा है । तेरी इच्छा पूर्ण हो ! अहा ! तेने अच्छी बीजा की,—यह वह हमारे यत्नी कण्ठ लेते हैं और एक प्रकार श्वाल को रोक एक बार ही निकाल देते हैं । अहो योगी दयानन्द और तेरी सत्यु अयता ! क्यों न हो, जिसका जीवन ज्योतिमय हो वक्की सत्यु ज्योतिमय क्यों न हो । ईश्वर ! सामर्थ्य दीजिये कि हम भी इस प्रकारमय जीवन—स्तम्भ से कातपय रश्मियों को अपने शरीर और आत्मा में धारण कर सकें, हम भी अपने जीवन को किञ्चित् प्रकाशयुक्त बना सकें !

भक्त की भावना ।

(लेखक—एक भक्त)

क्यों मन ऐसी होत अधीर—

परमपिता जो जन प्रतिपालक उन कों तेरी पीर
कर्म वीर बन अरे बावरे । या जीवन रन नाहि—
अपने आप बंध्यो बन्धन में ज्यों पिछुर में कीर ।
जगत जगत तेरे सोवन को अह यह अवसर नाहि—
हंस-बुद्धि सों विलग करहु नित हित अन हित पयमीर ।
हे उद्देश आत्मशासन तत्र देखि हृदय के बीच—
जग के जाने तू गरीब है जैसे साँची नीर ।
कि कर्मेण्य विमूढ़ चेत हत फस्यो मोह की कीच—
करि विश्वास सत्य कद्वामय अवसि हरहि तब भीर ।

नक्षत्र ।

(श्री० प० ठाकुर प्रसाद शर्मा)

निष्ठा हुई थी; पथिक पंच भूले से बन में ।
शत्रु बड़े थे उन्हें अकेला देख विजन में ॥
उदित हुआ उस समय एक नक्षत्र गगन में ।
धूम्रकोतु कुछ पथिक उसे समझे निज मन में ॥
पर मार्ग-प्रदर्शक वह बना, हुआ अकित यह जग सभी ।
वह अस्त हुआ तो भी प्रभा, न्यून नहीं होगी कभी ॥

ऋषि ध्यानन्द और संगठन

(लेखक भी वाचस्पत्ययन जी अश्विना आर्यमित्र)

ऋषि ने जहां अन्य बातों की शिक्षा दी वहां संगठन की ओर भी लोगों के ध्यान आकर्षित किये। समाजों की स्थापना संगठन के सिद्धान्तों पर ही हुई है। स्वामी जी स्वयम् भी संगठन का बड़ा आदर करते रहे। वे सन्यासी थे परन्तु संगठन के विरुद्ध कार्य करने के कदापि पत्र में न थे। सन् १८८९ में लाहोर में स्वामी जी महाराज से वहां के समाज की अन्तरंग सभा में सम्मिलित होने के लिये प्रार्थना की गई परन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि मैं आपके समाज का नियमानुसार सभासद नहीं अतः संगठन की दृष्टि से उस में सम्मिलित नहीं हो सकता परन्तु आज दुःख से देखा जाता है कि कतिपय आर्यसज्जन ऋषि की आज्ञाओं की उल्लंघन कर संगठन के विरोधी बने हुये हैं। ये लोग अपनी दाईं चावल की खिचड़ी पकाने में ही सब कुछ समझते हैं। संगठन के विरोध का नाम उन्होंने "स्वतन्त्रता", रख छोड़ा है। जब हम किसी उपदेशक या भजनीक को अपने लिये 'स्वतन्त्र' कहते सुनते हैं तो हमें बड़ी हंसी आती है और साथ ही दुःख भी होता है कि देखो ये लोग संगठन का निरादर करने में किसनी स्वेच्छाचारिता और उच्छृंखलता दिखा रहे हैं। यदि मुझ सांगी फीस फटकार कर मनमानी माया रचनेका नाम ही "स्वतन्त्रता", या संगठन शक्ति का समादर करना है तब तो फिर समस्त सुसंगठित संस्थाएँ बन्द कर देनी चाहियें। उनकी कोई आवश्यकता नहीं। यही बात स्वतन्त्र संस्थाओं के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। इन के द्वारा भी सर्वसाधारण का धन नष्ट करने में कभी अर्धी की जा रही।

साम्ने चौड़े लेख निकलने और धीरे आन्दोलन होने पर भी स्वतन्त्र उपदेशक भजनीक और संस्थाओं की खटि नित नई रची जा रही है। इसका क्या कारण है? केवल व्यक्तिगत लाभ। यदि आर्यपुरुष इस बात को पसन्द करते हैं कि वह अपनी

गाड़ी कमाई के धनकी बिना सोचे समझे "स्वतन्त्र", महाशय और संस्थाओं के हवाले कर उसका दुरुपयोग करें तो उनकी इच्छा। और यदि इस स्वच्छाचारिता के विरुद्ध है तो क्या नहीं ऐसी संस्था और प्रचारकों से अपना सम्बन्ध दूर कर लेते जिससे जहाँ उनके द्रव्य और शक्ति का अन्य उपयोगी कार्यों में सदुपयोग हो वहाँ वे संगठन का महत्व भी समझें और इस प्रकार अधि की आज्ञा पालन करने में समर्थ हों।

आर्यमित्र सभा आगरा के उत्सव की खुशी में ३० नोवंबर सन् १६ तः मूल्य घटा दिया

१ उपनिषत्तन्त्रम्-इम पुस्त-

क में सम्पूर्ण उपनिषदों के मुख्य २ विषया की विशद व्याख्या की गई है। साथ ही मूल मंत्र भी दे दिये गये हैं। वास्तव में इन पुस्तक की उपनिषदों की कौनो कठिनायें चाहिये मूल्य १ रिया० ॥)

२ भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास

इस पुस्तक में ईसाई, मुसलमान, मुसलमान, पारसी, जैन, बौद्ध आदि मतों पर चर्चा करते हुए वैदिक धर्म का ऐतिहासिक निरीक्षण किया गया है। इसके पढ़ने से हमें भारत का ऐतिहासिक महत्वमंत्रों के सम्मुख आने लगता है। मूल्य ॥ रियायती १०,

३ आर्यमत-मार्तण्ड नाटक

यह नाटक दो भागों में विभाजित हुआ है वह मनोरंजन और शिक्षण से पूर्ण है। इसमें वैदिक मंत्रों की पाठ बड़ी सुझा से खोली गई है। साथ ही आर्य धर्म का प्रकाश हस्ता की देखाया गया है। नाटक एक बार पढ़ने ही बनता है। मूल्य दोनों भागों का ॥०, (रियायती १०)

४ कलावती उपन्यस

यह उपन्यस पढ़ने बहुत ही रोचक तथा माधुम्यक उपदेशप्रद भी है। इसे श्री पुरुष दोनों बड़े आनन्द से पढ़ सकते हैं। अनेक प्रकार के व्यावहारिक उपदेश प्रत्येक सहज ही होने हैं जल्द देखिये। मूल्य १० (रियायती १०)

५ यवन-मतसमीक्षा

विषय नाम ही से प्रकट है। मुसलमान मत की बात बुद्धि पूर्वक खोजी गई है तर्कों और प्रमाणों से पूर्ण रूप से काम लिया गया है। देखने नामक विस्तार है मूल्य १० (रियायती १०)

६ काठय-प्रदीपिका

क्या आप कठिनायें करने के नियम जानना चाहते हैं? अच्छा तो इस पुस्तक को जल्द देखिये। आप को काव्यविज्ञान का पूर्ण रूप पता हो जायगा। मूल्य १० (रियायती १०)

७ पंचयज्ञविधि

इसमें आर्यों के नियुक्त पंचयज्ञ विधि की व्याख्या सविस्तार दी है। पाठ महाशय का वंश निक स्वल्प प्रकट किया है। मूल्य १० (रियायती १०)

८ प्रायश्चित्तादर्श

वेद शास्त्रों के प्रमाणों से प्रायश्चित्त का वि-
र्णय किया गया है। इस पुस्तक की आजकल
बड़ी आवश्यकता है। म० १) रिया० ३)

९ यथार्थबोधक

वेदोपरिषद् इत्यादिक आधार पर परमात्मा
और जीवआत्मा का वर्णन आध्यात्मन का
सिद्धन्त, अनात्मन-धर्म तीर्थयात्रा और ब्राह्म-
णों के गुणों दासों का वर्णन है। सब विषयों
का यथार्थ बोध कराने वाला है। म० २)
रियायती -)॥

१० नीतिशतक

महाराज बह्महरि का नीतिशतक सरल अर्थ
सहित बहुतरी उपदेशमय मूल्य सिर्फ -)
रियायती)॥

११ संस्कृत पुस्तकसू

पहला और तीसरा भाग प०जीवाराम जी की
रची हुई बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है मूल्य
दोनों भागों का १)॥ रियायती २)

१२ नरनशियाला

मद द्रव्यों का निषेध प्रम.णपूर्वक किया है।
और भी अनेक धर्मों की बातें बतलाई हैं।
मूल्य १) रियायती २)

१३ नानकजी की जीवनी

मिस्त्र से पूज्य गुरु की यह जीवनी अवश्य
एक बार आपकी पढ़ना चाहिये मूल्य)॥
रियायती)॥

१४ जैनमत के उत्पत्तिकाल का

निर्णय

ऐतिहासिक दृष्टि से ध्यान करने योग्य है।
मूल्य)॥

१५ वर्ष-शिक्षावली और देव- नागरी वर्ष परिचय

ये दोनों पुस्तकें बच्चों के लिये अत्यन्त उप-
योगी सिद्ध हुई हैं। म०)॥ रियायती)॥

१६ शब्दार्थवली

इस से बच्चे अनेक कठिन शब्दों के अर्थ
सहज ही जान लेंगे। म० एक पैसा, १) सैकड़ा

१७ इन्डियन ग्राहमर

अंगरेजी और उर्दू में, अंगरेजी पढ़नेवाले बच्चों
के काम की चीज है। म० ३) रिया० -)

१८ पंचयज्ञपद्धति छोटी एक पैसा

धर्मियों की चाहिये कि इसकी सैकड़ों कापिया
खरीदकर धर्मार्थ बांट दें। १) ६० सैकड़ा।

१९ आर्यसमाज के नियम

चार आना सैकड़ा। धर्मार्थ बाँटने के लिये
उपयोगी। समासदों के फार्म २) सैकड़ा

स्वामी दर्शनानन्द जो

की अमूल्य पुस्तकें

१ वेदों का महत्त्व

युक्ति तर्क और प्रमाणों से सिद्ध किया गया
है। कीमत -)॥ रियायती -)

२ महा अन्धेरारात्रि

गत शताब्दी के भारत के अज्ञानान्धकार
का वर्णन आर्यसमाज के द्वारा उद्धार मूल्य)॥
रियायती)॥

३ सृष्टिप्रवाह से अनादि है

स्वा० दर्शनानन्द जी की चमत्कारिणी लेखनी
का चानु० मूल्य)॥

४ ऋग्वेद के पहले मंत्र की

५ व्याख्या

वैज्ञानिक और अध्यात्मिक की दृश्य देवने योग्य है। मूल्य ॥ रियायती ॥

६ ईसाई विद्वानों से प्रश्न

अथ अ दे सटे मूल्य ॥

७ अविद्या के तीन अंग

अविद्या से बचने और विद्या प्राप्त करने के उपाय स्वामी जी ने युक्ति से बतलाये हैं। मूल्य -) रियायती ॥

८ तत्त्ववेत्ता ऋषि की कथा

बह्दर्शन का कथा यथा विद्वत्ता और मनोरञ्जक से लिख किया है। मूल्य ७) रिया० -)

९ सांख्यदर्शन

यह स्वामी दर्शनानन्द की सांख्यदर्शन भाष्य अथ्य सब भाष्यों से बड़कर है स्वामी जी ने प्रत्येक सूत्र के अन्दर पैठकर उसका रहस्य समझाया है। मूल्य ॥३॥ रिया० ॥३॥

१० मोनासा दर्शन

उक्त स्व मां जी का सम्पादित किया हुआ बहुत बढ़िया है मूल्य ॥२॥ रियायती ॥

११ सुश्रुत

यह आयुर्वेद का ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से सम्पादित किया है। अव्यय ग्रन्थ है। मूल्य २) रियायती २)

१२ जगद् पुरुषार्थ

विषवाद्यां की हृदय व्यप की दुर्दशा का दर्शक और उनके उद्धार का उपाय मूल्य -) ॥ रियायती -)

अन्य पुस्तकें ।

१३ रामगीता

परमात्मा का गुण गान मूल्य ०) ॥

१४ रामायण

आराधन काद और सुन्दरकाद गो० तु० क०

पांच पैर की गी

स्वा० मंगलदेव का प्रसिद्ध टुकू धूर्तों की माया का उद्घाटन। मूल्य ०) ॥

१५ विवाह नटक

शादी में किजल खर्चों की बुगदियों का फटी अवरय अवजोकन अभिये दुभय क व्य है। मूल्य -) रिया० -) आने।

रूस के मशहूर फिरके लिहिलिस्टका एक दिलचस्प ह-

१६ ज्ञाना

इस पुस्तक का महत्व नाम ही से प्रकट है मधीन जानकापी। मूल्य ॥२॥रियायती ॥२॥

स्वामी दर्शनानन्द जी के

लिखे हुये तथा सम्पा-

दित किये हुये पुस्तक

उद्धर्त में ।

१ भगवद्गीता ।

भाषा में श्रीक दिव है ओ उद्धर्त में उनके नीचे तरजुमा दिया है। उद्धर्त जानने वालों के लिए अध्ययन में बड़ा सुभीता है। मूल्य १०) रियायती ७) आने ।

२ न्याय दर्शन ।

प्रत्येक मंत्र के नीचे उद्धर्त में विच्छन भाष्य। स्वामी जी के भाष्यों की तारीफ़ आरों ओर हो रही है। मूल्य ॥२०) रियायती १०)

३ केनोपनिषद् ।

सस्कृत में मंत्र और नीचे उद्धर्त में भाष्य स्वामी जी ने बड़ी सूधी से मंत्रों के अन्दर की बात निकाल कर समझाई है। मूल्य ॥२०) रियायती १०) आने ।

५ मनोहरलता ।

यह एक बहुत ही शिथिल पद और मनो-
रहित वृत्तों पर होने पर यथाशक्ति वेतन व
का जिला दुध और प. हाराराम शर्मा
(स्टा. ८०) का गन्नादन क्रिये हुआ
है । अथवा पड़िये । म० (७) विद्यार्थी
७ ॥ आने ।

५ ईशोपनिषद् ।

स्वा दर्शनानन्द का मध्यमन पाप्य
है । म० ५)

६ सांख्यदर्शन ।

न्याय दर्शन का नरद स्वामी जी के इन
भाष्य की भी बड़ी ताराक है । म० ॥१०) रि-
चयनी (०) ग्रन्थ ।

७ टूकट उट्टू में ।

मृदा का प्रथम म० तान देने, तरा
बत स्या ही तथा म० तान आन, तान

कानना निजात म० १) शहराचार्य के
स्वम दयानन्द म० पर पैसा, लक्ष्य
का निष्पत्ति, मसला मनोमुक्त म० एक
एक पद इत्यादि पर नरको मजरा प
आ शौ गुरुकुल १ पैसा आह निष्पत्ति
म० दयानन्द का उदर म० पर प
एक साथ दास पर दी जाया

समाप्तो के रोजाना काम से
के रजिस्टर आदि ।

रसीद दही सजिदः मू०

रजिस्टर गोकड़ १०० पृष्ठ

जिदद मू० १)

रजिस्टर चन्दा सजिदद

पृष्ठ मू० १।)

मैनेजर आर्यभास्कर प्रेस

आगरा,

निरञ्जन बटो—घान.वर शीतज्वर हैजा दस्तों के दस्त, अ-
लीसार, संग्रहणी सब उदर रोग, दन्तपीडा, निमोनिया, कै, दस्त,
बासी सर्दी के सब दर्दों और रोगों के लिये रामबाण है । बृद्धों
की पम्प रक्ता है मूल्य फ्री यीशी ॥) आना ।

नेत्रवञ्जोवनञ्जुन—धुन्व, जाला, फुल्ली रने ध, सुखी, दुख
ती आख एक चीज का दो दीखना दूर करता है । ज्योति बढ़ा
है । मुशी कर्को को पम्पपोगी है । सुरमा सु.द १॥) तोला
सुरमा कारला १ तोला ॥) तोला ।

सच्चिदानन्द मैनेजिंग प्रोप्राइटर

डी० पी० अनाठी ऐरठ सन्स-लोड- नरडी, आगरा

हमारी दवाइयों की बिक्री को देख लोगो ने नकल करना शुरू कर दिया है। खरीदने से पहिले हमारा भीचे लिखा पता शीशी पर देख कर लीजिये। बच्चों के प्रसिद्ध डाक्टर मखनलाल गुप्त गवर्नमेंट पेशनर आई० ऐस० ऐम० डो० अनीगढ़ की बनाई हुई।

॥ जन्म घुट्टी ॥

यह घुट्टी १० वर्षों से लाखों बच्चों पर आजमाई हुई है। बच्चों के लिये बड़ी लाभदायक औषधि है। इसके सेवन करने से बदनजमी ऐंठा, दस्त पेट का दर्द कब्ज बुखार, खासी इत्यादि रोग दूर होते हैं। बच्चों के दांत भी आसानी से आते हैं। बच्चों के लिये एक ही मात्र दवा है। इस पर भी खास बात यह है कि झूटाने छानने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। इस घुट्टी की थोड़ी सी दूध माता के दूध या गर्म पानी में डालने से दो ही मिनट में घुट्टी तैयार हो जाती है।



हमारे पास बहुत से पत्र इसकी प्रशंसा में उन महाशयों से आते रहते हैं जिन्होंने अपने प्यारे बच्चों के लिये इसे मंगाकर आजमाया और लाभदायक पाया है। एक दफा आप भी आजमाइये। नोटिस की सचाई और दवाई की भलाई आप पर चिन्ता कीमत

१ शीशी ॥ एक दर्जन ५॥ ६ शीशी २॥॥ दो दर्जन १०)

पसली क्यौर—(सफूफ)—जिस की परीक्षा हजारों बच्चों पर पसली चलने मर्ज में की गई है और जिसने इस प्राण घातक रोग से हजारों बच्चों को बचाया है कीमत की मग्शा १) पहिले से मंगा कर रख लीजिये जिस से समय पड़े पर काम आवे।

मैनेजर—जन्मघुट्टी कार्यालय नं० ३ अलीगढ़ सिटी।

आर्यभास्कर यंत्रालय आगरा ।

श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त आगरा और अवध की सम्पत्ति है । आर्यभाइयों और समाजों का कर्तव्य है कि वे वपाई का काम इस यंत्रालय में ही छपने की भेजने और भिरवाने की कृपा किया करें । जो काम यंत्रालय में मुद्रणार्थ प्राप्त होगा, उसे ठीक समय पर अति शुद्ध और स्वच्छतापूर्वक छापकर दिया जावेगा ।

मैनेजर आर्यभास्कर प्रेस, आगरा ।

गुब्बड़ की मुहरें साबुन व भंजन ।

साबुन, उर्दू, हिंदी, दस्तखत, मोनी याम आदि सुंदर सब प्रकार के कार्यालय में तय्यार की जाती हैं ।

नाम की मुहर एक लाइन में दो इंच लम्बी मामूली हेंडल पर ।) चार आने, और उम्दा हेंडल पर ।) छः आने नाम की जिसमें मुहर, कलम पेंसिल भी होती है विलायती ज़ब में रखने के लायक मू० ॥१०) चौदह आने भेंट की जाती है डाक वगैरह पृथक्

पवित्र साबुन ।

खालिस नारियल के तेल का हर प्रकार की खुशबूदार यानी इलायची, कपूर, केवड़ा, आदि का हमारे कार्यालय में पवित्र व सस्ता तय्यार किया जाता है जिसकी कि समालोचना आर्यमित्र मास फरवरी में ही हुकी है । मूल्य फी बक्स ।) चार आने । कपड़े धोने का -) एक आना टिकिया । डाक व्यय पृक्


दांत का मजन, २५ वर्ष के तजुर्वे का ।

दांत कैसे ही हिलते हों तथा मुँह में बदबू आना मसूड़ों का फूलना, ना दांतों में दर्द होना, दांतों पर अनेक का पड़ जाना, आदि, तारीफ यही है कि दांतों के रुब तरह के रोगों पर बहुत अस्दी कायदा करता है । मूल्य =) दो आना हिंविया, डाक व्यय अलग एजर्टों की हर जगह आवश्यकता है । किहरिस्त पत्र आने पर शुभ्रस भेजी जाती है ।

मिलने का पता —केबी आदर्श इन्डिया पीपल कंपनी-आगरा

४ विं०
सू० १॥१)

इस अंक का
मूल्य १२)

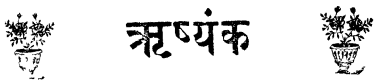


प्राच्य मित्र

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे । यजुः०

तमसो मा

ज्योतिर्गमय



ऋष्यंक

कार्तिक १९६८ वि०

संपादक—भगवान्प्रसाद वी० ए० ।

सह० संपादक—आर्येन्द्र शर्मा शास्त्री वेदशिरोमणि ।

इस अंक के विशेष संपादक—आचार्य श्री पं० बृहस्पति शास्त्री वेदशिरोमणि ।

हमारी चुनी हुई कुछ एक सर्वप्रिय पुस्तकें

<p>आत्म-दर्शन (लेखक - नारायण स्वामी जी) आत्मा, परमात्मा, तथा प्रकृति का संबंध वेदों, शास्त्रों तथा उपनिषदों के प्रमाणों सहित पढ़ें । मूल्य सजिल्द पुस्तक का १।।)</p>	<p>संस्कृत - स्वयं - शिक्क जितने भी हमारे सन् शास्त्र हैं, वह सब संस्कृत में हैं, और बिना संस्कृत के ज्ञान से आनन्द लाभ नहीं उठाया जा सकता । पंडित सात बलेकरजी ने इस पद्धति से यह पुस्तक लिखी है, कि मनुष्य छै मास के अध्ययन से ही महाभारत तथा रामायण इत्यादि पुस्तकों को अच्छी प्रकार समझने लग जाता है । तीन भाग हैं, प्रत्येक भाग का मूल्य १।)</p>	<p>धर्म का आदि स्रोत आर्य धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है । इसे साबित करने के लिए आर्य धर्मों की पुस्तकों की शिक्षा देकर मुकाबला किया गया है । मूल्य १)</p>
<p>ईश्वर-भक्ति [ले०-स्वामी सर्वदानन्दजी] ईश्वर उपासना की सही विधि, तथा ईश्वर के ध्यान में मन कैसे लग सकता है, इत्यादि रहस्य इसमें पढ़ें । मूल्य ॥२)</p>	<p>कल्याण-मार्ग श्री स्वामी सर्वदानंद जी के अच्छे-अच्छे लेखों तथा विचारों का संग्रह है । मूल्य केवल ।)</p>	<p>गृहस्थ-जीवन-रहस्य प्रत्येक आर्यगृह में करने योग्य यज्ञ, पर्व तथा संस्कारों की पूर्ण जानकारी पढ़ें । मूल्य १)</p>
<p>देव-यज्ञ इसमें देवता, यज्ञ, अग्नि, स्वाहा, अंगभर्षा, आचमन, तथा समिधा आदि शब्दों की वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत सुंदर व्याख्या की है । मूल्य १=)</p>	<p>संध्या-रहस्य संध्या के ऊपर पंडित चमूषति जी ने बड़ी गंभीर टीका टिप्पणी की है । मूल्य १=)</p>	<p>आर्यसमाज क्या है ? आर्यसमाज का परिचय तथा उसके काम का विस्तार जानने के लिए इसे पढ़ें । मूल्य १=)</p>

शहीदे धर्म म० राजपाल एण्ड संस,

आर्य-पुस्तकालय लाहौर ।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—ईश-बन्दना	१
२—बन्दनीय वेद (कविता)—कवि-मन्नाट् अयोध्यासिंह उपध्याय “हरिऔध”	२
३—अथर्ववेद में वर्णित स्वर्ग—श्री नारायण स्वामी जी महाराज	३
४—ऋषि दयानन्द और वर्तमान आर्य समाज—श्री केवलानन्द जी सरस्वती	६
५—मोक्ष के साधन—श्री स्वामी श्वतन्त्रानन्द जी	८
६—तैयारी—श्री गंगाप्रसाद जी षषाध्याय एम० ए०, प्रधान आ० प्र० सभा यू० पी०	११
७—राष्ट्रेद्वारक दयानन्द—राजगुरु श्री घुरेन्द्र शास्त्री न्यायभूषण, पधात अ० भा० कु० परिषद्	१३
८—शिलर कारों का वैदिक वर्ण—व्यवस्था में स्थान—रा० व० श्री प० गंगाप्रसाद जी एम. ए. रि० चीफ जज टेहरी	१६
९—कारातीर्थ से वेदार्थ जी का संदेश—श्री नरदेव जी शास्त्री वेदार्थी	१७
१०—महर्षि संदेश (कविता)—श्री प० अनूप शर्मा एम० ए० एल० टी०	१६
११—ऋषि दयानन्द के जीवन को पढ़ो—श्री प० दीवानुचन्द्र शर्मा एम० ए० प्रधान सं० आ० प्रा० प्र० सभा लाहौर	२०
१२—ऋषि का सन्वय दृष्टि—श्री आचार्य वृहस्पति शास्त्री वेदशिरोमणि	२३
१३—आर्य समाज तथा देवयज्ञ—श्री कवि विनीद वैद्यभूषण प० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य अमृत धारा लाहौर	२५
१४—उस अमर उद्योति को छाया (कविता)—श्री हर्षदेव राय आर्य “हृष”	२७
१५—इमारा भावी प्रोमाम—श्री मिसपल कालिकाप्रसाद जी भटनागर एम० ए०, डी० ए० बी० कालेज कानपुर	२८
१६—तर्हर्षि दयानन्द और स्वाध्याय प्रवचन—श्री प्रो० रामेश्वर शास्त्री सिद्धान्त शिरोमणि गुरुकुल विश्वविद्यालय घुन्दावन	३१
१७—आर्य समाज सप्रदाय नहीं है—श्री बाबु पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट	३३
१८—जल गया—(कविता) कविश्री श्री ओकार मिश्र ‘अखत्र’ विद्याभूषण उपाध्याय गुरुकुल जेहलम	३६
१९—महर्षि के कुछ राजनैतिक विचार—श्री भारतेन्दु जी बदालकार	३७
२०—स्वामी दयानन्द वैद्य के रूप में—श्री मेहता जैमिनि बी० ए० वैदिक मिशनरी	३६
२१—अमर उद्योति—श्री हर्षदेव जी आर्य “हृष”	४१
२२—दीप माझिके—(कविता) श्री रामसिया “रमेश” साहिब्यरसन हिगोली निजाम स्टेट	४५
२३—श्री स्वामीजी की यात्रा—श्री महेशप्रसादजी मौलवी आलिम फाजिल हिन्दू यूनीवर्सिटी काशी	४६
२४—ब्रह्म-विचार—साहित्यरसन श्री प० निरंजनदेव जी एम० ए०, सिद्धान्त विशारद वैदिक मिशनरी अजमेर	४८
२५—दीप—(कविता) श्री प० शिवकुमार त्रिपाठी	५३
२६—वेद के सम्बन्ध में आर्यसमाजियों पर दो आरोप—श्री प० विहारीलाल जी शास्त्री काठ्यतीर्थ	५४

२०—दीपावली—(कविता) श्री ज्ञानितनन्दन एम० ए०	५६
२८—आर्य समाज और पाकिस्तान—श्री पं० सूर्यदेव जी शर्मा साहित्यकार सिद्धान्तशास्त्री एम० ए० एल० टी०, अजमेर	६०
२९—उर्दू का दूषित विचार—श्री चन्द्रमणि जी उपमन्त्री आर्य कुमार सभा बड़ौदा	६३
३०—विजय बाप्रा—(कविता) कविराज श्री रत्नाकर शास्त्री आगुर्जेंदशिंगेमणि "गुरुदेव"	६५
३१—लक्ष्मी-पूजन (कहानी) श्री वाचू एम आर० गुमा उम्मीद	६७
३२—आर्य समाज और हिंदी भाषा—श्री सुमन शेखपुरी सारित्यस्तन प्र० स० शिक्षा सुभा	७०
३३—वेद में आयुर्विज्ञान—श्री पं० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री वेद सं था आनन्दपुरी मेरठ	७४
३४—द्वीप—(कविता) साहित्याचार्य श्री पं० जितेन्द्र भारतीय शास्त्री	७७
३५—दिकय-दीपक दयानन्द—श्री पं० अर्धेन्द्र शर्मा शास्त्रीवेदशिंगेमणि-श्री पं० राजेन्द्र शर्मा शास्त्री	७८
३६—वेद विश्व का सर्वोच्च प्रातिभ ज्ञान—श्री राधाकृष्ण वाडरवानपल विरयविद्यालय बनारस अनु०—श्री वासुदेव शरण अप्रवाल एम० ए०	८१
श्री रामदत्त शुक्ल एम० ए० एल एन० बी०, पटवोकेट	
३७—एक प्रेक्षक की भावना—श्री के० ए० सुब्रह्मण्य अखण्ड एम० ए० अध्यक्ष प्राक्य विभाग विश्वविद्यालय लखनऊ	८३
३८—शाकवरीत्रा—श्री वासुदेव शरण अप्रवाल एम० ए०	८६
३९—ऋषि-ऋण का हिसाब करो—श्री रामगोपाल आर्य प्रवा। वेद प्रचार भण्डन मऊनाथ भजा	८९
४०—दीपावली सन्देश—देश भक्त श्री कुँवर चादकण शारदा प्रयाग आर्य प्रतिनिधिसभा गज स्थान मालवा	९०
४१—आर्य सदाचार वा मानदण्ड—श्री पं० रामदत्त शुक्ल एम० ए० एडवाकेट	९२
४२—सम्पादकीय	९४

आर्य प्रतिनिधि सभा के तृतीय प्रकाशन

१—यजुर्वेद सहिता भाषानुवाद खण्ड १ मूल्य रु० २०, और सजिलद २॥)

२— " " " " " " " " " २ " " " २॥), और सजिलद ३)

३—ब्रह्मवेद का गृहस्थ (=)

४—वाणक्य सूत्र भाषानुवाद सहित (=)

—अधिष्ठाता

प्रकाशन विभाग

आर्य प्रतिनिधि सभा, लखनऊ,

आर्यभित्र वा ऋगक



आर्यसमाज के प्रवक्त महर्षि दयानन्द



आर्यमित्र

ऋष्यंक

वर्ष ४४

दीपावली दयानन्दाब्द ११७

अङ्क ३६, ४०

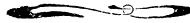
* कल्याणी देव-सुमति *

ओ३म् देवानां भद्रा सुमतिर्ऋज्यतां,
देवाना १३, रातिग्भि नो निवर्त्ताताम् ।
देवाना १३, मख्यमुपसेदिमा वर्यं,
देवा न आयुः प्रतिग्तु जीवसे ॥

देवों की कल्याणी सुमति ऋजुना के साथ अग्रसर हो। देवों की समृद्धि हमको प्राप्त हो।
देवों के साथ हम सख्यभाव प्राप्त करें। देव महान्-जीवन के लिए हमारी आयु की वृद्धि करें।

❀❀ वंदनीय वेद ❀❀

[कवि-सम्राट् श्री पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय]



सकल ज्ञान विज्ञान विलोचन के हैं तारे ।
 हैं विभूति अनुभूति आदि के दिव्य सहारे ।
 भूतल के सब पंथ मतों के हैं अवलम्बन ।
 हैं तम पुंज दिनेश ताप उपताप निकन्दन ।
 विज्ञात उसे विधि के सहित भव के सारे भेद हैं ।
 सब सार्गभौम सिद्धान्त के आदि प्रवर्तक वेद हैं । १ ।

मानवता का मूल सदा शयता का मन्दर ।
 सदाचार कमनीय स्वर्ग का पूज्य पुरन्दर ।
 भव सभ्यता विभाव दिव्यता का कल केतन ।
 लोक शान्ति का संतुभध्य भावना निकेतन ।
 नायक है सकल सुनीति का नैतिक बल का है जनक ।
 है वह पारस जिसको परस लोहा बनता है कनक । २ ।

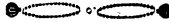
सर्व भूत हित महामंत्र का सकल प्रचारक ।
 सद्यभाव से एक एक जन का उपकारक ।
 सत्य—मूर्ति बन विश्व बंधुता का अनुरागी ।
 सकल सिद्धि सर्वस्व सनीगत कटुता त्यागी ।
 उसकी विचार धारा धरा के धर्मों में है वही ।
 वंदित विवेक बहु विमल मति के धाता है वेद ही । ३ ।

है उसमें वह भूति जो असुर को सुर करदे ।
 है उसमें वह शान्ति श्रेय जो भव में भर दे ।
 है उसमें वह शक्ति पतित को भूत बनाये ।
 है उसमें वह कान्ति रजकणों को चमकाये ।
 जिससे अमनुजता असमता सब दिन रहती है डरी ।
 वैदिक उदार तम वृत्ति में वह उदारता है भरी । ४ ।

संजीवन रस को पिला समझा जीवन भेद ।
 करे सर्वदा सुधाभय वसुधातल को वेद ॥ ५ ॥

* अथर्ववेद में वर्णित स्वर्ग *

[ले०—श्री नारायण स्वामी जी महाराज]



[इस लेख में श्री स्वामी जी महाराज ने अथर्ववेद में वर्णित स्वर्ग का स्वरूप अति सुन्दरता से दर्शाया है।—सम्पादक]

अथर्व वेद के चौथे काण्ड के ३४ वें सूक्त में स्वर्ग का वर्णन बतलाया जाता है। जिन मन्त्रों से स्वर्ग की बात कही जाती है वे ये हैं —

अनस्थाः पूता पवनेन शुद्धा
शुचयः शुचिर्मपि यन्ति लोकम् ।
नेया शिरानं प्रदहति जातवेदा

स्वर्गें लोके बहुखैणमेषाम् ॥

एष यज्ञानां विततो बहिष्ठो विष्टारिणाम् पक्त्वा दिव-
माविवेश । आएडीकं कुमुदं संतनोति विसं शालुकं
शफको मुलाली एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गें लोके मधुमत् पिन्वमाना उपत्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणी समन्ता ॥ घृतहृदा मधुकूला सुरोदका
चीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उप-
यन्तु सर्वा स्वर्गें मधुमत् पिन्वमाना उपत्वा तिष्ठन्तु
पुष्करिणीः समन्ताः ॥ (मंत्र २, ५, ६)

(१), पहले मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है कि
(अनस्थाः) विकार रहित (पवनेन शुद्ध शुचयः)
पवन = प्राणायाम से शुद्ध पवित्र (शुचं लोकम्
अपि, यन्ति) निर्मल बने हुये शुद्ध लोक को प्राप्त
होते हैं (जात वेदाः) अग्नि-ईश्वर (एषां, शिरानं,
न, प्रदहति) इनके कर्म-न्द्रियों को नष्ट नहीं करता
है (स्वर्गें लोके, एषाम्, बहु खैणम्) स्वर्ग लोक में
इनको बहुत सुख साधन (प्राप्त होता है) ।

(२) दूसरे मन्त्र में विवादास्पदाश शब्दों के

अर्थ ये हैं—(एषः यज्ञानाम्, विततः) यह यज्ञों में
फैला हुआ (बहिष्ठ) बहु—इष्टन बहुत श्रेष्ठ पुरुष
(विष्टारिणाम्, पक्त्वा, दिवम्, आविवेश) बड़े
विस्तार वाल परमात्मा के (हृदय में) पक्का हृद
करके प्रकाश स्वरूप परमात्मा में प्रविष्ट हुआ है ।

नोट—पं० सातवलेकर जी ने 'विष्टारिणाम्' शब्द
को विष्टारी यज्ञ परक लगाया है ।

(३) तीसरे मन्त्र के अन्त में वर्णित है कि
(एताः सर्वाः, धाराः,) ये सब धारें या धारण
शक्तियाँ (स्वर्गें लोके) स्वर्ग लोक में (मधुमत्)
मधुमय (त्वा, पिन्वमाना.) तुम्ह को सींचती हुई
(उपयन्तु) आदर से मिलें और (समन्ताः)
सपूर्णा (पुष्करिणीः) पोषण बती शक्तियाँ (त्वा
तिष्ठन्तु) तुम्ह में ठहरे । मन्त्र के प्रारम्भ में जिस के
लिये वे सब शब्द अन्त में प्रयुक्त हुये हैं, उनका
विवरण इस प्रकार है —

(घृत हृदाः) प्रकाश की ध्वनि वाली (मधुकूलः)
मधुज्ञान रक्षणी (सुरोदकाः) जल सिंचन करनेवाली
(चीरेण) भोजन साधन से (उदकेन) सेचन
साधन से (दध्ना) धारणा पोषण सामर्थ्य से
(पूर्णा) पूर्ण । इन मन्त्रों के इसी प्रकार के या इनसे
बिलते जुलते अर्थ प्रायः किये जाया करते हैं परन्तु
कुछ एक परिचामी लेखकों और उनका अनुकरण करने
वाले कतिपय देशी विद्वानों ने भी इनके अर्थ इस
प्रकार किये है कि स्वर्ग में, घृत, मधु, सुरा, चीर
न्द्य, जल और दही से पूर्ण धारायें बहती हैं और

मनुष्य ब्रह्मा जाकर अपनी इन्द्रिया से बहुत सी स्त्रियों का सुख भाग करता है। और यह भी कहा जाता है कि मुसलमानों आर पुराण—कारो ने इन्हीं मन्त्रों के आधार पर अपने अपने वहिश्त और

स्वर्ग की कल्पना की है और यह भी कि वें मन्त्र में आये वहिष्ठ शब्द ही से फासा का वहिश्त शब्द बनाया गया है—ऐसा अर्थ करने वाले एक मालिकानियम का, जो प्राचीन भाषाओं के अर्थ करने के लिये प्रयुक्त हुआ कर। है, मूल जाति है, और यह नियम यह है कि प्राचीन मन्त्रों का अर्थ तत्कालान साहित्य और उसमें प्रचलित अर्थों के आधार ही पर किया जाया करता है—इसी नियम



श्री महात्मा नारायण स्वामीजी

विद्वान् करते हैं याद उसां को स्वीकार कर लिया जावे तब भी कुछ हानि नहीं है—वेद में स्वर्ग शब्द पितृ लोक के लिए प्रयुक्त हुआ करता है। पितृ लोक वा स्वर्ग में जाना, यह मृत्यु के बाद प्राणियों की

दूसरी जाति है।

इस गीत को प्राप्त प्राणी आवागमन से बाहर नहीं होते, किन्तु उसां चक्र में रहते हैं अन्तर केवल यह है कि मनुष्य योनि में उत्पन्नता हात है परन्तु वे मनुष्य हाते हैं जिन्हें देव कहते हैं और जिन्हें लेश मात्र भी दुःख नहीं भोगना पड़ता इसलिये मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर यदि कोई स्वर्गाधिकार मनुष्य घृत दुग्धाद का बहुतायत से इस्तेमाल करता आया। गृहस्थ के सुख का भी उपभाग करता

के आधार पर वेदा का अर्थ वैदिक साहित्य निरुक्त निघण्टु और ब्राह्मणादि मन्त्रों की सहायता ही से करना चाहिए न कि प्रचलित शब्दाथ के आधार पर। यदि क्रिष्ट कल्पना के तौर पर जो अर्थ आधुनिक

त इसने आश्विन या अरवादा की कौन सी बात है? इस पर दो आक्षेप हो सकते हैं (१) सुरापान—मंत्र में आया सुरा शब्द शराब के लिये नहीं हो सकता इसलिये कि वेद नशों के पीने का

असंदिग्ध शब्दों में, अनेक जगह, प्रतिवाद करते हैं। आज कल के कोषों में भी सुरा शब्द के अर्थ जल या पान पात्र के भी किये गये हैं फिर सुरा शब्द के अर्थ यहा मद्य नहीं हो सकते (२) दूसरे मंत्र में स्वर्ग गामियों के लिये “अनस्थाः” शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसके अर्थ अग्नि (हट्टी) रहित के हैं फिर उन्हें मामूली मनुष्य योनि में उत्पन्न किस प्रकार कहा जा सकता है। इसका उत्तर यह है कि अनस्थाः शब्द का अर्थ “विकार रहित है। अनस्थाः के स्थान पर इसीलिये कई विद्वान् विदेह या विदेही लिखा करते हैं। विदेह का अर्थ यह नहीं है कि शरीर नहीं किन्तु शरीर के संबंध से जाँ विकार उत्पन्न होते हैं उससे रहित होना अभिप्रेत हुआ करता है। जनक को विदेह कहने का भी यही भाव है। इसके सिवा अस्थि या अस्थ शब्द के अर्थ फल की गुठली (The kernal or stone of a fruit) के भी हैं। इसका भी तात्पर्य, जहा तक फलों के भाग्य होने का संबंध है, निरुन्मी और त्याग्य वस्तु ही के हैं। इसीलिये दोनों आद्योप, इस प्रकार, निवारण हो जाते हैं।

दूसरे मंत्र में आया शिरन शब्द कर्मेन्द्रियों के लिये उपलक्षण के तौर पर प्रयुक्त हुआ है। कर्मेन्द्रियों का संबंध केवल स्थूल शरीर से हाता है। अत मंत्र का भाव स्पष्ट है कि इस दूसरी गति को प्राप्त प्राणी,

कर्मेन्द्रिय या स्थूलशरीर सहित होते हैं। मंत्र में आये घृत, दूध, दही शब्द आदि शब्द भी, यही प्रकट करते हैं कि इनके उपभोग के लिये स्थूल शरीर का होना अनिवार्य है। इसके सिवा शतपथ ब्राह्मण में एक जगह यही बात स्पष्ट शब्दों में लिख भी दी गई है —

सहे सर्वतनूरेव यत्नमानोऽमुष्मिल्लोके सम्भवति ॥

शा० ४। ६। १। १

अर्थात् यह यजमान समस्त शरीर के साथ इस अगले (स्वर्ग) लोक में उत्पन्न होता है।

यहा साफ तौर से कह दिया गया है कि दूसरे (स्वर्ग) लोक में “सर्वतनूरेव” सम्पूर्ण शरीर के साथ यजमान उत्पन्न होता है। इससे साफ जाहिर है कि स्वर्ग लोक में भी प्राणी इसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जैसे इस (पृथिवी) लोकमें। यदि यह ठीक है कि पुराणी और कुरानियों ने अपने अपने कल्पित स्वर्गों का विचार अथर्व वेद में वर्णित स्वर्ग के उपर्युक्त विवरण ही से लिया है तो उन्होंने नकल करने में एक गलती की और वह गलती यह हुई कि उन्होंने अपने अपने स्वर्गों का मोक्ष स्थान ठहराया जबकि वेद में वह आवागमन के अन्तर्गत ही एक विशेष (मनुष्य) योनि में उत्पन्न होने की अवस्था है और उससे मोक्ष प्राप्ति का कोई संबंध नहीं है; मुक्ति उससे सर्वथा भिन्न वस्तु है।

वेद की मान्यता

वेद अर्थात् जो २ वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है, उस २ का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं। जिस लिये वेद हमको मान्य हैं इसलिये हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आयों को एकमात्र होकर रहना चाहिये।

[स० प्र० समु० १]

ऋषि दयानन्द और वर्तमान आर्यसमाज

[लेखक—श्री स्वामी केवलानन्द जी सरस्वती]

[प्रस्तुत लेख में मर्मज्ञ लेखक ने वर्तमान आर्यसमाज की परिस्थिति का अवलोकन करते हुये महर्षि के ध्येय के अनुसार प्रचार—कार्य कराने का संकेत किया है।—सम्पादक]



त. स्मरणीय ऋषि दयानन्द की मनोभावना, तथा उसे कार्य रूप में परिणत करने के उपायों का ठीक पता लगाना हो तो उनकी ग्रन्थावली एवं चरित्र-घटनाओं से भली भाँति लगा सकते हैं। यहाँ पर इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि ऋषि दयानन्द, संसार में प्रचलित नाना मत मतान्तरों को वैदिक मार्ग में लाकर, मानव-मण्डल को, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूपी फल-चतुष्टय की प्राप्ति कराना चाहते थे। जिससे परस्पर के राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि दुर्गुण दूर करके नरनारी परम शान्ति का अनुभव करने लगे तथा वैदिक सभ्यता से सम्पन्न हो जाय, जिससे फिर एक बार सामाजिक संगठन का कमनीय रूप संसार में स्थापित हो सके।

वर्तमान आर्यसमाज की प्रचार-पद्धति में प्रदर्शन बहुत बढ़ गया है, जिसके कारण विद्वानों का समय तथा जनता का धन भी अधिकांश मे व्यर्थ व्यय होरहा है। हमारा आधुनिक प्रचार का प्रकार एक व्यवसन का सीमा तक पहुँच चुका है। अतएव इस आंर विशेष ध्यान देना विचारशील विद्वानों का काम है। जिस वर्ष जो मन्त्री और प्रधान बन जाते हैं, वे अधिक से अधिक उत्सव की शोभा बढ़ाने की लालसा मे लग जाते हैं। धुआँधार व्याख्यान और भजन होते हैं। तीन चार दिन को चहल पहल में सारा बल खर्च हो जाता है फिर एक साल तक

निश्चिन्त होकर सो जाते हैं। उपदेशक, सन्यासी तथा भजनीक केवल जनता को खरी खरी बातें सुनाने के लिये बुलाये जाते हैं अपने लिये नहीं। इस प्रकार का बहिर्मुखी वृत्ति का बदले बिना आर्यसमाज का कल्याण नहीं हो सकता। क्योंकि जबतक विश्वास व्यवहार के रूप में तथा विचार आचार के रूप में एक भावना कर्तव्य के रूप में परिणत होकर एक दूसरे में चरितार्थ नहीं होते तबतक कोई भी समाज अपनी स्थिति को कायम नहीं रख सकता। वर्तमान समाज मन्दिरों में कुछ एक को छाड़कर बहुतां की ऐसी हालत है कि कुछ कहते नहीं बनता। यदि कन्या पाठशाला हो तो ठहरने तक को जगह नहीं और यदि पाठशाला न हो तो ताला भी कभी कभी खुलता है। मैं एक दिन एक समाज में प्रचारार्थ गया। स्टेशन से कुली साथ लिया। समाज का ताला बन्द था। पासके एक दुकानदार ने कहा कि मुंशी जी के घर जाइये। कुली तग होने लगा। मैंने कुछ और पैसे देने को कहा। प्रधान जी ने कहा कि बाजार मे एक डाक्टर रहते हैं, वहाँ चावी मिलेगी आप चले जाय। वहाँ गये, उन्होंने कहा—समाज की चावी एक पण्डित जी के पास रहती है। फिर हम उनके घर गये। उन्होंने आकर ताला खोल दिया, देखा तो समाज मन्दिर में धूल और जालों का ठिकाना कुछ नहीं। मुझे कराव एक घण्टा सफाई करने मे लगा। रात्रि को कथा हुई दिन में भोजन की बात भी नहीं पृछी। क्या इसी-

लिये समाज—मन्दिर बनाये गये थे ? यदि प्रातः सार्य्य आर्य्य सज्जन समाज मन्दिर में आने जावे रहें तो ऐसी हालत नहीं हो सकती ।

प्रचारार्थ भ्रमण करने वाले व्यक्तियों के साथ न मालुम इस प्रकार की कितनी घटना घटती रहती हैं । यह सब हमारी उदासीनता तथा कर्त्तव्य हीनता की द्योतक नहीं तो और क्या हैं ? वर्त्तमान आर्य्यसमाज में अश्रद्धावृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है । इसका कारण स्वाध्याय की कमी तथा अनुष्ठेबाँश की ओर ध्यान न देना ही है । मेरी इन पंक्तियों का अन्यथा-भाव निकालना एक प्रकार का अन्याय होगा । मेरा भाव यह नहीं कि आर्य्य समाज में सभी इस प्रकार के नर-नारी हैं अपितु मैं यह चाहता हूँ कि इस समाज में कोई भी व्यक्ति कर्त्तव्य हीन न हो । जिन समाजों में कुछ कर्त्तव्य-परायण श्रद्धालु सज्जन हैं वहाँ का कार्य भी रुच्छा है, परन्तु अधिकांश में सुचारु की परम आवश्यकता है । जो बातें हम दूसरों के लिये कहते हैं उन्हें अपने अन्दर भी उतारने का प्रयत्न होना चाहिए तभी आर्य्य नाम सार्थक हो सकता है । किसी विद्वान् ने कहा है —

कर्त्तव्यमाचरन् नित्यं मकर्त्तव्यमनाचरन् ।

तिष्ठति प्रकृताचारे यः सआर्य्य इति स्मृतः ॥

वास्तव में देखा जाय तो आर्य्यसमाज संसार की आंख है और आंख में पड़ी हुई छेटी सी कंठरी सदा नहीं होती । कहां तक रहे । यदि दिन का भूना भटका सार्य्यकाल भर आजाय तो ठीक है । अभी समय है । आर्य्यसमाज को अपनी कमी को दूर करने में उद्योगशील होना चाहिये । यही इस लघु-काय लेख का सांग्रंश है । यदि वर्त्तमान प्रगति में परिवर्त्तन न किया गया तो हानि की सम्भावना है । अन्त में यही कहना है—

बाल ब्रह्मचारी के शि.शाल भाल मन्दिर में,

भावना जगी थी भव्य आर्य्यसमाज की ।

तन, मन धन, तप, तेज सब बार दिये,

कामना करी न कभी जग - सुख - साज की ॥

विरव—उपकार की विराट—योजना बनाय,

आर्यों के हाथ बाग सौंप गया काज की ।

“केवल” श्रुषी की भव्य भावना को भूल गये,

पद - छालसा में फंसे देखो दशा आज की ॥

आर्य्यसमाज के वर्त्तमान अधिकारी वर्ग को निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है —

(१) उत्सव साधारण व्यय - साध्य सादगी से होना चाहिये ।

(२) प्रत्येक जिले में एक उपदेशक तथा एक योग्य मजनीक रहे ।

(३) वर्ष में एक बार स्थान परिवर्त्तन के साथ जिला - आर्य्य - सम्मेलन अवश्य होना चाहिये । उसमें लक्षकोटि के विद्वानों द्वारा अपने सिद्धांत की पुष्टि में विचार पूर्ण व्याख्यान कराने चाहिये ।

(४) समाज के अधिकारी वे ही सज्जन बनाये जायें, जो कर्मकाण्डी तथा स्वाध्यायशील हों । चन्दे की चक्काधौध से बचना चाहिये ।

(५) जहा तक हो सके कथाओं द्वारा वर्ष में दो तिन बार प्रचार आयुक्त है ।

(६) उपदेशक तथा भजनीक वे ही रक्खे जायें जो व्यसन-विमुक्त तथा सुयोग्य हों । प्रचार का ढंग उनकी इच्छा पर निर्भर होना चाहिये ।

(७) शहरों की अपेक्षा ग्रामों में प्रचार अधिक हो । प्यासे को पानी मिलना चाहिए, अन्य को नहीं ।

(८) सन्यासियों को केवल वेदिका की शोभा के लिये ही न बुलाकर उनके सत्संग से प्रत्येक आर्य्य को लाभ उठाना चाहिये ।

(९) जो समाज प्रतिनिधि-सभा का आदेश न न मानें, उन्हें पृथक् कर देना उचित है ।

किमधिकं प्रतिमत्सु

मोक्ष के साधन

[लेखक—श्री.श्री.श्री. स्वतन्त्रदानन्द जी]

[समुपस्थित लेख में विद्वान् लेखक ने मोक्षोपयोगी साधनों के विषय में अच्छा प्रकाश डाला है। लेख पठनीय एवं मननीय है। —सम्पादक]



क्ष के साधन तीन माने जाते हैं, कर्म, ज्ञान, कर्म ज्ञान उभय। उभयवाद भी क्रम-समुच्चय और सम-समुच्चय भेद से दो प्रकार का है।

कर्मवादी कहते हैं—कर्म करने से उसका फल मिला है। उस फल में ज्ञान की आवश्यकता नहीं। यदि कोई पुरुष बिना जाने अग्नि में हाथ डाले तो उसका हाथ जल जाता है, जान कर डाले तो भी जल जाता है। ज्ञान, अज्ञान से जलने में अंतर नहीं आता है। इसी प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिए विदित कर्म करने चाहिए, ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। वेद भी यही उपदेश देता है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतश्च समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोसि न कर्म लिप्यते नरे ॥

यजुः ० ॥

इम मन्त्र में बताया गया है कि कर्म करते हुए सी सात जीने की अभिलाषा का यही मार्ग है और दूसरा कोई नहीं है। इससे कर्म पुरुष में न लगेंगे। मोक्ष का यही मार्ग है, दूसरा नहीं है। अतः कर्तव्य-कर्म करने से ही मोक्ष होगा।

दूसरा पक्ष है ज्ञान से ही मोक्ष होता है, कर्म से नहीं। कर्म अन्न करण की शुद्धि के हेतु हो सकता है मोक्ष-हेतु नहीं। रज्जु-आरोपित सर्प किसी कर्म से

दूर नहीं होता है, वह रज्जु ज्ञान से ही दूर होगा। वेद भी ऐसा ही आदेश देता है—

वेदाहमेत पुरुषं महान्तमादित्यवर्या तमसः परस्तान्।
तमेव विदिस्वाऽतिमृत्युमेवि नान्यः पथाः विद्यते अय-
नाय ॥ यजुः ० ॥

उस महान् पुरुष को, जो ज्ञान स्वरूप, अज्ञान रहित है, जानकर ही मृत्यु से बूट सता है। मोक्ष के लिए अन्न मार्ग नहीं है और सांख्यदर्शन में 'ज्ञानान्मुक्ति' का बल्लेख है।

इमसे सिद्ध है कि मोक्ष के लिए ज्ञान संश्रान करना चाहिये। इसी लिए उपनिषद् में लिखा है—
'नास्त्यकृत कृतेन' मुण्डक।

अकृत, परमात्मा कृतेन कर्म करने से नहीं मिलता, मोक्ष ज्ञान से ही होता है।

कर्म ज्ञान समुच्चय वार्धियों में जो क्रम-समुच्चय वादी हैं उनका कथन है कि निषिद्ध कर्म सर्वथा छोड़ दे, नित्य कर्म नित्य करता रहे। निमित्त आने पर नैमित्तिक कर्म भी कर ले। यदि कोई निषिद्ध कर्म किसी समय हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त उसी समय करले और इस सभावना से कि संभव है पिछले जन्मों के कोई संचित निषिद्ध कर्म हों, उनके लिए साधारण प्रायश्चित्त करता रहे। यदि निषिद्ध होंगे तो उनका प्रायश्चित्त हो जायगा, यदि न होंगे तो त्रिहित-कर्म होने से पुण्य रूप हो आयेंगे।

ये कर्म उस समय तक करता रहे जब तक ज्ञान न हो जाय। इन कर्मों से अन्नः करण की शुद्धि होकर गुरुसंग से ज्ञान हो जायगा। जब ज्ञान हो जाय तब कर्म छोड़ दे। जिस प्रकार वनस्पति में पुष्प

फल के लिए है। फल आते ही पुण्य का अभाव हो जाता है। इसी प्रकार ज्ञान होने से कर्म त्याग्य है और वेद भी अकेले कर्म और अकेले ज्ञान का निषेध करता है। यथा —

अधन्तम प्रविशति ये अभिप्राप्तुमासते ।
ततो भूय इव ते, ततो, य उविधायान्, रता ॥

यजु० ४० ॥

बह पुरुष ज्ञा प्रविधा
अथ त् कर्म उपासना
में रत है अधन्तम को
प्राप्त होता है और जो
केवल विद्या अर्थात्
ज्ञान में रत है वह
उसमें भी अधिक
अधिकार को प्राप्त
होता है। इसलिए
ज्ञान कर्म उभय करने
चाहिए परंतु क्रम
से अर्थात् प्रथम ज्ञान
प्राप्त तक कर्म करना
चाहिये और ज्ञान
प्राप्त होने पर कर्म
छाड़ देना चाहिये
क्योंकि कर्म ज्ञान के
लिए है और ज्ञान
मांस के लिए है।
महापि दयानन्द जी ने
भी सत्यार्थ प्रकाश
के नवम समुहनासके
आरम्भ में यह मंत्र
लिख कर विद्या
अविद्या शब्द का ज्ञान और कर्म उपासना ही अथ
किया है। आर्य समाज सम समुच्चयवादी है। यह
कर्म में भी ज्ञान की आवश्यकता मानता है और
ज्ञान बिना कर्म कुछ नहीं है।



[श्री म्यामा स्वत प्रता नन्द जी]

प्रत्येक कर्म, प्रत्येक समय में, प्रत्येक व्यक्तिके
लिए धर्म नहीं हो सकता। अतः यह जानना अत्यंत
आवश्यक है कि किस समय क्या करना चाहिये।
इसलिए गीता में लिखा है कि कर्म किमर्हन्ति
कवयोऽप्यन मोहिता। महा भारत में इस विषय
पर अनेक कथायें लिखी हैं और ज्ञानी को कर्म
किये बिना कुछ नहीं मिलता।

ज्ञान-दीप्य उपनिषद् के
सर्वप्रथम प्रपाठक में
सन्त्कुमर जी ने
नारद को कहा है।

बलराज विज्ञानाद्
भूयोऽपि इह त्विज्ञाना
नवशामेवो बलवाना
कम्पयते।

बल विज्ञान से बड़ा
है। सौ ज्ञानियों को एक
बलवान कपाना है।
इस प्रकार लोगों की
आवश्यकता है। वह
भी समकाल में होना
चाहिये। भिन्न २
काल में नहीं पुस्तकों
में तद् वेद में ऐसे ही
लिख मिलता है यथा—

मौक्तो द्वित्रिविधानिष्ठा
दृष्ट-यैर्मांस्तु बित्तमै बह
तेके ज्ञान लाकेतर रक्ष
सब त्यागश्च कर्मणाम्
ज्ञाननिष्ठा चदत्येके
मोक्ष शास्त्रविदो जना ।
कर्मनिष्ठा तथैवा ये

यतय सूत्र दान ॥ प्रहायोभयमप्येव ज्ञान कर्मच
कबलम। तृतीयया समाख्याया निगा तेनमहत्मना ॥
महाभारत शांति पर्व अध्याय ३२० में मोक्ष के
सा नमो तेन प्रकार की निष्ठा बही गई है। कई एक ज्ञान

को ही साधन मानते हैं और कई एक कर्म को ही साधन बतलाते हैं परंतु मुझे तो केवल ज्ञान, केवल कर्म को छोड़कर तीसरी निष्ठा ही महारमा ने बतलाई है अर्थात् सम—समुच्चयवादः—

यथाश्वा रथहीनाश्च रथाश्च श्वैर्विना यथा ।
एवं तपश्च विद्या च उभावपि तस्मिन् ॥
यथाऽन्नं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन संयुतम् ।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं महत् ॥
द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथावैरक्षिणो गति ।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥
हारीत स्मृति ७, ६, ११.

जैसे अश्व रथ रहित और रथ अश्व बिना ठीक नहीं इसी प्रकार तप (कर्म) ज्ञान पृथक् ठ क नहीं है । जैसे अन्न मिष्ट युक्त और मिष्ट अन्न में मिला अच्छा होता है वही प्रकार तप और ज्ञान मिले हुए ही भेषज हैं । जैसे पक्षी यदि दोनों पक्ष हों तो उड़ सकता है वैसे ही ज्ञान कर्म दोनों से ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

वेदांतसूत्र भी इसमें सहमत हैं:—

विदितस्वात्त्वाभमकर्माः वेदांत ३ ४ :२

इस का विषय वाक्य 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषांत यज्ञेन दानेन, तपसाऽनाशाकेन ।

बृ० ४. ४. २२

आश्रमनिहित कर्म करने चाहिये ।

सहकारित्वेन च । प्र ४. ३३ ।

अग्नि होत्रादि तु तत्कार्योयैव वहरानात् ॥४ १.१६
आश्रम कर्म, अग्नि होत्रादि सहकारी कर्म कर्तव्य हैं । ज्ञानी को भी करने चाहिये । वेद वाचने से ब्रह्मण यज्ञ, दान, तपस्या से ज्ञान की इच्छा करते हैं । इन वचनों से बड़ी सिद्ध होना है, कि ज्ञान कर्म का सम-समुच्चयवाद है । यही अदेश वेद का है —
विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वैरोभयं सह ।

अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायाऽमृतमश्नुते ॥ यजुः० ॥

जो विद्या (ज्ञान) अविद्या (कर्मोपामना) दोनों को साथ २ करता है वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमृत को प्राप्त करता है ।

इस वेद मंत्र में 'उभय मह' पाठ है जिसके अर्थ सम-समुच्चय से भिन्न कुछ हो ही नहीं सकते हैं ।

यही मोक्ष का स्वरूप है । दुःख की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति यही वेद ने मृत्यु और अमृत शब्द से प्रकट किया है ।

अतः महर्षिं दयानन्द का सिद्धांत सम-समुच्चयवाद वेद तथा शास्त्रानुकूल है । केवल कर्म अथवा, केवल ज्ञान और कर्म समुच्चयवाद त्याग्य हैं ।



[वेद का निर्वाचन]

विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते विन्दते विचारयन्ति
सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा तथाविदित्ताश्च भवन्ति ते वेदाः

ऋ० भा० भू० पृ० १० ।

* तैयारी *

[ले०—श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रधान आ० प्र० सभा यू० पी०]



[प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने सिद्ध किया है कि अन्य राष्ट्रों की उन्नति एवं उद्योग शीलता को देखकर आर्यसमाज को सम्यक् प्रकारण्य कार्य क्षेत्र में प्रगति का संचार करने के लिये पूर्ण तैयारी करनी चाहिये । —सम्पादक]



छले महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी प्रायः नष्ट ही हो चुका था। परन्तु हिटलर ने तैयारी आरंभ की और इस विचित्र चातुर्य से काम लिया कि थोड़े ही दिनों में जर्मनी में लाखों यत्र तैयार हो गये। जर्मनी इस समय कोई बन्द देश नहीं था जहाँ यूरोप के अन्य देशों के लग जा न सकते हों। परन्तु अप्रैजों को भी बहुत दिनों तक यह पता नहीं चला कि जर्मनी इतना प्रबल हो गया है। "या निशा सबभूताना तस्या जागति सयमा ।" जब सब स्वप्न की नाद सो रहे थे उस समय जर्मन कारखाने गुप्त रात का अवलम्बन करते हुये चुपचाप यत्र बनाने में सलग्न थे। हिटलर ने कितना तैयारी का और किस प्रकार का इसका विस्तृत वृत्तान्त चांचल महादय स पूछ्य। युद्ध का पारखाम कुछ भा हो, हिटलर का तैयारी ससार के इतहास में चिरस्मरणाय रहेगी चार प्रत्येक सजग व्यक्ति या समाज को इससे शिचा लेनी चाहिये ।

तैयारी के तीन अंग हैं:—पहला उद्देश्य का निश्चित निधोरण, दूसरा उचितराति का बुद्धि मूर्त्क अवलम्बन, तीसरा समय पड़ने तक सम्पादन का अभिगोपन, चौथा शक्ति का नियत्रण और मितव्यय ।

अध्यक्ष्य में इस बात का उल्लेख करने का एक मात्र प्रयोजन यह है कि आर्यसमाज के कार्य को इसी कसौटी से देखा जाय ।

यो तो मैं मानता हूँ कि आर्यसमाज दिन प्रति दिन उन्नति कर रहा है परन्तु मुझे कोई नियम या नियमित तैयारी दिखाई नहीं पड़ती। सच तो यह है कि ऊपर दी हुई चारों बातों में से एक भी ठीक नहीं उतरती। हमारी हजारों संस्थायें चल रही हैं। परन्तु उद्देश्य निर्दिष्ट नहीं, न रीति निर्दिष्ट है। हमारे समस्त कार्य उद्येजना पर चल रहे हैं। उद्येजना अभिगुप्त रह ही नहीं सकती। हमको प्रत्येक कार्य के लिये एक वाहारूप देना पड़ता है। हम चुपचाप कार्य कर ही नहीं सकते। हम को शक्ति बढ़ाना आता ही नहीं। इसमें सदेह नहीं कि हैदरावाद सत्याग्रह में हमने अपनी शक्ति का चमत्कार दिखा दिया, परन्तु उसके पश्चात् हमारी ओर से कोई ऐसा कार्य नहीं किया जा रहा कि जिस को तैयारी कह सकें ।

मेरी समझ में आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् मुसलमानों ने बहुत तैयारियों की हैं। उनकी कई अच्छी संस्थायें हैं, जिनके विषय में लोगों को कुछ नहीं मालूम। वे सैकड़ों कुरान के विद्वान् उत्पन्न कर चुके हैं जो अन्य धर्मों के विषय में भी अच्छा ज्ञान रखते हैं। साकसार संस्था कितनी चुपचाप

आरम्भ हुई । और कितने चुपचाप वह जोर पकड़ गई । क्या आर्यसमाज के व्यक्ति भी कहीं कोई तैयारी कर रहे हैं ? चाहे वह आत्मिक हो, चाहे शारीरिक, चाहे आर्थिक और चाहे सामाजिक । प्रत्येक कार्य व्याख्यान देकर या डोल बजाकर तो नहीं होता । स्वामी दयानन्द भी उस समय तक संसार के सामने नहीं आये जब तक उन्होने

आर्यसमाज निर्जीव होगया । बात यह है कि आर्य समाजिको ने तैयारी के महत्त्व को समझा ही नहीं । हमको याद रखना चाहिये कि गंगोत्री से निकलने के पूर्व गंगा सैकड़ों मील भूमि के नीचे वह चुकती है । तभी इस योग्य होती है कि सैकड़ों मील लम्बे मैदान को सींच सके । हमारी सब संस्थाये उत्तेजना के बल पर चल रही हैं । उनमे नैरन्तर्य नहीं । उनको



आप का नाम इस वर्ष हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधान पद के लिए प्रस्तावित हुआ है ।

विशेष तैयारी न करली । उनसे १८ वर्ष के जीवन मे केवल दस बारह वर्ष ही सर्वाज्ञात जीवन के है । शेष मे तो उनको चुप ही तैयारी करनी पड़ी । परन्तु मैं देखता हूँ कि आर्यों को जगने के क्लिप टाँस बजाने की आवश्यकता है । अन्यथा यह सोने लगते हैं और कहना आरंभ कर देते हैं कि अक्ष

जीविन रखने के लिये कोई जोश दिलाने वाली चीज चाहिये, जिसे अंग्रेजी मे 'भिल' कहते है । हम इन्केशन के बल पर जी रहे हैं । मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ । क्या यह परिस्थिति विचार करने योग्य है ?

राष्ट्रोद्धारक दयानन्द

[ले०—राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री न्यायभूषण प्रधान, भा० आ० कु० परिषद्]



[उपस्थित लेख मे लेखक महादय ने स्वामी दयानन्द राष्ट्रोद्धारक थे इस बात का प्रतिपादन किया है। एवं बताया है कि महर्षि के ग्रन्थों में राष्ट्रोद्धार के भाव प्रचुरतया भरे पड़े हैं।
—सम्पादक]



वर्षा नदी के निकट नन्दनगर मे मन्दमति और विमल विचार नामक दो मित्र रहते थे। प्रतिदिन साय समय भ्रमण करने के लिए एक साथ ही जाया करते थे। एक दिन अपने अपने निकेतन से निकल जब चतुष्पथ पर पहुँचे तो देखा कि नगर निवासी अनेक नर नारी नबदा नदी के तट की ओर जा रहे हैं। मन्दमति ने मन मे सोचा कि इधर न थियेटर है, न सिनेमा है, न कोई मेला है और न आज कोई पुण्य पर्व है पुन इधर क्यों ये जन जा रहे हैं। जब इस प्रकार के उहापाह मे अधिक समय समाप्त हो गया और स्वीय स्वान्न में सन्-समाधान समुपलब्ध न हुआ तो विमल विचार से पूछा। उसने उत्तर मे कहा कि नबदा नदी के निकट एक साधु-स्वभाव पुरातन पुरुष रहते हैं। सामान्यतया प्रतिदिन और विशेषतया पूर्णमामी को अनेक नर नारी उनके समीप समुपस्थित हो सदुपदेश श्रवणकर क्लान्त ग्लान मन का सर्वत शान्त करने में समर्थ होते हैं। अभी कुछ अधिक कहना ही चाहता था कि मन्दमति बीच मे ही कहने लगा कि मुझे आर्यसमाज स बहुत घृणा हो गई है। ये लोग भी पौराणिकों के समान ही धर्म धुरीण्य है, ऐसा प्रतीत होता है कि इनको इनके नेता ने राष्ट्रोद्धार पा पाठ ही नहीं पढ़ाया है।

विमल विचार—नहीं नहीं, ऐसा न कही क्योंकि सब से प्रथम भारतीय जन मन मे राष्ट्रोद्धार की भावना भरने वाले इन्हीं के नेता महर्षि दयानन्द जी महाराज ही हैं।

मन्दमति नहीं नहीं, तुम्हारा परिज्ञान प्रचुर परिमित प्रतीत होता है क्योंकि राष्ट्रोद्धार की भावना भरने का कार्य तो जातीय महासभा “कॉंग्रेस” ने किया है।

विमल विचार—मेरा परिज्ञान प्रचुर परिमित है कथवा आपका है, इसका निर्णय किसी अन्यपुरुष से कराना चाहिए। चलो, चलकर पुरातन पुरुष से पूछ।

मन्दमति—यदि आपने कुछ शिचय प्राप्त किया हो तो आप ही सुनादे।

विमल विचार—भारत के भाग्य मानु भगवान् देव दयानन्द ज महाहात ने भारतीय जन जीवन मे राष्ट्रोद्धार, राष्ट्रीय एकता राजनीति की आर्कादा, और स्वराज्य सकल्प की प्रचुर प्रशस्त भावना भरने का उस समय प्रयत्न किया था जब कि महासभा कांग्रेस का जात कर्म सरकार भी सपन्न नहीं हुआ था, शासन सुधारको ने स्वराज्य स्वप्न भी नहीं देखा था, स्वराज्य और स्वायत्ताशासन सार को समझने का अल्पमति प्रयत्न नहीं किया था, उस समय भारत का राष्ट्र—नय शिशु समान था, अपने आप को राज, नीत में निपुण समझने वाले राजन उसको संभालने में समर्थ ही थे।

मन्दमति—मैं आपके उन व्याख्यान बक्कर को भवण करने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ। यदि आपके कथन को पुष्ट वे कोई प्रशस्त प्रमाण हो तो उसको प्रस्तुत करने का प्रयास करे।

बिमल विचार—चलो, पुरातन पुरुष के पास चले, वे ही सबके लिए प्रशस्त प्रमाण हैं।

पुरातन पुरुष के पास पहुँच, चरण स्पर्श कर आर नमस्ते कहकर समीप में बैठ गये। विमल ने अपना पूव कथित अविकल सकल वृत्त उनक समन्त व्यक्त कर पूछा कि महाराज! मेरे कथन में कुछ भी सत्याश है या नहीं?

पुरातन पुरुष—बिमल! आपके कथन में सत्य का आश ही नहीं अपितु आपका कथन अविकल सकल सत्य का आश है।

मन्दमति—महाराज! आपका कल, कथन मात्र ही प्रचुर प्रशस्त प्रमाण है अथवा प्रमाणान्तर भी प्रस्तुत कर सकते हैं?

पुरातन पुरुष—आपको कैसा प्रमाण प्रभूत पसन्द होगा?

मन्दमति—आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी महाराज का भी इन सम्बन्ध में सम्मति समुपस्थित कर सकते हैं? उन्होंने कहीं कुछ लिखा भी है?

पुरातन पुरुष—जी हाँ, लिखा है और अल्प नहीं अपितु अत्यधिक लिखा है।

मन्दमति—कहाँ क्या लिखा है?

पुरातन पुरुष ने सजिले सुन्दर पुस्तक लेकर पढ़ना प्रारम्भ—यह कहते हुए—कर दया कि सन् १६०६ म द द्वा भाई गीराजी ने "स्वराज्य" का



श्री सुरेन्द्र शान्दा

व्याख्यान किया था और सन् १६१६ की लखनऊ कॉमिंस में "स्वराज्य जन्मसिद्ध अधिकार है" यह घोषणा की थी। सन् १६२५ में लाहौर काग्रेस ने "पूरा स्वराज्य" का घोषणा की किन्तु इन घोषणाओं से प्रभूत पूर्व ही महर्षि महाराज ने अपने विमलविचार

इस प्रकार व्यक्त कर दिये थे। 'जा स्वदेशा राज्य हाता है वह सर्वोपरि उत्तम हाता है, मतमतात्तर के आग्रह रहित, अपने पराये का पक्षपात शून्य - प्रजापर विता-माता के समान कृपान्धाय एव दया के

साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्वोत्तरायक नहीं है। देश और देशी नरेशों की दयनीय दशा से दुग्धित हाकर सस्थाथ प्रकाश में माननीय महाराज ने लिखा है कि "अब अभाग्योदय से आर आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों में राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी है, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का नखण्ड, स्वतन्त्र, स्वा-

धीन निर्भय राज्य इन समय नहीं है। जो कुछ है वह विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दैव जब आता है, तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी पंच बन बैठता है।

“आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का अश्वानाश हो गया सो तो हो ही गया परन्तु अबतक भी वही रोग पड़े लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी पीछा छोड़ेगा अथवा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबो मारेगा, उसी दुष्ट गात्र हत्यारे स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं”। राष्ट्ररत्न के कारण को बताकर ऋषि ने राष्ट्रोद्धार का कारण यह लिखा है “जब तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख दुःख परम्पर न माने तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है”। “क्या विना देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में राज्य व व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है” ? “यह आर्यावर्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है इसलिए इस भूमि का नाम स्वर्गाभूमि है। क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों का उत्पन्न करती है। जिनने भूगोल में देगा है वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं। पारसमणि पत्थर सुना जाता है यह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त ही सच्चा पारसमणि है कि जिस को लोह रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हा जाते हैं।”

महर्षि के मन में किन्हीं भारतीय भव्य भावना भरी थी इन पक्तियों के पढ़ने से प्रकट होता है। पराधीनता पिशाचिनी को पराजित करने के लिए महाराज ने यजुर्वेद अध्याय अड़तीस के चौदहवें मन्त्र के व्याख्यान में कितना स्पष्ट लिखा है—“हे महाराजाधिराज ! परब्रह्म परमात्मन् ! त्वाग्र्य-अखण्ड षक्रवती राज्य के लिए नीति, धैर्य, शौर्य,

विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुण युक्त कृपा से हम लोग दयावन् पुष्ट होंगे। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों, तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।”

दीनता-दुर्ग को तोड़ने वाली भावना से भरा हुआ मन्त्र दिन में दो बार स्मृति पथ में आये इस लिए सन्ध्या में “अदीनाः भ्याम शरदः शान्म ॥ विनियुक्त कर अर्थ कर दिया कि हम सौ वर्ष की आयु में कभी भी पराधीन न हों और स्वाधीन ही रहें। मन्त्रान्तर के व्याख्यान में भी प्रार्थना रूप में लिखा है कि “आपकी कृपा “भ्रवरगन्म” हम उत्तम सुख को प्राप्त हो, जब तक जीवें तब तक सदा षक्रवती राज्य अदि भोग से सुखी रहे।

भारत भवन को स्वातन्त्र्य सुभूषण से विभूषित करने के लिए महाराज अपना प्रवचन प्रारम्भ करते थे उस समय प्रकृति नटीके प्रेम पाश में पड़े पुरुष, मानवीय मुख्य मन्त्रय के मनन करने में स्नान मन मनुष्य और निद्राश निद्रा में निमग्न नगों का हृदय-उल्लसने, रत्नाह्रमण्डने, साहस बढ़ने, अग फडकने और जातीय जीवन का खूब खोलने लग जाना था। परान्त पुरुष का प्रवचन प्रचलित ही था कि घड़ी की टन टन ने दम बजादिये। पुरातन पुरुष ने कहा कि अब शयन-समय समुपस्थित हो गया है अतएव आप सब स्व स्व सदन को जाओ। एक बार सब मितकः बोले “राष्ट्रोद्धारक देव दयानन्द की जय !”

रन्दमति ने मन में प्रभूत परात्ताप कर विमल विचार से पढ़ा कि मित्र। स्वामी जी के सद्ग्रन्थों में बहुत ही राष्ट्रीय भव्य भावना भरे भाव विद्यमान हैं। इस सुमन सदा का साहस जब तक किसी ने क्यों नहीं किया ?

विमल विचार—आपने कभी प्रकाशित पुस्तकों के पढ़ने का प्रयत्न भी किया है श्री पं० सत्य देव जी विद्यालंकार स्यादक हिन्दुस्तान ने “राष्ट्रवादी दयानन्द” नाम की पुस्तक में सुमन संचित कर दिये हैं। इस प्रकार मार्ग में विचार विनिमय करते हुए अपने अपने कमरे में जा बिगोजे।

शिल्पकारों का वैदिक वर्णव्यवस्था में स्थान

(ले०—१० ब० श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० रि० चीफ जज टेहरी)

[इस लेख में सुविख्यात लेखक महोदय ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि शिल्पकारों की प्रशासना में अनेक वेद मन्त्र हैं। हमें शिल्पकारों की अछूतों में नगणना नहीं करनी चाहिये। उनकी गणना वैश्य वर्ण में होनी चाहिये।

—सम्पादनक]



वर्तीय प्रदेशों में लुहार, सुनार, कुम्हार, चर्मकार राज, बढई, दर्जी, कोली, जुलाहे आदि सभी शिल्पकारों को नीच समझते हैं और डोम नाम से पुकारते हैं। डोम शब्द वास्तव में ऐसी नीच जातियों के लिए आता है, जो

जरायम पेशा (Criminal tribes)

वाले हों अर्थात् चोरी आदि का व्यवसाय करते हों, इसलिए बहुत घृणित है। स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने सन् १६११ ई० में, जब कि वे कुमाऊँ प्रदेश को गये थे और इन जातियों में सुधार का कार्य किया, इनका नाम शिल्पकार रखवा। तभी से पर्वतीय जिलों में ये लोग शिल्पकार कहलाते और लिखे जाते हैं। हालमें जिला गढ़वाल और नैनीताल के बहुत से शिल्पकार अपने आपको आर्य कहते और लिखाते हैं।

भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों में भी उपर्युक्त जातियों की गणना शूद्रों में होनी है, और उनमें से कुछ अछूत भी समझे जाते हैं।

वास्तव में इन सब जातियों की गणना वैश्यों में होनी चाहिए। वैश्य शब्द विश् शब्द से बना है जिसका अर्थ प्रजा (Peoples) है। इसके विस्तृत अर्थ के अनुसार चारों वर्ण अर्थात् सारी प्रजा विश् कहलाती है और राजा को वेदों में

“विशामपति” कहा है। विश् शब्द के दूसरे अर्थ शूद्रों को छोड़कर अन्य तीन वर्णों के हैं। इस शब्द का संकुचित अर्थ ब्राह्मण, क्षत्री और शूद्र को छोड़कर केवल वैश्यवर्ण है।

ब्राह्मणों की संख्या थोड़ी हो सकती है क्यों कि उनमें केवल अध्यापक, उपदेशक और नेता आदि ही हो सकते हैं। क्षत्रियों की संख्या भी अल्प ही होगी क्यों कि उनमें केवल सिपाही Soldier आदि होंगे। शूद्रों की संख्या भी बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए, उनमें मुख्यतया मजदूर व घरके नौकर आदि Menials होंगे। और सब मनुष्य जिनमें किसान, ज़िमीदार लेन देन करने वाले, व्यापारी और सब प्रकार के शिल्पी सुनार, लुहार, कुम्हार, तमाटे, चमार कोली जुलाहे, दर्जी, और इसी प्रकार अन्य व्यवसाय करने वाले, शामिल हैं, वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार वैश्य हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरु तदस्य यद् वैश्य पदुभ्यामशूद्रोऽजायत ॥

इस सुप्रसिद्ध वेदमन्त्र में मनुष्य समाज का वर्णन विराट् रूपसे एक पुरुष के समान किया गया है इसमें ब्राह्मण शिर स्थानी कहे गये हैं। क्षत्रिय बाहुरूप, शूद्र पादरूप, और की तुलना

(शेष पृष्ठ ७३ पर देखिये)

कारातीर्थ से वेदतीर्थ जी का सन्देश

[ले०—श्री नरदेव शास्त्री, वेद तीर्थ]

[प्रस्तुत लेख के लेखक सम्प्रति जेल में हैं, उन्होंने वही से इस लेख को भेजा है; लेख में आपने इस बात को सिद्ध किया है कि पारचात्य समाजवाद आध्यात्मिकवाद से शून्य विज्ञानवाद के आश्रित होने के कारण जनता के लिये घातक है। अध्यात्मवाद ही हमारी उन्नति का कारण है। —सम्पादक]



श्चात्य समाजवाद अस्वाभाविक समाज-वाद हैं। उनके वर्गवाद, साम्यवाद, समाजवाद, राष्ट्रीय समाजवाद, वैज्ञानिक समाजवाद, फैंसिटवाद सबके सब आध्यात्मिकवाद से शून्य होने के कारण अस्वाभाविक हैं। इसीलिए ये ऋत अर्थात् पारमार्थिक सत्य (Ethic of right and good action) स्वभावानुरूप स्वाधिकार तथा स्वबर्मे के तत्व को नहीं जानते। इसीलिए पारचात्य देशों में स्वजीवननिर्वाह के लिए इतनी घोर अशान्ति रहती है। पारचात्यों के बाद धर्म शून्य विज्ञानवाद के आश्रयीभूत होने के कारण संसार को लेश पहुँचा रहे हैं। भारतीय समाजवाद अध्यात्मसूत्र से ओत-प्रोत था इसीलिए इतनी दासता, इतनी परगानीता इतने परचक्र, इतनी अनर्थ-परम्परा के होते हुए भी श्वास प्रश्वास लेने में समर्थ हो रहा है। अब भी इसी अध्यात्मवाद से प्रभावित स्वसंस्कृति के कारण संसार को यथार्थ मार्ग बतलाने की शक्ति रखता है इसका धर्म इसकी संस्कृति, इसका अध्यात्मवाद अब भी इसको "संसार का गुरु" बहला रहा है—

most important of all the sciences as is being widely recognised in the West also, now, while modern socialism or communism, which calls itself scientific, fails to be so, because it ignores and even goes positively against some fundamental facts and laws of human nature & therefore will fail to realise its objective and fail exactly in the degree in and to the extent, which it violates those facts and laws

All this world or objects which is named by the word "this" is made of and by the ideation Hence none who knows not the Science of Self can carry action to the fruitful issues. He who knows the inner purpose of the laws of process and its orders, ideated by the self-existent, he alone can rightly ascertain and enjoin the right and duties of the different classes of human beings of their social (Varna-) occupations and vocations and of their Ashrams—stages in life "

श्री डा० भगवानदास जी ने Science of Self नामक अपनी पुस्तक में क्या ही अच्छा कहा है।

It is the ancient socialism, which some are convinced, is truly scientific because based on Science of Psychology the

इसका अर्थ यह है कि अनेकों का विरवास है कि प्राचीन समाजवाद ही सच्चे अर्थों में वैज्ञानिक समाजवाद है क्योंकि वह अध्यात्मवाद पर निर्भर है। अध्यात्मवाद सब विज्ञानों में श्रेष्ठ विज्ञान है पारचात्य देशों के विद्वान् भी अब इस बात को

मानने लग गये हैं। पारश्चात्य देशों के वर्तमान समाजवाद मौलिक प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध हैं, मनुष्य स्वभाव से विरुद्ध हैं, इसीलिए असफल हो रहे हैं।

यह भौतिक जगत् जिसको हम "इदम्" (यह) इस नाम से पुकारते हैं या कहते हैं किसी विशिष्ट रूपना अथवा व्यवस्था पर निर्भर है। इसीलिए जो

का, आर्यसंस्कृति का पोषक, धारक, आर्यराज्य अथवा आर्यसाम्राज्य एक सङ्ख्य वर्ष से नहीं रहा तथापि अध्यात्मवाद के आधार पर स्थित वर्णाश्रम धर्म के जो भग्नावशेष अब भी दिखलायी दे रहे हैं उनसे भारत की स्वाभाविक समाजवाद की महत्ता संसार भर को विदित होगई है। इस मानव धर्म को न समझने के कारण ही सब देशों के राष्ट्रों के समाज विस्त्-



श्री नरदेव जी शास्त्री, वेद तीर्थ

लोग इसके भीतर आत-प्रोत अध्यात्मसूत्र को नहीं जानते वे कभी सफल नहीं हो सकते। वे भिन्न भिन्न वर्णों अथवा आश्रमों के यथार्थ कर्तव्यों को भी नहीं जान सकते। भगवान् मनु ने ठीक ही कहा है कि —

“न ह्यनध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमपश्यते”

जो अध्यात्म तत्व नहीं जानता उसका क्रियार्थ कभी भी सफल नहीं हो सकती। यद्यपि आर्यधर्म

लित हो रहे हैं। उनकी आसुरी-वृत्ति बढ़ रही है। हमारे प्राचीन-तम पूर्वज अपनी परम्परा द्वारा जिस ऋत नामक सत्य का प्रचार तथा प्रसार करते थे उसी का बल पूर्वक प्रचार करना आर्यसमाज का परम कर्तव्य है। स्वामी दयानन्द का अवतर ही इसी ऋत के उद्धार के लिये था। इसी ऋत के प्रचार में उन्होंने अपने प्राण अर्पण किये।

महर्षि-संदेश—



लेखक—

श्री पं० अनूप शर्मा एम्० ए० पल० टी०



(१)

आर्य करो सकल अनार्य जगती तल के,
 सब मनुजों को पाठ वैदिक पदाओ क्यों न ।
 मेट दो कुरीतियाँ सकल पोप-पंथियों की,
 अपनी सुमति धर्म-ध्यान मे दृढ़ाओ क्यों न ।
 भारतीय केन्द्र से 'अनूप' चारों ओर आप,
 वृत्त आय-माँ का अति विस्तृत बढ़ाओ क्यों न ।
 करदो नवीन विश्व-क्षेत्र शुद्ध भावना से,
 रुड कर्म पै औ' मुंड धर्म पै चढ़ाओ क्यों न ।

(२)

जब लौं हिमालय प्रपूत करे योगियों को,
 जब लौं प्रशस्त जाहूवी की लहरी रहे ।
 तब लौं प्रचार मानवो मे वेद - धर्म का हो,
 तब लौं सुवृत्ति भावना में गहरी रहे ।
 और, भवदीय बुद्धि समय-प्रवाह-मध्य,
 पु डरीक - नाल-सी सदैव ठहरी रहे ।
 छाई रहे चाँदनी तुम्हारे कीर्ति - चंद्रमा की,
 आर्य-धर्म प्रेम की पताका फहरी रहे ।

(३)

प्रीति हो निगम में, प्रतीति रहे आगम में,
 भीति रहे पाप से सुनीति पुण्य - काज हो ।
 पाव नही विजय विधर्म धर्म-भावना पै,
 दस्युओं पै सर्वदा तुम्हारा जय - साज हो ।
 एक ज्ञान - दीपक को तरस रहे हैं लोग,
 दीप मालिका में आर्य - साधना का राज हो ।
 जगमग ज्वलित अमा के गगन स्थल-सा,
 आर्य-भाव-योजना से बलित समाज हो ।



ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्र को पढ़ो ।

(ले०—श्री ५० दीवानचन्द शर्मा एम० ए० प्रधान मंत्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर)



[इस लेख में विद्वान् लेखक ने बताया है कि मह पुरुषों के जीवन चरित्र का अध्ययन हमारे जीवन में अद्भुत चमत्कार एवं परिवर्तन कर सकता है। वक्तमन समय में महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र के अध्ययन से अपरिमेय लाभ हो सकता है। —सम्पादक]



लोग ससार के इतिहास को पढ़ते हैं उनको ज्ञात होगा कि अमरीका में कल रंग के बहुत से हवशी आबाद हैं जिनके साथ आजकल भी वैसा बर्ताव स्कूलों, कालेजों, कचहरियों और पब्लिक स्थानों में नहीं किया जाता है जैसा कि वहाँ के गारे रंग के लोगों के साथ किया जाता है। कुछ वर्ष गुजरे जबकि अमरीका में एक बड़ी भारी खाना गी हुई। जिसका कारण यह था कि अया हबशियों को स्वतन्त्रा दी जाये या नहीं। इस युद्ध में मौका पर अमरीका का रियासत दो हस्तों में बट गई एक हिस्सा वह था जो ह-शियों को स्वतन्त्रता देने के लिये था और दूसरा वह था जो चाहता था कि इन को हमेशा के लिये गुलाम रखा जाये। हबशियों को आजाद कराने वाले पक्ष का नेता इब्राहीम लिफ्त था जो उस समय का प्रधान भी था। उसने बड़ी बुद्धिमत्ता हमले और गम्भीरता से उस प्रश्न का निपटारा और न ही केवल हबशियों को आजादी दिलवाई, अपितु, अमरीका को भी दो हिस्सों में होने से बचा लिया इन दो बातों के कारण इब्राहीम लिफ्त का नाम अमरीका के इतिहास में एक

खास स्थान रखता है। केवल अमरीका के इतिहास में नहीं अपितु उसकी गणना ससार भरके बड़े आदिमियों में है। जिस समय यह हवशी लोग आजाद हुए तो इन आजाद हबशियों में एक बच्चा भी था जिसकी आयु उस समय शायद २३ वर्ष की थी यह बच्चा बढ़ता गया और नोजवान हुआ। इन्होंने अपने आप को तरलाम दी परन्तु विद्या ग्रहण करके इसने केवल अपनी ही उन्नति नहीं का बल्कि इस बात की बड़ा कशिरा की कि हवशी कौम तरकी करे। चुनाचे उसने इनके लिये एक बड़ा विद्यालय खला उस विद्यालय को श्रीमान् ला० लाजपतराय जी ने जबकि वह अमरीका में थे देखा और इसकी बड़ी प्रशंसा की। कुछ समय के पश्चात् उस बार पुरुष ने अपनी एक जावनी लिखी। मैंने इस जीवन चरित्र का दो बार अध्ययन के बाद मैंने साचा कि वह कौन सी बात थी जिसने पुनर्जीवित वाशिंगटन का इस बात के लिये तय्यर किया कि वह अपना जीवन जातीय सेवा में लगाये। इस पर विचार करने के बाद मैं इस नताजे पर पढ़चा कि बुकट की वाशिंगटन का जीवन में शान्ति लाने वाला दो बातें थी एक सन् पुरुषों का सत्संग और दूसरा महापुरुषों के जीवनों का अध्ययन। उसने अपनी जीवनी में

एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है कि जो कुछ उसने सीखा वह केवल वित्तियों से ही नहीं सीखा अपितु महापुरुषों के सत्संग से सीखा है। और इसके साथ ही उसने ऐसे महापुरुषों के जीवनो को पढ़ा जिन्होंने संसार के उपकार के लिये अपनी अपनी जिन्दगियों को न्यौछावर किया। मेरा इस घटना को लिखने का यह तात्पर्य है कि हम समझे कि सत्संग और महापुरुषों के जीवन चरित्र को पढ़ने से हमारे अन्दर कैपे २ परिवर्तन आ सकते हैं।

मैं आम तौर पर देखता हू कि लोगों में स्वाध्याय करने की रुचि है और कई भाई ऐसे भी हैं जो धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना अपना कर्तव्य समझते हैं। मैं कई लोगों को देखता हू कि जो अपने महापुरुषों के जीवनो का स्वाध्याय भी करते हैं परन्तु साधारण रूपसे मुझे यह जान पड़ता है कि हमारे भाई अन्य देशों के महापुरुषों की जीवनियों का पढ़ना ही अपना कर्तव्य समझते हैं जैसे कि हमारे अग्रज पढ़े लिखे भाई आजकल हिटलर मुसालिनी लैनिन तथा अन्य विदेशी राजनातिक नेताओं के जीवन चरित्रों का पढ़ने में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। मैं यह नहीं कहता कि इन लोगों के जीवनो में कोई बड़ाई नहीं थी। उनके जीवनो में बड़ा अवश्य थी अन्यथा न वे लोग इतने प्रसिद्ध हो जाते और नहीं अपनी जात तथा दशा के रक्षक बनते। परन्तु जहा तक मैंने उनके जीवनो को पढ़ा है मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि उन लोगों के मनमें अहंकार तथा क्रोध की मात्रा बहुत अधिक है। हिटलर को ही देखिये। उसके स्वयं लिखित जीवनो को जर्मनी में एक धार्मिक पुस्तक का श्रेय दिया जाता है। उसकी पुस्तक को पढ़ने से ही ज्ञात होता है कि संसार में जो कुछ भी है

वह हिटलर ही है और जो कुछ वह लिखता है, वह सोलई आने सत्य है, जो मनुष्य उसकी बातों को नहीं मानते वह निकम्मे और मूर्ख हैं। इसी प्रकार मुसालिनी के जीवन चरित्र को पढ़कर भी प्रायः ऐसे ही विचार मनमें आते हैं। परन्तु मेरे मनमें यदि कोई चरित्र ऐसा है जिसके पाठसे मनुष्य के मनमें सचाई की तड़प चरित्र संगठन की इच्छा जाति तथा देश सेवा की लगन तथा ईश्वर से प्रेम उत्पन्न होता है तो वह ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र है। खेद है कि ऋषि जीवनो को वह लोग जो आर्यसमाजी नहीं उस शोक से नहीं पढ़ते जैसे कि उन्हें पढ़ना चाहिये परन्तु जब कभी मैं ऋषि के जीवन वृत्तान्त का पढ़ता हूँ तो मेरे मन में सब से पहली भावना यह उत्पन्न होती है कि ऋषि का जीवन ऐसे साँचे में ढला हुआ था जो वैदिक आदर्श और आर्य सभ्यता का साँचा था। सबसे पहिली शिक्षा जो वैदिक धर्म हमें देता है वह यह है कि हम अपने आपको सर्वांग पूर्ण बनायें। हम अपने आपको शारीरिक मानसिक आत्मिक तथा अध्यात्मिक उन्नति का नमूना बनायें। हमारे शास्त्रों में यह कहीं नहीं लिखा कि हम अपनी शारीरिक उन्नति का ध्यान न रखें। न हमारे धर्म में ही कहीं मानसिक उन्नति पर कुन्हाड़ा चलाया गया। आजकल के देशों का देखिये कि वहाँ शारीरिक उन्नति की परवाह की जाती है परन्तु मानसिक उन्नति पर इतना विचार नहीं किया जाता आत्मिक तथा अध्यात्मिक उन्नति की तो उनके प्रोग्राम में गुञ्जायश ही नहीं। परन्तु ऋषि दयानन्द इन चारों प्रकार की उन्नतियों के आदर्श रूप थे। उनकी शारीरिक उन्नति का अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह जीवन भर ब्रह्मचारी रहे और उन्होंने अपने ब्रह्मचर्य बल को एक बार नहीं कई बार प्रमाणित किया। यह उनके शारीरिक बल का ही तो प्रभाव था कि उन्हें

कई बार विप दिया गया परन्तु वह भी उन पर इतना प्रभाव न कर सका जितना साधारण पुरुषों पर करता है। उनके मानसिक बल का यह हाल था। कि वह केवल शास्त्रों के पेचीदा से पेचीदा सिद्धान्तों को न समझ सकते थे बरन् उनपर लोगों के लिए भी प्रकाश डाल सकते थे। उनका वेद भाष्य उनकी मानसिक शक्ति, योग बल तथा प्रतिभा का ही तो एक अमूल्य उदाहरण था। इस वेद भाष्य की रक्षावा जहाँ श्री अरविन्द घोस जैसे योग्य भारत-वासी ने की है। वहाँ बड़े बड़े विद्वानों ने भी की है। आज कल के जो भी विद्वान् उनके वेद भाष्य को द्रोप की पट्टी उतारकर पढ़ते हैं वह यह मान जाते हैं कि ऋषि दयानन्द की मानसिक शक्ति कितनी प्रबल थी और उनकी बुद्धि कितनी तीव्र तथा दूर-दर्शी थी। इसके साथ ही:—

उनमें आत्मिक बल का चमत्कार था। साधारण तथा यह कहा जाता है कि यम तथा नियमों का पालन करने से ही मनुष्य का आत्मिक बल बढ़ता है। ऋषि ने इन यमों तथा नियमों का भली भाँति पालन किया था। इसी लिये उनमें नियमता सत्य-प्रेम-सहानुभूति तथा शान्ति थी। सारांश यह है कि उनकी आत्मा का विकास भी बड़ी उच्च कोटि का था। और ऐसा था कि जैसा इस संसार में कम आदिमियों को नसीब होता है।

परन्तु सबसे बढ़कर बात उनमें यह थी कि वह अपने आप को सदैव ईश्वर का सेवक समझते थे। सार यह कि उनके जीवन में वह अहंकार नहीं

था। जो आज कलके राजनैतिक नेताओं में पाया जाता है। इसी लिये ऋषि-जीवन को पढ़ने से मैं यह समझता हूँ कि मनुष्यके मनमें उनके समस्त गुणों को अपने अन्दर धारण करने की इच्छा पैदा होती है अतएव मैं समझता हूँ कि ऋषिदयानन्द का जीवन हमारे जीवन को उच्च बनाने के लिये एक बहुमूल्य साधन है। यदि कोई मनुष्य ऋषिजीवन का बार २ स्वाध्याय करे, तो मुझे विश्वास है कि उसके मनमें यह इच्छा अवश्य पैदा होगी कि वह अपने शरीर को सुदृढ़ बनाये। वह अपनी मानसिक शक्तियों की उन्नति करे और आत्मिक शक्तियों को चमकाए। उसमें ईश्वर परायणता का अंश बढ़े, और उसमें सेवा की इच्छा अधिक हो। सारांश यह है कि ऋषि-जीवन को पढ़ने से हमारे मनमें उन सभी गुणों का धारण करने की इच्छा पैदा होगी, जिन गुणों के प्रभाव से हम अपने आपको वास्तव में एक श्रेष्ठ पुरुष कह सकते हैं। अतः मैं अपने आर्यभाइयों से प्रार्थना करूँगा कि वह न केवल स्वयम् ही ऋषि-जीवन को पढ़कर उसके अनुकूल आचरण करें, वरन् उन भाइयों तथा मित्रों को भी जो आर्यसमाजी नहीं, हैं यह प्रेरणा करें कि वह भी ऋषिजीवन के स्वाध्याय से लाभ उठावें। मैं समझता हूँ कि ऋषि के पद चिन्हों पर चलने से ही हम अपनी उन्नति, अपने देश तथा जाति की उन्नति और संसार की उन्नति कर सकते हैं।

प्रणव ही मुख्य नाम है।

सब वेदादि शास्त्रों में परमेस्वर का प्रधान और निज नाम ओ३म् को कहा है अन्य सब गौण नाम हैं।

ऋषि की समन्वय दृष्टि ।

[ले — श्री आचार्य बृहस्पति शास्त्री, वेदशिरोमणि]



[उपस्थित लेख में लेखक महोदय ने यह प्रदर्शित किया है कि महर्षि दयानन्द सम्पूर्ण जगत को समन्वय दृष्टि से देखते थे। संसार में प्रचलित द्वेष-पूर्ण नाना मतमतान्तरों का खण्डन-सबमें साम्यभावन। भरने के लिये ही किया एवं वेदविहित धर्म को ही समन्वित एवं व्यावहारिक बताया। — सम्पादक]



र्षि के लेखों और उनके जीवन की अनेक घटनाओं और कार्यों से यह बात भली भांति स्पष्ट होती है कि वे संसार के नाना मत मतान्तरों को पारम्परिक द्वेष और अशान्ति का मूल कारण

समझते थे, इसीलिये उन्होंने समस्त मनुष्य जाति के कल्याण के लिये एक ऐसे धर्म का प्रकाश और प्रचार किया जो किसी मत विशेष अथवा देश जाति विशेष के आग्रह से रहित हो और जिसमें उन समस्त बुद्धि संगत मौलिक सत्य-तत्त्वों का समावेश ही जिन पर मानव जाति का कल्याण प्राकाशित है। इसी उद्देश्य से उन्होंने महारानी विक्टोरिया के देहली दरबार के अवसर पर देश के नानामतों के प्रमुख व्यक्तियों को सभा बुलाकर एक मत होने का प्रबल प्रवृत्त किया किन्तु ऋषि उसमें सफल नहीं हो सके। उसका कारण . . . ऋषि का वेद और ईश्वर में दृढ़ विश्वास। प्रचार कार्य के प्रारम्भ करने से पूर्व अपने जीवन के लगभग चालीस वर्षों उन्होंने निरन्तर स्वाध्याय, तप, समाधि, दीक्षा और एकान्त गम्भीर मनन में व्यतीत किये थे। उनका यह समस्त जीवन एक जिज्ञासु की सत्य की खोज और सत्य के परीक्षणों से पूर्ण है। उक्त विश्वास उसी खोज का एक सुनिश्चित परिणाम

था। अतः वेद के विषय में वे ईसाई, मुसलमान आदि से और ईश्वर के विषय में देव समाजी और धियोसोफिस्टों आदि के साथ मुलह नहीं कर सकते थे वे अनुभव करते थे कि जिस मनुष्य के हृदय में ईश्वर-विश्वास का बल, और मस्तिष्क में ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश नहीं वह एक असहाय एकाकी अंधे के समान, संसार के इस भीषण दुर्गम मार्ग में भटकना ही रहेगा।

किन्तु ऋषि ने देखा कि ईश्वरीय ज्ञान वैदिक स्रोत से निकले हुए होने पर भी नानामतों ने वैदिक धर्म के सर्वाङ्गीण स्वरूप को भुलाकर धर्म के केवल एक एक ही अंग विशेष को धर्म समझ लिया है। और धर्म के शुद्ध एवं सर्वाङ्ग स्वरूप का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण ये नानामत अपनी-एक-एक बात को ही आग्रह पूर्वक लिये हुए बैठे हैं। तथा अपने इस आग्रह के कारण धर्म के अन्य अंगों को अनाश्यक और अधर्म समझे हुए हैं। जैन बौद्ध, मुस्लिम और ईसाई मतों में तो यह एकांत आग्रह था ही भारतीय आर्य धर्म में भी इसके कारण . . . अनेक मतमतान्तरों की सृष्टि हो गई।

उदाहरणार्थ— (१) वेद में अग्नि, इन्द्र, रुद्र, विष्णु आदि अनेक नामों से उसी एक ब्रह्म की शक्ति और गुणादि का वर्णन एवं उसी की स्तुति प्राग्भैरवोपासना का विधान है। किन्तु पौराणिक साम्प्र-

दायियों और वैदिक साहित्य के पश्चिमी विद्वानों ने वेद के इस आशय को और वेदार्थ की यथार्थ शैली को न समझ कर अनेक देवी देवताओं की कल्पनाएँ कर लीं, पश्चिमी विद्वान् भी प्रारम्भ में (Poly-theism, Mono-theism) अनेक देववाद आदि के व्यामोह में पड़ गए। किन्तु जब ऋषि दयानन्द ने वेदों के समन्वित अर्थ करते हुए व्यापकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया, तब प्रो० मैक्समूलर जैसे विदेशी विद्वान को भी अपने जीवन के अन्तिम काल में वेद में (Heno-theism) शब्द की मृष्टि करनी पड़ी।

(२) इसी प्रकार षड् दर्शनों द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक तत्त्वों के विषय में भी अधिकांश मध्य कालीन भाष्यकारों और आधुनिक पण्डितों में यह भ्रम रहा कि वे दर्शन परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। किन्तु ऋषि दयानन्द ने उन सबका समन्वय करते हुए यह सिद्ध किया कि वैदिक षड्दर्शन परस्पर विरोधी नहीं अपितु एक दूसरे के पूरक हैं।

(३) ऋषि से पूर्व मोक्ष प्राप्ति के साधन मार्गों के सम्बन्ध में भी हिन्दू धर्म तथा अन्य मतमतान्तों में अनेकानेक विरोधी मार्गों का प्रचार था। कोई, केवल ज्ञान द्वारा ही मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे। उनके मत से शुभाशुभ कर्म सब मिथ्या प्रपञ्च है अथवा केवल वनघन-पाश-के कारण हैं। ज्ञानी पुरुष के लिए तो उनको आश्रयकता ही नहीं। उमे उनसे विरक्त हो जाना चाहिये। दूसरे केवल भक्ति को ही मुक्ति का साधन माने हुए थे। भक्ति के भी दाम्य, सक्रिय और माधुर्य आदि अनेक भेद करके माधुर्य भाविका भक्ति को ही इन्होंने सर्वोपरि माना था। भक्ति मार्गी वैष्णवों की व्याख्या के अनुसार ब्रजगोपाण इसी भक्ति भाव से श्रीकृष्ण भगवान् की उपासना करती थी। आज भी कीर्त्तन मण्डलियों में कीर्त्तन करनेवाले न केवल स्त्री भक्तों में अपितु पुरुष-भक्तों में भी इसी वात की होड़ रहती

है कि कौन अपने को अधिक से अधिक गोपिका के रूप में भक्त उपस्थित कर सकता है। भगवत्प्राप्ति के लिये ज्ञान और कर्म की भी आवश्यकता है—इस वैदिक सत्य की इन्होंने सर्वथा उपेक्षा ही कर दी। ऋषि दयानन्द ने अनुभव किया कि हम उस समन्वय दृष्टि, समतुलनशक्ति और व्यवहार बुद्धि को भूल गए हैं जिनके द्वारा सत्यधर्म का विवेचन एवं निरूपण किया जाता है। अतएव उन्होंने वैदिक ज्ञान कर्मा उपासना के त्रिकाण्ड को समन्वित रूप से हमारे सम्मुख उपस्थित किया।

इसी प्रकार वैदिक धर्म के अन्य सिद्धान्तों को भी उन्होंने समन्वय पूर्वक, संसार के सम्मुख उपस्थित किया।

वस्तुतः, सत्य एवं पूर्ण धर्म वही कहा जा सकता है जिसका द्वारा मानव के व्यष्टि तथा सत्प्रति जन्तु का कल्याणकारी एवं सौं दुर्धमय सर्वांगीण विकास हो सके। मानव का सर्वांगीण विकास उसके शारीर, हृदय, बुद्धि और आत्मा के पूर्ण विकास में निहित है। क्रियात्मक विज्ञान (Applied Science) विज्ञान (Natural Science) दर्शन (Philosophy) और धर्म (Religion) मानव जाति के उक्त सर्वांगीण विकास का ही कार्य और कारण है। अतएव वह धर्म जो दर्शन-विज्ञान-धर्म-क्रियात्मक विज्ञान के चतुष्टय से समन्वय नहीं है और इन चतुष्टय का समन्वय करना नहीं सिखाता, ऐसा धर्म कोरा सम्प्रदाय है और उसके द्वारा न तो मनुष्य जाति का कल्याण हो सकता है और न संसार मनुष्य हाँकर परस्पर दृढ़ प्रति एवं सुख शान्ति ज्ञान दर्शक कर्म (विज्ञान), उपासना (धर्म) एवं क्रियात्मक विज्ञान का प्रकाश करने वाले ऋग्यजुसामाथर्वरूप वेद चतुष्टय द्वारा प्रतिपादित वेदोक्त धर्म ही ऐसा समन्वित (Harmonised), समतुलित (Balanced) एवं व्यवहारोपयोगी (Practical) धर्म है। इसी धर्म का पुनः प्रचारित करने के लिए ऋषि दयानन्द का महान् आशयजन था।

* आर्यसमाज तथा देवयज्ञ *

[ले०—श्री कवि विनोद वैद्य भूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य "अमृतघारा" लाहौर]

[आपके आयुर्वेद वेत्ता और सफल चिकित्सक के सम्बन्ध में सभी जानते हैं। आपने अपने गम्भीर विचारों से आर्य जगत् का बहुत उपकार किया आपकी वाणी में एवं लेखनशैली में प्रभाव उत्पन्न करने की पूर्ण चमत्ता है।

—सम्पादक]

वर्तमान लेख में विद्वान् लेखक ने प्राचीनकालिक में देवयज्ञ पर प्रकाश डाला है और देव यज्ञ की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये मनुष्य जीवन से उसका कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस बात को प्रदर्शित किया है।



दिक-काल में यज्ञों का किस भाँति प्रचार था इस का अनुमान पीछे के ग्रन्थों को देखने से भी हो सकता है। विदेशी यात्रियों की जो पुस्तके मिली हैं उनमें उन्होंने भारत के नगरों की यह विशेषता लिखी है कि हर घर से प्रातः सायं वेदों की ध्वनि और हवन का धुआँ मुनाई और दिखाई देता था।

वाल्मीकि रामायण को भी पढ़ने से यही सिद्ध होता है। रामचन्द्रजी जहाँ भी मुनियों के स्थानों में जाते हैं वहाँ यज्ञ की अग्नि विद्यमान थी। इनके अपने घर में प्रत्येक देव यज्ञ करता था। माता के पास गए वह भी हवन कर रही थी, और तो और हनुमानजी जब लंका में गए तो उस राक्षस देश में भी देव-यज्ञ करते लोग पाए गए। काल ने जहाँ कई और परिवर्तन किए, यज्ञों की प्रथा भी कम होती गई, और नित्य देव-यज्ञ का करना तो भारत से उठ ही गया। कहीं कोई याज्ञिक करते हों तो हों। ऋषि दयानन्द ने अवतार लेकर भारत का उद्धार किया। उन्होंने पुरानी भूली हुई बातों को हमें याद कराया। उनके उपकारों में से यह भी एक महान् उपकार है,

कि द्विजों के वास्ते तीन आश्रमों में हर एक नर नारी के लिए दोनों काल या दानों समयों का एक ही समय हवन करना नित्य कर्म ठहराया। हर पुरुष-स्त्री के के लिए यह कितना आवश्यक है—यह इस बात से जाना जा सकता है कि महाराज ने लिखा है यदि पति-स्त्री एकत्र न हों तो जो उपस्थित हो वह दूसरे के भाग की भी आहुतियाँ डाले। संस्कार-विधि में ऐसे मनुष्य को जो नित्य हवन नहीं कर सकता, अभाग्य लिखा है। और उसके लिए आदेश है कि पत्ने के दिनों अर्थात् अभावस्था, प्रसूतिमा को तो अवश्य कर लिया करे।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती की शिक्षा का यह फल हुआ कि अब सैकड़ों हजारों ऐसे आर्यसमाजी मिलेगे जो नित्य हवन करते हैं, परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि अभी तक सबसे इसको अपनाया नहीं, पाँच प्रतिशत कठिनाता से ऐसे आर्यसमाजी होंगे, जो नित्य हवन करते हैं।

चालीस लाख आर्यसमाजी भारतवर्ष में हैं, यदि चार लाख गृह भी समझे जावें तो चार लाख घरों में नित्य देव यज्ञ होता देख कर अन्य आर्य अर्थात्

हिन्दू भी शनैः शनैः उसको करने लगेगे। आर्य समाजों को इस ओर विरोध ध्यान देना चाहिए। धार्मिक महापुरुषों में ऋषि दयानन्द ही एक ऐसे ऋषि हुए हैं, जिन्होंने तर्कों को ऊँचा ध्यान दिया। वह हर एक धार्मिक कर्म को भी युक्ति से सिद्ध करते हैं, उसमें से देव-माला को निकाल देते हैं। परन्तु हमारे देश के लोगों में देव-माला और रहस्यवाद इतना बढ़ा हुआ है कि इनको इन बातों के बिना भ्रष्टा ही पैदा नहीं होती। यदि कहदो कि देव-यज्ञ करने से देव लोक के देवता प्रसन्न होते हैं, इससे स्वर्ग मिलता है, कुल सीधा देव लोक को जाता है, तब तो भ्रष्टा से उसको करते हैं। स्वामीजी तो इन बन्धनों से आजाद करने आए थे उन्होंने कहा कि प्रत्येक मनुष्य कई प्रकार के मूल त्यागता है जो सर्व साधारण के लिए हानि कारक है। इस पाप से बूटने के लिए उसको हवन करना चाहिए ताकि उसका प्रतिफल हो। हवन से प्रत्यक्ष देवता अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी आदि शुद्ध आरोग्यता देने वाले होते हैं, जिससे अन्न पौष्टिक और उत्तम बन कर सब जगत का उपकार करता है तो ऐसी बातों से कुछ विरोध भ्रष्टा उत्पन्न नहीं होती। यही कारण है कि हवन इस भ्रष्टा से, प्रेम व भक्ति से आर्य लोग भी नहीं करते जिससे कि मन पर अच्छे प्रभाव पड़े। एक योरुपियन गुरुकुल में कई दिन ठहरने के परचान् विदा होने लगा तो उसने गुरुकुल की प्रशंसा की। परन्तु कहा कि यह आपका हवन कोई धार्मिक कर्तव्य प्रतीत नहीं होता। इसके देखने से दूसरे में कोई भ्रष्टा नहीं होती है। यह समझने और समझाने की आवश्यकता है कि कर्तव्य पालन

ही बड़ा धर्म है। देव-माला की इसमें क्या आवश्यकता है।

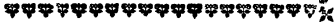
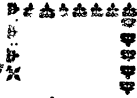
मैंने दो समय हवन करने वाले ऐसे भी आर्य देखे, जिनके एक मंत्र का भी शुद्ध उच्चारण नहीं होता। एक बेगार काटने के वास्ते मन्त्र गलत खलत याद कर लिए फिर वर्षों या आयु भर यह यत्न नहीं किया जाता कि ईश्वर की वाणी का शुद्ध उच्चारण तो करें।

वेद-मन्त्रों का स्वर जितना आर्यसमाज ने बिगाड़ा है वह शोचनीय है। बड़े बड़े विद्वान भी वेद का वेद की भाँति उच्चारण नहीं करते। ठीक स्वर चलाया जावे, इसकी भी आवश्यकता है। परन्तु शब्द के शुद्ध उच्चारण की ओर तो विरोध ध्यान देना चाहिए। देव-यज्ञ में वेद मन्त्रों का पढ़ना वेद की रक्षा के वास्ते श्री स्वामी जी ने लिखा है। हम शब्दों और स्वर को बिगाड़ कर रखा करते हैं या निरादर ! जरा सोचना चाहिए।

देव-यज्ञ में बहुत थोड़ी भ्रष्टा है इसके कई उदाहरण हैं। सत्संगों और उत्सवों में जब हवन का समय होता है उस समय उपस्थिति बहुत थोड़ी होती है। संस्कारों में हवन जब होता हो, कोई ध्यान पूर्वक बैठकर देखता सुनता नहीं है। सब अपनी अपनी बातों में लगे रहते हैं। देव-यज्ञ तो महायज्ञ है जिसे ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी तक को करना पड़ता है। गृहस्थी की तो बात ही क्या है। ऐसे आवश्यक कर्म में हमारी प्रीति पैदा होनी ही चाहिए। स्वामीजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का भी यही उद्देश्य है।



उस अमर ज्योति की छाया



लेखक—

हर्षदेव राय आव "हर्ष"

नभ के शुभ अन्तस्तल में
 थी निर्जन रजनी आई
 उर्वी के जलते दीपक
 चुपके से लेने आई ।
 था ज्ञात नहीं उसको क्या ?
 दीपक - अबली का जलना
 फिर भी कितना दुस्साहस
 ले नीरवता में बहना ।
 ले थाल भरी मणियों को
 किसने नभ में छितराया
 थे खड़े मौन लखने को
 इस निठुर निशा की माया ।
 गहरे तप से आच्छादित
 निरवास वेदना छोड़ी
 थी छाई पाखण्डों से
 वसुमति जीवन की थोड़ी ।
 यौवन का तीखी कि रणो
 का वैभव क्या है पावक
 रत्ना के हित माता की
 ललकार उठा हरि-शावक ।
 कितनी तामस बेला में
 है प्रभा ज्योति छिटकाई
 पथगामी हो जननी का
 मधुज्ञान सुधा बरसाई ।
 आनन्द प्रचय पल्लव में
 या दया कञ्ज विकसाया
 दीपक - अबली में फलकी
 उस अमर-ज्योति की छाया ।



—: हमारा भावी प्रोग्राम :—

[ले०—श्री प्रिंसिपल कालिकाप्रसाद जी भटनागर एम० ए०, डी० ए० बी० कालेज कानपुर]

[आप्रै सामाजिक शिक्षा जगत् में आपका एक विशेष स्थान है । आपके लेख बड़े गम्भीर और विचार पूर्ण होने हैं । लेखनशैली मंजोर हुई ऐवँ सरस होती है ।

—सम्पादक]

इस लेख में लेखक महोदय ने हृदय भाव पर प्रकाश डाला है कि हमारी पुरातन संस्कृति ही हमारे भविष्य का मार्ग दिखानेवाली भीर उसी पर चलकर हमारी शिक्षा संस्थाएँ उन्नति पथ पर आरूढ़ हो सकेंगी ।



दि हम थोड़ी देर के लिये अपने पिछले कार्य पर नजर डालें तो हमें मालूम होगा कि हम अब तक जो कुछ कर चुके हैं उसके कई गुना काम अभी करने को बाकी है । महर्षिदयानन्द और आर्यसमाज के अनुयायियों ने हिन्दू जाति को जगाने में बहुत बड़ा कार्य किया है । मातृ भूमि और मातृ-भाषा का प्रेम भी आर्य समाजियों में किसी से कम नहीं पाया जाता । देश के लिये त्याग करने वालों में आर्यसमाजियों की संख्या शयद औसतन सबसे ज्यादा निकलेगी । संस्कृत और हिन्दी के लिये भी हमने गुरुकुल और डी. ए. बी. कालेजों द्वारा बड़े ठोस कामकिया है जिसकी मिसाल किसी दूसरी जगह मुश्किल से मिलेगी । विधवा विवाह और अछूतों द्वारा के मामलों में तो आर्यसमाज सबका अग्रणी कहा जा सकता है । अकाल, भूचाल आदि दैवी प्रकोपों के समय आर्यसमाज ने धन जन से सहायता देकर सम जिक सेवा का उदारहण देखावासियों के सामने रक्खा है । एक प्रकार से मरे हुए हिन्दुत्व

को फिर से जिलाने में प्राचीन विचार धारा में नवीन विचारों का सम्मिश्रण कर आर्य जाति को युग के साथ कदों से कना मिलाकर चलाने में जर्जर रुढ़ियों का विध्वंस, और प्राचीन संस्कृति के सरक्षण द्वारा अपना विशुद्ध रूप विश्व के सामने उपस्थित करने में आर्यसमाज का कार्य आगे आनेवाली पीढ़ियों द्वारा भादर, श्रद्धा सम्मान के साथ याद किया जावेगा ।

इसमें सन्देह नहीं कि आर्य जाति के जागरण का प्रारंभिक कार्य समाप्त हो चुका है । हमारी वेहोशी की हालत में ईसाई और मुसलमान हमारे धर्म और सभ्यता पर जो चोट करते थे अब खुद उनको ही लेने के देने पड़ रहे हैं । विधर्मियों द्वारा हिन्दू जाति की बहियों और बच्चों का भगाना भी अब बहुत कुछ थम गया है । इन बातों के होते हुए भी अभी हमें बहुत कुछ करना है । इसलिये अपने आगामी प्रोग्राम के सम्बन्ध में मैं यहाँ कुछ बातें लिख देना आवश्यक समझता हूँ ।

सबसे पहली बात हमारे संगठन की है । मुसलमान जितनी जल्दी इसलाम के नाम पर इकट्ठे हो

जाते हैं उतनी जल्दी हम नहीं हो पाते। इसका मुख्य कारण हमारे स्वार्थ (Interest) का अलग अलग होना है। हम इतने ज्यादा बढ़े हुए हैं और हमारे एक दूसरे के स्वार्थों में इतना अधिक अन्तर आ गया है कि हम एकता (Common Cause) को लेकर खड़े नहीं हो सकते। हमारी सबकी आवाज़ एक नहीं हो पाती। और जब तक हमारी आवाज़ एक नहीं होगी तब तक हमारा उद्योग असम्भव है। इसलिये सबसे पहिले हमें एक होना होगा। आर्य जाति प्रारम्भ में एक थी, उसके अन्दर आजकल जैसे भेद और उपभेद नहीं पाये जाते थे। फाहियान और ह्वेनचंग के यात्राविवरणों से भी हमें उसमें इतने नहीं मिलने जितने आजकल पाये जाते हैं। अकेले ब्राह्मणों में ही इस समय ४०० से अधिक भेद पाये जाते हैं। यही हालत दूसरो वर्णों की है। शूद्रों में भी एक तरह से काम करनेवाले उसी काम का दूसरी तरह से करनेवालों को अपने में नहीं मिला सकते। गेटी बेटी का सम्बन्ध तो दूर की बात है, हम एक दूसरे का पानी तक पीने में परहेज करते हैं। मुसलमानों के यहाँ आने से कुछ पहले तक अन्तर्जातीय विवाहों का हमारे अन्दर प्रचार था आज उनका नाम लेने से भी हम नाक भौं सिकाड़ने लगते हैं। यह ठीक है कि जातियाँ जरूरत के मुताबिक अनेक भागों में बंट जाती हैं, पर फिर जरूरत के मुताबिक एक रूप भी हो जाती है। आज हम अनेकता से एकता की ओर जाने की जरूरत है—अपने भेदों को भुलाकर एक आर्य जाति के नाम पर एक फंडे के नीचे खड़े होने की आवश्यकता है। यदि हम इस युग धर्म को सुनते हैं और एकता की ओर आगे बढ़ते हैं तो नितान्त हमारे कल्याण की धड़ियाँ बिलकुल नजदीक हैं। और यदि हम इस युग धर्म को नहीं सुनते—विश्लेषण से सरलपण की ओर नहीं बढ़ते तो विनाश के विकराल मुँह में जाने से हमें कोई बचा भी नहीं सकता।

दूसरी बात हमारे साहित्य की है। हमारे पूर्वजों ने प्रचुर ग्रंथ राशि हमारे लिये छोड़ी है। इन ग्रंथों में लोक और परलोक सम्बन्धी सभी प्रकार के विषयों पर विचार पूर्ण लिखा गया है। अनेक तो ऐसे विषय हैं जिनपर लिखने के लिये आज तक अन्य देशीय विद्वानों ने लेखनी तक नहीं उठाई। अनेक ऐसे ग्रंथ हैं जिसके कई कई अनुवाद अंगरेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं में हो चुके हैं। अनेक ऐसे ग्रंथ हैं जो हमारे घरों में से निकल कर विदेशीय पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। अनेक ऐसे हस्त-लिखित ग्रंथ हैं जिनका प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका। अनेक ऐसे भी ग्रंथ हैं जो अभी तक हमारे घरों में कहीं-कहीं पड़े सड़ रहे हैं और दीमकों का आहार बने हुए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम इन ग्रंथों की रक्षा का प्रबन्ध करें। कोई भी जीवित जाति अपने साहित्य से, अपने पूर्वजों की धरोहर से वंचित नहीं होना चाहती। उसे धरोहर की प्राण देकर भी रक्षा करनी पड़ती है। क्या हमारे लिये यह शर्म की बात नहीं कि जर्मनी के रहनेवाले तो हमारे ग्रंथों की रक्षा करने के लिये जी जान से कोशिश करें और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। जर्मनी की एक प्रकाशन सन्धा से प्रकाशित संस्कृत पुस्तकों की सूची का ही मूल्य लगभग ४० रुपये है। एक हम हैं जो आर्य-समाजी होने का दम भरते हैं पर वेद, दर्शन, उपनिषद् या केवल सत्यार्थ प्रकाश की एक कापी तक अपने घर में रखने के लिये पैसा खर्च नहीं करते। अंग्रेज, फ्रान्सीसी और जर्मन तो हमारे ग्रंथों को प्राप्त करने के लिये एड़ी से चोटी तक का पसीना एक कर दे पर हम अपने ही घरों में रखले हुए ग्रंथों को सभाल कर नहीं रख सकते। विदेशों में सहस्रों की सख्या में हमारे पूर्वजों की लिखी हुई पुस्तकें पढ़ें गईं और उनपर अनेक आलोचनात्मक ग्रंथ लिख डाले गये पर हम इस ओर अभी तक प्रवृत्त भी नहीं हुए। कितने शोक और लज्जा की बात है !

डी. ए. वी. कालिज लाहौर, पूना भाण्डार कर इन्टीटीयूट, मैसूर राज्य आदि कुछ सस्थाओं की ओर से इस दिशा में काम हुआ है पर वह दाल में नमक के बराबर भी नहीं है। जरूरत इस बात की है कि हमारा एक भाग एकाग्र चित्त होकर केवल इसी काम में जुट जाय। अतीत काल के आदर्श हमारे अविषय का निर्माण करनेवाले होते हैं। यह आदर्श इन्हीं प्रन्थों में छिपे पड़े हैं क्या हमारा ध्यान इस ओर जावेगा ?

तीमरी बात संस्थाओं के संचालन की है। आर्यसमाज ने अपने जीवन काज के प्रारम्भ से ही शिक्षा के क्षेत्र में आगे कदम रक्खा है। भारतवर्ष का कदाचित्त ही कोई ऐसा प्रान्त होगा जहां महर्षि दयानन्द के नाम पर कोई शिक्षा संस्थान बनी हो। पंजाब और युक्त प्रान्त में तो डी० ए० बी० हाई स्कूलों का जाल सा बिछा हुआ है। गुरुकुलों की संख्या यद्यपि थोड़ी है पर वे भी अपनी कार्य अच्छी तरह कर रहे हैं। यद्यपि अभी तक यह माना जाता रहा है कि यह दोनों प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ प्रथक-प्रथक आदर्शों पर स्थित हैं। गुरुकुल प्राचीन शिक्षा प्रणाली के पंषक माने जाते हैं, और कालेज नवीन प्रकार के ढाँचे में ढले हुए। गुरुकुलो में शिक्षा का माध्यम हिन्दी रही है, और काजजा में अमेजी।

पर यह दोनों भेद अब बहुत कुछ मिल से गये हैं। गुरुकुलो में भी पाश्चात्य शिक्षा का समावेश कर लिया गया है और कालेज भी प्रारम्भ काल से ही हिन्दी और संस्कृत शिक्षा पर बल देने रहे हैं। कालेज के नाम में 'दयानन्द और वैदिक' 'दा' शब्द अपनी प्राचीन प्रणाली, सस्कृत और शिक्षा के ही यातक है, एग्लो शब्द पाश्चात्य शिक्षा की ओर सकेत करता है। इस प्रकार गुरुकुल और कालेज दोनों के आदर्शों में एक प्रकार की समता आ गई है। शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इन्टरमीडियेट बोर्ड ने एफ० ए० तक की शिक्षा के लिये हिन्दी भाषा को भी विकल्प से माध्यम मान लिया है, और विश्व-विद्यालयों में भी यह विचार का विषय हो रही है। थोड़े दिनों बाद इस सम्बन्ध में भी दोनों संस्थाओं में शायद कोई अन्तर दिखाई न देगा। आज कम से कम हम ऐसे स्थान पर अवश्य आगये हैं जहाँ बैठकर स्थिर चित्त से हम अपनी शिक्षा संस्थाओं के संचालन पर सामञ्जस्य-भावना से दृष्टि डाल सके। यदि हमने अपनी बिखरी हुई ताकत को इकट्ठा कर लिया तो आर्यसमाज की शक्ति अपने लिये और हिन्दू जाति के लिये एक अजेय शक्ति सिद्ध होगी।

शुभकामिनी

शुभकामिनी

मुफ्त !

मुफ्त !!

मुफ्त !!!

श्वेत कुष्ठ की अद्भुत दवा हजारों को फायदा पहुंचा कर प्रशंसा को पात्र बन रही है। केवल धर्मार्य और डाक व्यव र) मात्र।

पता:—दरियापुर लाल मेडिकलहाल।

पो० वारसलोगंज (गया)

वर की आवश्यकता है

एक बी० ए० पास ब्राह्मण कन्या के लिए जिसकी आयु २० वर्ष है योग्य वर की आवश्यकता है। पत्र व्यवहार निम्न पते पर करें:-

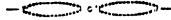
प्रा० सत्यव्रत,

मु० अ० गुरुकुल कांगड़ी

शुभकामिनी

“महर्षि दयानन्द और स्वाध्याय प्रवचन”

[ले०— श्री प्रो० रामेश्वर शास्त्री, सिद्धान्त शिरोमणि, गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन]



[आप गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के एक सुयोग्य स्नातक हैं। आपकी लेखनी श्री वाणी में एक प्रकार का अद्भुत चमत्कार है, जिसका सहृदय पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं। —संपादक]

उपरिष्ठ लेख में लेखक महोदय ने स्वाध्याय एवं प्रवचन का दिनचर्या में क्या महत्व है इस पर प्रकाश डालते हुये महर्षि प्रदर्शित सुगम वेद मार्ग का मज़ीभांति दिग्दर्शन कराया है।

“असतो मा सद्गमय, तमसा मा ज्योतिर्गमय, तृप्त्योर्मांमुतं गमयेति”



मस्त प्राणियों में मनुष्य सर्वोच्च प्राणी है। इसको परम पिता परमात्मा ने अपनी सृष्टि का सर्वोत्तम रत्न बनाया है और इसे उन्नति करने के लिए प्रत्येक प्रकार के साधन दिये हैं जिससे कि यह अपने जीवनोद्देश्य को पूरा कर सके। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मनुष्य की परिभाषा करतेहुए लिखा है कि “जो बिना विचारे किसी काम को न करे वह मनुष्य कहाता है”। जितना ही यह अपनी विचार शक्ति को विशुद्ध करके कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होता है उतना ही उन्नति की ओर बढ़ता जाता है, और अन्त में अपने ध्येय में सफल होता है। विचार शक्ति को विशुद्ध बनाने के लिए स्वाध्याय एवं प्रवचन की बड़ी आवश्यकता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में तैत्तिरीयोपनिषद् के शिक्षा प्रकरण के उन वचनों को उद्धृत किया है जिनमें स्वाध्याय एवं प्रवचन की विशेष महत्ता प्रकट की गई है और शिक्षार्थियों को निर्देश किया है कि वह अपने जीवन में स्वाध्याय एवं प्रवचन का कभी भी त्याग न करे।

आचार्य, अपने स्नातकों का समावर्तन संस्कार करते हुए अपने अन्तिम उपदेश में “स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां प्रमदितव्यम्” अर्थात् स्वाध्याय एवं प्रवचन में कभी भी प्रमाद मत करो, की आज्ञा देते हैं। मनु महाराज ने “स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्” कहकर स्वाध्याय में सर्वदैव अपने आपको युक्त रखने के की आज्ञा दी है। अस्तु।

जो मनुष्य स्वाध्याय एवं प्रवचन की महत्ता का अनुभव करता हुआ उन्हें अपनी दिन चर्या का प्रधान अंग बनाता है, निस्सन्देह वह अपने जीवन का उन्नति के मार्ग पर लाता हुआ अपने मनुष्य जन्म का ज्ञान के विकास से सफल बनता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आजीवन वैदिक साहित्यसागर का परिमन्थन किया और निरन्तर ही वह अपने प्रवचनों द्वारा उन अमूल्य वैदिक रत्नों को मनुष्यमात्र के कल्याणार्थ प्रकाशित करते रहे जिनसे कि प्रत्येक मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर अपने को सुभूषित कर सके।

पूर्व काल में जिन वैदिक सिद्धान्त रत्नों के लिए ऋषि मुनिजनों ने अपने जीवन को तपस्या की भट्टी

मे तपाया और अन्त में जिन्हें समाधि द्वारा प्राप्त करके जगत् के कल्याणार्थ अपने ग्रन्थों या उपदेशों में प्रकाशित किया उन्हीं को महर्षि दयानन्द सरस्वती ने योगबल से पहिचान कर एकत्रित किया और अन्त में उन्हीं अमूल्य वैदिक सिद्धान्त रत्नों से, सुगम सत्यार्थ-प्रकाश रूपी हार का निर्माण किया, जिसे देखकर सुगमतया मनुष्य वेद रूपी रत्नाकर की ओर आकृष्ट हो, और ऋषि-मुनियों की आदर्श संस्कृति को पहिचान कर उससे अपने जीवन को अलकृत करते हुए सच्चे आर्य बन सके। परन्तु आज कल स्वाध्याय की ओर प्रवृत्ति न होने से मनुष्यों का ज्ञान उत्तरोत्तर वृद्धि को न प्राप्त होकर उनकी आन्तरिक अशान्ति का कारण बन रहा है।

स्वाध्याय एवं प्रवचन से तात्पर्य, वेद या अन्य सच्छास्त्रों के अध्ययन व अध्ययन के अन्तर उनको अन्या के लिये कथन करने के हैं। स्वाध्याय करने में इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि वह जिन ग्रन्थों या पुस्तकों का स्वाध्याय कर रहा है क्या उनसे उसकी पूर्वोक्त शारीरिक, मानसिक, या आध्यात्मिक उन्नति हो भी रही है या नहीं। प्रतिदिन समाचार पत्रों को पढ़ना या उपन्यास अथवा अन्य मनोविनोदकारी पुस्तकों का पढ़ना स्वाध्याय नहीं कहाता और न इससे मनुष्य की कोई वास्तविक उन्नति ही होती है। ऋषि दयानन्द न प्रत्येक आर्य के लिए स्वाध्याय करना अनिवार्य बतलाया है। परन्तु हम आर्यबन्धुओं में इस बात की कमी पाते हैं जिसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारे अन्दर से आर्यत्व की भावना दूर होकर अशान्ति का पर्दा पड़ रहा है। महर्षि ने आर्य समाज के तीमरे नियम में वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना, सब आर्यों का परम धर्म कथन करते हुए वेद के स्वाध्याय की ओर विशेषरूप से ध्यान आकृष्ट किया है। यदि प्रत्येक आर्य इस दिशा की

ओर नही बढ़ रहा है तो निस्सन्देह उसे खमफना चाहिये कि वह अपने आचार्य द्वारा समुपदिष्ट आर्यत्व की भावना को न अपनाता हुआ केवल नामधारी ही आर्य बना हुआ है।

वेदों के स्वाध्याय के लिए संस्कृत भाषा का पठन पाठन अनिवार्य है। अन्यथा वेदों के शब्दों की गुत्थी को सुलभकर वेदार्थ को भली भौति समझना अतिकठिन हो जाता है अतः हमें इन भाषा के अध्ययन की ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए और यदि हमारी अवस्था अब संस्कृत भाषा के अध्ययन की नहीं है तो कम से कम हमें अपने बालकों को अनिवार्य रूप से संस्कृत भाषा का अध्ययन कराना चाहिये जिससे कि उनकी अभिरुचि, धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय की ओर बढ़े और वे अपने जीवन को आदर्श बना सकें। योग शास्त्र में मनुष्य की वैयक्तिक उन्नति के लिए "शौचसन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रार्थनानि नियमाः" शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान इन पांच नियमों के परिपालन की आज्ञा है तथा स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान इन दोनों को ही महर्षि ने ब्रह्म-यज्ञ बतलाते हुये हमें, प्रतिदिन उनके अनुष्ठान की आज्ञा दी है। अतः हमें स्वाध्याय एवं प्रवचन में कभी भी प्रमाद न करना चाहिये।

जो मनुष्य स्वाध्याय एवं प्रवचन करने में कभी भी प्रमाद न करेगा वे उत्तरोत्तर ज्ञानोपार्जन करते हुये सद्, असद् को भली भौति पहिचान कर शास्त्रानुसार आचरण करके सभी सुख शान्ति के धाम परम ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ होंगे और प्राणी मात्र के कल्याण की भावना उनके हृदय में होगी, और सर्वदैव उनकी हृदयीणा का यही एक मधुर राग होगा।—

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥



आर्यसमाज सम्प्रदाय नहीं है

[ले०—श्री बाबू पूर्णचन्द्रजी एडवोकेट]



[आप आर्य जगत् के एक कर्मठ कार्यकर्ता तथा प्रभावशाली वक्ता एवं सिद्धमन लेखक हैं। आशा है आपकी रचना पाठकों को रुचिपूर्ण होगी।—सम्पादक]

प्रस्तुत लेख में इस बात को सुचारु रूप से सिद्ध किया है कि—महर्षि ने नाना वेद विरुद्ध मतों का खण्डन करके पुरातन वैदिक प्रणाली का जीर्णोद्धार किया, न कि किसी अन्य मत को जन्म दिया।



पि दयानन्द ने वैदिक धर्म को पुनः प्रचलित करना अपने जीवन का उद्देश्य बनाया और इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये देशाटन किया, शास्त्राय किये, व भाषण दिये पुस्तके रचीं। ऋषि दयानन्द किनी नवीन मत या सम्प्रदाय की स्थापना के महान विरोधी थे, आर्यसमाज की स्थापना से उनका अभिप्राय केवल अपने चलाये हुये कार्य का स्थायी रूप देना था। ऋषिदयानन्द का उद्देश्य निम्न घटनाओं से भली भांति विदित हो सकता है। किसीने ऋषिदयानन्द से प्रश्न किया कि भारतवर्ष में ६६६ मत पहले ही फैले हुये हैं, आप एक नवीन मत चलाकर संख्या में व्यर्थ की वृद्धि करते हैं? ऋषि ने उत्तर दिया कि मैं जिस धर्म का प्रचार करता हूँ, वह ६६६ में शामिल होकर उसका १००० बना देगा। केवल एक वैदिक धर्म बाकी रहेगा, बाकी सब मत शून्य होकर मिट जायेंगे। ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज में अपने लिये कोई विशेष स्थान नहीं रक्खा और न आर्यसमाज में किसी जाति विशेष या समुदाय विशेष का कोई विशेष स्थान है। वैदिक धर्म का द्वार सबके लिये समान

रूप से खुला हुआ है। ससार का कोई देश ऐसा नहीं जहा आर्यसमाज की शिक्षा के अनुसार वैदिक धर्म का प्रचार और विस्तार न हो सकता हो। ऋषि दयानन्द ने रूढ़िवाद का नाश किया और धर्म में तर्क का स्थान दिया और धर्म को विश्व व्यापी रूप देकर मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये उसका प्रचार किया। ईसाई मुसलमानों को आर्यसमाज का विरोध नहीं करना चाहिये।

ऋषि दयानन्द की दृष्टि में प्राचीन वैदिक धर्म की दृष्टि से जहाँसे उटि थी, सबका ऋषि दयानन्द ने प्रवृत्त खन्डन किया। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में ४ समुल्लास खण्डनात्मक लिखे हैं। उनमें से सबसे पहला अर्थात् ११वाँ समुल्लास प्रचलित हिन्दू सम्प्रदायों के खण्डन के लिये है। महर्षि की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान समान थे, उनको न किसी से विशेष मोह और अनुराग था और न किसी से द्वेष। उनका प्रेम तो भारतवर्ष की सीमा से भी बाहर संसार भर के लिये अपना लक्ष्य रखता था। ऋषि दयानन्द ने अपने प्रचार के सम्बन्ध में डाक्टर

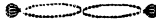
रहीम खां की कोठी लाहौर में निवास किया और वहाँ स्वतन्त्रता से वैदिक धर्म का प्रचार किया। वे सबके साथ एक सा और मनुष्योचित व्यवहार रखना चाहते थे। हमारे मुसलमान भाई इस बात पर ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से रुष्ट रहते हैं कि ऋषि दयानन्द ने शुद्धि की प्रथा चलाई। यह उनके दृष्टि कोण की त्रुटि है। यदि वे इस बात को ध्यान में रखें कि सकुचित हिन्दू धर्म के द्वार को ऋषि ने उदारता से संसार के लिये खोल दिया तो ऋषि की सहनशीलता और उदारता सहज मे उनकी समझ में आ जायगी। ऋषि की चलाई हुई शुद्धि की प्रथा मे न जबरनस्ती है और न धोखेवाजी। यह तो धार्मिक विचारों की स्वतन्त्रता से परिवर्तन का विषय है। मुसलमान और ईसाई भाइयों का मटापे का कृतज्ञ होना चाहिये कि उनकी कृपा से उनको अपने प्राचीन वैदिक धर्म में पुन प्रवेश का अवसर प्राप्त हुआ है। यदि उनकी आत्मा वैदिक धर्म की सचाई को अभी नहीं समझ सकी है और यदि उसको प्रदण करने योग्य नहीं समझते हों वे उसमें प्रवेश न करे। परन्तु उसमें प्रवेश का अधिकार मिल जाना क्या कुछ कम प्रमन्नता एवं उपकार की बात है? आज भारतवर्ष धार्मिक साम्राज्यों की दृष्टि से एक भूल-भुलैया और अजायब घर बना हुआ है। केवल ऋषि का मिशन ही इसका ठीक मर्यादा और व्यवस्था के अन्दर ला सकता है। यदि ईसाई और मुसलमान इस बात से अप्रसन्न हों कि ऋषि ने उनके मन के सिद्धांतों का खण्डन किया तो उनको यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि ऋषि दयानन्द ने शैव मत का भी प्रबल खण्डन किया जो उनके पिता का मत वा सत्यार्थ प्रकाश में सब अवैदिक बातों का प्रबल खण्डन है और उनका लक्ष्य न किसी विषय के विरुद्ध है और न किसी के पक्ष में।

आर्यसमाज और कांग्रेस

हमें दुख है कि अखिल भारत वर्षीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी आर्यसमाज के स्वरूप को ठीक र नहीं समझा। ऋषि दयानन्द स्वतन्त्रता के पुजारी थे और वे न केवल भारतवर्ष में अपितु संसार के सब देशों में स्वतन्त्रता की स्थापना चाहते थे। उनका अन्तर्राष्ट्रीय सगठन का विधान एक अनोखा और निराला विधान था। वह संसार के सब देशों को इस प्रकार से एक सूत्र में बांधना चाहते थे कि स्वतन्त्रता किसी की नष्ट न हो और सब एक दूसरे के सहायक रहें। अभी तो सब संसार उनकी स्कीम को समझ भी नहीं पाया। उसके अनुसार क्रियात्मक कार्य होना तो बहुत दूर है। ऋषि दयानन्द ने सबसे पहले सत्यार्थ प्रकाश में 'धराण्य' शब्द का प्रयोग किया है। जो वाते कांग्रेस के कार्यक्रम के अन्दर हैं वे सब आर्यसमाज में इससे पूरा प्रचलित एवं प्रतिपादित हो चुकी है। स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग और मातृ भाषा से प्रेम, मातृक द्रव्यों का निषेध, हरिजनोद्धार और अन्तर्जातीय विवाह इत्यादि यह सब आर्यसमाज के कार्य हैं। कांग्रेस को तो आर्य समाज की उन्नति को अपनी उन्नति समझना चाहिये और उसकी क्षति को अपनी क्षति। कांग्रेसवाले यदि आर्यसमाज को एक सम्प्रदाय समझकर उसकी सहायता में संकोच करते हैं तो यह उनकी भूल है। पिछले कांग्रेस के आन्दोलन में जेल जाने और धन जन संसाहायता करने में आर्यसमाजियों का नम्बर अन्य हिन्दुओं से बड़ा चढ़ा था। हमें याद है कि आगरे की डिफ्रिक्ट जेल में राजनैतिक कैदियों के समूह को देखकर यह प्रतीत होता था कि किसी आर्यसमाज का साप्ताहिक अधिवेशन है। इस पर भी हैदराबाद में जो अहिंसात्मक सत्याग्रह आर्यसमाज ने प्रारम्भ किया था वह तो स्पष्ट रूप से धार्मिक एवं नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिये था। आर्यसमाज केवल प्रचार की स्वतन्त्रता चाहता था, और वह चाहता था कि वह लिखित

जला गया

[स्व० कविवर आंङ्कार मिश्र "प्रणव" शास्त्री, विद्याभूषण, उपाध्याय गुरुकुल जेहलम]



जकड़े जड़ा के जाल भूटे मन जगड्वाल
झाड़ियों जंजाल यज्ञ ज्वाला मे जला गया ।

वैदिक धरम सर किरण पसारी रवि
अमल कमल शुभ्र संध्या का खिलागया ।

धवल धरा पै धारा वैदिक बहानी बोध
शोध शोध ज्ञानियों को तामे नहला गया ।

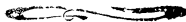
पाके पद्मोत्त औ बुझाके निज दिव्य दीप
"प्रणव" प्रदीप कोटि ज्ञान के जला गया । १ ।

ज्ञान की कमान तर्क तीरो को चढ़ाय चला
पोंगा पडितों के काट काशी को हिला गया

दीने उपदेश देश हर लाने अथ कनेरा
मत्र सधिशेष यों स्वतंत्र मिखला गयो

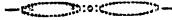
"प्रणव" प्रचार हेतु पीके कालकूट धन्य
विश्व को बमल वेद अमृत पिला गया

अगम अंधेरी रात मावस हटाई तात
निज देह दीप दीप-मालिका जला गया । २ ।



* महर्षि के कुछ राजनैतिक विचार *

[ले०—श्री भारतेन्दुजी वेदालकार]



सार महर्षि दयानन्द को एक धार्मिक और सामाजिक सुधार के रूप में ही अधिक पहिचानता है। इसी लिए कई लोग उन्हें 'भारत का लुथर' भी कहते हैं। यद्यपि उनका यह विशेषण देना कदाचित् उनका महिमा को कम करना है। ठीक है, क्योंकि भारत की तात्कालिक परिस्थिति ऐसी ही थी। अनेक धार्मिक और सामाजिक कुरीतियाँ एव मतमतान्तर इम देश में प्रचलित थे। जिन्होंने उनका इम दिशा में आने के लिए बाधित किया। परिस्थिति या समय ही तो महापुरुषों का निर्माण करता है, इसलिए उनका ऐसा बनना उचित ही था। परन्तु अगर हम इनका ही कहे कि वे 'धार्मिक या सामाजिक सुधारक' ही थे, तो हम उनके साथ भयङ्कर अन्याय करते हैं। उन्होंने अपने जो प्रभुत्व कायम होते और बढ़ते हुये देखा था। वे खूब अन्धरी तरह देख रहे थे कि ये विदेशी लोग अवश्य ही हमें एक न एक दिन अपने मोहक इन्द्रजाल में फँसा देंगे। भारत की वह दिव्य प्राचीन सस्कृति और धर्म लुप्तप्राय होने जा रहे थे। एक तरफ धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों का क्रूर वेतु और दूसरी तरफ अज्ञेयों की कुटिल राजनैतिक चालबाजी का राष्ट्र वैदिक सस्कृति के मूर्य को प्रसने लगा था। उस अंधकार समय में महर्षि ही ऐसा व्यक्ति था जिसने सांस्कृतिक उन्नति की अनिवार्यता को अनुभव किया था। बिना सस्कृति या धर्म के कोई भी जाति या राष्ट्र सुख पूर्वक जी नहीं सकता। संस्कृति ही एक ऐसी वस्तु है जो जाति और राष्ट्र के जीवन में

प्राण एव एकता का संचार कर सकती है। यद्यपि आज कल के कई राजनीतिज्ञ और विचारक बड़े गर्व से कहते हैं कि 'सस्कृति या धर्म कोई वस्तु नहीं है, यह तो एक ढकासला है' क्या वे नहीं देख रहे हैं कि बिना धर्म या सस्कृति के आज का उन्मत्त, भौतिक वार्दी पश्चिम किस वेग से महान प्रलयङ्कारी नरसंहार पाप की पराकाष्ठा की ओर जा रहा है। क्या उसका यह दारुण मानव संहार हमें पुकार पुकार कर नहीं कह रहा है कि 'सावधान' यह रास्ता ग्वतरनाक है' हम इस चेतावनी को सुनें या न सुनें परन्तु आज का युग-पुरुष सेवामात्र का सन्त तो इस रणभेरी का कर्मा का सुन रहा है, और हमें बारबार इसके बीभत्स दृश्य की ओर इशारा कर रहा है। वह कहता है कि 'ससार की भलाई तो सत्य और अहिंसा की उस उच्च सस्कृति के द्वारा ही सम्भव है, वह रामराज्य का वाते करना है तो इसका यहाँ मतलब है कि रामायण कालीन आर्य सस्कृति का प्रभुत्व, खादी, ग्रामोद्धार, अस्पृश्यता निवारण आदि उसी सनातन वैदिक सस्कृति के प्रतीक हैं— स्वम्भ हैं। राष्ट्र की स्वाधीनता की इमारत तो इसी पर बनाई जा सकती है।

इसी सत्य को आज से १ शताब्दी पूर्व उसी सौराष्ट्र की प्रथम महान विभूति, युग प्रवर्तक, दयानन्द ने अनुभव किया था। महात्मा गांधी के वही कार्य क्रम जो कि आज समय के फेर से राजनैतिक रूप को धारण किए हुए हैं, उस समय सामाजिक या धार्मिक चांगा पहिने हुये थे। हिन्दू समाज और धर्म में अनेक प्रकार की बुराइयाँ बुरी तरह से घर किए हुए थीं, अतएव उन्होंने इसी को सुधारने में अपना आधिक रामय और शक्ति लगाई। साथ ही साथ जब

उन्होंने अपनी दृष्टि राजनैतिक चिंतित पर डाली तो देखा कि परार्थीनता की—विदेशी प्रभुता की—घनघोर घटा उमड़ रही है। धीमे २ भारत के समस्त आकाश को वेग से घेर रही है। वे इसे चुपचाप बैठे हुए देख नहीं सकते थे। उस समय अंग्रेजों की नाति देशी राज्या को शक्तिहीन एवं निष्क्रिय बनाने की थी। अलग करो और राज्य करो (Divide and rule) के प्राणघातक जाल में इन रजवाड़ों के नरेशों को भी फसाने का प्रयत्न होने लगा। इसलिये स्वामी दयानन्द ने इन आर्य नरेशों को इससे सावधान किया, उन्हें उपदेश और सलाहों के द्वारा प्रजा की भलाई करने में प्रेरित किया। इन सबका वर्णन हमें स्वामी जी के पत्र व्यवहार से पता चलता है, कि किस उत्साह से इस समस्या को हल करने में उन्होंने अपना अमूल्य समय अर्पण किया था। फिर जबकि देश को सब सांस्कृतिक प्रगतियों पर कड़े २ प्रतिबन्ध लग रहे थे, राष्ट्रीय विचार धारा को बलम या मुख से प्रगट करने का हिम्मत करना भी राज-द्रोह समझा जाता था, ऐसे धार अन्धकार और निरशा के जमाने में भी उन्होंने ये शब्द कहे कि अच्छे से अच्छा विदेशी शासन भी बुरे से बुरे स्वदेशी शासन से बुरा है। उन्होंने देख लिया था कि एक अच्छे, सुन्दर बाह्य शासन के हाते हुये यद्यपि हमने कुछ भौतिक सुख या आराम भले ही मालूम हो, लेकिन उससे हमारी दिव्य आध्यात्मिक सस्कृति तो कदापि सुगृहीत नहीं रह सकती। विदेशी जाति अपना प्रभुत्व ईर्ष्यालिये चाहती है कि वह शासित जाति को अपनी २ प्र कृतनीति से शोषित करती रहे, और अपने आप स्वयं सुखों और समृद्ध बन सके। और यह बात तभी हो सकती है जब कि वे उसकी श्रेष्ठ-मूल्यवान वस्तु 'सस्कृति' को अमूल नष्ट कर दे। यही आज हमारे शासकों ने किया, यह सूर्य के समान स्पष्ट दृश्य रहा है। इसी तरह सत्यार्थ प्रकाश के प्रद्यो के प्रद्यो ऐसे राजनैतिक सूत्रों से भरे हैं जिन्हें आज १८८०-१८९५ साल के बाद कॉम्रेस ने अपनाया है। वे

उस युग में प्राचीन आर्य राजाओं के चक्रवर्ती राज्य के सपने देखा करते थे। रामायण और महाभारत के अश्वमेध और राजसूय यज्ञों में देश देशान्तर से पवारे हुए राजाओं एवं कुन्ती, अर्जुन, गान्धारी के विवाह के प्रसंगों को उद्धृत करके वे इसी लुनहले सपने की पूर्ति करते थे। दो सौ तीन सौ साल के मुसलमानों के धार्मिक एवं राजनैतिक शासन से हुई भारतीय सस्कृति का विनाश उन के सामने चित्रित था, और साथ में तत्कालीन अंग्रेजों की करमात को तो वे देख ही रहे थे। इस समस्त काल में भारत की बहुमूल्य संपत्ति-गायोका ह्रास ऐसी ही एक करण कहानी है। गो जाति के हृदय-विदारक रोमाञ्चकारी क्रन्दन सुनते २ उनके कान बहिरें हो चुके थे, जिस को मूक वेदना उनकी 'गो करण निधि' में स्पष्टतया आभासित होती है। 'जय से आर्यावर्त को विदेशियों ने पादाक्रान्त कर रक्खा है, तब से इसकी सस्कृति का नाश हो रहा है' ये मार्मिक शब्द इस और ऐवे ही अन्य करणान्त नाटक (Tragedy) की ओर संकेत कर रहे हैं। 'आर्य', 'आर्योवर्त' और 'आर्य-जाति' के वास्तविक गाम्भीर्य को वे ही समझते थे। फल स्वरूप 'आर्यसमाज' की स्थापना करके उन्होंने अपने विशाल हृदय का परिचय दिया है। भारतवर्ष और ससार से दानवता, असुरता और बुराई को मिटाने के लिए यह महान संगठन उस महर्षि ने रचा था। भारत की राजनैतिक परार्थीनता को दूर करने में इस सस्या ने अपने खून की बलि चढ़ाई है। इस के बड़े २ म्भ और छोटे २ ईंट, ककड़ों ने राष्ट्र के 'स्वराज्य' भवन के निर्माण में अपना अमूल्य हिस्सा अटा किया है। इसी का परिणाम था कि उस समय (और अब भी) विदेशी सरकार इसे एक 'राज-द्रोही संस्था के रूप में गिनती थी। उस देशभक्त, 'कृष्णन्तो विश्वमार्यम्' के मंत्र को जपनेवाले महर्षि का बोया हुआ यह अमृतवृक्ष हमारे विरोधियों को विषवत् मालूम होता हो, तो यह उनकी वदकिस्मती के सिवाय और क्या हो सकता है ?

स्वामी दयानन्द वैद्य के रूप में ।

[ले०—श्री मेहता जैमिनी वी० ए०, वैदिक मिशनरी]



न्दू जाति जिसका वास्तविक नाम आर्य जाति है जो पांच प्रकार के रोगों में प्रमत्त है (१) शारीरिकरोग, (२) मानसिक-रोग (३) आर्थिकरोग (४) सामाजिक रोग और धार्मिक रोग इन पांच रोगों की पांच पांच शाखायें हैं अर्थात् शारीरिकरोग पांच प्रकार के हैं—(क) निर्वलता, (ख) कायरता, (ग) अन्न (घ) प्रमद (ङ) शारीरिकरोग ऐसे ही मानसिकरोग भी पांच प्रकार के हिन्दूजाति से चिपट गए थे अर्थात् (क) चिन्ता (ख) स्वार्थ (ग) मानसिक दासत्व अपने भीतर इस प्रकार का दासत्व घर कर गया है कि हम अपने आपको दूसरों का दास कहलाने और कहने में अभिमान समझते थे यहां तक कि पहाड़ों नदियों और नगरों के दास बन गए । अपना नाम अभिमान से तुलसादास गुवर्धन दास, गंगादास, मथुरादास रखाने लगे । (घ) दूसरों पर कटाक्ष का रोग (ङ) जाति अभिमान का रोग ।

आर्थिक रोग पांच प्रकार के यह हैं (क) बेकारी (ख) बेरोजगारी, (ग) अप्रतिष्ठा, (घ) भिखारी, (ङ) पुजारी । भला जिस देश में ६० लाख भिखारी हों, जिसका वर्ष भर का व्यय ४० करोड़ रु० हा उस देश में अप्रतिष्ठा और बेकारी न होता क्या हो ? जिस देश में २ लाख से अधिक मन्दिरों में ६ लाख पुजारी हों और उन मन्दिरों की आय ३६ करोड़ रु० वर्ष भर की उन पुजारियों के हाथ आ जावे, उस देश को आर्थिक रोगी न कहा जावे तो क्या कहा जावे । चौथी प्रकार के पांच रोग सामाजिक रोग कहलाते हैं वह यह हैं—(क) मस्कारों पर धन नष्ट करना, (ख) संगठन काने होना अर्थात् परस्पर

विरोध (ग) जातीय अभिमान (घ) अस्थुशता कई भाइयों को अखूत कह कर उनसे बुरा व्यवहार करना (ङ) हम को क्या । अपने देश की चीजों को न लेकर दूसरे देशों की चीजों को खरीद लेना— इसका फल यह है कि साठ करोड़ रु० वार्षिक का कपडा हम अन्य देशों से खरीदते हैं । वर्ष भर में २६ करोड़ रु० का लोहे का सामान मोटर, लारियों, मार्टिफिल और छत्ते के गार्डर खरीदते हैं, कुल २४० करोड़ रु० अन्य देशों को उनकी बनी हुई चीजों के खरीदने के लिए भेंट कर रहे हैं यह पांच प्रकार के आर्थिक रोग हमको सर्वप्रकार से चूस गए हैं । अब पांच प्रकार के धार्मिक रोग हैं (क) व्यभिचार (गत जनगणना के अनुसार ६ लाख २४ हजार रंडियाँ हमारे देश में हैं जिनकी वर्ष भर की आय ६२ करोड़ है । (ख), नंग पीना । इस पर हमारा वार्षिक १ अर्ब १ करोड़ रु० नष्ट हो रहा है इसमें शराब, गांजा, चर्स भंग, अकवून, पोम्ता, चन्डू, चाय और सिगरेट तम्बाम्बू सब शामिल हैं (ग) प्रेम न होना (घ) अन्ध विद्वान्-मी (ङ) ईश्वर भक्ति और जातीय भक्ति से विमुख होना । अस्तु, इस प्रकार २५ प्रकार के भयानक रोग खून चूसने वाली जाँक के समान स्वामी दयानन्द के आने से पूर्व आय जाति को चिपटे हुए थे । स्वामी जी ने आर्य जाति को इस प्रकार के रोगों से प्रस्त देख कर इसका इलाज आरम्भ किया । जिस प्रकार डाक्टर का कार्य है कि रोगी के भीतर से गली सड़ी पीप और खून को निकालना, Operation करना, इन्जक्शन करना, रोग के कारण अनुभव करना, और फिर उसका इलाज करना और औषध बताना । यदि डाक्टर से रोगी लाभ न उठावें तो

उसमें डाक्टर का कोई दोष नहीं है। यह रोगी का दोष है कि औषधि न ले या लेकर अलमारी में रख दे और उपयोग न करे, या सागसी के पर्चा देखकर परे फेंक दे या दवा लेना ही स्वीकार न करे, या डाक्टर को Operation करते समय गालियों दे, परन्तु डाक्टर का कर्तव्य है कि रोगी का रोग दूर करे और उसको लाभ दे। स्वामी दयानन्द ने शारीरिक रोगों का इलाज ब्रह्मचर्य, व्यायाम, सार्विक भोजन प्राणायाम, इन्द्रिय नियम इत्यादि को बताया। यदि हिन्दू जाति उन पांच बतों के कार्य रूप में ले आवे तो पहली प्रकार के पांचो रोग कुछ ही दिनों में दूर हो जाते। मानसिक रोगों के इलाज के लिए स्वामीजी ने वैदिक सिद्धान्तों पर चलना, उनका स्वाध्याय करना, और उन पर विचार करना बताया। बुरी प्रथाओं को दूर करना बताया। धार्मिक रोगों का इलाज धर्म के मार्ग पर चलना, नियम स्वाध्याय, प्राणायाम, संन्या और योग साधनों से घुरे विचारों को दूर करना और सत्य मार्ग पर चलना बताया। आर्थिक रोगों के इलाज के लिए कला कौशल और चित्रकारी की ओर ध्यान दिलाया। स्वामी दयानन्द जी महाराज वर्तमान समय की शिक्षा प्रणाली का समर्थन करने वाले न थे। वह तो देश भर में कला कौशल को फैला कर देश की दरिद्रता को दूर करना चाहते थे। १८४० ई० में स्वामीजी ने जर्मन के नगर विजबेडन के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर बीज से इस विषय में पत्र व्यवहार किया। उस समय जापान उन्नति की चोटी पर नहीं पहुंचा था। कना कौशल में जर्मनी की तुनी बोल रही थी। उनके पत्र व्यवहार का सारांश यह था कि, हम कुछ विद्यार्थियों को जर्मनी में शिक्षा और विज्ञान के चमत्कार सीखने के लिए भेजना चाहते हैं क्या आप उन्हें सिखाने में संकोच न करेंगे? डाक्टर बीज ने जो उत्तर स्वामीजी को विशेषकर २१ मार्च १८४० के पत्र में दिया उसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि हम आपके भेजे हुए बड़कों का स्वागत करेंगे और शिल्पकारी और विज्ञान के चमत्कार सिखाने में

कोई कसर उठाने नहीं देंगे। हम आप से कोई राग द्वेष करने वाले नहीं हैं। हमारी भारतवर्ष के साथ हार्दिक सद्भावमूर्ति है क्योंकि हमारे पूर्वजों का भारत में ही पालन पोषण हुआ और शिक्षा दीक्षा मिली थी।

महर्षि दयानन्द ने डाक्टर का सा बर्ताव हिन्दू जाति के साथ किया। हिन्दू जाति की रोगों में पुराणों के मनोद्वन्द्व किम्से बहानियों और अफवाहों और भ्रमजाल, अविद्या भूत प्रेत और जड़ पूजा का गन्दा मादा भरा पडा था। हम लिए स्वामीजी ने युक्ति और बुद्धि के शस्त्र से फेंके और फुन्सियों का Operation किया और हिन्दू जाति के शरीर के भीतर वेद मन्त्रों के सत्य अर्थों का इज्जतन देकर ऋषियों के सत्य ज्ञान का शुद्ध रक्त उनके भीतर डाल कर हिन्दू जाति को ऋषि सतान बनाने का घोर प्रयत्न किया।

जिस प्रकार रोगी Operation के समय डाक्टर को गालियाँ देता है और अपना शत्रु समझता है, और डाक्टर उसकी गालियों की पारवाह न करके चीरा दे ही देता है परन्तु जब रोगी का रोग दूर हो जाता है तो डाक्टर का धन्यवाद देता है। यही अवस्था हिन्दू जाति की है। रोगी हिन्दू तो स्वामीजी को गालियाँ देते हैं उन पर दोष लगाते हैं परन्तु जब उनका अज्ञान रूपी राग दूर हो कर उनका रक्त शुद्ध पवित्र हो जायगा तो स्वामीजी को इत्य से धन्यवाद दे ंगे और उनको अपना गुरु और नेता मानने लग जायेंगे।

इस प्रकार स्वामी जी सचमुच एक आध्यात्मिक डाक्टर थे जो न केवल हिन्दू जाति के असाध्य रोगों का दूर करने आए थे वह ईसाई और मुसलमानों के रोगों को (अन्ध विश्वासी इत्यादि का) भी हटाने आए थे। सचमुच डाक्टर का कर्तव्य पालन कर गये। अब मुसलमान और ईसाई भी अपनी धर्म पुस्तकों का बुद्धि और युक्ति की कसौटी पर परखने लगे हैं और यही कारण है कि वह नई व्याख्या करने लगे हैं जो वर्तमान विज्ञान और तत्व ज्ञान के अनुसार है।



“अमर-ज्योति”



[ले०—श्री हर्षदेवजी आर्थ ‘दर्श’]



[आप एक अच्छे साहित्यिक व्यक्ति हैं आपकी वर्णनशैली हृदयंगम होती है लेखनशैली में प्रचुर चमत्कार है।

— सम्पादक]



मड़ते हुए नीरद एक पार्ष्व से दूसरे पार्ष्व को निकल जाते। शीतल समीर के भोंके स्वच्छन्दता से अर्बुद की शृङ्खलाओं को आलिगन करते हुए चले जाते। हिमालय

की उत्तुङ्ग चोटियां अनन्त की ओर टकटकी लगाये हुए हैं। वहां केवल धबलता का साम्राज्य है। ऊपर अनन्त व्योम, और सन्मुख अन्तराल अन्तरिक्ष है। उसके नीचे वही ससार है जिसको त्यागने के लिये, स्वामी दयानन्द जी, ऊपर खड़े हैं।

अधि ने, अपने गृह की सुख सम्पदा त्याग दी। जो सम्पत्ति, पेश्वर्य और वैभव को भी ठुकरा कर निराशा नहीं हुआ, वही आज क्यों हिमालय की चोटी पर निराशा और वेदना लिये हुए आत्म-परित्याग के लिये खड़ा है? अब वह शायद दो ही एक पल में अपनी जीवन लीला को अर्पित कर देगा। जिसके लिये वह इस संसार में आया था वह अभी तक पूर्ण नहीं हुआ। उसका अन्तराल मानस अशान्त है।

प्रस्तुत लेख में लेखक महोदय ने स्वामीजी के जीवन की महत्ता को दिखाते हुये ब्रह्मचर्य की शक्त पर प्रकाश डाला है। तथा ज्ञानो-पार्जन एवं समाग की भलाई के लिये एक सच्चे गुरु की कितनी आवश्यकता है, इस बात को दिखाया है।

पुनः उसको वही विरवपति का गुप्त संदेश दिव्य के चट्टनों से टकराता हुआ मिला जो कि पहले उसे शिव मंदिर व कगूरों से टकरा कर मिला था। “यदि तुम शान्ति चाहते हो तो ज्ञान प्राप्त करो। तुमने अभी कहाँ ज्ञान पाया। अन्धकार को ज्ञान के प्रकाश से नष्ट कर दो।” यह थी गुप्त बाणी। अधि के ज्ञान रत्न खुले। वह पुनः वहीं को लौटा जिमका वह त्यागने की अभिज्ञाष कर रहा था।

उस समय स्वामी जी के मन्थक में ज्ञान का पाटुभाव हो जाना एक विशेषता दिखलाता है। उन्हें ने जीवन भर उस ज्ञान की खोज की, जिससे अन्त में उन्हें शान्ति प्राप्त हुई। संसार को भी उन्होंने शान्ति का मार्ग दिखलाया ज्ञान ही सृष्टि का संचालन करने वाला है। इसमें आनन्द और शान्ति का वह भण्डार भरा पड़ा है जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। इसके अन्तर्गत एक अल किक समाप्त है जिसमें न शोक है न वषट्। ज्ञान वह ज्योति है जो विचलित मार्ग से सीधे मार्ग पर कर देती है।

उनके जीवन के साथ यह घटना इस प्रकार जुड़ी हुई है जिस प्रकार की महाबोधि वृक्ष की घटना। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि स्वामी जी का कार्य-क्रम यहीं से प्रारम्भ हुआ। उन्होंने ज्ञान की वह ज्योति प्रखलित की जो सृष्टि के प्रलय काल तक जगमगाती रहेगी।

जीर्ण शीर्ण भोपड़ों से लेकर भव्य भवनों तक मरुभूमि से लेकर लहलहाते हुये मैदानों तक, पग डंडी से लेकर बृहत् राज पथ तक, पल्लव से लेकर अथाह समुद्र तक, और सृष्टि के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक मे वही ध्वनि जो (आज से अर्द्ध शताब्दि पहले उसने निकाली थी, "कृण्वन्तो विरव-सार्गम्।" पाखण्ड को संसार से सदा के लिए मिटा दो प्रतिध्वनित हो रही है। उसका परम लक्ष्य यही था, "प्राचीन काल की ओर अप्रसर हो जाओ"। इतने ही थोड़े शब्दों में स्वामी जी ने प्राचीन काल का दिग्दर्शन करा दिया। वह सन्यासी उसी युग का पक्षपाती था। जिस युग के लोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए अरथ्यों और कन्दराओं में जाते थे। उस ज्ञान से संसार का कल्याण करते थे।

स्वामी विरजानन्द जी की कुटिया मथुरा में जमुना नदी के किनारे थी। वह जन्मान्ध आचार्य भी प्रथम ही ईश्वर का सन्देश लेकर इस भूतल पर आया था। वह एक आत्म त्यागी की खोज में था, "जो संसार की जीवन ज्योति को जगा दे। अविद्या के अन्धकार को रवि की किरणों की भौति अपने ज्ञान से छिन्न भिन्न कर दे।" अन्त में उन्हें स्वामी दयानन्द जी मिले। उनके जीवन की चिर अभिलाषा पूर्ण हुई।

स्वामी जी ने प्राचीन शिष्यों के कर्तव्यों को निभाया नित्य घड़ों नीर भरना, गुरु को नित्य स्नान आदि करना, आदर्श शिष्यता की एक मर्यादा प्रकट करता है। गुरु जी कभी कभी उन्हें मार भी दिया

करते थे परन्तु उसमें भी वे गुरु की कृपा समझते थे। उल्टे उनके हाथ पैर दबाने लगते कि कहीं उनको चोट तो नहीं आ गई या कष्ट तो नहीं हुआ यह प्राचीन श्रुति का एक आदर्श था। इसमें भक्ति का कितना सरस और अथाह सिन्धु भरा हुआ है; जिसमें गोते लगा कर परमानन्द को प्राप्त हो सकते हैं। गुरु और शिष्य का एक अमिट व्यवहार था जो ध्येय की उतुङ्ग चोटी पर पहुँचा देता है। गुरु और शिष्य का वह सम्बन्ध था जो एक में त्याग उत्पन्न करता है और दूसरे में भक्ति। त्याग और भक्ति ही इस मसार से छुटकारा पाने के लिये मार्ग हैं।

एक बार गुरुजी ने स्वामी जी को ऐसा मारा कि उनके हाथ में एक ब्रण हो गया था। उसका चिन्ह जब तक वे जीवित रहे तब तक बना रहा। स्वामीजी उसको कभी २ देख कर गुरु की कृपा का स्मरण करते थे। नेत्रों से कृतज्ञता के आँसू छलछला पड़ते और प्रेम का एक सरस स्रोत उमड़ पड़ता था।

गुरु से अन्तिम विच्छेद भी अद्भुत था। गुरु दक्षिणा भी केवल एक अर्जुली लेंबग थोड़े ही है। गुरु ने कहा, "इससे क्या हो सकता है? मुझे कुछ और ही वस्तु चाहिये।" स्वामी विरजानन्द जी ने उनसे अपने जीवन का उत्सर्ग कराकर ही दम लिया।

नये उत्साह और नवीन उमङ्गों को लिए हुए उन्होंने हरिद्वार के कुम्भ के मेले में सिद्ध की भौति गरज कर पाखण्ड खरिडनी पताका आकाश में फहरा दी। बड़े २ विद्वानों, साधु, महात्माओं से स्वामी जी की टक्कर हुई। परन्तु वे चपेट को न सह सके। खुले आम उन्होंने धार्मिक ढांगों का खरडन किया। लोगों ने दाँतों तले उँगलियाँ दाबीं।

लाखों की भीड़ के सन्मुख उसने दहाड़ा। पाखण्डियों का रक्त खौल उठा। परन्तु वह सत्य विद्या के प्रचार करने में एक बार काल से भी द्वन्द

कर सकता था। उसने अपने साहस और निर्भीकता से अज्ञान के विरुद्ध वह ज्वाला धधकाई जा कभी भी शान्त न होगी।

स्वामी ने अपनी आत्मा का उत्सर्ग केवल विशेष जन समुदाय के लिए ही नहीं किया बल्कि सारे ससार के लिए किया। उसकी वाणी सब स्थानों में व्याप्त हो गई। “कृत्वन्तो विरवमार्यम्।” यही उसकी चिर अभिलाषा रही।

उसका आराध्य देवता ईश्वर के सिवा दूसरा कोई न था। वही सब सुखों का मूल वेत्ता है। उषी एक के साधने से सब सध सकता है। मूर्तिपूजा और प्रेत पूजा उसके लिये ढोंग था। विधवा विवाह पर प्रतिरोध, बाल विवाह, देवी देवता, मुसलमान, ईसाई आदि को वह ससार का विष समझना था। निरीह और अज्ञान जनता अन्धकार में लिपटी हुई उसी के अन्दर कँसी हुई थी। उसने अन्धकार का पट हटा कर लोक समुदाय को उस प्रभा में कर दिया जिसमें सारी सृष्टि जगमगा रही है।

उसने केवल कल्पनाओं की ही सृष्टि नहीं की बल्कि उसमें ज्ञान का वह तथ्य भर दिया जिसके सहारे लोक और परलोक दोनों बने। नैसर्गिकता का उद्गार उसके हृदय से निकला और अज्ञानी को आवेष्टित कर लिया। एक अमर प्रकाश निकला और लोक समुदाय को दीप्त कर दिया। उसने ईश्वर और जीव के मध्य में एक स्वर्ण सोपान लगा दिया जिसके सहारे स्वर्ग के दरवाजे तक पहुँच सकते हैं।

काशी राज के सन्मुख, काशी में उसके ऊपर पाषाण और ढेले बरसाये गये। वह अचल होकर सब सहता रहा। उसने सोचा आज ये ढेले बरसा रहे हैं, कल यही फूल भी बरसायेंगे। आर्य धर्म का केन्द्र यह नगरी प्राचीन काल से रही है। एक क्षम्य फिर आवेगा जब यहाँ पर विद्या की ज्योति

प्रसारित होगी। हजारों वर्ष पूर्व श्री शंकराचार्यजी जिस नगरी में मण्डन मिश्र की बालाओं से हार मान गये थे वही स्वामी दयानन्द जी ने इतनी ऊँची पताका फहराई की वह दूर से भी देखी गई।

उसने आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध जोड़ा। भाति भाति के सम्प्रदाय फैले हुये थे। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लोक धर्म का दिग्दर्शन राम चरित मानस में किया। परन्तु स्वामीजी उनसे भी बढ़ गये। उसने आनन्द और सुख का मार्ग खोल कर, जनता को दिखलाया वह लहलहाता हुआ कुञ्ज जिसमें कल्पतरु था, ब्रह्म चर्य, गृहस्थ, वान-प्रस्थ और सन्यास आश्रम उसकी शाखाये थीं और उनका निष्कर्ष उसका फल था। विधवा विवाह क्रियों में शिष्टा बाल विवाह निषेध आदि को वेग से चलाया।

वह ऋषि ब्राह्म ब्रह्मचारी था। वह—

स्मरसा, कीर्तन केलि प्रेक्षसा गुह्य भाषणम्।

संकल्पोऽभ्यवसायश्च क्रिया “ “ “ आदि से अत्यन्त व्यवधान पर था। एक बाल ब्रह्मचारिणी जो उन्हीं की तरह ब्रह्मचारिणी थी, स्वामी जी से कहती है, ‘दे ब्रह्मचारी तुम मेरा पाणिग्रहण करलो’। “क्यो” ऋषि ने कहा।

‘इसलिए कि हम दोनों बाल ब्रह्मचारिणी तथा ब्रह्मचारी हैं। हम लोगों से जो सन्तान उत्पन्न होगी वह हष्ट पुष्ट और सुसंस्कृत होगी। वह ससार के लिए आदर्श बन जायगी।’

‘हे माता! मुझे ही अपना पुत्र समझ। मैं तुम्हें अपनी माता समझूँगा।’

इतने पर भी स्वामी जी नहीं डिगते हैं। ब्रह्मचर्य का आदर्श कितना ऊँचा उठा हुआ है। यह भावना सम्मुख खड़ी है.—“मातृवत् परदारेषु।”

वह भगवान के सिवा किसी से डरता ही नहीं था, किमान के डण्डा देने पर भी वह निहत्थे भीषण भयंकर जंगलों को पार कर गया। यह थी उसकी निर्भीकता और उसका साहस। ब्रह्मचर्य का वह अद्भुत बल था, जिसके बल पर उसने राजा की चलती हुई बग्घी रोक दी। जिस कीचड़ में फँसी गाड़ी को अठारह मनुष्य भी बाहर न कर सके उसी को खीच कर बाहर कर दिया तेज और शौर्य का जमघट उसके शरीर में था। भयंकर विप्ले सोंप का घुमाकर फेंक दिया। मथुरा के चौकों ने जब उधे जमुना में फेंक दिया, कितने घण्टे वह पानी में रहा? अलौकिक बल और पौरुष की वह मूर्ति था। उसके सन्मुख ससार की कई भी शक्ति उससे नहीं भिड़ सकती थी। उसमें धीरता, वीरता, बल अजो, शक्ति सब कूट कर भरी हुई थी। ब्रह्मचर्य ही जीवन की नीब है। बिना इसके पृष्ठ हुये जीवन व्यर्थ और नीरस है। उसमें वह चमत्कार है जो असम्भव को भी सम्भव कर देता है।

एक अंग्रेज के पढ़ने पर स्वामी जी कहते हैं “भारत तभी स्वतन्त्र होगा जब स्वदेशी वस्तुओं को बहिष्कृत कर देगा और विदेशियों का निकाल देगा। यह स्वतन्त्रता की उस काल की भनकार थी जिस समय कि दादा भाई नौराजी और ह्यूम आदि का कहीं पता न था।

जगन्नाथ रगोड्ये को रुपया देकर नैपाल भाग लाने की स्ख देते हैं, जो कि उनके जीवन का काल था। ज्ञाना और दया का उठा हुआ किगना - इरा है? रीशा भी लेने से सम्पूर्ण शरीर में

भयंकर गर्मी उत्पन्न हुई और सारे शरीर में ब्रण भी हो गये। पर वह शान्त था। उसके जीवन का उद्देश्य भी शान्त था। जहाँ शान्ति नहीं वहाँ जीवन ही नहीं कहा जा सकता। वियोग और संयोग में शान्ति, घर बाहर शान्ति अन्तराल में शान्ति, आन्तरिक में शान्ति, व्योम में शान्ति, बल्कि वह सारी सृष्टि में शान्ति चाहने वाला शान्ति का पक्का पुजारी था।

अरावली पर्वत पर पड़ा हुआ है। तार पर तार आरहे हैं। वह वेदना से पूर्ण है पर शान्त है। केवल ईश्वर के प्रति भावना ही, उसकी चंचल है। इतने में ईश्वर का संवाद उसे चले आने का हुआ। वह ‘ईश्वरेच्छा’ कहते ही अनिल अनन्त में अन्तर्हित हो गया।

× × × ×

स्वामी दयानन्द जी ने गृह की सम्पत्ति त्यागी, पिता के क्रोध के भाजन बने, अपनी जननी का त्याग भीषण-भयंकर जंगलों की झाड़ियों से अपना तन छिद्वाया, भयंकर प्रलय कारिणी माघ की रजनी. निदाघ के तप्त दिवस के कष्टों को सहा, ईद पत्थर खाये अपने लिए? नहीं! संसार के लिए। उसने उनको पुष्प समझकर अपनाया। विशेषकर उसने हिन्दू जनता का बहुत उपकार किया। जिसको हम फिर “आर्य” कहने लग गये।

आज हम उसी महात्मा के मोक्षदिवस को मनाने के लिए अज्ञात देश को चले जा रहे हैं। श्रीपावली के इतने जगमगात हुए प्रकाश में भी हमें वह आत्मा विस्लाई नहीं पड़ रही है। क्यों?





दीप-मालिके



[रचयिता—रामसिन्हा “रमेरा” साहित्य रत्न, हिगोली निजाम स्टेट]



जग-मग, जग मग दीप मालिका जग में उजियाली छाई,
 चारों ओर एक अनुपम सी छटा बिलक्षण है छाई ॥
 पार तमिस्रा के नीरव मं नहीं सुमता है कुञ्ज पार,
 दुर्गम पथ पग थक हुए हैं, कठिन लाचना मार्ग अपार।
 अमित बटाही टर रहा है, कैसे हूंगा पार सखे ?
 निपट भ्रान्त सा भटक रहा हूँ, दुर्गम यह ससार सखे !
 कर उज्वल प्रकाश जगती पर, पथ निर्देशन को आई।
 जग मग जग मग दीप मालिका, जग में उजियाली छाई ॥ १ ॥
 यहा द्रुप है यहाँ द्रोह कटुना का नित व्यापार यहाँ।
 यहाँ पाप, व्यभिचार यहाँ, डल छन्दो का व्यवहार यहाँ ॥
 मानव ! क्या इस पाप पक से, है तेरा उद्धार नहीं।
 प्रेम मल्लिक की लोल लहरियों, करतीं तुझे दुःखार नहीं ॥
 कपट, अनय का पाश तोड़, मानवता सिखलाने आई
 जग-मग जग मग, दीप मालिका, जग में उजियाली छाई ॥ २ ॥
 बन अनुराग बसी लोचन में पीर बनी बसती मन में।
 आतुरता बन बसी हृदय में, उन्मीलन बन चितवन में ॥
 दृढ़ता बन मानस मन्दिर की, ओज शौर्य की बन रानी।
 दीप मालिके ! हमे सिया दो, देश भक्ति वह दीवानी ॥
 जीवन का सर्वश्व भेष्ट हूँ, पारतन्त्र्य हरने आई।
 जग मग, जग-मग, दीप मालिका जग में उजियाली छाई ॥ ३ ॥
 जीवन क्या है ? क्षणिक एक मादक मदरा का प्याला है।
 जिसमें मस्ती से मद माती अरुण छलकती हाला है ॥
 अरे ! वासना क पुतले ! मदशोश न हो जाना इसमें।
 अधरों से मत लगा, कहीं मद मत्त न हो जाना इसमें ॥
 दीप मालिके ! आज दीप ले सुषमा बरसाने आई।
 जग मग, जग-मग, दीप मालिका जग में उजियाली छाई ॥ ४ ॥



- -: श्री स्वामी जी की यात्रा :—

[ले०—श्री महेश्वरप्रसाद जी मौलवी आलियम फाजिल हिन्दू यूनीवर्सिटी काशी]



1
[आप आर्य जगत् के प्रसिद्ध लेखक एन वक्ता हैं। अरबों फारसी में आपकी असाधारण योग्यता हे आपके लेख का पूर्ण हाते हैं। —सम्पादक]



स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने लगभग २२ वर्ष की आयु स० १६०३ विक्रमीय (सन् १८४६ ई०) में सदैव के लिए घर त्याग दिया। स० १६४० वि० (सन् १८८३ ई०) में स्वर्ग लोक सिधारे। इस काल के बीच म दार्द-तीन वर्ष तक मथुरा में रहे। फलतः लगभग ३५ वर्ष तक का जीवन ऐसा रहा जिसमें उन्होंने प्रायः यात्रा ही की।

उनकी यात्रा सुगमता के साथ दो भागों में वभक्त की जा सकती है। एक पूर्वार्द्ध अर्थात् उस समय तक का यात्रा जबकि वे शिक्षा प्राप्ति के निमित्त मथुरा में पहुँचे थे। दूसरी यात्रा उत्तरार्द्ध जबकि उन्होंने शिक्षा समाप्ति के परचान मथुरा त्याग किया और वैदिक धर्म के अनिमित्त कार्य करना आरम्भ किया।

पूर्वार्द्ध—यात्रा में लगभग ४० स्थानों के नाम पलते हैं, जिन्हें उन्होंने गौरवान्वित किया और उत्तरार्द्ध में लगभग १२५ (एक सौ पचीस) पदार्पित

प्रस्तुत लेख में लेखक महोदय ने स्वामी जी की यात्रा के लक्ष्य को सुनिपुण रीति से दर्शाया है। उनकी यात्रा हमारे लिये कितनी लाभदायक थी उन्होंने कैसे कैसे यात्रा की इन सब बातों का स्पष्टीकरण किया गया है।

स्थाना के उल्लेख मिलते हैं। इस प्रकार से कुल स्थानों की संख्या २०० (दो सौ) से कुछ कम ही ठहरती है। इनमें से अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ पर वे एक ही बार पधारे थे और बहुत ही कम ठहरे थे परन्तु अनेक स्थान ऐसे भी हैं जहाँ पर वे अनेक बार पधारे थे और अधिक समय तक ठहरे भी थे।

वास्तविक बात यह है कि जहाँ २ उन्होंने पदार्पण किया उनमें से अनेक स्थाना का बावत कुछ पता हा नहीं। उदाहरणार्थ पूर्वार्द्ध यात्रा के सम्बन्ध में जानना चाहिये कि स० १६११ वि० (सन् १८५५ ई०) में वह आवू से हरिद्वार पहुँचे। दोनों स्थानों के बीच में सीधे मार्ग से यदि हिसाब किया जाय तो ४५० मील से कम की दूरी नहीं। उस समय दोनों स्थाना के बीच में रेल नहीं थी। निदान अनेक स्थाना पर विराजते हुये, महाराज जी हरिद्वार पधारे होंगे, किन्तु इस यात्रा से सम्बन्ध रखने वाले किसी स्थाना का पता नहीं।

काशी में महाराज जी स० १६१३ वि० (सन् १८५६ ई०) में पधारे थे। यहाँ से नर्वदा नदी के छात तक गये और फिर बहा से मथुरा में श्री स्वामी

विरजानंद जो महाराज की सेवा में पहुँचे थे। यह यात्रा लगभग ६०० मील बिना रेल के हुई और काफी समय इसमें लगा। किन्तु दो चार स्थानों के सिवा अन्य स्थानों के नाम तक हम नहीं जानते।

स्पष्ट रहे कि पूर्वार्द्ध यात्रा के विषय में जो कुछ श्री महाराज जी ने स्वयं लिखाया या बतलाया उस पर ही सन्तोष किया गया। उस बात और खोज बहुत ही कम हुई है अथवा यह कहना चाहिये कि नहीं हुई है। उत्तरार्द्ध के सम्बन्ध में काफी खोज हुई है। स्वर्गीय श्री परिडित लेखराम जी आर्य पथिक, श्री बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जी व श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज क नाम इस विषय में सदैव अमित रहेंगे। परन्तु मैं समझता हूँ कि उत्तरार्द्ध यात्रा (जो कि विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है) में अनेक पदारोपित स्थान ऐसे प्रतीत होते हैं जिनके बावत हमें कुछ पता नहीं।

सितम्बर १८७४ ई० (आश्विन १८३२ वि०) की किमी तारीख का श्री स्वामी जी महाराज पूना से सतारा गये थे। यह यात्रा निस्संदेह रेल द्वारा नहीं हुई थी क्योंकि एम०, एम०, एम०, (मद्रास सर्वेन मरहटा) रेलवे कोरे गांव नामी स्टेशन से घोर पुरी (पूना के निकट दक्षिण ओर) तक १८-११-१८८६ ई० को खुली थी। घोर पुरी से पूना तक ४-१०-१८६ ई० को खुली थी और कोरे गांव तथा सतारा राड नामी स्टेशनों से ही सतारा नगर पहुँचना सुगम है। पूना व सतारा के बीच में लगभग ६६ मील की दूरी है। छारीच मोटर काचिन्ह उस समय कहाँ था? महाराज जी सम्भवतः घोडा गाड़ी या बैल गाड़ी से गये होंगे और शिरवल नामी स्थान में ठहरे होंगे जो कि पूना से दक्षिण ओर ३२ मील की दूरी पर है।

यदि तीन बातों को सम्मुख रखा जाय —

१ किस तारीख को एक स्थान छोड़ा और किस तारीख को दूसरे स्थान पर पहुँचे।

२. उक्त प्रकार के दोनों स्थानों के बीच में दूरी कितने मीलों की है।

(३) उक्त प्रकार के दोनों स्थानों में बीच में यात्रा का साधन क्या था; तो भली भांति स्पष्ट हो जायेगा कि उत्तरार्द्ध यात्रा के अनेक पदारोपित स्थान से हम सर्वथा अपरिचित हैं।

देखिये, कार्तिक कृष्ण २ सं० १६२६ वि० (१८ अक्टूबर सन् १८७२ ई०) को महाराज ने भागलपुर के लिये पस्थान किया। दोनों बीच में ४० मील से अधिक की दूरी नहीं। स्थानों के बीच में उस समय रेल का मार्ग

था। परन्तु भागलपुर में श्री स्वामी जी महाराज का पधारना कार्तिक कृष्ण ४ को होता है। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण मुझे पढ़ता करने पर मिले हैं।

भारतवर्ष में सबसे पहिले १८-४-१८३३ ई० में बम्बई से थाना नामी स्थान तक अर्थात् केवल २१ मीलों की रेलवे लाइन खुली थी। श्री स्वामी जी महाराज की पूर्वार्द्ध यात्रा का कोई अंश रेल द्वारा न हुआ था और उत्तरार्द्ध यात्रा की भी एक अच्छी यात्रा पैदल ही हुई थी। अस्तु, इस प्रकार की बातों को सम्मुख रखकर उनकी यात्रा तथा पदारोपित स्थानों के बावत बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु यहाँ स्थान कहाँ? हों, अन्त में यह जतला देना आवश्यक है कि उनकी उत्तरार्द्ध यात्रा हमारे धर्म, जाति और देश के निमित्त विशेष रूप से हितकर मिष्ट हुई। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनकी उत्तरार्द्ध यात्रा द्वारा जो कुछ हितकर बातें हुई हैं उनमें पूर्वार्द्ध यात्रा का अच्छा योग था। बद्रीनारायण आदि में जो कुछ उन्होंने देखा था उसी का फल है कि सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुदास में वहाँ के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिख सके हैं। निस्सन्देह ऐसा क्यों न होता? सच है—यात्रा किसी भी उद्देश से की जाय वह लाभ-शून्य नहीं हुआ करती है।



ब्रह्म-विचार



[ले०—साहित्यरत्न श्री पं० निरंजनदेवजी एम०एम० सिद्धांत विशारद, वैदिक भिभरी अजमेर]



विक साहित्य में ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों को त्रैतवाद नाम से बर्णन किया गया है। हमारा प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है, संसार में आस्तिक और नास्तिक भेद से दो प्रकार के विचार पाये जाते हैं। इन शब्दों के अर्थ आवश्यकता नहीं क्योंकि ये शब्द जन साधारण लुँच गये हैं। जो ईश्वर की सत्ता नहीं मानते हैं, यथा जैन बौद्ध चारवाक आदि ये सब नास्तिकों की श्रेणी में हैं। आर्य, हिन्दू, ईसाई, मुसल्मान आदि ईश्वर को मानते हैं इसलिये ये आस्तिक कहते हैं। सम्प्रति वैदिक ईश्वर के स्वरूप का विचार करना है।

यदि हम साधारण मनुष्य की तरह इस संसार पर दृष्टि पात करे तो दो प्रकार का संसार मिलता है। एक जड़ दूसरा चेतन इन दोनों प्रकार के जगत् में हम प्रथम चेतन जगत् की भीमांसा आरम्भ करते हैं। इस चेतन संसार में हमें सजब असमानता दिखाई देती है। कोई राजा सम्पत्तिशाली भव्य-भवनों में विलास पूर्ण जीवन यापन करता है कोई नानाविध संकटों से परिपूर्ण जीवन पथ को विशुद्ध करने का प्रयास करता है। कहीं पर दारिद्र्य-देव का ताण्डवनृत्य हो रहा है। किसी श्रेणी में स्वास्थ्य सुधाधारा प्रसूचित होती दीख रही है तो दूसरी ओर नरककल ही अवशिष्ट दिखाई दे रहे हैं। प्रतीत पेटा होता है कि वर्षों से इनमें जीवन रस नहीं सेचन किया गया। प्रश्न होता है कि इस असमानता का उदय कहाँ से हुआ? उत्तर में यही कहा जाता है

मनुष्य स्वतन्त्र प्राणी है वह अपनी स्वतन्त्रता से कार्य सम्पादन करता है। उसकी अपनी इच्छाओं को रोकना ही दुःख है। यही वैज्ञानिकों का मत है “बाधनालक्षण दुःखम्” यदि इच्छा में बाधा की गई तो नैराश्य का जीवन यापन करना पड़ेगा। सुख सम्पत्ति नष्ट हो जायगी। दुःख से जब सब प्राणीवर्ग भय मानता है तो मनुष्यों की तो कथा ही क्या कइनी। किम् की इच्छा है कि क्लेश का सामना करना पड़े। मय सुख की कामना से प्रयत्नशील हैं। “दुःखादुद्धिजते सर्वे, सर्वस्य सुखमपि सतम्” किन्तु दुःख जीवन में मिश्रित अवश्य है। यह एक घटना किसी अदृष्ट के हाथ में है। वही अदृष्ट परमेश्वर है जो मनुष्य की अपनी इच्छा रहने पर भी सद-सन् फल-लाभ करता है। विकासवादी समस्त प्राणियों में ममानता मानते हैं। हमारा भी कथन है कि यह सब समानता शरीरों में है क्योंकि शरीरों का निर्माता एक ईश्वर है और माय हो उन सब शरीरों में कहीं अस्मानता दृष्टि गोचर होती है। उसके लिये इतना ही कहा जा सकता है कि वह आवश्यकता नुसार परिवर्तन रूप है जैसे एक इंजीनियर मकान बनवाते समय जल वायु प्रकाश (तेज) का ध्यान रखता है और मलादि निष्कासन का भी ध्यान रखता है। मकानों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करना उसका अपना कर्तव्य है ऐसे ही शरीरों में होता है। चेतन संसार की सुख दुःख की अवस्था देखकर सहसा प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस सुख-तरक्लेश की अवस्था से क्या प्रयोजन है? नास्तिक लोग इसी असमानता को देखकर जो दुःख की चोतक है किसी ऐसी शक्ति को स्वीकार नहीं करते

है। ये यहाँ पर जीवन मरण, हर्ष, भय, शोक, कलह आदि बातों का अवलोकन कर यह सिद्ध करते हैं कि यहाँ पर कितना बैररीत्य है, क्या आवश्यकता है किसी अधिष्ठता या संचालक के मानने की शक्ति का स्वीकार करना अज्ञानता है? विकास क्रम का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रतिकूल परिस्थिति विकास का मूल कारण होती है। एक वैज्ञानिक का कथन है कि इस ससार में भंग की असमानता ही सुखसौन्दर्य का आधार है, यदि अवस्थाभेदन माना जाय तो जीवन में किसी को अभिरुचि न होवे। जीवन का मूल्य मृत्यु से ही मालूम होता है। यदि मृत्यु को दूर कर दिया जाये या उसकी सत्ता ही न रहने पाये तो जीवन अपना कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। नेत्रों का आवश्यकता उन्नीसवीं सदी में मालूम होती है जब किसी को हम नेत्रविहान देखते हैं जो चलना फिरना आदि कार्यों से तंग अवस्था में है। यह सब असमानता भोगवाद पर आश्रित है यही उन्नति का मूल कारण है। इसी आधार पर यह कार्य होते हुए देखकर आस्तिक संसार में एक शक्ति की कल्पना की जाती है। हमने ऊपर की पंक्तियों में इच्छा स्वातन्त्र्य का उल्लेख किया है वह स्वतन्त्रता जीव को ही प्राप्त है। मनुष्य कर्म करता है उस कर्मका फल भी दिखाई देता है इसीलिये ईश्वर की सत्ता मनीषी पड़ती है। कुछ यह मानते हैं कि मनुष्य के अपने कर्मों से कुछ नहीं होता, यह सब ईश्वर की ओर से उपलब्ध होता है। इस विषय को इस प्रकार वर्णन किया गया है कि पुरुष के कर्मों के अभाव में फल का निष्पत्ति नहीं होती यह उक्त कथन कि जीव को सुख दुःख ईश्वर से प्राप्य है संगत प्रतीत नहीं होता। क्यों कि ईश्वर कर्मफल का दाता है इन्हीं हेतु से उक्त हेतु संगत चरितार्थ नहीं है।

न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः तत्कारित्वाद्देहेतु ।

भाव स्पष्ट है। मनुष्य कर्म किया करता है और फल ईश्वर दिया करता है। साध्य में कर्म तीन प्रकार का वर्णन किया गया है। “शुक्लाशुक्ल, शुक्ल-कृष्णा भेदान्”। यही गीता में भी वर्णन किया गया है। कुछ एक का मन्तव्य है, जब जीव का कर्म अपना है तो फल भी स्वयं ग्रहण कर लेगा। ईश्वर की क्या आवश्यकता है। कर्म विज्ञान की गहराई में न जाते हुए हम यह लिखेंगे कि यह बात एक पल के लिए भी नहीं मानी जा सकती जू सब कर्म सुख के लिए ही करता है। परन्तु उसमें ही दुःख के कारण बन जाया करते हैं। ऐसी सूरत में क्या वह जीव स्वयं कई फल भोगने का अभिलाषी है जिसका फल दुःख है? एक चोर चोरी करके क्या स्वयं कारावास की कड़ी यन्त्रणाओं को सहन करने के लिये कटिबद्ध होगा? कदापि नहीं इसलिए न कर्म स्वयं फल उत्पन्न कर सकता है आर न कर्ता (जीव) स्वयं स्वकृत कर्मों का फल प्राप्त किया करता है। उसे फल प्राप्त ईश्वर द्वारा हुआ करती है। अतः चेतन जगत के देखने से एक ईश्वर की सत्ता मानना पड़ती है।

जड़ जगत्

के विषय में अब प्रक शब्दों का आवश्यकता है। विज्ञान यह सिद्ध करता है कि प्रत्येक प्रकृति का परमाणु गति करता हुआ नाना रूप धारण करत है। सब में परिवर्तन होरहे है। इस परिवर्तन का देख कर हमें तीन बातों का ज्ञान होता है। उत्पत्ति वृद्धि और विनाश। काई उत्पन्न होरहा है, किसी की वृद्धि इरही है और कही कोई विनाश की ओर जारहे है विनाश से तात्पर्य यह है कि जो वस्तु जैसी अवस्था में उत्पन्न के पूर्व थी उसी अवस्था में पुन पड़ेने का नाम विनाश है। कार्य और कारण का परस्पर सम्बन्ध है जहा जहाँ कार्य है वहाँ वहाँ कारण होता ही है। बिना कारण के कार्य नहीं होता। वृत्त की इस वर्त-

मान परिस्थिति को देखकर हम अनुमान करते हैं कि इस अवस्था में आने के लिए कोई कारण आवश्यक था और वह ही वीज रूप में, वही वीज जो मिट्टी में पड़कर धूप पानी आदि सब साधन प्राप्त कर अंकुर बना था, अंकुर बनने की अवस्था से अब यह विशाल वृक्ष बना। घड़े को देखकर उसके कारण मिट्टी का ज्ञान स्वयं हो जाता है। प्रत्येक पदार्थ जब कारण से कार्य की अवस्था तक आते हैं तो उसी कारण से उनमें परिवर्तन आने लगते हैं। यही परिस्थिति उन्हें अब इस अवस्था तक पहुँचा देता है पूर्व में थी यही परिवर्तन क्रम है। हम इस परिवर्तन को देखकर इस निरायण पर पहुँचे हैं कि इस संसार का इस प्रकार संचालन करने वाली कोई भौतिक बन्तु है। विकास वादी हमारे मन्तव्य से दूर थे तो यह कहते हैं कि जिस प्रकार अब परिवर्तन दिखाई दे रहा है पूर्व में भी इसी प्रकार परिवर्तन हो रहे थे इन्हीं के कारण सृष्टि की वर्तमान परिस्थिति दिग्वाही देती है। यह जो वर्णन किया गया है यह विज्ञान के आधार पर है, तो निःसंकोच मानना पड़ेगा कि उसके अन्दर अद्भुत शक्ति अन्तर्हित है। यदि समस्त जगत परिवर्तन का रूप है और सारा जगत परिवर्तन के सहारे पूर्ण से चल रहा है आगे भी चलता रहेगा तो अन्त में यह परिवर्तन एक समय अवश्य ही बन्द हो जायेगा। परिवर्तन होना प्रकृति का स्वाभाविक गुण नहीं, स्वभाव का अर्थ सदा एक रस रहने वाला अपरिवर्तनशील होता है, तो यह परिवर्तन स्वभाव के ना ? इस परिवर्तन क्रिया को देखकर ज्ञात होता है कि यह परिवर्तन किसी बाहर की बन्तु से आया है। उदाहरण है, एक घड़ी की सुई चकर करती है, तो यह चक्र पर चलती हुई किसी दूसरे से सम्बन्ध रखती है वह है घड़ी के निर्माता का। चक्र पर गति का गुण घड़ी बनाने वाले का दिया हुआ है यदि वह गति को बन्द कर दे तो सुई भी बन्द हो जाती है। धनुष के बाण में अपनी गति नहीं वह आगे दौड़ता है, इसका कारण है कि

धनुर्धर ने उसे वेग से फेंका है। जहाँ पर बाण में दिये वेग की न्यूनता होगी, बाण की गति बन्द हो जायेगी। जैसे घड़ी की सुई या बाण या मिट्टी का ढेला स्वयं समय पाकर बन्द हो जायेगे एवमेव ही सारे पदार्थ परिवर्तन को बन्द कर देंगे। बाण में चलने के पूर्व स्थिरता थी वह गतिमान नहीं था किन्तु गति आने पर गति वाला हुआ। इसी प्रकार संसार के पदार्थों का भी अवस्था है इसमें गति देने वाला कौन है ? कहना पड़ेगा कि वही परमात्मा है। डार्विन की विचार धारा में ईश्वर को अवकाश नहीं था परन्तु बाद में वैज्ञानिकों ने ईश्वर और जीव की भी खोज की, आज का वैज्ञानिक पक्ष अपनी समस्त चर्चा ईश्वर का सहारा लिए बिना प्रस्तुत होते नहीं देखता। विज्ञान के स्वाध्याय से हमें इस प्राकृतिक जगत में श्रेणी विन्यास, याजना, धारण और विचार दिखाई देते हैं। सब बातें हमें एक चैतन्य की ओर से संकेत करती हैं। जिसका वेदोपनिषद् में वर्णन किया गया है वेद की इस गाथा पर दृष्टिपात कीजिये "स्कम्भं ब्रूहि" अर्थात् संसार के स्कम्भका वर्णन करो, इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि "कृतमस्मिन् देवसि" इसी आनन्दस्वरूप सत्य अविनाशी ईश्वर को ब्रह्म नाम से वर्णन किया गया है। चेतन और जड़ जगत पर विचार करने से ईश्वर की सत्ता का ज्ञान हुआ। अब हम उस ब्रह्म के स्वरूप पर विचार करेंगे। उल्लिखित पंक्तियों से जब यह सिद्ध हो गया कि ब्रह्म है, तो उसका क्या स्वरूप है यह प्रतिपादन करना भी आवश्यक हो जाता है।

ब्रह्मस्वरूप

ब्रह्म को जानने के साथ ही सर्व प्रथम उसके गुणों का ज्ञान करना आवश्यक है। बिना गुणों के ज्ञान के गुणी का ज्ञान नहीं होता है। ब्रह्म का स्वरूप जान लेना विज्ञान कहाता है और

उसे जानकर नियम निर्धारित करना दर्शन कहाता है। उन विषयों का जीवन में घटाने का नाम ही धर्म है। गत शताब्दि में ईश्वर के स्वरूप को वैज्ञानिक रीत्या नहीं जाना गया है और ईश्वर की सत्तासे भी किनारा करने लगे थे। आजके विज्ञान ने ईश्वर के सम्बन्ध में अनुसन्धान किया उसे इस पर गर्व है कि उसकी समस्त सिद्धान्त चर्चा ईश्वर को साथ लेकर चलती है। इसी ब्रह्म द्वारा संसार का कार्य चलता है। जिस ब्रह्म का व्याख्यान उपनिषदों में किया गया है मनमें जिसका विकास है, वाणी जिसके आश्रय से बोलती है जिससे समस्त संसार के नेत्र प्रकाशित होते हैं, जो समस्त श्रोत्रों का श्रोत्र है, जो समस्त प्राणियों का प्राण है उसे अवश्य ही जानना चाहिये। सारा संसार आज जिसकी पूजा करता है, वह तो ब्रह्म नहीं है, उस ब्रह्म का स्वरूप वैदिक शास्त्रों में इस प्रकार वर्णन किया गया है। वह ईश्वर सर्वव्यापक है, निराकार है। निराकार होने से उसको शरीर का आवश्यकता नहीं है। जब शरीरी ईश्वर नहीं तो सुखदुःख जन्ममरण जरा भय के बन्धन में वह कैसे आवेगा। अथान् नहीं। इसी भाव को प्रत्यक्ष-दर्शी विद्वानों ने प्रस्फुटित करते हुए वर्णन किया है कि—

लेशकर्मविपाकाशयैरप्राशुष्ट पुरुष विशेषः ईश्वर ॥ वेद में इसका सूत्रमिला “सपयंगान् यजु ४० ॥” ईश्वर सर्वत्र व्यापक है कोई भी परमाणु उससे रहित नहीं है। सर्वव्यापक ईश्वर के स्वरूप में हम सर्वप्रथम अनेक ईश्वरवाद पर विचार करना चाहते हैं। यह अनेकेश्वर की मान्यता कबसे प्रचलित हुई? जब वैदिककाल का पतन हुआ तभी से इसका प्रारम्भ हो गया है। विकास के आधार पर इसका उद्भव क्रम यह रखा जाता है कि जश्नक

मनुष्य में ज्ञान नहीं था, जीव और गति को प्रथक् २ नहीं जानता था न इनमें स्वरूप भेद का ज्ञान था तभी जहाँ उसने गति देखी वही चैत्यन्य की कल्पना की। यही चैत्यन्य वस्तु देवताओं के रूप में प्रकट हुई और उसी देवता की पूजा होने लगी। इसी क्रम से नदी, पर्वत, जल, आदि की पूजा हुई। एक वैज्ञानिक हर्वर्ट-स्पेन्सर का कथन है कि मृतक पूजा से बहू देवतावाद प्रचलित हुआ है। लोगों ने यह माना कि हमारे पूर्वज मृतावस्था में नदी, पर्व-तारागण, सूर्यादि में रहते हैं। इसी आधार इनका पूजन चला था। इस सिद्धान्त को दैविक शक्ति का रूपदेना कहते हैं। इसी अनेक देवतावाद के सम्बन्ध में मॉल्लमूलर के विचार ये हैं—“यह वाद हमारे सृष्टिवाद से प्रचलित हुआ है” अज्ञानवश पर्वत नदी आदि को आदरणीय मान, उनका पूजनादि ही इस बात का द्योतक है। इसवाद के दो भेद होते हैं? जड़वाद और आत्मवाद। जड़वाद के अनुसार समस्त पदार्थों में एक रूपता होती है वही जड़ तथा चेतन का भेद नहीं “जहा जीवन वहा गति” यह सत्यसिद्धान्त माना गया। जड़वादी इस नियम पर पहुँचे हैं कि जहाँ गति है वहाँ पर प्राण भी होगा। यह एक कुतर्क है यदि इनके सामने वह वैदिक सिद्धान्त होता तो यह भ्रम नहीं फैलता। इस प्रकार इसको देखे, जड़ जगत् में चेतन ईश्वर द्वारा निमित्तकारणरूप हा गति पहुँचाई जा रही है, यह समझता तो इस जड़वाद से उसका पीछा कबसे ही छूट गया होता.....।

दूसरा वाद आत्मवाद या चेतनवाद कहाता है। जड़वाद को मानकर हमें यह भ्रम रहा कि संसार की जड़ शक्तिया ही चेतन का रूप हैं किन्तु यह भ्रम यहाँ और परिपक्व हो गया कि एक २ दैविक शक्तियों के प्रथक् २ देवता निर्धारित

किये गये । जहाँ पहले 'मोशन' या गति को ही जीवन माना गया था वहाँ वही अब आत्मा का रूप धारण कर गया है, अर्थात् उस 'मोशन' को ही आत्मा मान लिया गया है । इस अवस्था में अनेक आत्मा खड़े किये गये और एक ईश्वर के स्थान में अनेक ईश्वर माने गये यह है अनेकेश्वरवाद का विशुद्ध रूप ।

यदि सुजन-तोष-न्याय से यह मान भी लिया जाय कि ईश्वर अनेक हैं तो संसार की गतिविवि में हानि होनी सम्भव है । कोई भी कार्य सम्पन्न होना दिखाई नहीं देता । अनेक ईश्वर की कल्पना में क्या सब ईश्वर समानशक्ति सम्पन्न होंगे ? यदि सब की समान शक्ति हो तो सबके कार्य समान ही होंगे, विशेषता कुछ भी नहीं रही । यदि न्यूनाधिक सामर्थ्य माना जाये तो एक दूसरे के कार्यों में न्यूनाधिक गुण होना आवश्यक है । वे ही गुण उनके उत्कर्ष और अपकर्ष के चिन्ह होंगे । जिसमें गुणोत्कर्ष की प्राधानता होगी, उस ईश्वर में श्रद्धा, भक्ति, विश्वास का होना अनिवार्य हो जायगा । जहाँ पर न्यूनगुण

संबन्धित हैं वहाँ पर अश्रद्धा उत्पन्न होगी फिर किस ईश्वर पर विश्वास और किस पर अविश्वास किया जायेगा । अतः इस भ्रम को दूर करने के लिये एक सिद्धान्त स्वीकार करना चाहिये और वह है एकेश्वरवाद का मन्तव्य । अनेकेश्वरवाद का निराकरण वेद ने स्वयं किया है:—

“न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते” अथर्क
एकसद्भिर्बहुधा वदन्त्यनिन्त्यमं मातरिश्चानमाहु । ऋग्०

उनिषदों में इसका बड़ा सुन्दर बर्णन किया गया है । पाश्चात्य दार्शनिकों का विचार भी देखिये । मि० कोलब्रुक ने लिखा है “प्राचीन आर्य हिन्दू धर्म एकेश्वरवाद का प्रतिपादक था ।” अनरेस्टेडबुड ने भी उक्त विचार ईश्वर के सम्बन्ध में लिखे हैं । जर्मन के प्रसिद्ध दार्शनिक श्लिंगल ने लिखा है — “इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि भारतीयों को ईश्वर का सच्चा ज्ञान था ।”

यत्कर्णानुसन्धत्ते स धर्मो वेद नेतरः”

देव दयानन्द का अनुपम आदेश

“सर्व सत्य का प्रचार कर सबको ऐक्यमत में कस दूँवै लुहा परस्पर में दृढ़प्रीति युक्त कराकर सबसे सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है । सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिससे सब लोग सहज से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि केरके सदा उन्नत आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है ।

दीपक



ले

ख

क

मेरे दीपक ! तुम जल जाते।

अनायास उपहास विश्वका

कर सुख से इठलाने

झाया पथ के वासी हो कबो

खिल - खिल कर मुस्काने ?

प्रेम पाठशाला के भोले

बटु डिग तेरे आते

तिल - निल उंह जलाकर निभटुर

तुम बलिदान सिखाते !

जैसी हवा मिली दो पल को

दुल अविरल वह भाते

यद्यपि उत्तर मिलने पर हो

तुम पीछे षड्यत्नाते !

अन्धकार के विधुर हास तुम

हो विश्वास सताते

किरमा की दोरी लेकर के

मोहन - जाल विछाते !

कितने बाधी - बोध हीन औ,

कितने सफल फँसाते

अरे अगाध विरह - बारिध के

तम में अमित धँसाते !

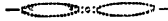
शिवकुमार त्रिपाठी

१९५५



वेद के सम्बन्ध में आर्यसमाजियों पर दो आरोप

[ले०—श्री पं० विहारीलालजी शास्त्री काव्यतीर्थ]



[आप आर्य जगत के एक सुप्रसिद्ध व्याख्याता और सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी लेखनी और वाणी समान रूप से प्रवाहित होती हैं।

—सम्पादक]

विद्वान् लेखक ने इस लेख में यह सिद्ध किया है कि विंगंधियों द्वारा जो आरोप वेदों के सम्बन्ध में हारहे हैं वे नितान्त निर्मूल एवम श्रान्ति-पूर्ण हैं।



मारे अन्वयतम वैदिक भाई पौराणिकों की ओर से हम पर दो आरोप किया करते हैं। इन आरोपों में साधारण पेशावर उपदेश कही नहीं, बड़े 'विद्वान्' भी सम्मिलित है। इन आरोपों के करने में हम

उनको दोषो नहीं ठहरा सकते। असल में सैकड़ वर्षों के विश्वास के कारण उन भाइयों के ये आरोप होते हैं।

वे आरोप दो हैं। प्रथम—आर्य लोग वेद पाठ अशुद्ध करते हैं। द्वितीय—वेदों में वर्तमान वैज्ञानिक आविष्कारों का अस्तित्व मानते हैं।

इसी सम्बन्ध में काशी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री पं० बलदेव जी उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य महोदय श्री सायणाचार्य लिखित वेद भाष्य भूमिका संग्रह के संपादन करते समय प्रस्तावना में लिखते हैं—

‘कैरपि समाजविशेषानुरागमादधानैर्वेदानां विशीयतेऽव्ययं सह परिश्रमेण परन्तु नितान्तं तान्त्वमस्माकं चेतो यद् मेऽयमतावलम्बिभिः साकं धार्मिकविवाहेष्वेवोपयोगायकतिपयानां मन्त्राणामेवार्थावधारणपरबद्धाः ? (१)

साक्षात् कियन्ते । तानपि च प्रायशोऽपि चरिताचरणावधिना मन्त्रोच्चारण कुर्वन्त सन्तं कर्त्तव्यन्ति । अतन्निखिलमपि तत्समाजकार्यजातं वेदायसामेवेति वदन्तोऽप्येते न खलु वेदाना समुचित-रक्षणाय मन्त्राणां च पारम्पर्यविषया परिशुद्धो-च्चारणे बद्धपरिकरा अवलोकयन्ते ।.....

अपरञ्चामी बंदेपु नवीनानामप्याधुनिकैः पाश्चात्यविज्ञानवेदिभिः प्राशस्य नोतानां साविष्काराणां धूम्रयानत्रायु रानतडिच्छकटश्चन-प्राहादीनां नैव कल्पिता समावना, अपितु, वास्तविकी सत्ता वेदे मन्यन्ते सर्वेषामाविष्कृतानां आविष्करिष्यमाणानां च विज्ञानतत्वानांमाकरो वेद एवेति तेषामभिमतं मतमिवात्रलोक्यते” (ग्र१६-२०)

इसका आशय यह है कि आर्यसमाजी वेद पढ़ने में परिश्रम तो करते हैं मगर उनका उच्चारण अशुद्ध होता है, अपने समाज का सब काम वेदाधीन मानते हुए भी वे वेद रक्षार्थ विचित्र वेदोच्चारण में तत्पर नहीं हैं और वैज्ञानिक आविष्कार रेल हवाई जहाज बिजली गाड़ी (मोटर) रेडियो इत्यादि का होना वेद में मानते हैं। जो आविष्कार हो चुके और होंगे उन सबका वर्णन वेदों में मानते हैं।

उपाध्याय जी का यह आरोप कि

आर्यसमाजी वेदगर्भों का शुद्ध पष्ठाण नहीं करते हैं, केवल अंशतः सत्य कहा जा सकता है। क्योंकि जिन्होंने नियमनुसार वेद मन्त्रों का पारायण नहीं सीखा है वे चाहे आर्य समाजियों या अन्य वेदानुयायी, समानरूप से परम्परागत पाठ करने में तृप्तियाँ कर सकते हैं और इस प्रकार के पाठदोष आर्य समाजियों से भी कहीं अधिक वे लोग करते हैं कि जिनका पक्ष पोषण साध्याय जी करने का साहस करते हैं। इसके अनिर्दिष्ट ब्याधय जी आर्य समाजियों को शुद्ध मन्त्रोक्तवागण न करने किन्तु अर्थ-ज्ञान में विशेष प्रयत्न करने के लिए, परम्परागत वेद पाठियों को केवल पाठमात्र करने और अज्ञानने के कारण तथा पाश्चात्य स्कालरो और उनके भारती अनुयायियों को उभयभ्रष्ट होने के कारण अपने काप का भाजन बनाते हैं तो शेष कान बचना है कि जिसकी वे हिमायत करना चाहते हैं। क्या काशी में परम्परागत शाली सन्यन्याकरण और सन्यन्याय आदि केवल वेदों की एक मात्र रक्षा के लिए प्रवृत्त संस्कृत के उच्च २ वद्वानों के सहारे आप वेदविद्या का समीचीन वितरण तीन काल में भी सम्भव समझते हैं? खेद है कि काशी में वर्षों रहते हुये भी वेदकपायिष्ठस्य के तल से आप क्यों इम प्रकार अलिप्त रहे? वेद के व्यापक प्रचार न हानस, पाश्चात्य शिक्षा कालाध्य से, गुरुशिष्य प्रणाली के अनादर से, वेद के प्रत अक्षम्य-दास-नता से और अध्वरिक्त शिक्षाप्रणाली की वृद्धि से आप के हृदय में मर्भ-तुद वेदना होती है। इस विषय में हम सदा आपके साथ हैं और प्रत्येक वेदाभिमानों का भी यही आविश्य है। साथ ही हमको यह देखकर कि अर्थसमाज अपनी सामर्थ्यानुसार वेदिकसंस्कृत और वेदिक धर्म का सन्देश देश विदेशों में गत ६० वर्ष से भेज रहा है और अपनी विशुद्ध राण्ट्य ब्रह्मचर्य आश्रम प्रदान गुरुकुलसंस्थाओं में साक्षात् शिक्षा दांचा वा भी आयोजन कर रहा है किन्तु काशी जैसे प्राचीन

वेद विद्या केन्द्र में ही वैदिक संस्कृति के उत्तराधिकारियों के हाथ से ह परम्परागत वेद विद्या को समूह मिटाने के लिए जो बिराट विश्वविद्यालय करोड़ों रुपया लगाकर स्थापित किया गया है क्या उसका परिणाम यह नहीं हुआ है कि सहस्रो वर्ष से परम्परागत गुरुशिष्य प्रणाली के अनुसार वेद वेदांग की शिक्षा ग्रहण करनेवाले ब्रह्मण बालक



इस लेख के लेखक

नहीं २ प्रसिद्ध पंडितों के द्वारा प्रवृद्धि बालकों को बी० ए० और ए० ए० के पीछे दौड़ते हुये देख कर प्रत्येक वेदानुयायी का शिर आत्मग्लानि से नीचा नहीं हो जाता है? विश्वविद्यालय में कितना धन वेदाध्ययन की व्ययार्था में व्यय किया जाता है। और कितना वेदेतर आडम्बरपृथ

प्रदर्शनात्मक पारश्चात्य शिक्षा प्रचार में, इसका अनुभव तो निकट होने के कारण आपको अधिक होना चाहिये। अथवा क्या आप सदरा वेदज्ञों की स्वयं कांच के प्रस्ताव में बैठकर और अपने सदन को बख की भांति सुदृढ़ मानकर व्यर्थ ही औरों पर कंकड़ी फेंकने का साहस करना उचित है? वेदज्ञान के सम्बन्ध में यास्काचार्य का अनुयायी होने के कारण आप सायणाचार्य को परम प्रमाण मानते हैं। आर्य समाज के वेदज्ञ भी इसी प्रकार ऋषेयानन्द को यास्क प्रचलित निरुक्त शैली को पूर्णरूप से खारज करने और इतुवार वेदार्थ करने के कारण परम प्रमाण मानते हैं।

सायणाचार्य और ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में इस प्रसंग में हम केवल योगी अरविन्द महोदय की सम्मति देकर इस आरोपनिरसन को समाप्त करते हैं। योगी अरविन्द आर्यसमाजी नहीं हैं और वे वेदतत्व के समझनेवालों में भी नगण्य नहीं कहे जा सकते हैं, उसकी सम्मति है कि —

"Sayana minimises because his theory of Vedic discipline was not ethical righteousness with a moral and spiritual result but mechanical performance of ritual with a material reward. But inspite of these efforts of suppression the lofty ideas of the Veda still reveal themselves in strange contrast to its alleged burden of fantastic naturalism or dull ritualism

Immediately the whole character of the Veda is fixed in the sense Dayananda gave to it the merely ritual, mythological, polytheistic interpretation of Sayana collapses, the merely meteorological and naturalistic European interpretation collapses We have instead a real scripture, one of the world's

sacred books and the divine word of a lofty and noble religion.

To start with the negation of his work by his critics, in whose mouth does it lie to accuse Dayananda's dealings with the Veda of a fantastic or arbitrary ingenuity? Not in the mouth of those who accept, Sayana's traditional interpretation For if ever there was a monument of arbitrarily erudite ingenuity, of great learning divorced as great learning too often is, from sound judgment & sure taste and a faithful critical and comparative observation, from direct seeing & often even from plainest common sense or of a constant fitting to the text into the Procrustean bed of preconceived theory, it is surely this commentary, otherwise so imposing, so useful as first crude material, so erudite and laborious, left to us by the Acharya Sayana

In the matter of Vedic Interpretation I am convinced that whatever may be the final complete interpretation, Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age long misunderstanding his was the eye of direct vision that pierced to the truth and fastened on that which was essential. He has found the keys of the doors that time had closed and rent asunder the seals of the imprisoned fountains दूसरे आक्षेप के विषय में निवेदन है कि जो हो चुके और जो होंगे उन सब आविष्कारों का भंडार वेद है, ऐसा हम आर्यसमाजियों का मत स्वकल्पित नहीं है, किन्तु हमारे पक्ष में यह स्मृति सडिडिम घोषकर कह रही है —

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति—

भूत वर्तमान और भविष्य सब कुछ वेद से प्रकट होता है। वैदिक ऋषि साक्षात् कृत धर्मो थे। त्रिकालज्ञ थे।

वेदों में यदि वायु यान आदि नहीं थे तो रामायण में भी यह शायद कविकल्पना ही हो, राजा भोज के राज्य में जो एक घड़ी में १० कोस अर्थात् १ घंटे में पच्चीस कोस या ३२। मील जाता था, ऐसा एक घोड़ा भी किसी कारीगर ने बनाया था। इसी प्रकार वायुवेग से चलनेवाला पंख भी। रामायण में बहुत से दिव्य अस्त्रों का वर्णन आता है। क्या यह कारे छू मन्त्र ही थे? ऋषि दयानन्द के अर्थों का जयजयकार है कि अब पौराणिक पण्डित तभी ठिकाने आ रहे हैं। वेद में वायुयान अब उन्हें भी स्वीकार है।

जयपुर के राजपण्डित श्री पं० मधुसूदन झा जी "इन्द्र विजय" पृ० ११४ पर ऋग्वेद ४. १६. १ का यह मंत्र देते हुए वेदों में विमान सिद्ध कर रहे हैं—

अनन्वा जातो अनर्भापुरुक्षयो रथस्त्रिचक्र. परिवर्तते रजः। महन्तद्रा देवस्य प्रवाचनं यामृभव. पृथिवी पञ्च प्रपथ।

अर्थ.—दिना घाड़ों और रस्सियों के तीन पहियों का प्रशंसित रथ अन्तरिक्ष में चलता है। हे ऋभुओं (ज्ञानियों) यह बड़ी प्रशंसा की वस्तु है जो कि पृथिवी और ध्रुवोत्तक को शक्ति देते हैं।

यही प्रशंसित पण्डित जी लिखते हैं कि सिंधु प्रांत में वैदिक काल में एक वैज्ञानिक सूयं चक्र था। पृ० १२१ पर बिजली से चलनेवाले अस्त्रों का भी यह वर्णन करते हैं। महाभारत में वर्णन है कि राजा शाल्व ने "सौभ" नामक विमान लेकर द्वारिका पर आक्रमण किया था। इन विमानों में पारे का प्रयोग होता था, यह भी पण्डितजी ने लिखा है। समरांगण

सूत्र-वार, शुक्र नीति कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में भी वैज्ञानिक (रसायनिक) अस्त्र, और विषवाण्ड का वर्णन है। विद्वानों द्वारा विद्या के मर्म छिपाये रहने से यह सब रहस्य लुप्त होगये। साधारण जनता इन बातों को देवी देवता और मन्त्र जन्त्र की करामात समझती थी और अब भी समझती मगर बुद्धि कहती है वह विज्ञान के चमत्कार थे। मोहनजोदरो और हड़प्पा को खुदाई से पहले क्या कोई यूरोपियन यह मान सकता था कि प्राचीन समय में भारतीय वास्तु कला इतनी समुन्नत थी। वैदिक काल के लोग सूर्य, तारा, चंद्र, वायु, त्रिधनु मेघ आदि तथा भूम्याकर्षण विज्ञान से परिचित थे यह तो वैदिक साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक भी पं० सामभ्रमोत्री ने भी लिखा है। देखो ऐतरेया-लोचन।

भावी आविष्कार भी वेद में संभव हैं। न्यूटन के आविष्कार से पहले भी गुड्बार्कर्पण तो विश्व में था ही। नित्य सब देखते भी थे। परन्तु न्यूटन की बुद्धि में यह विज्ञान स्फुरित होगया। जब सृष्टि के सब रहस्य वेद में बांज रूप से निहित हैं। सृष्टि रूपी नकशे का वेद विवरण पुस्तक भूगोल है। वैदिक शब्दों में अपार ज्ञान है। स्थूल सृष्टि का शब्दमय रूप वेदभगवान् हैं। वैदिक देवता सृष्टि के तत्व ही हैं। प्राकृतिक शक्तियाँ ही हैं। अतः वेद के शब्दों का पूर्ण प्रशस्त होने पर सृष्टि का कोई भी रहस्य गुप्त नहीं रह सकता।

इसके सम्बन्ध में श्री अरविन्द घोष की निम्न सम्मति है.—

There is then nothing fantastic in Dayananda's idea that Veda contains truth of science as well as truth of religion. I will even add my own conviction that Veda contains the other truths of a Science the modern world does not at all possess, and in that case Dayananda has rather understood

than overstated the depth and range of the Vedic wisdom. *Arbind Ghosh.*

ऋषि दयानन्द ने श्रद्धा से वेद पढ़ा। और उसके रहस्य को समझा। हमारे ऋषि का दृष्टिकोण न पारवात्य था न पौराणिक। उसने वेद को इन चरमों की सहायता से न देखकर अपनी दृष्टि से देखा अतः वेद भगवान् के भण्डार में सर्व विभूतियों उसे दिखायी दीं। पौराणिक संस्कारों और परिचामीय विचारों से अभिभूत दृष्टि वालों को वेद भगवान् की वह छवि दिखायी नहीं दे सकती जो कि आप दृष्टि से देखा जा सकती है। वेद भगवान् का स्वयं उपदेश है—

ऋतवः ष्यन्नदृशं वाचमुतवः ऋषवम् न ऋणोत्येनाम्। उतो स्वामै त वं विमरो जायव पत्य उशत. सुवासा. ऋ० १०।७।४।

वेद बाणी को देखता हुआ भी (अभङ्गालु तथा प्रतिभाहीन) नहीं देख सकता। सुनता हुआ भी नहीं सुन सकता। तरस्वी, श्रद्धालु, प्रतिभावान् पर वेद के सब रहस्य प्रकाशित होते हैं। ईश्वर न करे यदि यूरोपियन समर अधिकाधिक भयंकर होगया तो क्या यूरोपियन कला कौशल जीवित रह सकता है? यदि वर्तमान बौद्धिक यांत्रिक सभ्यता नष्ट हो जाय तो क्या फिर यह कथा की ही वस्तु न रह जायगी? क्या इन इतनी परानी सृष्टि में ऐसे परिवर्तन बार बार न हुए होंगे? यदि हाँ, तो बस भारतीय पत्र-कला और विज्ञान के चमत्कार भी उन परिवर्तनों में नष्ट होगये। हाँ तपस्वी ब्राह्मणों ने येनकेनपकारेण वेद को सुरक्षित रखवा अतः वे नरस्य हैं। “नम. परमऋषिभ्यो नम परमऋषिभ्यः”

—()—()—()—()—()—

शास्त्रोक्त विधि द्वारा निर्मित जगत्प्रसिद्ध

शुद्ध हवन-सामग्री

धोखे से बचने के लिए आर्यों को वना वी० पी० भेजा जाती है।

पहले पत्र भेजकर ५ नमूना फ्री मंगा लें। नमूना पसन्द

कर आर्डर दें। अगर नमूना-जैसी सामग्री हो तो मूल्य भेजें,

अन्यथा कूड़े में फेंक दें। फिर मूल्य भेजने की आवश्यकता नहीं।

क्या हमसे भी बढ़कर कोई रूचवाई की कसौटी हो सकती है?

भाव ॥) सेर, ८०) भर का सेर। शोक प्राहक को २५) प्रति सैं

कम:शन। मार्ग व्यय प्राहक के जिन्मे है।

पता:— रामेश्वरदयाल आर्य पो० अमौली,

(फतेहपुर) यू० पी०

मधुमेह

(बहुमूत्र)

उग्रभर अब इलाज कराने की जरूरत नहीं। डाई बोल गुणकारी, आसानी से सेबन की जा सकती वाली सफल औषधि है। यह शर्करा को कम करती है। शक्ति वर्धक कीटाणुओं (पैन्क्रियाज) को पुनर्जीवन प्रदान कर हमेशा के लिये निरोग करती है।

मू० ४।) रु० डा० सार्च अलग

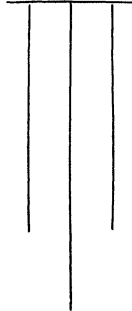
पता— ऋषि दयानन्द आयुर्वेद

आश्रम बम्बई नं० ४

दीपावली



ले ख क



श्री शातिनदन एम० ए०



विश्व के काले पटल पर
आज है दीपावली ।
फिल मिलावी तारिकाएँ
मौन है सारा गगन ।
रूठ कर निशि ने छिपाया
चँद सा अपना बदन ।
हापता, भागा कहीं को
जा रहा आकुल पवन ।

सुँह छिपाए कोटरो मे
नभ चरो की मडली ।
विश्व के काले पटल पर
आज है दीपावली ॥

काँपता कुल्ल कह रही है
कान मे तरु के लता ।
सिर मुकाए है दिखाते
सुमन निज असमर्थता ।
स्वच्छ सर का व्याम के
तारे रहे है कुल्ल बत्ता ।

ध्यान से सुनती निकट ही
रात्रि गन्धा की कली ।
विश्व के काले पटल पर
आज है दीपावली ॥

व्यथित आज सरस्वती है
देख चिन्ता की घटा ।
शोक पूर्ण समाज सारा
कान्ति क्रीडा से हटा ।
जान यह लक्ष्मी बदन पर
छा गई नूतन छटा ।

गुप्त भावों का प्रदर्शन
रात में करने चली ।
विश्व के काले पटल पर
आज है दीपावली ॥



आर्यसमाज और पाकिस्तान

[ले०—श्री प० मूयदेवजी शर्मा साहित्यालयार सिद्धातशास्त्री एम० ए० एल० टी० अजमेर]

[आप आर्य जगत् के एक प्रतिभाशाली_विद्वान्, सुबिख्यात कवि।एव मार्मिक लेखक हैं। आपकी भाषा सुपरिष्कृत तथा हृदयमाहिणी होती है। —सम्पादक]

प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने पाकिस्तान योजना को निराधार एव अमभवहारा।सद्ध करते द्वये भारतवर्षकी अखण्डता का सम्यक् तथा प्रतिपादन किया है।



त दो वर्षों से ससार के लगभग सभी उन्नति शाली देश युद्ध का भोगण ज्वाला में प्रज्वलित हा रहे हैं। इधर हमारा भारतवर्ष यद्यपि अभी तक ईश्वर की कृपा से युद्ध की भीषण ज्वाला से तो बचा हुआ है लेकिन दुर्भाग्य से उसमें एक ऐसी विपत्ति उठ खड़ी हुई है जो उसको छिन्न-भिन्न करके कई भागों में विभाजित कर देना चाहती है। जहाँ दूसरे देश अपने ऊपर आई हुई आपत्ति का सामना करने के लिए सब प्रकार से सगठित होकर अपने राष्ट्र की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो रहे हैं, वहाँ हमारा देश अपने ही सपुत्रों (१) की बुद्धिमत्ता और करनी से टुकड़ों में बटने जा रहा है। इस देश विभाजन के लिए जो योजना तैयार की गई है वह पाकिस्तान के नाम से प्रसिद्ध है और वह हमारे विरादने बतन कुछ सुसलमान भाइयों के दिमाग की उपज है।



अथ से लगभग दो वर्ष पूर्ण अक्टूबर सन् १९३६ ई० में मैंने "खतरे का बिगुल" नाम की एक पुस्तक प्रकाशित कराई थी। उसने द्वारा हिन्दू जाति को

इन सब विपत्तियों से सचेत किया गया था जो निकट भविष्य में उस पर आने वाली थीं। उनमें सबसे अधिक प्रकाश पाकिस्तान की योजना पर डाला गया

था और भारत का नकशा खींचकर यह दिखलाया गया था कि उस समय तक गुप्त रहने वाली उस योजना के अनुसार भारतवर्ष के किस प्रकार विभाग किए जाने वाले हैं उस समय तक यह योजना एक प्रकार से गुप्त ही रक्खी जा रही थी। तब तक न तो मुसलिम लीग ने उसे अपनाया था और न मि० जिन्ना ने उसको अपना तथा मुसलिम लीग का ध्येय उद्घोषित किया था और न अपने देशवासियों को उसका विशेष पता ही था।

वैसे पाकिस्तान की योजना का जन्म तो सन १९३० के लगभग ही हो चुका था। पाकिस्तान योजना क्या है? पहले पहल पाकिस्तान की रूप रेखा कैम्ब्रिज विश्व विद्यालय में पढ़ने वाले एक भारतीय मुसलमान युवक ने खींची थी। उसका पाकिस्तान पंजाब, अफगानिस्तान, काश्मीर और सिन्ध के प्रथम अक्षरों को लेकर और विलोचिस्तान के आखिरी "तान" को जोड़कर बना था अर्थात् Punjab से P' Afghani tan से A Kashmir 'K. Sindh से S और Balochistan से tan लिया, इस तरह 'पाकिस्तान' शब्द बन गया। उसके पाकिस्तान की तह में यह भाव था कि भारत के मुसलमान भारत के पाकिस्तान से लेकर योरूप से तुर्किस्तान तक एक मुस्लिम साम्रज्य कायम करे।

हैदराबाद की मुन्निम कलचर मोसाइटी के मंत्री सैय्यद अब्दुल लतीफ ने पाकिस्तान की जो योजना तैय्यार की थी उसके अनुसार उन्होंने मुसलमानों के रहने के लिए चार बड़े मंडल बनाये थे:—

(१) उत्तरी पश्चिमी मुन्निम मंडल जिसमें पंजा, सीमाप्रांत, काश्मीर, सिन्ध, विलोचिस्तान आदि सम्मिलित है।

२—देहली लखनऊ मुस्लिम मण्डल जिसमें देहली प्रान्त तथा लखनऊ तक पश्चिमी संयुक्त प्रांत सम्मिलित है।

३—उत्तरी पूर्वी मुस्लिम मंडल जिसमें आसाम और बंगाल सम्मिलित हैं।

४—दक्षिणी मुस्लिम मण्डल जिसमें हैदराबाद राज्य तथा मद्रास प्रान्त सम्मिलित हैं।

इन समस्त मण्डलों और प्रान्तों से हिंदुओं को अलग होना पड़ेगा और शेष प्रान्तों में जाकर उन्हें शरण लेनी पड़ेगी। ये सारे मण्डल मुसलमानों के निवासार्थ उन्हीं के अधिकार में रहेंगे और सब मिलकर पाकिस्तान कइलायेंगे। शेष बचे हुये प्रान्त हिंदुओं के लिए होंगे और वे हिन्दुस्तान कहे जायेंगे। पाकिस्तान की मि० अब्दुल लतीफ द्वारा बनाई मोटे तौर पर यह रूप रेखा है। यद्यपि यह अन्तिम नहीं है और मुस्लिम लीग ने या जिन्ना साहब ने अभी तक पाकिस्तान की कोई निश्चित परिभाषा भी नहीं की है फिर भी हिंदुस्तान को पकिस्तान बनाने का रूपन लगभग सभी मुसलमान नेता देख रहे हैं। हिन्दुस्तान के टुकड़े करने पर लगभग वे सभी तुले हुये हैं और अब मुस्लिम लीग ने तो पाकिस्तान को अपना अन्तिम ध्येय ही बन लिया है।

अभी हाल में बम्बई के भूतपूर्व कॉमेसी मिनिस्टर श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने समस्त भारत में भ्रमण करके पाकिस्तान योजना के विरोध में "अखण्ड भारत आन्दोलन" खड़ा किया है। आर्यसमाज का इस विषय में क्या मतव्य और कर्तव्य है?

यह तो निश्चित है कि हमारा धर्म कभी हमें इस बात की आज्ञा नहीं सकता कि जिस मातृभूमि में हम उत्पन्न हुए और पालित पोषित होकर बड़े हुए उसके टुकड़े होते हुये अथवा उसका पराभव हम देख सकें।

अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के ४०वीं सूक्त में में मातृभूमि की प्रशंसा करते हुए बार बार यह प्रार्थना की गई है कि हमारी मातृभूमि अर्धबाध,

सुख संपत्ति शालिनी और अस्वच्छ रहे। उपरोक्त सूक्त के दूसरे ही मन्त्र में “असंवाधम् मन्थतो मानवानाम्” इत्यादि कहकर हमारे इस कथन की पुष्टि की गई है। इस प्रकार आर्यसमाज जो वेदों को ही अपना सबसे बड़ा प्रमाण ग्रन्थ मानता है इस बात को ब भी सहन नहीं कर सकता कि जिस भूमि में उनका जन्म हुआ उसी भारत भूमि के टुकड़े २ कर दिए जायें और यह उसको चुपचाप देखवा रहे। इीलिए समस्त आर्य समाजियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे पाकिस्तान जैसी देशहित विघातिनी योजना का तन मन धन से पूर्ण रूप से विरोध करें।

आर्य समाज का रुख इस संबन्ध में क्या रहे? गव हैराबाद सत्याग्रह के सम्बन्ध में “अजमेर से देवेन्द्र स्पेशल ट्रेन” भेजने के लिए धन और जन समूह करते हुए मैं भी पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री के साथ युक्त प्रान्त में भ्रमण कर रहा था तो मेरठ से देहली जाते हुये ट्रेन में एक मुसलमान सज्जन से भेंट हुई जो मेरठ मुस्लिम लीग के मन्त्री थे और बात चीत के पश्चात् उन्होंने हम लोगों से प्रश्न किया कि पाकिस्तान के सम्बन्ध में आर्यका और आर्यसमाज का क्या विचार

है? इसका उत्तर हमारे पूज्य शास्त्री जी ने बड़ा ही समुचित दिया और मैं समझना हूँ कि इस संबन्ध में प्रत्येक आर्यसमाजी का यही उत्तर और विचार होना चाहिए। शास्त्री जी ने कहा कि यदि मुसलमान भाई अंग्रेजों से भारत को स्वतन्त्र करा सकें तो बड़ा अच्छा है, लेकिन एक तो भारत वैसे ही परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ा हुआ है, दूसरे उसके अंगों को काट कर टुकड़े कर दिये जायें, इससे बढ़ कर पाप अपनी मातृभूमि के प्रति और क्या हो सकता है?

आर्यसमाज इनका घोर विरोध करेगा।

उपर वर्णित वेद की आज्ञा तथा मातृभूमि के प्रति श्रद्धा और स्वदेश भक्ति की भावना के अतिरिक्त आर्यसमाज इसलिए भी भारत के टुकड़े होना सहन नहीं कर सकता क्योंकि भारत भूमि ही आर्यावर्त रहा है। यह वैदिक सभ्यता, भाषा तथा धर्म, का आवि स्रोत और भंडार है और भारत के टुकड़े होने का अर्थ है भारतीय सभ्यता, धर्म और भाषा पर कठोर कुरापात। इसलिए—

अस्वच्छ भारत रहे सर्गदा,

यही हमारा ध्येय रहे।

धर्म, सभ्यता, भेव भावना,

गौरव शाली गेय रहे ॥

अग्रवाल विधवा की आवश्यकता

एक ऐसी विधवा (अग्रवाल) थी जिसकी आयु २० वर्ष से कम व ३५ वर्ष से अधिक न हो, गृह कार्य में दक्ष हो, पढ़ना लिखना जानती हो, की आवश्यकता है। वर महोदय आर्यसमाज के पदाधिकारी हैं। वर की मासिक आय (१००) माह वार है। नज का पका मकान है कपड़े की दुकान है। भई आदि अन्य कुटुम्बी धनी व योग्य व्यक्ति हैं। आयु २७ वर्ष के लगभग है। जो महाशय घर से विवाह करना चाहें उन्हें विशेषता दी जावेगी पत्र व्यवहार करें।

—मन्त्री

आर्यसमाज लैर (अग्नीगङ्ग)

आवश्यकता है

एक स्वस्थ सुन्दर कन्या की जिसकी आयु १५ साल की हो कायस्थ श्रीवास्तव दूसरे यू० पी० के हों कन्यागृह कार्य में होशियार पढ़ी लिखी हो—

वर के पिता अच्छी हैसियत के जमींदार हैं वरकी आयु १६ साल की है जो कि स्वस्थ सुन्दर अग्रजो हिन्दी तालीम पा चुका है। पत्र व्यवहार का पता —

“मालगुजार” धानोरा
इस्टेशन व पोष्ट बामौर सी० पी०

“जी०, आई, पी० देलवे”

उर्दू का दूषित प्रचार

[ले०—श्री चन्द्रमणिजी उपमन्त्री—आर्यकुमार महासभा, बड़ोदा]

[इस लेख में विद्वान लेखक ने उर्दू के दूषित प्रचार को दिखानाते हुये यह सिद्ध किया है कि यदि भारतवर्ष की कोई राष्ट्र भाषा हो सकती है तो वह हिंदी ही है। —सम्पादक]



वर्तमान में हमारे देशमें उर्दू के सबध में बहुत कुछ भ्रम फैला हुआ है। अनेक कांग्रेसी और मुसलमान भी कहते रहते हैं कि उर्दू ६ करोड़ मुसलमानों की भाषा है।

जब राष्ट्रभाषा का प्रश्न उठता है तब उसके साथ उर्दू का भी सम्मिलित किया जाता है। परन्तु राष्ट्र भाषा हिन्दी के इतिहास को यदि हम जान लें ता हमारा भ्रम शीघ्र ही दृष्ट जाता है। महात्मा गांधी जी द्वारा स्थापित वर्षा शिक्षण समिति ने भी इस विषय में जो गभीर भूल की है उसे हममें से बहुत नहीं जानते हैं। जाकिरहुसैन समिति की बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के सबध में प्रकाशित विवरण एवं विस्तृत पाठ्यक्रम को देख लेना चाहिये उसी पुस्तक के पृष्ठ ३७ पर लिखा है—

“हिन्दुस्तानी—

जहा हिन्दुस्तानी ही बोली जाती है, वहा की यह मातृभाषा होगी। पर वहा के शिक्षकों और बच्चों दोनों के लिये नागरी और फारसी दोनों लिपियों (खतों) का सीखना लाजिमी होगा ताकि वे हिन्दी और उर्दू में लिखी किताबों को पढ सकें। दूसरे प्रांतों में जहा की मातृ भाषा प्रान्तीय भाषा होगी, हिन्दुस्तानी पाचबे और छठे दर्जे में लाजिमी रक्खी जायगी। और बच्चों को किसी एक लिपि को चुनकर सीखने की स्वाधीनता होगी। पर शिक्षकों को

तों दोनों तरह के बच्चों से काम पडेगा, इस लिये अच्छा है कि वे दोनों लिपियां सीख लें। कम से कम हर स्कूल में दोनों लिपियों के सिखाने का प्रबन्ध होना चाहिये।”

प्रत्येक स्कूल में उर्दू और नागरी सीखने का काम भार रूप हो जायगा। उत्तरी भारत के लोग उर्दू जानते हैं और बोलते हैं इसलिये प्रत्येक सावर्जनिक पाठशाला में, देश भरमें दोनों लिपियों के शिक्षण का प्रबन्ध करना मुसलमों को खुश करने के बिना दूसरा कुछ नहीं है। समस्त देश के स्कूलों में, अल्पसंख्यक मनुष्यों में बोले जाने वाली उर्दू को प्रचलित करने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।

सन १९३१ की जनगणना में भिन्न भिन्न भाषाओं का बालने वाले लोगों की संख्या निम्न प्रकार है—

पश्चिमी हिन्दी	७१४४७०००
बंगाली	४३४६६०००
तेलुगु	२०८६००००
तामिल	२०८२२०००
पंजाबी	१४८२६०००
राजस्थानी	१३-६८०००
मनाडी	११००६०००
उडिया	१११४४०००
गुजराती	१०८२००००
बर्मी	८८४४०००
मलयालम	६१३६०००
पश्चिमी पंजाबी	८४६६०००

देश में पढ़े लिखों का प्रमाण प्रति सहस्र में ६४ है।

धर्मानुसार पढ़े लिखों का प्रमाण प्रति सहस्र में निम्न है:—

सर्व धर्म	६५
हिन्दू	८४
सिख	६१
जैन	२७३
बौद्ध	१०
पारसी	७६१
मुसलमान	६४
ईसाई	२७६
यहूदी	४१६
अस्थिर जातियाँ	७
अन्य	१६

शिक्षित मुसलमानों का प्रमाण केवल ६४ ही है। उर्दू मुस्लिमों को प्रिय है तो उर्दू की व्यवस्था झुलगा स्कूल में क्यों न की जाय? प्रत्येक स्कूल में लिपि सिखाने की व्यवस्था और प्रत्येक शिक्षक को उर्दू सीखने की अनिवार्य आवश्यकता क्यों करनी चाहिये? इसलिये न कि अल्प संख्यक पुरुषों में प्रचलित उर्दू को हम प्रसिद्ध करना चाहते हैं?

क्या इसी का नाम राष्ट्रीयता है?

देश के नगरों में तो उत्तरीय भारत के शहरों के कुछ शिक्षित मुस्लिमों को छोड़कर उर्दू तो केवल क़िताब की भाषा रह गई है।

उर्दू ६ करोड़ मुसलमानों की भाषा नहीं है।

प्रायः लोग ऐसा मानते हैं कि ६ करोड़ मुसलमान उर्दू लिखते हैं और पढ़ते हैं। पर यह बात असत्य है। जब देश में पढ़े लिखों का प्रमाण ही प्रति शतशत के लगभग है तो उर्दू के पढ़े लिखों

की संख्या क्या होगी? उर्दू मुसलमानों की धार्मिक अथवा सांस्कृतिक भाषा नहीं है।

मुस्लिमों की बड़ी संख्या बंगला में है। परन्तु बहा के मुसलमान तो उर्दू नहीं बोलते। केवल बंगला ही बोलते हैं। इसी प्रकार सिंध के मुसलमान सिंधी, गुजरात के गुजराती, महाराष्ट्र के मराठी, कर्नाटक के कनाडी, मद्रास के तमिल और तेलुगु बोलते हैं। पंजाब की भाषा उर्दू नहीं परन्तु पंजाबी है। पंजाब में पढ़े लिखे उर्दू बोलते हैं किन्तु घरों में पंजाबी ही बोलते हैं। इस प्रकार उर्दू नव करोड़ मुस्लिमों की भाषा नहीं है। सब प्रान्तों में प्रान्तीय भाषा ही बोली जाती है। इसलिये यह समझ में नहीं आता कि जो भाषा किसी समस्त प्रान्त की भाषा नहीं है, किसी भी संपूर्ण जन समुदाय के बोल चाल की भाषा नहीं है उसे इतना महत्त्व क्यों दिया जाता है? उर्दू का जन्म स्थान हिंदी है। उसने कभी भी अपने मूल स्रोत के प्रति जाने का प्रयत्न नहीं किया। अरबी और फारसी लिपि में लिखे जाने के कारण वह कुंठित हो गई है। संस्कृत, हिन्दी और तज्जन्म भाषाओं के ध्वनियों का वर्गीकरण जितना पूर्ण एवं वैज्ञानिक है वैसे सासर भर की दूसरी किसी भाषा का नहीं है। उर्दू में शुद्ध संयुक्ताक्षरों को बोलने की और लिखने की शक्ति नहीं है।

किसी भी दिन आप रेडियो को सुन लीजिये। हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू साहित्य, मुस्लिम संस्कृति एवं उर्दू भाषा का ही प्रचार किया जा रहा है। ऐसाही आपको प्रतीत होगा। कोई भी संस्कृत शब्द का शुद्ध उच्चारण आपको सुनने को मिलेगा ही नहीं। कभी रेडियो के संचालकों को शुद्ध हिंदी बोलने वाले नहीं मिलते? अनेक उर्दू और फारसी शब्दों के अर्थ रेडियो में समझ में ही नहीं आते। बम्बई प्रान्त के वर्तमान पत्रों में इस संबन्ध में अच्छी चर्चा चल रही है।

निजाम के हैदराबाद स्टेट में जहाँ हिन्दू ६० प्रतिशत हैं वहाँ भी वर्तमान में शिक्षण के माध्यम

की भाषा उर्दू करने की आज्ञा निकली है। जहाँ धार्मिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के लिए सत्याग्रह हुआ था वहाँ की वर्तमान परिस्थिति यही है और वहाँ की उस्मानिया युनिवर्सिटी ही तो मानो इस्लामी संस्कृति के प्रचार का केन्द्र बन गई है।

इसी संदर्भ में भारत के भूतपूर्व वायसराय महोदय लार्ड इरविन के शब्द निम्न हैं:—

It will be the task of mature statesman ship so to shape the policy of the University that it may have as strong an appeal to the Hindus as to the Mohamedans subjects of your Exalted Highness,"

अर्थात्—हिंदू और मुस्लिम दोनों प्रजातंत्रों के हृदयों को आकर्षित करने वाली नीति यूनिवर्सिटी के संवन्ध में रखने में ही आर श्रीमान् की पक्की राजनीति होगी। किन्तु इस सलाह को निजाम

सरकार ने न मानकर अपनी मुस्लिम परस्त नीति को ही चालू रखा है।

इसी प्रकार भारतीय एवं प्रांतीय सरकारों की विज्ञापितियाँ, सूचनाएँ एवं समाचारों में भी अरबी फारसी मय उर्दू का ही प्रयोग होता रहता है जिससे सामान्य भारतीय जनता कभी भी समझ नहीं सकती। इसका कारण केवल यही है कि इसके चावी रूप स्थानों पर मुस्लिम अधिकारियों का प्रभुत्व है।

अतः यह आवश्यक है कि इस अखंड भारत को छिन्न भिन्न करने वाली और भारतीय संस्कृति को डानि पहुँचाने वाली भाषा-विषयक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए प्रत्येक भारतवासी को कटिबद्ध होना इति १८ है। इसमें बिलंब करने से ये प्रवृत्तियाँ अरबी जड़े मजबूत बना लेंगी तो इसका विरोध करना मुश्किल हो जायगा और सदा के लिए हमको घाटा उठाना पड़ेगा।

— ❁ ❁ ❁ — विजय-यात्रा — ❁ ❁ ❁ —

[कविराज श्री रत्नाकर शास्त्री आयुर्वेद शिरोमणि 'गुरुदेव']

जीवन करूँगा आज सफल वहाँ मैं मातु,
देश के जहाँ पै बलिदान वीर होते हैं।
खोई हुई हूँ डनी स्वतन्त्रता मुझे है, जहाँ,
लाखों लाल जाति के सङ्घ प्राण खाते हैं ॥

शान्ति को लगाना है गले से 'गुरुदेव' आज,
गले जहाँ तोप के धमाके धरे होते हैं।
मेरे मरने की तुम्हें सूचना मिले तो मातु,
जानना विराम हेतु लाल कहीं सोते हैं। १।

जीवन मे सारता बताओ और है ही कौन
 अगर न जन्म भूमि जननी की पीर है ?
 उसकी मनुष्यता मे शक है हवें तो सदा,
 दुख देख दीनों के न दृग मे जो नीर है ॥
 व्यर्थ ही बिगाडी मोख उसने किसी की यदि
 मेद ही न पाया दास पन की लकीर है ।
 मर के भी अमर रहेगा वही बीर जो कि,
 जननी तुम्हारे हेतु सतत अधार है । २ ।

करने चलूँ ग जिस काम को वभी मैं मातु,
 साधन वे बिन ही जुटाये जुट जायेंगे ।
 बाधक बन आयेंगे हमारे बच भूधर भी,
 सच मान मेरी फूक से ही हट जायेंगे ॥
 गर्जना रूगा जो कराल समराङ्ग मे,
 जड भी ह सुभट खमत्त डट जायेंगे ।
 तेरी सुविधा विधान को रचेंगे हमी,
 हट भी हों बिधि के विधान मित जाबेंगे । ४ ।

जग जान लेवे आज युवक अधीर हमें,
 होने का शपथ ही स्वतन्त्र आज खा ली है ।
 हम न रुकेंगे विश्व रोकता भले ही रहे,
 सर्व शक्तिमान सी सुरक्ति आज पा ली है ॥
 सुख और दुख का विभेद 'गुरुदेव' मेदा,
 देखा मातु जब से तुम्हारा भाल खाली है ।
 चमक उठा है उर अन्तर हमारा देवि,
 भभक उठी है एक ज्वाला ही निराली है । ३ ।

जिसकी ही रज से बनी है यह भव्य देह,
 मेरे सुख उसके पदों पे छुट जायेंगे ।
 तेरी धूल चाट के पले हैं हम लालित हो,
 लाल ये तुम्हारे तुम पे ही लुट जायेंगे ॥
 अरि दलने को जब सदल चलेगे मातु,
 भ्रमा मुक्ति बाधर से वैरी फट जायेंगे ।
 मेटने चल हैं हमें, विश्व देख लेगा आज—
 हम मित जायेंगे कि वे ही मित जाबेंगे । ५ ।



* लक्ष्मी-पूजन *

[ले०—श्री बाबू एस० आर० गुप्ता, "उम्मीद"]



घर निकले ?

'क्यूँ भला ? खूब लक्ष्मी दूर घूमने ।'
'घूमने और इम समय ?'

'हाँ, फिर इसमें हुआ क्या ?'

'आज लक्ष्मी पूजन है न ।
सभ्या का समय हो रहा है और
आपका लक्ष्मी पूजन करना झाड़ ऐसे समय
घूमने जाना ! भला इसे कहा भी क्या जाय ?'

"ऊँ, वह तूही करता बैठ । मुझे तो उस
लक्ष्मी पूजा में कुछ भी महत्व नहीं जान पड़ता ।
फिर ऐसी चंचल अविचारी एवं अथी लक्ष्मी
का पूजन भी भना कौन करने चला ? जिन
स्वार्थी, कृपण, भूटे लोगों पर यह प्रसन्न होती
है वे ही उसकी हॉजी, हॉजी किया करे । वेही
करे उसका पूजन और फिर अपने घरमें
ऐसा है भी क्या जिसके द्वारा लक्ष्मी को
प्रसन्न किया जाय आशाक किया जाय ?
न दीपों की सजधज न खर्चिम अलंकार ।
हमारे जेब में ताबे के चार टुकड़े भी न
मिलेंगे । फिर भला ऐसी भिन्नक-पूजाकी उन्हे
क्यो कर पवाह होगी ?"

"धनी इनके दीपक जलायें, हीरे मोतियों की
चकाचौंध से लक्ष्मी की पगबडों को प्रकाशित करें
तब कहीं धनी-मानी भक्तों की चौकी पर लक्ष्मीजी
थोड़ी देर रुकी रहती हैं ।"

"इस समय उसके भक्त मनोवाङ्मित भर
मागले । ऐसे ही धूर्तों को लक्ष्मी जी अपनी करों-
जुली भर पर सम्पत्ति लुटाती हैं ।"

ऐसा बड़कर मैं शीघ्र ही घर से बाहर चल
दिया और कल्प काल ही शहर के बाहर पहुँच
गया ।

काफ़ी अधिकार हो चुका था ।

वह अभावस्था की रात्री थी । तो भी हमेशा
काले वस्त्र धाग करने का शक रखने वाली राजनी
देवीने आज भूरे रंग के वस्त्र परधान किये थे ।

शहर के बाहर सड़क के दोनों किनारों पर
नीमशुजात्रली थी न वृक्षा के नीचे दुर्गों भिन्नकों
की भोपड़ों भी ।

भोपड़ी भी क्या ? अनेको टुकड़े में जोड़े हुए
मैने कचै वस्त्रा व किसी प्रकार चार पाठ की
लकड़ियों का हायता से की हुई आड़ ही उनको
भोपडा ।

उन भोपड़ियों में मनुष्यों को ठोक बरह बैठते भी
न बनना होगा फिर खडा रहना तो भला दूर रहा ।
बहुग सर्प सट्टा हा सरपट भिन्नारियों को उनमें
प्रवश क ना पड़ता होगा ।

दावावली का दिन था । परन्तु एक भी मापड़ी
में दीपक न था । सभी लोग अपने अपने भोपड़ों
के बाहर बैठकर तारों के लीला प्रशा में अपने
नित्य कर्मा से निवृत्त हो रहे थे । निसर्गका दीप
पुज लाखों कोषों क अन्तर पर रहने वाले दीन
दुःखिया को प्रकाश पहुँचाने के लिए हा मानो सतत
जल रहा हो ।

भोपड़ों के बाहर खुले मैदान में उनका सारा
संसार था । एक मदका, एक फटी सी गुदड़ी और
चार लकड़ियों बस इतनी थी उनकी सम्पत्ति ।

कोई कोई भिस्वागिणी अपनी गोदी से बच्चे को बांधे वस्त्रहीन सिर पर, टूटी हुई टोकनी लिए शहर से अपने डेरे की ओर आ रही थी।

उनका शरीर आधा ढका हुआ था, परन्तु उनके लड़के तो नंगे ही थे।

थोड़ी देर में वहाँ खड़ा रहा।

एक पाँच छः वर्षीय लड़का शहर की ओर अँगुली दिखा पूछने लगा—“आज इतनी रोशनी क्यों है, माँ?”

“अरे आज दिवाली है इसीलिए तो ज़िंघर देखो उबर लोगों ने दिये ही दिये जचाये हैं। आज दिये जलाने से उनके उजाले में लक्ष्मी घर में आनी है।”

“फिर अपने दिये क्यों नहीं जलाये? हम भी भी जलायेंगे न?”

“अरे दिये जलाये के लिए प्रथम तो घर में लक्ष्मी चाहिये। लक्ष्मी नहीं तो दिया नहीं और दिया नहीं तो लक्ष्मी नहीं बेटा?”

माँ बेटे का यह संवाद सुन मेरे हृदय में उया-कुलता जल उठी।

मैंने शहर की ओर नजर फेंकी। आकाश गंगा के अगलिल तारे पृथ्वी पर आ बसे थे। गगनचुम्बी प्रालाद दीप-माला के तेज से प्रकाशित दिखाई दे रहे थे। चांगे ओर दीपक ही दीपक। सतन तीव्रप्रकाश देने वाले विद्युत् दीपक और मंद मंद प्रकाश प्रसाराक दीप। दोनों ही रात्री का दिन करने में एक दूसरे की स्पर्धा कर रहे थे।

मैं इसी त्रिचार तंत्रा में था कि निकट से एक दीव्य-ज्योति निकल गई। परन्तु वह दिव्य ज्योति न हाँकर लक्ष्मी देवी का रत्न खचित रथ था।

उस पर आरुढ़ हो देवी शहर में प्रविष्ट हो रही थी।

रथ मंद गतिसे चल रहा था इसी कारण मैं भी रथ के पीछे पीछे जा सका।

प्रथम लक्ष्मी जी एक लक्ष्मीपति की दुकान में प्रविष्ट हुईं। दुकान का प्रवेश द्वार त्रिविध रंगों के विद्युत् दीपकों से ऐसा प्रकाशित था मानों लक्ष्मी जी को मार्ग शोधने में कोई दिक्कत न हो।

बैठक में स्वच्छ चादराच्छादित गहियाँ थी। उन पर थे कालीन बिछे हुये।

एक चौरंग के इर्द गिर्द समझ्यों जल रही थी। उस पर लक्ष्मी जी का चित्र विराजमान था। चित्र के समीप बहुत से सोने, चाँदी, हीरे और रुपयों के सिक्के जगमगा रहे थे। वही खाते की काली स्याही की रेखाएँ मानों लक्ष्मी जी के आने का मार्ग प्रदर्शित कर रही हों।

लक्ष्मी जी वहाँ पहुँचकर अपने भक्त के वही स्वानों पर कुछ लिखकर चली गईं। मैं मनमें सोचने लगा:—

‘बेचारी भोली लक्ष्मी ने तो दान करने का बीड़ा ही उठाया है।

परचान् एक दो छोटी छोटी दुकाने छोड़ कर उन्होंने एक दूसरी दुकान में प्रवेश किया। वह दुकानदार तीन बार दिवाला निकाल चुका था। और इस अल्पत्रयि में ही लक्ष्मीश बन बैठा था। वहाँ भी लक्ष्मी जी ने पूर्ववत् कार्य किया। परन्तु आश्चर्य कि, दुकान में प्रवेश कर वही खातों पर कुछ लिखते ही इर्द गिर्द की कितनीही दुकानों ब घरों के दीपक अवातक कल्पित हो ज्योति हीन होगये।

मैं लक्ष्मी के पीछे ही पड़ा रहा। अब वह एक आफिसरों के मुहल्ले के एक बंगले में

पुसी। बगले का स्वामी एक बड़ा अधिकारी था। उसने बेतन के अतिरिक्त और भी मर्गों से काफी सम्पत्ति एकत्रित की थी।

वह उसके अधीन लोगों का काम बिना छल कपट किये करता ही न था। प्रत्येक काम में उसकी दलाली बनी रहती थी। यहाँ भी लक्ष्मी जी ने अपने भक्त के सिर पर अपना वरद हस्त रखा।

देवी का यह कार्यक्रम दीर्घकाल तक चलता रहा। वह जिस घरमें प्रवेश करती उस घरके आस पासके कितने ही घरों के दीपक कम्पित हो बुझ जाते और ऐसे प्रकाश पराङ्मुखी घरों को छोड़ लक्ष्मीजी आगे बढ़ जाती थी।

कुछ कालान्तर में देवी मेरे घरकी ओर बढ़ीं। मैं जल्दी जल्दी और किसी आशा से अपने घर के सामने जाकर खड़ा हुआ। बाहर से ही मुझे मेरी पत्नी द्राग किया हुआ लक्ष्मी-पूजन दिखाई दिया। पूजा की जगह एक और देहरी पर दो दीपक टिम-टिमा रहे थे।

मेरे खड़े होते न होते लक्ष्मी का रथ सम्मुख से वापिस हो गया और अचानक तीनों दीपक बुझ गये।

देखा तो लक्ष्मी जी निकट के एक सुख सम्पन्न धनी के घरमें प्रवेश कर रही थीं। वह गृहस्थ सात गाँव का मालगुजार था। इसके सिवाय साहूकारी भी अच्छी चलती थी। कर्जमें उसने पास ही के तीन चार घर ले लिये थे। कर्ज देने के पूर्व जो उसके मित्र थे वे ही पड़ोसी अब उसके कट्टर शत्रु बन गये।

हिसाब करन में वह बहुत घोटाला करता था। परन्तु वह कृपण-व्यक्ति लक्ष्मी पूजन के उत्सव में हीनता कदापि न आने देता था।

उस घर में देवी का प्रवेश करते देख मैंने उद्वेग से घरमें पैर दिए। वैसे ही मुझे मेरी पत्नी कहने लगी 'क्यों! मेरा किया हुआ लक्ष्मीपूजन तुम्हें भला न लगा। जो आते ही सब दीपक गुल कर दिये।' मैंने उत्तर दिया। "अजी लक्ष्मी जा का तुम्हारी यह भित्तुक पूजा भली न लगी। उन्होंने हाँ दिए बुझा दिये हैं।"

मेरी पत्नी मुझपर और भी क्रुद्ध हुई। उसने मेरे इन वाक्यों को मजाक समझा।

चूँकि मेरे कहने का आशय उसकी समझ में आना कठिन था।

सत्यार्थप्रकाश का अन्तिम वाक्य।

विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेक विध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने—जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है—नव मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है। [सत्यार्थ प्रकाश-भूमिका]

- :- आर्यसमाज और हिन्दी भाषा :-

[ले०—श्री सुमन शोखपुरी 'साहित्यरत्न' प्र० सं० 'शिक्षा-सुधा']



धारवादी ऋषि दयानन्द सरस्वती के जीवन काल में ही आर्य समाज का जन्म हो गया था। मानव समाज और समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँध कर सब्से मार्ग पर लाना ही उस बुद्धिवाद के पुजारी का सर्वोच्च दृष्टिकोण था। 'कृएवन्तो विश्व आर्यम्', वाला वेद का सन्देश उस दिव्य महर्षि का जीवन लक्ष्य था। इसी की पूर्ति में उस महानात्मा ने भारत के कोने कोने में अपनी भावनाओं का मंत्र फूँका था।

जिस समय जति पॉलि, छुआ छूना और ऊँच नीच का भेद भाव भारत में भाषण काण्ड मचा रहा था, जिस समय देवी देवताओं के पुजारी धर्म के ठेकेदार बनकर भारतीय जनता को अवनति के गर्त में ढकेल रहे थे और जिस समय मूर्ते पूजा की आड़ में बाह्याङ्गवर्णमयी तथा चकाबौब पैदा करने वाले वासना की समाज को पापाचार एवं व्यभिचार का गर्हित पाठ पढ़ा रही थी तभी उस दिव्य विभूति ने गुजरात प्रान्त में जन्म लेकर संवत् १८८१ को तथा भारतवर्ष का भरपूरालो बनाया था। उस महानात्मा ने हिंदुओं की डूबती हुई नौका को बचाया और उसका ऐसा अभ्यवसायी कर्णधार बना कि ससार सागर में इस समय भी भारतीय नौका अपना मार्ग सुन्दर और सत्य के साथ साथ शिब भा बनाती चली जा रही है।

महर्षि दयानन्द वैदिक संस्कृति को फिरसे भारत में फैलाने के लिए आये थे। वे समस्त भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहते थे और साथ ही साथ यह भी चाहते थे कि वह राष्ट्र स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बने। इन्होंने भावनाओं से प्रेरित होकर उन्गोने आर्य समाज को जन्म देकर आर्यों का संगठन करना आरम्भ कर दिया था। महर्षि इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि आर्य समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिए और उसका विशाल विस्तार करने के लिए विचार साम्य की परमावश्यकता है। विचारों का साकार रूप (शरीर) भाषा है। भाषा ही विचारों के व्यक्तीकरण का साधन है। इसलिए जब तक भारत में एक भाषा का आधार लेकर प्रचार न किया जायगा तब तक हाराग समाज एक सूत्र में नहीं बंध सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाषा के स्वरूप में किसी देश अथवा जाति के सच्ची संस्कृति और सभ्यता अन्तर्हित रहती है। वैदिक संस्कृति और सभ्यता का प्रचार करने के लिए संस्कृति और हिंदी भाषाओं का सहारा लेना ही अनिवार्य था। इसी कारण महर्षि ने अपनी मातृ भाषा गुजराती को त्याग करके हिन्दी भाषा में उपदेश दिये और ग्रन्थ लिखे। वे जानते थे कि हिन्दी संस्कृत के अधिक निकट है, और बहुत सरल भी है। हिंदू जनता का बहुमत इसको समझने और लिखने में सुगमता मानता है। इसी कारण उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी भाषा में ही लिखा था। केवल सत्यार्थ प्रकाश ही नहीं वरन् वेदा के भाष्य भी हिन्दी भाषा में किये। 'संस्कार विधि' भादि पुराणों

भी हिन्दी भाषा में लिखी थीं। अपनी समाज (आर्य समाज) की सारी कार्यवाही और प्रचार प्रणाली हिन्दी भाषा में ही होने लगी थी और अब भी निरन्तर होती जा रही है। गत फरवरी मास सन् ४१ की भारतीय जनगणना में आर्य प्रतिनिधि सभा के द्वारा हिन्दुओं की भाषा 'हिन्दी' लिखाये जाने पर जोर दिया गया था जो कि किन्हीं अंशों में सफल रहा। ऐसे भावोंके का श्रेय श्री श्रेष्ठेयदयानन्द सरस्वती और उनकी संस्थापित आर्य समाज के ही है।

वर्तमान समय में आर्यसमाज के उपदेशकों और भजनोंको से जो हिन्दी का प्रचार हो रहा है वह किसी से छिड़ा नहीं है। पंजाब आदि प्रांतों में हिन्दी का प्रचार करना आर्य समाज की ही सहती तपस्या है। आर्यसमाज ने जगह-जगह गुरुकुल और डी० ए० बी० पाठशालाएँ स्थापित कएके हिन्दी भाषा का प्रबल प्रचार किया। गुरुकुलों और डी० ए० बी० पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को 'हिन्दी' अनिवार्य रूप से पढ़नी पड़ती है।

महर्षि दयानन्द के अनुयायियों में पं० श्रद्धाराम आर्यवधिक लेखराम और स्वामी श्रद्धानन्द जो का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

पं० श्रद्धाराम जी पंजाब प्रान्त के निवासी थे। उन्होंने हिन्दी भाषा में कई ग्रन्थ लिखे हैं। एक प्रकार से तो पं० श्रद्धाराम जी ने ही हिन्दी में उपन्यास और जीवनचरित्र लिखने की नींव डाली थी। हिन्दी गद्य लेखकों में उनका नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इनके ग्रन्थों में आत्मार्चिकता, अर्थरक्षा, सद्गुणदेश आदि प्रसिद्ध हैं। 'भाद्रवती' नाम का उपन्यास हिन्दू समाज में पर्याप्त रूपसे लोक प्रिय रह चुका है। अपना जीवन चरित्र भी इन्होंने सुन्दर हिन्दी भाषा में लिखा था।

श्री पं० लेखराम और स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दी के अच्छे लेखक और आर्यसमाज के प्रमुख प्रचारक थे। इनके ही परिश्रम के कारण पंजाब प्रान्त में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और पूर्णसिंह जैसे हिन्दी के कहानीकार और लेखक पैदा हुए। श्री गुलेरी जी और श्री पूर्णसिंहजी ने हिन्दी भाषा और साहित्य में प्राण डाल दिये हैं। गुलेरी जी के निबन्ध और कहानियों भावा और भाव की दृष्टि से अद्भुत और ठोस हैं। श्री पूर्णसिंह के निबन्धों की भाषा बहुत परिमार्जित और साहित्यिक है। उसमें प्रगति और प्राण हैं। विषय में सामग्री और भाव गाम्भीर्य कूट कूटकर भरा रहता है।

हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में आर्यसमाजी विद्वानों में महात्मा हसराम, महामहोपाध्याय आयमुनि, लाला साजपतराय और स्वामी सत्यदेव परित्राजक आदि का नाम बड़े आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। आयमुनि जी की कविताएँ भी बहुत सुन्दर हैं। स्वामी सत्यदेव जी ने यात्रा सम्बन्धी साहित्य (भूगोल) लिखकर हिन्दी भाषा का प्रचार किया है। आपने कविताएँ भी लिखी हैं जिनका संकलन 'अनुभव' नाम से प्रकाशित हुआ है।

बाबू नवीनचन्द्रराय भी अच्छे विद्वानों में हैं। आर्यसमाज में रहकर आपने शिक्षा-प्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया है। श्री सुदर्शन जी भी आर्यसमाजी ही हैं। गल्प लेखकों में आपका नाम प्रसिद्ध और मान्य है।

उक्त महापुरुषों के अतिरिक्त अन्य सज्जन भी हैं जो कि आर्यसमाज के प्रचार के साथ साथ हिन्दी प्रचार भी करते रहते हैं। पंजाब प्रान्त में आर्यसमाज के दो एक स्वामी ऐसे हैं जो कि आश्चर्यजनक रूप से हिन्दी का प्रचार करते हैं। उनका भिन्ना मॉर्गने का नियम यह है कि—जब वे किसी

हिन्दू के द्वार पर 'ओ३म्' शब्द की पुकार लगाते हैं तो जो स्त्री भिन्ना लेकर बाहर आती है उससे पूछते हैं कि—माई ! तू हिन्दी लिख पढ़ लेती है या नहीं । यदि 'हाँ' उत्तर मिल गया तब तो भिन्ना ले लेते हैं नहीं तो आगे बढ़ जाते हैं और उस स्त्री से कह जाते हैं कि जिस दिन से तू हिन्दी पढ़ना आरंभ कर देगी उसी दिन से ही तेरे हाथ की भिन्ना लेने लगूँगा । साधुओं की आज्ञा या कथन हिन्दू स्त्रियों में वेदवाक्य या परमेश्वर की आज्ञा के समान है । साधु को अपने द्वार से भिन्ना रहित न भेजने के फल स्वरूप प्रायः वे सभी हिन्दू नारियों पढ़ने लगती हैं । ऋष तक लगभग ५० प्रतिशत हिन्दू नारियों को उन साधुओं ने हिन्दी भाषा का पढ़ना लिखना सिखा दिया है ।

आर्यसमाज अथवा वैदिक धर्म के अनुसार यज्ञ हवन आदि गृह-कार्यों में पति पत्नी दोनों को

ही सम्मिलित होना अनिवार्य है । इसलिए स्त्री-शिक्षा का प्रचार भी आर्यसमाज के द्वारा बहुत हुआ है । आर्य-कन्या पाठशालाएँ भी कन्याओं की शिक्षा के लिए पर्याप्त सख्या में है ।

पंजाब और यु० पी० में आर्यसमाज की पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं । साप्ताहिक और मासिक पत्रों के द्वारा भी हिन्दी भाषा का प्रचार दिनानुदिन बढ़ रहा है । साप्ताहिक पत्रों में 'आर्यमित्र' और मासिक पत्रों में 'दयानन्द संदेश' पर्याप्त रूपेण लोक प्रिय हुए हैं । इन पत्रों के प्रचार के साथ साथ हिन्दी साहित्य में बुद्धिवाद, तर्कवाद, निबन्ध, सामाजिक कहानी आदि का भंडार विशेष रूप से भर गया है । यदि ऐसी ही प्रगति रही तो आर्यसमाज के द्वारा और भी हिन्दी भाषा तथा साहित्य का कलेवर दिनानुदिन वृद्धिगत अवस्था को प्राप्त करता रहेगा ।

['स्वामी जी की वेद-भाष्य-प्रतिज्ञा']

अत्र-वेद-भाष्य कर्मकारण्डस्य वर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते ।

अथ प्रतिज्ञा विषयः संक्षेपतः ।

यत्र अग्निहोत्रायश्वमेधान्ते यद्यत् कर्त्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते । कुतः कर्मकारण्डानुष्ठानस्यैतरेयशतपथब्राह्मणपूर्वमीमांसाश्रौतसूत्रादिषु यथार्थविनियोजितत्वात् । पुनस्तत्कथनेनानृषिकृतग्रन्थवत् पुनरुक्तपिष्टपेषणदोषापत्तेश्च ।

श्रु० भा० भूमिका पृ० २२१ ।

(शेष पृष्ठ १६ का)

ऊरु अर्थात् मध्यभाग से की गई है। इस मध्य भाग में मेदा, जिगर, आतैं, दिल, फेफड़े गुर्दा आदि अनेक अवयव हैं जो एक व्यक्ति के जीवन के लिए ऐसे ही महत्वपूर्ण या उपयोगी हैं जैसे कि समग्र रूपसे समाज के जीवन के लिए वे अनेक शिल्प, व्यवसाय आदि हैं जिनका ऊपर बल्लेख किया गया।

कोई लोग ऊरु का अर्थ जंचा करते हैं जो ठीक नहीं। यदि ऐसा माना जावे तो ब्रह्मण शिरस्थानीय, क्षत्रिय वाहु रूप, वैश्य जंघारूप और शूद्र पादरूप होते हुए शरीर के मध्यभाग का जो सबसे बड़ा भाग है स्थान कहीं नहीं रहता।

यह भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि ऊपर बिले सब शिल्पकार पौराणिक काल में और उस समय की स्थितियों में शूद्र माने गये, जिससे उनका समाज में वह उच्च स्थान नहीं रहा जो ऐसे महत्त्व पूर्ण शिल्प और व्यवसाय वालों का होना चाहिए। इससे उक्त शिल्प-कारों को अपने २ व्यवसाय में उन्नति करने के लिए वह उरसाह नहीं रहा जो अन्य देशों में ऐसे लोगों को होता है, और इमीजिए इन व्यवसाय और शिल्प कलाओं ने भारत में पौराणिक काल में वैसी उन्नति नहीं की जैसी उनकी यूरोप आदि देशों में हुई। इस प्रकार केवल इन लोगों पर यह अन्याय नहीं हुआ कि वे वैदिक काल के वैश्यवर्ण से गिराये जाकर शूद्रों में सम्मिलित किये गये किन्तु इन व्यवसायों और उद्यमों को अवनति से भी देश की भारी गति हुई।

वेदों में ऐसे सब व्यवसाय और शिल्प आदि हो और उनके करने वालों को उच्च स्थान दिया गया। पंच शिवशंकरजी काव्यतीर्थ ने अपने "जाति-नर्णय" ग्रन्थ में वेद के ऐसे बहुत से मंत्र दिये हैं जिनमें इन व्यवसायों की प्रशंसा है।

कृषि की प्रशंसा में वेदों में अनेक सूक्त हैं यद्यपि मध्य काल की कुछ स्मृतियों में इसको भी शूद्र का कार्य कहा गया है। मनुस्मृति में खेती का स्पष्ट तथा वैश्य के कार्यों में बतलाया है—“वैश्यस्य कृषिमेव व।”

ऋग्वेद १०। २६ मंत्र ५ व ६ में ऋग् १०। ५३ मंत्र ६ में, ऋग् २। ५८ मंत्र ४ में कताई व बुनाई की प्रशंसा है। ऋ० १०। २६। मन्त्र ५-६ में वह ऋषियों का कार्य बतलाया गया है।

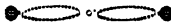
वेदों में सुनार, लुहार, कुहार, चमार, रथकार के लिये तत्ता व ऋभव शब्द आये हैं, और बहुत से मन्त्रों में उनकी प्रशंसा है। ऋग् ४। ३६ का मन्त्र ७ यह है—

“श्रेष्ठ व पेशी अधिधाधि दरांतं स्तोमो बाजा ऋभवतं जुजुष्टन। धीरासः हिष्ठा कवयो विपरिचतः स्तान् व पना ब्रह्मणा वेद्यामसि।”

(अर्थ) हे तत्ताआ! आपका श्रेष्ठ दर्शनीय उद्यम सर्वत्र प्रसिद्ध है। हमारी इस स्तुति को स्वीकार कीजिये। आप धीर, कवि, और विद्वान् हैं। उन आप लोगों का इस मन्त्र से आवेदन करते हैं। ऋग्वेद १०। ५३। ६ में लुहार और वर्तन बनाने वालों की, ऋग् १ २० २ में खिलौने बनानेवाले की प्रशंसा है।

इसी प्रकार अथर्व ५। ६। ४ में लुहार और भस्मा यन्त्र (धौंकनी) बनानेवाले की अथर्व ८। २। ६ में नाई की, अथर्व ८। ४७। १५ में सुनार की प्रशंसा की गई है।

ऊपर बिले मन्त्रों से जो उदाहरण रूप से दिये गये यह स्पष्ट है कि वे सब उद्यम और व्यवसाय जिनके करने व ले वर्तमान समय में शूद्र और अज्ञत माने जाते हैं वेदों में प्रशंसनीय कहे गये हैं, और ऐन लोगों की गणना वैश्य वर्ण में होना चाहिये।



* वेद में आयुर्विज्ञान *

[लेखक—श्री पं० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री वेद-संस्था आनन्दपुरी मेरठ]

लेखक आर्यसमाज के प्रमुख संस्कृतज्ञ विद्वानों में से एक हैं। वेद संस्थान गुरुकुल वृन्दावन से प्रकाशित यजुर्वेदानुवाद के आप प्रधान सम्पादक थे। वैदिक विद्वानों पर आप के लेखों में पर्याप्त संपादक सामग्री रहती है।

—सम्पादक

प्रस्तुत लेख में सिद्ध किया गया है कि आयुर्विज्ञान और संसार में प्रचलित तथा अप्रचलित अनेक चिकित्सा प्रणालियों का मूल वेदों में ही समुपलब्ध होता है और यह विज्ञान वैदिक-स्रोत से ही समस्त विश्व में प्रवाहित हुआ है।



द ज्ञान, विज्ञान का आदि स्रोत है, वेदों के विषय में यह धारणा अति प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रायः संस्कृत का सभी—धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, राज-

नैतिक, साहित्य अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये वेदों को और ही संकेत करता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने भी जिनका वैदिक विद्वानों में अत्युच्च पद है उक्त तत्त्व की मुक्त कण्ठ से घोषणा की और अपने लेखों में वेद मंत्रों के आधार पर सत्त्व से सप्रमाण सिद्ध किया कि वेदों में अनेक प्रकार के विज्ञान भरे पड़े हैं निस्सन्देह वेदों के परिशीलन करने वाले विद्वानों से यह बात तिरोहित नहीं कि वेद में भौतिक विज्ञान, अध्यात्मिक विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, आदि विविध विज्ञानों का बीजरूप से उपदेश किया गया है। अब वेद के विशेषज्ञों का यह काम रह जाता है कि वे उन वेद के रहस्यों को जो

मध्यकालीन भाष्यकारों के भ्रम से अन्धकार में पड़ गये हैं प्रकाश में लायें और वेदों की यथार्थता को सिद्ध कर उनके महत्त्व को पुनः संसार के हृदय पटल पर अंकित करें। अस्तु इस लेख में सत्त्व से यह दर्शाने का यत्न किया जायगा कि अन्य विविध विज्ञानों की भांति आयुर्वेद विज्ञान के भी गूढ़तम सिद्धांतों का वेद में वर्णन किया गया है।

आज कल भूमयडल में जितनी भी चिकित्सा पद्धति चल रही है उन सबका आदि स्रोत भारतीय आयुर्वेद ही है यह इतिहास के विद्यार्थियों से छिपा हुआ नहीं है इसकी पुष्टि में हम केवल सर विल्यम हन्टर का ही कथन उद्धृत करना पर्याप्त समझते हैं:—

“The Hindu medicine is an independent development. Arab medicine was found on the translation from the Sanskrit treatise made by command of the Khalifa of Baghdad (950-960 A D) European medicine down to the 7th. Century

was based upon the Arabic & the name of Indian physician 'Charak repeatedly occur in Latin translations of Avicenna ...

(Sir William Hunter)

अर्थात् भारतीय औषध शास्त्र स्वतन्त्र तथा सुसंपन्न हुआ है। अरब के औषध विज्ञान का संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद पर निर्माण किया गया है। काश्फ से पूर्व (६५०-६७०) में यह कार्य बगदाद के खलीफा की आज्ञा से हुआ था। और योरोप का औषध-शास्त्र सातवीं सदी तक अरब के ग्रन्थों पर ही अवलम्बित था। लैटिन के अनुवादित ग्रन्थों में भारतीय चिकित्साचार्य चरक का नाम अनेक बार अंकित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि संसार का चिकित्सा विज्ञान भारतीय आयुर्वेद का ही अग्रणी है और भारतीय आयुर्वेद का उद्गम वेदों से हुआ है यह बात सभी सुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं। स्वयं ऋषिब्रह्म सुश्रुत ही लिखते हैं— 'इह स्वस्तु आयुर्वेदानम यदुपागम्यथ्येदस्वैति' अर्थात् आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग है। यद्यपि प्रधान तथा अथर्ववेद में आयुर्वेद का उपदेश किया गया है तथापि साधारणतः अन्य वेदों में भी आयुर्वेद-विज्ञान की रश्मियां चमकती हुई दृष्टि गोचर हो रही हैं।

इस लेख में संक्षेप से यह दर्शाने का प्रयत्न करेंगे कि जितने चिकित्सा-पथों का आविष्कार अब तक हुआ है उनका मौलिक सूत्र हमें वेदों में मिलता है—जल चिकित्सा के विषय में तो प्रायः प्रसिद्ध साही है—'अप्स्वन्दरममृतमप्सुमेषजम् । आपो आपामि भेषजम्' ॥

'अप्सु मे सोमोऽमशीदन्तर्बिरानि भेषजा ।' अथर्व

अर्थात् जलों के अन्दर अमृत भरा हुआ है जलों में समस्त औषधितत्व भरा हुआ है। जल का आचमन क्या मानो औषधियों का ही आचमन कर रहा हूँ।

'जल के अन्दर समस्त औषधियों का सार विद्यमान है। ऐसा जल-विज्ञान के विशेषज्ञ बतलाते हैं। क्या इसका यह स्पष्ट तात्पर्य नहीं है? कि जल के द्वारा समस्त रोगों का शमन किया जा सकता है।



श्री पं० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री

सूर्यरश्मियों का महत्त्व—सूर्य किरणों में शारीरिक स्वास्थ्य के लिये अनेक अनुपम तत्त्व हैं। सूर्य अपने किरण समूह को पृथिवी पर फैला रहा है नभो मण्डल के नक्षत्रों को अपनी रश्मियों से प्रकाशित कर रहा है। सूर्य की तीव्र प्रखर किरण इन फ़ारेड, तथा मृदु रश्मियाँ 'अल्ट्रावॉयलेट' विविध प्रकार से इस जड़ चेतन स्रसार का सञ्चालन कर रही हैं। इनमें से अल्ट्रावॉयलेट प्राणियों के लिये अत्यन्त हितकारी है, जब इनका त्वचा के साथ सम्पर्क होता है तब त्वचान्तगत ज्ञान तन्तुओं को एक प्रकार का उत्तम उत्तेजन मिलता है।

यह रक्त वाहिनियों में होने वाले रक्त सञ्चार को प्रवाहित करती है। स्नायु मण्डल को अपनी भव्य शक्ति से अनुप्राणित करती है और पुष्ट करती है। डाक्टर रोलियर ने यहाँ तक लिखा है अल्ट्रावॉयलेट किरणों में जितनी जन्तुनाशक शक्ति है उतनी अन्य किसी भी पदार्थ में नहीं है।

सूर्य प्रकाश मनमें प्रफुल्लता देता है। सूर्य प्रकाश के द्वारा बिटेमिन तत्व शरीर में प्रचुरता

से बढ़ता है अल्ट्रावायोलेट किरणों से फलों में बनस्पतियों में विटैमिन 'डी' का सञ्चार होता है। इत्यादि; उपयुक्त बातों से निम्नाङ्कित सार निकलता है:—

१—सूर्य अपने दो प्रकार की किरणों से विविध जड़ जङ्गम जगत् का सञ्चालन करता है।

२—सूर्य की अल्ट्रावायोलेट किरणें प्राणिमात्र के लिये हितकारी हैं उनके द्वारा शरीर के ज्ञानतन्तुओं एवं स्नायुमण्डल को उत्तेजना मिलती है।

३—विपाक्त जन्तुओं के नष्ट करने में सूर्य किरणें अपनी समता नहीं रखती।

४—सूर्य किरणों के द्वारा मन का विकास होता है और बुद्धि को प्रेरणा मिलती है।

५—सूर्य किरणों से बनस्पति तथा फलों में पोषकतत्त्व (विटैमिन) पहुँचता है।

इन सब बातों के वर्णन निम्न मन्त्रों में स्पष्ट रूप से मिलता है—

“अस्य संस्थेन वृषवते हरी समत्व शत्रवः।
तस्मा इन्द्राय गाथतम् ॥१५१४॥

इस मन्त्र में सूर्य की दो विशेष किरणों का वर्णन है जो 'हरी' इस पदसे बोधित हैं। जिसमें से एक लालकिरण दूसरी नीली। इन दोनों के विशेष सम्मिश्रण से अश्वय कोई ऐसी दाहक शक्ति उत्पन्न हो जाता है कि जिसको शत्रु सहन नहीं कर सकते। छान्दाग्य उपनिषद् में इन दो प्रकार की किरणों का वर्णन आता है।

‘अथ यदेतदाहितस्य शुक्रं भा सैवर्ग्य यनीलं परं कृष्य तत्साम’। छान्दा० १। ६। ५।

अर्थात् सूर्य की जा शुक्लवर्ण वाली किरण है वह श्रेष्ठ अर्थात् प्रेरणा एवं उत्तेजना देने वाली; और जो काले अथवा नीले रंग की किरण है

वह साम अर्थात् शमन तथा पोषण देने वाली है। क्या इन मन्त्रों में स्पष्ट अल्ट्रावायोलेट एवं इन्फ्रारेड किरणों का स्पष्ट वर्णन नहीं है? अथर्व वेद में सूर्य को जन्तुनाशक बतलाया गया है—

‘उयन्नादित्य. क्रमिन् हन्तु निम्नोवन ररिभिः’ अथर्व० २। ३। १।

अर्थात् उदय होता हुआ तथा अस्त होता हुआ सूर्य अपनी किरणों से रोगोत्पादक क्रमियों को नष्ट करता है।

‘प्राण. प्रजानामुदयत्येष सूर्यः’। इसमें तो सूर्य को जीवनधारिण का प्राण ही बतलाया गया है। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सूर्य के विषय में जो आधुनिक नव्यतम वैज्ञानिकों के उद्गार निकल रहे हैं वे केवल वेद प्रतिपादित सूर्य राशि विज्ञान का प्रतिध्वनि मात्र नहीं है? इतने प्रकार सूर्य-विज्ञान के विषय में अन्य अनेक मन्त्र हैं जिनका उल्लेख इस सिद्धि लेख में नहीं किया जा सकता।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान का नवीन तम आविष्कार इन्जक्शन द्वारा रोगों का उपाय करना है। इस का उपयोगिता, अनुपयोगिता, हानि या लाभ के विषय में विशेष चर्चा न करत हुए, इतना मात्र कह देना पर्याप्त समझते हैं कि आयुर्वेद में समय पड़ने पर अमुक विशेष स्थितियों में इन्जक्शन का विधान भी पाया जाता है और उसका भी आदि उपदेश वेद ही है। देखिये आयुर्वेद—‘सूचिकाभरण’ इसनाम के कई प्रयोग हैं। जिनका विशेष सन्निपात अवस्था में प्रयोग किया जाता है। रसायन मन्त्रों में लिखा है—

“सूचिकाम्रेण दातव्यः सन्निपातनिवर्हणः।

सूचिकाभरणो नाम रस. गुप्ततमो मतः॥

इस में स्पष्ट लिखा है कि सूचिका के अप्र भाग से इसका प्रयोग करना चाहिये। सूचिका द्वारा यह शरीर में भरा जाता है इसीलिये इसका नाम सूचिका भरण है, वेद में इसी आशय के सूचक-आभरण, विभरण आदि प्रयोग आते हैं—अथर्ववेद में मन्त्र आता है—

अग्ने जातं परियद्विरण्यममृत दध्रे अवि मर्त्येषु.....यो विभर्ति ।

अथौत् अग्नि तत्व से उत्पन्न हुआ स्वर्ण

मरणशील मनुष्यों में अमृत रूप से धारण किया गया है। जां सोने का आभरण (इन्जेक्शन) करता है उसकी जराबस्था मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। आज समस्त वैज्ञानिक इस मन्त्र की सबाई को सुवर्ण (Gold chloride) के इन्जेक्शन देकर मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर रहे हैं। वेद श्रद्धालुओं। विज्ञानराशि वेद में मज्जन कर अमूल्य रत्नों को दूढ़ निकालो जिससे लोकका कल्याण हो।



दीप

[—साहित्याचार्य पं० जितेन्द्र भारतीय शास्त्री]

आकर जगती तत्र पर ऋषि ने, फैलाया था दिव्य प्रकाश,
ज्ञान उद्योति की प्रबल प्रभा से, दूर किया भ्रम माया पाश ।।
सत्य और मिथ्या को निःशदिन, मापा तर्क कसौटी पर ।
सच्चे शिव के अन्वेषण का, त्याग दिया निज प्यारा घर ।।
भटका भीषण गहन बनों में, पड़ी न वैभव की छाया ।
त्याग और तप की भट्टी में, झुलसा दी अपनी काया ।।
विकल साधना का भ्रमा में, भूम रहा था अन्त स्तल ।
अवनी का आच्छादि करने, भाक रहा था यश उज्वल ।।
ज्ञान सुधा की सरित बहादी, किये अनेकों परिवर्तन ।
हटा यवन का, दूर हुआ अज्ञान, किया जगने नर्तन ।।
सूत्र धार बन रग मंच पर आया अभिनय किया प्रचण्ड ।
खण्ड खण्ड 'पाखण्ड खण्डनी' रोपी वैदिक ध्वज अखण्ड ।।
हाने लगा नद वेदों का, पथ भूलों का राह मित्री ।
आर्य जाति की विमल मुलानी, लतिका लोल, ललाम खिली ।।
किन्तु कलङ्को कर काल ने, वक्र दृष्टि अपनी डाली ।
दयानन्द का "दीप" बुझा कर, स्वय मनाई दीवाली ।।



दिव्य-दीपक दयानन्द

[ले०—श्री पं० आर्वेन्द्र शर्मा शास्त्री, वेदशिरोमणि, श्री पं० राजेन्द्र शर्मा शास्त्री]



[मस्तुत लेख मे ओजपूर्ण भाषा में यह दर्शाया गया है कि अज्ञानांधकार-मस्त भारतीयों के लिए किस प्रकार ऋषि दयानन्द ने दीपक की भांति अवतरित होकर अपनी ज्ञानउद्योति से समस्त मानव लोक को आलोकित किया ।]

—सम्पादक

ॐ साहित्य का सुविकास संस्कृतभाषा के द्वारा ही हुआ है। संस्कृत भाषा को ही देवबाणी कहा गया है। प्राचीनतम होने से इस भाषा को विश्ववर्ती शेष भाषाओं की जननी भाषा विज्ञान-विदों ने कहा है। इसी देवगिरा की उत्कृष्ट विभूति को धारण करने वाला एक शब्द दीपक भी है। इस शब्द का अर्थ प्रकाशित होने वाला अथवा प्रकाशित करनेवाला है। दीपक के द्विविध कार्यों को सुरक्षरूपाँति से प्रकट करनेवाला शुलोकस्थ सूर्य सर्वश्रेष्ठ प्रदीप है। अपनी नैसर्गिक ज्योति से स्वयं प्रकाशित होते हुए जिस प्रकार दिवाकर समस्त सौरमण्डल को ज्योतिष्मान् बना देता है, उसी प्रकार एक कृत्रिम मानव-मन्दिर मे प्रदीप-प्रदीप अंधकार-जनि तमिस्रा को दूर कर घर को प्रकाशित कर देता है।

शुलोकस्थ प्रदीप प्रभाकर का प्रदीप्त करने वाली सोम और श्रद्धा के अत्यन्त विरल स्वरूप का साक्षात्कार तो विरले ही सिद्ध योगिजन करते हैं, किन्तु मूलमय दीपक को प्रज्वलित करनेवाली तैल और बर्ती को तो सभी प्रत्यक्ष देखते हैं। शुलोक के श्रद्धा और सोम कव, किससे, किसने बनाये, इन बातों का ज्ञान साक्षात्कृत-धर्मा महर्षियों को ही होना सम्भव है किन्तु दीप, तैल और बर्ती के सम्बन्ध की समस्त ज्ञातव्य बातें सर्वविवित हैं। सर्वत्र सुलभ-

साधारण मृत्तिका सरसो और कपास को जैसे तैसे मिला देने मात्र से प्रदीप्त दीपक का प्रकाश नहीं उत्पन्न किया जा सकता है, यह बात सब लोगों को सुविदित है और यह भी ज्ञात है कि दीप-ज्योति प्राप्त होने के पूर्व विशिष्ट मृत्तिका सरसाँ और कपास का यथोचित संस्कार होना परमावश्यक कार्य है। संस्कार विज्ञान के इस महत्वपूर्ण रहस्य को जो विवेकी पुरुष हृदयगम कर सकते हैं, वे ही मानव संस्कार अथवा संस्कृत विज्ञान को समझने में समर्थ हैं।

संस्कार-विज्ञान के अनुसार मनुष्य भी जब कर्माँ और जहाँ कहीं स्वयं प्रकाशित होता है, अथवा मानव समाज को प्रकाशित करता है, तो उसके लिए भी मिट्टी, सरसो और कपास की भाँति तप, त्याग, एवं सर्वमेध की दीक्षा लेना अनिवार्य होता है। इस कठोर व्रतदीक्षा से दीक्षित हुये बिना मर्त्य-मनुष्य का स्वयं ज्योति बनकर औरों को भी ज्योतिष्मान् बना देना सम्भव नहीं है।

सर्व साधन-सम्पन्न कुल में उत्पन्न होने मात्र से ही यदि कोई व्यक्ति स्वयं ज्योति बन सकता तो कदाचित् आज संसार का स्वरूप ही नितान्त भिन्न प्रतीत होता और न पोथी पढ़ने मात्र से ही स्वयं ज्योति बन सकता है, अन्यथा काशी जैसे विद्या केन्द्र आज सिद्धजनाकीर्ण आश्रम होते सांख्यवाद के स्थान पर

संख्यावाद के बोट-बाहुल्य से भी मनुष्य स्वयं ज्योति नहीं बन सकता है।

इन समस्त निषेधात्मक विधियों के स्वरूप को भली भाँति समझने वाले संस्कारबलौपित लोकोत्तर पुरुष इतर प्रकृत जनों की अपेक्षा दैवीसंस्कारों में सम्यक् विभूषित होने के कारण अविलम्ब ही देव-प्रसाद और गुरु कृपा से अपेक्षित दैवी दीप्ति से प्रथम स्वयं ज्योति बनते हैं और तदनन्तर अपने सम्पर्क में आने वाले अन्यजनों को भी प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे महापुरुषों के उत्तम गुणों को केवल वे ही मनुष्य अपने जीवन में धारण कर पाते हैं कि जो तत्सम संस्कार संपन्न होते हैं। शेष सर्वासाधारण लोग तो तैलवर्सी रहित केबल बुके हुए मिट्टी के नाम मात्र दीपक के समान होते हैं। न तो स्वयं प्रकाशित होते हैं और न अन्य बुके हुए दीपकों को प्रकाशित कर सकते हैं। क्योंकि एक प्रदीप्त-प्रदीप ही अन्यान्य स्नेहवर्ती युक्त दीप को प्रदीप्त करने में समर्थ होता है।

उपर्युक्त सैद्धान्तिक दृष्टि से सूक्ष्म विवेचना करने पर ऋषिदयानन्द के जीवन-निर्वाणक-बटना-क्रम और देशकालिक परिस्थिति का पर्याप्तोचन यही सिद्ध करता है कि वे वस्तुतः एक असाधारण लोकोत्तर महापुरुष थे। क्योंकि मानव जीवन सम्बन्धी अन्यान्य आवश्यक सुविधाओं के प्रायः अभाव में भी त्रिस विलक्षणता के साथ उन्होंने अपने देवदुर्लभ प्रज्ञाबल से केवल वेदविज्ञान के आधार पर युगपरिवर्ती ज्ञान प्रकाश से चिरान्तरादित अज्ञानान्धकार को दूर करने का सफल प्रयत्न किया। उनके व्यक्तित्व की वास्तविक कसौटी तो ऋषि के ही निम्न लिखित ओज पूर्ण शब्द हैं। “मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अर्थों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्ध्याय हारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरना रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्मा-

ओं को चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महा बलवान् और गुणवान् भी हो तथा उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे आपको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, पर उस मनुष्य-पतरू धर्म से प्रथक् कभी न होवे।” इस उद्धरण से ऋषि दयानन्द के मानव जीवन का आदर्श सुस्पष्ट हो जाता है और ऋषि का समस्त जीवन इसी साँचे में ढाला गया प्रतीत होता है। बाल्यकाल, शिक्षाकाल, विशेष तप साधना काल, उपप्रचारकाल और ग्रन्थ निर्माण काल, आदि जीवन के समस्त भाग इसी आदर्श के अनुरूप हैं।

शुलोक्थ आदित्य की भाँति आदित्य ब्रह्माचारी ऋषि दयानन्द ने स्वयं अप्रतिहत ज्ञान ज्योति बन कर नाना मत, पन्थ और रूढ़ियों को अपने वैदिक ज्ञान रश्मियों से छिन्न भिन्न करते हुए वैदिक धर्म के विशाल राजमार्ग पर साधारणतया संसार के समस्त मनुष्यों को और विशेषतया भारतीय नर नारियों को दृढ़ता के साथ चलने का उपदेश दिया। स्वयं वैदिक रहस्य ज्ञान को समाधिस्त होकर प्रज्ञान नेत्र से यथावत् देख कर अन्य जनों को सच्ची वेदार्थ-प्रक्रिया का संक्षेप में परिचय कराया। अन्यान्य ग्रन्थाभ्यासी पंडितों से भिन्न किन्तु आर्ष प्रज्ञान के अनुसार ऋषि दयानन्द ने वेदप्रदर्शित ज्ञानज्योति की प्रतिष्ठा सर्व साधारण जनता के हितार्थ यावज्जीवन करते रहने का अजस्र व्रत धारण किया। इस प्रकार अपने जीवन का स्नेहवर्ती-युक्त प्रदीप की भाँति प्रज्वलित करते हुए अज्ञानान्धकार को मिट कर ज्ञान के प्रकाश को सर्वत्र प्रसारित किया। ऋषि दयानन्द के समय में वैयक्तिक

तथा सामाजिक गुणों का प्रायः अभाव सा हो रहा था, और लोग नाना प्रकार के दुरितों और दोषों से परिपूर्ण हो रहे थे। विदेशी शासन, परधर्मोपलब्धियों के कुबकपूर्ण आवागम, हिंदू जाति में पारस्परिक फूट फैलाने वाली सैकड़ों कुीतियाँ, मिथ्या रीति व्यवहार और कुसम्भार से भारतीय मानव समाज अज्ञानान्धकार की चरमसोमा तक पहुँच गया था।

स्वयं ज्योति बन कर ऋषि ने युनोकर्म दिवाकर अथवा मन्दिरस्थ प्रदीप की भाँति ऐसे समय में में सूक्ष्म अज्ञानान्धकार के समय भूलीक को बेदालोक से आलाकित किया जिन समय इतर कोई प्रकाश सुलम न था।

शरद ऋतु की घोर अन्धकारमयी अमावास्या प्रति वर्ष कार्त्तिक में आती है और भारतीय संस्कृति का प्रत्येक उपासक नर और नारी अपने २ घरों को दीपावली से आलोकित करता है। दिवाली के पुनीत पर्व को उत्साह के साथ मनाने में हिन्दुमात्र को अलौकिक आनन्द अनुभव होता है। वस्तुतः दीपमालिका आर्यजाति का एक महापर्व दिवस है। इसी पवित्र अमावास्या की रात्रि को ऋषिदयानन्द ने अपनी जाञ्जल्यमन जीवन ज्योति का निर्वाण किया था।

महर्षि दयानन्दसरस्वती यथार्थ में दीप स्नेह और चर्चा इन त्रिविधि तत्त्वों से समन्वित थे। अतः वह दिव्य-दीपक दयानन्द चिरकाज से बुझे हुये आये अन्त करण रूपी प्रकाश हीन प्रदीपों को अपने ज्ञानज्योतिर्मय सर्गमेधोत्सर्ग के द्वारा प्रदीप्त करगये। "ईश्वर तेरी इच्छापूर्ण हो"। ऋषि के इन अन्तिम शब्दों का भी यही अभिप्राय हो सकता है कि एक मानव जीवन रूपी प्रदीप प्रथम स्वयं ज्योति बनने और अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये औरों को भी ज्योतिष्मान बनाए। इस दृष्टि से आंकनेपर ऋषिदयानन्द का लोकोत्तर जीवन युनोकर्म आदित्य की भाँति प्रत्येक विकासोन्मुख मानवसमाज के लिये सर्वदा और सर्वथा अनुरूपणीय रहेगा।

इस दीपावली के पर्वदिवस को भद्धा और आर्योचित आस्तिकता के साथ मनाते हुये क्या ऋषि दयानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी आर्य नर-नारी अपने २ वैयक्तिक जीवनो को ऋषि निर्दिष्ट विधि विधान के अनुसार वेदज्ञान ज्योति से सर्वथा स्वयंज्योतिर्मय बनाकर औरों को भी ज्योतिष्मान बनाने का सकल्प करेंगे ? "तमसो मा ज्योतर्गमय"।



Veda, the product of highest spiritual Intuition.

By Dr. S Radhakrishnan.

The Hindus look back to the Vedic period as the epoch of their founders. The Veda, the wisdom, is the accepted name for the highest spiritual truth of which the human mind is capable. It is the work of the Rishis or the seers. The truths of the Rishis are not evolved as the result of logical reasoning or systematic philosophy, but they are the products of spiritual intuition, direct vision. The Rishis are not so much the authors of the truths recorded in the Vedas as the seers who were able to discern the eternal truths by raising their life-spirit to the plane of universal spirit. They are the pioneer researchers in the realm of spirit who saw more in the world than their fellows. Their utterances are heard not on transitory vision but on a continuous experience of resident life and power. When the Vedas are regarded as the highest authority, all that is meant is that the most exacting of all authorities is the authority of facts.

If experience is the soul of religion expression is the body through which it fulfils its destiny. We have the spiritual facts and their interpretations by which they are communicated to others, Sruti or what is heard and Smriti or what is remembered. Shankar equates them with *Pratyaksha* or Intuition and *Anumana* or Inference. It is the distinction between the imm-

ediate and thought. Intuitions abide while interpretations change. Sruti and Smriti differ as the authority of fact and the authority of interpretation, Theory, speculation, dogma change from time to time as the facts become understood. Their value is acquired from their adequacy to experience. When forms dissolve and the interpretations are doubted it is a call to get back to the experience itself and reformulate its contents in more suitable terms. (An Idealist view of Life, pp 89-90)

वेद विश्व का सर्वोच्च प्रातिम ज्ञान ।

[अनु०—श्री वासुदेव शरण अमवाल, एम. ए.]
[श्री रामदत्त शुक्ल एम. ए. एल., एल, बी. एडमोडेट]

हिन्दू लोग वैदिक युग को अपने पथिकृत पूर्वजों का युग मानते हैं। वेद-ज्ञान—उस सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य का पर्यायवाची शब्द है जिसका मानवी मन चिन्तनकर सकता है। यह दृष्टा ऋषियों का अनुभव था। ऋषियों के सत्य तार्किक ऊहा पोह से अस्तित्व में नहीं आया करते। वे आध्यात्मिक प्रज्ञा के द्वारा जाने जाते हैं। वेदों में जिस सत्वात्मक ज्ञान का सन्निवेश है ऋषियों को उसका रचयिता कहना इतना ठीक नहीं जितना कि यह कहना कि उन्होंने अपने अन्तरात्मा या जीवन सूत्र को विश्वात्मा के ऊँचे धरातल तक उठाकर सनातन सत्त्वों का सान्नाकार किया। ऋषि लिंग आत्म जगत् के आदि विज्ञान थे; जिन्होंने अपने प्रज्ञामय चक्षुओं से उस आन्तरिक जगत् के सत्त्वों को दूसरे सामान्य जनों

की अपेक्षा दूर तक गहराई में पैठकर देखा। ऋषियों ने जिस श्रुति ज्ञान का अनुभव किया वह रूप की रूढ़ि या प्रकाश नहीं था, अथिउ उनके नित्यप्रति के आचार मय जीवन की संकल्प मय शक्ति का जीता जागता अनुभव था। जब हन यह कहते हैं कि वेद सर्वोच्च और सर्वातिशायी प्रमाण है, उसका आशय यह होता है कि सब प्रमाणों के बीच में जो अधुव्य प्रमाण है जिसे कभी दवाया नहीं जा सकता, वह सत्यात्मक अनुभव का प्रमाण है।

यदि अनुभव धर्म की घाटा है तो उसका शब्द में प्रकाशन वह शरीर है जिसके द्वारा वह अपने महान् षडैश्य में फलीभूत होता है। रूढ़ि और अध्यात्मिक जगत् के सत्य हैं और दूसरी ओर वे व्याख्यान हैं जिनके द्वारा वे अनुभव दूसरों तक पहुँचे हैं। पहली की संज्ञा श्रुति और दूसरी की स्मृति है। आचार्य शंकर के शब्दों में श्रुति या प्रज्ञाजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष का गौरव प्राप्त है और स्मृति अनुमान है। स्वयं साक्षात्कार और केवल विचार में जो रूढ़ि है वही

श्रुति और स्मृति का अन्तर है। प्रज्ञा जन्म ज्ञान लोक में अमर है पर उसके व्याख्यान परिवर्तन शील हैं। श्रुति और स्मृति का अन्तर ठीक ऐसा है जैसा कि किसी स्वयंसिद्ध घटना और उसके पराश्रित वर्णन में होता है। घटना या अनुभव को ठीक ठीक समझने में जैसे जैसे हमारी प्रगति बढ़ती है उनके आशय से कथित मत, बाद और विश्वास जैसे ही समय समय पर बदलने जाते हैं। हमारे मतों का मूल्य इन बात से होता है कि वे अनुभव जो कि स्वयं सिद्ध हैं व्याख्या भली प्रकार कर सके। अब मतवादों का बाह्य रूप जर्ण होने लगता है और सत्य की व्याख्याओं के विषय में भी सदेह उत्पन्न हो जाता है तब मानो इन बात की शशुध्वनि होती है कि हम पुनः अनुभव को शरय में जाँच और उन सत्यों को नूतन उपयुक्त शब्दों में विरोकर प्रस्तुत करें।

‘जीवन का आदर्श प्रधान दृष्टिकोण’

* ऋषि का निर्भय नाद *

[कविरत्न श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा]

परे कूर कर्ण, तु डरता है, क्या खड्ड ले के,
प्राण-भय से क्या कभी सत्य छोड़ दूंगा मैं।

याद रख दम्भ का गिराऊंगा गपोड़ गढ़,
भौंडी भावना का भीरु, भौंडा फोड़ दूंगा मैं।

अधम अधर्म जय पाएगा न धर्म पर,
मिथ्या मत वादियों का मुंह मोड़ दूंगा मैं।

ताकता है, क्या तू कुल-कायर प्रहार कर,
तानते ही तेरी तलवार तोड़ दूंगा मैं।

सिंह के समान दयानन्द की दहाड़ सुन,
झागयी निराशा-निशा वैरियों के गण में।

बाल ब्रह्मचारी का विशाल तप तेज देख,
वीरता बदल गयी भीरुता से क्षण में।

आत्मिक बल के विजय की पताका उड़ी,
कर्णसिंह कायर पड़ा दिया रण में।

कौंभ उठा गात, बनी पक भी न बात, किया —
शीघ्र प्रणिपात ऋषिराज के चरण में।



—: एक प्रेक्षक की भावना :—

(ले०—श्री के० ए० सुब्रह्मण्य अथर एम० ए० अध्यक्ष प्राच्य विभाग विश्वविद्यालय लखनऊ]

इस लेख के लेखक पौरस्त्य एव पाश्चात्य संस्कृति, साहित्य तथा भाषाओं के समन्वित पारदर्शी विद्वान् हैं। एक मद्रास प्रान्तीय मननशील विद्वान् होते हुये भी आपने यूरोप में वर्षों निवास करके प्रायः समस्त मुख्य २ भाषाओं के प्रमुख साहित्य का सान्ध्य प्राप्त किया है। दक्षिणात्य सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के साथ ही साथ २० वर्ष पर्यन्त लखनऊ विश्वविद्यालय में संस्कृत, पाली प्राकृत विभाग के अध्ययन और फ्रेंच भाषा के महोपाध्याय रूप में सत्तात् अनुभव एव मर्मज्ञता प्राचीन भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में प्रायः की है।

[प्रस्तुत लेख में मर्णाज्ञ विद्वान् लेखक ने तुलनात्मकदृष्टि से पौरस्त्य एव पाश्चात्य सांस्कृतिक विवेचन करते हुये यह दर्शाने की सफल चेष्टा की है कि अपने समय में प्रचलित अनेक अन्वेषणमय रूढ़ियों से हानेवाली हानियों का दूर करने के लिये ऋषि दयानन्द ने भारतवासियों के सम्मुख अपने ग्रन्थों और उपदेशों द्वारा प्राचीन आर्य वैदिक संस्कृति और धर्म के स्वच्छ सार्वजनिक आदर्शों को प्रस्तुत किया कि जो निरपेक्ष भाव से अनुत्थमात्र के कल्याण साधनाथ विहित हैं। ऋषि दयानन्द की सेवाओं अथवा उपकार का इस लेख से प्रतिपादन अत्यन्त सजीव भाषा में किया गया है।—सम्पादक]



आर्यसमाजी नहीं हैं। मेरी इन्म भूमि मद्रासप्रान्त में होने के कारण हिंदी भी अच्छी तरह लिख नहीं सकता। तथापि मित्रों की प्रार्थना के अनुसार और ऋषि दयानन्द जी के ऊपर अपनी भक्ति को प्रकट करने के लिए कुछ लिखने का साहस कर रहा हूँ। ऋषि दयानन्दजी का नाम मैंने बचपन ही में मद्रास में सुना था। अगे चलकर संस्कृत के अध्ययन में प्रविष्ट हुआ, विशेषकर वेदों के अध्ययन में तब श्री स्वामी जी की कृतियों से परिचित होने की मेरी इच्छा हुई। सत्यार्थ-प्रकाश को मैंने पढ़ा। ऋग्वेद-भाष्य भूमिका भी मैंने देखी, ऋग्वेद के कुछ चुने हुए मन्त्रों पर उनका भाष्य भी मैंने पढ़ा। वस, इसके बाद अनेक कारणवशा अगे मैं नहीं जा सका।

परन्तु इतना पढ़कर स्वामी जी के मूलभिद्वातों से कुछ परिचय हुआ। उनकी व्याख्यान शैली और उनका ओजस्वी व्यक्तित्व का भी कुछ ज्ञान हुआ।

मैं उन लोगों में हूँ जो आर्यसमाजी न होकर भी मानते हैं कि ऋषि दयानन्द जी ने भारत की बड़ी सेवा की है। अगर कोई मुझसे पूछे कि क्या सेवा की है तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा—

स्वामी जी के समय में भारत की बशा करीब २ वही थी जा इस समय भी है। मैं यह नहीं कहता कि इस समय कोई भा मेद नहीं है। स्वल्प मेद तो अत्रश्य है परन्तु बहुत कम जैसे उस समय में जैसे ही आज भी यह देखा जा रहा है कि पुरानी बातों पर, चहे वे अच्छी हो या बुरी, छोटी हों या बड़ी जनता का अन्धविरवास है। जनता का यह विरवास है कि जो जो आचार अपनी अपनी जाति

में, या उपजाति में, या अपने अपने कुल में इस समय चल रहे हैं वे ही हमेशा से रहे हैं। वेदों में और शास्त्रों में वही का वर्णन और विधि है। उनमें किसी भी आचार का त्याग करना ऋषियों की आज्ञा का उल्लंघन करना है। भारत में जिस देश में जिस जाति में जो आचार इस समय प्रचलित हैं, चाहे वे आचार परस्पर विरुद्ध भी हों, उस देश और उस जाति के लिए सदा से वे ही आचार रहे हैं। और प्रत्येक का यही धर्म है कि उन आचारों का सर्वोत्तमना पालन करता रहे। जैसे उत्तर भारत की जनता का पूरा विश्वास है कि मातुल सुता से विवाह वेदों में और शास्त्रों में निषिद्ध है, वैसे ही दक्षिण भारत की जनता का पूरा विश्वास है कि यह प्रथा शास्त्रों में निषिद्ध नहीं है। विवाह की बात तो बड़ी है छोटी सी छोटी बातों में भी जनता का यही विचार था। इसका फल यह निकला कि भारत में भिन्न भिन्न प्रान्तों में जो बालविवाह, अस्पृश्यता आदि हानिकारक आचार प्रचलित थे उनका नाश करना, उनके स्थान पर नये और अच्छे आचारों को स्थापित करना एक बहुत कठिन काम हो गया, जिस के करने और कराने में जनता का द्वेष पैदा हो जाता है।

श्वामी दयानन्द जी ने वेदों को और शास्त्रों को पढ़कर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से यह निश्चित किया कि मौलिक वैदिक धर्म, मौलिक आर्य सभ्यता और आर्य संस्कृति का क्या स्वरूप था और इस रूप का कैसे क्रमशः परिवर्तन हुआ, यहाँ तक कि इस मौलिक स्वरूप को लोग विलकुल भूल बैठे थे। सत्यार्थप्रकाश में इसी मौलिक वैदिक धर्म का प्रतिपादन है।

फिर यह प्रश्न उठा कि यह धर्म किसके लिए है। धर्म दो प्रकार का है। साधारण धर्म और

विशेष धर्म। धर्म का यह विभाग भारत में बहुत दिन से चला आ रहा है। साधारण धर्म मनुष्य मात्र के लिए है और विशेष धर्म प्रत्येक वर्ण और जाति के लिए। परिस्थिति के अनुसार कभी विशेष धर्म का प्रधान्य रहत है, कभी साधारण धर्म का। भारत में इन दोनों में स्वर्ण हमेशा से रही। साधारण धर्मों में सबसे बड़ा बौद्ध धर्म था। हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म में स्वर्णोद्धारों वर्ष चलती रही। अन्त में हिंदू धर्म की विजय हुई और बौद्ध धर्म हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया गया। परन्तु हिन्दुस्तान से बाहर बौद्ध धर्म ने बड़ी विजय प्राप्त की। तिब्बत, चीन, जापान, ब्रह्मा, सुद्ध, लंक, इत्यादि अनेक देशों में अब भी बौद्ध धर्म का बड़ा प्रभाव है। परन्तु हिन्दुस्तान में, जो उस धर्म का जन्म स्थान था उसका कुछ भी प्रभाव नहीं रहा। यहाँ सेकड़ों वर्षों से विशेष धर्मों का पूरा साम्राज्य रहा है।

विशेष धर्म वर्ण और जाति के अनुसार भिन्न रहता है। विशेष धर्म का लक्षण ही यही है। किसी जाति में जन्म और विशेष धर्म से सम्बन्ध हमेशा घनिष्ठ रहता है। जिस देश में विशेष धर्मों का राज्य रहता है उस देश में एक बात पैदा हो जाती है जो उस देश के लिए अच्छी नहीं है। वह यही है कि लोग जो कुछ करते हैं, जिस पदार्थ या आचार या संस्कृति या सभ्यता को उन्नत करते हैं, मानव जाति के लिए नहीं उत्पन्न करते हैं परन्तु अपने वर्ण या जाति के लिए। सारे हिन्दुस्तान में एक दृष्टि बंधाने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। प्रत्येक प्रान्त में बही देखा जाता है कि प्रत्येक जाति के लोग अपने सभी आचारों को, सभी धर्मों को वेध भूषा तक को अपनी ही जाति के लिए बना हुआ समझते, हैं मनुष्य मात्र के लिए नहीं। जब कोई हिन्दुस्तानी बिलायत जाता है और वहाँ के अन्य लोगों की तरह बिलायती वेधभूषा पहनता है तो वधर के

लोगों को उनमें कोई आश्चर्य नहीं मालूम होता है। उसका देख कर कोई नहीं हँसता है। हिन्दुस्ताना का यह काम उबर के लोगो का स्वाभाविक प्रतीत होता है। क्या ? इसलिये कि वंश के लोग समझते हैं कि पारचात्य सभ्यता मनुष्य मात्र के लिए अच्छी है। उनके लिए पारचात्य सभ्यता, अर्थात् किस्तु धर्म, पारचार्य विज्ञान, पारचात्य शिक्षा प्रणाली पारचात्य वैषभूवा, और भा जो कुछ पारचात्य सभ्यता में अन्तर्गत है वह सब सिर्फ पारचात्य जनता के लिये ही नहीं परन्तु मनुष्यमात्र के लिए अच्छा है। इसके विपरीत कोई पारचात्य माहला हिन्दुस्तान में जाकर साक्षित्री की सुन्दरता को देख कर अगर खुद साड़ी पहनना प्रारम्भ कर तो पहले पहिले हम हिन्दुस्तानियों को ही आश्चर्य होता है। आश्चर्य क्या, बहुत लोग हँस बैठते हैं। उनका गूढ विचार यही है कि यह सब हम लागे के लिए बनाया गया। विदेशी लोग हमारे आचारों को जब अपनाते हैं तब अनुचित काम करते हैं। विदेशी लोग क्या ? दक्षिण में जाकर किसी ब्राह्मणी से कहिये कि कोई अत्राहण जाति की स्त्री अपनी साड़ी को ब्राह्मणिया की तरह पहनती है ? और तब देखिये वह क्या कहती है। यह बात उसको कभी नहीं पसन्द आयगी। वह उसका अत्याचार समझगी। उनकी दृष्टि में साड़ी पहनने की वह रीति खास ब्राह्मणियों के लिये है। यह एक छोटा सा उदाहरण है परन्तु यह तत्त्व सारे जीवन में फैला हुआ है। यहाँ विशेष धर्म का साम्राज्य कहलाता है।

इस का पुरा परिणाम यह हुआ कि दुनिया को देने के लिये भारत के हाथ में कुछ नहीं था। एक तरफ यह हाल और दूसरी तरफ दुनिया के लोग अपना २ चीज लेकर यहाँ आये भारत वासियों को देने के लिये वे उन चीजों का विशेष धर्म नहीं समझते थे। इस्लाम का जन्म हुआ और धर्म के परन्तु धर्मियों ने इस्लाम का आरबिया का धर्म कभी नहीं समझा। उन्होंने उसका मनुष्यमात्र का धर्म समझा। किन्तु मतावलम्बिया ने भा यही किया। नबीजा यह हुआ कि ऋषि दयानन्द जी के समय भारत की एक विचित्र दशा हो रही थी। विदेशी धर्म और सभ्यता का भारत में खूब प्रचार हो रहा था और इसके ब लो भारतवासी विदेशियों को कुछ भी नहीं दे रहे थे। स्वामी जी ने देखा कि इस से भारत के लिये अमान और हानि के सिवाय और कुछ नहीं हो सका।

इसी लिये उन्होंने अपने गम्भीर स्वर से सुसुद्धाचित किया कि वह मौलिक वैदिक धर्म जिसको उन्होंने वदों के श्रवण, मनन, और निर्विध्यासन से खोज निकाला था, वह मनुष्यमात्र के लिये है।

दुनिया में जो कोई उसको आत्मसात् करना चाहे कर सकता है। पूरी श्रद्धा से जो उसका आत्मसात् करे वही आर्य है, चाहे उसका जन्म किसी भी जाति में या वर्ग में या देश में या काल में हुआ हो।

ऋषि दयानन्द जी ने मौलिक वैदिक आर्य धर्म को बाद को आये मल्लों से सशोधित किया और उसका मनुष्य जाति के लिये भारत की तरफ से प्रदान किया। यहाँ भारत की सेवा उन्होंने की। यह बहुत बड़ासेवा है।



शाकरी व्रत

[ले०—श्री बासुदेव शरण जी अग्रवाल एम० ए०,]



[आप पुरा तत्त्व और प्राचीन भारतीय इतिहासके यशस्वी लेखक हैं। वैदिक साहित्य के विषयों पर आपके लेख गवेषणा पूर्ण एवं मनन योग्य होते हैं।]

—सम्पदक

प्रगतु लेख में विचाराशील लेखक ने वैदिक 'शाकरी व्रत' की बड़ी मनोहारिणी एवं सामयिक सप्रमाण मौलिक व्याख्या की है। हम चाहते हैं कि आर्य माताएं इसके भाव को भली-भांति ग्रहण करें।



भिल गृह्यसूत्र (३।२।७-६)

मे एक उल्लेख है कि प्राचीन काल में माताएं अपने बच्चों को दूध पिलाते समय उस अमृत क्षीर के साथ इस मंगलात्मक आशीर्वाद का पान कराती थीं कि हे पुत्रो! तुम इस जीवन में शाकरी व्रत के पारगामी बनो—

अथाहि रौरुकि ब्राह्मणं भवति। कुमारान् ह स्म वै मातर पाययमाना आहुः—'शाकरीणां पुत्रका व्रतं पारयिष्यन्वो भवतेति।'।

यह किसी प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है जो इस समय अप्राप्य है और जिसका नाम रौरुकि ब्राह्मण था। रौरुक नगर प्राचीन सीवौर देश की, जिसे आजकल सिन्ध कहते हैं, राजधानी थी। रौरुक का वर्तमान नाम रोड़ी है जो सक्कर के पास सिन्ध के तट पर है। सम्भवत इसी सीमान्त देश के एक ऋषि प्रवर ने इस शाकरी व्रत के माहात्म्य को भली प्रकार समझ कर राष्ट्रीय कुमारों के जीवन के साथ

उसके विशिष्ट सम्बन्ध का उपदेश दिया था। जिस राष्ट्र में माताएं कुमारों के जीवन सूत्र का प्रारम्भ शाकरी मंत्रों से करें, जहां स्तनपान के साथही शाकरी भावना अंतःप्रसूत हो, वहां की उदयात्मक शक्ति का केवल अनुमान किया जा सकता है। जीवन मूल मंगल-मंत्र का रहस्य शाकरी व्रत है।

यदि यह पूछा जाय कि मानवी जीवन क्या है? तो इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर यह कह कर दिया जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य का जीवन 'डुकृष्' करणे, धातु के अनन्त रूपों का विकास है। मनुष्य जो कर्म करता है उसी के अनुरूप अपने जीवन को ढालने में समर्थ होता है। कर्म करने की क्षमता जीवन का अत्यन्त धन है। इस अनन्त भंडार में से प्रत्येक मनुष्य जो चाहे प्राप्त कर सकता है।

'डुकृष् करणे' या 'करना' धातु का मेरुदण्ड 'शक्' या 'सकना' धातु है। मनुष्य की शक्ति उसके कर्म की सनातनी रीढ़ है। शक्ति की नींव पर जीवन का प्रासाद खड़ा किया जाता है। इस

जितना कर 'सकते' हैं वही हमारे अधिकार की कवौटी है। शक्त धातु के जिन लकारों का हमारे जीवन में पारायण हो पाता है वेही हमारी गति के ध्रुव मापदण्ड बनते हैं। जीवन के शान्त सुहृत्तों में जब हम सोचते हैं—

कृतो स्मर, कृतस्मर, अर्थान् अपने संकल्प का स्मरण करो और अपने कर्म से उसका मिलान करो, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि 'सकना' ही 'करना' है। हमारे दृढ़ संकल्प की शक्ति बाहु में अबतीर्ण होकर हमें कर्म की ओर प्रेरित करती है। शक्ति विहीन संकल्प कोरे कागज की तरह है। कर्म शक्ति या शाकरी के अंकों से लिखा हुआ कागज जीवन में दर्शनी हुई की तरह काम देता है।

वह जीवन—लक्ष्य को वीर के अमोघ बाण की तरह बेध देता है। इस विरव में जहाँ भी देखो शाकवरी व्रत का प्रकाश है। प्रजापति अपने अनन्त ईक्षण तप और श्रम से सृष्टि बनाने में समर्थ हुए यही उनका शाकवरी व्रत था—

यदिहमालोकान्प्रजापति. सृष्ट्रेऽं सर्वमशक्नो-
यदिदं किञ्च तच्छक्यवीऽ भगंस्तच्छकवरीणां शकव-
रीस्वन्। (ऐतरेय ब्रा० ५।७)

अर्थान् प्रजापति ने इन लोकों को बनाकर यहाँ जो कुछ भी है उस सबको शक्ति समन्वित किया, यही शक्ति शाकरी हुई। प्रजापति के 'सकने' स्रजन (सामर्थ्य) में ही शाकरी का शाकरीपन है।

कौशीतकी ब्राह्मण ने कहा है कि इन्द्र ने जिस शक्ति से वृत्रासुर का बध किया उसका नाम शाकवरी है—

एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकदन्तु० तद्यदाभिर्बृत्रम-
शकदन्तु० तस्माच्छक्यवीः ॥ कौ० २३।२ ॥

(एक ओर आसुरी शक्ति का प्रतीक वृत्र है और दूसरी ओरदेवी शक्ति के प्रतिनिधि इन्द्र हैं।)

देवों और असुरों के शाश्वत सांघम में जो विशाल संचित शक्ति से देवता असुरों पर विजय पाते रहे हैं उस शक्ति का नाम शाकरी है। (जब तक विश्व-नियन्ता के सर्वोत्तमिभावी नियमों के अनुकूल सृष्टि के कार्यों का संचालन होता रहेगा तब तक आधि-दैविक आध्यात्मिक और आधिभौतिक क्षेत्रों में अवश्य ही असुरों को शाकरी शक्ति के अनुशासन में रहना पड़ेगा। ताण्डय ब्राह्मण में स्पष्ट कहा है कि इन्द्र के द्वारा वृत्रासुर की पराजय पाप की पराजय है। जितना शीघ्र हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शक्ति के अवलम्बन से पाप को पराजित कर देते हैं उतने ही वेग से हम जीवन के श्रेष्ठ कल्याणों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं—)

एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन् चिप्रं वा एताभि.

पाप्मानं हन्ति चिप्रं वस्तीयान् भवति।

(ताण्ड्य० १२।१३।२३)

इन्द्र का वज्र शाकरी शक्ति से बना हुआ है इसलिए उसे प्राचीन परिभाषा में शाकुर कहा गया है।

शाकरो वज्र। (द्वै० २।१।५।११) राष्ट्र की रक्षण शक्ति शाकरी का ही सुन्दर रूप है। ब्राह्मणों का ब्रह्मवर्चस तेज भी शाकरी शक्ति पर निर्भर है। वैश्यों की श्री और शूद्रों की पशु संपृद्धि तभी तक सुरक्षित हैं जबतक राष्ट्र में शाकरी मन्त्रों का महानाद जीवित रहता है। इस दृष्टि से ब्राह्मण कारणों ने निम्न लिखित परिभाषाओं का उल्लेख किया है—

ब्रह्म शाक्यं (ताण्ड्य० १६।५।१८।)

वज्र शाक्यं (ताण्ड्य० १२।१३।१४।)

श्री. शाक्यं (ताण्ड्य० १३।२।२।)

पशव शाक्यं (ताण्ड्य० १३।१।३।)

गोमिल गृह्य सूत्र में यह भी कहा गया है कि प्राचीन काल में ब्रह्मचारी वेदाध्ययन समाप्त करने के बाद कुछ काल पर्यन्त विरोध रूपसे शाक्यरी व्रत की आराधना के लिए आचार्य के पास ठहर जाते थे। विद्याध्ययन के द्वारा जो कुछ उन्हें उपलब्ध हुआ या इसके इस समय में अपनी सकल्प शक्ति के बल से जीवन के लिए उपयोगी बनते थे।

ऋषि दयानन्द ने भी दण्डी विरजानम्ब से दीक्षा लेने के परवान् और प्रचार कार्य से पूर्व, वर्षों तक गंगातट पर भ्रमण करते हुए इसी शक्ति को जागृत एवं समृद्ध किया था। ऐतरेय आरण्यक में भी इनका पाठ है।

इस शाकरी व्रत की अवधि में विरोध रूप से महानाम्नी ऋचाओं का अध्ययन और पारायण करना पड़ता था। ये दस ऋचाएँ सामवेद के अन्तर्गत पूर्वार्चिक के बाद और उत्तरार्चिक के पहले दी गई हैं। इनका गान महानाम्नी सम कहलाता था और शाकरी छन्द में होने के कारण इन्हीं को शाकरी भी कहते थे। किसी समय इन मन्त्रों की महिमा गायत्री मन्त्र के समान मानी जाती थी। गौतम और बौधायन के धर्म सूत्रों में इनको परम पावन कहा गया है। जिस समय राष्ट्र में वैदिक शिक्षादर्श जीवित थे उस समय माताएँ अपने बच्चों को स्तन्यपान कराते समय ये आशीर्वाद देती थीं कि हे पुत्रो ! तुम य गविधि ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करके विद्याध्ययन करते हुए अन्त में महानाम्नी साम पर्यंत उच्च शिक्षा में पारङ्गत बनो। ऐतरेय ब्राह्मण में स्पष्ट कहा है कि अपने आत्मा को महान् बनाने का प्रयोग महानाम्नी ऋचाएँ हैं।

इन्द्रो वा एताभिर्महानाम्नात्मान निरमिमीत तम्मान्महानाम्न्य । (ऐत० ५ । ७ ।)

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ के माध्यन्दिन सवन में महानाम्नी ऋचाओं का गान किया जाना

चाहिए। इसका अभिप्राय यही है कि मनुष्य का यौवन काल शक्ति सञ्चय और उसकी अभिव्यक्ति का सर्वोत्तमसमय है। महानाम्नी ऋचाओं में जिस शक्ति शाली इन्द्र का आवाहन किया जाता है उस बज्रधारी देव की वीर्य शाली महिमा का जीवन में साक्षात्कार करनेवाले नवयुवक जिस राष्ट्र और समाज में जन्म लेते हैं वह समाज कृतकृत्य हो जाता है। जहां आलस्य और मूर्च्छा रूपी घोर पापों को पैरों तले रौंद कर प्रजाएँ सोते से उठ खड़ी होती हैं वह राष्ट्र इन्द्र की तरह ही महान् बन जाता है। उस समय और रथेष्ट युवक इन्द्र का आवाहन करते हुये कहते हैं— देवों में बलिष्ठ और महिष्ठ इन्द्र ! तुम पूर्वजों की शक्तियों के अधिपति हो। हम अपने नव जागरण में उनका पुनर्दर्शन चाहते हैं।

अतएव हे वज्रिन ! तुम्हारे अपराजित तेज को श्रद्धा के साथ आह्वान है। तुम्हारी अवाधित गति हमारे रथ चक्रों में निनादित हो। हे शूर ! अपनी समन्त रक्षण शक्ति से हमारी रक्षा करो। अश्वयुध्य और रक्षा के लिए तुम्हारा सामन्त्रिय हमें प्राप्त हो। हे वमुपति ! हमको सब प्रकार से पूर्ण करो, क्योंकि जो भरे पूरे हैं उन्हीं की ससार में प्रशंसा है। हे अद्वितीय सखा ! तुम्हारी विजय चिरजीवी हो ” जिस समय महानाम्नी ऋचाओं के उत्कर्ष-शाली स्वर गुञ्जे लगते हैं उस समय सब प्रजाएँ बलका अनुमोदन करती हुई पुकार उठती हैं—

एवाहोव । एवाहोव । एवा ह्यग्ने । एवाहीन्द्र । एवाहिपूषन् । एवाहिदेवा ॥

अर्थात् हे इन्द्र, अग्नि पूषा और हे देव गण । ऐसा ही होगा, अवश्यमेव ऐसा होगा।

हमारे कर्म की शक्ति से राष्ट्र के जीवन की परिधि उत्तरोत्तर विस्तार को प्राप्त होगी और हमारे दृढ सकल्पों से सिंचित यह महावृक्ष युग-युगान्त तक जीवन लाभ करेगा।

ऋषि ऋण का हिसाब करो

(ले०—श्री रामगोपालजी आर्य प्रधान मन्नाथ भजन)

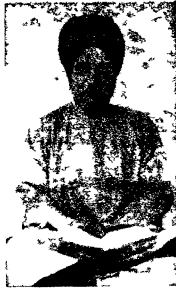


रत वर्ष का सबसे बड़ा पर्व दीपावली आ गया। इस त्योहार पर गुजरात, काठियावाड़, महाराष्ट्र, बम्बई का सम्बन्ध परिवर्तन होता है गुजरात का सम्बन्ध १९६७ समाप्त होकर १९६८ आरम्भ हो जायगा श्री दयानन्दावद् १९७ समाप्त होकर १९८ लग जायगा। भारतवर्ष के ६५ फीसदी व्यापारी अपने लेन देन का हिसाब साफ करेंगे। श्रद्ध और धनी पुरुष हैं वह लेने की पीछे, देने की चिन्ता पहन करते हैं इसी से श्रेष्ठ धनी और मानी कहलाते हैं। बाजार में उनकी धाक जमी रहती है। बैंक सरकार और बड़े बड़े राज घरानों से कम सूद पर जितना ऋण उनको जब चाहे मिल जाता है कारण वह देने के बड़े मत्बर हैं और अपने ऊपर चढ़े हुए ऋण को दिन और रात्रि अपने सिर पर एक बोझ समझते और दृष्टि के लक्ष्य में रखते हैं।

हम आर्यसमाजी वैदिकधर्म जिन्होंने परम गुरु दश नु दयानन्द का ऋण देन है इस दीपावली पर हिसाब करले और (कुल तो कोई न दे नदी स्रना किन्तु) अशशा जितना अधिक से अधिक हो सके दे दें शेष के लिये क्षमा माँगनी चाहिये और देने का उद्यत रहना चाहिये।

क्या हमने ऋषि के लिए कुछ त्याग किया है? क्या हमने अपने जीवन के उत्थान के लिए कुछ तप किया है? क्या हमने अपनी गाड़ी कमाई कमाकर वैदिक धर्म के लिए शुद्ध भाव और धर्मनिष्ठा से कुछ दान किया है? क्या हमने ठीक प्रतिज्ञाके अनुसार शताश मासिक आर्यसमाज को दिया है? दीपावली आई ईमानदारी से हिसाब करलो।

हमने क्यापक ब्रह्म के अनेक गीत गाये न्याय के स्वाद्यखण्ड के अनेक सूत्र पढ़े पढ़ाये अनेक मूर्ति पूजा पुराण कुरान के खण्डन में बहुत दिन गँबीये क्या कभी हृदय से हरिगुण गाये? महर्षि जगद्



गुरु को कितना अपनाया, परस्पर कितना प्रेम बढ़ाया दीपावली आई हिसाब करलो।

क्या प्रथम नियम से ब्रह्म विद्या को हम समझे? द्वितीय नियम से बन्दनीय जगद् बन्धु परमात्मा का लक्षण स्वरूप समझे? क्या तृतीय नियम से वेद की महिमा उसके पठन पाठन ज्ञान भण्डार को हमने स्मरण मनन किया? क्या चतुर्थ नियम से सत्य और असत्य के ग्रहण तथा त्याग के लिए उद्यत हुये? क्या पंचम नियम से धर्म अर्थोत् सत्य और असत्य के विचारसे जीवन को पवित्र किया? क्या षष्ठ नियम को पवित्र मात्रा से प्रभा वित होकर ससार के उपकार में अपनी भावनाओं का लगाया? क्या सप्तम नियम का मनुष्य के प्रति या जीव मात्र के प्रति अपने जीवन को लगाकर प्रेम से बोंधा? क्या अष्टम नियम के अनुसार मूर्खता निरक्षरता को भगाकर विद्या की वृद्धि करी कराई? क्या नवम नियम के अनुसार जीवमात्र की या मनुष्य मात्र की उन्नति और साम्यवाद का उप देश ग्रहण किया? क्या दसों नियम के अनुसार अपने आपको समाज के बन्धन से बाँध कर स्व तन्त्रता का सच्चा पाठ हमने पढ़ा? दीपावली आई हिसाब करलो।

—: दीपावली का सन्देश :—

[ले०—श्री देशभक्त कुंवर चांदकरण जी शारदा प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान मालवा]



श्री शारदा जी आर्यजगत् और राजस्थान के तेजस्वी कार्यकर्ता हैं। आपकी बाणी और लेखनों दोनों में ही समान-रूप से ओजस्विता का पर्याप्त पुट रहता है।—सम्पादक]

इस लेख में लेखक महोदय ने इस बात को दर्शाया है कि हमें राष्ट्र रक्षा के लिए बल संचित करना चाहिए।



ज दीपावली का शुभ दिवस है। आज हमारे हृदय में स्मृतियों की दीपावली जल रही है। इस पवित्र त्योहार को हम अतीत युग से मनाते आ रहे हैं। इस त्योहार को हमने उस समय भी

मनाया था, जबकि हमारी पवित्र भारत भूमि में स्थान स्थान पर ऋषियों और मुनियों के आश्रम थे। जब सुकुमार धालकों को ब्रह्मचर्य की कठोर भट्टी में तपाकर विमल निर्दोष कुन्दन की भांति देदीप्यमान करके दीक्षित किया जाता था। जब प्रातःकाल यज्ञ हवन के साथ आत्मा परमात्मादि गहन तत्त्वों का विवेचन होता था। उस पुनीत समय में हमारे आश्रमों में शिल्प कला और व्यापार भी सिखाया जाता था। परन्तु वह व्यापार आज कलके कलिकाल का व्यापार नहीं था। उस समय वह व्यापार नहीं था। उस समय वेद व्यापार सिखाया जाता था जिसे जागृति और प्रेम कहते हैं हमें सत्ता का भाव बतलाया जाता था, ज्ञान का मूल बताया जाता था धर्म की तोल बताई जाती थी। और जीवन भर आध्यत्मिक व्यापार सिखाया जाता था हम इतिहास और समय का खाता खोलते थे और अपना तज्जारी में आज के दिन देखते थे कि

कि हम क्या खो चुके हैं और कितना प्राप्त कर चुके हैं! अपने व्यापार की नीति को शुद्ध कर के संकुचितता के बांट बदल देते थे तथा हमारा धर्म कंगालों और निर्धनों के लिए उमड़ता था। हम अमरता का संदेश लोगों को सुनाते थे और निराशा की अन्धकार मय रात्रि को दूर करके अपनी चाँदनी की शुभ्र शीतल ज्योति की वर्षा संसार पर करते थे। दीपावली की अभावस्था की घनघोर अन्धकारमय रात्रि में सारे संसार को अलौकिक ब्रह्म तेज के दर्शन कराने के लिए हम आज के पवित्र पर्व को दीपकों से देदीप्यमान करते थे।

किन्तु आज दीपावली के दिन मैं ऋषि दयानन्द के आगमन से पूर्वकाल की स्मृतियों में, विधवाओं की आर्हे, दलितों की पुकार, आततायियों के अत्याचार, धर्म के नाम पर पापाचार, अन्धविश्वासों का संसार, सत्य का निरस्कार, स्वार्थ का भण्डार और विश्वव्यापी नर संहार को देख रहा हूँ। आज दीप शिक्षा के दिव्यालोक में भारतीय नवयुगक मुक्तसे पूछते हैं कि उक्त समस्त अन्याचार का आप क्या प्रतीकार बताते हैं? खून से लथपथ संसार में युवकों के जीवन मार्ग को आप किस क्रान्ति की ओर ले जाना चाहते हैं? हिटलर, चार्लिल और रूजवेल्ट की

एक एक दिन में राष्ट्रों का कायापलट कर देने वाली शक्ति के समस्त किस प्रकार आर्यसमाज द्वारा ससार की बाह्य और आन्तरिक शत्रुता से रक्षा हो सकती है ?

हमारा इन आर्यवीरों को यही उत्तर है कि आप आर्यवीर दत्ता द्वारा इस शक्ति युग में शक्ति सचय करो और लोगों को समझाओ कि हमारी शक्ति जर्मनों के समान पराधीन बनाने के लिए नहीं है बल्कि हमारी शक्ति वैदिक सिद्धान्तानुसार दुखियों के दुख मिटाने, संसार में शक्ति स्थापन करने और दुर्घों का दलन करने के लिये सचिंत की जा रही है ।

इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर महर्षि दयानन्द ने हमें चक्रवर्ती साम्राज्य प्राप्त करने के लिये उत्साहित किया था । उन्होंने अकमल्य लोगो पर कर्म योग की और अधपरम्परा वालों पर तक की और पाखण्ड पर सत्य की विजय वैजयन्ती फहराई थी । आज भी वह महान् आत्मा युवकों के हृदय में बलिदान की पुण्य भावना जगा रहा है । और क्रान्तिकारियों के लिये आदर्श बना हुआ है ।

हिन्दुओं का मुसलमानों के साम्राज्य विलासता के कारण नाश को प्राप्त हुए ।

महर्षि दयानन्द ब्रह्मचर्य और सदाचार का प्रचार करके इस विलासता को जड़भूल से उखाड़ना चाहते थे । अतः दीपावली का मेरा यही शुभ सन्देश है कि आज के पवित्र दिवस से क्षात्रधर्म जागृत करो

और ब्रह्मचर्य युक्त त्याग और तप का जीवन बिताने का व्रत लो । सर्व साधारण भारतीय जनता में आवश्यक शस्त्रास्त्र की शिक्षा देना और आवश्यकता होने पर अपने देश की रक्षा के लिये तैय्यार रहने का भाव उत्पन्न करो । अन्य देशवासियों के समान हमको अपना राज्पुन प्राप्त करने की भावना और तत्परता को लाने की अत्यन्त आवश्यकता है । इस समय सारे ससार को अपने भण्ड ने नीचे लाने के लिये आर्यों के सम्मुख विस्तृत कार्य क्षेत्र पडा है । परमात्मा करे कि ऋषि दयानन्द के उद्देश्य तथा उनकी आन्तरिक कामना को पूर्ण करने के लिये भारतीय नवयुवकों के हृदय में आर्यों के चक्रवर्ती साम्राज्य पुनः स्थापित करने की उत्तेजना उत्पन्न हो । जससे वीर प्रसविनी भारत माता का अर्शवाद् लेकर हम समय ससार में सुख शान्ति फेला सकें । महर्षि दयानन्द ही इस युग में प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने न केवल हमें भारत में आर्य राज्य स्थापित करने का नूतन दिव्य सन्देश दिया बल्कि सावभौम चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने का आदेश दिया । अतः ऋषि उत्सव मनाने का महत्त्व इसी में है कि हम सार्वभौम चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य स्थापित करने का व्रत लें । हमें आज उस आदित्य स्वरूप, महर्षि के जीवन से अपने हृदयों को फिर से प्रभावित करना चाहिये । हमारा कार्य क्षेत्र और ध्येय हमारे सामने है । ओश्म का भण्ड हाथ में लेकर साहस, ब्रह्मा और दृढ सकल्प के साथ आगे बढ़े और ससारको पुनः गदिक निनाद से भङ्ग कर दें ।



आर्यसदाचार का मानदंड

(ले०—भी प० रामदत्तजी शुक्ल एम० ए० ऐडवोकेट)



वि दयानन्द की भारतीयों के लिए एक श्रेष्ठ देन आर्य शब्द है। सहस्रवर्षात्मक दासता के कारण भारतीय अपना निजी नाम आर्य भूल चुके थे और हिंदू कहलाने महा आत्मगौरव अनुभव करते थे। नामकी विस्मृति के कारण आर्यजातीयता

आर्यधर्म, आर्यसंस्कृति, आर्यसभ्यता, ए० आर्य आचारविचार भी प्रायः भूल रहे थे। इस प्रकार अपना सबकुछ त्यागने और विदेशियों का अध्वानुकरण करनेवाले भारतीयों को पुनः आर्यनाम देकर उनकी दृष्टि आर्यसदाचार की ओर आकृष्ट करने का ऋषिने प्रयास किया। भगवान् मनु के द्वारा प्रतिपादित श्रुति, स्मृति, सदाचार और आत्मप्रियता को ऋषि दयानन्द ने भी धर्म का मानदंड प्रतिपादित किया। तदनुसार उन्होंने वेद को स्वतः प्रमाण माना, स्मृतियों को वेदानुकूल होने से प्रमाण और इन तीनों के अनुकूल होने से आत्मप्रियता को स्वीकरणीय समझा।

धर्मज्ञान के स्पष्ट चार मापक जानते हुये भी सर्वसाधारण सदा अपने कर्तव्याकतव्य विवेचन में सदाचार को ही सबसे अधिक महत्व देते रहे हैं। इस तत्व को वैदिक संस्कृति प्रलिप्तपक ऋषियों ने भलीभाँति हृदयगम किया था। इस्तीखिबे आचार्य आपस्तम्ब ने अपने धर्मसूत्र के अवसान

में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सूत्र देतेहुये इस विषय का प्रतपादन किया है। सूत्र इस प्रकार है।

सर्वाजनपदेश्वेकान्तसमाहितमार्याणा वृत्त सम्यग्निनाताना वृद्धानामात्मवतामलोलुपानामदात्मिकानां वृत्तसादृश्य भजेत, एवमुभी लोकावभिजयति। ११।२६।१५।

अर्थात् समस्त देशों में सभ्यक विनीत, अनुभवी वृद्ध, अत्मज्ञ, अलोलुप अदात्मिक आर्यों के असान्द्रध आचरण क अनुसार व्यवहार करना चाहिये। ऐसा करने से दोनों लोकों को जीतता है। अर्थात् अभ्युदय और निश्रयस दोनों प्रकार की सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होता है।

उपर्युक्त सदाचार के मानदंड को दृष्टि में रखते हुये आवश्यक गुणों से युक्त व्यक्तियों से

जो मानवसमाज या राष्ट्र बनता है उसमें प्रगति और श्रोज का स्वभावतः आधान बन जाता है। क्या अपने समष्टि जीवन निर्माण का हम इस उत्कृष्ट सदाचार के अंश का अंग बनकर सफल हो सकते हैं? जिस मात्रा में हम सदाचार के आर्ष मानद्वानुरूप अपना स्वरूप बनाने में सफल होंगे, उसी मात्रा में हमारा समाज आद्यत्र के विशुद्ध तेज से तेजस्वी और वचस्वा बनकर

वक्तमन विद्यासाधन अज्ञान-धार में परिभ्रष्ट मानवजाति को लिये दीपमालिका के प्रदूषण की भाँति निःसंशय स्वयं व्यातिष्मान् बनकर श्रुतिमनुष्यजाति का कल्याण साधन किया, उसी प्रकार हम भी स्वयं दीपक बनकर वेदज्ञानज्योति से एतन्नरपुन पथच्युत और दुरवस्थाग्रस्त संसार का आयुष्य पर दृढता के साथ अपसर करन में सफल हो सकेंगे। एवमस्तु



श्री पं० विशम्भरनथ जी तिवरां कानपुर

आप आर्यसमाज के उत्साहो कार्यकर्ता एवं आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० के सहायक कोषाध्यक्ष हैं। 'इम्पीरियल बैंक' की सचिव समिति के परचात आपने आजीवन आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० की सेवा रक्षणा का स्वरूप किया है।

मनुस्मृति के सम्बन्ध में जर्मनी के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता नीत्से के उद्गार।

यदि मनुष्य मनुष्यी मानवता लानी हो तो उस मनुष्य पर चलना होगा। जब मैं मनुस्मृति पढ़ता हूँ तो मेरी निचारधारा बदल जाता है। सार ग्रंथ में सूर्य जैसा प्रकाश है। उसमें मनुष्य की प्रति वैज्ञानिक तत्वों पर विश्लेषण किया गया है। इस ग्रंथ में स्त्रियों के प्रति जो निरचन किया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मानव व्यवस्था की यही विश्व भर में एकमात्र सत्तम पुस्तक है। इसी के द्वारा सच्चा जीवन लाभ हो सकता है।

आर्यमित्र का देश और विदेशों में विशेष प्रचार है। विज्ञापन देकर लाभ उठाइये।

सम्पादकीय:—

कृतज्ञता-प्रकाशन



र्यामित्र के समस्त कृपालु लेखकों को यह बात सुविदित है कि प्रतिवर्ष उनकी अकारण अनुकम्पा से आर्यामित्र का ऋष्यक दांपमालिका के पावन पर्व पर उपादेय एवमुपाध्य विषयों के साथ प्रकाशित

होता रहा है। अपनी आयु के गत ४४ वर्षों से आर्यामित्र ने सर्वसाधारण जनता और विशेषतया आर्य सत्तर की जिस प्रकार सेवा की है, उसका श्रेय बहुत करके उन विद्वान् लेखकों को है कि जो अपने अमूल्य समय में से कुछ आर्यामित्र की आ वृद्धि कलिये निष्कामभाव से लगातार देते रहे हैं। मुख्यत धार्मिक, सांस्कृतिक एव सामाजिक साप्ताहिक पत्र होने के कारण यदि आर्यामित्र दैनिक, अर्द्ध साप्ताहिक और मासिक पत्र पत्रिकाओं के वैशिष्ट्य को अपने कलेवर में न प्रदर्शित कर सका होता तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अनेक कारणों से इस वर्ष सर्वांगपूर्ण विशेषांक प्रकाशित करना कितना दुर्लभ कार्य है, इसको ता वे ही जानते हैं कि जिनका पत्रकला या-मुद्रण कार्य का स्वल्प भी परिचय है। तथापि इस वर्ष सविशेष साहस करके प्रस्तुत ऋष्यक प्रकाशित करने का व्यवस्था की गई। प्रतिवर्ष का भात इस वर्ष भी ऋष्यक में प्रकाशित होने के लिये इतने अधिक लेख तथा कवितायें आई हैं कि यदि उन सबको प्रकाशित किया जा सक्ता ता प्रस्तुत अंक जैसे पूरे दो विशेषांक हो जाते। ऐसी दशा में सार्वत्रिक महगी के कारण विवश होकर हम केवल कतिपय लेख और कविताओं को ही इस अंक में स्थान दे सके हैं। इसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि जा लेख

स्थानाभाव के कारण नहीं प्रकाशित हो सके हैं उनका महत्त्व किसी प्रकार हमारी दृष्टि में न्यून है। बस्तुत हम तो अपने सभी सहृदय लेखकों के उनकी कृपा के लिये चिर आभारी हैं, और जा उपादेय लेख शेष रह गये हैं, उनको भी प्रकाशित करने का भविष्य में प्रबन्ध किया जायगा। खेद है कि इच्छा रहते हुये भी विलम्ब से आने के कारण हम इस अंक में अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं और लेखों को स्थान न दे सके।

आर्यामित्र के ग्राहक, अनुग्राहकों और सहायकों से भी केवल इतना ही निवेदन करना है कि यह पत्र सर्वथा आपका ही है, इसलिये इसका मित्र का दृष्टि से देखने का आप महानुभाव अनुग्रह करते रहे। हम जानते हैं कि पत्र-सम्पादन कार्य इतना जटिल और उत्तरदायित्व पूर्ण है कि इस दुबह धुरा को बहन करनेवाला का न जाने कितने का क्या बातें प्रत्यक्ष अथवा पराक्ष में सुननी पड़ती हैं। तथापि यदि कोई पत्रकार अपने मातृष्क का सबथा प्रकृतिस्थ रखता हुआ लोकापवाद को सहता हुआ अपने पाठका तक परिष्कृत और सबथा उपादेय पाठ्य सामग्री पहुँचाता रहे ता उसका साधारणतया अपने वाय स अस्तुष्ट रहने का कोई कारण नहीं होता है।

आर्यामित्र किस प्रकार आपके लिये हितकारी सिद्ध हो रहा है, इसका निष्पन्न अपने-स्थानों पर आप स्वयं करें। हमारा आश्चित्य तो इतना ही है कि यथाशक्य प्रयत्न करके धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विषया को ग्राह्यरूप से आपके समक्ष प्रस्तुत करते रहे। इस कार्य में सफलता लाभ करने के लिये आपका सहयोग और सहायता सर्वदा आवश्यक है।

आयुर्वेदिक प्रयोगशाला

गुरुकुल वृन्दावन

पूर्ण विश्वास योग्य शास्त्रोक्त पद्धति से निर्मित आयुर्वेदिक

औषधियों का श्रेष्ठतम प्राप्ति स्थान

देखिये— इस विषय में यू० पी० के डाइरेक्टर आफ पब्लिक हेल्थ की क्या सम्मति है—

‘I visited Gurukul and its Ayurvedic Section with the chairman D B Muttra and D M O H I was pleased to see the Ayurvedic methods of preparing medicines and Drugs The institution obtains its supplies of crude drugs from selected places . . . the institution is doing good work and deserves support and help’

A C Banerjee

Director of Public Health U P

—आयुर्वेद के दो सर्वश्रेष्ठ अमर रत्न—

अमृत भस्मातकी

अत्यन्त पौष्टिक, अत्यन्त स्वादिष्ट एव गुणकारी अमृत भस्मातक रसायन है। सब प्रकार की अशक्ति, अस्थिपीडा एव अर्श (बवासीर) पर अत्यन्त लाभदायक, स्त्रियों के श्वेतपदर पर तुरन्त असर दिखाती है।

मूल्य ८) सेर।

च्यवन प्राश

च्यव, पुरानी खाँसी, हृदय की धड़कन और समस्त कफ रोगों को समूल नाश करता है। वृद्धे च्यवन ऋषि ने इसी के सेवन से दुबारा यौवन प्राप्त किया था।

मूल्य ६) सेर।

सब प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियां यहां मिलती हैं।

विस्तृत सूचीपत्र मंगाइये।

आयुर्वेदिक प्रयोगशाला, गुरुकुल वृन्दावन, (मथुरा)

उत्सवों की सफलता कैसे हो ?

क्या आपने कभी सोचा है कि क्यों से धूम धाम के उत्सव करते हुये भी आप के समाज की कलाति क्यों नहीं होती ?

अप वार्षिक उत्सव व्याख्यानों द्वारा जनता का ध्यान स्थान वास्तुनिर्माण कर सकते हैं। परन्तु उस धम धर्यता को बिना साहित्य वितरण के परिपक्व नहीं कर सकते। इत्य पर पूरा प्रभाव डालना तथा हाकाओं को दूर करना पुस्तकों द्वारा ही होगा। इसलिए आप जितना धन उत्सवों पर खर्च करते हैं उसको बर्बाद से दूक उटवाइये और अन्य पुस्तकों की विक्री का प्रयत्न कीजिये।

श्री प० गंग प्रसाद जी उपाध्याय के ट्रैक्ट २६ लाख में भी अधिक छप चुके हैं। इनकी तीन मालाएँ हैं—

ट्रैक्ट प्रथम माला

सूक्त ११ प्रति कार्पे, २) प्रति सेकड़ा १५) प्रति हजार।

१ ईश्वर और उसकी पूजा। २ हमारे बच्चों की शिक्षा। ३ प्राचीन आर्यावर्त। ४ हमारे धर्मशास्त्र ५ हमारा धर्म। ६ धर की देवी। ७ राजा और धर्म। ८ हमारी देवता सैका। ९ हमारे विद्वाने भाई। १० सखी बात। ११ हमारा संगठन। १२ सुसल मानी मत की आलोचना। १३ राम भक्ति का रहस्य। १४ हमारे स्वामी। १५ ईसाई मत की

आलोचना। १६ कुम्भ महात्म्य १७ देवी देवता १८ बार्निंग मूल मुलैया। १९ जिंदा लाशें २० हमारा भोजन। २१ बकिलोद्धार। २२ वैदिक उत्सव २३ हवन विधि। २४ प्रार्थना भजन। २५ वैदिक प्रार्थना। २६ शिववेश। २७ सूरिपूजा। २८ शिवदा २९ आर्य समाज क्या है? ३० शीक रक्षा की नरता। ३१ अक्षरों का प्रश्न। ३२ अक्षर्य। ३३ हमारा बनाने वाला। ३४ संस्कार ३५ आनन्द का ज्ञोत ३६ हिंदुधर्म के साथ विश्वासपात। ३७ स्वामी श्यामन्द की दोभारी मूलें। ३८ हिन्दू जाति का भयंकर धर्म। ३९ मुसलमान भाइयों के सोचने योग्य बातें। ४० कलियुग। ४१ प्ररण। ४२ साधु स्वामी। ४३ जीव क्या है। ४४ गुरु महात्म्य। ४५ पुनर्जन्म। ४६ अज्ञान धर्मकार। ४७ पितृयज्ञ। ४८ लोग क्या कहते हैं। ४९ स्वामी दयानन्द की सुक्तिया। ५० ईश्वर और जीव का सम्बन्ध। ५१ पच०ज्ञ महिमा। ५२ जेदों में ईश्वर का स्वरूप। ५३ यज्ञ पर्वत और जनेऊ। ५४ दलित जातिवा और नया प्रश्न। ५५ धर्म से होनेवाली कल्पित हानिया। ५६ मेढियाचलान। ५७ आर्य समाज की सावजनिकता। ५८ यज्ञ के साधन्य मन्त्र ६० वैदिक त्रैतवाद। ६१ ईसाई मत समीक्षा—या खुदा का बेटा। (न० १) ६२ तुम कौन हो? ६३ तुम्हारी भाषा क्या है? ६४ तुम्हारा धर्म क्या है। ६५ मुदा जलाना चाहिय ६६ शक्ति

नोट—आ उपाध्याय जी की अन्य पुस्तकों तथा कना प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित ग्रंथों के विषय विज्ञाना अंक देखिये।

ट्रैक्ट विभाग आर्यसमाज चौक इलाहाबाद (यू० पी०)

त्रयमित्र-(परिशिष्टाङ्क)

३९०२२२२ १०३५



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

गोपीभक्तिके हृत्कलम्य त्वराय तनुये जेत् ।
विश्वमित्रधुनान्य कुलत्रत पालयिष्यति क ॥

—
मन्पादक—

बाबूराम एम० ए०

दयानन्दप्रद १११

{ इस अङ्क का मूल्य— }

* ओ३धु *



❀ का ❀



वर्ष ३८

{ कार्तिक शुक्ल ४ सं० १९६२ वि० ३१ अक्टूबर १९३५ }

अङ्क ४२

❀ ईश-वन्दना ❀

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छक्रेयं तन्मेराध्यताम् इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।

प्रभु है कर्माधीश आप व्रतपति कहलाते ।
सदा कर्म की रीति नीति दे ज्ञान सिखाते ॥
कर्माधीन जहान वेद ने घोष जनाया ।
कर्म निरत सब काल रहे यह मन मे आया ॥
अब कृपा दृष्टि से शक्ति दें जो वैदिक मत को गहे ।
यह "श्याम" अन्नत को त्याग कर, सदा सत्यपथ पर रहे ॥



- 'श्याम'

ब्रह्म-वादी दयानन्द

(ले०-श्री पं० वासुदेव शरण जी एम० ए०)

तत्तु समन्वयान् ।

अर्थात्—तदेव ब्रह्म सर्वत्र वेदवाक्येषु समन्वितं प्रतिपादितमस्ति । कश्चित्साक्षात् कश्चित्परम्परया च । अतः परमोऽर्थो वेदानां ब्रह्म वास्ति ।

ऋग्वेद भाष्य-भूमिका के वेदविद्या-विचार प्रकरण में इस घोषणा का डिग्लिमघोष करते हुए स्वामी दयानन्द ने अपने ब्रह्मवाद सिद्धान्त का उपक्रम किया है । शंकर ब्रह्मवादी थे । दयानन्द भी ब्रह्मवादी थे । परन्तु 'तत्तु समन्वयान्' इस व्यास सूत्र का शंकराचार्य ने जो उपनिषदों के लिए अर्थ किया है उसे ही स्वामी दयानन्द ने वेदों पर घटित किया है । शंकराचार्य ने लिखा था:—

तद्ब्रह्म सर्वज्ञं सर्वशक्ति जगदुत्पत्तिस्थितिलय-कारणं वेदान्तशास्त्रादेवावगम्यते । कथम्, समन्वयान् । सर्वेषु हि वेदान्तेषु वाक्यानि तात्पर्यैरीतरथार्थस्य प्रतिपाद कत्वेन समनुगतानि । सदेव सोम्येदमप्रश्नासीत्' इत्यादि ।

अर्थात् सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के कारण ब्रह्म का ज्ञान वेदान्त शास्त्र से होता है । क्योंकि सभी वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य ब्रह्म के प्रतिपादन में ही संगत है । इस प्रकार के श्रुतियों के ज्ञानकाण्ड के परमनिधान उपनिषदों के ब्रह्मवाद पक्ष का मण्डन विस्तार से शंकर ने किया । स्वामी दयानन्द ने इसी व्यास सूत्र को अपनी प्रतिभा के द्वारा स्वयं वेदों के ही समन्वय के प्रतिपादन के काम में लिया । अर्थात् 'वही ब्रह्म सर्वत्र वेद वाक्यों में समन्वय के साथ प्रतिपादित हुआ है ।' कहीं यह प्रतिपादित साक्षात् शब्दों में है, कहीं ज्ञानकर्म उपासना विज्ञान की परम्परा से मिलता है । इसलिए वेदों का परम निष्कर्ष ब्रह्म ही है ।

इस प्रातःज्ञा को पहले उपनिषदों और गीता-द्विक ग्रंथों में भी दुहराया गया था, तथा—

सर्वे वेदा यत्पदमानन्ति,

तपसि सर्वाणि च यद्ददन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मार्थं चरन्ति,

तने पदं सप्रहेण ब्रवीमि ।

अर्थात् इत्येतत् ।

अर्थात् समस्त वेद उसी परम पद या प्राप्तव्य स्थान ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं, संक्षेप में वही उद्धार है ।

स्वामी दयानन्द ने उपरोक्त सूत्र की नई व्याख्या के अनन्तर उसके उपबृंह्य रूप से चारों वेदों के प्रमाण देते हुए वही कार्य किया है जो 'समन्वयान्' पक्ष से अधिगत समन्वय दिखलाने के लिए शंकर ने उपनिषद् वाक्यों को उद्धृत करके किया था । उन्होंने प्रारम्भ में मारद्वन्द्व्य उपनिषद् का एक महत्वपूर्ण अक्षतरण दिया है ।

भोमित्येतदधरमिदं सर्वं तस्थोपठ्याव्यायानम् अर्थात् भोमित्येद्यस्य नामास्ति तत्तत्तम् । यत्र क्षीयते कदाचिद्, यत्राचरम् जगत् अस्तु न व्यापनोति तद् ब्रह्म वास्ति इति विज्ञेयम् । अस्त्येव सर्वेवेदविभिः शास्त्रैः सकलेन जगता बोपगत व्याख्यानं मुख्यतया क्रियतेऽर्थं प्रथानविषयोऽस्तीत्यवधार्यम् ।

अर्थात् ओ३म जिसकी संज्ञा या नाम है, वह अक्षर ब्रह्म है । अक्षर इसलिये कि कभी उसका क्षय नहीं होता । अथवा वह समस्त जगत् को व्याप्त कर रहा है । सब वेदादि शास्त्र और समस्त जगत् के द्वारा उसी अक्षर का व्याख्यान होता है । भारतीय अध्यात्म शास्त्र के त्रगुण्य तथा उसके समन्वय के सिद्धान्त का परिचय रखनेवाला कोई भी विद्वान् स्वामीजी की उपरोक्त प्रतिज्ञा से असहमत न होगा, क्योंकि सब जगत् और वेदमन्त्रों के प्रयोजन मुख्यतया उसी ब्रह्म का व्याख्यान है । ऐसा दृष्टिकोण आर्ष शैली से निर्मित ब्राह्मण आरभ्यक और उपनिषद् आदिक ग्रन्थों का सदा से रहा है ।

उपरोक ब्रह्मवाद पक्ष की प्रतिज्ञा ही स्वामी दयानन्द का वेद विषयक दृष्टिकोण है। इस सूर्य के सामने सवियों से घनीभूत अन्धकार क्षण मात्र में ध्वस्त हो गया। वेदों का आलोक अपने वास्तविक रूप में स्फुरित हो गया। बीच के कई सहस्र वर्षों को एक ही ढग में पार करके स्वामी दयानन्द ने तुरन्त अपना सम्बन्ध संहिता के साथ स्थापित कर लिया।

दयानन्द का स्कन्दत्व

शंकर रामानुज बल्लभ मध्वादि अनेक आचार्यों ने अपने आपको उपनिषदों की श्रुति तक ही सीमित रक्खा था। स्वामी दयानन्द ने उपनिषद् और वेदों के बीच की इस गहरी खाई को एक ही कुदान में पार कर लिया। उनके इस प्रतिभा सम्पन्न कार्य का उपनिषदों के शब्दों में हम महान् 'स्कन्द' कार्य कह सकते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् के नारद सनत्कुमार संवाद के अन्त में लिखा है—

सर्वप्रथीर्ना विप्रमोक्षः । तस्मै यदितकपायाय तमसस्पांरं दर्शयति भगवान् सनत्कुमार । तं स्कन्द इत्याचक्षते

अर्थात्—सूक्ष्मी आत्ममूर्ति आने पर सब गांठें छूट जाती हैं। इस प्रकार जिसके पाप धुल जाते हैं वह तमकी गहरी खाई के पार उपाति में चला जाता है। उसके इस कुदान कार्य के उपलक्ष्य में उसे स्कन्द कहते हैं। सभी प्रतिभाशील महान् आत्माओं में यह स्कन्दत्व गुण विद्यमान रहता है। वे 'उरुक्रम' होते हैं। दयानन्द में भी यह विशेषता कई सहस्राब्दों के बाद देखी गई कि संहिता ग्रन्थ और तद्विपर समस्त साहित्य के बीच के विपुल अन्तराल को अपनी पैनी दृष्टि से क्षण मात्र में भेद करके वे मध्यवर्ती सागर के पार चले गये और आगे आनेवाली संतति के लिए एक सेतु का निर्माण कर गए। उसो के कारण आज हम संहिताओं के साथ अपना साभिध्य अनुभव कर पाते हैं।

इस प्रकार वेदमन्त्रों के साथ साक्षात् परिचय करने के बाद स्वामी दयानन्द ने निरुक्त, व्याकरण, ब्राह्मण्य, आर्यवक उपनिषद् आदि सभी प्राचीन

आर्ष ग्रन्थों की सामग्री को वेदों के ब्रह्मवाद के मण्डन में प्रयुक्त किया। देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा यो स्थानो भवतीति वा इस प्रसिद्ध निरुक्त वाक्य में दिये हुए देव लक्षणों का ब्रह्म में समन्वय दिखाने हुए उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला।

अतो मुख्यो देव एकः परमेश्वर एव उपास्यो ऽस्तीति मन्यध्वम् । [ऋ० भू०]

अर्थात् प्रधान देव एक ईश्वर हा उपासना करने योग्य है।

इसी प्रसंग में उन्होंने निरुक्त का दूसरे स्थल का अवतरण भी दिया है :—

माहाभाग्यवताया एक आत्मा बहुधा स्तुयते, एकस्यात्मनो ऽय देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति । और इसके आध्य में स्पष्ट किया है कि एक ब्रह्म की ही शक्ति से अन्य सब दिव्य शक्तियाँ प्रकाशित हैं।

इस समन्वय से उप बृंहण में जिस प्रकार शंकराचार्य ने लगभग बांस पट्टों में वेदान्त वाक्यों का विस्तार किया है उसी प्रकार स्वामी दयानन्द ने चारों वेदों के मन्त्रों का उपन्यास किया है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित मन्त्र ध्यान देने योग्य हैं।

इद्रं मित्र वरुणमं प्रताहुरथा दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्रिषा बहुधा वदन्यधिं यम मातरिश्चानमाहुः ॥ ऋ० १। १६धा ४६

तदेवाप्रस्तवा दत्य स्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

यजु० ३२। १

द्विरयथार्गमं समवर्ततामे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथ्नी धामुतेमां करौ देवाय इविषा । वषेम ॥ ऋग्वेद

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्यातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ य० ३१। १८

विश्वत्रचक्रुस्त विश्वतो मुखो विश्वतो बाह्वुस्त विश्वतस्तात् । स' बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्थावाभूमौ जनयन्देव एकः ॥ य० १७। १६

इन मन्त्रों के अतिरिक्त ब्राह्मण उपनिषद् भाग से भी ब्रह्मोक्त्य प्रतिपादनपरक अनेक वाक्य प्रमाणा

रूप से इस प्रकरण में रखे गये हैं। वस्तुतः मन्त्रों का अर्थ करते हुये भी स्वामी जी ने इस प्रतिज्ञा की किस प्रकार रक्षा की उसके ब्याहरण में दो मंत्र देकर इस लेख को समाप्त करेंगे।

१ अग्निः पूर्वेभिश्च षिभिरीडयो नूतनैरुत ।
२ स देवा एह वक्षति ।

यहाँ स्वामी जी ने ऐ० ब्राह्मण का प्रमाण देकर लिखा है प्राणा वा ऋषयो दैव्यासः । पूर्वेभिः पूर्वाकालावस्थे कारणस्थैः प्राणैः कार्यद्रव्यस्थैः नूतनैश्च ऋषिभिः सहैव समाधिभोगेन सर्वैर्बिद्भक्तिरग्निपरमेश्वर एव देहयोऽस्ति ।

अर्थात् प्राण ही दिव्य ऋषि हैं। कारणस्थप्राण पूर्वा ऋषि हैं और कार्यस्थ प्राण नूतन ऋषि हैं। ये साथ साथ समाधि के द्वारा उसी अग्नि नामक परमेश्वर की उपासना करते हैं। इस अर्थ में इतिहासा धेक्षित पौर्वापर्य की गन्ध भी नहीं दें, वरन् ब्राह्मण ब्रह्म की साक्षात्के आचार से यह मन्त्र वैदिक तत्वज्ञान का ही प्रतिपादक होता है।

दूसरा मन्त्र—

इयायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य इयायुषम् ।

परंवेपु इयायुषं तन्नो अस्तु उयायुषम् ॥

य० ३। ६२

इस मन्त्र के व्याख्यान में शतपथ का 'मन्मलि-स्वित परिभाषा वःम मे ल ई गई है — चतुर्वे जमदग्नि ऋषिर्पितृदेनेन जगत् परवरथा मनुते तस्माच्चतुर्भमदग्निः ऋषिः (श० पा १। २। ३) । कश्यपो वै कूर्म प्राणो वै कूर्म (श० ७। ५। १। ७) । अनेन प्राणस्य कूर्मः कश्यपश्च संज्ञास्ति । शरीरस्य नाभौ तस्य कूर्माकारावस्थिते ।

हे जगदीश्वर, आपकी कृपा से हमारे जमदग्नि संज्ञक चत्वरिन्त्रय, और कश्यप संज्ञक प्राण की तिगुनी अर्थात् तीन सौ वर्षों को आयु हो। तथा विश्रान्तो हि देवा (शतपथ) इस के अनुसार विद्वानो में जो त्रिगुण आयु सम्भव है वह हमें प्राप्त हो। ... उपरोक्त कारणों से प्रतीत होता है कि जमदग्नि आदिक शब्दों से इतिहासपरक नामों की प्रतीति न होकर अर्थों का ज्ञान ही मन्त्रों में अभिप्रेत होता है। अतो नात्र मन्त्रभागे हीतहासलेशोऽप्यस्तीति, अथगन्तव्यम् ॥

स्मृतिपञ्चकम्

(लेखक — श्री पं दिलीपवृत्त शर्मोपाध्यायः)

(१)

सदाचार-रक्षा-समुद्युक्तचेता

वदान्यो भवोद्धारकः साधु नेता ।

दुराचार विध्वंस शस्त प्रयोगी

केषां न मान्यो द्यानन्द योगी ॥

(२)

प्रयत्नः सता येन भूयोऽपि भूमा

विहाऽकारारि हारी यदीयोऽपि भूमा ।

द्यानन्द योगी महेच्छो विरक्तः

स केषां न मान्यो महादेव भक्तः ॥

(३)

सदान्नायसंप्रोक्तधर्मप्रचारे

रुचिर्यस्य दुर्दान्तवादीन्द्र हारे ।

अनादिक रक्षी तथा स्वार्थि स्वएडी

स केषां न मान्यो द्यानन्द ब्रह्मडी ॥

(४)

स्वदेशोन्नतौ

तीव्रबुद्धिर्महात्मा

प्रशस्तानुपायाननेकानपात्मा ।

ततानाशु यः संस्तुतौ भूरिधामा

स केषां न मान्यो द्यानन्दनामा ॥

(५)

कुलीनस्तपस्याविशुद्धान्तरङ्गः

समुत्पादिताम्यारिपुत्रातभङ्गः ।

कयातोऽयं हा लोककल्याणकारी

द्यानन्दसंज्ञो महाब्रह्मचारी ॥

हिन्दू जाति पर आर्यसमाज के उपकार

(ले०—श्री डा० बालकृष्ण एम० ए० पी० एच० डी०)

X



आर्य समाज सनातन वैदिक-धर्म को मानने वाला है। इस समय के सब प्रचलित धर्मों को अच्छी बातों को यदि ले लिया जाय तो उन सब का समावेश वैदिक-धर्म में हो जायगा। आर्य समाज के प्रवर्तक

महर्षिदयानन्द सरस्वती स्वयं लिखते हैं कि "वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं।" आर्य समाज का तीसरा नियम भी इसी बात की पुष्टि करता है कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" परन्तु आज हमें उसके अधिक विश्वव्यापी रूप को नहीं विचारना है। आर्य समाज ने हिन्दू जाति के लिये क्या किया है, और क्या करना चाहता है? इसका दिग्दर्शनमात्र इस लेख में करना चाहते हैं।

आर्यसमाज से पूर्व हिन्दू जातिकी दशा

महर्षि के आगमन से पूर्व हिन्दूजाति जिस दुर्दशा में पड़ी हुई थी, वह किसी से छिपी नहीं है। वह काल हिन्दू जाति के ह्रास का था। उसे मुसलमान और ईसाई रूपी दो मगर क्रमशः निगल रहे थे। हिन्दुओं की संख्या उत्तरोत्तर कम होती हुई चली जा रही थी। हिन्दू लोग स्वयं अज्ञानान्धकार में पड़े हुये थे। अपनी जाति का गौरव, आत्मभिमान सब कुछ नष्ट हो चुका था। विधर्मों लोग हमारे पूर्वजों की हँसी और मजाक किया करते थे, और हम लोग भी मानसिक दासता के कारण उनकी हाँ में हाँ भरने लग गये थे। यह अवस्था कितनी शोचनीय और खतरनाक थी इसकी कल्पना करते ही दिल कांप उठता है। ऐसी अवस्था में महर्षि रूपी सूर्य उदय हुआ। जिसने अपने आर्य समाज रूपी प्रखर तेज से हिन्दूजाति के मानसिक दासता रूपी अन्धकार को दूर करके आत्म-गौरव तथा आत्मभिमान रूपी प्रकाश दिया और सोते हुएों को जगाया। आत्मरक्षा के साधन ज्ञान

रूपी शस्त्र को उनके हाथ में दिया। हिन्दू जाति के प्रति महर्षि का यह महान् दान है, जिससे वह कभी उच्छ्रय नहीं हो सकती। महर्षि के बाद आर्य समाज ने इस काम को लिया और विधर्मियों की बाढ़ को अपने तर्क रूपी बाध से रोक दिया। इससे हिन्दु जाति का वह गौरवमय विशाल प्रासाद जिसने किसी समय आंध्र भू-मण्डल को अपने में आश्रय दिया था, गिरते गिरते बच गया। यद्यपि इसकी नींव अन्दर के दोषों से खोखली हो चुकी थी, लेकिन उसके सुधारने वाला कारीगर समय पर आगया और इसकी रक्षा की।

वैदिक सत्य धर्म

आर्यसमाज ने यह सिद्ध करके दिखला दिया कि वेदों के प्रति लोगों की प्रवृत्ति के न रहने के कारण ही लोक में अन्धकार छागया। इससे मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त हो गयी, और मनमाने मत चलने लगे। ये सब वेद विरुद्ध धर्म अमान्य है। लोगों के मनो पर आर्यसमाज ने विठा दिया कि वैदिकधर्म ही सर्वश्रेष्ठ और सनातन है। यदि कोई व्यक्ति धन के लोभ में आकर मुसलमान व ईसाई होना चाहे तो उसका कोई इलाज नहीं। सत्यधर्म का प्रेमी और श्रद्धालु वैदिक धर्म को छोड़ कर और कहीं नहीं जा सकता। आर्यसमाज ने इस हिन्दू जाति की रक्षा के इस कार्य को भारतवर्ष तक ही सीमित नहीं रखा अपितु उसने देश विदेश में हिन्दुओं को विधर्मियों के फन्दे में फँसने से बचाया। उसने अफ्रीका फिजी, ब्रिटिश-नायना के हिन्दुओं का बचाने के लिये भी यत्न किया है। आर्यसमाज अभी तक यह कार्य कर रहा है। वह पुण्य दिन परम सौभाग्य का होगा जब सर्वत्र वैदिकधर्म की अमृत वर्षा से भूलोकवासी स्नान कर रहे होंगे।

धर्म का अशुद्ध अर्थ

आर्यसमाज के स्थापन से पूर्व हिन्दू जाति वास्त-

विक धर्मको भूलकर बाह्य रीतिरिवाज और व्यवहारको ही धर्म समझ रही थी। धर्म के मूल सिद्धान्त और विश्वास को उसने ताक मे रख दिया था। अवस्था यहां तक बढ़ गयी कि यदि किसी मुसलमान व ईसाई ने अपने हाथ का पानी रोटी व मांसका टुकड़ा कूड़े में डाल दिया तो वह कूड़ा अपवित्र समझा जाने लगा। यदि कोई अनजान व्यक्ति उसका पानी व्यवहार में लाता था तो वह धर्म तथा जातिभ्रष्ट कर दिया जाता था। यदि कोई मुसलमान किसी का यज्ञोपवीत व चोटी काट देता था तो इसके फलस्वरूप इच्छा न रहते हुये भी उसे अपनी जाति से वहिष्कृत कर दिया जाता था। उसके साथ मेल जोल और व्यवहार करने वाले को भी वही दण्ड दिया जाने लगा। सारांश यह कि धर्म की मूल बातों, सदाचरण विश्वास श्रद्धा आदि को छोड़ बाहर के ढकोसलो को महत्व दिया जाने लगा। भूल से मुसलमान के हाथ का पानी पीने वाले सदाचारी व्यक्ति की अपेक्षा धर्म का दोगी नीच दुराचारी व्यक्ति, श्रेष्ठ और सच्चा हिन्दू समझा गया। हिन्दू समाज को यह एक प्रकार का अपचन का रोग हो गया। वे लोग अपने ही सजातियों का विधर्मी कह कर बाहर निकालने लगे। इससे विधर्मी लाभ उठाने लगे। वे जान बूझ कर इस प्रकार की कुचेष्टर करके अपनी जाति की संख्या बढ़ाने लगे। न जाने कितने हिन्दू भाई और बहने जाति से च्युति का जाकर दूसरे धर्मों में चली गईं। आर्यसमाज ने हिन्दुओं के इस ह्रासक्रम को रोका। धर्म के इन धोखे और सारहीन सिद्धान्तों को दूर हटा कर धर्म का वास्तविक स्वरूप जनता के सम्मुख उपस्थित किया जनेऊ और चोटी के कट जाने से कोई धर्म भ्रष्ट नहीं होता। ये तो धर्मके केवल बाह्य चिन्ह हैं। धर्म मनुष्यके जीवन और आत्मा पर असर डालने वाला है। आज कल हजारों शिक्षित नवयुवक कुटावस्था की उमंग में आकर जनेऊ और चोटी कटवा देते हैं। परन्तु इतने से भी वे विधर्मी नहीं समझे जा सकते। ये हिन्दू धर्म के कट्टर पक्षपाती होते हैं।

धर्म पुस्तक का अभाव

वैदिक धर्म के पुनरुद्धार से पूर्व हिन्दू-धर्म ढाया-

डोल हो रहा था। विना स्तम्भ के खड़ा था। विरोधियों का मुकाबिला करने के लिये उसके पास कोई उपयुक्त साधन न थे। हिन्दुओं की अपनी कोई धर्म पुस्तक नहीं थी। हिन्दू लोग अपनी मूल पुस्तक वेद को भूल चुके थे। अवस्था यहां तक पहुँच चुकी थी कि वेदों का भारतवर्ष में मिलना असंभव हो गया। मैक्समूलर ने जर्मनी से वेदों को लेकर छापा। महर्षि को भी स्वयं वेदों को प्राप्त करने में बहुत दिक्कतें हुईं। हिन्दू लोग वेदों के नाम तक न जानते थे। वे पुराण और गीता को ही अपनी धर्म पुस्तक मानते थे। वेदों के विषय में साधारण लोगों की यह धारणा थी कि वेद कोई उच्च पुस्तक है, जं कि सतयुग के लिए थी, कलियुग के लिए नहीं। परन्तु महर्षि ने इस भ्रममूलक धारणा को मिटाया। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार ईश्वर का बनाया हुआ सूर्य सब युगों में और त्रिकाल में समान रूप से चमकता हुआ प्रकाश देता है उसी प्रकार वेद भी सब युगों और सब कालों के लिए एकही हैं। वेद अपौरुषेय और आदि पुस्तक हैं यह सब धर्मों का मूल स्रोत और ज्ञान का भण्डार है। मनुष्य मात्र का कल्याण वेद विद्या के प्रचार से ही हो सकता है। यही कारण है कि आर्यसमाज अपने प्रत्येक कार्य में वेदों को आगे रखता है।

महर्षि की वेद भाष्य शैली

महर्षि की अपार दया से वेद तो मिले परन्तु उनके नाम कथन व दर्शन मात्र से ही काम न चल सकता था। उनका अनुवाद और भाष्य करना आवश्यक था। इस लिए स्वामी जी ने वेद भाष्य की और ध्यान दिया। वेद भाष्य की जो शैली उन्होंने प्रदर्शित की वह विद्वानों के लिए विचारणीय तथा अनुकरणीय है। उनकी शैली प्राचीन ऋषियों की विचारसरणी पर चलती है। स्वामी जी की इस नवीन वेद भाष्य की पद्धति को अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया। श्री अरविन्द घोष, सत्यभद्र, सामाश्रमी, मि० पावगी और बंगाल के कई विद्वानों ने इसका स्वागत किया है।

विश्व को आर्य बनाओ

हिन्दू जाति ने अपने आपको कूप मण्डूक बनाया हुआ था। उस समय हिन्दुओं का यह आम विश्वास था कि सिन्ध के पार जाने व समुद्र यात्रा करने से मनुष्य अपने धर्म से न्युत हो जाता है। स्वामी जी ने इसके विरुद्ध भी आवाज़ उठायी और लोगों को बताया कि प्राचीन आर्य सिन्ध नदी ही नहीं अपितु समुद्र के पार जाकर व्यापार करते थे। उन लोगों ने विदेशों में जाकर आर्य धर्म का प्रचार किया और भारतीय संस्कृत तथा सभ्यता का पाठ पढ़ाया। उन्होंने विदेश में जाकर अपने उपनिवेश स्थापित किये और विदेशियों से विवाह सम्बन्ध भी जोड़ा। इस लिये अब भी लोगों को व्यापार और धर्म प्रचार के लिये देश विदेश में जाना चाहिए। महर्षि ने हिन्दू जाति के सम्मुख ऊँचा ध्येय रक्खा और "कृत्वन्तो विश्वमार्याम्" का सन्देश दिया।

७—वर्णव्यवस्था

हिन्दू जाति निरन्तर भट्टाचार्यों के जाल में फँसी हुई थी। स्वामी दयानन्द ने ब्राह्मणों की कल्पित जन्म मूलक वर्णव्यवस्था को हटा कर युक्ति युक्त गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था को स्थापित किया। ब्राह्मण विद्याभ्यास, विद्या दान, तपश्चर्या और भिन्ना वृत्ति करता हुआ ही अपना ब्राह्मणत्व कायम रख सकता है न कि केवल ब्राह्मण के घर में जन्म लेने से। इस प्रकार समता और आत्माभाव के उच्च सिद्धान्तों को हिन्दू जाति के सम्मुख रखा।

गुरुद्वम पर प्रहार

महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व गुरुद्वम बहुत जोरो पर था। स्वामी जी ने इस अभेद्य किले पर आक्रमण करके उसे तोड़ गिराया। यह साधु, महन्त और मठाधीश अन्ध विश्वासी भक्त जनता को लूट रहे थे। स्वामी जी ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठा कर भोली भाली जनता को उनके जाल से छुड़ाया। उन्होंने सच्चे वानप्रस्थी और सन्यासी का आदर्श बताया। स्वामी जी ने स्वयं भी किसी स्थान पर मठ स्थापित नहीं किया, और न वे किसी

समाज के प्रधान ही बने। वे सच्ची भिन्नावृत्ति जाति की सेवा करते रहे।

एकेश्वरवाद का उपदेश

हिन्दू जनता एकेश्वर की पूजा को छोड़ कर करोड़ों देवी देवताओं, की पूजा में लगी हुई थी। स्वामी जी ने इसका खण्डन करके एकेश्वर की पूजा का आदेश दिया। स्थान स्थान पर शास्त्रार्थ करके लोगों को मूर्तियों को त्याग करने के लिए उद्यत किया। इसी प्रकार मृत श्राद्ध की प्रथा पर आपात करके सच्चे युक्ति युक्त धर्म का उपदेश दिया।

अच्छूतोंद्वार

आज कल महात्मा जी अच्छूतोंद्वार करने में जी जान से लगे हुए हैं। उनके इस आन्दोलन से हिन्दू समाज में जागृति उत्पन्न हुई है। परन्तु अस्थिरता निवारण और दलितोंद्वार विषयक कार्य प्रारम्भ से ही आर्य समाज के प्रचार कार्य का आवश्यक अंग रहा है। इस कथन में कोई अयुक्ति नहीं कि अल्पि दयानन्द ही इस आन्दोलन के वर्तमान युग में प्रथम प्रवर्तक थे। उन्होंने बतलावा कि केवल चारही वर्ण है इनमें शूद्र भी अच्छूत नहीं। वैदिक भिदान्तों के अनुसार अस्थिर कोई भी नहीं है। इस प्रकार आर्य समाज ने आरम्भ से ही अच्छूतोंद्वार का प्रशासनीय कार्य किया है।

स्त्री जाति का उद्धार

(१) कोई समय था जब भारत में विदुषी स्त्रियों भी पुरुषों के समान आदर पाती थी। परन्तु हिन्दू जाति के पतन काल में स्त्रियों को शिष्टा देना पाप समझा गया। (२) बाल विवाह ने हिन्दू सन्तानों को बल और शक्तिहीन बना डाला था। (३) हिन्दुओं में विधवाओं का विवाह कुल के नाश का कारण समझा जाता था इससे समाज का वातावरण दूषित होने लगा। इस दुरवस्था को देख कर महर्षि को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने स्त्रियों को शिष्टा देने तथा बाल विवाह को रोकने के लिए बलपूर्वक यत्न किया। (४) महर्षि ने पर्दे की विनाशकारी कुप्रथा पर आपात करते हुये स्त्रियों के साथ किये जा रहे अन्याय को रोका। परिचय की जो लहर स्त्रियों को

स्वतन्त्रता और समानता देने के लिए चली है, उस के भारतवर्ष में आरम्भ होने से पूर्व ही दयानन्द ने वेदों के आधार पर स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने और पर्दे को हटाने का आदेश दिया। स्त्री जाति के उद्धार के लिए वैदिक विवाह पद्धति का प्रतिपादन किया और बताया कि युवावस्था में स्वयंवर की रीति से विवाह होना चाहिए। इस और स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज द्वारा किया हुआ कार्य प्रशंशनीय है।

पश्चिम से पूर्व की ओर

१८०० के लगभग भारतवर्षी पाश्चात्य सभ्यता के बहुत दिख-दादा होगये थे। स्कूलों और कालेजों के नवयुवक विद्यार्थी उनकी साइंस और फिलोसोफी को पढ़कर उनके हामी होगये थे, वे अपने देश की सभ्यता और संस्कृति को घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे। इस आत्मघातक मानसिक दासता से आर्य समाज ने उनका उद्धार किया है। और बताया कि भारतवर्ष समस्त आर्य ससार का धर्मगुरु है। इसीने बहुत से देशों को संस्कृति और सभ्यता का पाठ पढ़ाया है। आज पराधीनता के कारण हमारी यह दुर्गति हुई है। योरोप विज्ञान और कला में प्रगति कर रहा है लेकिन यह अभी कल का बच्चा है उसने ब्रह्म पितामह भारत से ही तो मूलतत्त्व सीखा है। इसलिये हमें लज्जित होने की कोई जरूरत नहीं। हमें अपना सिर गौरव से ऊंचा उठाये रखना चाहिये। हमें

अपने प्राचीनसाहित्य और कला आदि को पुनर्जीवित करना चाहिये यह आत्माभिमान, और आत्मविश्वास का पाठ सर्व प्रथम आर्य समाज ने ही हिन्दू सभ्ताओं को पढ़ाया है। ऋषिने जातीयता राष्ट्रीयता, और स्वराज्य की इच्छा का भाव हमारे दिलों में जाग्रत किया है।

सारांश यह कि मानसिक, शारीरिक, और सामाजिक रोग हिन्दुसमाज में सैंकड़ों वर्षों से घर करचुके थे। उन्हें दूर करने का यत्न आर्यसमाजने किया। लोगों का ध्यान सत्यधर्म की तरफ खींचा, मानसिक दासतासे पीड़ित नवयुवकों का ध्यान पश्चिम से हटाकर पूर्व की ओर और वर्तमान से हटाकर भूत की ओर किया। उनमें आत्मविश्वास, देश प्रेम और प्राचीन आर्यसंस्कृति के गौरव के भाव भरे। पराजित होने के स्थान पर विजेता होने का मूलमंत्र पढ़ाया। दूसरों से निगले जाने की बजाय उन्हें अपने अन्दर निगलने का सूत्र बतलाया। यह अनुपम कार्य महर्षिदयानन्द और आर्यसमाज ने ही किया है कोई भी हिन्दू ऋषि के इस कार्य की उपेक्षा नहीं कर सकता, और न आर्यसमाज को निरादर की दृष्टि से देख सकता है। हम आशा करते हैं कि प्रत्येक हिन्दू ऐसे प्रगतिशील समाज का अङ्ग बनकर उसकी रक्षा करेगा और आत्मिक उन्नति का मूलमंत्र सीखेगा।

हमारा वैदिक धर्म

तर्कयुक्त, विज्ञानसिद्ध, वर वैदिक धर्म हमारा है।

है सबसे प्राचीन विश्वका पावन परमसहारा है ॥

उसका ही तनमन धन से हम सब प्रकार सुप्रचार करें।

उनके हित ही जिये जगत् में और उसी के हेतु मरें ॥

तन मन जीवन धन साधन सब वेद धर्म पर वारेगे।

प्राणों की अन्तिम आहुत से भी हम उसे उबारेंगे ॥

तर्कहीन तूफान तमोमय दुष्ट अविद्या टारेंगे।

वरवैदिक विज्ञान विश्व में "सूर्य" समान प्रसारेंगे ॥
भूमंडल में शीघ्र एक ऐसा शुभ अवसर आयेगा।

सारा जग जब वेद धर्म को प्रिय कह कर अपनायेगा ॥

--"सूर्य"

वेदों की ओर

(ले०—श्री पं० सूर्यदेव शर्मा सिद्धान्त शास्त्री, साहित्यालंकार, एम० ए० एल० टी०)

—:—

सा अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक ऐमरसन ने लिखा है, "संसार में विचार ही राज्य किया करते हैं" अर्थात् किसी राष्ट्र के उत्तम मस्तिष्क जिस विचार धारा का प्रादुर्भाव करते हैं उसीमे वह राष्ट्र और समस्त मानव जाति प्रवाहित होने लगती है। आधुनिक जगत् मे विद्वन्मण्डल की विचारधारा का प्रवाह किधर को प्रवाहित हो रहा है इसका थोड़ा सा भी विचार करने से पता चलेगा कि जहाँ एक ओर पारचात्य विज्ञान के चमत्कारपूर्ण आविष्कारों ने संसार के भौतिक विचारवादी मस्तिष्कों को आकृष्ट किया है वहाँ आध्यात्मिक जगत् की क्रीड़ा स्थली मे वे खिलाड़ी भी सम्मुख आये हैं जो उस वैज्ञानिक जगत् से उपरत होकर आध्यात्मिक शांति की खोज मे वर्षों इतस्ततः परिभ्रमण कर चुके है, और जिन्होंने वैज्ञानिक जगत् पर भी आध्यात्मिकता की छाप लगादी है। शिकागो विश्वविद्यालय के ख्यातनामा प्रोफेसर फौस्ट ने अपने ६५ वर्ष के अनुभव के पश्चात् यही लिखा है—“There is a purposeful operation of Nature, when you accept this, it seems to be inconsistent with the physical sciences not to believe in a mind”

अर्थात् प्रकृति मे किसी चेतनशक्ति का कार्य अवश्य हो रहा है। उसको न मानना भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों की अवहेलना करना है। केवल पश्चिम के भौतिक विज्ञान से अब काम चलने का नहीं, जब तक कि उसके साथ में सच्चा धर्म सम्मिलित न हो। इंग्लैंड के प्रसिद्ध विद्वान्-वेत्ता सर आलीवर लीज और प्रो० हक्सले के भी यही विचार हैं:—“The true Science and the true religion are the twin sisters, and their

separation is sure to prove the death of either”

अर्थात् सच्चा विज्ञान और सच्चा धर्म जुड़वाँ बहने हैं, उनका एक दूसरे से पृथक् करना दोनों के नाश का कारण होगा।

वह विज्ञानमय सच्चा धर्म हमको कहीं प्राप्त होगा इसका विवेचन पाठक आगे के लेख से स्वयं ही कर सकेंगे।

अगस्त सन् १६१४ मे इंग्लैंड मे एक विद्वान् सप्ताह मनाया गया था जिसमे सात बड़े बड़े वैज्ञानिकों के व्याख्यान केवल धर्म और विज्ञान के ऊपर रक्खे गये थे। इनमे Sir Oliver Lodge, Dr Fleeming, Prof Hull & Prof Thomson इत्यादि सब ने विज्ञान की उद्देश्य सिद्धि के लिये ईश्वर सत्ता को माना। प्रो० थोमसन ने अन्त में जो परिष्कार निकाला, वह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। वह कहता है कि धर्म और विज्ञान दोनों के पारस्परिक संयोग से ही विश्व का काम चल सकता है। क्योंकि वर्तमान समय मे प्रचलित लगभग सभी मतों मे यह तीन बातें मुख्य हैं—(१) ईश्वर की सत्ता (२) जीव की अमरता (३) मनुष्यों मे दया आदि गुणों की महत्ता। इसी प्रकार अब तक विज्ञान के निरिचत नियम यह है (१) प्रकृति का अविनाशित्व (Immortality) (२) रासायनिक तत्वों की निर्यता (३) शक्ति की निर्यता, इत्यादि। इस प्रकार धर्म और विज्ञान की इन सच्चाइयों मे परस्पर विरोध कहीं है। दोनों के यह सिद्धान्त मिल कर ही मनुष्य जाति का कल्याण कर सकते हैं। अहा! प्रो० थोमसन के कथनानुसार मनुष्य जाति का कल्याण करने वाला बड़ी धर्म होगा, जिसमे उपरोक्त सब सिद्धान्त पाये जाते हो। पाठकों! आपने देखा वह कौनसा धर्म है जिसमे (१) ईश्वर की सत्ता (२) जीव की अमरता (३) प्रकृति का अविनाशित्व

(४) शक्ति की निर्यता (५) मनुष्य में दया आदि गुण पाये जाते हो। यह तो हमारा वैदिक धर्म ही है जिसका समर्थन आज योरोपके बड़े बड़े वैज्ञानिक कर रहे हैं। यही नहीं, किन्तु सन् १६२७ ई० में होने वाली अमेरिका की एक सर्वा धर्म परिषद में भी इसी त्रिषय पर विचार किया गया। उसमें प्राचीन और नवीन संसार के लगभग सभी मतों के प्रतिनिधि विद्वान विचारक और वैज्ञानिकों ने उपस्थित होकर संसार में होने वाली धर्म और विज्ञान की कलह को किस प्रकार मिटाया जाय और संसार का सार्वभौम भावो धर्म क्या हो—इसी पर विचार किया था। कई दिनों के विवाद के परचात् में इस निर्णय पर पहुंचे थे कि संसार का भावी धर्म वही हो सकता है और उसी को सब मनुष्य-ममत्र मानेगा जिसमें निम्न लिखित चार बातें पाई जायगी (१) Equality (समानता का भाव) (२) Universal Brotherhood (विश्वव्यापी भ्रातृ भाव) (३) Harmonious development (सर्वोगीण उन्नति के साधन) (४) Scientific basis (वैज्ञानिक आधार)।

इन उपरोक्त बातों को लेकर यदि हम वर्तमान प्रचलित बड़े बड़े मतों को देखें और ज्ञान कर्ना चाहे कि इनमें से कौन सा मत संसार का भावी धर्म होगा—तो हमें पता चलेगा कि इनमें से पहली तीन बातें तो कई मतों में पाई जाती हैं। इस्लाम और ईसाई मत भी पारस्परिक समानता और भ्रातृभाव का दावा करते हैं। वे भी सामाजिक समभाव का उपदेश देते ही हैं—यद्यपि इस्लाम में स्त्रियों का स्थान पुरुषों से कितना ही नीचा क्यों न हो, यद्यपि आदम की एक पसली से ही हठ्वा की उत्पत्ति क्यों न बतलाई हो, यद्यपि अपने से भिन्न मतवालों को “बाजि-बुल्कला” ही क्यों न कहा गया हो। यद्यपि सन् १८७० तक सेटपीटर्स बर्ग में ईसाइयों की सभा होने से पूर्व ईसाई संसार स्त्रियों में जीवात्मा का मानने से इन्कार ही क्यों न करता रहा हो। तथापि दुर्जन-तोषन्याय से थोड़ी देर के लिये हम इन बातों की उपेक्षा करके समान भ्रातृभाव का सिद्धान्त इन मतों

में मानकर चौथी बात पर ही विचार करेंगे और देखेंगे कि यह मत कहां तक विज्ञान का आधार लिये हुये हैं? उनमें कहां तक बुद्धि, तर्क और विज्ञान के अनुकूल बातें पाई जाती हैं?

सब से पूर्व सृष्टि उत्पत्ति की ही लीजिये। इस्लाम और ईसाई धर्म के अनुसार सृष्टि रचना हुये लगभग ८ हजार वर्ष हुये हैं। आरमोग के आके विशप जेम्स उशर के मत से बाइबिल में लिखी हुई सृष्टि की उत्पत्ति ईसा के जन्म से ४००४ वर्ष पूर्व हुई, और ईसा से २०० वर्ष पूर्व वह प्रलयकाल हुआ जिसमें केवल आदम या मनु रह गये थे। लेकिन वर्तमान विज्ञान के अनुसंधानों और खोजों से पता चलता है कि यह बात कितनी निराधार है। “Science and Invention” नाम के अमेरिका के एक पत्र के फरवरी के अंक में Prof Kneen ने “Age of Earth” नामक लेख लिखकर सिद्ध किया है कि पृथ्वी को बने कम से कम ७२ लाख वर्ष हुये। पृथ्वी के अन्दर मिट्टी का तेल और कोयले का प्राप्त होना इसका पुष्ट प्रमाण है। भूगर्भ विद्याविशारदों का समुद्र और पहाड़ों का धीरे धीरे बनने का क्रम ही हमें बतलाता है कि इस पृथ्वी को बने हुये लाखों वर्ष व्यतीत हुये हैं। शायद इसी लिये ईसाई पादरियों ने प्रो० लाइल को भी भलाबुरा कहा था क्योंकि उन्होंने पृथ्वी के ऊपर पहाड़ आदि के बनने में लाखों वर्ष का समय बीतना सबसे पहिले बताया था। समुद्र में सोडियम को देखकर ही भूगर्भ शास्त्री प्रो० जौली ने पृथ्वी पर प्राणियों का समय कम से कम १० करोड़ वर्ष माना है। बीस जुलाई सन् १६३१ के प्रयाग के “लीडर” पत्र में मिस्टर वाटसन डेविस ने लिखा है कि “National Research council” ने वैज्ञानिकों की जो कमेटी पृथ्वी की आयु जानने के लिये नियुक्त की थी उसने अपनी कई वर्ष की खोज के परचात् Canella (रूस) में पूरे नियम के कुछ अंश की परीक्षा करके यह निश्चय किया है कि वह धातु १,८५,२०,००,००० वर्षों की बनी हुई है और जिस चट्टान में वह पाई जाती है वह भी लगभग १४ करोड़ वर्ष पूर्व की होनी चाहिये। इस प्रकार पृथ्वी की आयु लगभग २ अरब

वर्ष की सिद्ध होती है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक और तरबवेत्ता डाक्टर James Jeans ने भी अपनी पुस्तक 'Universe Around us' में एक पूरे नियम का इतिहास देकर यही सिद्ध किया है कि वर्तमान विज्ञान के अनुसार सृष्टि रचना हुये लगभग २ अरब वर्ष थीत है।

अहा ! जिस सिद्धान्त को वैदिकधर्मी आर्य लोग बहुत पहले से मान रहे हैं, अर्थात् हमारे अनुसार भी सृष्टि मन्वन् १६७२६४६०३५ है वही सृष्टिकाल अर्थात् २ अरब वर्ष के लगभग आत्र परिचम के सारे विज्ञान, भूगर्भ शास्त्र, उपातिष शास्त्र, भौतिक शास्त्र और प्राणी शास्त्र आदि मानने और सिद्ध करने को वाध्य हुये है। यह है वैदिकधर्म के सिद्धांतों की अपूर्ण विजय। विज्ञान के इन पुष्ट प्रमाणों के होते हुये भला ऐसा कौनसा पुरुष होगा जो आर्क विशप उशर की बात को मानकर केवल ७ हजार वर्ष से सृष्टि उत्पत्ति मानेगा।

यही नहीं, रचना का जरा क्रम भी देखिये। कितना बुद्धि-विरुद्ध और विज्ञान प्रतिकूल है। बाई बिल के सृष्टि उत्पत्ति के वर्णन को पढ़ने से पता चलता है कि ईश्वर की आत्मा पानी पर डोलती थी। वह पानी किस पर था इसका पता नहीं। फिर ईश्वर ने पहले दिन जमीन बनाई और एक एक दिन अन्य चीजों को बनाकर चौथे दिन सूरज बनाया। भला इन अक्रमन्दी से पूछा जाय कि सूरज को तो चौथे दिन बनाया और सूरज से दिन रात होते हैं, तो जब सूरज नहीं था तो पहले के तीन दिन का पता कैसे चला ? ऐसी विवेकहीन बातों को इस प्रकाशयुग में कौन मान सकता है ?

फिर भला कुरान में तो खुदा ने केवल "कुन" कहने से दुनियाँ बना डाली, और बाइबिल में भी किसी चीज के न होने पर भी ईश्वर ने मिट्टी के पुतले से आदम के शरीर को बनाया। इस प्रकार दोनों ही ने अभाव से भाव की उत्पत्ति (Something of nothing) सिद्धान्त को माना है, जिसको वर्तमान विज्ञान और भौतिक शास्त्र का साधारण विद्यार्थी भी स्वीकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार इस पृथ्वी को सम्पूर्ण विरव का केन्द्र मानना, सूर्य

आदि का पृथ्वी के चारों ओर घूमना, आसमान का खम्भो पर सथा होना, चौथे और सातवें आसमान पर खुदा और फहरिश्तो का रहना तथा हजरत मुहम्मद के उंगली उठा देने से चाँद के दो टुकड़े हो जाना—ये भी अनेक असम्भव और विज्ञानविरुद्ध बातों पर जिन पर पाठकों को हँसी आये बिना नहीं रह सकती, कौन विश्वास करेगा ? इन असम्भव बातों पर पदां डालने के लिये ही उन ग्रन्थों के नये नये अनुवाद और टीकाये की जा रही है, जैसे मौ० मुहम्मदअली एम० ए० का कुरान का अंग्रेजी अनुवाद, जो सन् १९२५ में लन्दन में टिपणियो सहित छपा गया है। यह है वैदिकधर्म की विजय, जिसको आज पारचात्य जगत् भी नतमस्तक होकर स्वीकार करता जा रहा है। उदाहरण के लिये, फ्रांस का विद्वान् जैकालियट अपनी पुस्तक 'The Bible in India' में लिखता है—“An astonishing fact! The Hindu revelation on the Veda is of all the revelations, the only one whose ideas are in perfect harmony with modern science. अर्थात् यह एक आश्चर्य की बात है कि संसार की ईश्वरीय ज्ञान कही जाने वाली समस्त पुस्तकों में केवल वेद ही ऐसे हैं जिनके विचार आधुनिक विज्ञान के साथ पूर्णतया मिलते हैं। इसी प्रकार Sir Arthur Carpenter ने अपनी पुस्तक Art of Creation में कहा है।

प्रिय पाठकों ! आप इस लेख को पढ़ कर समझ गये होंगे कि संसार में केवल वैदिकधर्म ही है जिसमें आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्त पूर्ण रूपेण संघटित हो सकते हैं। अन्य मजहब या सम्प्रदाय लोगों के मस्तिष्कों को आजकल के इस प्रकारा और विज्ञान के युग में सन्तुष्ट नहीं कर सकते। इसलिये आपका हमारा सब का काराग्य है कि तर्कसिद्ध, बुद्धिप्राप्त, विज्ञानानुकूल इस वैदिकधर्म का ही प्रचार सारे संसार में करें। इसी लिये आचार्य का आदेश है—

‘वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।’

अमैथुनी सृष्टि वेदानुकूल और यौक्तिक है

(ले०—श्री स्वामी शान्तानन्दजी महाराज)

—:०००:—

माता पिता द्वारा सन्तानोत्पत्ति का होना
मैथुनी सृष्टि कहाती है जिस प्रकार कि
आजकल मनुष्य, पशु, पक्ष्यादि की सृष्टि
हो रही है। और बिना मा बाप के गर्भाधान किये
प्राणियों के शरीर का बनना (पैदा होना) अमैथुनी
(ईश्वरीय = साङ्कल्पिक) सृष्टि कहातो है, जिस
प्रकार कि आजकल डॉगर, गिजाई, गिडोये, मच्छर
आदि होते है। पूर्वज तत्ववेत्ता दार्शनिक विद्वानो
ने इस सृष्टि को छ प्रकार की कहा है और फिर यह
भी कहा है कि इतना ही नियम नहीं है। परमात्मा
की सृष्टि में निम्न छ के पतिरिक्त भी न जाने कितने
प्रकार के वेद है।

(१) ऊष्मज भाप वा पानी वा सीलन से उत्पन्न
हुये जूँ, मच्छर आदि—

(२) अण्डज-अंडे से उत्पन्न पक्षी, आदि:—

(३) जरायुज-जेर से उत्पन्न मनुष्य पश्यादि -

(४) उद्भिद् पृथिवी को फोड़कर उत्पन्न होने

वाले ओषधि वनस्पति, वृक्ष आदि:—

(५) साङ्कल्पिक-संकरूप से ईश्वर ने जिस अमै-
थुनी सृष्टि की सृजा—

(६) सांख्यिक-स्वनिज पदार्थ जैसे सोना, चाँदी
जवाहरात इत्यादि; कोई कोई विद्वान् सांख्यिक का
अर्थ ऐसा भी लगाते हैं कि-योगी लोग सिद्धियों के
बल से जिन जिन वेदों को धारण कर लेते हैं वह
सांख्यिक है।

इनमें से जरायुज और अण्डज को छोड़ कर
प्रत्येक प्रकार की सृष्टि आदि से लेकर आज पर्यन्त
अमैथुनी ही होती आई और हो रही है तथा प्रलय
पर्यन्त इसी प्रकार होती रहेगी। परन्तु जरायुज
और अण्डज यह दो प्रकार की सृष्टि न तो आज कल
अमैथुनी होती है और न प्रलय-पर्यन्त अमैथुनी
होने की सम्भावना है, जिससे कुछ ऐसे लोगों का
(जो सृष्टि को सर्कृत नहीं मानते) ऐसा विश्वास

है कि बिना मा बाप के गर्भाधान किये अमैथुनी
सृष्टि द्वारा मनुष्यादि प्राणियों के शरीर की उत्पत्त
का होना असम्भव तथा बुद्धिविरुद्ध है।

यह तो निर्विवाद है कि समस्त प्रकृतिजन्य
सृष्टि प्रकृति का कार्य होने के कारण जड़ है, चेतन्य
नहीं। चेतन्य तो केवल दो पदार्थ ईश्वर और जीव
हैं जो सृष्टि नहीं किन्तु सृष्टि का कारण तथा नित्य
अज, अनादि और अविनाशी हैं। और इस विषय
को कि सृष्टि सर्कृत है। हम इस से पहले 'आर्य
मित्र' मे 'विरोध परिहार' लेख द्वारा भली भाँति सिद्ध
कर चुके हैं कि मैथुनी तथा अमैथुनी हर प्रकार की
सृष्टि का कर्ता सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक
परमात्मा है। अब यह विचारना है कि आदि सृष्टि
में बिना माता पिता के मनुष्यादि प्राणियों के शरीर
का उत्पन्न होना असम्भव और बुद्धि विरुद्ध है अथवा
सम्भव और बुद्धि के अनुकूल।

हम ऊष्मज और उद्भिजादि की सृष्टि को बिना
माता पिता के (अमैथुनी) होने हुये प्रत्यक्ष देखते
हैं जिससे आदि सृष्टि में भी मनुष्यादि प्राणियों के
शरीर का बिना माता पिता के उत्पन्न होना सम्भव
है। क्योंकि जिस साध्य की सिद्ध के लिए संसार में
उदाहरण मौजूद हैं उसका होना असम्भव नहीं
किन्तु सम्भव है। असम्भव वह पदार्थ वा मन्तव्य
होता है जिसकी सिद्धि के लिए दृष्टान्ताभाव हो। अतः
यो कह ही नहा सकते कि आदि सृष्टि में मनुष्यादि
के शरीरों को अमैथुनी सृष्टि द्वारा होना असम्भव
है। मैथुनी सृष्टि में प्राणियों के शरीर के बनने की
जगह माता का गर्भाशय होता है, परन्तु अमैथुनी
सृष्टि में प्राणियों के शरीर बनने की जगह माता का
गर्भाशय नहीं होता। तब फिर यह अमैथुनी सृष्टि
किस प्रकार रची जाती है और किस तरह बुद्धि
के अनुकूल है? इसके समझने के लिए पहले मैथुनी

सृष्टि पर ध्यातपूर्वक विचार कीजिये कि इस समय मैथुनी सृष्टि किस प्रकार होती है।

मैथुनी सृष्टि में माता पिता सन्तानोत्पत्ति में केवल इतना ही तो करते हैं कि गर्भाधान संस्कार द्वारा रज और वीर्य को गर्भाशय में प्रवेश कर दें। वे इससे अधिक गर्भस्थ पिण्ड की रचना विषय में न तो कुछ जानते हैं और न कुछ करते ही हैं। रज और वीर्य के संयुक्त होने के पश्चात् गर्भाशय में शरीर रचना सम्बन्धी कार्य होता है, जैसा कि कहा है कि 'अन्नान्नैतत्। रेतसः पुरुष' अर्थात् अन्न से रेत (रज और वीर्य) बनता है (क्योंकि वे विशेष परमाणु जिनसे रज वीर्य बनते हैं परमात्मा ने अन्न के भीतर अन्य परमाणुओं के साथ साथ संयुक्त कर दिये हैं) और रज वीर्य से जीव का शरीर बनता है (यहाँ पुरुष का अर्थ जीव का शरीर है न कि जीवात्मा)। यह रज वीर्य जिनको गर्भाधान संस्कार द्वारा गर्भाशय में स्त्री, पुरुष संयुक्त करते हैं, मनुष्यादि के शरीर में भोज्य पदार्थ (अन्न) से उत्पन्न होता है। परन्तु नपुंसक पुरुष बन्धा किर्मा भी अन्नादि भोज्य पदार्थ खाते हैं उनके शरीर में रज वीर्य की उत्पत्ति क्यो नहीं होती इसका कारण यह है कि वह विशेष द्रव जो अन्न से रज वीर्य को बनाया करता है, नपुंसक और बन्धा के शरीर में नहीं होता, जिस के कारण उनके शरीर में जैसे रज, वीर्य नहीं बनते जो सन्तानोत्पत्ति का साधन हो। यह तो हम कह चुके हैं कि मैथुनी तथा अन्यैथुनी हर प्रकार की सृष्टि का कर्ता, रचयिता परम पिता परमात्मा है। माता या पिता गर्भस्थ पिण्ड के रचयिता या निर्माता नहीं होते। जिस माता के गर्भ में बच्चे के शरीर की रचना हो रही है, उसको तो इतना भी मालूम नहीं कि गर्भ में नपुंसक वचा बन रहा है या वीर्यवान पुरुष। यदि माता और पिता गर्भस्थ बच्चे के शरीर के निर्माता होते तो जिन परमाणुओं से उन्होंने गर्भस्थ पिण्ड में आंख बनाई थी ठीक उन्हीं। परमाणुओं से बच्चे की आंख फूट जाने पर एक ऐसी आंख फिर बना कर लगा देते जिससे पूर्ववत् देखने का काम लिया जाता जैसे

कि घड़ीसाज ने घड़ी बनाई है तो उस घड़ी साज को घड़ी के प्रत्येक पुरजे का हाल मालूम तथा बनाने की विधि का ज्ञान है। यदि उस घड़ी में से कोई पुरजा खो जावे या टूट फूट जावे तो वह घड़ीसाज उस घड़ी में फिर बैसा ही दूसरा नया पुरजा बनाकर बाल सकता है। परन्तु माता पिता ऐसा ही कर सकते हैं, अतः स्पष्ट है कि माता पिता सन्तान की उत्पत्ति में साधन मात्र हैं और जननी तथा जनक शब्दों का प्रयोग भी उपचार मात्र हैं। वास्तव में गर्भस्थ बच्चे के शरीर की रचना प्रकृति के परमाणुओं से सर्वज्ञ परमात्मा स्वामी करते हैं। जब यह सिद्ध हो गया कि प्रत्येक अवस्था में प्राणियों के शरीर का रचयिता परमात्मा है, तो उसको आदि सृष्टि में अन्यैथुनी सृष्टि द्वारा प्रत्येक प्रकार के शरीर की रचना आगे की जीवों के कर्मफल भोगार्थ तथा जीवों के कल्याणार्थ) सांचों के समान करना क्या दुस्तर है। जिन प्रकृति के परमाणुओं और अपने ज्ञान से रज, वीर्य के संयुक्त होने पश्चात् परमात्मा स्वामी आजकल गर्भ में शरीर रचना करते हैं उन्हीं परमाणुओं तथा अपने शुद्ध ज्ञान से आदि सृष्टि में (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र समुद्र, पर्वत, वृक्ष, वनस्पति औषधि आदि की सृष्टि के पश्चात्) प्रथम रज और वीर्य के परमाणुओं को अपनी सर्वव्यापकता और सर्व शक्तिमत्ता से संयुक्त करके माता के गर्भ के बिना पृथिवी स्वच्छ पर जरायुज अण्डज आदि की सृष्टिको जेरी और अण्डों के अन्दर करते हैं। उस समय ऐसा कोई शरीरधारी प्राणी तो होता ही नहीं जो उन पृथिवी-स्थ जेरी और अण्डों को बराब करदे या तोड़ फोड़ डाले। इन जेरी और अण्डों में परमात्मा स्वामी जीवों को (जो इस समय तक सुषुप्ति अवस्था की सी दशा में थे) उन उन के कर्मानुसार प्रवेश करते हैं। यह जेरी और अण्डे विशेष समय पर फटते हैं और इन में से बहुत से मनुष्य, पशु, पक्षी आदि शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं जिनमें स्त्री, पुरुष नर मादा सभी होते हैं। यह सृष्टि की पहली नसल होती है। इसके पश्चात् उन्हीं की पुरुषों द्वारा आगे मैथुनी सृष्टि का क्रम चलता है। इस अन्यैथुनी सृष्टि

की सिद्धि में अधवर्षेद में बहुत से मन्त्र आये हैं, जिनको विस्तार भय से अब नहीं लिखते फिर लिखेंगे। इस अमैथुनी सृष्टि विषय में ऐसी कौनसी बात है कि जिससे यह मान लिया जावे कि आदि सृष्टि में अमैथुनी सृष्टि का होना अयौक्तिक है। जो परमात्मा धर्तेमान काल में माता के गर्भ में सृष्टि रचना करता है वह व्याधि सृष्टि में माता के गर्भ के बाहर (बिना) अदिति प्रकृति में सृष्टि रचना क्यों नहीं कर सकता। और जिस अमैथुनी सृष्टि के उदाहरण ससार में प्रत्यक्ष देखने में आते हैं वह अयौक्तिक तथा असम्भव कैसे मानी जा सकते हैं? जीवों के शरीर का उपादान कारण अदिति प्रकृति और निमित्त कारण अनन्त विक्रम विष्णु भगवान् होने से इन दोनों को जीवों के माता पिता जननी जनक नाम से भी बोला गया है। वास्तव में तो जीवात्मा स्वयं अब और नित्य है। तथा प्रकृति (अदिति) को उस परमात्मा की पत्नी नाम से भी कहा गया है, जैसा कि—'चरुदित्ये विष्णुपत्न्यै'।

एक सत्य, सनातन वैदिक धर्म के अतिरिक्त ससार में जितने मत मतान्तर प्रचलित हैं उन सब मतों के आचार्यों ने इस वदानुकूल अमैथुनी सृष्टि के मन्तव्य को स्वीकार करके अपने धर्म पुस्तकों में इसका उल्लेख किया है। जो मतवादी सृष्टि को सकृत् मानते हैं जैसे पौराणिक ईसाई, मुसलमान, आदि वे तो आदि सृष्टि में अमैथुनी सृष्टि मानते ही हैं, जैसे पौराणिकों का चतुर्मुखी ब्रह्मा, तथा नील कण्ठ शिव और देवी आदि आर ईसाई मुसलमानों का आदि सृष्टि में हजरत आदम, तथा बहुत से फरिस्तों की उत्पत्ति मानना परन्तु जो मत सृष्टि की उत्पत्ति से इनकारी हैं, जैसे बौद्ध जैनादि उन को पहले यह सिद्ध करना चाहिये कि कोई विकारी पदार्थ किस प्रकार नित्य हो सकता है। और लिखने को तो इनके ग्रन्थों में भी लिखो है कि यथा मनुष्य दो प्रकार के हैं, एक गर्भज, दूसरे जो गर्भ के बिना उत्पन्न हुए देखो प्रकरण रत्नाकर २४१। जैसाकि—गन्धर्वरति पलिवाड। तिगाउ उक्कोसने जहम्भो। मुच्छिन्नम दुहाधि अन्तमुद्दु। अगुल असस्वभागतरु। और

भी लिखा है कि 'बक्रवर्ती एक ही समय में बिना माता पिता के (युवा अवस्था वाले) अनेक शरीर धारणकर लेता है'। तथा ऐसा भी लिखा है कि जो परमात्मा सदाचारी मनुष्य मरने के परचात् स्वर्गों में जाता है वहाँ पर वह बिना माता पिता के एक से एक देशीयमान शरीर को धारण करता है। क्या अपने धर्म ग्रन्थों के ऐसे ऐसे लेखों के होते हुए वैदिक अमैथुनी सृष्टि से इनकारी होना इनका निरा दुराग्रह और अन्याय नहीं है? अवश्य है। यह लोग कहा करते हैं कि इस प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करने से ईश्वर के नियमों में फरक आता है कि उसने पहिले बिना मातापिताके आत्मी पैदा किये और अब बिना मातापिताके पैदा नहीं करता। इस का उत्तर यह है कि हम ससार में देखते हैं कि 'टाइप' पहले हाथ से बनाया जाता है और फिर उस सत्य से टाइप बनते हैं। अतः यह अमैथुनी सृष्टि का मन्तव्य ईश्वर के विरुद्ध नहीं। तथा यह भी नियम है कि जिस प्रकार की सृष्टि की प्रलय हो जाती है फिर उसकी पहिले अमैथुनी सृष्टि हुआ करती है जैसे कि संसार में भी देखा जाता है कि जिन गिजाई, जू आदि की प्रलय हो जाता है तब उनका पुन अमैथुनी सृष्टि होती है। क्यों कि मनुष्यादि क शरीरों की सृष्टि की अभी प्रलय नहीं हुई है इस लिए उनकी मैथुनी सृष्टि का क्रम जारी है। प्रलय होने परचात् पुन आदि सृष्टि में इनकी प्रथम मैथुनी सृष्टि का क्रम चल पड़ेगा। यह कोई अयौक्तिक या असम्भव विषय या मन्तव्य नहीं।

आत्म-परीक्षण आवश्यक है ?

बहुत मनुष्य ऐसे हैं कि जिनको अपने दोष तो नहीं देखते, किन्तु दूसरों के दोष देखने में असुच्युक्त रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं, क्योंकि प्रथम अपने दोष देख भाल कर दूसरे के दोषों में टट्टि देके निकालें।

आदिम जगद्गुरु कौन— आर्या वर्त अथवा मित्र ?

(ले०—राज्यरत्न मा० आत्मारामजी अमृतसरी)



भी जानते हैं कि संसार के इतिहास में दो देशों के ऐसे नाम हैं जिनके नामों में शुद्ध वा अशुद्ध संस्कृत शब्द पाये जाते हैं। एक ईरान दूसरा आर्यावर्त्त। सब विद्वानों का मत है कि ईरान आर्य-

स्थान का अपभ्रंश है।

प्राचीन काल में ईरान की आदिम भाषा शुद्ध संस्कृत थी वा इसका अपभ्रंश ? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि वह शुद्ध संस्कृत का प्रथम अपभ्रंश थी। इसकी साक्षी में आप हिन्दो भाषा के नामी इतिहास तिमिर नाशक को जो स्वर्गवासी श्री राजा शिवप्रसाद जी सी० आई० ई० का रचा हुआ है देख सकते हैं। इसमें "अदम दाराबुश चातिया 'बौमिया' 'आर्य आर्य पुत्र' ।" लिखा हुआ है जो प्राचीन ईरानी भाषा का दर्शक है। हम तो क्या स्वयं ग्रन्थकर्त्ता राजाजी साहब का मत है कि उक्त वचन भारतीय शुद्ध संस्कृत का प्रथम अपभ्रंश है। शुद्ध संस्कृत का इदम् वहाँ पर अदम, और चात्रिय का वहाँ पर चातिया तथा भूमिया का बौमिया हुआ इत्यादि जो विदेशी पूर्व पक्षी कहा करते थे कि भारतीय आर्य Per-ia (ईरान) से आकर यहाँ बसे, उनके मत का खण्डन उक्त लेख से होगा।

वन्दई साप्ताहिक अंभोजी पत्र 'टाइम्स आ-इण्डिया में आज तक एक पूर्व पक्षी स्वदेशी महाशय विद्वान् के अनेक लेख ५ मालाओं के रूप में अंभोजी में निकल चुके हैं जिनका उद्देश्य एक शब्द में ईजिप्ट (मिस्र) देश की प्राचीन भाषा को भारतीय संस्कृत भाषा के स्थान में आदिम जगद्गुरु सिद्ध करने के लिये चेष्टा है। १८-३३ के चौथे अंक में उक्त लेखक महोदय ने अथर्ववेद मण्डल १० सूक्त १०६ के ७ वें

मन्त्र में विद्यमान 'ऋभू' शब्द की तुलना मिसरी भाषा के पुराने शब्द 'लेपस' से करते हुए दर्शाया है कि लेपस दूसरे वर्ग पर वैदिक ऋभू का अपभ्रंश है। प्रथम वर्ग पर इसका अपभ्रंश इनकी कल्पना में Ribhus (रिभस) हुआ होगा और यह अन्तिम अपभ्रंश लेपस Lapsus है।

समीक्षा—जो बात प्रत्यक्ष प्रमाण में नहीं आसकती वह शब्द प्रमाण अथवा शब्द प्रमाण के अन्तर्गत इतिहास में भी नहीं मानी जा सकती। हम कुछ दृष्टान्त जा प्रत्यक्ष प्रमाण के अन्तर्गत है देकर उक्त तत्व पर विचार करते हैं।

(१) इंग्लैण्ड में एक माता (मम साहब) अपने बालक को प्रथम धार मद्र (mother) शब्द पूर्ण शुद्ध बोलना सिखाना चाहती है। वह वक्ता पहिले कुछ दिन तो इसका अपूर्ण उच्चारण मामा जरूर करेगा। फिर इसका अपभ्रंश उच्चारण मड्डर madder करेगा। अन्त को मद्र mother शुद्ध रूप में कहने लग जायेगा। क्या इस प्रत्यक्ष प्रमाण का कोई भी विद्वान् खण्डन करके यह कह सकेगा कि बालक, जो अपूर्ण वा अपभ्रंश भाषा भाषी है, अपनी माता का शिक्षक वा विद्यागुरु है ? नहीं कदापि नहीं। हा टाइम्स आफ इण्डिया पत्र के उक्त लेखक महोदय ही यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध मान सकते होंगे। तभी तो उन्होंने एक असभ्य देश की अपूर्ण वा अपभ्रंश भाषा तथा रूढ़ि भाषा को जिसका नाम मिसरी भाषा है, आर्यावर्त्त की विशेष धातुजन्य अति उत्कृष्ट अपूर्ण भाषा संस्कृत वा देववाणी को अपभ्रंश भाषा की चेली सिद्ध करने का साहस किया है। परन्तु यह स्मरण रहे कि वेद संस्कृत में हैं और संस्कृत का एकअपूर्व गुण यह है कि इसके सब

शब्द धातु प्रत्ययजन्य होने से सार्थक हैं। अतः इसको हम यौगिक भाषा भी कह सकते हैं। मिसरी भाषा निःसंदेह इस की अपभ्रंश है। यही नहीं, परन्तु वह रूढ़ि भी। अतः एक दर्जन शब्द जो मिसरी भाषा में वहाँ के राजाओं के नाम आप पाते हैं वह सब के सब रूढ़ि हैं और वैदिक तथा लौकिक संस्कृत भाषा का अवतार वा अपभ्रंश है।

इनसे बढ़कर अनेक विद्वान् इनके मत पोषक नहीं। बंगभूषण श्रीयुत डाक्टर अविनाशचन्द्रदासजी एम० ए० पी० एच० डी ने एक सुप्रसिद्ध अनुसंधान पूर्ण अति उत्तम ग्रंथ ऋग्वेदिक कलचर Rigvedic culture में वह आर्यावर्त का मिसर के स्थान में आदिमजगत् गुरु सिद्ध किया है। पाठक उनके शब्द ध्यान पूर्वक देखें।

“ It is therefore extremely misleading to compare the rate of progress made by some modern nations, with that made by an ancient people, like the Indo-Aryans, who having been completely cut off from the outer world, had through unaided exertions to develop a civilisation of their own ”

“ Only those Indo Aryan tribes who emigrated to foreign countries took with them a portion of their culture. But this process also helped to uplift the ancient world and to spread civilisation over Westetu Asia, Egypt, and Europe ”

इसके अतिरिक्त श्री विभूति भूषणदत्त द्वारा लिखित और कलकत्ता यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित पुस्तक सुल्ब सूत्रों की सायंस in the Science of the Sulba के पृष्ठ ०पर लिखा है—

“ It seems to be an instance of Hindu influence on Greek—Geometry. For the idea that Greek term is neither of the greeks, nor of their acknowledged teachers in the Science of Geometry, the Egyptians, but it is characteristically of Hindu origin ”

अर्थान् यूनानियों के रेखागणित पर हिन्दू रेखा गणित की ज्ञाप है। इसके अतिरिक्त श्री प० भगवद्दत्त वी० ए० रिसर्चस्कालर लाहौरने अपने वैदिक वाङ्मय का इतिहास ग्रंथ में स्पष्ट लिख दिया है—“भारतीय आर्य लोग सदासे अपने मृतको को जिलाते रहे हैं। यदि आर्यलोग कहीं बाहर से आकर भारत में बसे होते, तो वे अपने मृतको को दवाते ह। रहते ।”“आलिगी, विलिंगी उस उरुप्रल, और ताबुव, शब्द चालडियन भाषाके हैं।

पर यह सब शब्द भाषा विज्ञान की दृष्टि से पीछे के हैं। उनका पहिले कोई और रूप था।

जूटा न खाए ?

न किसी को अपना जूटा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे। न अधिक भोजन करे और न भोजन किये परचात हाथ मुंख घोये बिना कहीं इधर उधर जाय।

जगन्नाथ चानणराम की सुप्रसिद्ध

अण्डी चादरें

आर्यमित्र तथा अन्य समाचार पत्रों द्वारा प्रसंसित श्रद्धा रेशमी सुन्दर मुलायम मजबूत आसाम कारी से भी बढिया सुत की एक भी तार नहीं इसलिए पूजा पाठादि के समय भी पहनी जाती है ६ गज लम्बे ११ गज चौड़े चादर जोड़े का मूल्य ६) ६० मय महसूल बाक ना पसन्द हो वापिस नमूने के तौर पर एक जोड़ा अवश्य मंगा कर देखिए।

जगन्नाथ चानण राम

विभाग न० ५१ लुधियाना पंजाब

साम्यवाद का वास्तविक स्वरूप

[लेखक—श्री बा० पूर्णचन्द्रजी एस्कोकेट]

—:—

सा
माजिक संगठन एक आवश्यक विषय है। इसका प्राचीन वैदिक स्वरूप वहाँ व्यवस्था है। जिस समय वैदिक वर्ग-व्यवस्था का प्रचलित स्वरूप लोप हो गया उस समय उसके स्थान में अनेक सामाजिक संगठन के उपाय काम में लाए जाने लगे। आज पश्चिम में सब से बड़ा प्रबल प्रचार साम्यवाद का है और भारतवर्ष में भी इसका प्रचार आरम्भ हो गया है। राष्ट्रीय महासभा का एक अंग इसी बात के प्रचार के लिए है। साम्यवाद एक बहुत प्रचलित शब्द है, परन्तु इसके असली अर्थों को बहुत कम लोग समझते हैं। इस बात के निर्णय करने के लिए कि साम्यवाद मनुष्य समाज को वास्तविक रूप में सुख और शान्ति दिला सकेगा या नहीं, यह जानना आवश्यक है कि साम्यवाद के अन्तर्गत कौन कौन से सिद्धान्त आते हैं। यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि संसार में इस समय बड़ी संख्या भूखे, दलित और दुखियों की है। जहाँ कोई बाद मनुष्य मात्र को यह आशा दिलाता है कि उसके अनुयायी होने से उनके दुःखों का अन्त हो जायगा वहाँ जनता उस और मुक बाती है और उस 'वाद' के प्रचार में सहायता मिल जाती है, मनुष्य जब अपने अधिकारों का दुर्ब-पयोग करते हैं—'जब धनी लोग अपने धन के सहारे निर्धनों पर अत्याचार करते हैं, जब पूँजीपति मस-दूतों पर अत्याचार करते हैं तो यही जी चाहता है कि अधिकारों का दुर्बपयोग करने वालों से अधिकारों का, अत्याचार करने वालों से धन का और अत्याचार करने वाले पूँजीपतियों से पूँजी का अपहरण कर लिया जावे। सब मनुष्य बराबर हैं। सब को एक से अधिकार हैं और न कोई ऊँटा है और न कोई बड़ा, न कोई राजा है और न कोई प्रजा—यह बाव

बदी भीठी है। इन्हीं को लक्ष्य में रखकर साम्यवाद के निम्नलिखित छ. सिद्धान्त निर्धारित किए गये हैं।

(१) व्यक्ति के मुकामिले पर समाज और समुदाय को विशेषता देनी चाहिए। किसी समुदाय में कोई व्यक्ति कुछ मूल्य नहीं रखता। उसके व्यक्तित्व को मिटा देना ही सामाजिक उन्नति का केन्द्र है और सामाजिक हित है। जब व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व का ध्यान रहेगा। उनमें स्वार्थ रहेगा और संसार में दुःख बना रहेगा। व्यक्तियों को सामाजिक संगठन के इतना आधीन हो जाना चाहिए कि उनका व्यक्तित्व शेष न रहे। इस सिद्धान्त को अंग्रेजी में Exaltation of the community above the individual कह सकते हैं।

(२) Equalisation of human condition अर्थात् मनुष्यों की दशा को समान बना देना।

(३) Elimination of the capitalist अर्थात् पूँजीपतियों को समाज से मिटा देना।

(४) Expropriation of the land-lord अर्थात् जमींदारों को अथवा जमीन के मालिकों के अधिकारों को नष्ट कर देना। कोई व्यक्ति किसी-इ'ब जमीन को अपनी न कह सके। यह इसका अभि-प्राय है।

(५) Extinction of private enterprise अर्थात् व्यक्तिगत उद्योग की जड़ काटना।

(६) Eradication of competition अर्थात् आपस की जड़ों जड़ों को दूर कर देना।

साम्यवाद के उपर्युक्त छ अंग ऐसे हैं कि जिन पर अलग लेख लिखे जा सकते हैं। परन्तु इनके सम्बन्ध में यहाँ यह कहना पर्याप्त है कि मनुष्य अपना व्यक्तित्व स्वतंत्रता चाहता है और सामाजिक संगठन भी। सामाजिक संगठन का आवश्यकता

प्रत्येक व्यक्ति को सुखी बनाने की है यदि सुख भोगने की आवश्यक स्वतंत्रता न रहेगी तो ऐसे संगठन से क्या लाभ ? मनुष्यों की समाज और पशुओं के कुएड में कोई भेद न रहेगा। दूसरा सिद्धांत भी भ्रम मूलक है। मनुष्यों की राय एकसी नहीं की जा सकती उन में स्वाभाविक भेद है। सामाजिक बल शारीरिक बल, मानसिक बल और आर्थिक बल सब के भिन्न भिन्न हैं। मनुष्यों में सबको एकसा योग्य मानना पूर्व जन्म के सिद्धांतों में बट्टा लगाना है। सामाजिक संगठन की सुन्दरता इसमें है कि प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति का एक सा अवसर दिया जावे। परन्तु परिणाम एक सा नहीं होता अर्थात् Opportunity can be equalised but not the results—यदि एकसा अवसर न दिया जायगा तो भी अन्याय है, परन्तु यदि अधिक योग्य को उसकी योग्यता का उचित फल न मिला तो यह उस से भी अधिक अन्याय है। किसी परीक्षा में सब विद्यार्थियों को ३३ पीसदी अंक यदि आँसू मीच कर दे दिये जायें तो वह परीक्षा, परीक्षा न रहेगी।

तीसरे और चौथे भी बड़े भयंकर सिद्धांत हैं। पूंजीपतियों से पूंजी का छीनना और जमींदारों से जमींदारी छीनना अत्यन्त अन्याय है। जिसने परिश्रम से धन पैदा किया है या जमींदारी कमाई है वह उनके भोगने का अधिकारी है। पाँचवें और छठवें पहिले चारों का परिणाम है। जब किसी को उसकी महनत का फल न मिलेगा तो वह मिहनत करना छोड़ देगा उस समाज के सब व्यक्ति एक से आलसी हो जायें और जो किसी की विशेष योग्यता से जो कोई राष्ट्र या समाज लाभ उठा सकता है तो वह उससे वंचित रह जावेगा। पाँचवें और छठवें को अर्थ शास्त्र की दृष्टि से हम मूल्यता कह सकते हैं कि जो पागलों के लिये रोचक है। तीसरा और चौथा समाजकार की दृष्टि से बहुत गिरा हुई बातें हैं जो जुर्म करने वाले को आकर्षित करती हैं। पहिलो दो देखने से रोचक हैं परन्तु भ्रम मूलक। साम्यवाद के प्रचार से जो आरिणों परिश्रम में हुई हैं वह इस प्रकार बर्णन की जा सकती हैं।

(१) मानसिक हानियाँ—

(अ) Distortion of objective Facts साम्यवादी अपनी सफलता के लिये भूतकाल को वर्णमान की अपेक्षा बहुत बुरी बतलाते हैं। मजदूरी का आवश्यकता से अधिक मूल्य रखने वाला चित्र खींचते हैं। पूंजीपतियों के अत्याचारों को प्रगट करने के लिये मन गढ़त संख्याएँ बना लेते हैं।

(ब) Misinterpretation of human nature मनुष्य स्वभावका गलत समझता है। समाजको व्यक्ति के ऊपर विशेषता देने से मनुष्य के अन्दर से स्वाभिमान और पारिवारिक प्रेम जाता रहता है।

(२) Economic fallacy अर्थ शास्त्र की दृष्टि से गलतसिद्धांत प्रचलित करता है। उदाहरण के लिये यह वैकिक शक्तियों के मूल्य को बहुत कम स्थान अपने सिद्धांत में देते हैं। ईश्वर के प्रदान किए हुए भाग, हवा, पानी का कोई मूल्य ही नहीं समझते। दूसरे किसी चीज के उत्पन्न करने में हाथ की महनत का इतना अधिक मूल्य समझते हैं जो अनुचित है और धन का मूल्य बहुत घटा देते हैं। कोई भी चीज जो राष्ट्र के लिए उपयोगी है बिना महनत और धन के उपयोग के पैदा नहीं हो सकती। दोनों ही अपना अपना स्थान रखते हैं।

(३) Industrial defect त्रिजगत की दृष्टि से हानियाँ—

(अ) साम्यवाद से धन के उपार्जन का उत्साह जाता रहता है।

(ब) धन को विभाजित करने के लिए कोई सिद्धांत निरचत नहीं रहते। जैसे नीचे लिखे तीन आचार धन के विभाग के लिए कहे जाते हैं—

(क) To each as much has to any one else अर्थात् सबको एकसा मिल।

(ख) To each according to his merit हर एक को उसकी जरूरत के मुताबिक मिले।

(ग) to each according to his need तीनों ही आचार पृथक् पृथक् रूप में भ्रम मूलक हैं सबके उचित समावेश से ही एक ठीक सिद्धांत निवारित हो सकता है।

(४) साम्यवाद से वह लाभ नहीं हो सकता जो धन के परिवर्तन से होता है। यदि एक राष्ट्र का

घन दूसरे राष्ट्र में जायगा तो दोनों का लाभ होगा।

(४) Social defects अर्थात् सामाजिक बुराईयों

(अ) स्वतन्त्रता में हानि, आजादी के प्रबल प्रचारक स्वतन्त्रताको पैरो तले कुचल दते हैं। साम्यवाद की गुलामी का दुःख बड़ी अनुभव कर सकत हैं जिन्होंने रूस आदि पश्चिमी देशों का दशाको स्वयं देखा है या प्रमाणात् पुस्तकों में उसके इतिहास को पढ़ा है।

(ब) पारिवारिक सौठनका छिन्नभिन्न कर देता है। यह विवाह का विरोधी और free love (उच्छल प्रेम) का पाषक है

(स) धर्म का शत्रु है। धर्म को उन्नति में बाधक समझता है और धार नास्तिकता इस का आवश्यक अंग है। Karl-Marx का कहना है Religion and communism are in competable Religion is the opium of the people अर्थात् धर्म और साम्यवाद का।

स्वाभाविक विरोध है। धर्म मनुष्यों के लिये अफीम है।

(५) Moral and political defects—सदाचार और राष्ट्रीय उन्नति की दृष्टि से महा हानि कारक है इसके आधार पर कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता और न आज तक ही की। पाँचे दिनों तक भूखे और दलितों के सहारे— शार मचाता है और फिर चैठ जाता है। विस्तारभय से इस विन्मृत विषय का इस छाटे से लेख में अधिक विवेचना नहीं की जा सकती। ऊपर लिखी हुई कुछ पक्तियों से यह पता चल सकता है कि साम्यवादका वर्तमान प्रचलित स्वरूप अर्थात् वैदिक और यह सारा भ्रम ऋषि दयानन्द के बनाये हुये ध्याय समाज के दश नियमों में से दशवें नियम को न समझकर मन गदब सिद्धांत प्रचलित करना है।

नियम दशवों— सामाजिक सर्गहितकारी नियम पालन करने में सब को परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहे।

हमारी शाखा दिल्ली में नई सड़क पर खुल गई है

जाब अर्द्धशताब्दी के अवसर पर सत्यार्थप्रकाश मुफ्त
बाँटकर घर घर प्रकाश फैला दो

१०० प्रतियों लेने पर।) प्रति पुस्तक ५०० के लेने वाले क नाम सुख पृष्ठ पर छापे जावेंगे संस्कार विधि पूरी ३)

महर्षि दयानन्द का प्रामाणिक जीवन चरित सजिल्द ६) अजिल्द ५॥) चारों वेद हिन्दी अनुवाद सहित १४ भागों में प्रति माग ४) स्वार्थी ग्राहकों से ३)

चरक हिन्दी अनुवाद सहित इभागों में ४) १० प्रति भाग

योग मार्ग	३)	जीवन पथ	१-)
वेदोपदेश	॥)	वेद में शिवा	॥)
भारतीयसमाज शाखा	१)	यजुर्वेद मुद्रक	॥॥)

इनके अतिरिक्त अन्य हर प्रकार की धार्मिक व स।म जक पुस्तकों हमारे यहाबहुत किकावत से मिलती हैं मयदल के १०) रुपये के हिस्से लेकर लाभ उठ वें अंर. वेद प्रचार का बश मुफ्त में लूटे।

ध्याय साहित्य मयदल लिामदक अजमेर।

उपहार १९३६ प्रकाशित होगये

पहली नवम्बर तक आर्डर देने वालों को
भारी विधायत

आर्यडायरी हिंदी

हम प्रति वर्ष आर्य संसार के लिए आर्य डायरी प्रकाशित करते हैं। जिसके गुणों से प्रेमी माहक भली भांति परिचित हैं। इस वर्ष भी आर्य जगत् की पूरी जानकारी के लिए रेल व डाक के कानून किराया रेल व माल आदि इसमें दर्ज है। इतना सर्वप्रिय और उपयोगी होने पर भी सुनहरी जिल्द के साथ। मुख्य 1- प्रति डायरी। पहली नवम्बर तक लेने वालों के साथ २।।। दर्जन

आर्य कलेंडर हिंदी

यह कलेंडर हम ने बड़े परिश्रम से तैयार कराया है। ३६ इञ्च लम्बा और २२ इञ्च चौड़ा यह कलेंडर पांच मनोमोहक रंगों में बड़िया आर्ट पेपर पर छपा है। इससे बड़िया और सुन्दर कलेंडर आपका और कहीं नहीं मिलेगा। अंग्रेजी और देसी तारीखे अलग-अलग रंगों में दी गई हैं जिससे इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। कलेंडर के बारे में और प्रसिद्ध आर्य नेताओं के चित्र दिए गए हैं। मध्य में ऋषि का तिरंगा चित्र है, वह चीख ऐसी है कि हार्यों हाथ बिक जाए। मुख्य 1) प्रति कलेंडर, पहली नवम्बर तक लेने वालों को २।। दर्जन।

अलेंडर— मोटी तारीखों वाला भी छपा जायगा जिसके बीच में एक तीन रंगी तस्वीर होगा जिसमें भारतमाता का हृथकड़ी लगी हुई हांसी और स्वामी दयानन्दजी वेद के प्रकारा से उसे तोड़ रहे हैं, साथ ही महात्मा गान्धी भी उसी रास्ते का अनुकरण कर रहे हैं। कीमत ३- प्रति कलेंडर, पहली नवम्बर तक लेने वालों को १।। दर्जन।

राजपाल एगड संज़

आर्य पुस्तकालय सरस्वती आश्रम अनारकली लाहौर

ब्रह्मचर्य के उपासक

(ले०—विद्यावाचस्पति श्री हरिनाथजी शास्त्री)



इ” शब्द का अर्थ परमात्मा अमृत ज्ञान तथा बुद्धि आदि है। “चर्य” का अर्थ आचरण करना, योग्य व्यवहार करना, पुरुषार्थ करना आदि है। अर्थात् ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ परमात्मा की प्राप्ति के योग्य व्यवहार करना ज्ञान की बुद्धि के लिये पुरुषार्थ तथा अभिवृद्धि के लिये प्रयत्न करना। उप-

युक्त बातों की सिद्धि शारीरिक, आत्मिक व मानसिक शक्ति सम्पादन से ही हो सकती है। अर्थात् मानव शरीर जो कि बहुविध शक्तियों का अटूट भण्डार है उन शक्तियों का उच्यर्थ न होने केरु उनका केन्द्रस्थान में एकत्रीकरण होना। अपनी किसी भी प्रकार की शक्ति को किसी भी अवस्था में व्यर्थ न जाने देना चाहिये, अपितु अपने शरीर के रोम रोम पर पूर्ण अधिकार करने अर्थात् उनको अपने वशमें रखने से ही यह सम्भव हो सकता है। अत किसी भी इन्द्रिय द्वारा ऐसा कार्य करना जिससे शक्तिका हास हो अपने पैरो आप कुल्हाड़ी मारना है। क्यों कि ब्रह्मचर्य ही शारीरिक आत्मिक व मानसिक विकास का सञ्चय हेतु है, वही सम्पूर्ण उन्नति का मूल है। इसके आचरण से ही पुनरपि हम खाई हुई शक्तियों का प्राप्ति कर सकते हैं।

ब्रह्मचारी चार प्रकार के होते हैं। उत्तम (आदित्य संज्ञक ४८ वर्ष तक) मध्यम (रुद्रसंज्ञक ४४ वर्ष तक) निकृष्ट (वसुसंज्ञक २४ वर्ष) इन के अतिरिक्त ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी वे कहते हैं जो आजन्म अविवाहित रहते हुए अपने वीर्य को आध्यात्मिक शक्ति के जाग्रत करने में लगाते हुए संसार का उपकार करते हैं इन्हीं को नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी कहते हैं। तात्पर्य यह है कि वीर्य जलम्बरूप होने के कारण पतला होता है अत इस्का निम्नस्थल बहती होना अनिवार्य है, परन्तु

जिस प्रकार जल प्रवाह को जल प्रपात (water fall) के रूप में परिवर्तित करके उसके द्वारा विद्युत् शक्ति को प्राप्त किया जाता है, तद्वत् ही प्रबल मानसिक सकल्प शक्ति द्वारा वीर्य प्रवाह को नीचा न होने देकर अपने घुटवश द्वारा यागाभ्यासादि से ऊर्ध्वगति कर मस्तिष्क तक पहुँचाना जिससे मस्तिष्क भी शक्तिसम्पन्न हो तथा मुख की दीप्ति में भी अपूर्व वृद्धि हो। जिस प्रकार दीपक का तेल बत्ती द्वारा ऊपर चढ़कर ज्योति रूप में परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार मस्तिष्क की ओर प्रगति करता हुआ वीर्य भी तेजो रूप होकर मुख की कान्ति में वृद्धि करता है। बस, उपरोक्त गुण्य सम्पन्न ब्रह्मचारी भी अपनी सम्पुर्ण शक्तियों को प्रबल करता हुआ, वीर्य का सर्व श्रेष्ठ लाभ प्राप्त करता हुआ, दिव्य तेज से परिपूर्ण होकर भूमरुद्ध पर अलौकिक चमत्कार प्रदर्शित करता है। “मरणं विन्दुप्राप्तेन जीवनं विन्दुधारणात्” इस सूक्ति के निगूढ रहस्य को हृदयङ्गम करता हुआ मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। जिस प्रकार भारतीय इतिहास में भीष्म पितामह व स्वामीदयानन्द का चदाहरण हमारे सामने है। चूँकि वीर्य में एक ऐसे नवीन प्राणों का उत्पन्न करने की शक्ति है जो कि अपने दिव्य तेज से संसार को चकित कर सकता है यदि उस शक्ति को उत्पादन पर व्यय न करके अपने ही शरीर में संचरित किया जावे तो उससे शारीरिक बुद्धि के साथ साथ मानसिक शक्ति में भी चमत्कारिक परिवर्तन होगा।

प्राचीन कालीन ऋषि मुनियों में ऐसी सिद्धि भी कि वे शुक्राशय के भर जाने पर (जब कि वहाँ से वीर्य बाहर निकलने लगता है) उस शुक्र को पुनरपि रक्त में प्रगति कर जहाँ कौण्य होती हुई अपनी जीर्यसम्पत्त की रक्षा करते थे वहाँ साब ही योग क्षेमपूर्वक इससे अन्य लाभ भी उठाते थे।

क्योंकि उनका सारा जीवन ही ब्रह्मशक्ति की उपासना में व्यतीत होता था, तथा प्रतिक्षण आध्यात्मिकता से परिपूर्ण रहता था। क्योंकि देहस्थ वीर्य का स्वाभाविक धर्म है कि इसे अपनी जिस शक्ति की वृद्धि में लगाओगे वहीं यह चमत्कार कर देगा। यदि हम दृढ़ संकल्पशक्ति द्वारा स्नायुओं की पुष्टि की ओर इसको लगाना चाहेंगे तो हमारे स्नायु शक्तिमान् होंगे। इसीप्रकार यदि स्मृति शक्ति के जाग्रत करने में इसे लगायेंगे तो हमारी यह शक्ति ही वृद्धि प्राप्त करेगी। यदि कुवासनाओं में वीर्य की प्रगति करेंगे तो फिर हमारा रोम रोम वासनामय हो जायगा, हम प्रतिक्षण कुवासनाओं में सने हुए इसका शिकार बन जायेंगे क्योंकि मानवीय शरीर की उन्नति या अवनति का एक मात्र आधार वीर्य ही है। हमें स्वामी दयानन्द के ऊपर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने इस अमूल्य धन की प्रगति ऊर्ध्वमार्ग द्वारा मस्तिष्क में करके भौतिक जगत् से आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश किया था तथा इस वासना प्रधान युग में भी एक चमत्कार कर ससार को चकित कर दिया था।

मानव-जाति के इतिहास का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से हमें यह मालूम होता है कि अब तक ब्रह्मचर्य का उच्चादर्श मालूम करनेवाले गिने चुने ही हुए हैं। इसके साथ ही यह भी प्रकट हो रहा है कि इस कसौटी पर खरा उतरना सामान्य नहीं है। बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामह आदर्श ब्रह्मचारी शंकराचार्य तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे नर रत्नो और महात्माओं की यह सामर्थ्य थी कि वे अपने को इस अग्नि परीक्षा में खरा प्रकट कर सकें, क्योंकि वर्षों कठिन तपस्या करनेवाले तथा कन्दमूलादि आहार करनेवाले विश्वामित्रादि ऋषिगण भी काम वेग के मौके पर शिकार बन गये और उससे परास्त हो गये। आदर्श ब्रह्मचारियों ने ही ब्रह्मचर्य शक्ति द्वारा समुपार्जित लोकोत्तर चरित्र से संसार को चमत्कृत कर दिया। जिस परशुराम ने २१ बार अपने आरच्योत्पादक

बाहुयुक्त से शक्तिशाली त्रिज्वरशो से पृथ्वी को शून्य कर दिया था, उरी को बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामह की अद्वितीय ब्रह्मचर्य शक्ति के सामने मुंह की खानी पड़ी। पाण्डव पक्ष का गौरव स्थान अर्जुन जिसने कि विविध अवसरों पर अपनी शक्ति द्वारा सथियों को अपनेको बार नीचा दिखाया था, जिसे अपनी शक्ति का अपूर्वा गर्व था, महाभारत युद्ध में वृद्ध भीष्मपितामह की ब्रह्मचर्य शक्ति के समक्ष किकर्तव्य विमूढ़ और हतप्रभ हो गया। डेढ़सौ वर्ष की अवस्था होने पर भी वृद्ध भीष्म में १० सहस्र सैनिकों को अकेले मारने की सामर्थ्य केवल ब्रह्मचर्य के कारण थी। इसी प्रकार स्वामी शंकराचार्य की शक्ति के आगे विराधियों के दल के दल हारते गये। स्वामी दयानन्द का मिह व्याघ्रादि से भरे हुए जंगलों में पकाकी विचरण करने का रहस्य भी इसी दिव्य ब्रह्मचर्य शक्ति में निहित है। इसी के आधार पर उन्होंने काशीस्थ विद्वन्मण्डल का कुछ ही क्षणों में परास्त कर दिया था। इसी के विरवास पर उन्होंने थोड़े से ही वर्षों में ग्रन्थ लेखन तथा भाषण द्वारा जो अद्भुत कार्य कर ससार को चकित किया था उतना उससे दुगुने समय में भी उनका उत्तराधिकारी आर्य समाज न कर सका। कहां तक जताया जावे इस दिव्य शक्ति के उपासकों ने ससार को चकित कर दिया।

ब्रह्मचर्य के विषय के जो नियम हमारे शास्त्रों में मिलते हैं वे केवल मिद्वान्तवाद के ही नहीं हैं। अपितु विविध स्थानों में पण कुटीरों के रूप में विद्यमान परीक्षण शालाओं में उनकी भलीभांति परीक्षा हो चुकी है तथा तो हम देखते हैं कि ब्रह्मचर्य का जो उच्च आदर्श उन्होंने हमारे सामने रक्खा था केवल मात्र वही मानव जाति के सर्वांगीण विकास में सच्चा सहायक व मित्र हो सकता है। आज हम उनके धतये हुए उच्चादर्श (ऊर्ध्वरेतस्व) को तो बिलकुल ही भुला चुके हैं। २५ वर्ष का जो निकृष्ट ब्रह्मचर्य था, आज के दिन उससे भी कोसों दूर पड़े हुए अपनी मौत की चाँदियों गिन रहे हैं। 'ऋषु-

कालाभिगामीस्यात् स्वदार निरत सदा । पर्ववर्जं
 प्रजेचेर्नां तद्व्रतो रति काम्यया” यह जो नियम
 उन्होने बनाया था उसकी भी किञ्चिन्मात्र परवाह
 न करते हुए, आत्म प्रवचना में प्रवृत्त हो रहे हैं, और
 उनकी आत्माओं को तड़पा रहे हैं। तभी तो आज
 हमारी अस्थिकहालावशिश्ट, रागप्रसूत देहमात्र रह
 गई है। जो संतानोत्पत्ति ईश्वराय सृष्टि का पवित्र
 तम कार्य है, वहाँ पर ही हम कामुकता व लालुपता
 वश ईश्वरप्रदत्त अधिकार का दुरुपयोग करत
 हुए, भावी सन्तान के प्रति बहुत बड़ा अन्याय
 कर रहे हैं तथा भारत के सौभाग्य वृद्ध की मूल मे
 छाड़ डाल रहे हैं। ‘नतपतस्य इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं
 तपोत्तमम् । उर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवा न तु
 मानुष ॥’ तप कोई दूसरी चीज नहीं है, ब्रह्मचर्य
 ही सर्वोत्तम तप है, क्योंकि जो उच्च साधना द्वारा
 उर्ध्वरेता की पश्चात् का प्राप्त कर लेता है वह मनुष्य
 नहीं अपितु देवता है। ब्रह्मचर्य की शक्ति हा भली
 प्रकार विवेकपूर्ण रीति से कार्यान्वित किये जाने
 पर मनुष्य को देवता कोटि में पहुँचा देती है।
 असाध्य कार्य भी इसी के द्वारा सुसाध्य बन सकता
 है। मानवीय विकास के लिये इससे बढ़ कर दूसरा
 मार्ग नहीं है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा पुनरु
 जीवित गुरुकुल आश्रम प्रणाली का भी मुख्य
 उद्देश्य शिष्यवृन्द को ब्रह्मचर्य शक्ति का सच्चा
 उपासक व अनुगामी बनाना ही है। यह परिपाटी
 हमारे यहाँ अति प्राचीनकाल से चली आ रही है।
 गुरुजन विद्यार्थियों को प्रत्येक प्रगति का सूचमरीत्या
 निरीक्षण किया करते थे तथा जहाँ कहीं भी स्वलित
 होता, तत्काल सावधान कर देते थे। उनका सिद्धान्त
 था कि विद्यार्थी को प्रारम्भ से ही वह शिक्षा देनी
 चाहिये जो उस को सर्वज्ञान उन्नति में सहायक हो
 तथा उसको प्रत्येक प्रकार की जिम्मेवारी अपने
 ऊपर समझते थे। आचारं ‘प्राहयत्याचिनोत्यर्थानिति
 आचार्यं ।’ आचार्य शब्द की व्युत्पत्ति ही इस बात
 को प्रकाशित कर रही है कि विद्यार्थी के आचार निर्माण
 में आचार्यका मुख्य स्थान है। वही इसके सदाचरण
 का सस्थापक तथा पोषक होता था। साथ ही स्वयं
 भी सदाचारी ब्रह्मचारी बनता है क्योंकि वेद की

आज्ञा है कि ‘आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमि
 च्छति” यह बात नहीं कि विद्यार्थी ही ब्रह्मचर्य का
 आचरण करे अपितु आचार्य भी स्वयमुपार्जित
 ब्रह्मचर्यशक्ति द्वारा हा उत्तम ब्रह्मचारी शिष्य को
 प्राप्त कर सकता है। यदि आचार्य स्वयं ब्रह्मचारी
 नहीं ता कोई विद्यार्थी उसका पान ज्ञान का इच्छा
 नहीं करेगा। विद्याभ्यास के साथ ही सदाचार का
 भी पूरा ध्यान रखना, यहाँ प्राचीन विद्याशालाओं की
 विशेषता थी। सम्प्रति इस का गन्ध कहीं।

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्यसूक्त के अन्तर्गत अनेक मन्त्र
 इस विषय की महिमा प्रदर्शित कर रहे हैं विस्तार-
 भय से हम एक का थाही सी व्याख्या यहाँ करते
 हैं - आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणः कृणुत गर्भ-
 मन्त । त रात्रीस्तिस्र उदरे त्रिभिर्नित जात द्रष्टुमभि
 सयन्ति देवा ॥ अर्थात् उपनयन कालिये जब ब्रह्म-
 चारी आचार्य के पास आता है तब वह तीन रात्रि
 तक उसको अपने पाम गर्भगत शिशु का भाँति रखता
 है— उसको अपने लेता है उसका प्रति पितृवत्
 स्नेह प्रदर्शित करता है जिससे कि वह पितृवियोग
 को भुला देता है अर्थात् त्रिविध अज्ञानरूप अ-धकार
 (रात्रि जब दूर हा जाता है तभी अपने से अलग
 करता है फिर अब वह अज्ञानअधकार को दूर
 कर उत्पन्न होने की स्थिति में आता है तब देवगण
 उसका देखने आते हैं। उसका देखकर पितृजन
 प्रसन्न होते हैं त्रिदश शक्तिय पत्येक काय न उसकी
 सहायक हाती है। वह आचार्य के पास उपार्जित
 अपने ज्ञान से उन्हे प्रसन्न करता है क्योंकि आचार्य
 अध्ययनमात्र में ही उसका सहायक नहीं होता
 अपितु सब तरह से उसका सरत्तक बनकर रहता
 है। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही मुख्य समृद्धि और आरोग्य
 का मूल है। उसको वे सब साधनायें बताई जाती
 हैं कि जिनक द्वारा वह सम्पूर्ण शक्तिय के आधार
 भूत वीर्य की रक्षा करता हुआ, चिरकाल तक इस
 दिव्य शक्ति का उपभोग करता रहे। यह अपने अद्-
 भुत दिव्य तेजसे स्वयमेव प्रकाशित होता है जैसा कि
 इसी सूत्र के एक मन्त्र से प्रकट हो रहा है। ‘स
 स्तातो बभ्रु पिङ्गल पृथग्यां बहू रोचते” ।

मानव धर्म

(लेखक—श्री हरदयालजी नाग)

—:०:—



वे

द मानव धर्म की आधार शिला हैं। आर्य संस्कृति का जन्म उन्हीं से हुआ है। सारी मनुष्य जाति के लिये एक धर्म और एक ईश्वर की घोषणा वेद ही करते हैं। सब मनुष्यों को एक मनुष्य जाति में संगठित करने और एक मानव धर्म के सूत्र में बांधने के लिए वेद मन्त्र सबसे अधिक उपयुक्त हैं। समय के हेर फेर से वेदों की बहुत सी शाखाएँ या तो दुर्प्राप्य हो गईं अथवा नष्ट हो गईं। साथ ही इसके मानवीय विचारों का इतना ह्रास हो गया और मानव समाज नाना मत पन्थों में विभाजित हो गया। एक पन्थ के अनुयायियों ने दूसरे पन्थ के अनुयायियों पर अपना अधिकार जमाया और धर्म के नाम पर अनुचित लाभ उठाया। परिणामतः जन्म जाति का आधिपत्य हुआ और उसके समर्थन में अनेक कल्पित शास्त्र रचे गये, जिसके प्रभाव स्वरूप ब्राह्मणों में उच्चता का अभिमान और अन्य जातियों में अपने को

यह है प्राचीन ब्राह्मणधर्म के आदर्श की एक मूर्ति जो कि हमारा गंतव्य स्थान ब लक्ष्य है। परन्तु चूंकि हम इस लक्ष्य से हो दूर होते आ रहे हैं इसलिये सुख और शांति सम्पदाएँ भी हमारा साथ छोड़ती जा रही हैं। हमारा कल्याण तो उपरि निर्दिष्ट मार्ग का अवलम्बन करने से ही हो सकता है। स्वामी दयानन्द की सम्पूर्णा जीवन की साधना का भाव भी इसी में निहित है। उनका विश्वास था कि भारतीय संतानों में इस संजीवनी शक्ति के संचार से ही देश का यथार्थ कल्याण हो सकता है। यदि हम अब भी आदर्शयोग सहर्षि द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर प्रगति आरम्भ कर देंगे तो अवश्य उद्वार होगा, अन्यथा ज़ाई तो हमारे लिये तैयार ही है

तुच्छ समझने के भाव उत्पन्न हो गये। ब्राह्मणत्व जन्म से समझा जाने लगा और ब्राह्मण अदृश्य हो गया। राजा को ब्राह्मणों के आधीन कर दिया गया, और कानून भी ब्राह्मणों के हाथ में आ गया। ऐसे नियमों की रचना की गई कि जिनके अनुसार नीच जाति के लोग वेद न पढ़ सकें। उनके साथ दासों का सा व्यवहार किया जाने लगा। उनको सर्वथा दास बनाये रखने के लिए मूर्ख ही रक्खा जाता था और उनमें से कुछ को अछूत तक बना दिया गया। लगभग सभी धर्म शास्त्रों के स्थान में ब्राह्मणों के स्वार्थ हित बनाये कल्पित नियम व्यवहार में आ गये। संक्षेप में ब्राह्मणों ने अपने को सब तरह से हिन्दू समाज का अधिपति और स्वर्ग का द्वारपाल बना लिया। नीची श्रेणियों को वेद से वञ्चित रखने के कारण उनकी अवस्था नारकीय हो गई। ब्राह्मणों का अधिकार बनाये रखने के लिये हिन्दुओं का भ्रम भिन्न जातियों और उपजातियों में विभक्त कर दिया गया और उन में से कुछ का तो नागरिक अधिकारों से भी वंचित रक्खा। वेदों के अभाव में ऊँच नीच के प्रवर्तक कल्पित शास्त्रों का बाहुल्य होता गया। कल्पित शास्त्रों ने मनुष्यों के हृदय में धार्मिक गुलामी उत्पन्न कर दी जो सभी प्रकार की गुलामियों से अधिक हानिकारक है। वे ब्राह्मण के द्वारा ही और उसको कुछ टके देकर ही ईश्वर पूजा कर सकते थे। मनुष्य के चरित्र की उन्नति के लिए धार्मिक स्वतन्त्रता अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना उसे आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्राण धर्म मनुष्य तथा अन्य जीवधारियों में समान ही है, आध्यात्मिकता के कारण ही मनुष्य को अन्य जीवधारियों से प्रथक किया जाता है। पार्श्विक वृत्तियों और भोगों में लगा हुआ मनुष्य पशु से अधिक नहीं है। उसका मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है और वह मानव धर्म से बहिष्कृत हो जाता है। ईश्वर को

मूलने के समान अन्य कोई पाप नहीं है और ईश्वर के समस्त आत्मसमर्पण करने के अतिरिक्त धार्मिकता कुछ भी नहीं है। धार्मिक परिपक्वता त्याग और आध्यात्मिक ज्ञान पर निर्भर है। मनुष्य जब मानव धर्म से नीचे गिर जाता है तभी वह अधार्मिक कहलाता है।

जब मानव धर्म की मर्यादा लुप्तप्राय हो गई थी, उस समय ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ। आध्यात्मिकता धार्मिक क्षेत्र को छोड़ चुकी थी और प्रकृतिवाद का बोलबाला था। सांसारिक लाभों की प्राप्ति के लिए देवी देवताओं की पूजा होती थी, आत्मा को मुक्ति के लिये तो बिरले ही ईश्वर की पूजा करते थे। प्रार्थना केवल भौतिक पदार्थों के लिए ही की जाती थी। परिणाम यह हुआ कि मनुष्य समाज सब तरह से पतित हो गया था। एक प्रकार से ईश्वर के राज्य से मनुष्य वञ्चित हो गया था। ऋषि दयानन्द जन्म से ही त्यागी थे। वह ईश्वरीय भण्डा हाथ में लेकर आये और उनके उपदेशों से सच्चे ईश्वरीय धर्म का भण्डा फिर से फहराने

लगा। वह अपना ईश्वरीय काम पूर्ण भी न कर पाये थे कि उनकी मृत्यु हागई। उनके शेष काम को पूरा करने का भार आर्यसमाज पर पड़ा। धार्मिक और सामाजिक सुधार का कार्य जिसको ऋषि दयानन्द ने आरम्भ किया था, सरल नहीं है। संसार में वैमनस्य फैला हुआ है। बुद्ध की भावना लेकर शान्ति की बातें की जाती हैं। सभ्यता के नाम पर नर-संहार जारी है। छुआछूत का धर्म अभी तक प्रचलित है। ईश्वर के मन्दिर के द्वार अब भी बहुतों के लिए बन्द हैं। धर्म के नाम पर देवी देवताओं के आगे पशुओं की हिंसा की जाती है। अधिक क्या, मानवधर्म के टुकड़े टुकड़े करके उसको ऐसा विकृत किया गया है कि पहचाना नहीं जाता। आर्यसमाज के सामने छिन्नभिन्न मनुष्य समाज को एक ईश्वर के भण्डे के नीचे लाने का कठिन कार्य है। तभी ईश्वर का राज्य स्थापित होगा और मानवधर्म संसार का एक मात्र धर्म होगा। विश्व व्यापी भ्रातृत्व तथा शान्ति को उसके द्वारा स्वयं स्थापना हो जायगी।

‘ऋष्यंक’ मुफ्त !

—: आर्यमित्र के नवीन ग्राहकों को :—

एक से एक बढ़िया खोज के लेख, बेरो के विषय में गवेषणा, पत्र प्रदर्शन, वेद और आर्यसमाज के खोटी के विद्वानों के लेखकों के अन्दरे लेख पढ़ने हो, तो आर्यमित्र का ऋष्यंक पढ़िये। ऋषि का असली सुन्दर चित्र तिरंगा इतना बढ़िया छपा है कि लोग उसको अपने कमरों में टाँगने के लिए मंगा रहे हैं। सस्ता इतना है कि बिकने कागज पर १२२ के लगभग पृष्ठों के होते हुए भी जिसका व्यवसायी पत्र प्रकाशक ।।।) से कम मूल्य न रखते—प्रचार की दृष्टि से केवल 1=) मूल्य रक्खा है। इसीलिए इसकी बराबर माँग आ रही है। कि: भी नवम्बर मास तक में जो नवीन ग्राहक बनेंगे, उन्हें वेद और सिद्धान्त विषयक मूल्यवाने लेखों से परिपूर्ण यह ऋष्यंक मुफ्त दिया जायगा। इसलिए श।।) भेज कर साप्ताहिक आर्यमित्र के ग्राहकों में नाम लिखवाने में शीघ्रता कीजिये।

—मैनेजर

आर्यपथिक ग्रन्थावली

(५० नरदेव शास्त्री वेत्तीर्थ)

धर्मवीर ५० लेखरामजी आर्य पथिक के नामको और उनके ग्रन्थो को शायद ही कोई न जानता हो। पण्डितजी का बलिदान हुए आज ३२ वर्ष के लगभग होते हैं। वे जैसे आज्ञस्त्री वक्ता और आदर्श प्रचारक थे, वैसे ही सुलेखक और अन्वेषक भी। उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन-चरित्र के लिए मसाला संग्रह करने की खोज में पथिक बनकर जो श्लाघनीय परिश्रम किया, वह उन्हीं का काम था। उनकी विविध विषयो पर लिखा हुई खोज पूर्ण पुस्तके 'वृद्ध' में 'कुल्लियात ५० आर्यमुसाफिर' नाम से कई बार प्रकाशित हो चुकी हैं परन्तु हिन्दी जाननेवाले उनसे लाभ नहीं उठा सकते थे अब श्री प्रेमशरणजी ने बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ का अनवाद किया है और 'आर्यपथिक ग्रन्थावली' का यह प्रथम पुष्प है। श्री प्रेमशरणजी ने इस पुष्प को निकाल कर अत्यन्त उपयुक्त काय किया है। वस्तुतः ऐसे ग्रन्थ प्रत्येक हिन्दू गृहस्थ और सभी सार्वजनिक पुस्तकालयो में रहने चाहिये। यह ग्रन्थ विरल है। इसमें ८४८ पृष्ठ हैं। अनुवाद की भाषा परिमार्जित है। परिश्रम और ग्रंथ की उपयोगिता को देखते इसका मूल्य ४) और सजिले ४॥) उचित ही है। आरम्भ में स्वामी दयानन्द लिखित 'आर्यपथिक' का सार और संक्षेप जीवन चरित्र भी दिया गया है। परचात सूक्ति के इतिहास पर बड़ी सुगमता से प्रकाश डाला गया है। आज कल हमारे स्कूल और कालेजो के लड़के सात समुद्र पार बैठे हुए भारतवर्ष की सभ्यता से नितान्त अनभिज्ञ इतिहासकारो के इतिहासो को पढ़ने में कितना समय व्यर्थ खाते हैं। यदि वे पथिक निर्मित इस इतिहास को पढ़ें तो उनकी आँखें खुल जाय, और अपने अत्यन्त प्राचीन पूर्वजो की श्रेष्ठ सभ्यता को जान सकें। इस ग्रन्थ में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पारमार्थिक और पौरुष विद्वानो का नत देकर यह निम्न कहा गया है कि आर्यों की सभ्यता अति प्राचीन और उनका धर्म सर्व श्रेष्ठ है। इसमें शास्त्रीय युक्ति, प्रमाणों

और ऐतिहासिक ग्रन्थो से सहायता ली गई है। किसी प्रकार की साम्प्रदायिक क्रूरता अथवा अनुचित कटाक्षों का ग्रन्थ में सर्वथा अभाव है। ग्रन्थ के अन्त में हिन्दुओं के मुख्य सिद्धांत पुनर्जन्म पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है, जिसको पढ़ कर नास्तिको की भी आँखें खुल सकती हैं। बीसियों हठ युक्तियों द्वारा आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध सिद्ध करके ईसाई मुसलमानों के आक्षेपो के उत्तर विद्या और बुद्धि के आधार पर ही नहीं प्रस्तुत उन्हीं की मान्य पुस्तको के आधार पर दिये गये हैं। वाद-बिल के वाक्यो और हृदीमो के हवालो से पुनर्जन्म की पुष्टि की गई है और तद्विषयक शङ्काओं का समु-लोन्मूलन किया गया है। वेद शास्त्र के प्रमाणों, के उद्धरणों, इतिहास ग्रन्थो कवियो और जीवित पुरुषो की साक्षियों और कृमिकीटो के वेद परिवर्तन आदि दृश्यों को आवागमन की सार्थकता का साक्षात्कार किया गया है। पारसी मत और बुद्धमत के विचार बतलाकर यूनान के दार्शनिक पथीगौरस सुकरात, अरस्तू तालीम, श्री साहङ्ग आदि अनेक यारोपीय विद्वानो के पुनर्जन्मपोषक पचासो प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं। इस्लाम के विद्वान और कवियो के बचन—जो बड़े रोचक हैं—पुनर्जन्म की पुष्टि किस प्रकार कर सकत हैं इसका एक उदाहरण हम इस ग्रन्थ से यहाँ उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते। शेख फरोवदुद्दीन का कथन है—

हफ्तसद हफाद कालिब दीदाअम् ।।

हमचु सन्ना बाराहा रोइअम् ॥

(पृ० ७५०)

अर्थात् घासपात की तरह मैं हजागो बार पैदा हुआ हूँ और ७५० बार मनुष्य-यनि प्राप्त की है।

ऐसे ऐसे अनेक बचन पुस्तक में संग्रहीत हैं, जो उपदेशको के लिये अत्यन्त उपादेय हैं, और पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाने वाले हैं। हम सर्वसाधारण से इस पुस्तक के अध्ययन की सकारित्स करते हैं।

मृत्युञ्जय दयानन्द

(ले०—श्री बाबू लाल जी प्रेम)



व से लगभग ६५ वर्ष की बात है, एक अयोध बालक घर के एक कोने में खड़ा हुआ अनिमेप दृष्टि से अपनी मृतभगिनी का देख रहा था। कामार हृदय संकल्प और विकल्प के पक्ष बांध

कर अनन्त की गहरी नीलिमा में उड़ान भर रहा था। आंखें सूखी हुई थी और विस्फारित सां हो रही थी। बाणी मूकीभूत थी। माता पिता तथा कुटुम्बी रो रहे थे किन्तु बालक मूलशंकर किसी गहरे महाएव की थाह लगा रहा था। माता पिता ने तो उसे ऐना नीरस और निन्दुर देख कर पापाए हृदय तक कह डाला किन्तु वहां नेत्रों में जल कहा! वहां तो प्रगत भंभानिल बट रहा था जो बड़े बड़े समुद्रों को सुखा देता है फिर विचारे नेत्र क्या चीज है।

“अरे यह है क्या! जो सुन्दर खिलौना अभी अपनी मजु बाणी से गृह के कोने कोने को मुखरित कर रहा था वह अकस्मात् निस्तब्ध क्यों हो गया? कौनमा बन्त्र विगड गया? वहां अग प्रत्यंग, पर क्रियाहीन? वही मंजु सुसकान किन्तु चित्रवत् अपरिवर्तनीय। ज्ञान होता है कि कोई वस्तु इन बांचे में बन्द थी वही कही बालू चली गई। वही श्रोत्रो की श्रांत्र चतुश्रो की चतु प्राणों की प्राण और हृदय की हृदय थी। तो फिर चली क्यों गई और गई भी तो कहा? उसने अपने चिर्संघातियों से अपना मुख सहसा कैसे मोड़ लिया? जड़ भरत का तो एक मगरावक से अल्पकाल में इतना मोह पैदा हो गया था कि मरते समय तक क्या पुनर्जन्म में भी उसके मोह जाल में जकड़े रहे। पराई धरोहर से भी कुछ इतना स्नेह हो जाता है कि वापस करते समय मर्मान्तक पीडा होती है। किराये के घर के भी छोड़ने में एक विचित्र ठेस

सी हृदय में लगती है। ऐसी कौनसी वस्तु है जो मानव-ससर्ग में आकर यमत्व-पाश से बच सके तो फिर यह कैसी नीरस और हृदयहीन वस्तु थी जो माता के उद्र से लेकर आज ११ वर्ष तक इस शरीर के रोम रोम में रम कर जरा सी मशीन के विगडने पर इस तरह छोड़ कर चली गई जैसे पत्नी पिंजरा और पथिक मार्ग के बुद्धों को मानो शरीर से यह प्रतिज्ञापत्र (इकरारनामा) लिखा लिया था कि मैं इस शर्त पर आने को तैयार हूँ कि प्रकृति में विकृति न होने पावे। प्रकृति मेरी विरसंगिनी है लेकिन तभी तक जब तक वह विकार शून्य है।”

बालक मूलशंकर के हृदय में एक क्रान्ति सी मची हुई थी आंखें पथग सी गई थी वह एक खंभे के सहारे किकर्तव्य विमूढ खड़ा हुआ था। एक पहर बीता दो पहर बीते कुटुम्बी शव को उठा कर ले गये अन्वेषित करके लौट भी आये किन्तु वह बालक ममाधिस्थ योगी की भांति उसी पहली के सुलभाने में तल्लीन था। “अच्छा यदि प्रतिज्ञापत्र लिखा भी लिया मही लेकिन लेख्य के प्रतिकूल जाने पर लेख्यकर्त्ता को मालिक एक वार सावधान तो कर ही देता कि “तुम प्रतिज्ञा के बाहर जा रहे हो ज्ञान हम अधिक नहीं ठहर सकते”। अस्तु हमें इससे क्या, यह तो स्वामी की कृपा पर निर्भर है कि वह इतनी अनुकम्पा करे या न करे, यदि कहता है तो विशेष अनुग्रह करता है और यदि नहीं करता है तो कोई पाप नहीं करता है क्योंकि वह लेख्यानुगत (ह्रस्व दस्तावेज) कार्यवाही करता है। लेख्यकर्त्ता स्वयं क्यों न सावधान रहे। किन्तु एक बात और भी तो है यदि भगवान यही मरीचिमाली अपना प्रकाश समान रूप से सब पर न डालें वो लोग क्या कहें और उसका स्वरूप भी कैसा हो जाय। पे मन! तु कहता है। रिश्तायत करनी चाहिये। यदि यही सूर्य अपनी किरणें बच्चे पर मधुर और स्निग्ध डाले और

इतर वस्तुओं पर प्रचंड, यह क्या कभी सम्भव हो सकता है, दो विरोधी गुण एक समान पर कैसे रह सकते हैं और फिर आज जो सभ्य संसार में नियम निर्धारित किये गये हैं तथा किये जाते हैं वे सब इन्हीं विश्व के नियमों पर आधारित होते हैं अनिल अनल सूर्य्य वरुण इत्यादि यही तो इस जाग्रत या स्थूल जगत के Law giver नियम विधायक हैं यदि इन्हीं में रिश्थायत की वू आ जाय तो फिर सृष्टि की क्या दशा होगी” ।

यह आन्दोलन कई मास तक अज्ञान गति से उस बाल हृदय को मंथन करता रहा । घडा भर चुका था एक ठेस की अरुणत थी, वह प्रतप्त भ्रंशानिल विश्व की समस्त आर्द्रता चूस चुका था आर्द्रा नक्षत्र भी लग चुका था पूर्वी वायु के रूप में पूत्य चाचा जी बीमार पड़े, उपचार हुये किन्तु सब व्यर्थ अन्त में उनका भी जीवन दीप बुझ ही गया । फिर क्या था वह सूखी आँखें जो भंगिनी की मृत्यु पर प्रज्वलित अगार बन ही रही थी, आज प्रावृट को सरिता हो उठीं । चीत्कार मार मार कर खूब रोये कदाचित्त इनके समान घर में कोई नहीं रोया । इस घटना ने ऐसी ठेस दी कि सारे बन्धन ढीले पड़ गये । सब लोग रो पीट कर शान्त हो चले किन्तु मूलशंकर अब की बार और भी गहरे वात्यचक्र में पड़कर सोचने लगा । “हाँ, अब मैंने जाना, यह प्रकृति बडी ही नहीं है क्षण क्षण में अनेक रूप बदलती है इसके मायावी चरित्रों को जीवात्मा ने खूब जाना है तभी यह बात है कि शरीर में लेश मात्र भ्रंश विचार आते ही या प्रकृति में विकृति की गर्न्ध आते ही इससे तल्ला तोड़ देता है । जब यह स्वयं अपनी प्रतिज्ञा पर नहीं अटल है तो यह जीवात्मा चेतनस्वरूप जीवात्मा भगवान का सनातन अंश जीवात्मा अपने प्रत से कैसे डिग जाय । यह सदैव अपने माया पाश में फंसा कर जीवों को दुःख में डालने का प्रयत्न करती ही रहती है और प्रत्येक स्थान पर अपने भिन्न भिन्न रूप बदलती है देखो:—

इसी भ्रान्ति ने विपुल रूप धरि,
किया विश्व को है हैरान ।

जल में भंवर, बवंडर यम मे,
और उदधि में बन तूफान ॥
कभी राज्य में क्रान्ति रूप धरि,
विचलित किये लोक नर पाल ।
अरी भ्रान्ति नर रक्त पियासी !
तेरा बना नहीं क्या काल ?

अरी भोली ! तुझे क्या होगया है ? भला कहीं अग्नि स्फुल्लिंग रूई में छिप सकते हैं, सहस्रार्चि कहीं श्यामल मेघ में विलीन हो सकता है और अन्धकार कहीं प्रकाश को उदरस्थ कर सकता है ? तेरे बड़े लड़के वृत्रासुर ने एक बार इन्द्र को हड़प कर लिया था इससे तुने समझ लिया कि अब क्या है जब देवराज ही उदरस्थ होगये तो दो देवों को तो चुटकी बजाते ही चुन लूंगी किन्तु यह लीला तो तुम्ह माया-विनी के लुभाने के लिये भयवा के सप्तरंगी धनुष की छाया मात्र थी । वज्र की एक चोट ने उसके फुचड़े उड़ा दिये । फिर भी तुझे अभिमान है ? । तो इस परिवर्तन का नाम ही तो जीवन और मृत्यु है और इस परिवर्तन को सातुकूल करने के लिये इन्द्र (जीवात्मा) के पास वज्र की अमोघ शक्ति है । तू क्या कर सकती है तेरी शक्तियाँ क्या कर सकती हैं ?

स्थित प्रज्ञ को दसो इन्द्रियों की क्या पीड़ा ।
अच्छा तो ले मैं प्रत करता हूँ “ये सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र
मरुद्गण [मै० गु०] सुन लो मैं “मृत्युञ्जय” प्राप्त
करूंगा इस विसर्गसिनि प्रकृति के कोपद्वय मय रहस्यों
का भंडाफोड़ करूंगा ।”

बालक मूलशंकर को अब घर में रहना कठिन था भला बुद्ध छिड़ जाय और सेनानी घर में सुख की नींद सोवे । उस व्रती ने यह सोचा कि भौतिक सामग्री तो सब जुट जायगी, लेकिन युद्ध भयंकर है किसी बड़ी शक्ति का सहारा लेना पड़ेगा । पार्थ के पास देखो न, क्या कमो थी सेना नहीं थी कि शस्त्रास्त्र नहीं थे या सव्यसाची करों में बल नहीं था लेकिन फिर भी मैदान में आते ही हाथ हाथ करने लगा ‘गांडीव हाथ से छूटा जा रहा है त्वचा जली जा रही है मुख सूख रहा है रोमाञ्च हो रहा है; अरे मोहन ! मुझे थामो मैं गिरा मेरा माथा धूस रहा है फिर न

जाने क्या क्या बचने लगा कभी योग कभी साख्य ।
उस समय श्रीकृष्ण ही ऐसे थे जो ऐसी भीषणावस्था
Critical Time में उसे उवाचा और 'बुद्ध हृदय
दीर्घल्यं त्यक्तोत्तिष्ठ परन्तप' का पाठ पढ़ा कर सगर
के लिये उद्यत किया । देखा न सब अस्त्र शस्त्र धरं
रह गये । भौतिकवाद की अधिष्ठात्री या आदि जननी
से तो युद्ध, फिर भौतिक शक्तों से उपकरणों की
सहायता द्वारा, कहां तक न परसोजेग और माँ का
पक्ष न लेंगे । यह सब ऐन मौके पर धाखा दे जायगे ।
तो कहां चलना चाहिये ? पिता जा ने एक बार बत-
लाया था कि देवाधिदेव भगवान त्रिलोचन ही ऐसे
कार्यों में सदैव सहायता देते हैं । उनके एक नेत्र में
सृष्टि दूसरे में पालन और तीसरे में प्रलयकरी शक्ति
है । दो समय समय पर सूर्य चन्द्रवत् सुखलेते मुंदते
रहते हैं एक साथ नहीं तीसरा नेत्र भक्तों के लिये या
कल्याण के लिये या 'शर्म' के लिये सुरक्षित
Reserved रहता है तो फिर चर्मा की आराधना
करना चाहिये फिर देखूँ कौन भला अन्वरु की
आँखों में धूल भौकता है ॥

आश्रम उन्मत्तक यजामहे सुगन्धिं पुष्टिं वर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षी माऽमृतान् ॥

यजु० ३ । ६०

* * * * *

मेरे एक विद्यार्थी ने प्रश्न किया 'क्या महर्षि
दधानन्द ने सचमुच मृत्यु को जीत लिया था । मैंने
तो चिर कौमार प्रती भीष्म और महात्मा बुद्ध तथा
अम्बों के लिये भी यही सुना लेकिन मैं तो किसी कां
अब इस पृथ्वी पर उपस्थित नहीं देखता हूँ मैं तो
बढ़ी समझता हूँ कि सब काल की कराख बाढ़ों में
बिना गये ॥' प्रश्न बिलकुल ठीक है ऐसे प्रश्न कुछ
अिद्ध तत्ववेत्ताओं को झोड़ कर प्रायः सभी के मुँह
से सुनने में आते हैं । इसके उत्तर के लिये सबसे
पहले 'मृत्यु' शब्द पर विचार करना चाहिये । यह
पूर्व ही बतलाया जा चुका है कि प्रकृति के परिवर्तन
का ही नाम जीवन या मरण है । यह परिवर्तनत्व
प्रकृति का नैसर्गिक गुण है नैसर्गिक गुण कभी नष्ट
नहीं हो सकता है यह बात निर्विवाद है । अब प्रश्न

यह है इस स्वाभाविक गुण के अन्वर जीवन और
मृत्यु का रहस्य भरा है और यह अकार्य और अस्व-
हृय तथा अनारामान है तो फिर मृत्युञ्जय केवल
कवि कल्पना है । यह वस्तु है कुछ नहीं, मन बह-
लाव है या केवल दोग है । लेकिन ऐसा नहीं है । यह
मृत्यु या परिवर्तन वास्तव में दुःखद नहीं है वैसा हम
समझते हैं । दुःखदाई कोई और ही वस्तु है । यदि
हमारे परिवर्तन Transf. के साथ साथ जीवन की
समस्त वस्तुयें भी चाहे वह मानसिक सृष्टि ही में क्यों
न हो वे Transfer त परिवर्तित होजायें, Transfer
परिवर्तित वस्तु या प्राणों को यह कहने का
अवसर न मिले हाय अमुक वस्तु हमसे अलग हो
गई, इसके साथ ही साथ यह सब कुछ तो हो किन्तु
परिवर्तन नाम के साथ न हो एक बारगी कोई तिलस्म
सा हो जाय; ऐसी अवस्था में दुःख न होगा । प्राणी
यह सब क्यों चाहता है । इसीलिये न, कि वह उन
समस्त वस्तुओं के ममत्वपारा में जकड़ा हुआ है ।
यह पारा दूर हो सकता है । डाक्टर लोग तक इस
पारा को शल्य चिकित्सा के समय सम्मोहनप्राण
द्वारा कुछ समय के लिये ढीला कर ही देते हैं । किन्तु
यह उपाय अस्वाभाविक तथा हानिप्रद है । सारांश
यह कि मृत्यु या परिवर्तन से प्राणी को दुःख
नहीं होता है । दुःख की जड़ यही मोह ममत्व है और
इसका निराकरण हो सकता है । उक्त लिखित मृत्यु-
ञ्जय महाभन्त्र इस ममत्वपारा या मोह बन्धन और
वेदान्तिमान से छूटने का बड़ा सुन्दर साधन बतला
रहा है । 'यजामहे' देवपूजा संगतीकरण दान में यज्ञ
घातु प्रयुक्त होता है । उन्मत्तक अर्थात् तीन नेत्रों का
समाहार या तीन नेत्र हों जिसके अर्थात् भगवान
शंकर या ज्ञानी । दूसरा अर्थ यह भी है, अम्बा अ-
म्बालिका अम्बिका यह तीन हवनीय षोडशियों हैं
यह प्रायः एक ही स्थान पर उगती हैं इनके समाहार
को भी उन्मत्तक कहते हैं इसमें प्राणशक्ति है
यथा:—

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा ज्वानाय स्वाहा ।

अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके नामानवति करचन ॥

अर्थात् हे अम्बे, अम्बिके, अम्बालिके ! हम प्राण अपना ध्यान के लिये तुमको होम करते हैं। यदि उक्त मृत्युञ्जय मन्त्र की देव पूजा, संगति करण, दान और अम्बक के इन दोनों अर्थों से संगति लगाकर अर्थ भावना की जाय और तदनुसार जीवन पायन किया जाय तो निःसंदेह मनुष्य मृत्यु के बन्धन से पके खरबूजे की भाँति छूट जायगा। जब हम 'देव पूजा' से यजामहे का अर्थ लगाते हैं तो यह होता है कि हम तीनो हवनिय औषधियों अर्थात् अम्बा अम्बिका अम्बालिका का जो कि सुगन्धित और पुष्टिकारिणी हैं, हवन करते हैं जिसके प्रभाव से हमारे प्राणापान ध्यान शक्ति सम्पन्न होकर हमें आयु प्रदान करें। और यह बापु हमारे अधिकार में हाकर इच्छा मृत्यु के देने हारे हों। अग्नि शिलायें किम प्रकार यज्ञमान को ऊपर से आड़ये आड़ये ! कहती हुई स्वर्ग लोक को ल जाती है। मुण्डकोपनिषद् के एक सुन्दर मन्त्र से ज्ञात होता है।—

“एहोहीति तमाहुः तयः सुवर्चस सूर्यस्य रश्मिभि बजमानं वहन्ति” अग्निहोत्र से शरीर और प्राण पर स्वतः प्रभाव पड़ता है और इसकी उपयोगिता देखते हुए हमारे ऋषियों ने इसको दैनिक आचर्यो Daily routine में बन्यो रख दिया यह सब लिखना विषय बाह्य है। देव यज्ञ में पितरों की पूजा भी है। सन्धेप में पितृपूजा का महात्म्य यह है:

अभिवादन शीलस्य नित्यं बृद्धोऽपि सेविनः ।

वत्पारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विधा यशोबलम् ॥

अर्थात् पितरों की पूजा से चार चीजें बढ़ती हैं। आयु, विधा, यश और बल। इसमें भी आयु और बल मृत्यु बन्धन छुड़ाने वाला है तृती भीषम इसके उदाहरण है। अब सन्धेप में संगतिकरण की संगति लगाकर यह भाव निकलता है—

त्र्यम्बक

अ	उ	म
सत्	चित्	आनन्द
भूः	सुवः	स्वः
ऋक्	यजुः	साम
ज्ञान	कर्म	उपासना
आनना	पुरुषार्थ करना	प्राप्त करना

उक्त स्वरूपवाले त्र्यम्बक की उपासना करता हूँ जो कि मगन्धित (कीर्ति) और बल देने वाला है जो मुझे मृत्यु बन्धन से पके खरबूजे की भाँति छुड़ा दे। यह भाव त्र्यम्बक का धातक है। जो भूमि वः स्वः रूपी भगवान का ध्यान करता है उसका माहात्म्य अथर्ववेद के एक मन्त्र में इस प्रकार है—

ओ स्तुतामया वरदा वेदमाता प्रबोध्यन्तां यावामानी द्विजानाम्। आयुः प्राणः बलः कीर्तिः, यशः, त्रिविणं त्र्यम्बकं सर्वं सार्धं दत्त्वा प्रजत त्रल्लोकम् ॥

अर्थ सीधा है। यह समस्त वस्तुये मिलकर त्रल्लोक की गति मिलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन की श्वास प्रवास में प्रत्येक क्रिया कलाप के साथ तीनो दशाओं में त्र्यम्बक का जाप करते हैं वही बन्धन से छूट जाते हैं। तमात्मस्थं येनुपरयन्ति धीराः तेषां शुखशाश्वतं नेतरेषाम् ।

एक सग खाने में दोषः

एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुछी आर्य के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर विगड जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ विगाड ही होता है सुपार नहीं

हमारे कारखाने के विषय में

सिविल सर्जन महोदय की राय मैंने सुख संचारक कम्पनी के कार्यालयका निरीक्षण किया और पांडित जी कृपा वरके मुझे भिन्न व विभागों को कार्य करते हुये दिखलाया फाय लव का सब कार्य प्रसशा योग्य तथा सुव्य वरस्थत है—पंडितजी के भिन्न व विभागों के कार्य के ज्ञान तथा कार्य की उन्नतता, स्वच्छता, एव सुव्य वस्था ने मुझे वहा प्रभावित किया—इस कम्पनीने कई विशेष औषधियों का निर्माण किया है और मुझे उनके निर्माण की स्वच्छ विधि एवं विशुद्धता से बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई उस दिक्षकस्य मुलाकात के लिये मैं पंडित जी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ एफ डब्ल्यू होम्स मेजर-आर-एम-डी सिविल सर्जन

आर्यमित्र पाठकों की भेंट

अपने जीवन की प्रेमवटी

महाशक्ति प्रदाला फकीरी प्रयोग

प्यारे आर्यमित्रके पाठको आज मैं आपको सेवा में एक ऐसी भेंट अर्पण करना चाहता हूँ जिससे निराशा व्यक्तियों की आत्मा में भी एक नया जीवन पैदा हो जायगा। इस से पहिले कि मैं यह भेंट अर्पण करू कुछ अपने जीवन की घटनाएँ और उस भेंट के गुण आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ।

यदि आप निर्मल और कमजोर हैं तो एक बार इसको बना कर जरूर सेवन करे इसके सेवन से सात दिन के अन्दर बदन मे खून दौड़ता हुआ नजर आयागा और बीस रोज में चेहरा कुन्दन की भाँति चमकने लगेगा और पूरे चालीस रोज में प्रमेह के सभी रोग यानी जिरियान एतलाम और जियाबतीसा जैसे बुरे रोग भी दूर होकर मुर्दा आत्माओ मे भी एक नया जीवन आजाता है और अपूर्व बल प्राप्त होता है जिसके सबूत मे बड़े बड़े डाक्टरो हकीमो और वैद्यो के प्रशंसा पत्र मौजूद हैं। इसलिये हम आर्यमित्र के प्रेमियो से अनुरोध करते हैं कि वे एक बार इस प्रयोग को बनाकर जरूर सेवन करे और हमारे परिश्रम को सफल बनावे। यह प्रयोग हर मौसम मे हर व्यक्ति के स्वभाव के लिये एकसा लाभदायक है। अब मैं अपने जीवन की चन्द घटनाये आपके सामने रखना चाहता हूँ ताकि आर्यमित्र प्रेमियो को पता चल जाय कि मेरी दुखित आत्मा को किस प्रकार शान्ति प्राप्त हुई और मैंने लाभ उठाया। मैं एक जिम्मेदार क' लाइला वैद्य था कुसगत के कारण मुझे जिरियान और प्रमेह राग हो गया पहिले तो एक दो साल मैंने लोकलाज के कारण अपना भेद

छिपाये रक्खा परन्तु रोग ने भयानक सूरत अख्तयार करली अब चक्का उठा संसार चारो ओर घेरा मालूम होने लगा तब मेरी आँख खुली।

रुपया पैसा को मेरे यहाँ कमी न थी इलाज शुरू किया गया बड़े बड़े डाक्टरो वैद्यो हकीमो से दवाएँ मगाईं। और स्नाई मगर रोग बढ़ता गया उधो ज्यो दवा को आखिर मामला यहाँ तक आ पहुँचा कि मैं आत्महत्या की सोचने लगा और इस दुखमय जीवन से मर जाना बेहतर समझने लगा।

हमारे गाँव के पास ही एक मील की दूरी पर ईटो का एक भारी खेड़ा है उस खेड़े पर कभी कभी कोई साधू महात्मा आ जाते हैं कारण वश उसी खेड़े पर काठियावाड़ के एक प्रसिद्ध त्यागो योगीराज आ बैठे और एक भाकी में आसन लगाकर ईश्वर चिन्तन में मग्न हो गये। गाँव के बालक और युवको ने जब इन्हें देखा तो उन की प्रशंसा गाव में फैला दी कि खेड़े पर एक महात्मा आये हुये हैं जो बड़े तेजस्वी प्रतीत होते हैं यह सुन कर लोगो के समूह के समूह उनकी सेवा मे जाने लच मैंने सुना तो मैं भी निराशा और आशा को साथ लिये उनके चरणो मे जा उपस्थित हुआ उस तेजस्वी आत्मा के दर्शन करते ही मेरा चित्त गद गद और प्रसन्न हो गयो और नमस्कार कर एक ओर बैठ गया। इतने में मेरी आत्मा विचारो ने घेर लिया। मैं विचारो के अथाह सागर मे गोते खाने लगा परन्तु यह दशा बहुतदरे तक न रह सकी महात्मा जी मेरी शकल और माथे की यह दशा देखकर फौरन तार्क

गये और मेरी और इस प्रकार आकर्षित हुये बेटा — तुम बड़े दुखी और निराशा मालूम होते हो, यों तबियत कैसी है और तुम्हारे दुखी होने का कारण क्या है।

बस फिर क्या था। जैसे मेरे दिल के घावों को किसी ने छेड़ दिया हो मैं फूट फूट कर रोने लगा। महात्मा ने बहुतैरा समझाया मुझे विलासा दिया और प्यार किया मगर मेरा दिखन न मानता था और जी यही चाहता था कि दिख खोलकर रोखूँ किन्तु महात्मा यह दशा देखकर बेचेन हो उठे और मेरे पास आकर मुझे धीरज देने लगे। जब उन्होंने मुझे दांभा रा पृष्ठा तो मैंने अपनी बीमारी का सारा हाल उनके सम्मुख रख दिया।

इस पर उन्होंने मुझे आशा दिलाई और कहा बेटा साध तुम्हारे लिये जो कुछ कर सकता है उससे फर्क न करेगा निश्चय जानो तब मुझे कुछ होसला हुआ और दिल कड़ा करके मैंने रोना बन्द कर दिया इसके पश्चात् उन्होंने एक प्रयोग मुझे बतलाया जिसको बनाकर मैंने सेवन किया और मैं बिलकुल आरोग्य हूँ। प्रयोग:—

असली त्रिफला चूर्ण ५ तोला, असली सूर्यतापी शिलाजीत २॥ तोला, असली बंगमस ६ माशा, असली सूर्यछाप केसर ६ माशा, असली अकरकरा ६ माशा, असली नैपाली कस्तूरी ६ रसी, इन सब औषधियों को कूट-छान कर खरल में डालकर ऊपर से शीतलचूनी का तेल २० बूँद, बैरोजा का तेल २० बूँद चन्दन का तेल २० बूँद मिलावे इसके बाद ताजा ब्राह्मीबूटी के अर्क में बारह चपटे त ० घोटकर सब दवाइयों को एक करलें और फिर साथ में सुखाकर मरवेरी के बैर की बराबर गोलियाँ बनालो, बस औषधि तैयार है।

सेवन विधि—एक गोली प्रातः और एक गोली सायंकाल पाव भर गाय के दूध में १ तोला शक्कर मिला कर खायें इसी औषधि के सेवन से २० रोज मैं आरोग्य हो गया था और अब एक समय व्यतीत

हो गया है कि फिर कभी कोई शिकायत नहीं हुई और अब उस परमपिता परमात्मा की कृपा से मेरे तीन बच्चे हैं जो बिलकुल आरोग्य हैं उस वक्त से अब तक मैं यही औषधि बना कर लोगों को दाम के दाम पर दे रहा हूँ जिससे सैकड़ों व्यक्तियों ने फायदा उठाया है और उनकी आशाओं की पूर्ति हुई है।

यह देख कर उन लोगों ने जिनको अति लाभ हुआ है उस कर्त्तव्य की और मेरा ध्यान खिंचा है कि जो महात्माजी ने यह प्रयोग बताते हुए कर्त्तव्य मेरे जिम्मे लगाया था कि जब मैं तन्दुरुस्त हो जाऊँ तो इस प्रयोग को ससार की भलाई के लिए समाचार पत्रों में प्रकाशित करदूँ, ताकि सांसारिक दुःखी आत्मायें इससे लाभ उठा सकें। इस लिए अब मैंने फैसला किया है कि इस प्रयोग को समाचार पत्रों में प्रकाशित करादूँ ताकि ससार की दुःखी आत्मायें इससे लाभ उठा सकें।

प्रयोग ऊपर भली प्रकार समझा दिया गया है इसको बना कर लाभ उठावे किन्तु अगर आप इस कें बनाने में असमर्थ हो या कारोबार के कारण आपको फुरसत कम मिलती हो या असली चीजें न मिलती हाँ ता हमसे बनी तैयार औषधि मंगालें, और बनाई उसके आश्चर्यजनक गुण देखें।

यह औषधि धीर्य के पतलापन वीसियों किस्म के प्रमेह पेशाब के साथ चूने की तरह वीर्य का जाना पानवाना के समय धातु का जाना स्वप्नदोष व सुजाक सुस्ती, कमजोरी और नामर्दी जबानी में बुझाई की हालत असली ताकत की कमी सोचने की ताकत का कम हो जाना वगैरह दूर करके अत्यन्त ताकत देती है और नस नस में नई जिन्दगी का संचार करती है इस लिए जो भाई इसके आश्चर्यजनक गुण की परीक्षा करना चाहें वह हमसे मंगा कर देखें। कीमत की शीशी ४० गोली २) और ८० गोली ४)। दवा मिलने का पता—बाबू श्यामलाल जी रईस प्रेम बटी आफिस नम्बर १४२ कंचौसी बाजार, जिला इटावा यू० पी०।

आर्यजगत्

सभा की सूचनाएं

महर्षि दयानन्द और आर्य-पुरुषों का कर्तव्य

धर्मवीर पं० लेखरामजी के बनाये महर्षि दयानन्दजी के जीवन चरित्र में अनेकों बातें संदिग्ध अवस्था में थीं; जिनके सम्बन्ध में पूरी खोज न होने के कारण बहुत सी बातें प्रकाश में नहीं आई थीं। श्री देवेन्द्र बाबू ने अपने जीवन के २० वर्ष ऋषि दयानन्द की जीवनी की खोज में व्यतीत किये और अनेकों संदिग्ध घटनाओं को प्रकाश में लाये। उनकी जीवन भर की सञ्चित सामग्री को सुप्रसिद्ध स्वर्गीय आर्य्य विद्वान् श्री पं० वासोराजजी एम० ए० एल० एल० बी० ने संकलित किया और इस विशाल जीवनचरित्र को आर्य्य साहित्य मण्डल अजमेर ने प्रकाशित कर आर्य्य जनता पर बहुत उपकार किया—चाहिए वो यह था कि यह जीवन चरित्र प्रकाशित होते ही हार्डो-हाथ निकल जाता और अब तक उसके २-३ संस्करण प्रकाशित हो जाते परन्तु यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि अभी तक प्रथम संस्करण की ही केवल २१-३ सौ प्रतियां निकल पाई हैं—ऐसे अमूल्य रत्न के प्रति आर्य्य जनता की यह उदासीनता शोचनीय है। जीवन चरित्र के महत्त्व को देखते हुए इतने विशाल ग्रंथ का दाम भी कुछ नहीं है। फिर भी आर्य्यसमाजों और आर्य्य पुरुषों का ध्यान इस ओर अभी तक नहीं गया। यह बड़े दुःख की बात है। अब मैं प्रत्येक आर्य्यसमाज व आर्य्य पुरुष से छानुरोध निवेदन करता हूँ कि यदि अभी तक उन्होंने शिघ्र ध्यान नहीं दिया तो अब अपना कर्तव्य समझें कि महर्षि दयानन्द के इस प्रामाणिक जीवन चरित्र को श्रेष्ठ नित्यप्रति स्वाध्याय करें और अपने गृह परिवार में बालक, बालिकाओं और बन्धुओं को

सुनावे जिससे उनके भावों में सुधार हो। मैं पुनः अनुरोध करता हूँ कि इस ग्रन्थ-रत्न की उपेक्षा न करें और शीघ्र इसे मंगाकर स्वाध्याय आरम्भ कर दें।

—मदनमोहन सेठ, प्रधान

श्री प्रधान जी सभा का प्रयत्न

वेदप्रचारार्थ हापुड़ तथा देहली से (१२५) का संग्रह !
दशहरे की छुट्टियों में ४ और ५ अक्टूबर १९३५ ई० को श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त की अन्तरंग सभा का अधिवेशन मेरठ में हुआ। श्रीयुत रा० सा० बाबू मदनमोहनजी सेठ प्रधान-सभा ने इन दशहरे की छुट्टियों से लाभ उठाकर वेदप्रचारार्थ हापुड़ तथा देहली से धन-संग्रह करने का यत्न किया। इसलिए ६ अक्टूबर को श्री बा० ब्रजनाथजी मित्तल भूतपूर्व मन्त्री आ० प्र० सभा संयुक्त प्रान्त, श्री बा० गदाधरप्रसादजी गवर्नमेन्ट सीनीयर आर्टिटर और म० विश्वम्भरसहायजी प्रेमी आदि का एक डेपूटेशन हापुड़ पहुँचा—हापुड़ से २२७) का धन नगद प्राप्त हुआ जिसकी सूची नीचे अंकित की जायेगी। तत्पश्चात् श्री प्रधानजी सभा पं० धर्मपालजी उप-मन्त्री सभा के साथ ७ अक्टूबर को देहली पहुँचे और वहाँ के प्रसिद्ध आर्य्य ठेकेदार श्री ला० नारायणदत्तजी, ला० देशबन्धुजी गुप्त डाइरेक्टर "तेज", तथा श्री ला० ज्ञानचन्द्रजी आर्य्य ठेकेदार के प्रयत्न से देहली में ५००) की प्रतिज्ञायें हुईं जिसमें से ५१) प्राप्त भी हो चुके हैं और शेष धन के शीघ्र प्राप्त हो जाने की पूर्ण आशा है। यह सभा दानदाताओं तथा धन-संग्रह में सहायता देने वाले सभी महानुभावों की बड़ी कृतज्ञ व आभारी है। श्रीमती अन्तरंग सभा

सुगन्धागार

भारतवर्ष क्या समुच्च संसार में सुगन्ध का प्रयोग करने के लिए अतः से बढ़ कर कोई बस्तु नहीं है। अनुभव ने यह भी सिद्ध कर दिया कि जो वस्तुएँ प्राचीनकाल में इन के बनाने के काम में आईं आती थीं उनसे बढ़ कर और लाभदायक कोई विधि इस वर्तमान काल में नहीं निकली।

यद्यपि विज्ञानयत्न लोगों ने बहुत से नवीन आविष्कार किए हैं, परन्तु सुगन्ध के प्रेमियों ने बड़े अच्छी प्रकार समझ लिया है कि विदेशी खुशबू और सेवट चिन्त और मस्तिष्क के लिये लाभदायक ही नहीं बरन् हानिकारक हैं। इसी लिये बड़े-बड़े विद्वानों और बुद्धिमानों ने इनका प्रयोग बिनाबुझ बन्द कर दिया है। प्रत्यय के लिए वेचन अतः ही जमीन पर ही ध्यान कीजिए तो मज्जिमगिर चन्दन के तेल के सिवाय इन की जमीन के लिए और कोई वस्तु उपलब्धी सिद्ध नहीं हुई। यह तेल चन्दन की जड़की से काँबा जाता है जिसमें एक मनोहर सुगन्ध होती है और उसमें यह गुण होता है कि दूसरी सुगन्ध को अपने में खींच कर अतः के देर तक सुगन्धित रखने में एक ही है यह तब जाने के कारण कोई चकवा आदि नहीं हासता वैद्यक के अनुसार भी चन्दन का तैल बहुत से रोगों के लिए बड़ा लाभदायक है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि इस कार्यालय अतः में नाना प्रकार के अतः व सुगन्धित तैल हवादि छुड़ता और निवृत्तता के साथ बनाकर तैयार किए जाते हैं और अतः के अवशिष्टो व अन्य खरीदारों को भेजे जाते हैं।

हमारा कार्यालय २४ वर्षों से हिन्दुस्तान और तैर सुषका में उद्योगम

अतः और सुगन्धित तैल हवादि भेज कर आप लोगों की सेवा का रहा है।

अतः—गुलाब केवड़ा मोतिया, दिनामुशकी, सुरक धारक और सुहाग प्रति तोला (०) ८) ५) २) १) ॥) है।

अतः—चमेडी (माखली) मुही, चम्पा, मौलमी, केतकी मखिका पारिजातक, वीना, आम, नरगिस, नारीसी, केपर, मिट्टी, गुलहिना (मैदनी) और मज्जुमा हवादि प्रति तोला ८) ५) २) १) और ॥) है।

रुई—रुई गुलाब ८०) व ९०) तोला, रुई, चमेडी, केवड़ा २०) तोला, रुई लस और पानकी १०) ८) ५) २) और १) तोला। अतः

अतः अगूर पुराना (गुर्नी) २०) तोला नया ५) तोला, चम्पकी कस्तूरी ३२ मरी केसर उतम २) तोला, सफ़रज ॥) तोला।

सुगन्धित तैल—चमेडी, बेडा, गुलाब, केवड़ा, चम्पा और मौलमी प्रति सेर २०) १०) ८) ५) २) और १॥) का नारीगी, सन्तरा, मसाखा चाँबका, हवादि ५) २) और १॥) सेर है। गुलाबगुल व केवड़ा जड़ ५) ५) २) १) और ॥) सेर है।

तम्बक सुगन्धित खानी—पत्तो मुरकी जाल, का १ प्रति सेर २) १॥) और १) पीकी पत्ती अपरानी क तुंगी, केपर, चाँदी के चक्रे हवादि पुक १९) ८) ५) प्रति सेर वही मावा सुगन्धि २) और १॥) सेर तम्बकू दाना मुरकी ८) १) और १) सेर।

नोट—हमारे कार्यालय का बना कुक माख बड़ी तोला यामी १३ माशा का न का और ४२) मर के सेर से भेजा जाता है।

पता:—पं० बाबूलालशर्मा, शर्मा परम्पूरसी शर्मा भवन कन्नोज यू०पी०।

* * * * *

वैश्य कन्या की आवश्यकता

एक २६ वर्षीय 'माहेरवरी वैश्य' युवक के लिये। कन्या सुशील शिक्षित और कोमल भावापन्न होना आवश्यक है। जागी का कोई बन्धन नहीं। पूर्ण विचरणा सहित विशेष बातों के लिये लिखें—

पो०बोकसन् ० ८

“आर्य-मित्र” कार्यालय, आगरा

* * * * *

२५) रु० इनाम पता लगाइए

गौरीशंकर का जिसकी उम्र करीब २८ वर्ष की है। कव गेंडा ग नंदुनी उसके एक हाथ पर गौरीशंकर नाम लिखा है और दूसरे हाथ पर औरत की तस्बार है। आगे के रत्नों में सोने की दो चौं पत्तनी हैं वह सुषके आदि का बहुत आशी है, उसकी तबारा सुषके बाँधों या साधुधर्म में हो सकती है। जो कोई सज्जन उसका पता लगा कर मेरे पास लावेगा, इन्हें चखवावा कर्च के २५) इनाम दिया जावेगा। जल्दयुधि टूटका (आगरा)

कलम—आम—खीची

दशमगा के प्रसिद्ध 'आमों' और सुषकपुर के प्रसिद्ध खीचीयों के मिश्रण और तन्दुदत चकम मेरे बड़े सस्ता आम पर लिखेगा। खीचीय मंगाकर देखें। पता—विहार बरसरी पो० के कोयल बरवारी (दशमगा) विहार

के अवसर पर सभा के सुयोग्य उपप्रधान श्री प० रामविहारीजी तिवारी ने भी १००) आ० स० लखनऊ (गणेशगंज) की ओर से वेदप्रचारार्थ प्रदान किये । सभा आ० स० लखनऊ तथा विशेषतः तिवारीजी को धन्यवाद देती है । सितम्बर के साथ सभा का वर्ष समाप्त होगया परन्तु अभी तक आर्य्य पुरुषो ने अपने कर्त्तव्य पालन की ओर यथोचित उद्योग नहीं किया—यदि सब आर्य्यसमाजो तथा अन्तरंग सभा-सद महानुभाव सभा की वर्तमान शाचनीय आर्थिक अवस्था को दृष्टि मे रखकर थोडा थोडा भी प्रयत्न करें तो आर्थिक चिन्ता से मुक्ति लाभ करके सभा वेदप्रचार आदि का समुचित प्रबन्ध कर अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार सम्पादन कर सकेगी इसमें सन्देह ही क्या है । आशा है कि आर्य्यसमाजे और आर्य्य पुरुष अपने कर्त्तव्य का शीघ्र ही पालन करेगे और सभा को आर्थिक चिन्ता से मुक्त करदेवेगे ।

—धर्मपाल विद्यालकार ।

मन्त्री तथा अधिष्ठाता उपदेशक विभाग

सूचनाएं

(१)

सयुक्तप्रात आगरा व अवध की आर्य्यसमाजो के मन्त्री महानुभावों तथा आर्य्य भाइयों की सेवा मे निवेदन है कि वे प० चेतनपाल जी शर्मा अर्वातनिक उपदेशक तथा म० मौहरसिंह जी अवैतनिक उपदेशकों को सभा सम्बन्धी किसी मह का धन न दे । क्योंकि अब वे सभा के अवैतनिक उपदेशक नहीं रहे ।

(२)

“बेल्लेज का उत्तर,,

“दिवाकर” २३ सितम्बर १९३५ ई० पृष्ठ २ कालम ३ में आर्य्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० के नाम एक ‘बेल्लेज’ शीर्षक लेख छपा है जो जनता में भ्रम फैला सकता है । अतः सर्व आर्य्य समाजों तथा आर्य्य स्वभावो को सचेत किया जाता है कि वह भ्रम में न

पड़े । सभा ने आर्य्य समाज शाहजहापुर पर कोई मुकद्दमा दायर नहीं किया । भला सभा अपनी शाखा अर्थात् सम्बन्धित आर्य्य समाज पर जो सभा की आज्ञाओं का पालन करती है कैसे कोई मुकद्दमा अदास्त में दायर कर सकती है और उसको ऐसा करने की आवश्यकता ही क्या होगी ? हा, सभा के नियमों का उल्लंघन करने वालो, सभा और समाज के प्रतिष्ठित, अनुभवशी रज्जनों, साधुओं में भी अश्रद्धा रखने वालो का सभा ने धादर नहीं दिया और न देही सकती है । नियम पालन ससार का प्राण है और नियम उल्लंघन अहित का कारण ।

पीतमलाल मन्त्री

आर्य्य प्रतिनिधि सभा सयुक्त प्रात

आर्य्यसमाजों को आवश्यक सूचना

आर्य्यमित्र में मैंने एक विज्ञप्ति इस अभिप्राय से निकाली थी कि यदि आर्य्य समाजे धन सीधा कोष भेजें तो हिस्साब का लेखा रखने मे सुगमता तथा सुभीता रहे— इसमें उपदेशकों पर अविश्वास का भाव बिलकुल न था । परन्तु अनुभव से यह प्रतीत हुआ कि न तो समाजो ने धन कोष को ही भेजा और मेरी विज्ञप्ति को कारण बनाकर न उपदेशको को ही दिया । इससे कार्य्य संचालन में बहुत असु-विधा हो गई । अतः सब समाजो से निवेदन है कि वे कोटिधन तथा दशाश तो केवल कोष म ही सीधा भेजे, परन्तु और सब धन वेद प्रचार सम्बन्धित सभा के उपदेशको को भेजे । उपदेशको को भी सूचित किया जाता है कि केवल दशाश को झोड़कर और सब सभा का प्राप्तव्य तथा वेद प्रचार सम्बन्धित धन अधिक से अधिक एकत्रित करने का प्रयत्न करें ।

निवेदक— ध्यानन्दस्वरूप

कोषाध्यक्ष, आर्य्य प्रतिनिधि सभा

यू० पी० मेरठ ।

शुद्ध हवन सामग्री

धोके से बचने क लिए धारों को बिना बी० पी० भेजते हैं पद ४
 => पोस्ट कर्ष भेजकर डा० सूता मुफ्त मंगा के अगर मन्ता जैसी सामग्री हो तो मूख्य भेजदे अन्यथा कूबे म के क दे फिर मूख्य भेजने की आवश्यकता नहीं भाव ॥) सेर ८०) मर का सेर । थोक प्राइड १। २५) प्रति सैकड़ा कमीशन मार्ग ०५प प्राइड के तिमरे ।
 पता—रामेश्वरदबालु आर्य पो० अमोली (फतेहपुर) यु० पो०

उपनिषद् प्रकाश

उपनिषद् प्रकाश २) इष्टान्त सागर २ भाग ३॥) वीर मातायें सखी देविर्वा ॥) वीर और विदुषी स्त्रियाँ २ भाग ॥॥) धर्म इतिहास रहस्य १॥॥) उपदेश मजरी॥) चमन इस्लाम की सेर १) अर्घु हरि शतक ॥) भीष्म पितामह ॥०) श्रीकृष्ण ॥०) शिवाजी-नीरजन धारा ॥) कजन प्रकाश २ भाग १-०) कपरन सङ्घार २)॥) स्त्री ज्ञान प्रकाश २ भाग ॥॥) जलपद् -) सुकमय भीषण १) कथा पचीसी ॥०) सत्यार्थ प्रकाश का पञ्चानुवाद सत्यसागर सन्ध्या १॥) वेदान्त दर्शन १॥),
 पता—रयामबाबु सत्यवेध धर्मा वैदिक आर्य पुस्तकालय बरेली ।

वैदिक धर्म का प्रचार

किस प्रकार हो सकता है ?

सुन्दर घरते साहित्य से जितना उत्तम प्रचार होता है उतना ध्याकवानों से नहीं होता । हमकिये
 पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०
 द्वारा मन्थानिन सुपरिन्द ट्रेडिंग मगाहये । प्रथम माळा के १२ ट्रेडिंग निकल चुके हैं । द्वितीय माळा के ११ ट्रेडिंग । प्रथम माळा का मूख्य २) सैकड़ा १५) हजार । द्वितीयमाळा का १) सैकड़ा १०) हजार विद्वान् सूची जिस कर मगाहये । इन ट्रेडिंगों की १५ लाख प्रतिभा निकल चुकी हैं । सब की अन्य पुस्तकें भी मिल सकती हैं ।
 पता— ट्रेडिंग विभाग, भारतीयसामान चौक, इलाहाबाद ।

सनातन विधवा विवाह

इसमें सनातन धर्म के सारत, पुराण महाभारत आदि से विधवा विवाह के विरोधियों का मुँह तोड़ जवाब मरा हुआ है । १०० प्राइडके का पूरे पत्ते के साथ देवक नाम का जाने से ही डूर निकलेगा । मूख्य सागत के अनुसार ॥) से १) तक होगा । उपदेशको और सुधारको के बने काम की है । पता—प० रयामजी धर्मा, मौजे मरुपर, पी० कुलहरिया तिका शाहानाद ।

जाति निर्णय

जाति अभेद १६१ हिन्दू जातियों क विवर्य सशोधित नवीन संस्करण ३०१ पृष्ठ २॥) माध्यम निर्णय ६२० पृष्ठ ३२ माध्यम जातिया कर विवर्य ५) माई वर्धा मीमांसा १॥) कर्त्तव्य धरा प्रदीप २॥) नौ सुन्धिम जाति निर्णय २॥) मय एक साथ १०) में हाक मजग । पता—मेनेकर चर्ककवधवा मयदक (या) कुलैरा मयपुर ।

CURES CHRONIC EYE TROUBLES NO RISK OF OPERATION SAFE SURF FASHY HOME REMEDY SUCCESS ALWAYS GUARANTEED

HARYASRAM
 PANCHPOTA, BENGAL
 OR FROM LEADING OPTICIAN

सार्वदेशिक सभा की घोषणा

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा का अधिवेशन ता० २६-६-१९३५ को दिन के २ बजे से श्री महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज के प्रधानत्व में बलिदान भवन (देहली) में हुआ अधिवेशन में सर्व श्री महात्मा नारायण स्वामीजी, आचार्य रामदेव, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, पं० धुरेन्द्र शास्त्री, पं० चन्द्रशेखर, बा० श्रीराम, ला० नारायणदत्त, ला० ज्ञानचन्द, पं० चमूपति, प्रो० सुभाकर और ला० देशबन्धु ये १२ सज्जन उपस्थित थे। अधिवेशन में अन्यान्य विषयो के अतिरिक्त श्री पं० बुद्धदेव जी का विषय महत्वपूर्ण था उस अधिवेशन में पंडितजी स्वयं उपस्थित हुए। पंडित जी ने अपना वक्तव्य दिया। पंडित जी के सम्बन्ध में अंतरंग सभा के प्रस्ताव सं० १२ ता० ११। २३ के द्वारा निम्न निश्चय किया गया था—

इस सभा की सम्मति में हैदराबाद (दक्षिण) में शास्त्रार्थ करते हुए पं० बुद्धदेव जी ने ऋषि दयानन्द के चित्र से जो तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया है वह धर्म, नीति, शिक्षाचार, राजनियम जिस किसी दृष्टि से देखा जाय सर्वथा अनुचित है और विशेष कर एक आर्य्य उपदेशक की ओर से उसका होना अत्यन्त निन्दनीय है। इस सभा की सम्मति में पं० बुद्धदेव को परचाप्ताप करना चाहिए। उस पर विचार करने के बाद इस अंतरंग ने निश्चय किया:— 'हैदराबाद में किए गए शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में पं० बुद्धदेव जी का वक्तव्य सुना गया। पंडित जी ने अपनी सफाई में कहा:— (१) उनसे यह कार्य असाधारण अवस्थाओं में हुआ है। (२) सामान्यतः उन का यह व्यवहार नीति तथा शिक्षाचार के विरुद्ध है और जो उन्हें निःस्पन्द दुःखपूर्वक किया है और आगे को उसे कभी नहीं दुहरावेंगे। (३) सभा के उपर्युक्त नि० सं० १२ तिथि ११-६-३५ के प्रस्ताव में प्रयुक्त हुए "धर्म" शब्द से उनके विचार में भ्रान्ति पैदा हो रही है।

निश्चय हुआ कि सभा पंडित जी के इस विनम्र वक्तव्य तथा विश्वास दिलाने को पर्याप्त समझती है

और घोषणा करती है कि सभा के पूर्व स्वीकृत प्रस्ताव में "धर्म" शब्द विस्तृत अर्थों में ही प्रयुक्त हुआ है। सभा सब आर्य्य पत्रों तथा आर्य्य समाजों को आदेश करती है कि अब यह वाद विवाद सर्वथा कर दिया जावे। मन्त्री

—भा० स० चिचौली (बेतुल) के उत्सव में स्वामी सत्यदेवजी ने महत्वपूर्ण भाषण दिये।—शरशोदे।
—व्यानन्द वेद विद्यालय देहली पंचकुइयां रोड से हटकर किंग्स वे दिल्ली पर आगया है।

—आचार्य।

—दशहर पर भा० स० वस्ती के प० तिनकूलाल ने भा० स० जुमरियागंज में प्रचार किया।

—भियाण (अजमेर) निवासी श्रीधुत कन्हैयालालजी आर्य्य की सुपुत्रों का नामकरण संस्कार भिषगाचार्य प० ईश्वरदत्तजी मेधार्थी विद्यालंकार ने कराया।

—भा० स० उमरी (गोरखपुर) द्वारा इन्दुपुर (गोरखपुर) के रामलीला के मेले में प्रचार तथा उत्सव धूम धाम से १० से १३ अक्टूबर तक मनाया गया। जनता पर वैदिक सिद्धान्तों का बड़ा अथक प्रभाव पड़ा। —मन्त्री

—दोहद में ७ अक्टूबर को १७ यात्रियों को प० रामदेव भिष आर्य्य पुरोहित ने यज्ञोपवीत दिये।—मन्त्री।

—भा० स० बहेरी की तरफ से स्थानीय रामलीला के मेला पर वैदिकधर्म का प्रचार बड़े उत्साह पूर्वक हुआ। —मन्त्री

—आर्य्यकुमार सभा हसनगंज (पार) जखनऊ का उत्तम डालीगंज में ३० सितम्बर से २ अक्टूबर तक मनाया गया। प० विद्यानन्द प० बिहारीलाल काव्य-तीर्थ, स्वामी त्यागानन्दजी कु० सुखलाल के व्याख्यान हुए। मौखिकियों की शंका का समाधान प० विद्यानन्दजी ने किया। —मन्त्री

—भा० स० खुपागंज (शाहजहांपुर) का ८ से ११ अक्टूबर तक उत्सव मनाया गया और प० प्रभुदयाल स्वामी ध्रुवानन्द कु० धर्मराजसिंहजी के प्रभावशाली भाषण और श्री जोरावरसिंह प० ठाकुरवत्त के प्रभावशाली भजन हुए। प्रभाव अथक पड़ा। —मन्त्री

मत चूकिये !

 शीघ्रता कीजिये !!

स्वयं लाभ उठाइये, नमूना मुफ्त ?
म्याइये और मित्रों से कहिये ?

क्या ?



यही ३० नवम्बर १९३५ तक—

जो सज्जन ३३) वार्षिक मूल्य मनीआर्डर से भेजकर या बाकनयय सहित ३॥) की
“महाभारत—अङ्क” की वी० पी० स्वीकार कर ‘सञ्जय’ के स्थिर प्राहक बनने ।
उन्हे जनवरी १९३६ मे प्रकाशित होने वाला सवित्र मुन्डर—

— सजय का —

मुफ्त

“भारत-रत्नांक”

मिलेगा

३० नवम्बर के परचात प्राहक होने वालों को ‘महाभारत—अङ्क’ बिना मूल्य नहीं मिलेगा ।
इसलिए—शीघ्र मनीआर्डर भेजिय या वी० पी० का आर्डर दीजिये ।

—०: विज्ञापन दातकों को :०—

अपने विज्ञापन भेजकर शीघ्र स्थान रिजर्व करा लेना चाहिये ।
ऐजन्टों को—‘भारत-रत्नांक’ की चिक्री पर एक चौथाई कमीशन मिलेगा ।
मैनेजर—संजय कार्यालय नयावाहार देखी ।

—प० बशापालजी शास्त्री का वैदिक सभ्यता पर आ० स० कोपागंज (आजमगढ़) में प्रभावशाली व्याख्यान हुआ ।

—आ० स० मसेवी (मुरादाबाद) की ओर से श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी “बोधक” की अध्यक्षता में प० शकुनचन्द्रजी मिश्री डींगरपुर के पुत्र का जन्म-कर्म तथा नामकरण संस्कार उपमन्त्रा के रावदेवजी ने कराया और ५) दान में प्राप्त हुए ।

—बिहार सरकार के प्रचार विरोधी के सचर्युलर का निम्न समाजो ने प्रस्तावो द्वारा तीव्र विरोध किया है— आ० स० चांद चौरा (गया), आ० स० फेरोहेडी (सहारनपुर) ।

—महाविद्यालय सिकन्दराबाद ने प० काशीनाथजी काव्यतीर्थ की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव भेजा है ।

—शोक है कि प० वेदप्रकाश स्नातक फैजाबाद का १८ सितम्बर को देहान्त होगया । ईश्वर मृतत्मा को शान्ति और परिवार को चैत्य प्रदान करें ।—मन्त्री

—विजयादशमी पर आ० स० इटावा द्वारा कविराज रत्नाकरजी शास्त्री की कथा सप्ताह भर बड़ी प्रभाव-शालिनी हुई । इसी प्रकार आर्यकुमार सभा मुटठीगंज प्रयाग, आ० स० फैजाबाद, आ० स० बल्हारपुर आ० स० मसेवी (मुरादाबाद) आ० स० खुर्रमपुर, अमिला (आजमगढ़) — ने भी प्रचार आदि व्यवस्था की ।

सार-सूचनाएं

अलीगढ़ जिला की सभाओ से सूचना ।

अलीगढ़ प्रांत की समस्त समाजो के सभासदो की सूची तथा आर्यसमाज का चौथा मन्दिर पाठशालादि का जिला सभा के दफ्तर मे भेजने की कृपा करें और अपने यहां के नाम, पुत्र पुत्रियो आयु सहित की संख्या आयु और शिक्षा सहित तैयार करले और उसकी लिपि सभा को भेजदे । यदि कोई बालक शिक्षा नहीं पाता है तो इसका कारण तथा उसके प्रति स्थानीय समाज ने क्या किया, यह भी लिखा जाना चाहिये । श्री पं० गुरुदत्त

जी आयुर्वेद शास्त्री के ११—६—३५ की अन्तरंग मे सर्व सम्मति से स्वीकृत हुये प्रस्तावो के अनुसार उपर्युक्त सूचना आवश्यक हैं । साधु आश्रम पुल काली नदी हरदुआगंज की रजतजयती के अवसर पर अलीगढ़ जिला सभा का साधारण अधिवेशन १० नवम्बर को दोपहर के बारह बजे से होगा । अलीगढ़ की समस्त समाजो को अपने प्रतिनिधि उत्सव मे भेजने चाहिये और उनकी सूचना मंत्री को दे देनी चाहिये ताकि कार्य नियमपूर्वक हो सके । इस अधिवेशन में हिमाव, आगामी वर्ष के लिये पदाधिकारियो का निर्वाचन तथा अन्यान्य विषय होंगे । रामप्रसाद आर्य

—मेरे सहस्रवान (वदायू) से हाथरस जाने के कारण उपदेश विभाग आर्य उपप्रतिनिधि सभा, जिला वदायू का कार्यालय वार्षिक निर्वाचन तक पं० रामस्वरूप जी शर्मा सहायक अधिष्ठाता उपदेश विभाग के पास आर्यसमाज दयानन्द सेवा आश्रम वदायू मे रहेगा । —अनन्तराम

आर्य सम्मेलन

साधु आश्रम हरदुआगंज की रजत जयन्ती पर ता० १० नवम्बर की रात्रि को रायसाहब श्रीमान मदनमोहन जी सेठ प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, यू० पो० के सभापतिव्व मे आर्य सम्मेलन होगा । आर्य बन्धु इस महोत्सव मे सम्मिलित हों और आश्रम की रमणीक भूमि तथा सत्सग से लाभ उठावे । सम्मेलन के लिए प्रस्ताव पर भेजने की कृपा करे । रामप्रसाद आर्य संयोजक

—आ० स० फूलैएडगंज दोहद के मंत्री श्री पं० वेदमित्र शर्मा महर्षि की जीवनी, विधवा विवाह, अङ्कताद्वार आदि पर मार्ग के समाजो में मैजिक लालटेन द्वारा प्रचार करते हुए लाहौर अर्द्धशाब्दी में पहुँचेंगे । १५ नवम्बर तक पत्र भेजने वाले समाजो मे प्रचार किया जा सकेगा ।

—दामोदर आचार्य प्रधान

१५०००) रु० नरुद इनाम जीतिये

	१२	
८	७	६
	२	

पहिला इनाम ७०००) पहले न० सही उत्तर के लिये ।
दूसरा इनाम ३०००) दूसरे नं० सही उत्तर पर ।
तीसरा इनाम २०००) तीसरे नं० सही उत्तर पर ।
चौथा इनाम २०००) २५ पुस्तकों के लिये सही उत्तर पर ।

पांचवा इनाम १०००) सिर्फ सही उत्तरवाली महिलाओं को नियम— ऊपर दिये हुये खाली खानों को इस प्रकार भरो कि जिघर से जोड़ें २१ ही हों ।

नोट:— उत्तर चाहे कितने भी हो सब स्वीकार होंगे, प्रत्येक उत्तर के साथ १) मनीआर्डर द्वारा भाना ज़रूरी है, जिसके बिना आपका उत्तर स्वीकार नहीं होगा । उत्तर २५ दिसम्बर तक भेजे जा सकते हैं । नतीजा ३० दिसम्बर को निकलेगा नतीजे के लिये -) का टिकट भेजिये, मैनेजर का निर्याय सर्वमान्य होगा स ।

मनीआर्डर तथा उत्तर इस पते से भेजिये:—

सेक्रेटरी—“प्रेसी” पब्लिस क्लब, आगरा सिटी ।

आर्यभास्कर प्रेस आगरा में छपाई

आर्यभास्कर प्रेस जिसमें आर्यमित्र छपता है, संयुक्त प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा की सम्पत्ति है । इस प्रेस में हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी छपाई का काम बहुत अच्छा होता है । अनेक अच्छी-अच्छी किताबें बड़ी सुन्दरता से छपती रहती हैं । प्रेस के पास सब तरह के टाइपों का स्टॉक बहुत काफी है । नये कई प्रकार के उत्तम टाइप भी काम में लाये जाते हैं । कई मैरीनें काम करती हैं । भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस को छपाई द्वारा जो लाभ होता है, वह किसी व्यक्ति की जेब में न जाकर सभा को मिलता है । ऐसी दशा में, सर्वासाधारण विशेष कर आर्य और आर्यसमाजों से प्रार्थना है कि वे अपने सब काम भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस में ही छपावें हमारा विश्वास है कि उन्हें इस प्रेस के कर्ष से पूर्ण सन्तोष होगा और किसी प्रकार की शिकायत का अबसर न मिलेगा ।

—मैनेजर

यदि



आप नया-खुल, नई ताकत नई अधानी प्राप्त करने चाहते हैं तो लखनऊ मार्क आर्जेंट नं० १०० सेवन करें जिसकी पहली

सुराक से ही नस-नस में ताकत की लहर दौड़ जाती है दिवस में सरूर थोखों में नूर पैदा होता है । शुद्ध रक्तिर पैदा होकर चेहरा कुन्दन की तरह दमकने लगता है, मुख खुलकर लगती है जो स्वाभो हजम हो जाता है जिस्म फीकाप की तरह मशबूत होकर लोहे की काठ बन जाता है एक बार खरीदकर जरूर परीक्षा करें मूल्य ४० सुराक की बोटल १॥)

हर ऋतु में सेवन कर सकते हैं, हर शहर के दवा फ़रीशों से मिलता है

आपके शहर के एजेंट

(१) मेरठ शहर, ग्रीनवाड लक्ष्मीनारायण

(२) हापुड़, फिदमल देवी-सरन (३) बुलन्द शहर कन्दैय-लाल मन्जुम (४) मास्तर रोड को आलीगढ़ (५) भूपाल, मन्मूल-बन्द फूलचन्द जैन कुमारासी गेड एजेन्सी के लिये

गुप्तारोड कम्पनी टोहावा, सि० हिसार को लिखो ।

कृपया पता लगाइये

मेरा लड़का श्रीनाथ उम्र १६ साल का दुबला पसला शरीर का रंग गेहुँआ मांघे पर कुच्छुदा बूढ़ है। एक हाथ पर ओ३म् लिखा हुआ है कोटे से भाग कर कहीं चला गया मुझको शंका है कि गुडगांव की अनाथ मंडली में शामिल होकर फिर रहा है। जो इस लड़के को लेकर कोटा मेरे सुपुर्व करेगा उसको आने जाने का किराया व ५) रुपये बतौर इनाम दूंगा। श्रीकृष्ण पटवारी

मारफत श्री गंगाविशान पटेल गुजररोड
रामपुरा भाटापाड़ा कोटा

फतहपुर जिला उपप्रतिनिधि सभा

(१)

समस्त समाजें तथा अन्य सहायक व हितैषी सज्जनों को सूचना दी जाती है कि पं० राजपाल भजनोपदेशक जिला फतेहपुर की अन्तरंग सभा १३-१०-३५ के निश्चयानुसार उनका कार्य तथा हिसाब व आचार संतोषजनक न होने के कारण पृथक कर दिये गये हैं। अब उनको कोई सभा का हिसाब आदि न देवें।

(२)

एक योग्य भजनोपदेशक की आवश्यकता जिला आर्य उपप्रतिनिधि सभा फतेहपुर को है २०) मासिक तक वेतन दिया जावेगा। प्रार्थना पत्र १० नोम्बर तक लिए जावेंगे केवल आर्य सज्जन जिनका आचरण शुद्ध तथा सात्विक हो स्थानीय समाज के मंत्री के प्रमाण पत्र सहित प्रार्थना पत्र भेजें।

—शम्भूदयाल मन्त्री।

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा दिल्ली

श्री विरजानन्द साधु आश्रम पुलकाली नदी हरद्वारगंज की रजत जयन्ती ६ से १२ नवम्बर तक समारोह के साथ मनाई जावेगी जिसमें हिन्दू-सम्मेलन, आर्य सम्मेलन, सर्वधर्म सम्मेलन, अखूत सम्मेलन भी होंगे। साथ ही शुद्धि सम्मेलन ता० ११ नवम्बर को श्री राजाबाहादुर कुबलपालसिंहजी की

अध्यक्षता में मनाया जावेगा और शुद्ध हुये भारे जिला अलीगढ़, मथुरा और आगरे से बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित होंगे तथा बड़े बड़े नेताओं तथा साधु महात्माओं के शुद्धि विषय पर मनोहर व्याख्यान तथा उपदेश होंगे।

— गौरीशंकर प्रधान मन्त्री।

श्री भगाने वाले का पता लगाइये

४-६-३५ ई० को महावतगढ़ पो० सगड़ी, आञ्जमगढ़ निवासी एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण की स्त्री को जीवनपूर बाजार पो० सगड़ी, आञ्जमगढ़ का रहने वाला तुलसीलाल (कायस्थ) भगा ले गया है। तुलसीलाल का वारंट जारी है। वह कई औरतें इसके पहले भी भगा चुका है और इस मामले में सजा (जेल) भी काट चुका है। वह जहाँ तहाँ आर्यसमाज में अपने को आर्यसमाजी बता कर विरवास पैदा कर लोगों को धोखा देता है। तुलसीलाल का रंग सांबला, मुख लम्बा और कूढ़ औरसद पतला, उम्र करीब ४० वर्ष है और वह सिलाई का काम करता था। कभी कभी दवा इत्यादि भी बतौर एजेण्ट के बेचा करता है। स्त्री का नाम चन्द्रावती, रंग गेहुँआ, मुख लम्बा और चेचक का कुछ दाग है। स्त्री की उम्र करीब ३० वर्ष है। उसके कई लड़के घर पर कलप रहे हैं। जिन्हे पता लगे वे पुलिस तथा मन्त्री आर्यसमाज, चौक, आञ्जमगढ़ को सूचना देवें।

—रमाशंकर सेठ।

रजत जयन्ती समारोह

पचारिये ! सत्संग का सुभवसर !

श्री विरजानन्द साधुआश्रम, कालीनदी, हरदुआ गंज (अलीगढ़) की रजत जयन्ती कार्तिक शुक्ल १४, १५ तथा अगहन कृष्ण १, २ सं० १६६२, तदनुसार ६, १०, ११ और १२ नवम्बर सन् ३५ ई० शनिवार, रविवार, सोमवार तथा मंगलवार को आश्रम की पवित्र भूमि में बड़े समारोह के साथ मनायी जावगी। इस महोत्सव के अवसर पर,

(१) साधु-सम्मेलन, (२) आर्य-सम्मेलन, (३) शिक्षा-सम्मेलन, (४) कवि-सम्मेलन, (५) सरस्वती-सम्मेलन, (६) हरिजन सम्मेलन, (७) हिन्दू-सम्मेलन [भाई परमानन्दजी की आज्ञा से] और (८) सर्व धर्म-सम्मेलन किये जायेंगे।

प्रतिदिन प्रातः ७ बजे से ११ बजे तक यज्ञ के बाद श्री स्वामी सर्वज्ञानन्दजी महाराज की उपनिषदों तथा वेदों की कथा होगी। दोपहर के पश्चात् १ बजे से ५ बजे तक सम्मेलन और रात्रि के ८ बजे से ११ बजे तक भजन तथा व्याख्यान हुआ करेगा। सर्व साधारण की उपस्थिति प्राणनीय है।

सुवर्णसिंह मन्त्री।

—पं० द्वारकादास जी उपदेशक तथा मा० मननसिंह जी भजनोपदेशक प्रचार के लिये मेला दाईघाट शाहजहांपुर में प्रचार के लिये जावें।

सत्यवत् मण्डलाधीश

—आ स० हल्द्वानी का चुनाव २४-११-२५ को दिन के २ बजे आर्य समाज भवन में होगा जो सदस्य बाहर हों कृपया पधारे।

उपमंत्री

—आ० स० खालायण सहारनपुर का उत्सव ७, ८, ९, १० नवम्बर के स्थान पर १४, १५, १६, १७ नवम्बर १९३५ को होगा उपदेशक कृपया नोट कर लें।

विशम्भरदयाल शर्मा

—आर्यसमाज अमला (आजमगढ़) पारसाल विजया के अबसर पर स्थापित हुई और धीरे धीरे उन्नति करती जा रही है। प्रतिनिधि सभा (यू० पी०) इधर ध्यान देकर उपदेशक भेजा करे।

—मातादीन मन्त्री।

—मेरठ के समाजों में मैं छैः मास तक तहसील मवाना (मेरठ) में आर्यसमाज मवाना की अर्ध शताब्दी के उपलक्ष्य में ग्राम प्रचार का कार्य करूंगा, अप्त आर्य सन्यासियों से प्रार्थना है कि वे इस कार्य में यथा पधारे कर सहायता करें। तथा मेरठ कमिश्नरी का कोई समाज इस बीच मे मुझे न छुलावे।

—रघुवीरदत्त शर्मा, उपदेशक सभा।

—आर्यसमाज कन्नौज को स्थापित ५२ वर्ष हुए। अतः जयन्ती उत्सव में सब महाशयों को मिष्टान्न भोजन कराया गया जो न आ सके थे उनके घर मिठाई भेजी गई और समाज मन्दिर में पब्लिक पुस्तकालय सन् १९०३ में स्थापित हुआ था इसे ३२ वर्ष स्थापित हुये इसकी भी जयन्ती मनाई गई। यह भी दिन दिन उन्नत दशा में होता रहा।

—मन्त्री।

—आर्यसमाज सिकन्दरपुर (बलिया) के उत्सव में ठा० धर्मराजसिंह उपदेशक तथा पं० मुकुन्दराम प्रचारक के व्याख्यान व भजनों का अच्छा प्रभाव पडा।

—मन्त्री।

—आर्यसमाज पुरैनी (बिजनौर) में बदरुद्दीन मुसलिम की शुद्धि होकर ज्ञानचन्द नाम रक्खा गया।

—मन्त्री।

—आर्यसमाज सलकिया हावड़ा के प्रधान श्री मिहिरचन्द्रजी धीमान की भगिनी की आकस्मिक मृत्यु पर १३ अक्टूबर को समाज में शोक प्रकट किया गया।

—मन्त्री।

बहिनों को उपहार

भय्या दौज के उपलक्ष्य में

तुम कितना पढ़ना चाहती हो और पढ़कर क्या करना चाहती हो या क्या बनना चाहती हो अथवा क्या पद प्राप्त करना चाहती हो—इन प्रश्नों का उत्तर देनेपर श्रेष्ठ उत्तर देनेवाली बहिनो को पुरस्कार में वैदिक साहित्यमण्डल का पुस्तको का एक सेट पारितोषिक में दिया जायगा अथवा जो बहिन आर्यमित्र का प्राहक होना चाहेगी उसे आधेमूल्य में आर्यमित्र १ वर्ष के लिए दिया जायगा तथा ऋष्यङ्क मुफ्त! इसलिए उत्तर १० नवम्बर तक आज्ञाना चाहिए। प्रत्युत्तर चाहने के लिए

—)। का टिकट साथ आना चाहिए।

बी० डी० पचौरी

Cl० सन्पाङ्क आर्यमित्र आगरा।

शास्त्रोक्त ऋषि प्रणीत औषधें

हमारे यहां बहुत दिनों से आयुर्वेदीय औषधों का बड़ा भारी संग्रह रहता है। सुयोग्य और परीक्षोतीर्ण वैद्यों द्वारा औषधें तयार कराई जाती हैं जोकि कठिन रोगों में अपना अपूर्व फल दिखाती हैं। यह वह शास्त्रीय औषधें हैं जिन्हें हमारे ऋषि, मुनियों ने सहस्रों वर्षों तक परीक्षा करके सिद्ध फलप्रद पाया है। जो अपना कार्य जादू की तरह शरीर पर करती हैं। हमारी औषधें शास्त्र सम्मत हैं इस बात की हमारी जिम्मेदारी है।

चंद्रोदय रस

अथवा स्वर्ण मकरध्वज

वैद्यक शास्त्र में इससे बढ़कर दूसरी औषधि ही नहीं है कोई रोग ऐसा नहीं है जिसपर यह अपना प्रभाव जुदे-जुदे अनुपानों से न दिखाता हो, इसकी प्रशंसा हम नहीं करेंगे वैद्यों से पूछ लीजिये। मरते के मुँह में एक रत्ती बाल देने से दो घंटे बाते करसकता है। शरीर को बलवान बनाने की तो यह एक ही दवा है। दाम ४) ६० तोले सिद्ध मकरध्वज दाम २४) ६० तोले पद्मगुण बलजारित मकरध्वज दाम ८) ६० तोले

सुवर्ण वसन्त मालिनी

पुरानी खांसी युक्त ज्वर, ऊपर का रवास बलना, क्षयी जिसमें मनुष्य प्रति दिन सुखता जाता है, उनके लिये यह दवा रामबाण है, यह औषधि सोना मोती आदि बहुमूल्य पदार्थों से बनाई गई है, हमने स्वयं अपनी आंखों से देखा है कि जब और्णव्वर (तपेविक) ने डाक्टरों ने रोगियों को निराश कर दिया है तो इस औषधि ने रोगी को जीवदान दिया है। की १२) तोला।

मोती की भस्म कीमत ३५) ६० तोले

स्वर्ण भस्म कीमत ५०) तोले

उक्त दोनों भस्म दिल को ताकत पहुँचाने, फेफड़े को मजबूत करने और नया खून बनाने में अद्वितीय हैं, क्षय की बीमारी फेफड़े के खराब होने और दिक्की कमजोरी से ही होती है अतः इस

रोग में यह औषधें अपूर्व चमत्कार दिखाती हैं। क्षय रोग का वजन प्रति दिन घटता जाता है इन औषधों से वजन घटना बन्द होकर बाने लगता है, १-२ सप्ताह में ही गुण वीख पड़ता है। सेवन विधि दोनों की समान है मात्रा १ रत्ती दवा ३ मासे सितोपलादि चूर्ण के साथ शहद अथवा मलाई में मिलाकर दोनों समय खानी चाहिये।

रूपरस (चाँदी की भस्म)

यह असली चाँदी की भस्म ठीक २ शास्त्रीय रीति से तयार की गयी है निर्बलता की सर्वोत्तम औषधि है। कीमत ४) ६० तोले

काँतिसार (खोह भस्म)

इसके बनाने के परिश्रम के आगे इसका मूल्य कुछ भी नहीं है। रवास कास, राज रोग क्षयी को जड़ से खोकर शरीर को बलवान बनाता है। की० २) तोले।

अध्रक भस्म—प्रसिद्ध औषधि की प्रशंसा क्या करें कीमत १ न० १०) तोले न० २ की ५) तोले ३ न० २) तोले।

शंख भस्म

खांसी और हृदय की पीड़ा को दूर करके भूख बढ़ाती है अद्भुत और दस्त की कब्जों को दूर करती है। कीमत 11) तोले।

बंग भस्म

यह औषधी इतनी प्रसिद्ध हो गई है कि साधारण लोगों ने भी इसका गुण छिपा नह। रखा, जिन मनुष्यों ने संसार के सुखों से हाथ धाँ लिये हैं उन्हें यह औषधि फिर कुछ चांग्य बनाता है, नाताकती दूर कर शरीर को पुष्ट कराती है, कीमत २) ६० तोला। न० २ की १) ६० तोला।

मूषा की भस्म

कैसा ही प्रमेह किसी कारण से क्यों न हो इसके सेवन से बिलकुल जाता रहता है, खून को साफ करती है, बदन में सुखीं लाती है। कीमत २) तोले।

स्वर्ण मालिनीक भस्म।

बवासीर, काँड और पांडुरोग के लिये सर्वोपरि औषधि है दाम २) तोला।

आनन्द भैरव रस

ज्वर, अतिसार, संग्रहणी की उत्पत्ति दवा। दाम 11) तोला।

नागेश्वर रस

यह शीशो की भस्म है जो वैद्यक में श्वत्स और मंदाग्नि की सर्वोत्तम औषधि है, दाम २) ४० तोला।

कफ कुंजर रस

नाम ही से समझ लीजिये, कफ कैसा ही हो पता नहीं लगता की० १) तोला।

प्यवन प्राश

रसायनवेत्ता डाक्टरों ने यह बात स्वीकार की है कि आँवले में जीविनी शक्ति बढ़ाने की सामर्थ्य है यही कारण है कि महर्षि प्यवन ऋषि ने अपना जुदापा दूर करने के लिये इसे सेवन किया था, पुत्रंवर डाक्टर भी इस बात को स्वीकार कर चुके हैं कि श्वरोग की खाँसी तथा छाती की ऐसी ही बीमारियों के प्यवनप्राश से बढ़कर दूसरी औषधि नहीं है। सती ज्ञकाम, खाँसी, दमा, श्वरोग आदि ऐसे ही रोगों की निश्चित दवा है कीमत २० तोले की शीशी १)

बसन्त कुमुमांकर रस

इस रस में सोना, मोसो आदि बहुमूल्य रत्नों की भस्म पड़ी हुई है जो कि शरीर का बल पुरुषार्थ बढ़ाने की अपूर्व औषधि है। इसके अतिरिक्त श्वरोग में बंधा लोग इसी को काम में लाते हैं, कीमत की तोला १२) ४०

भङ्गूरी दाखों से बना हुआ

सुख संचारक

द्राक्षासव

अगर आप चाहते हैं कि बदन में खून और मसि बढ़े, भूख बढ़े, दस्त रुक हो, बहरे पर सुखीं आये

तो इसे अष्वरव सेवन कीजिये। श्वरोग की खाँसी और उसके कारण से हुई दुर्गन्धता की यह खाँस दवा है, बिना किसी रोग के भी पीने से शरीर में ताकत बढ़ती है। पीने में स्वादिष्ट होने से सभी सुखी से पीते हैं। प्रसूता स्त्रियाँ इसे पीवें तो उनकी निर्बलता शीघ्र दूर होती है, वृद्ध मनुष्य जिनको वृद्धावस्था के कारण एक न एक रोग घेरे ही रहता है, जैसे कब्ज, कफ, नींद न आना, भूख न लगना आदि की एक मात्र दवा है। कीमत छोटी १२ औंस की बोतल १) ४० बड़ी २४ औंस की बोतल २) ४०

मंगाते समय ध्यान रखिये कि ढाँक से मंगाने से बड़ी बोतल का १।।।) और छोटी का १।) ढाँक खर्च पड़ जाता है, इससे मंगाने से पहिले अपने शहर में दवा बेचने वालों से “सुख संचारक द्राक्षासव” मांगिये न मिले तो पास के रेलवे स्टेशन का नाम लिखकर २—४ शीशी इकट्ठी मंगाइये तो महसूस कम लागेगा।

ज्वरांकुश बटी

जिस प्रकार हाथी के मस्तक को सिंह विदीर्ण करता है वसी तरह ज्वर रूपी हाथियों को विदीर्ण करने के लिये यह औषधि अंकुरा रूप है इसीलिये इसको ज्वरांकुरा कहते हैं। इसके सेवन से ज्वर, सन्निपातिक ज्वर, विजारी, भीषेया, विषम ज्वर, नवीन ज्वर, जीय ज्वर इत्यादि ज्वर नष्ट होते हैं, मूल्य 11) तोला।

शृत्युञ्जय रस

इस औषधि की प्रशंसा करना व्यर्थ है इसका नाम ही गुण को प्रकाशित कर रहा है। यह दवा सर्दी से उत्पन्न ज्वरों को नष्ट करती है। ज्वर आने के ४—५ घण्टे पूर्व बर्षों को आधी गोली और १२ वर्ष के उपरांत १ गोली घण्टे-घण्टे भर के अन्तर से जल अथवा शहद के साथ सेवन करनी चाहिये, कीमत १ बोले का 11) आना।

बिकाने का पता:—सुख संचारक कम्पनी मथुरा।

निर्वाचन

निम्न आन्वय समाजों के प्रधान तथा मन्त्री क्रमशः प्रकार हैं—

सुरमपुर— श्री सुपरीजाज बा० वीरम्बर सिंह;
कटरा प्रयाग—म० सीताराम; म० निरानन्द वर्मा
पेल्डा (सी० पी)—म० नारायणदास; म० काजी
प्रसाद

मदरसा (फैजाबाद)—म० वासुदेवजाज, म०
जगद्वराम

गाजिबा बाद—बा० रामचन्द्र जी; श्री० सागरमज
वेवर (मैनपुरी)—ड० कन्होसिंह; श्री रघुनाथ
सुन्दर जाज

भूदवरेली—ड० कुन्दनजाज; बा० वसुना सहाय
सुखतार

विजनौर—बा० बाबूराम; जा० सखेचन्द्र
मुहम्मदी (खीरी)—मु० काजीचरब; श्री बाबूराम
बनाम ।

सीपरी बाजार (मौसी)—ड० मञ्जुरामसाद; श्री
हरचंदाजाज ।

इटवा—बा० काजीप्रसाद; श्री सुबाकर पायरेय ।
शौक लखनऊ—म० बिजुबदास; श्री मगवती प्रसाद
बलिया—बा० रायबहादुरजाज; बा जानकी प्रसाद ।
बल्लारामपुर—बा० ब०बहादुरजाज, पं सुन्दरजाज ।
इस्ताम नगर (वदायूँ)—ड० हेतसिंह; जाजा
रामनारायण ।

एटा—बा० चन्द्रशेखर; बा० रामबहादुरजाज ।
फैजाबाद—बा० मदनमोहन वर्मा; बा० महावीरसिंह ।
धामपुर (विजनौर)—बा० रामानन्द; जा०
रामनाथ ।

पुरैनी (विजनौर)—म० ज्ञानसिंह रागी; श्री० श्रीच-
मकाज जी ।

मुलन्दराहर—म० गुमाशीराम; ड० बबुमजसिंह ।
बहेड़ी (बरेली)—म० डोरीजाज; म० मज्जरेन ।
पंचराव (मिरजापुर)—स्वामी अमनाथचन्द्र; पं
चन्द्रचन्द्र त्रिपाठी ।

मुरसान (अलीगढ़)—ड० जेधराजसिंह; पं० राधा
बबुचम जी ।

सुदागंज (सहारनपुर)—बा० ज्योत्स्नाप्रसाद; म०
राधेजाज ।

विलहर (शाहजहाँपुर)—म० देवदत्त; म० नारा-
यणप्रसाद वैद्य ।

हर्दोई—म० केशरनाथ; बा० राजेश्वराम ।
वस्ती—ड० मूर्तिसिंह वकीज; पं० रगनाथ मिश्र ।

सम्भल—सा० ब्रह्मराजजाज; कजिताप्रसाद ।
श्रीनगर—बा० गोविन्द सहाय; जा० चिरंजीवाज ।

कालाकौर—पं० गणपतिप्रसाद; बा० जाज कुमा सिंह
हमीरपुर—सेठ ज्योत्स्नाप्रसाद; श्रीहरिहरप्रसाद ।

भवाली—बा० शुभनाथ म० कुशाराम ।
गोरधनपुर (मिर्जापुर)—म० रामजीदास म०
सुरजसिंह ।

रामगढ़ (नैनीताल)—बा० ध्यारेजाजजाज मज्ज;
म० रूपसिंह ।

कौठ (मुरादाबाद)—जा० तोताराम; बा०
शिरोमणि ।

गौराकलौं (फतहपुर)—श्री सत्यनारायणजाज;
म० कुँवरबहादुर ।

दुर्गापुर (मुगेर)—पं० शीमानाथ सिन्हाताज्जुर
पं० बन्नीनारायण शर्मा ।

काशी—बा० गोरीशंकरप्रसाद; राजितसिंह ।
पूरनपुर (पीलीभीत)—म० विजेशरामसिंह; म० राध
बहादुर सुखतार ।

—:—:—

आवश्यकता है

एक सनाढ्य ब्राह्मण नवयुवक २२ वर्षीय के लिए कन्याकी । कन्या सुरासिल पढ़ीलिखी और प्रह्म कार्य मे वृत्त हो । लड्का ज्वाला-पुर महाविद्यालय में पढा है और वारोज-गार है माता—पिता दृढ़ आर्य हैं विवाह वैदिक रीत्यानुसार होगा । विशेष हाल जानने के लिए निम्न पते पर लिखें ।

पोस्ट बक्स नं० १८ द्वारा आर्यमित्र आगरा ।

विदेशी राज्य का कारण

विदेशियों के आर्यवर्त में राज्य होने का कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन कारना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वम्बर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्याका अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है

स्त्री रोग की अन्यर्थ महौषधि

वेदिके चमत्कारिक औषधि का शक्ति प्रसिद्धे सेवन मात्र:-स्त्रियों की हर प्रकार की बीमता, मासिक चर्म का होने वाञ्छी समस्त रोग, पेठ वा कमर का दुर्बल जोड़ा वा कम, वा असमय में मासिक चर्म का हो जाना, ठीक वा कुछ रक्त का न होना, दुर्बल सम्यक्ति होकर मर जाना को वाञ्छने का समस्त दोष हट्यादि समस्त स्त्री रोगों को शीघ्रता से हटा कर स्त्री हृष्ट, पुष्ट होकर तथा सदैव स्वस्थ रहकर शीघ्रायु तथा स्वस्थ पुत्र वल्लिष्ट संतान पैदा करने की शक्ति प्रदान करती है। ज्ञानको रोगों पर स्वबलार इस औषधि का हाथुका है। यह सहस्रो ने प्रशस्तकी है। परिष्ठा प्राचीनीय है। निगुंथ सावित करने बाळे को १०००) हुनाम।

सफेद कोढ़ चारघेठ कुष्ठ से क्यों ठुली

ये शुष्करोग जीवन को आयुग्त्त दुःखमय पुत्र हीन बना देते हैं। पर निराशा क्यों ई चिन्ता नहीं, यह कि-तना ही विषेका और अधिक दिन का पुराना हो, हमारी जगद्विषयत औषध का प्रयोग कीजिये और आपसुर्व स्वस्थ होते हैं। यह अत्यन्त प्रभावशाली है और तीन बार के प्रयोग से उष्म फल देती है। कुत्तियों नहीं बढती। तीस वर्ष से अधिक से बाळों ने परीक्षाक है। शीघ्र आर्चर हीजिये और दुष्ट रोग से मुक्त हूजिये। गजत सावित होने पर ५००) हुनाम। मुख्य केवल १॥)

पता-आर्यहितैषी औषधालय नं० २९ पो० कतरीसराय, जि० गवा

भारत गर्वनेट से रजिस्ट्री किया हुआ सूचीपत्र मंगाली। एजेंटों की जरूरत है

संकट मोचन

कफ, खांसी
दमा, हैजा, शूल,
संग्रहणी पेट का
दुखना, जी मिचलाना
आदि पेटके हर एक
रोगों की
आचूक
दवा
मूल्य ॥
फौ शीशी
खरचा अलग



३ शीशी २॥, ६ शीशी २॥, १२ शीशी ४॥, खर्चा माफ
ए.ल.प्री.नागर कं, नं २२ मथुरा।



अमृताञ्जन पेनबाम

सबसे बलम, दुर्ब वर करने बाळा भारतीय मरहम सर्व प्रकार के दुर्बों को वर करता है। सब जगद मिळता है।

अमृताञ्जन पिपों,

फोग-नं० २०२६
वा० व० कलकत्ता

लीजिए !

जल्दी कीजिए !!

आगया !!!

क्या ?

प्रचार का अनुपम सुअवसर सस्तेपन का हह हो गया ।

सत्यार्थ प्रकाश चार आने में
संस्कार विधि—दो आने में

अन्य ऋषि कृत ग्रन्थ भी बहुत ही थोड़े दामों में

भी महयानन्द निर्वाण अर्द्ध शताब्दी के अवसर पर सत्यार्थ प्रकाश का चार आने वाला संस्करण निकाला गया था, वह हाथों हाथ बिक गया कितनों ही को निराश होना पड़ा । इसकी आवृत्ति भी बिक चुकी । अब लीजिये वही वही अन्नी संस्करण फिर तय्यार हो गया है और विशेषता यह है कि कागज, छपाई सब बढ़िया के समान ही है । कम से कम सौ प्रति एक साथ भगाने वालों को । प्रति पुस्तक के हिसाब और उस से कम लेने वालों को । प्रति पुस्तक मूल्य देना होगा । पैकेट पोस्टेज वगैरह अलग मालगाही से मंगाने में सुविधा रहेगा अन्यथा स्वर्च विशेष पड़ेगा ।

संस्कार विधि

का भी =) वाला संस्करण तय्यार है पुस्तक के आकार प्रकार में कोई कमी नहीं केवल प्रचार की दृष्टि से मूल्य कम किया गया है । १०० मंगाने वाले को =) में कम लेने वालों को =) में ।

समाजों के लिये सुविधा

अपने समासको के लिये तथा प्रचार के लिये हकट्टा मंगालें ।

कर्तव्य दर्पण

श्री नारायणस्वामीजी महाराज कृत संध्या लपाल-ना हवन भजन आदि की पुस्तक तय्यार है । मूल्य सावा =) बढ़िया 1=) में जिल्द दार ।

सब आर्ष ग्रन्थों के मंगाने का पता—

प्रबन्धकर्ता वैदिक पुस्तकालय, अजमेर ।

कमोमोरेशान बोख्यूम

(ऋषि दयानन्द स्मृति ग्रन्थ)

मूल्य सादा ६) बढ़िया १२) कमोमोरेशन हर एक पर १) दिया जाता है ।

दयानन्द ग्रन्थ माला

(ऋषि कृत ग्रन्थों का संग्रह)

मूल्य प्रचार के हेतु बहुत कम कर दिया है केवल २॥) स० जिल्द ३) में । बढ़िया स० जिल्द ४) में

यजुर्वेद भाषा भाष्य

महर्षि कृत यजुर्वेद भाषा भाष्य का मूल्य दो जिल्दों में प्रचार के हेतु केवल २॥) में मिलेगा ।

ऋषि कृत अन्य ग्रन्थों का मूल्य कम कर दिया

नाम पुस्तक पूरा मूल्य रियायतों मूल्य

अष्टाध्याय भाष्य ८) २॥)

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका १1=) १)

ऋग्वेद संहिता अथर्ववेद संहिता यजुर्वेद संहिता

३॥) १॥) ॥॥)

सामवेद संहिता ऋग्वेद भाष्य यजुर्वेद भाष्य

॥) ३२) १५)

हवन मन्त्र आर्थोद्देश रत्नमाला और नित्यकर्म विधि ॥1=) सौ । इनके अतिरिक्त मन्त्रों जप क्रम-खिका तथा अन्य ऋषि कृत सभी ग्रन्थ बिक्री के लिये तैयार हैं ।

* कुछ चुनी हुई उपयोगी पुस्तकें *

स्त्री का हृदय

कोई भी उपन्यास प्रेमी प्रोच उपन्यास लेखक मोपांसा के नाम से अपरिचित न होगा—उन्हीं को 'बोमेन्स लाइफ' का यह मर्मानुवाद है। पुस्तक इतनी रोचक है कि बिना पूरी किए छोड़ने को जी नहीं चाहता मू० १॥) किन्तु ३० सितम्बर तक १)

हमारा स्वर मधुर कैसे ही	1-)
जीवन के चित्र	१)
मराठो का उत्कर्ष	१॥)
योरपीय सभ्यता का विवाला	1-)
धर्म शिक्षा बढ़ी	१)
मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता	1-)

बालकोपयोगी सरस साहित्य

सचित्र बाल रामायण	मूल्य ॥॥)
मनोरञ्जक कहानियां	" 1-)
नवेली कहानियां	" 1-)
फूलभरी	" ॥)
दौनो भाई	" १)
भोपू	" ॥)
चन्दा मामा	" 1-)
तपस्वी भरत	" 1-)
दिव्य दयानन्द मू०	१)
ब्रह्म विज्ञान मूल्य	१)

बिखरा फूल

यह एक सामाजिक उपन्यास है। मूल लेखिका है श्रीमती स्वर्णमयी देवी अनुवादक बा० कुञ्जविहारी सेठ। यह प्रत्येक बहिन के पढ़ने योग्य सरस उपन्यास है। इसमें स्त्री हृदय के कोमल भावों का बढ़ा सुन्दर विवेचन है—जो पढ़ते ही बनता है। मूल्य १॥)

अन्य पुस्तकें

समुद्र गुप्त	॥1-)
अवतार रहस्य	॥॥)

आर्यों के पढ़ने योग्य पुस्तकें

१ नरन शियाला	१)
२ उपनिषद् तत्वम्	१)
३ पञ्चयज्ञ विधिबद्धी	३)
४ आर्यमत मार्तण्ड नाटक दो भाग	॥1-)
५ जैनमत की उत्पत्ति और काल का निर्णय	॥॥)
६ काव्य प्रदीपिका	३)
७ नामक जीवनी	॥॥)
८ प्रायश्चित्तादर्श	१)
९ अविद्या के तीन अंग	1-)
१० संध्या छोटी	॥॥)
११ जैनमत की असम्भव बातें	॥॥)
१२ फलावती उपन्यास	॥1-)
१३ सांख्य दर्शन	॥॥)
१४ कुरान	१)
१५ सृष्टि विज्ञान	१)
१६ पिण्डारी हिमप्रवाह	१)

चाणक्य नीति 1-) विदुर नीति ॥॥) हमारे यहां सब प्रकार का छपाई का कार्य उत्तम रीति से किया जाता है। सब प्रकार का टाइप भी नया अभी हाल ही में आया है। एक बार अवश्य परीक्षा कीजिये।

श्रीमत् आर्दर दीजिये—डाकम्यप अलग मेनेजर—आर्यभट्ट, आगरा।

छात्रों का आरंभ बनवाना धर है

विद्युत् अस्पताल में प्रोतिवाहिदु, मतिरकाल, परिवाह, भाकी, कुकी की जीव बनाई जाती है। रश्मे की कमरा व जगह मिलती है। परोको से कुछ नहीं खिया जाता है। हाथी, गले, मेड, लाहूक व आत्मिक मर्याद का पत्र छात्र को अपने पदों हुआकर परोको की और ती जीव बनवाना पाई यह वन व्यवहार करे।

नेत्राञ्जन (रजिस्टर्ड) मरहम

जीव के प्रसिद्ध डा० रामप्रासविहारी की बनाई हुई रोहे, भाकी दुध व वन कुकी (हथकी या ताम्बी) सुर्मा जगजग-व, सुधकी, हरका की एक मात्र दवा मुख्य १।०, तीन हीमी ३) २० ४।० ५० माफ। व जीवी २४) डाक कार्थ माफ।

जगत प्रसिद्ध नेत्राञ्जन (रजिस्टर्ड) सुर्मा

जीव विनाय को तर उबका र्थ तल ने० रश्मे ज्य ति जर्जर्त सर्वरोग नासक धुसधुनां मनेव राग **सर्व प्रिय सुर्मा एक शीशी भय सकार** विविधा ॥।०) व जीवी ३) डा० ५० माफ। ग्नेपटो को ज्ञान रभावत

विद्युत् कम्पनी अस्पताल दरंसी भागरा।

खिजाब छोड़ो

हम तेज से बाल का पकना रुक कर और एका बाल कडा पैरा डेकर यदि ६० वर्ष तक काळा न रहे तो दूना राम बापम की शर्त खिजा छे। एक १।० बाल पना हो तो ३) इतले अधिक पकादी तो ६) आधा से अधिक या कुछ पर हो तो ३) २० का तेज मगाळ। प।-बळ काळा स्टोर्स पो० बनसी बिसरी (व्रभगा)।

५००) इनाम

महामा प्रश्न कुट रवंत (सफेदी) की अत्युत्त वनौषधि। तीन दिन म एकदम आराम। यदि सैकडा इकायो डाक्टर। वैद्या विज्ञापनहाताओ का दवा करके निराश हो चुके हों तो इत खगा कर आरोग्य पावें बेकावद। सावित कराम पर २००) इनाम। जिन्हें विश्र्वास न हा -) का टिकट भेजकर शत जिला लें मुख्य २)

वैद्यराज - खिलकिशोरराम
 आयुर्वेद विचारद भिषगरत्न न० २६
 पो० कतगोसराम (गया)।



जर्मन जनरल—

को खिल हासि० [चीन] ने १६ वर्ष

वाले चाँको के अराप्य रागियो को जिन्हें जर्मनी व अस्पतालको ने अराप्य कइ दिया था व० क १२ १६ १८ २० अञ्जन का व्यवहार करर चाँको वाले कर दिया। यदि चाँको में कुछ भी जान बाकी है तो चाहे जितना भी कठिन से कठिन काळा पूजा मोतिवाहिदु जगया कोहें भी नेत्ररोग पयो व हो हुन सयके खिने नेत्र संजीवन रामवाळ है कीमत प्रत्येक शीकी १।) डाककार्थ प्रसग, ३ वा अधिक के जियु डाककार्थ मन्ध। एनपटो को मकर और उधारा माळ दिया जाता है।

नेत्र संजीवन, सिपो, (१६) कुम्पा मधजिदु कम्पई २।

खिन् साफ करनेकी
 मसहूर दवा
 डॉ. **गोमनाग** **आ**
 साय्यापारिख

आचार एजेन्ट—किशन प्र। १६) भागरा

सफेद कोढ़या श्वेत कुष्ठ से क्यों दुखी हैं (सिल्क मिज़लिन)

ये पृथ्वी रोग जीवन को अत्यन्त दुःखमय पथ इन बना देते हैं। पर निराशा क्यों ! चिन्ता नहीं, यह इतना ही, विधेया और अथक दिनका पुराना हो हमारी अगद्विषयाय औषध का प्रयोग कानिये और आर पुरा रररष होते हैं। यह का प त प्रभावशाली है आरतन बार क प्रयाग से बराम फल देनी है। कुसिबा नहीं ठनी तौस वर्ष से अधिक स ज खने प चा की है। रात्र आरैर दो त्रये और दुःख रोग से मुक्त हू जये। गजत म यिन हाने पर २००) इनाम मूल्य केवल १।)

हाथ से बना हुआ उम्दा चीज जो कि कमीजों वगैरह के लिये इस्तेमाल करें यह ६ कमीजों के लिये काफी है। साइज १८ गज व २७। का, ४।।) म० डा० ख०

अही बादर जोड़ा गज ६ x १।। शर्विया तथा कम शर्विया क दिनों के लिये गम तथा मुलायम सुन्दर वस्तु है। पूजा पाठदि क समय भी काम आता है क्योंकि इसम सूत का धागा नहीं है। का सिफ ४।।) म० डा०ख० अगर नापसद हा तो दाम वापस।


डा टैफस टाइलज कम्पना
आफ इन्डिया लुधियाना ४ प०

खांसी से बचे

यह तथा प्रायुर्वेदिकर त से गरी घूर हू ग तेरगा क गई है। दमक सेवन से हर प्रकार की खां प को दूर करने म रामवाण है। खांस सूबा य कक बार तथा अथवा पुगना रोग वरों न हो इन्के कुत्र ही दिन के सेवन से रोग त्रष्ट मुक्त से नष्ट हो जाना है। मूल्य को शोशी।—)

पता—एस० के० बर्मन न० १३ पो० कतरीसराय (गवा)

सब प्रकारके स्वरको एक दिनमें भगानेवाली और ताकत पैदा करनेवाला



*** रामवाण औषधि ***

प्राणसंजीवनी—

इसस एक लाखस अधिक आइमो हर साल आराम होते है यह औषधि ४० सालस समस्त ससारमें प्रचलित हा रहा ह। इसस अन्तरा तिजारा र्चधिया, फसला मल्लेरिया आ दे सब प्रकारके नये पुरान डवर १ दिनम आराम हात है। इसमें एक बडा सुविधा यहहै कि इस औषधिक सबनक लिय रागीकी नाडा दखनक जरूरत नहीं पडती इल स फ हाकर भूय लगली ह का उरग शाशा।।), बडी शी १ क०, डा०म (म ३ शा० तक) याक लरादारका उचित कमाणन भा दिया जाता है, सूबोपल और नियम मुफ्त भगा दखिय

राजैव्य श्रीबामनद्रासजी कविगज,
हब आफिम— १५० हरसन गड कनकना।
तर भन का सगा— राजैव्य कनकला।



सुखसंचारक कंपनी
मथुरा का

विश्व सुधासिद्धि

बिना अनुपान की
अनेक रोगों की घरेलू
दवा

सबजगह ट
मिलती है

— : निम्नलिखित भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन से प्रमाणित :—

गुरुकुल कांगड़ी का



च्यवनप्राश

बच्चे, बुढ़े, जवान, स्त्री व पुरुष सब के लिए हर मानस के योग्य बर्तुला टानिक है। इतन फेकड़ भगवतुन होते हैं, रिज को ताकत मिलनी है और शुक्र गथा वीर्य की वृद्धि होनी है। कीमत ४) सेर। श्री मङ्गलम्ने !

आपका भेजा हुआ १ पीयूष च्यवनप्राश ६ मासा सुरमा और २ तोजा सत्त शिजागीन प्राप्त हुआ। मैने इनका व्यवहार किया और आयु तम पाया। कृपया दो पीयूष और भेजिये।

म० वी० एम० सुदन० बरभेरा वृटिश सोसिअल लीड वाया इएन।

आप से जो च्यवनप्राश मंगवया था, वह निहायत फायदेमन्द साबित हुआ है। कृपया आब सेर और भेजिये।
—एम० एम० प्रसाद लीड श्रीनर, पाकीन रगुन।

सतशिनाजीत— कमजोरी, सुम्नी बीर्यदोष, प्रमेह, कमर दर्द, आदि के लिए निहायत सुफीद है।
कीमत ३) इ० तोजा

द्राक्षारिष्ट— कब्ज, बर्दजमी, पुरानी श्वाँसी की मसाहूर औषधि। थकावट के बाद इसे पीने से शरीर व मन ताजा हो जाता है। कीमत १) का आब सेर, ॥) का एक पाय।



भीमसेनी सुरमा

श्वाँसो को बुढ़े पे तक सुस्थित रखने के लिए 'भीमसेनी-सुरमा' का नियमपूर्वक इस्तेमाल कीजिये। श्वाँसो से पानी बहना, सुजली, कुकरे आदि रोग कुछ ही दिनों में दूर हो जाते हैं। कीमत ३) रुपया तोजा।

* सूचीपत्र मुफ्त *

एञ्जस्टो को विशेष सुविधा—बड़े बड़े शहरो में साल एजेंसी के लिए पत्र व्यवहार कीजिये।

पता - आयुर्वेदिक फार्मसी नं०१ गुरुकुल कांगड़ी
(सहारनपुर)।

दुनियां में हलचल मचा देने वाली पुस्तक

आसामी बाङ्गाली तिल्समी राज विज्ञान-करामात

हय पुस्तक में आसाम, बंगाल, नेपाल, भूटान आदि प्रदेशों के बिकट जंगलों/पहाड़ों में साधु महात्माओं से प्राप्त किए हुए ऐसे ऐसे अद्भुत प्रयोग हैं जिनकी प्रबल शक्ति से एक बार तो सुरों का भी उड़ोया जा सकता है। कामरूप देश (आसाम) बंगाल और नेपाल की तराई में जादू और वशीकरण की अद्भुत कलाओं का विदर्शन, तथा उषस्वरी की भी हूथहू नकल की गई है जिनको जगजनें ए०पूरे भिन्न-महात्मा मूलने खोज गये थीं जिनका मनलक्ष हल करने के लिए विश्वेशों के कई विद्वान तथा कलकत्ता यूनिवर्सिटी के रुइरावा हयो आचार्यों के सुरम्बर विद्वान पृथक् सर आसुतोष सुकर्मी रे। भी हिमोग लक्षणा पत्रा था। यह पुस्तक नहीं बल्कि भारत के पूज्य महात्माओं की अद्भुत शक्ति का भवहार, हजारों प्राणियों के प्रति वर्ष काज के मुख से बचानेवालों, मिर्चनों के चर, बाँकों के सन्तान, नामों के सद् बनावर संसार में सब तरह का सुख देनेवाली एक अद्वितीय शक्ति है। हमारा ही नहीं, हजारों का यह कहना है कि ऐसी अद्भुत पुस्तक प्रत्येक घर में रूना चाहिए। न मालूम किस समय आपके हाथों से इस प्राणियों की जान बचाई जा सके। आज सैद्धों सन्तान-हीन बाँकस्त्री पुरुषों के घर इसके प्रबल प्रयोगों से सन्तान की उत्पत्ति से जगमगा रहे हैं। आप स्वयं ही कहेंगे कि यदि ऐसे अद्भुत कर्मों न फेर होनेवाले प्रयोगों के हाते हुए मूल्य कुछ भी नहीं है हय पर भी हमारी यह गारन्टी है। पुस्तक आप को ना पसन्द हो तो ३ दिन देकर वापिस कर सकते हैं। हय से बच कर सपाई की और बवा गान्डी प्रभी तक आपने आँदर न दिया हो तो आज ही पत्रलिख दें, देर होने से आश्चर्य नहीं जो दूबरे एबीशन का इन्तजार करना पड़े, मूल्य नागरी ५) ६० उषस्वरी एडिशन ४) डाक महामूल ॥) और सज्जद के ॥) अधिक हैं। पृष्ठ संख्या लग भग ४०० पृष्ठ हैं।

नोट—मूल्य मजिस्ट्रेट (ले सेवगी भेजने पर ॥) डाक महामूल के माफ, परन्तु, कृपण पर पता साक २ जिले ।

मैनेजर—इण्डियन स्टोर्स (४) "शिलांग (आसाम)"

गरीबी में। अमीरी
जरूर मंगाइये ?? ।



बहुत सुन्दर बेहद मज-बूत कलकत्ता की बनावट नये फैशनकी सजावट देख कर ही आश्चर्यजनक घड़ी कहते हैं। इस के डायलपर "अभङ्ग" शीशा लगा है जिसे हथौरा मारकर भी नहीं तोड़ सकते हैं। ठोक टाईम देता है। गारन्टी ३ वर्ष। दाम २॥) चेनका दाम ॥) हीन लेने से डाक खर्च नहीं लगेगा। इसी फैशन की हाथ घड़ीका दाम ३॥) अपने ६० मिश्रों में इसका प्रचार करके फयदा उठाइये। मूची मुफ्त। पता—जी० एम० शर्मा, पोस्ट बक्स नं० ६७०६ बडाबाजार कलकत्ता ।

प्रदरान्तक—तया और पुराना कैसा भी प्रदर ही १५ दिन में शक्तिया आराम। लाभ न होने पर दूने दाम वापिस, अधिक प्रशंसा व्यर्थ। दाम १॥) डाक सहित।

प्रमेहान्तक—प्रमेहकी अचूक महोपधि केवल दिन में विचित्र चमत्कार। लाभ न होने पर दूना दाम वापिस। अधिक प्रशंसा व्यर्थ दाम १॥) डाकव्यय सहित।

आर्य कार्मोसी आर्य नगर
लखनऊ

महर्षि की आज्ञा

महर्षि ने नित्य पांच यज्ञ तथा स्वाध्याय करने का आदेश किया है, अतः मण्डल ने आर्यों के लाभार्थ अपने ऋषि वैद्यों के परामर्श से यह धृत्यन्त सुगंधित, सर्वांग नाशक अमुत्रों के अनुसंग वैदिक रीत्यानुसार हवनसामग्री तैयार की है। अब्बल नं० मूल्य १) सेर द्वितीय नं० ॥) सेर।

आर्य तथा हिन्दुओं के लिये स्वाध्यायकी पुस्तकें

दिव्य दयानन्द १), वीर जवाहर नाटक १,) कुरान मञ्जरी द्वितीय १) विश्वासाघात १), कुरानमें परिवर्तन ॥), स्वनी इतिहास ॥), भयानक पडयत्र = स्वामी भद्रानन्द की हत्या और इस्लाम की शिक्षा ॥) कुरान की खानगी १-), हिन्दुओं के चेत ॥) आर्य जाति की पुकार ॥), मलकानों की पुकार १-), खतरे का घटा २), लेखराम प्रधावली १-), पातित पावन ॥-), धर्मपुत्रीय प्रताप ॥), पंच महायज्ञ पीयूष १-), भ्रम पिनामह १), सुदामा नाटक १) अबरदन्त जिमीदार १), शहीद भद्रानन्द १), भर्तृहरि शतक ॥)

भजनों की पुस्तकें

भद्धा सर्कातन १-), भजन सर्कातन १-), कन्या गीत रत्न १), आर्य भजन सर्कातन २-), प्रेम भजनावली ३-), मंगलामुखी १-), ईश प्रार्थना ३-), संगीत सागर ३-), पराकौमुदी १-), धर्मशिक्षा २-), मन्त्री देवियाँ ॥), पोन्टेज व पैकिङ्ग प्रथक।

व्यवस्थापक

आर्योपकारक मण्डल कागारौल-आगरा।

प्रसिद्ध विद्वानों समाचारपत्रों द्वारा प्रशंसित
मासिक-पत्र

“संजय”

के महाभारत अंक का मूल्य १।) है जो स्थिर प्राहकों को ३३) वार्षिक मूल्य भेजने पर या बी०पी० द्वारा मंगाने पर मुफ्त मिलता है। एजन्टों को भारी कमीशन। नमूना सुपत्त। विज्ञापन के रेट सस्ते।

मैनेजर 'संजय' कार्यालय नया बाजार देहली।

भगवान गौतम बुद्ध

1869-1850

1869-1850

(विशुद्ध, सपूर्ण और प्रामाणिक जीवनो तथा पावन उपदेश)

हिन्दू महासभा के सभापति देवेंद्र उन्मता भिन्दु के इस अनमोल ग्रन्थ पर राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू लिखते हैं—“मैंने उसे बहुत ही चाव और प्रयत्नपूर्वक पढ़ा। भगवान् बुद्ध के जीवन का इतिहास दुर्भाग्यवश हम बिहारियों का, संक्षिप्त और परिमार्थित रूप में, मिलना कठिन था। आपने बहुत परिश्रम करके इस अभाव की पूर्ति की है, इसके लिये कांतिश धन्यवाद। आशा है, आपके प्रयत्न से हमारी जनता में बुद्धदेव सर्वमन्थो ज्ञान का प्रसार होगा, और अपनी जन्मभूमि में बौद्धधर्म को लोग फिर से पहचानने लगेंगे।” प्रत्येक देशभक्त हिन्दू को पढ़ना चाहिये। पृष्ठ संख्या ५००, संचित्र, छपाई कागज, उत्तम, जिल्द दर्जनीय, मूल्य २।।)

पता मैनेजर हिन्दू समाज सुधार कार्यालय लखनऊ

हवन कर्ताओं को शुभ समाचार

सफरी हवन हेतु बक्स १२ बीजे का पूरा सैट सिर्फ २।।) ४० में। आर्य राजा ज्ञाने से शाहपुरा में यज्ञ हवन का विशेष प्रचार है हमारे यहाँ का संस्थाओं व विद्वानों के आदेशानुसार हवन सामग्री तैयार की जाती है। हवन सामग्री थोक भाव २०) ४० मन और महाराजा धूपबत्ती १) ४० सेर मिलती है। मार्ग व्यय प्राहकों को देना होगा। अजमेर अर्द्ध शताब्दी पर आने वाले यात्रियों ने हमारी सामग्री को लकर बड़ी प्रशंसा की थी। एक बार अवश्यमेव परीक्षा कीजिये। परिमाण से बने हुये तौबे के हवन कुण्ड, छोटे बड़े उनी आसन, तपेदिक और प्लेम नाशक सामग्रियों भी हर समय तैयार मिलती है।

अजमेर में एजेन्ट सूर्यनारायण एण्ड मन्स केशरराज, अजमेर। जेटमल आर्य सर्फ कड़का चौक, अजमेर।

गोकुललाल आर्य एण्ड मन्स शाहपुरा म्टे

(राजपुताना)

वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद

—: के:—

स्वाध्याय करने योग्य अमूल्य रत्न

आध्यात्मिक पुस्तकें ।

साल्यदर्शन भाषानुवाद

आस्तिक दर्शनों में महर्षि कपिल प्रणीत साल्य-
वर्गन का सब से प्रप्रस्थान है । मूल्य सत्रिंशद् १॥

न्याय दर्शन (भाषानुवाद) मूल्य १॥

वैशेषिक दर्शन (भाषानुवाद) मूल्य १॥

योगदर्शन, व्यास भाष्य

भोजवृत्ति सहित

पहिले मूल फिर उसका वार्धार्थ फिर भावार्थ
पुन उसा सूत्र पर व्यास कृत संस्कृत वृत्ति फिर
वसका भाषानुवाद दूसरी रीति पर सूत्र का आशय
यथा सम्भव व्यक्त और सरल किया गया है । मूल्य
अत्रिंशद् ३) सत्रिंशद् ३॥)

वशोपनिषद्

ईश केन, कठ प्रश्न, मुण्ड माण्डूक्य, तैत्तिरी, ऐत
रेय और छान्दोग्य व गृह्यसंहिता इन दश उपनिषदों
पर पंडित बदरीचंद्र जी जोशी का किया सरल अनु-
वाद है । इनमें प्रथम श्लोक पुन उनका सरल पदार्थ
तत्परचातु भ वर्ण दिया गया है, जिससे मूल का
अशय भला प्रकार हृद्यगम्य हो जाता है । मू० ५)

छान्दोग्योपनिषद् भाष्याभाष्य १॥

तृददारण्योपनिषद् भाष्याभाष्य १॥

ध्यानयोग प्रकाश

इसमें अष्टांगयोग और उसकी क्रिया का बड़ी ही
उत्तम रीति से निरूपण किया गया है इसके ले० श्री

ग्यमी लक्ष्मणानन्दजी महाराज हैं, जो योगक्रिया
में पूर्ण कुशल थे । योग का क्रियात्मक अध्ययन करने
के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है । मू० १॥)

ध्यान की राति मू० १)

मानव धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) मू० ॥)

गीता विमर्श

(लेखक श्री प० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ)

यदि आप महाभारत का मर्म और भगवद् गीता
का सच्चा रहस्य जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को
एक बार आद्योपान्त पढ़ जाइये, आपको सारी महा
भारत की कथा हृन्तामलकवत् हो जाइगी । इस किम्म
का भाष्य गीता पर आर्षे जगत् में नहीं हुआ है ।
मू० १॥)

इतिहास और जीवन चरित्र

श्री कृष्ण का जीवन चरित्र

गीतोपदेष्टा श्री कृष्ण के नाम को भला कौन नहीं
जानना, उनका यह प्रभावात्पादक जीवनचरित्र
श्रीमान् देशभक्त ला० लाजपतराय की ओजस्वनी से
लेखनी से निकला है । मूल्य १।

छन्दपति शिवाजी

इस पुस्तक के लेखक श्री भारत-भूषण भी ला०
लाजपतराय जी हैं मू० ॥=)

दानवीर कर्ण मू० ॥=)

हकीकतराय वर्मा ॥=)

हजरत मुहम्मद साहब मू० ॥
श्री स्वामी विरजानन्द मू०=॥)

सिक्खों के इस गुरु मू० ॥१॥)

बालपयोगी पुस्कें

बालसस्यार्थ प्रकाश

सत्यार्थप्रकारा के गूढ़ सिद्धांतों को बालापयोगी सरल भाषा में ढाला गया है मू० ॥१॥)

संतान शिक्षक मू० ॥१॥)

वज्रमिन प्रीक लिन

अमेरिका के राष्ट्रपति महात्मा बैजनिन प्रैकलिन एक दरिद्र कुल में पैदा हुये थे। अपने पुरुषार्थ से किस प्रकार इन्होंने अमेरिका का सर्वोच्चपद प्राप्त किया था। इसके पढ़ने से ही ज्ञात होगा। मू० ॥२॥)

विचित्र ब्रह्मचारी

आलोचनात्मक व ईसाई मुसलमान

धर्म की खरहण पुस्कें

विषलता-ले० गाजी धर्मपाल ॥२॥, तर्क इस्लाम

१), कुरान की छानबीन १-), वैदिकधर्म इस्लाम १), खतरों का घण्टा २-), अल्ला मियां की मुभ्रत १-), अल्ला मियां का हुलिया १- इस्लाम की गप्प १-), मुसलमानो बुर्का १-), काठ का उल्लू १-), दुगन भाषा-नुवाद १), ईसाई सिद्धांत दर्पण १-), भोदूजाट व पादरी साहब २-), ईसाई मत परीक्षा ॥१॥, ईसाई मत में मुक्ति असम्भव है ॥१॥, ईसाई विद्वानों से प्रश्न ॥१॥

अन्य उपयोगी पुस्कें

देश दिवाकर ।

इस पुस्तक में अंगरेजों शासन में जो भारत की जो जो आर्थिक हास और प्रजा की जैसी दरिद्रता और दुर्दशा हुई है, उसका विमर्शन कराया गया है इसके ले० स्वामी भास्करतीर्थजी शाग्दा पीठ हैं । मू० १)

सुद्धनामावली

आज कल नाम रखने की परिपाटी बहुत बिगड़ गई है द्विजों में भी प्रायः कर्णकटु और निरर्थक कल्प रखने आते हैं। इस पुस्तक में ३५०० नाम ऐसे

दिये गये हैं, जो श्रुति प्रिय होने के अतिरिक्त मात्र बोधक भी हैं, पुस्तक अति उत्तम है मू० ॥१॥)

आर्य पर्वाली

आर्यसामाजिकों को कौन कौन से त्योंद्वार और किस प्रकार मानने चाहिये। इसका विवरण देखना हो तो इस पुस्तक को मंगाइये। भूलव ॥१॥ स्वर्ग में सवर्जैकट कमेटी २-॥, स्वर्ग में महासमा १), कष्टी जनेऊ का विवाह २-), यह तीनों पुस्तकें स्वर्गीय पं० रुद्रदत्त शर्मा लिखित हैं। और हाम्यरस पूर्ण हैं। सन्ध्या मंजूम ॥१॥, नवयुवकों उठो १-), मुकद्दमेबाजी से बचो १-), मुक्ति और पुनरावृत्ति १-॥, प्रहण क्या है ॥१॥, छात्रधर्म १-), नशा निवारक ॥१॥, शिवलिंग पूजा ॥१॥, बकरा विनय १), ईश्वर विचार ॥१॥

श्री गीत मग्न

यह पुस्तक बड़े परिश्रम से स्त्रियों के गाने के लिये तैयार की गई है। इस पुस्तक का पहला सम्करण हजारों की तादाद में छपा और हाथों हाथ बिक गया। अब दूसरा एडिशन बड़ी सज्जद के साथ निकाला गया है। टाइपिल तिरगे चित्र से चित्रित है, इस पर भी पुस्तक का मुख्य लागत मात्र ॥१॥ है।

श्री शिवा की अपूर्व पुस्तक बालाबोधिनी

(श्री सन्नुलाल जी कृत)

जिनकी लिखी हुई पुस्तक श्रीसुबोधिनी लाखों की तादाद में बिक रही है, वही इसके सुयोग लेखक है। पुस्तक के विषय में अधिक कहना व्यर्थ है। छोटी छोटो कन्याओं से लेकर युवकों तक के लिये प्रथम से ही पढ़ने के लिये लिखी है, पुस्तक चार जिल्दों में समाप्त हुई है। मू० २-), १), १-), ॥१॥) मुकसेलरों को खास रियायत दी जाती है।

पता:- बौद्धिक पुस्तकालय मुरादाबाद यू० पी०

आर्य-जगत् में हिन्दी के नए ग्रन्थ

आचार्य देवशर्माजी की सर्वोत्तम कृति

(वैदिक विनय)

वेद आर्यसमाज का प्राण है। इस पुस्तक में वेदों का सार दिया गया है। आर्य-जगत् में वेद के जीवन की बातों से पूर्ण, स्वाध्याय का यह पहला ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ से क्या है? चारों वेदों में से वर्ष भर के ३६५ वेद मन्त्रों का उनके लघुओं के अनुसार चुनाव और समग्र किया गया है। प्रतिदिन के लिए प्रत्येक प्रार्थना नियत है। पहिले वेद मन्त्र दिया गया है, इसके बाद मन्त्र द्वारा प्रार्थना की गई है, अन्त में शब्दार्थ दे दिया गया है।

इस ग्रन्थ के तीन लक्ष्य हैं—प्रत्येक लक्ष्य में चार-चार मातृकी प्रार्थनाएँ हैं। हर एक लक्ष्य का मुख्य एक रूप्य है। पुस्तक की लुपाईं लुफाईं बधिया है।

ब्राह्मण की गौ

लेखक—आचार्य देवशर्मा जी

इस पुस्तक में अथर्व वेद के समयेपयोगी ब्रह्म-गौरी (२-१८) सूक्त की सुन्दर तथा विस्तृत व्याख्या की गई है। महात्मा गान्धी ने इस पुस्तक को 'बढ़ा प्रशंसा' की है मुख्य ॥

सोम सरोवर

ले०—परिचित चम्पतिजी की दो नई पुस्तकें

यह ग्रन्थ रमन सामवेद के पवमान पर्व का त्रिमया देवता पवमान पवमान सोम है। स्वाध्यायमंत्रों का यह बड़ा फूल है जिसकी मूल्य सुगन्ध पाठक के हृदय में कभी अद्भुत तरंग कभी क्षीरतरंग और कभी शान्त तरंग प्रगहित करके हृदय को काञ्चिकितकर देती है। सामवेद भक्ता के लिए तपासना का शास्त्र निर्माता है। पाठक करने का पथ पान, निश्चिन्तता से इसका अध्ययन करे, मनन करे। मुख्य मन्त्रिय ॥१॥ (पृ० ११)

योगेश्वर कृष्ण

लेखक—प० चम्पतिजी एम० ए०

योग लेखक ने महाभारत, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर इस ग्रन्थ की रचना की है पत्र पत्रशास्त्र और प्रसिद्ध विद्वानों ने इस ग्रन्थ की मूर्ति-भूरी प्रशंसा की है। हृषिकयन प्रेस उत्तम कागज पर लुपाईं बधिया किब्व। मुख्य ॥१॥

बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाइए।

पुस्तक मिलाने का पता—यैनेजर पुस्तक भंडार

P. O. गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

—: अमृत भल्लातकी :—

रसायन

—>><<—

शीतकाल में सेवन करने योग्य

अत्यन्त स्वादिष्ट ! अत्यन्त पौष्टिक !!

अपरिमेय शक्ति का देनेवाला और अत्यन्त लाभप्रद यह दिव्य
रसायन अत्यन्त गुणकारी और बहुमूल्य औषधों के योग
से तैयार हुआ है। इसके दिव्यगुणों पर रीझ
कर ही ऋषियों ने इसके नाम में
'अमृत' शब्द जोड़ा है।

अशक्ति (अर्श) बवासीर और प्रदर पर
अत्यन्त लाभदायक है।

२५ और ३० वर्ष के पुपाने अर्श-रोगी इसका सेवन कर मुक्त-कण्ठ से इसकी
प्रशंसा कर रहे हैं। शीतकाल के केवल इन चार भासों में ही इसका सेवन किया जा सकता
है, अतएव अनावश्यक विलम्ब न कर तुरन्त आर्डर भेजिये। मू० ८) सेर।

प्रयोगशाला गुरुकुल वृन्दावन (मथुरा)

विषयसूची

विषय

पृष्ठ

१—ईश प्रार्थना	१
२—मङ्गलमयी भावना (संस्कृत कविता)—श्री पं० मेघाप्रतजी आचार्य	२
३—तथ्यवार्ता—श्री स्वामी सर्वदानंद जी	३
४—महर्षि दयानन्द के अनुयायी—श्रीमान राजाधिराज श्री उम्मेदसिंह जी शाहपुरा	६
५—जीवन ज्योति—श्री सुदर्शनदेव जी महाराज कुमार शाहपुरा	७
६—वेद के ३३ देवता—श्री नारायणस्वामी जी	८
७—व्यास ऋग्वेद सुमेरियन डॉक्यूमेन्ट है ?—श्री पं० राजेन्द्रनाथ शास्त्री	९
८—शरीर विज्ञान (Anatomy) पर वैदिक टिप्पणियाँ—डा० वीरसेन आयुर्वेद शिरोमणि	१३
९—सभ्यता का आदि केन्द्र—पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	१५
१०—वेद में आयुर्वेदिक रसायन—पं० द्विजेन्द्रनाथ जी आचार्य	१७
११—पूरुषचन्द्र से (कविता)—कु० हरिश्चन्द्रदेव जी वर्मा 'चातक' कविरत्न	२०
१२—वेदोद्धारक दयानन्द, श्रुति और स्मृति—पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार	२१
१३—क्रान्तिकारी दयानन्द (कविता)—श्रीरामशुक्लसिंह राकेश	२४
१४—ब्रह्म सूत्र का मोक्ष प्रकरण—पं० मुक्तिराम जी उपाध्याय	२६
१५—मन्त्रों के ऋषि—पं० प्रियरत्नजी आर्ष	२६
१६—पतित (कविता)—श्री हरिप्रसाद मिश्र सेवक	३६
१—पुरोहित—श्री पं० रामदत्तजी शुक्ल पञ्चोकेट	३७
ऋषि श्रद्धाञ्जलि—अवधवासी श्री ला० सीतारामजी एम० ए० एम आर० ए० एस	४०
१६—धार सींग का बैल—पं० धुरेन्द्रजी शास्त्री न्याय भूषण	४१
२०—आचार्य स्कन्द स्वामी तथा महर्षि दयानन्द स्वामी—आचार्य विश्वश्रवा	४५
२१—दीपावली (कविता)—श्री शान्तिनन्दन विशारद	४६
२१—वेदों का महत्त्व—स्नातक सत्त्ववृत्त वेद विशारद	४६
२२—दृष्टिकोण—प्रो० देवकीनन्दन शर्मा एम० ए०	५२
२४—संक समस्या—पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	५३
२५—सुक अथवा विचार—पं० जगद्वैव शास्त्री	५४

२६—आचार्य कुमारो ! दयानन्द बनो—प्रो० किशोरीलालजी एम० ए०	५८
२७—तब, अब और आगे—बा० मदनमोहनजी सेठ एम० ए०	६०
२८—धर्म प्रचार में व्यक्तिःष का प्रभाव—पं० रमेशचन्द्रजी वन्धोपाध्याय एम० ए०	६२
२९—स्वामी दयानन्द और कुरान—प्रो० महेशप्रसाद जी मौलवी	६५
३०—क्या सृष्टि की आदि में एक वेद था—पं० देवेन्द्रनाथजी शास्त्री सांख्यतीर्थ	६७
३१—वेदार्थ पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द—पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु	७०
३२—सच्चा आर्य (कविता)—श्री शोभाराम जी धेनु सेवक कविरत्न	७५
३३—वेदों और पुराणों के विषय—श्रीपद शान्तिभिच्चूजी त्रिशूली	७६
३४—आत्म बल बढ़ाने का सर्वोत्कृष्ट साधन—मा० दुर्गाशंकरजी नागर सम्पादक कल्पवृक्ष	७८
३५—बीपावली का सन्देश—श्री मदनमोहनजी विद्याधर	८०
३६—महर्षि महिमा (कविता)—श्री अटल बिहारीलालजी 'अटल'	८२
३७—वैदिक व्याकरण—पं० तेजोनारायणजी शास्त्री	८३
३८—स्वामी जी की आचर्यभाषा—श्रीचन्द्रवली एम० ए०	८६
३९—कैवल्य और वेद—आचार्य चम्पकान्तजी वेदवाचस्पति	८६
४०—स्वमन्ताब्जामन्तव्य प्रकाश (संस्कृत काव्य)—पं० हरिवृत्ताजी शास्त्री	९२
४१—महर्षि का ध्येय और हमारा कर्तव्य—बा० श्याम सुन्दरलाल जी एडवोकेट	९४
४२—महर्षि से (कविता)—'राकेश'	९६
४३—ब्रह्माण्ड का विराट यज्ञ—श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती	१००
४४—खेल (कविता)—प्रो० मुंशीराम जी शर्मा 'सोम' एम० ए०	१०१
४५—वेदों में मनुष्य आयु पर विचार—पं० गोकुलचन्द जी दीक्षित	१०२
४६—हमारे ऋषि का वेदार्थ—श्री पं० विहारीलालजी, काव्यतीर्थ	१०५
४७—गृहदेवियों की प्रवृत्ति—श्रीसती रूपकान्तादेवो, आर्योपदेशिका	१०६
४८—खरी बात (कविता)—श्री 'कर्ण' कवि जी	११०
४९—वेद और पार्थिव गतियों—त्र० लक्ष्मणसिंह गुरुकुल कांगड़ी	१११
५०—संस्थाएँ साधन हैं, साध्य नहीं—श्री म० श्रीरामजी	११३

दिनन्त्र निवेदन

ऋषि पदानन्द के निर्वाण की पुण्य स्मृति में 'आर्यमित्र' प्रायः अपना विरोधांक निकालता ही रहा है। इस वर्ष की अद्भुत-ज्वलित भी पाठको के सम्मुख उपस्थित की जाती है। 'ऋष्यङ्क' जैसा कुल्ल है पाठक स्वयं निर्णय कर लेंगे। इस सम्बन्ध में हम क्या निवेदन करें? हमें इस बात का सन्तोष है कि जैसा पिछले वर्ष हमने प्रतिज्ञा की थी, ऋष्यङ्क का पिछले वर्ष की अपेक्षा सभी प्रकार से अच्छा बनाने का प्रयत्न किया गया है। आर्यजगत् के उच्च कोटि के विद्वानों के लेखों को यथाशक्ति संग्रह किया गया है। हमारे कृपालु लेखकों और कवियों ने हमें इस वर्ष विशेष रूप से सहायता दी है, इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। हमारे पास इतने शब्द नहीं कि हम उन्हें अनुरूप शब्दों में धन्यवाद भी दे सकें। पर साथ ही इस बात का हमें खेद है, कि सभी उत्तम लेखों को हम इस अङ्क में स्थान नहीं दे सके। डा० बालकृष्णजी एम० ए० पी० एच० डी०, श्रीहरदयालजी नाग, कु० चौदकरणीजी शारदा प्रो० सत्यव्रतजी, महता जैमिनजी, मास्टर आत्मारामजी अमृतसरो, प० सूर्यदेव शर्मा, तथा बा० पूर्णचन्द्रजी जैसे प्रसिद्ध सज्जनों के लेख भी नहीं जा सके। कारण समय और स्थानका अभाव ही है। अतः हमने यह निश्चय किया है कि आगामी ७ नवम्बर का अंक ऋष्यङ्क का परिशिष्टांक हो जो इसी आकार में प्रकाशित हो और उसमें उन सभी लेखों का समग्र हो जो इस अंक में शेष रह गये हैं।

आशा है कि पाठकगण हमारी इस योजना को पसन्द करेंगे। भविष्य में यदि सम्भव हुआ तो ऋष्यङ्क का कलेवर और भी बढ़ा किया जायगा, जिससे हम सभी विद्वानों के लेखों को एक साथ प्रकाशित कर सकें। इस अंक में हमारे अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी सम्भव है प्रक की कुछ अशुद्धिबोधें रह गई हों। कारण यह था कि अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण संस्कृत-गर्भित लेखों को अत्यन्त शीघ्रता में छापा गया। इसके लिये पाठकों तथा लेखकों से क्षमा मांगने के अतिरिक्त और हम कर ही क्या सकते हैं। बस अब अधिक न कह कर गुण दोषों का निर्णय पाठकों पर ही छोड़ते हैं। विनीत—बाबूराम सम्पा० ।

आवश्यक निवेदन

सदैव की भाँति आर्यमित्र का ऋष्यङ्क पाठकों की सेवा में अर्पित है। इस वर्ष इस अंक के निकालने में बहुत सी कठिनाइयाँ थीं परन्तु परमात्मा को धन्यवाद है कि यह अङ्क हम इस रूप में निकाल सके। फार्मों के बढ़ जाने के भय से बहुत से लेख छपने से रह गये, इसके लिए हम लेखकों से क्षमा प्रार्थी हैं। वह सब लेख ७ नवम्बर के अङ्क में प्रकाशित होंगे। ३१ अक्टूबर का अंक सदैव की भाँति बन्द रहेगा। वर्तमान जगत में समाचारपत्र प्रचार का प्रमुख साधन है और हर एक अखबार का सम्बन्ध उसके सम्बन्धित क्षेत्र से होता है, और विशेषकर उसी क्षेत्र के आदमी उसी समाचारपत्र को अपनाते हैं। बाहर के आदमी भी अपनी रुचि के अनुसार खरीद लेते हैं। आर्यमित्र श्रीमती आर्य प्र० सभा यू०पी० प्रमुख—पत्र है और आर्य-समाजों इसका क्षेत्र है। आर्यसमाजों और आर्य-समाजियों को तो इसको अपनाना ही चाहिये! आर्यसमाज के बाहर के आदमी अपनी रुचि के अनुसार ले सकते हैं? मुझे आश्चर्य और दुःख होता है कि जब कभी कोई आर्यसमाजी किसी दूसरे अखबार में ज्यादा सफे या अधिक चित्र देख कर आर्यमित्र के बजाय उसे खरीदने को उद्यत हो जाते हैं। यह तो ऐसी ही बात हुई कि ज्यादा रौनक देखकर कोई आर्यसमाजी आर्यसमाज के जलसे को छोड़ कर सनातन—धर्म के उत्सव में चला जाय। एक बात और स्पष्ट कर्ना है! आर्य-मित्र के लिए परीक्षण-काज नहीं है, न इसके पास किसी अन्य संस्थाओं का ठपया है। इसलिए यह न तो बहुत दिनों तक मुफ्त भेजा जा सकता है, और न दिलावे के लिए इसके बहुत पृष्ठ बढ़ाए जा सकते हैं। जैसा भी है आर्यमित्र आपका है इसकी वृद्धियों के लिए क्षमा करें, और सदैव की भाँति अपनावें।

—पूर्णचन्द्र एडवोकेट अधिष्ठाता,
आर्यमित्र आगरा।

सूचना—सर्वों की भाँति दीपावली के कारण

अगला अङ्क ता० ३१-१०-३५ का बन्द रहेगा।

सैनजर ।

आर्यसाहित्य का भण्डार ! पास रखने योग्य पुस्तक !

आर्यपथिक ग्रंथावली

कुन्यात आर्यमुसाफिर धर्मद्वार प० लेखरामजी द्विव हिन्दी में जिसमें सृष्टि का ऐतिहासिक अनुसन्धान, ज्योतिष सूर्य सिद्धान्त और विज्ञान के आधार पर आर्य सवत्, योरोपीयन विद्वानों की भूतत्त्व विद्या-त्रिषयक खोज, सप्ताह के समस्त सवतों का क्रम, वेद और आर्यग्रन्थों का अनुसन्धान, वैदिक आर्यों का अद्भुत और बीजगणित सम्बन्धी ज्ञान, चारों वेदों की मन्त्रगणना लेखनकला का आविष्कार, पारचात्यो की सृष्टिकाल सम्बन्धी भूलें, लीलावती आदि का अलौकिक ज्ञान ही नहीं, अपितु आर्य सस्कृति के मुख्य सिद्धान्त पुनर्जन्म की सिद्धि वेदशास्त्रों द्वारा ही नहीं प्रत्युत ऐतिहासिक और घटित घटनाओं, पशु पक्षियों के स्वभाव अध्ययन के आधार पर भी । विरोधियों के आक्षेपों का युक्ति पूर्ण समाधान, पारसी बौद्ध आदि मतों तथा रूसार के दार्शनिकों विष्णोनेरस, सुकरात अरिस्टोटल, ईसाइस, अम्बैक क्रोस और अबोकर के पुनर्जन्म पोषक युक्तियों ऐसे रूप में दी गई हैं कि यह आर्यसमाजियों के लिए ही नहीं, प्राचीन सस्कृति के रक्षकों के लिए एक अत्यन्त वस्तु होगई है । तभी ता स्वामी श्रद्धानन्दजी ने इसका प्रचार बड़ा आवश्यक समझा—८०० से ऊपर प्रत्यों का पोषा सजिल्द ४।।) में ग्राहकों को ३।) में दिया जाता है ।

वैदिक सत्पति ६) क्रियात्मक मनोविज्ञान १।) मनु और स्त्रिया ३) द्रौपदी सत्यमामा ।।)

हिन्दुओं चेतो ! हिन्दुओं चेतो !

हिन्दुओं पर विनाशकारी विपत्ति का बादल सर्वनाश का सजिल वर्षा हो रहे हैं खुदगर्ज ख्वाजाकी खतरनाक तबलीयो सेना, अन्धकार आराखों के अनुयायी अमरीका, इग्लैंड के भूरे रंग वाले ईसाई मिशनरी तथा अपने ही भले भाई संगठन के विरोधी और कट्टरता का कान कतरने वाले काप्रेस के वह कार्यकर्त्ता जो हिन्दुत्व की हत्या होते देख कर भी मुसलमानों के मन्तूरै मेल द्वारा स्वराज्य के स्वप्न देख रहे हैं—सभी हिन्दुओं की हित की हत्या पर तुले हैं । विपत्ति की बाढ रोकनेके लिये “हिन्दुओं चेतो” संगठन—संजीवनी है । प्रस्तावना में मुहम्मद साहब के विचित्र जीवन और “देवदत्त वर्षण” प्रभृति पुस्तकों के लेखक, कुरान के अनवादक, श्री प० प्रेमशरखजी प्रकृत अपने बख्शिय में लिखते हैं—“संगठन के अभाव ने हिन्दुओं की होन हाकत कर रक्खो है । आये दिन उन्हें अस्था बातों के आघात सहन करने पड़ते हैं उनके धार्मिक कृत्य रोके जाते हैं और उनके जातीय लाह उनकी गोद से बराबर छीने जाते हैं । इस पुस्तक में हिन्दुओं के उन दोषों का विमर्शन कराके उनके दूर करने की युक्तियाँ बतलाने की कोशिश की गई है ... मैं चाहता हूँ कि इस पुस्तक का पूरा २ प्रचार हो ।” मू० ॥२) घोर आक्रमण— हिन्दुओं के ईसाई बनाने का काम ।।) खतरे का घटा ॥२) विदुरनीति ॥३) वाक्पनीति ॥२) आर्य जाति की पुकार ॥२) सृष्टिकार इतिहास ॥३) महिलामगलाचार ।।) श्रीमन्नसाला-।।) प्रेमभजनावली ।।) वीर पुष्पाञ्जली ।।) हिन्दी कुरान १, २, ३, ४ भाग ॥३, ॥३) ॥३।।, १।), सत्य और परलोक ॥३) राजतला १) श्री शिखा ॥३); द्रौपदी सत्यमामा ।।) शुद्धि की म्कार -) रखवाकुरा -) ॥

सब जगह का अर्थसाहित्य और आपरा की सब वस्तुएं ही से संगर्भें । पुस्तकालय खोजने के लिये पढ़ी करें-।

पता—प्रेम पुस्तकालय, पुस्तकालय-बाजार-अम्बैक

आर्य-जगत् में हिन्दी के नए ग्रन्थ

आचार्य देवशर्माजी की सर्वोत्तम कृति

(वैदिक विनय)

वेद आर्षसमाज का प्राय है। इस पुस्तक में वेदों का सार दिया गया है। आर्य जगत् में वेद के जोज की बातों से पूर्व, स्वाध्याय का यह पहला ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ में क्या है? चारों वेदों में से सर्व भर के ३९२ वेद मन्त्रों का उनके छन्दों के अनुसार चुनाव और संग्रह किया गया है। प्रतिदिन के छिपे पृथक् प्रार्थना नियत हैं। पहिले वेद मन्त्र दिया गया है, इसके बाद मन्त्र द्वारा प्रार्थना की गई है, अन्त में शकृदाय दे दिया गया है।

इस ग्रन्थ के तीन खण्ड हैं—प्रथम खण्ड में चार चार मास की प्रार्थनाएं हैं। हर एक खण्ड का मूल एक रूपया १)। पुस्तक की छपई तक ई बडिया है।

ब्राह्मण की गो

लेखक—आचार्य देवशर्माजी

इस पुस्तक में अर्ध वेद के समयोपयोगी ब्रह्म-गवी (२-१८) मूल की सुन्दर तथा विस्तृत व्याख्या की गई है। महात्मा गान्धी ने इस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की है मूल्य ॥

सोम सरोवर

ले०—परिष्कृत चम्पतिजी की दो नई पुस्तकें

यह ग्रन्थ २२० सामवेद के पवमान पर्व का जिसका देवता पवमान पवमान सोम है। स्वाध्यायमन्त्री का यह छटा कृष्ण है जिसकी मस्त सुगन्ध पाठक के हृदय में कभी अद्भुत तरंग कभी कीरतरंग और कभी शांति तरंग प्रवाहित करके हृदय को आलोकितकर देती है। सामवेद मन्त्रों के छिपे उपासना का शास्त्र निर्णय है। पाठक कोरने का पय पन, निरिचयता से इसका अध्ययन करे, मनन करे। मूल्य सन्निवद १॥) सादी १।)

योगेश्वर कृष्ण

लेखक—प० चम्पतिजी पम० प०

योग लेखक ने महाभारत, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थों वा अध्ययन कर इस ग्रन्थ की रचना की है पण पत्रिकाओं थी। प्रसिद्ध विद्वांसो ने इस ग्रन्थ की श्रुति-श्रुति प्रशंसा की है। इच्छियन प्रेस उत्तम कागज पर छपी हुई बडिया निवद १॥) मूल्य १॥)

बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाइए।

पुस्तक मिखने का फला—बैनेजर पुस्तक भंडार

P. o. गुरुकुल कांगड़ी (सहासपुर)

चाँद का विदुषी अङ्क

संपादिक—श्रीमती महादेवी वर्मा, एम० ए०

यह विशेषाङ्क अपने ढंग का विशुद्ध नया होगा। इससे आपको विदित होगा कि साहित्य क्षेत्र में महिलाओं ने कैसी उन्नति की है।

भारत के विविध प्रदेशों की विदुषी नारियों के लेख, कहानी, कविता पढ़कर आप मुग्ध हो जायेंगे। लेखिकाओं के चित्र और परिचय की व्यवस्था भी की गई है। रंगीन और सादी तस्वीरों, कटाक्ष पूर्ण कार्टूनों और सजावट की निगाह से यह अङ्क लासानी होगा।

चाँद के सभी नये पुराने प्राहकों को यह अङ्क मुफ्त मिलेगा। अलग खरीदने पर १॥) ४० आज़ ही ६॥) ४० मेज कर साल भर के प्राहक बन जाइए। विज्ञापन-दाताओं और पत्रजनों को भी इस मौके पर नहीं चुकना चाहिए।

जनरल मैनेजर, चाँद प्रेस लिमिटेड, चण्डखोक इलाहाबाद

सुगन्धागार सामित्री

यह सामित्री ४ प्रकार की सुगन्धित सामिग्रियों की बनी हुई है वर्षों धरी रहने से बिगड़ती नहीं न कोड़ा पड़ते हैं गुरुकुलों में मनों जाया करती है। एकबार मंगोला है वह सदैव के लिये प्राहक बन जाता है आज तक इसके बराबर इस भाववली कोई कहीं नहीं बना सका हमारे यहाँ इतनी ज्ञात लाभकारी है। (१) तौल ५२ रुपये के सेर से दी जाती है। (२) प्राहक के शहर के स्टेशन तक मैं अपने महसूल से मेज देता हूँ घर पहुँचती षुभ्ये। (३) एक मन लेने पर एक

आना रुपया कमीशन भी दी जाती है। (४) रुपये से कम लेने पर खर्चा महसूल जिम्मे प्राहक के है। नं० ३ महसूल २०० मील तक मैं देता हूँ अधिक दूरी का आधा महसूल मैं देता हूँ डाक पारसल से नहीं भेजी जाती है रुपया पेशगी आनेपर डाक से भेजवा हूँ। नं० १ ?), नं० २ III), नं० ३ III) सेर, बुराहा चंदन मलियागिरका १॥), सेर चंदन मूठा १॥) सेर हवनकुण्ड काशीचहर लोहे का I), छोटा बड़ा I=), सफेद चहर का छोटा I=) बड़ा II)।

लक्ष्मीनारायण वर्मा मंत्री

आर्धसमाज कन्नौज।

शुद्ध हवन सामित्री

भोके से बचने के लिए प्रायों को बिना बी० पी० भेजते हैं पड़ने
=) पोस्ट ऑर्ड भेजकर १) मूल्या मुफ्त मंगा ले' अगर मूला खैली सामित्री हो तो मूध भेजते' कन्ध्या कूने में के'के' के' फिर मूध भेजने की आवश्यकता नहीं भाव II) सेर २०) भर का सेर। भोके प्राहक वे। २२) प्रति सैकड़ा कमीशन मार्ग भव्य प्राहक के जिम्मे।

पता—रामेश्वरदहालु आर्य पो० अमोली (फतेहपुर) यू० पी०

उपनिषद् प्रकाश

उपनिषद् प्रकाश २) दण्डान्त सागर २ भाग ३॥) और मातायें लक्ष्मी देविर्वा II) और और विदुषी लिखा २ भाग III) चर्म इतिहास रहस्य १॥) उपदेश संसरी II) चर्मन इत्यादि की सेर I) मर् इतिहासक II) भीष्म पितानह I=) श्रीकृष्ण I=) शिवाजी-रोडक आरा II) अनेक प्रकाश २ भाग १-२) कपलन संसार II) कनी ज्ञान प्रकाश ३ भाग II) धनपद -) युक्तन जीवन I) कथा पचीली I=) दरवाच- अनेक का पचातुषाष्ट सत्यसागर संपूर्ण १) वेदान्त दर्शन २ II), पदा—दयामाहा लक्ष्मदेव वर्मा वैदिक आर्य-मुक्तकायक बनेही।

अंधों का आंख बनवाना धर्म है

सिंहल अरस्तुज में मोतिपारिंदु, मतिहाण्ड, परिधान, भाजी, कुकी वी बॉल बनाई जाती है। रहने की कमरा व साहज मिलती है। गरीबों से कुछ नहीं खिचा जाता है। रामी, राते, सेह, साहूकार व धार्मिक संस्थाओं द्वारा ग्राह्य को अपने यहाँ बुकाकर गरीबों की खैराती काँज पनवाना चाहें ११ वन व्यवहार करें।

नेत्राञ्जन (रजिस्टर्ड) मरहम

नाँस के अतिष्ठ वा० रामपात्रिकी की बनाई हुई रोहे, भाजी दुग्ध मन्म कुकी (इकली या ताकी) ह्का मरहम, सुन्धी, इन्का की एक माफ ववा मूख्य १।०, तीन शीशी ३) व० वा० क० माफ। कुकी १) वाक कर्च माफ।

जगत प्रसिद्ध नेत्राञ्जन (रजिस्टर्ड) सुर्मा

नाँस विमाय की तर उचका आणक नेत्र-रक्षक ज्योति वर्धक सर्वरोग नासक सुखदुर्गो कजेरुन सर्वा प्रिय सुर्मा एक शीशी मय सलाई बिबिया 1।।० व शीशी ३) वा० क० माफ। ऐमेयटो की कासरिभायत सिंहाख कम्पनी अस्पताख दरेसी आगरा।



जर्मन जमरल—

की सिख डारविन [चंन] ने १२ वर

वाले प्राणियों के उत्सृष्य रोगियों की जिन्हें कर्मों के अरपताओं ने असाध्य बह दिया था वेसक नेत्र सज्जन मञ्जन का व्यवहार करा प्राणियों वाले कर दिया। कवि प्राणियों में कुछ भी जान बाकी है तो कहे जिसमा अँ कटिन से कटिन जाका फुला मोतिपारिंदु कथवा कोई अँ नेत्ररोग कथों न हो इन सबके जिये नेत्र सज्जन रामवाय है कीमत प्रारंभ शीशी १।) डाककर्च मजग, ३ वा कविहके जिएकाककर्च माफ। ए.गटो की नकद और उचार माफ दिया जाता है।

नेत्र संजीवन, बिपो, (१६) कुम्मा मसजिद कथई २।

खिजाब छोड़ो

इस तेज से बाघ का पकना एक कर और पका बाल काजा पैदा लेकर यदि ६० वर्ष तक काजा न रहे तो दूना राम वापस की शर्तें खिला खे। एक भाच बाख पका हो तो ३) इससे अधिक पकाहो तो ४) आवा से अधिक या कुछ पका हो तो ६) व० का तेज मगाजे। पना-बाख काजा स्टोर्न पो० कनमी डिमरी (वरभा)।

५००) इनाम

मशायम मश्न कुट रवेत (मफेदी) की अद्भुत बनीवधि। तीन दिन में एकदम आराम। यदि लैकषों इकीमों कापटों, वैद्यों, विश्वापनवाताओं की दवा करके निराश हो चुके हों तो इसे खगा कर आरोग्य पावें बेकावश साबित कमाने पर २००) इनाम। जिन्हें निरवास न हो -) का टिकट भेजकर शर्तें खिला लें, मूख्य २) वैद्यराज अखिलकिशोरराम आयुर्वेद विशारद भिषगरत्नलं० २६ पो० बनरीसराय (गया)।



आगरा एजेक्ट—किशन ज्ञावर्ष आगरा

सुगन्धागार

भारतवर्ष के अनेक संस्था में सुगन्ध का प्रयोग करने के लिए अनेक से बहुत कर कोई बहुत नहीं है। अनुभवक न यह भी सिद्ध कर दिया कि जो वस्तुएँ प्राचीनकाल में दूध क बनाने के काम में खाई जाती थी उनसे बंध कर और खाभायक कोई विधि हूय वर्तमान काल में नहीं निकली।

वद्यपि विज्ञानागत साक्षात् के बहुत से मधीन आविष्कार दिए हैं, परन्तु सुगन्ध के प्रेरिणो ने यह नवी प्रकार समझ लिया है कि विदेशी सुगन्ध और न्यचट विषय और मत्तिवक के लिये खाभायक ही नहीं वरन् दानिकारक हैं। इसी लिये बड़े बड़े विद्वानों और बुद्धिमानो ने इनका प्रयोग बिलकुल बन्द कर दिया है। प्रमाय के लिए केवल अन्तर की जमीन पर ही प्रधान दीजिए तो मजिधामिर चन्दन के तेल के लिये दूध की जमीन के लिए और कोई वस्तु अच्छी सिद्ध नहीं हुई। यह तेल चन्दन की जड़की से खींचा जाता है जिसमें एक मनोहर सुगन्ध होती है और उसमें यह गुण होता है कि दूसरी सुगन्ध के अणुओं में खींच कर अन्तर को देर तक सुगन्धित रखने में एक ही है यह उब जाने के कारण कोई बदवा आदि नहीं दाखता वैद्यक के अनुसार भी चन्दन का तेल बहुत से रोगों के लिए बड़ा खाभायक है।

हमारे कहने का आभिप्राय यह है कि इस कार्यालय अन्तर में नामा प्रकार के अन्तर व सुगन्धित तैल ह्यादि शुद्धता और निष्कृता के साथ बनाकर तैयार किए जाते हैं जो अन्तर के स्वाधारियो व अन्य खरीदारों से भेजे जाते हैं।

हमारा कार्यालय २४ वर्षों से हिन्दुस्तान और गैर सुक्री में उत्तमोत्तम अन्तर और सुगन्धित तैल ह्यादि भेज कर आप लोगों की सेवा कर रहा है।

अन्तर—गुलाब केवड़ा मोतिवा, हिनासुरकी, मुदक अम्बर और सुहाग प्रति तोला १०) ८) ५) २) १) ॥ है।

अन्तर—चमेकी (माजली) सुकी, चम्पा, मौजभी, केतकी मजिदका पारिजातक, दौना, आम, नरगिय, नारंगी, केसर, मिष्टी, गुजहिना (मैहरी) और मजुमुआ ह्यादि प्रति तोला ८) ५) २) १) और ॥) है।

रुई—रुई गुजराब ८०) व ६० तोला, रुद, चमेकी, केवड़ा २०) तोला, रुद खस और पागरी १०) ८) ५) २) और १) तोला। अन्तर अम्बर पुसना (गुरी) २०) तोला नया ५) तोला, असली कस्तूरी ३२ मरी केसर उत्तम २) तोला, सन्दल ॥) तोला।

सुगन्धित तैल—चमेकी, बेला, गुल व, केवड़ा, चम्पा और मौजभी प्रति सेर २०) १०) ८) ५) २) और १॥) और नारंगी, सन्तुआ, मसाला चाँवला, ह्यादि ५) ५) २) और १॥) सेर है। गुलाबजल व केवड़ा जल ५) २) १) और ॥) सेर है।

तदवच्छ सुगन्धित खानी—सुरकी जाल, का १ प्रति सेर २) १॥) और १) पीली पत्ती आफरानी कस्तूरी, केवड़ा, चाँदी के बर्क ह्यादि युक्त १६) ८) ५) प्रति सेर बड़ी सादा सुगन्धि २) और १॥) सेर लम्बाका हाना सुरकी ८) १) और १॥) सेर।

नोट—हमारे कार्यालय का बना कुत्र मास बड़ी तोल वाली १३ मासा का तोला और ४२) अर के सेर से मेत्रा जाता है।

पता:—पं० बाबूलाल शर्मा, शर्मा परप्युमरी शर्मा भवन कजोल यू०पी०।

आर्यप्रतिनिधि सभा यू० पी०
के पुस्तक भण्डार का

सूचीपत्र

- पं० गंगाप्रसादजी एम० ए०
लिखित पुस्तके
धर्म का आदि स्रोत १), मनुष्य समाज (२), पञ्चसंघ और सूत्रम लगत (३) ज्योतिष चन्द्रा (३), Fountain Heard Religion 1 8-0
Problem of Life 0-1-0
Problem of universe 0-1-0
Constitution of Human Society 0-1-0
Septenary Composition of Solar Light 0 1-0
पं० चासीरामजी एम० ए० द्वारा लिखित
वेद सूत्रा १), विरजानन्द जातेन चरित (२)॥
A Commentary on the Vedas 2-0-0
A Commentary on the Jshohansht 1 0-0
पूज्य नारायणस्वामी महाराजद्वाराकृत योग रहस्य १-), सुयू और परलोक १-)
वैदिकधर्म क्या ग्रहण करना चाहिये २), वैदिक सन्धा रहस्य २-)
अन्य लेखको द्वारा लिखित पुस्तके
आर्य पर्व परिचय २), आर्य पर्व पद्धति ॥), आर्य धर्म पद्धति ॥
शकटाचार्य पतित प्रमाय ॥) नियम समूह ॥), पमाय महती सोमो माय १)
Agni Hotra 0-1-6
Hints on Vedic Diet 0-1-0
Papers on Education 0-3-0
मैनेजर आर्य पुस्तकालय,
निकट तहसील मेरठ शहर

वैदिक धर्म का प्रचार

किस प्रकार हो सकता है ?

सुन्दर सस्ते साहित्य से जितना बचम प्रचार होता है उतना स्वाभाविकों से नहीं होता। इसलिये

पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०

द्वारा सम्पादित सुप्रसिद्ध ट्रेडट मंगाह्ये। प्रथम माळा के २६ ट्रेडट निकल चुके हैं। द्वितीय माळा के १६ ट्रेडट। प्रथम माळा का मूल्य २) सैध्या १२) हजार। द्वितीयमाळा का १) सैध्या ७॥) हजार विस्तृत सूची जिस कर मंगाह्ये। इन ट्रेडटों की १२ लाख प्रतिवा निकल चुकी हैं। सब को ग्रन्थ पुस्तकें भी मिल सकती हैं।

पता:— ट्रेडट विभाग, आर्यसमाज चौक, इलाहाबाद।

खांसी से बचें

यह क्या आयुर्वेदिक रीति से बची चूटे द्वारा तय्यार की गई है। इसके सेवन से हर प्रकार की खांसी को दूर करने में रामबाण है। खांसी सूखा या कफदार नया अथवा पुराना रोग बंधी न हो इसके कुछ ही दिन के सेवन से रोग जब मूल से नष्ट हो जाता है। मूल्य फी शीशी ॥) डा० म० १-३ शीशी तक ॥) पता:— श्रीकृष्ण केमिकल वर्क्स नं० ३ पो० कठरीसराय (गया)

अग्रवाल समाचार

महाराज अग्रसेन की जयन्ती के उपलक्ष्य में अग्रवाल जाति के उत्पानोत्पन्न का मसिद्ध इतिहास 'अग्रवंश' आधे मूल्य पर बिया जा रहा है। प्रत्येक अग्रवाल को एक प्रति मंगाकर अपने घरों से अग्रश्य परिचित होना चाहिये। अ या मूल्य ॥) डाक स्पच प्रथक्। पता— आयुर्वेद आश्रम सूई स्ट्रीट लाधयाना (पंजाब)।

२५ वर्षों से परीक्षित औषधों की जगत् विख्यात औषधियों!

ट्रेकोरीन (रजिस्टर्ड)

रोड़े और उनकी वजह से जो रोग उत्पन्न होते हैं उन सब की अचूक दवा। मूल्य ॥) छोटी शीशी, बड़ी शीशी १) दपचा तीन शीशी एक साथ मंगाने पर डाक महसूल माफ।

ल्यूकोमीन (रजिस्टर्ड)

मादा, माळा, कुलकी, नाखून, पुंथ, कुन्डू, पजकों का गिरना, मोतिबा बिन्दु इत्यादि सब रोगों की रामबाण औषधि।

मूल्य ॥) छोटी शीशी, बड़ी शीशी १) दपचा तीन शीशी एक साथ मंगाने पर डाक महसूल माफ।

साधारण दवा में दोनों में से कोई भी दवा इस्तेमाल करने से औषधों में कोई रोग उत्पन्न नहीं होता और रोगभी ठीक बनी रहती है।

बड़े बड़े डाक्टरों तथा वैद्यों ने इनका सेवन कराया है और हजारों प्रशंसापत्र हमारे पास आ चुके हैं। नमूदा मुफ्त मंगाकर स्वयं परीक्षा कीजिये। ऐन्जेन्टों की सब जगह उपलब्ध है। मिथम दवार है।

मिस्रने के पते—दी जवाहर केमिकल वर्क्स, मारिबान आगारा।

बंगाल स्टोर्स, ८-९० बौरंगी स्ट्रीट कलकत्ता।

मुलु कंधारक कम्पनी मयुर।

सनतन विधवा विवाह

इसमें सनतन धर्म के शास्त्र, प्रथम महाभारत आदि से विधवा विवाह के विधिषियों का सुंद तोष अवाक भरा हुआ है। १०० प्राइकों का पूरे पते के साथ केवल नाम आ जाने से ही जुप निकलेगा। मूल्य आगत के अनुसार ॥) से १) तक होगा। उपदेशको और 'सुचारकों' के बड़े काम की है। पता—५० रवानबी सर्ना, मैसे अकबर-पो० कुलहरिया जिन्ना शाहानाद।

सफेद कोढ़या श्वेत कुष्ठ से क्यों दुखी हैं (सित्तक मिज़लिन)

ये पृथित रोग बीजन को अत्यन्त दुर्लभय एव हीन बना देते हैं। पर 'मिरासा कों'। किन्ता नहीं, यह किन्ता ही, विषैला और अधिक दिनका पुराना हो, इसी अगद्विषयात् औषधि का प्रयोग कीजिये और आप पूर्वा स्वस्थ होते हैं। यह अत्यन्त प्रभावशाली है और तीन बार के प्रयोग से ब्रह्म फल होती है। कुंसिया नहीं बडती। तीन वर्ष से अधिक से जाकोने परीचा की है। अंग्र जाईर कीजिये और दुष्ट रोग से मुक्त हूँ बने। गलत सावित होने पर २००) इनाम मूल्य केवल (१)

खांसी से बचें

यह दवा आयुर्वेदिक रीति से अभी बूटी द्वारा तैयार की गई है। इसके सेवन से हर प्रकार की खांसी को दूर करने में रामबाण है। खांसी सूखा या कफ दूर नवा अथवा पुराना रोग क्यों न हो इसके कुछ ही दिन के सेवन से रोग अब मूल से नष्ट हो जाता है। मूल्य के शोभी (—)

पता—एस० के० वर्मन नं० १३ पो० कतरीसराय (गया)

हाथ से बना हुआ उम्दा चीज जो कि कमीजों वगैरह के लिये इस्तेमाल करें यह ६ कमीजों के लिये काफी है। साइज् १८ गज व २७) की, ४॥) म० डा० ख०

बड़ी चादर जोड़ा गज ६ × १॥ शर्वियो तथा कम शर्वियों के दिनों के लिये गर्म तथा मुलायम सुन्दर वस्तु है। पूजा पाठदि के समय भी काम आती है क्योंकि इसमें सूत का धागा नहीं है। की० सिर्फ ५॥) म० डा०ख०। अगर नापसंद हो तो दाम वापिस।

दा टैक्स टाइलज कम्पनी आफ इन्डिया लुधियाना ४ ए०

सब प्रकारके अरको एक दिनमें भगानेवाली और ताकत पैदा करनेवाली



✽ रामबाण औषधि ✽

प्राणसंजीवनी—

इससे एक लाखसे अधिक आदमी हर साल आराम होते हैं। यह औषधि ४० सालसे समस्त संसारमें प्रचलित हो रही है। इससे अन्तरा विज्ञारी, चौथिया, फसली, मलेरिया आदि सब प्रकारके नये पुरान ज्वर १ दिनमें आराम होते हैं। इसमें एक बड़ी सुविधा यह है कि इस औषधिके सेवनके लिये रोगीकी नाडी देखनेकी जरूरत नहीं पडती, बस साफ होकर भूख लगती है की० छोटी शीशी ॥१), बड़ी शी० १) ४०, डा० म० १ से ३ शी० तक ॥२), बोक खरीदारकी उचित कमीशन भी दिया जाता है, सूचीपत्र और नियम मुफ्त भगा देखिये।

राजवैद्य श्रीबामनदासजी कविराज,

रेड आफिस—नं० १५२, इरीसन रोड, कलकत्ता।

हार भेजनेका पत्ता—“राजवैद्य” कलकत्ता।

श्रीसंचारकंपनी
मथुराकी

दुग्धगुणकसरी

दिनाजलन
औरतकलीफके

दादकोजडसेवोतवैली

श्रीसलोद्वी

सबजगह मिलता है

सुधा का नवें वर्ष का प्रवेशांक

वार्षिक ६) निकल गया यह अंक १।)

इस अद्भुत और अज्ञेय विशेषांक के संपादन-हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गद्यकार आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री हैं। इस अंक में आप हिन्दी के प्रायः समस्त वर्तमान यशस्वी लेखकों के गवेषणा-पूर्ण लेख देकर तुल्य हो जायेंगे। जगई और गेट-अप की दृष्टि से कुछ ठंडा नहीं रहना गया। अफ़सोसिण्या पर अर्थात् कष्ट ठंडाकर असाधारण लेख और अज्ञेय चित्र मँगवाए गए हैं। निकट-भविष्य में तो विरवरावी राजनीतिक नुकान का ने बाजा है, उसका विश्लेषण इस लेख में पाकर आप स्तम्भित रह जायेंगे। राजकुमार औरशुवीरदिह की रहस्यमयी कहानी, पं० मित्रानन्दन पंत और बचचन जी की भर भर भरती कविताएँ, जी० प० श्रीवास्तव का अष्ट हाथ और महामहोपाध्याय प० गौरीशंकर द्विवेदी का अस्मिता की कर्त्तवी कृतम। इसके सिवा २० से ऊपर अद्भुत विद्वानों के एक-से एक बहुर लेख, सुमते हुए कार्टून, लीर की भाँती घाव करने वाले चित्र, इन सबके ऊपर इस अंक के यशस्वी लेखक की उल्लङ्घनी कृतम से जिले संपादकीय नोट—इन सबके कारण यह विशेषांक हिन्दी अमर वस्तु होगी।

सितम्बर ही में परिशिष्टांक भी निकलेगा ? प्राहकों से निवेदन

कई रगों में वृत्त विशेषांक के रूप में प्रकाशित होने के कारण इस अंक के निकलने में देर हो गई है। लेख प्रवेशांक के जिये बहुत उमदा आ गये, अतएव अब हम सितंबर की संध्या परिशिष्टांक के रूप में, स्व सत्रपत के साथ, निकाल रहे हैं। ये दोनों विशेषांक प्राहकों की सुपत मिलेंगे। कृपया प्रहक बन जाइए।

विज्ञापकों से निवेदन

विज्ञापकों से निवेदन है कि यह परिशिष्टांक अपना विज्ञापन आपने ही आज्ञा दें। परिशिष्टांक इस महीने के अंत में निकाल देने का पूरा प्रयत्न हमने किया है। परिशिष्टांक की भी १००० कपाया प्रतिधा हम उपरा रहे हैं, क्योंकि विशेषांक की मांग अधिक आई है, और अब भी आ रही है।

पता—मैनेजर सुधा, छलनऊ।

योगियों का चमत्कार उद्धानन्द

बाल-युद्ध-की-पुरुषों के सर्व प्रकार का धर्म वायुगोला-तिरली-अतिसार-संतुष्टी-पंठा-अफरा मंदाग्नि खांसी-खट्टी डकारों का आना-हैजा-बवासीर आदि उदर के समस्त रोगों की अचूक दवा है। सफर में हिवकारी है—भूख तो खूब ही लगाता है—की० १२० खुराक ॥ आना डा० व्यवय पृथक । मिलनेका पता:—योगेन्द्र सर्वहितकारी औषधालयजलाली(अलीगढ़)

कलम-आम-खीची

दरभगा के प्रसिद्ध ज्ञानों और मुन्यफपुर के प्रसिद्ध खीचियों क निरोग और लघुहस्त बज्रम मेरे यहाँ लस्ता राम पर मिलेगा । सूचीपत्र मगाकर देखें । पता—विहार मरसरी पो० के ओपला वरवारी (दरभगा) विहार

जाति निर्णय

जाति अन्वेषण २६१ हिन्दू जातियों क विवरण सटीकित नवीन संस्करण २७१ पृष्ठ २॥) अज्ञाय निर्णय ६२० पृष्ठ २२ अज्ञाय जातियों का विवरण ५) नाई बर्वा भीमांसा २॥) अज्ञाय वंश प्रदीप २॥) नौ मुस्लिम जाति निर्णय २॥) लवणक साथ १०) में डाक अलग । पता—मैनेजर वर्ल्डवस्त्या मयवक (या) कुँवरा अमपुर ।

* ओ३म् *

आर्यमित्र

का

ऋष्यंक

वर्ष ३८

[दीपावली संवत् १९६२ वि०]

अङ्क ४०-४१

* ईश्वन्दना *

अग्ने नय सुपया राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोधपस्मज्जुहु०राणमेनो भूयेष्टान्ते नमऽउक्ति विधेम ॥

यजु० ५-३६

अग्नि ज्ञानभण्डार ! ज्ञान विज्ञान सिखाओ ।

सुपथ द्वार से हम सबका पेश्वर्य बढ़ाओ ।

देव ! दिव्य गुण सकल दया कर प्राप्त कराओ ।

कुटिल पाप के पुंज दास से दूर हटाओ ॥

हे देव अग्निमय ! कर कृपा सकल भौंति आपनाइये ।

इस हेतु नमः प्रतिकाल है दयादृष्टि सरसाइये ॥

—०—

—श्याम

मङ्गलमयी भावना

(ले०—श्री ५० मेघाव्रतजी आचार्य)

— X —

[१]

अनुभवतु नितान्तं ब्रह्मचर्येण सौख्यं
व्रतिवर ! वरविद्वाक् ब्रह्मचारीन्द्रसव ।
विचरतु भुवनेऽयं वेद-विद्याप्रचारं
विदधदनिशमस्मिन्न शान्तचित्त प्रसन्न ॥

[२]

भवतु वसुमतीयं मण्डिता परिडनेन्द्रैः ।
प्रसातु दिवि नित्यं ब्राह्मणब्रह्मनाद ।
प्रतिगृह्णमिह कुर्तुर्वाञ्छिका यज्ञकार्यं
प्रवहतु पवनोऽय शुद्धसौगन्धराली ॥

[३]

अवतु वसुमतीन्द्र सस्यसंपत्सनाथां
वुधवर ! वरमन्त्री भूमिमेता वरेण्याम ।
वितरतु समदृष्टि स्वप्रजासु प्रजासु
पितृसमनृपवर्यः पालयन्लालयन्सा ॥

[४]

विपुलफलयुते वा कानने पुष्पिते वा
गिरिवरशिखरे वा कूलकुञ्जे तटिन्या ।
अरतु विधिविधिज्ञ पुण्यचेतास्तपस्वी
यतिमुनिवरवारो ब्रह्मचर्यं सदैव ॥

[५]

विदधतु विवुषानामातिथेया गृहस्था
प्रतिदिनमतिथीनामर्घ्यपाद्यादिकञ्च ।
भवतु सततपूजा पूज्य विद्वद्वराणां
भुवि बिलसतु कीर्ति ब्रह्मविद् ब्राह्मणानाम् ॥

[६]

सर्वेषां सन ! सद्यद्दये प्रेमधारा वहन्तु
प्राणित्रात समदयदृशा देव ! पश्यन्तु दिव्यम ।
विश्व विश्वं स्वजनमदृगं मन्यतां विज्ञवर्गो
भर्गो शूद्रो विमलमनसा ध्यायतां ब्रह्मदेव ॥

[७]

आज्ञाकारी भवतु सकल सज्जनस्ते बुधेन्द्र
वेदान्त्रित्यं पठतु च मुदा साङ्गसार्थाभिरामान ।
देशे देशे गुरुकुलयशां गीयता गीष्पतीन्द्रैः-
प्राप्ते प्राप्ते वरगुरुकुल तन्यतामार्यवी ॥

[८]

दया दयानन्दविभो ! हिते ययाऽ-
भवद् दयानन्दमुनीन्द्रसंभव ।
यतो जगन्मण्डल आर्यमण्डली
विलोकयते ते निगमान वितन्वती ॥

तथ्यवार्ता

(ल०—पूज्यपाद श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज)



ह देखने में आता है कि जिस मनुष्य या मनुष्य-समाज के पास निर्मल बुद्धि नहीं है उसका कोई भी कार्य सुधर नहीं सकता। उसका कारण यह है कि जिस दाप से मनुष्य की बुद्धि दूषित हो जा जाती है उसी दाप से उसके समस्त कार्य दूषित हो जाते हैं,

यह सबकी प्रत्यक्ष है।

निर्मल बुद्धि का यह स्वैत है कि प्रत्येक कार्य को सफल बनाने और उससे लाभ उठाने के लिये प्रथम उस सामग्री को जिससे वह कार्य सिद्ध होता है, बत्न से एकत्रित करना होगा। कार्य छोटा हो या बड़ा, सूक्ष्म हो या महान्—अपन साधनों से सिद्ध होता है। जैसे विद्वान् बुद्धिमान् समभूदार जिस मार्ग में चलते हैं वह मार्ग साधारण पुरुषों को गमन करने के लिए सरल और सुगम हो जाता है। फिर सब उस मार्ग की ओर ही गति करने के लिये बढ़ते हैं। ठीक इसी प्रकार निर्दोष सामनों के मिल जाने से कार्य सिद्धि में कोई विलम्ब नहीं होता है। इसलिये सब से प्रथम कार्य योग्य और उदार पुरुषों के हाथ में जाना चाहिये। वे ही बिगड़ी बात के बनाने और उन्नति में ले जाने के अधिकारी होते हैं। पवित्र हाथों में जाकर कार्य पवित्र और विचित्र हो जाता है, अपूरे हाथों से काम कभी भी पूरा नहीं होता। सफलता से जनता में कार्य करने की शक्ति बढ़ती जाती है, दिनों दिन उत्साह हर्ष की उमग नष्टि में आती है, नित्य नवीन मार्ग का विकास विचार में अवकाश पाता जाता है। कामयाबी से मनमें निर्भीकता प्रेम और सहिष्णुता का उदय होने लगता है। योग्य पुरुषों की पहचान यह है—जो अपने कर्त्तव्यपालन करने में अनेक बाधाओं को आजाने पर

नहीं घबराता है काट के समय जो वैय से काम लेता और जो कार्य के बनाने में सदैव दत्तचित्त है, जिसका किसी भी प्रकार का प्रलोभन अपने उद्देश से नहीं हट सकता है वह पुरुष योग्य है।

ऐसे महानुभाव ही ससार का भार उतारने सब को समान दृष्टि से निहारने आलस्य और प्रमादपंक में डूबे हुये जगत को फिर से उभारने में अपने आराम को छोड़ कर कुछ भी चिन्ता न करते हुये विकट मार्ग में आगे बढ़ते हैं। बस इनके हाथों से सुधरा हुआ कार्य हृदयवृद्धमूल और स्थायी हो जाता है।

विद्या से मनुष्य में योग्यता आती है, हिताहित का ज्ञान होता है। योग्यता के साथ मनुष्य का गौरव होता है यह सत्य है। परन्तु प्रत्येक पुरुष जो पढ़ा लिखा है वह योग्य ही हो, यह नियम सर्वत्र लागू नहीं हो सकता है, इसमें कुछ सकोच है। योग्य पुरुष अपने कर्त्तव्य को सामने लाकर स्वार्थ को पीछे कर देता है, और अयोग्य पुरुष स्वार्थ को सामने लाकर अपने कर्त्तव्य का पीछे डाल देता है। यह दोनों में भेद है। अतएव अयोग्य पुरुषों के हाथ में कार्य जाने से वह निगड जाता है निष्फल हो जाता है। इतना ही नहीं प्रत्युत कर्त्ता अपयश का पात्र और दुःख भोग नागी बन जाता है, अतएव योग्य पुरुषों का कार्य सपादन में तत्पर होना कार्यसिद्धि का प्रथम अङ्ग है। भारतवर्ष में ऐसे पुरुषों की संख्या बहुत ही कम है, जो देश के सुधार और उद्धार जैसे महान् कार्य के लिये पर्याप्त नहीं। देश काल की परीक्षा करना महान् पुरुषों के विचार का विषय होता है। सर्व साधारण इसके जानने में असमर्थ ही पाये जाते हैं। सप्रति जो कार्य में तत्पर हैं, उनमें से किसी को आलस्य ने दबाया हुआ है। दूसरे को लोकैषणा ने सताया हुआ है, और किसी का पुरुषार्थ लोभ की चोट खाकर मुहमाया हुआ है। और जो

न इल्लतों से प्रथक है वह व्यर्थ लोगों के कटाक्ष और छिन्नान्वेषण से घबराया हुआ है। जो सचार्थ और हित से काम कर रहे हैं वे धन्यवाद के योग्य हैं।

नदियों पर्वतों से निकल कर सागर की ओर जाती हैं, उनका पहाड़ों की तरफ उलटा बहना सुगम जान पड़ता है। परन्तु विगड़ी हुई जाति का फिर से से बल में आना सुधर जाना कठिन प्रतीत होता है। जब सब के संस्कार दुर्बल व दूषित हो जाते हैं तब उल रंग में रंगे हुए मनुष्यों के विचार सुसंस्कारों को ध्यानमें नहीं लाते हैं। इतनाही नहीं, किन्तु हितसे सम्मानने सम्मान बताने वाले मित्र को अपना शत्रु बताते हैं पाठक बताएं जिसके पास शत्रु मित्र की पहचान ही न रही, विवेक बुद्धि ही जिससे छीन ली गई उसके सुधरने की आशा क्या हो सकती है। हाँ यह ठीक है कि जिस प्रकार उत्पन्न गामी मनुष्य समाज को सत्य बात के सुनने और उसके मानने की आदत नहीं रहती है, उसी प्रकार भले पुरुषों की भी प्रकृति, हित की बात सुनाने और उनको सम्मान पर लाने की वन जाती है। वे जीवन भर कार्य करते जाते हैं, निरुयोगी रहना उनके स्वभाव से दूर होता है। ऐसा होना ही चाहिए जब कि बुरा मनुष्य अपनी बुराई को नहीं छोड़ता तो भला पुरुष भी अपनी भलाई से सम्बन्ध क्यों तोड़े? जैसे बुरा पुरुष बुराई को त्याग देने से भला बन जाता है तो भला पुरुष भलाई से प्रथक होकर बुरा कहलाता है। उभयन यह नियम समान है। भलाई के अधिक हो जाने से बगन सुखी और बुराई के बढ़ने से दुःखी हो जाता है। यह कहानी सबकी ज्वानी है।

आर्य समाज में जो निर्वाचन का प्रचार जारी है उससे अच्छे पुरुषों के हाथ में जो कार्य संचालन में चतुर हो जो समय लगाकर कार्य को उन्नत करने में तत्पर हो नहीं जाता है। कार्य परिणाम में जाकर सफल न होना उक्त बात की सिद्धि करता है। परस्पर के मेल में सुख का खेल है, आर्य समाज के द्वेष में सदैव का क्लेश है, भगड़ों की वृद्धि में सदा मानसिक ग्लानि, प्रताप कीर्ति गौरव की हानि है। सुख को चाहता हुआ जनसमाज भूल से इच्छा के विपरीत

दुःख में ही उलभता जाता है, वह स्फुट देखने में आता है। अतएव दुःख से बचने का उपाय उसके कारण को हटा देना ही होता है न्याय शास्त्र मुख्यरूप से इस संकेत को ही दर्शाता है।

संप्रति निर्वाचन की रीति, आर्य समाज में अम, षो, दुःख प्रद और विफल सिद्ध हो रही है। या तो धर्म कार्य इस मार्ग का साथ नहीं देता है, उसका यह अखाड़ा जिसमें अनेक प्रकार की कुप्रवृत्ति अपना बल दिखा रही हो पसन्द नहीं, अथवा निर्वाचन की योजना का आधार तो ठीक ही है निर्दोष है, परन्तु वह ऐसे अनधिकारी पुरुषों के हाथ में जा पहुँचा है, अधिकार लालुपता के घेरे में जाकर सतया हुआ स्वरूप से मलिन बन्धन में आया हुआ हलन-चलन से हीन सा हो रहा है।

अन्ततः इस मार्ग का त्याग या संशोधन करना ही ठीक होगा, अन्यथा धन का अपव्यय ममय का दुरुपयोग शक्ति का ह्रास परस्पर विपरीत व्यवहार से जगत् का उपहास प्रत्यक्ष होगा। समय इसकी खबर देगा। अभी खेल में पड़ा हुआ इस बात पर ध्यान नहीं देता है कि दीर्घकाल तक यत्न करने पर भी प्राप्तव्य स्थान दूर ही होता गया, उसके निकट न पहुँचे। हा शोक! ऐसे शब्द कहकर हतोत्साह होजा आगे, गति की शक्ति जाती रहेगी, पड़ताओगे। हम पूर्वाजा की प्रशंसा का गाते हुए आर्यों के गुणों को सुनाते हुए किधर को जा रहे हैं कुछ विचार नहीं किया जाता है, कैली प्रत्यक्ष भूल है। जिस वाटिका का कोई निर्धारित मार्ग न रहे, अनेक मार्ग खुल जाँय, किसी को भी आने जाने में रुकावट न हो वह चाहे कितनी ही फल पुष्प समन्वित सुन्दर और मनोरम हो मुरझा जायेगी, भयानक नजर आयेगी। बस इसी प्रकार समाज का लक्ष्य अतिरिचित मार्ग में बदल रहा है, आने जाने का मार्ग हर तरफ से खुला हुआ है। यदि ऐसा नहीं, मैं भूल कर रहा हूँ, तो आप बतायें कि निर्वाचन के समय ऐसे पुरुष—जिनको समाज से हित नहीं, सामाजिक नियमों से परिचित नहीं, समाज सत्संग में कभी आते नहीं, समाज के काम जिनको भाते नहीं, सम्मति देने के कैसे अधिकारी बन जाते हैं। यह अधिकार इनको

महर्षि दयानन्द के अनुयायी

(ले०—श्रीमान् राजाधिराज श्री उम्मेदसिंहजी बहादुर शाहपुरा)

वन की सफलता के लिये मनुष्य को किसी न किसी महापुरुष के सिद्धान्तों का अनुयायी बनना पड़ता है और उनमें सफलता का भागी बही होता है जो स्वयं हृद् विश्वासी बनकर अपने इष्ट मित्र परिवार को भी उसी सन्मार्ग की ओर आकर्षित करता है।

महर्षि का कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं जो उन्होंने संसार के सामने बिलकुल नया रक्खा हो। अपितु उन्होंने जो कुछ रक्खा वह प्राचीन, सावभौम, शुद्ध वैदिक आदेश है। हाँ, कुछ काल से वह विस्मृत सा हो गया था इसीलिये साधारण जगत् की दृष्टि में अब कुछ नया सा प्रतीत होता हो।

महर्षि ने उन विस्मृतप्राय सिद्धान्तों का पुनः संस्मरण या सिंहावलोकन कराया है, अतः वे आचार्य, जगद्गुरु अथवा पथ-प्रदर्शक कहलाये और उनके संकेत पर चलने वाले महर्षि के अनुयायी।

संसार को उस महात्मा ने एक ईश्वर, एक पुस्तक, एक धर्म, एक जाति का बोध कराया और सत्य सदाचार सद्दृश्यबह्दार, मौजन्य का माहात्म्य बताया। वंश की वृद्धि, सन्तान की पवित्रता, स्वभाव की उज्वलता और स्वाभाविक सदाचरण के लिये षोडश सत्कारों को अत्यावश्यक बताया।

निर्वल निराश्रित विघ्नान्त प्राणियों के हितार्थ शुद्धि का पुरातन सिद्धान्त फिर से प्रचलित कर वैदिक धर्म की महानता, उदारता और उसके अनुयायियों में विश्वप्रेम को प्रकट किया।

दूसरे दूसरे आचार्यों की भोंति इन्होंने अपने आप को अवतार, देवदूत देवीशक्ति आदि कहकर संसार में पूज्य बनने का कोई स्वोंग नहीं किया और न मठ, मन्दिर, महंताई के इच्छुक रहे। वे स्वयं

वेदानुयायी थे और विश्व-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर संसार को इसी शुद्ध वैदिक मार्ग पर चलने का उपदेश दे गये।

महर्षि का अनुयायी किसी संस्था का पुजारी या किसी रजिस्टर नाम की पुस्तक का नामजुद अथवा किसी जाति-विशेष की मुहरछाप रखने वाला व्यक्ति नहीं हो सकता। किन्तु एक ईश्वर का अनन्य भक्त, वेदानुयायी, सदाचारी, संस्कार-संस्कृत, विश्वप्रेमी है।

स्वर्गीय सेठ रामगोपालजी, वेला (इटवावा)



आ० प्र० सभा को आपने वेदप्रचारार्थ ३५ हज़ार का दान दिया था।

जीवन-ज्योति

(ले०—श्रीमान् श्री सुदर्शनदेवजी बहादुर, महाराज कुमार साहव, शाहपुरा)

—०४०—



व रात्रि का दिन इतिहास मे कैसा विचित्र है कि जिस दिन स्वामी दयानन्द जी को एक मामूली घटना से वास्तविक ज्ञान हुआ। घटना सब मालूम ही है उसे दुहगना व्यर्थ सा ही है।

दयानन्द सरस्वती के पहिले इस देश की क्या दशा थी उस पर विचार करिये। लोग वेदो का गडरियोके गीत (Shepherd songs) कहते थे। उस समय स्त्रियो की क्या दशा थी। विधवाओ को यह मालूम न था कि उनका कोई देखभाल करने वाला है या नहीं। बेचारिया एक अघेरी कोठरी में पडी हुई अपनी जीवन यात्रा के दुर्दिन पूरा करती थी। वह प्रार्थना किया करती थी कि हे परमात्मन्। इस कलुषित कारागार से काल कवलित होना ही अच्छा। विधवाओ के साथ क्या क्या अत्याचार होते थे वे अकथनीय हैं।

स्त्रियों को लिखना पढ़ना तथा वेद और गायत्री मंत्र उच्चारण करने की आज्ञा न थी। उनके शूद्र के समान समझा जाता था उनके प्रति यहा तक लिय दिया गया कि अगर कोई वेद वा शब्द उनके कान मे पड जाय तो कान मे सीसा गला कर डालना चाहिए।

परन्तु इस घटना ने ऋषि की आँखे ही नहीं खोलीं बल्कि ससार की आँखो का पर्दा उतार दिया धन्य है उस ऋषि को, जिसने इस देश को आप्रत अवस्था मे ला दिया। अब उन्ही गडरियो के गीतो को हर एक मनुष्य ऊचे स्वर से गाने लगा।

स्त्रियों का उद्धार हुआ। सब मनुष्यों ने उनका आदर सत्कार करना शुरू किया। और यत्र तत्र

यत्र नार्यन्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" की ध्वनि होने लगी।

अनाथ बच्चे कटी पतंग के समान इधर उधर भटकते थे। इनकी सुत्रनुव लेने वाला कोई भी दृष्टि पथ म नहीं आता था।

महर्षि आपना धन्य है। आपने आवाज उठाई और समभद्रार मनुष्यो ने उसे कार्य मे परिणत कर अनाथालया की स्थापना की जिनमे भारत माता के लाख लाल लालित पालित हुए और योग्य बनत है।

भेद भावना के भयकर भूत को भगाने के लिए और अज्ञान रूपी अधकार का नाश करने के लिए स्वामी जी की जीवन ज्योति बड़ी ही सहायक सिद्ध हुई।

श्रीमती यशोदादेवीजी स्व० सेठ रामगोपालजी की धर्म०



आपने एक हजार रूपय अपनी ओर से भी दिये हैं। आप भ्रमण करक व्यायाम और खेलो का प्रचार भी करती हैं।

वेद के ३३ देवता

(ले०—श्री महात्मा नारायणस्वामीजी)



वेद

पि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों और उपदेशों द्वारा प्रकट किया कि वेद के ३३ देवता मनुष्यों के लिये पूजा या उपासना के लिये नहीं हैं। अपितु संसार में जो कुछ होय है जिसको हम जानते या जान सकते हैं उसी के प्रकट करने के लिये ये देवता हैं। उन ३३ देवताओं का विवरण शतपथ्यादि ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने इस प्रकार दिया है—

१२ आदित्य (मास), ८ वसु (स्थान जिनमें प्राणी रह सकते हैं) १० रुद्र, १० प्राण, १ (११ वां) रुद्र-जीवामा, १ यज्ञ, १ इन्द्र (विद्युत्) कुल योग ३३

श्री प० गुरुदत्त ने इन देवताओं के छत्रों भेदों के वैज्ञानिक नाम इस प्रकार दिये हैं।

(१) Time = समय (२) Space स्थान (३) Force = शक्ति (४) Soul = जीव (५) Deliberate activities of mind = जीवात्मा के विचार पूर्वक कार्य (६) Vital activities of mind = अनिच्छित कार्य जो शरीर में (रक्त संचार आदि के रूप में) हुआ करते हैं।

यज्ञ नाम स्पष्ट रीति से शुभ कर्मों का है, जिन्हें मनुष्य इरादा करके किया करता है। इन्द्र अथवा विद्युत् के द्वारा शरीर के अन्दर अनिच्छित कार्यों का होना स्पष्ट ही है। इस प्रकार देवताओं की सत्ता और उनके कार्यों पर विचार करने से यह बात किसी से छिपी नहीं रहती कि वेद में संसार की कार्य प्रणाली को वर्णन करने के लिये एक पारिभाषिक शब्द देवता का प्रयोग हुआ है परन्तु जहाँ प्राचीन अनेक नियमों और प्रथाओं का विगाड़ हुआ है वहाँ ये ३३ देवता भी इन लाल बुककड़ों के हाथ से बचने नहीं पाये। महाभारत के अनुशासन पर्व के अध्याय १५० में इन ३३ देवताओं का विवरण इस प्रकार मिलता है।

(१) धरा, ध्रुव, सोम, सपितृ, अनित्र अन्नल, प्रयूत्व (= सवेरा) तथा प्रभास ये ८ वसुओं के नाम हैं—

(२) अंश, भग, मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, जयन्त, भारस्कर, त्वष्टा, ऊशान, इन्द्र, और विष्णु की १२ आदित्य कहा गया है।

(३) अत्र कवाद्, अहिद्विष्य पिनाकी, अपराजित, ऋत्, पितृरूप, त्र्यंबक, महेश्वर, वृषाकपि (विष्णु), शम्भु तथा हवन इन्हे ११ रुद्र बतलाया गया है।

(४) अरिष्व द्वै अर्यान् नासत्य और दस्य यह नहीं समझना चाहिये कि वेदज्ञ व्यास की यह कृति है किन्तु महाभारत में तो केवल ८८०० श्लोक ही व्यास के हैं, परन्तु इस समय जो महाभारत मिलते हैं उनकी श्लोक संख्या इस प्रकार है—

(क) अनुक्रमशिकाध्याय अर्थात् आदि पर्व अध्याय के अनुसार ८४२४४ खिल १२००० योग ६६२४४

(ख) गोपालनारायण बम्बई की प्रति के अनुसार ८३२२५ खिल १५४८८ योग ६६०१०

(ग) गणपत कृष्ण बम्बई के प्रति के अनुसार ८३८२६ खिल १२००० योग ६५८२६

(घ) कुम्भ कौरुम के संस्करण के अनुकूल ६८५४५ खिल १२००० योग ११०५४५

इस प्रकार जितने भी संस्करण मिलते हैं उनमें इसी प्रकार संख्याओं का भेद है परन्तु कुछ तो एक लाख से अधिक संख्या वाले हैं। बाकी प्रायः एक लाख के चपेटे ही में हैं।

यह बड़ा हुआ भाग सभी “इजादे वन्दा” है चाहे वह वैशम्पायन की कारगुजारी हो या सौति की अथवा अन्य किन्हीं महानुभावों की कृपा जिस ग्रन्थ की श्लोक संख्या ८ हजार से एक लाख होगई हो उसमें निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि क्या व्यास का और कितना बड़ा हुआ है। यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि ३३ देवता वाली बात व्यास की नहीं हो सकती, उत्कृष्ट विद्वान् और ऋषि वे वैदिक साहित्य के विरुद्ध ऐसा किस प्रकार कह सकते थे।

आर्यमित्र ऋष्यङ्क^१



श्रीमान महागजाविराज श्री उम्मेदसिंहजी हाटर (शाहपराधारा)

क्या ऋग्वेद सुमेरियन डॉकुमेन्ट है ?

(ले०—श्री पं० राजेन्द्रनाथजी शास्त्री)



डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार प्री० हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस अपनी एक लेख माला 'इलस्ट्रेटेड वीकली आब इण्डिया' में निकाल रहे हैं। उसमें उन्होंने अनुचित अर्थ शैली द्वारा यह सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है कि ऋग्वेद में सुमेर के नगरो का विशद वर्णन है। ऋग्वेद की भाषा संस्कृत नहीं, अपितु सुमेर मिश्र और सीरिया की भाषाओं से मिश्रित संस्कृत है। इसके प्रमाण में आपने ऋग्वेद में से बहुत से शब्द और मन्त्र निकाले हैं, जिनके आधार पर आपको इस प्रकार की विचार धारा उपस्थित करने का साहस हुआ है।

इस दीवार के खड़ा करने में आपको क्या क्या भूलें और उपेक्षाएँ करनी पड़ी है वह देखते ही बनता है। आपको लेखके लिये अंग्रेजी का आश्रय भी इसी लिये लेना पड़ा है कि हिन्दी में मन-मानी शब्दों की तोड़-मोड़ को रख ही नहीं सकते थे। अस्तु इससे पूर्व कि हम भारती के साथ किये गये अनर्थ और अत्याचारके बीभत्स काण्ड का उद्घाटन करें, डाक्टर साहब की एक अन्य प्रमाणरहित प्रतिज्ञा का भी नग्न रूप सामने रख देना चाहते हैं, जिससे कि प्रमाणरहित विश्वास मात्र पर खड़ी की गई बोधी सिद्धान्त-भित्ति के गिराने में अधिक प्रयास न करना पड़े।

७ जुलाई वाले लेख के आरम्भ में आप लिखते हैं कि यह सर्वसम्मत सिद्धान्त बन चुका है कि आयों की सभ्यता, लेख, भाषा तथा इतिहास ईसाके २००० वर्ष से पूर्व नहीं जा सकता। आधुनिक ओरियेन्टल स्कालर ईसाके २००० वर्ष से पूर्व की बात को प्रलाप मात्र समझते हैं वह आधुनिक स्कालर किस प्रकार के होंगे यह तो लेखकी समाप्ति परही अनुमान किया जा सकेगा। पर यहाँ संक्षेप से कुछ पौरस्त्य तथा

पारचात्य विद्वानों की सम्मतियाँ अवश्य उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं, जिससे भली भाँति सिद्ध हो जायगा कि डाक्टर साहब की प्रतिज्ञा किस प्रकार निस्तार है।

(क) श्री पं० रघुनन्दन शर्मा ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वैदिक सम्पत्ति में वेद काल-निर्याय पर एक लम्बा प्रकरण लिख कर पर्याप्त प्रकाश डाला है और वेद का समय वैवस्वत मनु के काल में माना है (१२८ पृ०)। मनु का समय १२०५३३०३० (बारह करोड़ पांच लाख तैतीस हजार तीस) वर्ष पुराना है। वैदिक सम्पत्ति पृ० ११२

(ख) बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न लिखते हैं "साम वेदेर वयकम लक्षवत्सरेरे न्यून हईवेना" अर्थात् साम वेद की आयु एक लाख वर्ष से कम नहीं।

(मानवैर चादि व्रजम भूमि पृ० २८)

जब साम वेद ही इतना पुराना है तो उनके मत में उपजीवक ऋग्वेद कितना पुराना होगा, पाठक स्वयं विचार ले।

(ग) श्री नाना पावगी महोदय अपने ग्रन्थ "आर्यावर्तातीत आर्यांची जन्मभूमि" में लिखते हैं—

"इस विषय में भूगर्भ शास्त्रियों का मत है कि मनुष्य प्राणी तृतीय युग में पैदा हुआ। हमारे ऋग्वेद के ऋषि तृतीय युग में थे। तृतीय युग के पश्चात् ही हिम-पात हुआ। हिम-युग दो बार हुआ है। इन हिमयुगों के समय में ही पाषाण-युग आरम्भ हुआ। पारचात्य विद्वानों का मत है कि पाषाण युग को शुरू हुए २,४०,००० दो लाख चालीस हजार वर्ष होगये।"

(पृष्ठ ७३)

अर्थात् ऋग्वेद के ऋषि (मन्त्रार्थे द्रष्टा, मन्त्र द्रष्टा नहीं) लगभग ढाई लाख वर्ष पूर्व हिमपात युग से भी पूर्व तृतीय युग में हुए।

(घ) श्री अविनाश बाबू कहते हैं कि ऋग्वेद के प्राचीन सूक्त उस समय बने जिस समय राजपूताने

और युक्त प्रान्त मे समुद्र लहरा रहा था। वह तृतीय युग था। उस समय का अन्दाजा आज से तीन चार लाख वर्ष पूर्व का किया जा सकता है। भूगर्भ सम्बन्धी साक्षियों से सिद्ध है कि संसार और भारत-भूमि मे टर्शरी (तृतीय) युग के मायोसीन और प्लायोसीन विभाग में मनुष्य प्राणी उन्नत हुआ। प्राचीन वैदिक सभ्यता अत्यन्त भूतकालीन है, जो करोड़ों नहीं तो लाखों वर्ष की प्राचीन कही जा सकती है। ... मेरे सिद्धान्त भूगर्भ शास्त्र अनुसार हैं। अतः उन्हीं के साथ या तो गिर जायेंगे या स्वीकृत होंगे।”

(आधुनिक इतिहास पृ. २२६-२७)

(ड) भगवान् तिलक वेदो का काल “उत्तर भ्रुव निवास” में दस हजार वर्ष से भी पूर्व का स्वीकार कर गये हैं—

यह तो हुई वेद तथा वैदिक सभ्यता के विषय में भारतीय विद्वानों की सम्मति। अब कुछ पारचात्यो की सम्मतियों का भी अवलोकन कीजिये।

(च) ‘थियोगोनी / Thegony’ आव दे हिन्दूज’ मे Count Bjorns jerna महोदय पृष्ठ ४५ पर लिखते हैं कि भारत के अन्तिम सम्राट महाराज चन्द्रगुप्त के पुस्तकालय मे से यूनान के राजदूत मेगस्थनीज ने एक वंशावली प्राप्त की थी। जिसे उसने अपने ग्रन्थ में भी उद्धृत किया है (इसी प्रकार ओरियन ने भी उस वंशावली को लिखा था) इस वंशावली मे बक्स से लेकर चन्द्रगुप्त के समय तक १५३ राजाओं की गणना की है। जिनके राजकाल की अवधि ६४५१ वर्ष तीन मास हैं।”

चन्द्रगुप्त को हुए २२५० वर्ष हो चुके। अर्थात् बक्स को हुये ८७०१ (आठ हजार सात सौ एक) वर्ष होते हैं।

इस विषय में एक और साक्षी देकर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे। कह नहीं सकते डाक्टर साहब इन महानुभावों को भी स्कालर मानते हैं या नहीं? अस्तु।

(छ) इतिहास के पढ़ने वाले लोग जानते हैं कि दक्षिस्तान नामक लेख जो काश्मीर में मिले हैं, उनमें बैक्ट्रिया (Bactria) में राज करने वाले हिन्दू

राजाओं की नामावली लिखी है। जिसके विषय में ‘मिन्न’ की पुस्तक His story of India vol II P. 237—338 पर लिखा है—That these Bactrian kings were Hindus is now universally Admitted.” अर्थात् यह बैक्ट्रिया के राजा हिन्दू ही थे यह बात अब निर्विवाद तथा सर्व सम्मत हो चुकी है। यह नामावली सिकन्दर तक ५६०० वर्ष तक की प्राचीन सिद्ध होती है। इस विषय में निम्न वाक्य पढ़ने योग्य हैं—

The Bactrine Document called Dabistan gives an entire register of Kings namely of the Mahabadersn, whose first link reigned in Bactria 5600 years before Alexander's expedition to India

अर्थात् “दक्षिस्तान नामक बैक्ट्रियन लेख महावदन राजाओं की समस्त नामावली उपस्थित करता है। जिनका पहिला राजवंश सिकन्दर के आक्रमण से ५६०० वर्ष पूर्व बैक्ट्रिया में राज्य करता था।” तात्पर्य यह निकला कि ये राजा ईसा से ६ हजार वर्ष पूर्व बैक्ट्रिया में राज्य करते थे। क्योंकि चन्द्रगुप्त कालीन सिकन्दर के आक्रमण को २२५० वर्ष हो गये। २२५० + ५६०० = ७८५० वर्ष पूर्व यह राजा राज्य करते थे। जिस समय भारतीय राजा विदेश में राज्य करते थे उस समय भारतीय आर्यों की सभ्यता किम उन्नति के शिखर पर पहुंच चुकी होगी, यह पाठक स्वयं विचार करें।

पारचात्य और पौरुष्य कितने ही विद्वानों के इस प्रकारके स्पष्ट लेख मिलने पर भी समझमें नहीं आता कि डाक्टर साहब ने यह प्रतिज्ञा किम प्रकार कर डाली कि आर्यों का इतिहास, सभ्यता और भाषा ईसा से दो हजार वर्ष कथन करना अनुचित है तथा कोई भी पौरुष्य विद्वान् ऐसा करने को उद्यत न होगा।”

यदि डाक्टर साहब की यह धारणा इस बात पर आश्रित है कि उन्होंने अपने निराले ढंग से ऋग्वेद में बेबीलोनियों का ईसा से १०३२ पूर्व का इतिहास निकाला है, इसलिये वेद उससे पीछे के हैं, तब हम यह निवेदन करेंगे कि डाक्टर साहब की उक्त

निराली शैली से हमें उनके बताये सूक्त मे सन १६१६ वाली दिल्ली की गोली घटना का उल्लेख दिखाई पड़ता है। स्पष्ट रूप से उस मे पत्थर वाले कूप स्वामी श्रद्धानन्द, प्रो० इन्द्र उनके धनुषी (अजुन) पत्र, पहाड़ी धीरज, तथा चांदनी चौक आदि का वर्णन मिलता है, अतः यह सूक्त १६२० ईस्वी मे या उसके पीछे का बना जान पड़ता है। (इस का विषय वर्णन आगे लेखमे आजायगा) अतः डाक्टर साहब की उक्त निराधार धारणा का साथ विप्लव पण्डित किस प्रकार दे सकेंगे, यह हमारी समझमें नहीं आता। यदि डाक्टर साहबने इस विषय पर कुछ और लिखा तो अवश्य भली भाँति विचार हो सकेगा।

आगे डाक्टर साहब लिखते हैं कि वेद के विषय में इस सारी भ्रान्ति का मूल वह व्यक्ति वाचक संज्ञाये तथा विदेशी भाषाओं के शब्द है जिनको कि पण्डित भएबली अब तक संस्कृत का समझ कर अर्थ का अनर्थ करती रही। डाक्टर साहब ने उनको छोट निकाला है। इस छोट मे उन्होने एक कौशल यह भी किया है कि जहां शब्द-साम्य न हुआ वहां वेद के शब्दों को विकृत समझ कर सुमेरियन भाषा का सहारा ले अनुवाद कर डाला। उस शब्द के स्वप्नाने के लिये किस किस शब्द का गला घोटना पड़ा, किस किस शब्द का नया अर्थ पड़ना पड़ा, और किस नियम की उपेक्षा करनी पड़ी है यह तो उनका अन्तरात्मा जानता होगा। हम तो केवल दिग्दर्शन मात्र करा सकेंगे और जहां वेद ने इतिहास का साथ न दे कुछ नई बात कही वहां डाक्टर साहब ने 'इतिहास पर न्यू लाइट' का नाम दे सन्तोष किया है।

७ जुलाई के लेख में आप ने कुछ शब्द और उनके उद्धारण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वेद में अन्य भाषाओं के शब्द हैं। पर आपने इस धारणा के लिये युक्ति नहीं दी। क्या भाषा विज्ञान की सारी थियोरियां निरर्थक हैं? जो यह सिद्ध करती हैं कि संस्कृत मातृ-भाषा है। अन्य भाषायें पीछे उसी से निकली हैं।

लेख-विस्तार भय से वहाँ केवल दो एक युक्तियां देते हैं आश्चर्यकवा पढ़ी वो पुनः विस्तार से लिखेंगे

संसार मे जितनी भाषायें हैं उन सब से अधिक विस्तृत, पूर्ण तथा क्लिष्ट उच्चारण वेद-भाषा में हैं। वैदिक भाषा की आवाजे अन्य भाषाओं की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। संस्कृत मे ४७, रूसी मे ३५, फारसी में ३१, तुर्की और अरबी मे २८, स्पेनिश में २७, अङ्गरेजी मे २६, फ्रेंच मे २५, लैटिन और हिब्रू में २० और बाल्टिक मे १७ उच्चारण है। हां चीनी भाषा है जिसमे देखने को २०४ आवाजे है। पर वह थोड़ी सी ही आवाजों का विस्तार है। जिस प्रकार संस्कृत मे क् का कड़ के चार रूप हैं, इसी प्रकार चीनी भाषा मे भी हैं। उन्हीं भेदों की गणना से चीनी मे कुल २-४ ही भेद होते हैं, पर संस्कृतमे यदि इस प्रकार गणना की जाय तो हजारो बैठेंगे। जिस प्रकार एक ही वर्ण हल्, ह्रस्व दीर्घ, प्लुत, भेदसे चार प्रकार का का उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद से १२ प्रकार का और सानुनासिक और निरनुनासिक भेद से २४ प्रकार का होता है। हमारे यहां स्वर और व्यञ्जन मिला कर ४७ प्रकार के हैं यदि स्वरो को हल् न होने के के कारण १८ से और व्यञ्जनों को १४ गुणा करें तो संख्या हजार के लगभग पहुँचेगी। अतः सिद्ध है इस से विस्तृत और पूर्ण वर्णमाला नहीं है। क्लिष्टता मे भी और भाषाये इस का मुकाबला नहीं कर सकती संस्कृत के ऋ, लृ, ष, ञ, झ, घ, छ, ढ, ञ, भ, ङ, व, श, ष, और थुं आदि का ऐसा उच्चारण है जो दूसरे देश वालो से करते ही नहीं बनता। दूसरे देश वालों की ही क्या, उदात्त आदि भेद से अ के १८ प्रकार के उच्चारण को तो हमारे देश वाले भी भूल गये हैं। अस्तु। और भाषाएँ सरल उच्चारणों की ओर दौड़ रही हैं यह उस उस भाषा के अभ्ययन तथा तुलना से ज्ञात हो सकता है। संस्कृत भाषा के समास तद्धित तथा कृत्य प्रत्ययों ने (जो और भाषाओं में नहीं मिलते) उसके मूल भाषा होने मे कोई सन्देह नहीं छोड़ा है। आधुनिक भाषा के पण्डितों के अनुसार भी वाक्यरूप संश्लेषात्मक परिवर्तन-रहित, विभक्ति युक्त, पूर्ण वर्णमाला वाली ही भाषा सब भाषाओं की मूल हो सकती है। यह सब बातें संस्कृत मे ही हैं अतः संस्कृतको छोड़कर और कोई भाषा मूल भाषा नहीं हो सकती। जब संस्कृत भाषाही मूल है तो

उसमे यह अपभ्रंश किस मौलिक भाषा से आये ? क्या लिखित प्रमाणों से सिद्ध करोड़ों वर्ष पुरानी वैदिक भाषा से पुरानी सुमेर, मीरिया या मिश्र की कोई भाषा है ? यदि नहीं, तो फिर यह अपभ्रंश वेद में किस प्रकार आये ? क्या शब्दसामान्य मात्र से ? यदि शब्द-सामान्य मात्र को मान कर ही भाषाओं में मिश्रण माना जाये तो बड़ा अनर्थ उपस्थित हो जायगा । फिर तो किसी भाषा का भी अर्थ ठीक ठीक न हो सकेगा । समस्त भाषाओं का मूल संस्कृत है । अन्य भाषाएँ उसी से निकली हैं अतः परस्पर ध्वनि-बोध और शब्दों का साम्य अनिवार्य है । यदि अङ्गरेजी भाषा में कोई कहेगा आइ एम गोइङ्ग (मैं जा रहा हूँ) तो आप अर्थ करोगे, मैं गो रहा हूँ । क्यों हिन्दी में गो शब्द है जिसका अर्थ घुसेड़ना है इसही प्रकार ही इच ए प्रेट मैन (वह बड़ा अदमी है) आ आ अर्थ करेंगे He is agar (अग्र) ale man (अले आदमी अग्र वह खा लिया गया । इस ही प्रकार हिन्दी का 'ऐ' सम्बोधन अङ्गरेजी का ray (किरण) हिन्दी में सन = घास, उर्दू में संवत् अङ्गरेजी में वेटा या सूर्य हिन्दी में गुड, अङ्गरेजी में good = अच्छा, हिन्दी में राम या राम अङ्गरेजी में Ram = मेडा पञ्जाबी में किल = कील, अङ्गरेजी में Kill = मारना, ऐसे ही बंगला में बोर्ड = पुस्तक हिन्दी में बोर्ड भूमि आदि, हिन्दी को अङ्गरेजी में bow = कमान या गले में बाँधने की बो, अङ्गरेजी का seed = बीज, संस्कृत का सीद = दुःख पाना, संस्कृत का नीड = घासला अङ्गरेजी का neo = चाहना हिन्दी अङ्गरेजी और उर्दू में तो परस्पर इतना ध्वनि साम्य है कि सैंकड़ों हजारों शब्द मिलते हैं । यहाँ तक कि अङ्गरेजी की वर्खमाला मे भी हिन्दी के बहुत शब्द हैं । जिन को मिलाने से अच्छे सुन्दर वाक्य बन जाते हैं यथा B B G, I G, T P O, P K I G—अर्थात् बीबी जी ? "आई जी" ! टी (Tea) पीओ ? "पी के आई जी" । हिन्दी उर्दू अङ्गरेजी के कुछ शब्दों का मिलान देखिये—

अङ्गरेजी	हिन्दी	उर्दू
ice = या	और	और
ice = अनुभव		फील = हाथी

lot = डेर	लोट	लौट
how कैसे	हाऊ	हाऊबेर
they = वे	दे = देना	
tell = बताना	टल	
come = आना	कम	कमकाम (पञ्जाबी)
had = रखा	हड, हाड	* हद
more = अधिक	मोर, मारी	मार = चूराकर
than = अपेक्षा	देन	
save = बचाना	सेव	सेव
foot = पैर	फुट	
hit = टकराना	हित	
ill = बीमार		इल = चील
put = रखना	पूत	
been = होना	बीन	बीन = देखना
money = धन	मण्ण	मनी = वीर्य
du-l = धूल	दस्त = शौच	दस्त = हाथ
wrote = लिखा	रोट	
rode = चढा	रोड	
sent = भेजा	सन्त	
same = वैसा	सेम	
bad = बुरा	बद = रांग	बद = बुरा
kiss = चुम्बन	किस	
miss = लड़की	मिस	मिस = ताम्बा
see = देखना	सी = जैसी	सी-सी

ऐसे ही पञ्जाबी अङ्गरेजी में बहुत साम्य है । It-वह, इट ईट, Rub रगड़ना रब-परमात्मा, Come आना, कम-काम आदि यदि इस प्रकार शब्द-साम्य का सहारा लेकर अर्थ किया जाये तो किसी भी भाषा का अर्थ बिगाड़ा जा सकता है । परन्तु पाठक आगे देखेंगे कि डाक्टर साहब मन्त्रों का अर्थ करते हुये मन्त्रस्थ पदों को सुमेरियन बताने में शब्द साम्य को भी नहीं निभा सके हैं । उन्होंने अत्यन्त ही मन मानी की है । जहाँ ध्वनि-साम्य या अपभ्रंश का सहारा नहीं ले सके हैं वहाँ बड़ेही निराले ढंगपर शब्दों को तोड़ मोड़ कर सुमेरियन शब्द निकाला है । अपूर्ण [यह लेखमाला आर्यमित्र में क्रमशः प्रकाशित होगी]

—सम्पादक

शरीर-विज्ञान (Anatomy) पर वैदिक टिप्पणियाँ

(ले०—कनिराज डॉ० वीरसेन आयुर्वेद शिरोमणि)



ठको की सवा मे हम उस लेख क द्वारा शरीरशास्त्र क भूमिका पर प्रकाश डालना चाहते है। वेदो में इस विषय वा पूरा ज्ञान भरा हुआ है। अत उसका कुछ प्रारम्भिक अंश

उदाहरणार्थ उपस्थित करत हैं। भूमिका मन्त्र इस प्रकार हैं—

“सप्तास्यासन् परिश्रय, त्रि सप्त समिध कृता ।
देवा यज्ञ वितन्वाना, अयन्तगुरुष पशुम् ॥”

अथर्व. का. १९ सू ६ म १२। यजु अ ३१ म १५

इसमें आख्यायिका रूप मे वेद एक महान् तत्व का मूल स्थापन करता है। किसी का समझाने क सबसे सरल और हृदयमाही रूप हा सकता है ता आख्यायिका का। माता अपने बालक का आझा पालन का उपदेश देती हुई बालक के हृदय मे उसे स्थायी रूप से अंकित करत समय राम का चरित्र उसके समने रखती है। बालक के हृदय में वह बात जम जाती है। वह उसे कभी नहीं भूलता। उसका हृदय मिट्टी के कष बरतन के समान है जिसमे कि हम विविध चित्रों का निर्माण कर सकते हैं। आज भी, जिस प्रकार मनुष्या की बाल्यवास्था होती है उसी प्रकार से कभी किसी अपरिचित, अज्ञात काल मे इस मानव जाति का बाल्यकाल रहा होगा। उस समय उसे ज्ञान की आवश्यकता थी। अपने जीवन प्रभात मे, प्रथम उधा के उज्ज्वल आलोक में उसने जो ज्ञान प्राप्त किया उसके प्रकाश से उसका हृदय अनुपम एवं अपूर्व उल्लास से भर गया। उस समय उसे जो मूलधन ईश्वरीय देन के रूप में उपलब्ध हुआ वही उसकी भावी सम्पत्ति का मूल था। उसके उत्सुक, पवित्र हृदय पर परमार्थ ज्ञान को स्पष्टरूप से अंकित करने के लिये यदि आख्यायिका जैसे सरल एवं मनोरम उपाय का भी अवलम्बन किया गया हो

तो इसमे आश्चर्य हो क्या है? ईश्वरीयज्ञान के सह आँश से भी अल्पज्ञान, शरीर शास्त्र का प्रारम्भ भी आख्यायिका रूप से ही हमारे पूर्वजों के सम्मुख उपस्थित हुआ। इसमे सन्देह नहीं कि उन्होंने उससे उपयुक्त रीति से लाभ उठाया। शरीर विज्ञान की भूमिका भी आख्यायिका से ही प्रारम्भ होती है।

कभी किसी प्राचीन समय में—कोई नहीं जानता कि कव—देवताओं ने अपने धार्मिक स्वभाव के अनुसार यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की। दीर्घकाल तक अपने अमररूप तथा अचूक अमरत्व के सुन्दरतम जीवन में सुखोपभोग करते करते उन का मन उससे विरक्त हो गया। अब उन्होंने किसी महान् कार्य को अपने हस्त में लेकर अपना मनोरंजन करना चाहा और इसी तरंग मे एक महान् यज्ञ का विरलुत आयोजन कर बैठे। उस यज्ञ की भूमि जिसमें कि वे यज्ञानुष्ठान के लिये उद्यत हुए एक नहीं, दो नहीं अपितु “सात परिधिया (घेरे) थीं।” अपने परिश्रम और लगन से उन्होने “तीन प्रकार की सात सात अनुपम समिधायें उस यज्ञ में चयन की” और “उस यज्ञ के सम्पादनार्थ जीवात्मा रूपी पशु को उन्होने बाँधकर रखा।” यही पशु था जो कि उनके इस विचित्र आयोजन को सफल बना सकता था। अन्त मे उनका यज्ञ सफल हुआ और उसका परिणाम समस्त मानव साधार आज भी प्रकृति सुन्दरी के विरलुत अंक में विविध क्रीड़ा में मग्न हो रहा है। उस महान् यज्ञ का अब कोई आदि भाववा अन्त नहीं प्रतीत होता। सम्प्रति वही एक समस्या है। उस का निर्माण सरल नहीं। आख्यायिका अवरय आक-

* अग्नि, वायु आदि दिव्य गुण युक्त देवता सदाही अपने कार्य करने में समर्थ तथा बुधा रहते हैं।

१—“सप्तास्यासन् परिधय”

२—“त्रि सप्त समिधः कृताः”

३—“देवा यज्ञ वितन्वाना अयन्तगुरुष पशुम्”

क एवं विचित्र है। उसकी इस विचित्र आयोजना को सुनकर हम अपनी उत्सुकता का सवरण नहीं कर सकते और स्वतः हमारी प्रकृति उसके तात्पर्य को जानने के लिये उत्कृष्टित होने लगती है।

यदि स्पष्ट शब्दों में कहें तो 'इस विशाली एवं विचित्र यज्ञ का उपकरण यह शरीर ही है। इस शरीर में जीवन रूप यज्ञ का आयोजन करने के लिए ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश नामक देव ताओं ने मिलकर अपनी उत्कट इच्छा का प्रकाश किया' और उसी के फल स्वरूप शरीररूपी यज्ञस्थल में सातत्वचा रूपी परिधियों का निर्माण किया। "२ आयुर्वेद शास्त्र के मतानुसार हमारे शरीर के आवरण स्वरूप सात पत्र त्वचा के ही हैं और ये भिन्न भिन्न नामों से सम्बोधित किये जाते हैं"। इन सात परिधियों के भीतर "३ सात धातु, सात कला तथा सात आशय रूपी २१ समिवाये हैं" जो कि दीप्त होकर जीवरूप पशु की सहायता से देवताओं के इस जीवन यज्ञ को सफल बना रही हैं। इन तीनों सत्वकों के नाम क्रमशः निम्न हैं—

(१) "१ रस, रक्त, मौस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र ये सात धातु हैं"।

(२) "२ वातशय, पित्तशय, श्लेष्माशय, रक्ताशय, आमशय, पक्वाशय और मूत्राशय (गर्भाशय जिनको के) ये सात आशय हैं"।

(३) "३ मौसधरा, रक्तधरा, मेदाधरा, श्लेष्मधरा, पित्तधरा, पुरीषधरा, और शुक्रधरा ये सात कला हैं"।

१—पुरुषो वाच यज्ञः"

२—"सप्तत्वचा भवति" (सुश्रुत शरीर स्थान प्र. ४)

३—"कला सप्त। आशयाः सप्त। धातवः सप्त।

(सु. भा. २४, प्र. ४, ५)

४—"रसासृष्टिर्माँ मेद र्व मज्जा शुक्राणि धातवः

(ब्रह्मसंहिता, सूत्रस्थान, प्र. १, श्लो. १३)

५—"आशयान्मु वाताशयः, पित्ताशयः श्लेष्माशयो रक्ताशयः, आमशयः, पक्वाशयो मूत्राशयः, स्त्रीर्वा गर्भाशयो जहम इति ॥ (सुश्रुत, शरीर स्थान, प्र. ४)

६—"सुश्रुतशरीरस्थ, प्र. ४)

यदि हम उपयोगिता की दृष्टि से विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि ये ही २१ पदार्थ वास्तव में इस शरीर को बनाये हुए हैं। ये जिस समय अपने नियमितसंगठन को छोड़ दें, तो उसी समय यह बना बनाया यज्ञ, बना बनाया खेल च्युत भए नें नष्ट हो जाय इन्हीं के ऊपर निर्भर होकर। आयुर्वेद शास्त्र का विशाल भवन अपनी महत्ता का प्रकाश कर रहा है। अन्यथा च्युत भरे में वह धूलिसात हो जाये। इस बड़े भारी सत्सार चक्र का एक मूल यन्त्र सदा के लिए नष्ट होकर विशाल सत्सारा का एक बड़ी भी री अपूर्णता का कारण बन जाय।

अब यदि हम इन २१ समिधाओं की पृथक्-पृथक् व्याख्या करने लगे तो एक महान् पुरतक बन सकती है अतः इस छोटे से लेख में यह बताने का प्रयत्न कि या कि वेद कितने सुन्दर स्पष्टरूप से शरीर विज्ञान के सिद्धान्तों को प्रकट कर रहा है। केवल एक छोटे से मन्त्र के भीतर सम्पूर्ण शरीर विज्ञान छिपा है और इसको याद कर लेने पर उक्त विषय की भली भाँति स्मृति में अङ्कित कर सकते हैं। इसी प्रकार से एक नहीं अनेकों मन्त्र इस विषय के वैदिक साहित्य में छिपे हुए हैं जिनसे सम्पूर्ण शरीर के छोटे से छोटे अंग पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला जा सकता है।

पुरुषार्थ और ईश—साहाय्य

मनुष्य को यह करना उचित है कि ईश्वर ने मनुष्यों में जितना सामर्थ्य रक्खा है उतना पुरुषार्थ अवश्य करे। उसके उपरान्त ईश्वर के सहायकी इच्छा करनी चाहिये। क्योंकि मनुष्य में सामर्थ्य रखने का ईश्वर का यही प्रयाजन है कि मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ से ही सत्य का आचरण अवश्य करना चाहिये। जैसे कोई मनुष्य आत्म वाले पुरुष को ही किसी चीज को दिखला सकता है अन्ये को नहीं, इसी रीति से जो मनुष्य सत्य भाव, पुरुषार्थ से धर्म का किया चाहता है उस पर ईश्वर भी कृपा करता है, अन्य पर नहीं। क्योंकि ईश्वर ने धर्म करने के लिए बुद्धि आदि बढ़ने के साधन जीव के साथ रखे हैं। जब जीव उनसे पूर्ण पुरुषार्थ करता है तब परमेश्वर भी अपने सामर्थ्य से उनपर कृपा करता है, अन्यपर नहीं।

सभ्यता का आदि केन्द्र

(ले० - श्री प० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ)



नव समाज की सभ्यता का आदि मूल केन्द्र कानसा भूभाग रहा होगा, इस विषय में पारचात्य और पौरस्त्य विद्वानों में नाना विप्रतिपत्तियाँ चली आ रही हैं। पारचात्य विद्वान् यही मानते चले आ रहे हैं कि वेद आर्यों की तात्कालिक सभ्यता का दिग्दर्शन कराने वाले उच्च कौटिक के धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसी प्रकार पौरस्त्य विद्वानों में विरकाल से यह पक्ष चला आ रहा है कि वैदिक वाङ्मय आर्यों की ऐतिहासिक तथा धार्मिक घटनाओं से परिपूर्ण है। किन्तु, इनमें भी दो भेद हैं। एक वे ऐतिहासिक पक्ष वाले जो वेदों में तथाकथित इतिहास को पुराकल्प का (पूर्वसृष्टि का) मानते हैं, अर्थात् पुराकल्प की पूर्वसृष्टि की कथाएँ। दूसरे इस पक्ष को नहीं मानते। पौराणिक लोग पुराकल्प के आधार पर ही वेदों की उन तथा कथित गथाओं अथवा कथाओं को मानते हैं।

वस्तुतः वेद ईश्वरीय ज्ञान है और उनका प्रकाश ऋषियों के हृदयों में हुआ, यही पक्ष सबसे प्रबल और सबसे प्राचीन है। मन्वादि महर्षि इसी पक्ष के हैं। निरुक्तधार भी "नद्येनोत्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भुवन्धानपत्तदृषोणामृषित्वमिति विज्ञायते" इसी पक्ष को मानते हैं। मनु ने तो स्पष्ट कहा है -

अग्निवायुरविभ्यस्तु, त्रय ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञसिद्धयथ ऋग्यजुः सामलक्षणम् ॥

अग्निवायु आदित्यादि द्वारा वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। द्वादश अध्याय में स्पष्ट कहा है कि

'अशक्य चाप्रमेय च'

मनुष्य वेदों को बनाने में असमर्थ है, वह इस प्रकार की रचना रच नहीं सकता।

इस प्रकार उपनिषदों के शब्दों में भी "यस्य निरवसितं वेदा" ईश्वर का निरवास वेद है। वेद

ईश्वरीय ज्ञान है इस विषय में "तम्म यज्ञात्सर्वहुतः ऋचं सामानि जज्ञिरे" इत्यादि अन्तर्गत प्रमाण भी मिलते हैं। तो भी पारचात्य विद्वान् तथा पारचात्य ढग का अनुसरण करने वाले भारतीय विद्वान् वेदों को ऐतिहासिक ग्रन्थ मान कर इस बात की खोज में लगे रहे हैं कि मानव समाज की सभ्यता का आदि मूल केन्द्र कौनसा है। पारचात्य विद्वान् प्रायः एक मत हैं कि मानव समाज की सभ्यता का केन्द्र मध्य एशिया रहा है और वहाँ से आदि आर्य सब देशों में फैले, कोई भारत की ओर आये, कोई यूरुप (हरिवर्ष) देश की ओर गये। प्रथम प्रथम इस पक्ष का बड़ा जोर रहा किन्तु स्व० लोकमान्य तिलक ने अपने प्रगाढ़ परिष्कृत से एक नवीन आविष्कार किया कि आर्यों की आदि वसति उत्तरभुव में थी तब पारचात्य विद्वान् चकित हुए। स्व० प्रोफेसर मेक्समूलर ने लोकमान्य तिलक का लिखा था कि आपकी अद्वितीयकृति "उत्तरभुव में आर्यवसति" ने अन्वेषण तथा अनुसन्धान के लिए एक नया द्वार खोला है।

इस पक्ष को सिद्ध करने के लिए लोकमान्य तिलक ने समस्त पारचात्य पद्धति का प्रयोग किया था। इस नये आविष्कार से सर्वत्र एक हलचल मच गई और अन्य भारतीय विद्वन् भी इसकी खोज में डट गये। स्वर्गीय आचार्य परिष्कृत सामभ्रमी फेलो 'पैरिमाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगल' ने लोकमान्य की इस उक्ति का प्रबल खण्डन किया कि आर्य उत्तरभुव के निवासी थे। आपने आर्याचीन समय की भारतीय नदियों और प्रदेशों के मिलने जुलते नामों के आधार पर यही सिद्ध करने का भरसक उद्योग किया कि आर्य भाग के ही निवासी थे। महाराष्ट्र के विद्वान् श्री पावगी ने भी इसी प्रकार का प्रयत्न किया।

इन सब विद्वानों ने वेदों का गौरव बढ़ाया तो

सही किन्तु वेदों को उस स्थान पर लाकर न बिठा सके जहाँ मनु ने बैठाया था। इसका कारण यह है कि इनकी अनुसन्धान पद्धति केवल पारश्चात्य रंग दंग की रही। ये यही मान कर चले कि वेद ऋषियों के बनाये हुए हैं वेद उनकी मित्र प्रदेश की यात्रा और सभ्यता को वर्णन करने वाले पुस्तक हैं। कोई कोई इनको ऐतिहासिक ग्रन्थ मानते हुए भी पुरा-कल्प (पूर्व सृष्टि) का इतिहास मानते चले आये हैं। इनके मत में वेदों में व्यक्ति विशेषों के नाम आते हैं, प्रदेशों के नाम आते हैं, नदी आदि के नाम आते हैं वे पुराकल्प के हैं। यही इतिहास परम्परा से चला आया है। प्रमुख वेदभाष्यकार इसी प्रकार का इतिहास मानते थे। अस्तु। हम अर्वाचीन विद्वानों की बात कह रहे थे। इनके अनुसन्धान में एक बड़ी त्रुटि यह है कि वे विदेशी भाषाओं की धातुओं से वैदिक शब्दों का अनुसन्धान करके अनर्थ करते चले आये हैं। जैसे पारश्चात्य विद्वान् 'आर्य' शब्द की व्युत्पत्ति के लिए विदेशी धातु अर् अथवा इसी प्रकार की अन्य धातुओं से काम लेकर यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि आदि आर्य खेतिहर अर्थात् किसान थे और वर्तमान आर्यसन्तान खेतिहर आर्यों की सन्तान हैं। ये लोग यह बात भूलते हैं कि जब हमारी भाषा में हमारे धातु हैं तो अपनी भाषा की सिद्धि के लिए ग्रीक लैटिन तथा अन्य भाषाओं की सहायता लेने की क्या आवश्यकता है; और है भी ऐसा करना एक महान् अनर्थ की बात। अब प्रायः समस्त भाषा-शास्त्र-कोषियों का एक मत हो चला है—नहीं, नहीं होगया है—कि संस्कृत समस्त संसार की भाषाओं की जननी है, और संस्कृत अर्थात् देववाणी वेदवाणी से ही उत्पन्न हुई है तब क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि लैटिन, ग्रीक भाषाओं की धातुओं के बल पर वैदिक बाह्यमय का अनुसंधान किया जा रहा है? श्रीयुत प्राणनाथ बियालङ्कार ने भी इसी प्रकार का हास्यास्पद प्रयत्न करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आर्यों की सभ्यता का केन्द्र मित्र देश है। इत्यादि। यदि हम भी संस्कृत धातुओं के आधार पर पारश्चात्य विद्वानों के साहित्य का अनुसंधान करें—और ऐसा करने का हमको पूर्ण अधिकार

है जब कि पारश्चात्य विद्वान् भी संस्कृत भाषा को सर्व भाषा-जननी मानते हैं—तो पारश्चात्य विद्वान् को कैसा लगेगा जब कि हम अपने दंग से उनके साहित्य को तोड़ें मरोड़ेंगे। पौरस्त्य बाह्यमय का अनुसंधान पौरस्त्य दंग से ही होना चाहिये। वेदों में विषाट आदि ऋषियों का उल्लेख देखकर केवल तोम-साहित्य से यह सिद्ध करने की चेष्टा करना कि आर्य पंजाब के ही आदि निवासी थे यह बात ऐतिहासिक पक्ष में भले ही ठीक जँचती हो किन्तु यह वैदिक साहित्य को निरुक्ति का प्रकार नहीं। इसी प्रकार नाम साहित्य से अफगा निस्थान से पंजाब तक इक्कीस ऋषियों के नाम गिना कर आर्यों का अफगानिस्तान से आये हुए बतलाने का प्रयत्न है। जब वेद ईश्वरीय ज्ञान है तो उसका देश विशेष, जाति विशेष, राष्ट्र विशेष, प्रदेशविशेष, नदी व पर्वत विशेष से क्या सम्बन्ध है? महा प्रलय के पश्चात् जो भी भूभाग जलमय सृष्टि के ऊपर सब से प्रथम प्रकट हुआ वही मनुष्य की सृष्टि हुई, यही मानना पड़ेगा और भूगर्भ विद्या-विशारद अब यह मानने लगे हैं कि महाप्रलय में से सबसे प्रथम हिमालय और त्रिविष्टप (तिब्बत) का भाग ऊपर आया और वही प्रथम मनुष्य सृष्टि हुई होगी। अगत्या ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश ऋषियों द्वारा वहीं हुआ होगा। अतः मानव समाज का आदि मूल केन्द्र, सभ्यता का आदि मूल केन्द्र त्रिविष्टप देश है और वहीं से आर्य मित्र मित्र देशों में गये और वर्तमान संसार का मानव समाज उसी आर्य वंश की परम्परा है। इस दृष्टि से आर्य सभ्यता का आदि केन्द्र त्रिविष्टप देश है। ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं। पारश्चात्य अनुसंधान पद्धति से नहीं, अपितु प्राकृतिक रीति से।

तीन प्रकार की वाणिज्य

मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वाणी होती हैं अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई दूसरी सत्य भाषण युक्त और तीसरी मधुर गुणसहित, उनका स्वीकार करें।

वेद में आयुर्वेदिक रसायन

(ले०—श्री पं० द्विजेन्द्रनाथ जी आचार्य)



चीन काल से आज पर्यन्त जितने बड़े बड़े आचार्य हुए हैं प्रायः सभी ने वेदों की अखिलविद्या-निधान बताया है। आर्यों की भी यही धारणा बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। भगवान् शकटाचार्य के शब्दों में वेदों की

महिमा निम्नप्रकार से है—

“महत ऋग्वेदादे शास्त्रस्यानेकावस्थास्थानोप-
वृ हितस्य प्रदीपवत्सर्वविद्यावर्गोतिन ॥”

[शंकरभाष्य]

अर्थात् अनक विद्या-ज्ञान विज्ञान से युक्त और दापक के समान सकल पदार्थों को प्रकाशित करने वाले जो ऋग्वेदादि वेद-चतुष्टय है वह सर्वज्ञ परमेश्वर की ही कृति है। जैसे दीपक, अपने प्रकाश से सकल पदार्थों को प्रकाशित कर देता है, इसी प्रकार वेद समस्त विज्ञानों को प्रकाशित करते हैं। अर्थात् वेद सर्व विद्याओं के स्रोतक है। इसलिए भगवान् मनु ने भी स्पष्ट कहा है—

“भूत भव्य भविष्यच्च सर्व वेदा प्रमिष्यति ॥”

जो ज्ञान-विज्ञान फैल रहा है जा फैल चुका, तथा जो भविष्य में फैलेगा उस सब का आदि स्रोत वेद ही है। वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘त्रयीचतुष्टय’ में लिखा है—

The study of certain portion of the vedas leads even to the conclusion that certain scientific researches had been carried in the country to such perfection that even America and the advanced countries of Europe have not yet attained it.

अर्थात् वेदों के कतिपय स्थलों के अवलोकन से

तो यह प्रतीत होता है कि भारत में कई वैज्ञानिक गवेषणाएँ तो उस कोटि तक पहुँच चुकी थीं जिसे अमेरिका जैसे देश जहाँ निरन्तर वैज्ञानिक खोज होनी रहती है तथा योरोप के अन्य समुन्नत देश भी, अभी तक नहीं प्राप्त कर सके। परन्तु हम वेदों से इतने विमुख एव उदासीन हो गये कि केवल वेद का नाम शेष रह गया अपितु उसके स्वरूप व लक्षणों तक का हमें ज्ञान नहीं रहा। वेदों के रहस्य तथा तत्त्वज्ञान की तो कौन कहे? वेद तो मुहर बन्द किताब (sealed book) हो गईं। औरों के विषय में क्या कहा जाय? स्वयं ब्राह्मण वर्ग भी प्रायः आज वेद के ज्ञान से वंचित है। जिन भूसुरों के लिए महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है—

“ब्राह्मणेन निष्कारण पढगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति”
अर्थात् ब्राह्मण को निष्कारण निस्वार्थ भाव से पढना वेद का अध्ययन करना ही चाहिये। परन्तु कहीं है वे आज ब्राह्मण? वेदों की शिक्षा के प्रति उदासीनता धारण करने से ही हमारी यह दुरवस्था हुई है। इसीलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी वेदों की और जनता का ध्यान आकर्षित किया। परन्तु आर्यसमाज का ध्यान इस तरफ जितना होना चाहिये था, उतना नहीं है। आज हमें जितने वेद भाष्य प्राप्त है वे वेदार्थ रहस्य को खोलने के लिए अपर्याप्त ही नहीं, किन्तु कितने ही तो उनमें सायण महीधर आदि के जैसे असम्बद्ध और हेय हैं। इन भाषाकारों ने आधुनिक लोकभाषा के आधार पर वेदों के भाष्य किये। परिणाम यह हुआ कि वेदों के यथार्थ ज्ञान के प्रकाश से जनता वंचित रह गई। सम्पूर्ण वेदों में सायणादि को कर्मकाण्ड तथा त्रिनियोग ही आभासित हुआ। वैदिक भाषा की व्याख्या आधुनिक लौकिक भाषा के आधार पर नहीं हो सकती, परन्तु सायणादिक ने यह न समझ कर वेद को प्रचलित कर्मकाण्ड के रंग में रंग दिया।

प्रो० मैक्समूलर ने एक बात बड़े महत्व की कही है। वे कहते हैं—

‘Nay, I believe it can be proved that more than half of the Difficulties in the history of religions thoughts owe their origin to the Constant misinterpretation of an ancient language by modern language of an ancient thought by modern thought’

जिसका भाव यह था कि प्राचीन धर्मतत्वों को यथार्थ रीति से समझने में जो कठिनाइयाँ प्रतीत होती हैं उनमें अधिकतर का कारण तो प्राचीन भाषाओं की आधुनिक भाषा के द्वारा व्याख्या करना अथवा प्राचीन विचारों के आधुनिक (वर्तमान) विचारों के द्वारा समझने की धारणा ही है। प्राचीन भाषा तथा विचार आधुनिक भाषा तथा व्यवहार से कदापि नहीं समझे जा सकते। सायणादि पुराण विद्वानों ने यही भूल खाई। उन्होंने वेदों के रहस्यों को आधुनिक भाषा के द्वारा खोलने का प्रयत्न किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस रहस्य को समझा और सत्य वेदाय शैली का पथ-प्रदर्शन किया। स्वामीजी दुर्भाग्यवश चारों वेदों का भाष्य नहीं कर सके। जितनों का भाष्य किया है वह भी दिग्दर्शन मात्र ही है। अति संक्षेप से होने के कारण वह केवल मार्ग प्रदर्शक का कार्य कर सकता है परन्तु उसे एक विशद एवं सुसमुपहृत हितभाष्य नहीं कहा जा सकता।

श्री स्वामी जी महाराज ने भी जो वेदों के परम आचार्य थे यही बतलाया—

“वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।”

जब सभी ऋषि महर्षियों का यह दावा है तो अबरय ही वेदों में समस्त विज्ञान होने ही चाहिये। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता। आज हम इस लेख के द्वारा पाठकों को यह बताना चाहते हैं कि किस प्रकार वेद में अन्य विज्ञान है, उसी प्रकार आयुर्वेद विज्ञान भी है। उसमें से विशेष कर आयुर्वेदिक रसायन के तत्त्वों को ही प्रदर्शन कराने का इस लेख का ध्येय है। यद्यपि अधिकतर आधुनिक आयुर्वेद के विद्वानों की यह धारणा है कि

प्राचीन समय तथा प्राचीन आयुर्वेद के प्रन्थों में, औषध विज्ञान—वनस्पति विद्या का ही विधान है। रसायन का आविष्कार बहुत पीछे के काल में हुआ है। परन्तु हमारे विचार में यह धारणा निराधार है। जब हम वेदों तक में सब धातु उपधातुओं के न केवल नाम अपितु उनके गुण धर्म वर्णन पाते हैं, तो यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में रासायनिक चिकित्सा नहीं होती थी। वेद में यों तो पारद, लोह, रजत, सुवर्ण ताम्र आदि सभी धातुओं के नाम आते हैं। परन्तु इस संक्षिप्त लेख में सब का वर्णन होना शक्य नहीं और न इस लेख का उद्देश्य ही यह है इस लिये स्थाली पुलाकन्याय से केवल सर्व धातु शिरोमणि स्वर्ण का ही वर्णन करेंगे। आयुर्वेद में स्वर्ण की अत्यन्त प्रशंसा की गई है। जैसे स्वर्ण धातुओं का राजा समझा जाता है उसी प्रकार रसायन में भी शिरोमणि गिना गया है। किसी रसायनार्थ में स्वर्ण की प्रशंसा में क्या सुन्दर कहा है—

“शीतं स्वर्णसमानकान्तिकरणं बल्यञ्च शुक्रप्रदम् ।
निशोषाभयनाशनं क्षयहरं वाङ्मन्यनिर्मूलनम् ॥
चक्षुष्यं वमिमेहवासहरणं पित्तास्ररोगञ्जयेत् ।
वृष्यं मेघमपस्मृतिक्षयकरं सौवर्ण्यभस्माभृतम् ॥

अर्थात् सुवर्ण की भस्म अमृत के तुल्य है— शीतल है स्वर्ण के समान कान्ति देने वाली है बल्य शुक्रप्रद, क्षयहर चक्षुष्य, वृष्य, मेघ्य है, कर्हों तक कहे सभी रोगों को नष्ट करने वाली है। यह तो हुई किसी रसायन शास्त्र के परमनिष्णात आचार्य, की प्रशंसा। परन्तु अब हम आपके सम्मुख वेदमन्त्र रखते हैं। देखिये युक्त विषय में वेद की क्या सम्मति है। यजुर्वेद में आया है—

आयुष्यं, वर्चस्व्यं, रायसोषमौद्विदम् ।

इदं हिरण्यं वर्चस्वस्वज्ञैत्राया विश्रान्तुमाम् ॥

इस मन्त्र का देवता ‘हिरण्यतेज’ है। अर्थात् हिरण्य के क्या क्या गुण हैं यह इस मन्त्र में बतलाया गया है। अर्थ स्पष्ट है। (इदं हिरण्यं) यह सोना (आयुष्यम्) आयु के लिये हितकारक है (वर्चस्व्यं) कान्ति का देने वाला। (रायःपौष) शक्ति तथा पशु का देने वाला है।

(श्रौद्धिदं) सर्व रोगों का भेदन करने वाला और (वर्चस्वत्) वर्चस्वी बनाने वाला है। (जैत्राय) रोगों से विजय प्राप्त करने के लिये उक्त स्वर्ण (मा आविशतात् ३) मुझे सदा प्राप्त हो, मैं सदा उसका सेवन करूँ। स्वर्ण का कितना सुन्दर वर्णन है। और भी देखिये अगले मन्त्र में और भी अधिक वर्णन है :—

न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः
प्रथमजं ह्येतत् । यो विभर्ति दाक्षायण हिरण्यं स
देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ।

यजु० ३४-२१

(तत्) उक्त गुण वाले स्वर्ण को कोई राक्षस (न राक्षसा) या पिशाचा रूपी रोग (न पिशाचा) (तरन्ति) तरते है। अर्थात् सुवर्ण से कोई रोग नहीं बच सकता। (यो) जो (दाक्षायणं हिरण्यं) चतुर रसज्ञ से तैयार किये हुये सुवर्ण का (विभर्ति) सेवन करता करता है। वह देवों को ही नहीं अपितु मनुष्यों की भी (देवेषु मनुष्येषु) (आयु) आयु को (दीर्घ) दीर्घ (कृणुते) करता है (कृणुते) और फिर करता है। इससे बढ़ कर और क्या वर्णन हो सकता है? भारतीय रसायनकार्यों ने ही नहीं किन्तु योरुप के साइण्टिस्टों ने भी स्वर्ण की ऐसी ही प्रशंसा की है। योरुप के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर डब्ल्यू टी० फरने एम० डी० ने अपनी पुस्तक "Precious-stones for curative wear में स्वर्ण के औषधीय गुणों (Remedial uses) के विषय में लिखा है कि—Gold is an admirable remedy for constitutions broken down by the combined influence of syphilis and mercury" अर्थात् जब पीड़ित रोगों के लिये सुवर्ण अति प्रशंसनीय औषध है। वहीं तक नही आगे चलके वे लिखते हैं:—I have cured several cases of melancholy promptly and permanently with this metal (gold).

अर्थात् मैंने स्वर्ण से बहुत से उन्माद के रोगियों को अति शीघ्र और सर्वथा अच्छा किया है। आगे वे कहते हैं—Gold is reputed to increase the vitality अर्थात् सोना जीवनी शक्ति को

बढ़ाने में प्रसिद्ध है। संस्कृत में जिसका साफ अर्थ वही है जो ऊपर लिखित "स मनुष्येषु कृणुते दीर्घ मायुः" वेद वाक्य का है। क्या यह वेदों का विजय नहीं। जिस सत्य का वेदों ने वर्णन किया संसार आज सहस्र मुख से उसका गान कर रहा है। और भी अनेक रामायनिक मिथान्तों का वेदों में क्यों सुन्दरता से वर्णन है। परन्तु यहाँ तो हमने निदर्शन मात्र के लिये कुछ दिग्दर्शन कराया है। वेद के प्रेमियों से निवेदन है कि वे वेद के पठन पाठन को उत्तेजन दे—वेद रत्नाकर का मन्थन करे ताकि अनेक ज्ञान विज्ञान रूपी रत्नों को प्राप्ति हो, जिससे संसार का कल्याण हो।



श्री द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री।

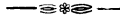
इस विषय पर अधिक हमारे 'वेदतत्त्वार्थोपनिषद्' ग्रन्थ में जो शीघ्र प्रकाशित होने वाला है मिलेगा।

आरामप्रशंसा

किसी भद्रजन को अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये तथा और की कही हुई अपनी प्रशंसा सुन कर न आनन्दित होना चाहिये अर्थात् न हसना चाहिये। जैसे अपने से अपनी उन्नति पाही जावे वैसे औरों की उन्नति सदैव चाहनी चाहिये।

—❁— पूर्णचन्द्र से —❁—

(ले०—श्री कुँ० हरिश्चन्द्रदेवजी वर्मा 'जातक' कविरत्न)



(१)

पूर्णचन्द्र ! आज तुम चहुगण मण्डली में
हो कर अधीश जसे यश चमका रहे ।
जैसे सब देशों में समुत्तम था भारत य-
कहो क्या इधी की याद तो न हाँ दिला रहे !
अथवा प्रकाश कर-निकर विदार तम-
स्वावलम्ब का हो पाठ हमको पढ़ा रहे ।
मान क्यों हुये हो बोखो ! कुछ तो बताओ प्यारे !
बड़ी देर से हैं हम तुमको बुला रहे !

(२)

स्वर्ण युग देखा है हमारा जो मधक तूने ।
तुझ से सुयश जन सौँ गुना हारा था ।
दयोरियो के साथ तलवार खिंचती थी अहा !
प्राण से अधिक जब मान हमें प्यारा था ।
लाटती थी भूरि सुख सम्पदा चरण तले-
हाथ में हमारे जब सत्य का सारा था ।
प्रेम उर में था जेम नेम में विराज रहा-
चारों ओर फैला जब पण्य का पसारा था ।

(३)

राम की पवित्र पितृ-भक्ति को विलोक तूने ।
हागा बरसाया प्यारे ! खुब सुधा धार को ?
फूले न गगन में समाये होंगे चन्द्र तुम !
देख कर जानकी के विमल विचार को ?
पार्थ का पराक्रम विलोक महाभारत में-
ज्योति मिस्र किया हागा प्रकट दुलार को ?
बार बार मन में प्रताप को सराहा हागा-
एक हाँके मारते थे जब वे हजार को ?

(४)

बादलों में ढक लिया हागा मुख विन्ध तूने ।
देखा हागा देश-द्रोहियों के जब जाल को ।
बाँधती थी जब परतत्रता स्वतत्रता को-
ठोका हागा हाय ! तब तूने निज भाल को
कायर कुचालियों पे दौँत पीसे होंगे तूने ।
सोच बीर वराजों के गौरव विशाल को !
मन को अवरय शोक उवाला में जलाया हागा-
प्यारे चन्द्र ! देख देख भारत के हाल को !

(५)

शीघ्रही सुनादे हमें सकट कहानी पूरी-
भाग्य को हमारे हल भौँति कौन रोगया ।
किसने चुराये हैं हमारे सुख साज सभी-
सुधा-क्षेत्र में है कौन विष-बीज बोगया ?
हर्ष हरियाली से यहाँ की घरा हँसती थी-
उसे दुःख सागर में कौन है डुबोगया ?
कुछ तो बतादे निशानाथ ! बड़ी देर हुई-
गौरव का हीरक हमारा कहीं खोगया ?

वेदोद्धारक दयानन्द-श्रुति और स्मृति

[ले०—श्री प० धर्मदेवजी सिद्धान्तालंकार विद्यावाचस्पति]

— x . o . x —

ऋषि दयानन्द ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उनके विषय में किसी का मतभेद हा सकता है, किन्तु इस से कोई निष्पक्ष विद्वान् इनकार नहीं कर सकता कि इस युग में जा वैदिक धर्म के उद्धारक हुए हैं उन में सबसे प्रथम स्थान ऋषि दयानन्द को ही दिया जाना चाहिए। श्री शङ्कराचार्य श्री मध्वाचार्य श्री रामानुजाचार्य आदि सभी सुप्रसिद्ध आचार्यों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म के उद्धार का प्रयत्न किया और वेदों के महत्त्व को भी सब ने स्वीकार किया किन्तु यह साहस ऋषि दयानन्द का ही था कि उन्होंने साफ तौर पर वेदों के विरुद्ध वचनों की चाहे वे कितने भी प्रसिद्ध और प्राचीन ग्रन्थों में पाये जाते हों अप्रामाणिकता को घोषित कर दिया और वेदों (मन्त्रसंहिताओं) के ही आचार पर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

श्री शङ्कराचार्य जी ने अपने जीवन का उद्देश्य मण्डनमिथ को जो बताया उसको शङ्कर दिग्विजय (८ । ३७ । ३८) में इस प्रकार बताया गया है—

मम न किञ्चिदपि ध्रुवमीप्सितं, श्रुतिशिखः पथविस्तृतिमन्तरा । अवहितेन मखेष्टवचवीरिनः, स भवता भवतापहिम वृतिः ॥ जगति सम्प्रतिष्ठितं प्रथया म्यह, सम्प्रभूय समस्तं विवादितम् स्वमपि सश्रय मे, मतमुत्तमं विगद वा वद वासिम जितस्त्रित्ति ॥

अर्थात् मुझे सिवाय इसके और कुछ इष्ट नहीं कि वेद मार्ग का मैं विस्तार वा प्रचार करूँ । ससार के ताप को दूर करने वाले उस वैदिक धर्म की केवल धर्म काण्ड में लगे हुए तुमने उपेक्षा की है । मैं सब मतान्तरो को हरा कर जगत् में अब उसी का प्रचार करता हूँ । तुम भी या तो मेरे उत्तम मत को स्वीकार करो या कह दो कि मैं हार गया इत्यादि । इस प्रकार स्पष्ट घोषणा करते हुए श्री शङ्कराचार्य ने मूल वेदों

अर्थात् मन्त्र संहिताओं को केवल कर्म-काण्ड-परक मान कर वेद वा श्रुति के नाम से उपनिषदों का ही आश्रय लिया और उन्हीं के आचार पर अपने ऋद्धेतादि विषयक सिद्धान्तों के प्रतिपादन का यत्न किया । श्री रामानुजाचार्य वल्लभाचार्य आदि ने भी ऐसा ही किया । इन आचार्यों के ग्रन्थों में मूल वेदों के उद्धारण बहुत ही कम वा नाम मात्र पाये जाते हैं । इन लोगों ने उपनिषदों का मन्त्रसंहिताओं से भी अधिक महत्त्व दिया है और वेदों की बड़ी उपेक्षा की है । श्री मध्वाचार्य जो ने अन्य आचार्यों की अपेक्षा वेदों के आचार पर अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन का अधिक प्रयत्न किया और ऋग्वेद के कुछ भाग का भाष्य भी किया तथापि पुराणवचनों को उन्होंने बहुत अधिक उद्धृत किया और पौराणिक विचारों से वे बहुत प्रभावित प्रतीत होते हैं, अतः उन्हे भी आदर्श वेदोद्धारक नहीं कहा जा सकता । शाङ्कराचार्यम आदि वैष्णव आगमों को जिनमें शैवों की घोर निन्दा पाई जाती है उन्होंने वेदों की तरहही प्रामाणिक माना प्रतीत होता है ।

ऋषिदयानन्द का यह सिद्धान्त कि वेद (मन्त्रसंहिता भाग) स्वतः प्रमाण और अन्य सब ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं, कपोल कल्पित वा नवीन न था ।

धर्मं जिज्ञासमानानां, प्रमाणां परमं श्रुतिः । (मनु-स्मृति) विरोधे त्वनपेक्षं स्थान् (मीमांसा) श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे तु, श्रुतिरेव गरीयसी' (बृहस्पति)

इत्यादि अनेक वचनों में स्पष्टतया उसी का प्रतिपादन पाया जाता है, पर ऋषि दयानन्द ने जिस साहस और निर्भयता के साथ इस सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप दिया वह वस्तुतः आदर्श और अनुकरणीय है और उसी के अवलम्बन से वैदिकधर्म की यथार्थ रक्षा हो सकती है । श्रुति (वेद) और स्मृति के विरोध को प्रदर्शित करने के लिए यहाँ विवाह काल निर्याह में वेदों और अनेक स्मृति वचनों की

शिक्षाओं का स्पष्ट विरोध दिखाई देता है जिस के कारण ही बाल विवाह जैसी कुपथा के दूर होने में बाधा पड़ रही है। वेदों के इस विषयके मन्त्रों से यह सर्वथा स्पष्ट है कि युवावस्था में ही परस्पर इच्छा वा अनुमति से ही विवाह होना चाहिए। सायणाचार्य आदि के भाष्यों से भी यही सिद्ध होता है।

सोमो बधूयुरभवदश्वनास्तामुभावर।

सूर्या अत्यन्त शशन्ती मनसा सविताद्वान् ॥

ऋ. १०। ८५। १

इस मन्त्र में वर को सोम पद से जताने हुए उसके लिये 'बधूयु' विशेषण का प्रयोग किया है जिसका अर्थ वधू वा स्त्री की इच्छा करने वाला है और तेजस्विनी कन्या का सूर्या के नाम से पुकारते हुए उसका विशेषण 'मनसा पत्ये शशन्तीम्' दिया है, जिसका अर्थ मन से पति की कामना करती हुई यह है। इसके भाष्य में श्री मायणाचार्य ने लिखा है

पत्ये शशन्तीम्—पति कामयमानां प्राप्तयोजना

मित्यर्थ—

अर्थात् पति की कामना करने वाली युवती। ऐसी युवावस्था में ही विवाह होना वेद सम्मत है न कि बाल्यावस्था में। गुड्डे गुड्डियो का जोड़ा मिल जा जाना।

ऋग्वेद १०। १८३। १-२ मन्त्र युवावस्था में विवाह के स्पष्ट द्योतक हैं जिन में वर के लिए पुत्र काम अर्थात् पुत्र की इच्छा करने वाला और वधू के लिये पुत्रकामा अर्थात् पुत्र की कामना करने वाली 'मनसा दीभ्यानाम्, स्वीयां तन् ऋत्वेनाद्यमानाम्। 'युवतिः' इत्यादि विशेषण आये हैं जिन के अर्थ मन से पति का ध्यान करने वाली, पति के साथ समागम कर के गर्भ धारण की इच्छा करने वाली युवावस्था वाली हैं।

मन्त्र निम्नलिखित हैं—

अपरस्य त्वा मनसा चेकितान, तपसो ज्ञातं तपसो विभूतम् ॥ इह प्रजामिह रयि राराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामं ॥ (वधू की उक्ति)

अपरस्य त्वा मनसा दीभ्यानां, स्वीयां तन् ऋत्वेनाद्यमानाम् उपमानुषा युवतिर्वभूमाः प्रजायस्व प्रजया पुत्र कामे ॥ (वर का उक्ति)

हरदत्ताचार्य नामक सुप्रसिद्ध विद्वान् ने इन मन्त्रों का भाष्य करते हुये 'युवतिः' का अर्थ यौवनावस्थां प्राप्ता' और 'स्वीयां नाद्यमानाम्' का अर्थ शरीरो मत्तो गर्भं प्रार्थयामानाम् ऐसा लिखा है। ये दोनों मन्त्र आपस्तम्ब गृह्यसूत्र आदि प्रायः सब गृह्यसूत्रों के अनुसार अब भी विवाह की चतुर्थ रात्रि में पढ़े जाते हैं किन्तु खेड़ है कि इनके अभिप्राय के सर्वथा विरुद्ध आचरण किया जाता है।

विवाह संस्कार के समय पढ़े जाने वाले 'तं पूषन् शिवतमामेयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्त- प्रहरा मशेष ॥ इत्यादि मन्त्र जिन में उशती-उशन्त-इत्यादि का प्रयोग करते हुए समागम वा मैथुनादि वा स्पष्ट निर्देश है। युवावस्था में विवाह का हा साफतौर पर प्रकट करते हैं। एयमन्त्र पतिकामा जानिकामो ऽह-मागम् ॥' ६ अथर्व २। २०। ५ आदि भी उसी भाव के सूचक हैं जिनमें पति पत्नी को परस्पर कामना पूर्वक संयोग का प्रतिपादन है। 'बह्वचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥' अथर्व १। ७। १० में कन्या के ब्रह्मचर्य समाप्त करके याव युवक पति के चुनने का स्पष्ट विधान है। इस प्रकार वेद स्पष्टतया युवावस्था में विवाह के प्रतिपादक हैं, इस में जरा भी संशय नहीं हो सकता। गृह्यसूत्रों में भी वेद मन्त्रों को उद्गृह्य करते हुए युवावस्था में विवाह को सूचित किया गया है। किन्तु जो स्मृतियाँ इस समय उपलब्ध होती हैं उन में से बहुतेरे में बाल्य विवाह का समर्थन पाया जाता है। यम संवत् अंगिरा तथा पराशर स्मृति इन चार में इस प्रकार के श्लोक पाये जाते हैं।

अष्ट वर्षाभवेद् गौरी, नव वर्षात्पुरोहिणी ।
दशवर्षा भवेत्कन्या, अत ऊर्ध्वा रजस्वला ॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
सर्वे ते नरकं यान्ति, दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥
यस्तां विवाहयेत्कन्यां, ब्राह्मणो मदमोहितः ।
अस भाष्यो ह्यप्राप्तो यः, सविप्रो वृषलीपति ।

अर्थात् ८ वर्ष की लड़की गौरी, ९ वर्ष की रोहिणी, १० वर्ष की कन्या, और इसके बाद रज-

स्वला कहलाती है। रजस्वला कन्या को देखकर उसके माता पिता तथा बड़ा भाई ये सब नरक में जाते हैं। जो ब्राह्मण ऐसी लड़की के साथ विवाह करता है उसके साथ नबोलना चाहिये, न उसे पक्ति में बठाना चाहिये क्योंकि वह चाण्डाली का पति है। प्रजापति स्मृति में लिखा है:—

पितुर्गृह्णतु या कन्या रज पर्यस्यसंस्कृता ।

सा कन्या वृषली होया, तरपतिवृषलीपतिः ॥

अर्थात् जो कन्या पिता के घर में रहते हुए ही बिना विवाह संस्कार के रजस्वला हो जाती है उस चाण्डाली समझना चाहिये और उसका पति चाण्डाली का पति कहलाना है। अगिरा स्मृति में लिखा है —

पितुर्वरमनि या कन्या रजन्तु समुपगृशेत् ।

भ्रूणहन्ता पितुन्मन्याः, सा कन्या वृषलीन्मृता ॥

माता चैव पिता चैव ... ॥

उद्धेद यन्तुता कन्याम् ... असमाप्या ह्यपाक्ये ॥

अर्थात् पिता के घर में जो रजस्वला हो जाती है उसके पिता को गर्भहत्या का पाप लगता है और वह कन्या चाण्डाली कहलानी है। बृहद्दयमस्मृति में ऊपर के ही श्लोकों के अतिरिक्त लिखा है:—

प्राप्ते द्वादशे व, कन्यायां न प्रयच्छति ।

मासि मास रजस्तन्या, पिता पिबति शोणितम् ॥

अर्थात् १२ वर्ष वर्ष शुरू होने पर भी जो पिता वन्या का विवाह नहीं कराता वह उसके रज और रुधिर का प्रतिमास पीता है। लघ्वाश्वलायन स्मृति में लिखा है:—

रजस्वला च या कन्या, यदि स्याद्विवाहिता ।

वृषली वार्षलेय स्यात् जातस्तन्यां स चैव हि ॥

अर्थात् रजस्वला होने पर भी जो अविवाहित कन्या हो वह चाण्डाली कहलानी है और उसके पुत्र को चाण्डाली पुत्र कहते हैं।

इसोप्रकार के बचन अन्य अनेक स्मृतियों में पाये जाते हैं। मनुस्मृति में भी जहाँ 'त्रिणिवर्षाण्यु-
र्वाचते कुमार्थुं तुमसो सती । ऊर्ध्वं तुकालादेतस्माद्
विन्देत सदृशं पतिम् ॥ इत्यादि युवावस्था में विवाहके सूचक श्लोक हैं वहाँ उनके विरुद्ध श्लोक भी वर्तमान मनुस्मृति में पाये जाते हैं। इस विषय के

विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नहीं कि इनमें से कौनसे ब्राह्म और कौनसे अप्राह्म वा प्रक्षिप्त हैं। निस्सन्देह वेदविरुद्ध बाल विवाह प्रतिपादक श्लोक अप्राह्म और प्रक्षिप्त हैं क्योंकि—“वेदार्थोपनिषंग-
त्वात् प्रामाण्यं हि मनोः स्मृतम् । (बृहस्पति)
अर्थात् वेदार्थ के अनुकूल होने के ही कारण मनु की प्रामाणिकता है।



स०प० शिवशंकर शर्मा काव्यताम्र ।

सारंश यह है कि वेद और अनेक स्मृति बचनों का स्पष्ट विरोध इस विवाह जैसे अर्थावश्यक विषयों में दृष्टिगोचर होता है। ऋषि दयानन्द ने वेदों की स्वतः प्रामाण्यता और अन्य सब ग्रन्थों की परत-प्रामाण्यता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए ऐसे सब बचनों की अप्रामाणिकता और निस्सारता को घोषित कर दिया यह साइस अन्य अनेक सुप्रसिद्ध आचार्यों को नहीं हुआ। जानि-भेद अस्पृश्वता मूर्तिपूजा आदि सब विषयों के भी इसी तरह है। इसीलिए ऋषि दयानन्द को इस युग का सर्वोत्तम वेदोद्धारक मानना सर्वथा संगत है और इससे किसी को भी इन्कार नहीं हो सकता। ऐसे वेदोद्धारक ऋषि के अनुगामी हम आर्यों को अपना जीवन पूर्णतया वैदिक बनाना चाहिये, तथा सभ्या स्वाध्यायादि नियमों के पालन में सर्वदा तत्पर रहना चाहिये।

क्रान्तिकारी दयानन्द ।

[ले०—श्री रामकृपालसिंह 'राकेश']

कन्यो आज आर्यगण ले प्रदीप, उर में क्याकुल—से लिए पीर,
नेत्रों में भर कर तरल नीर हैं डूँड रहे किसको अधीर ?

जिसका सहचर था साम्यवाद;

बति उदासीन अति निर्विकार, जीवन विप्लवमय क्रान्तिवाद ।

ॐ

ॐ

ॐ

अति कटु कुरीतियों से अशान्त, तम—ताम पूर्ण था प्रान्त—प्रान्त,
ले कुम्भकरण का वेहोशी, सोया था भारत शान्त—कलान्त ।

हूँ हूँ चिल्लाते अघ—उलूक,

धन लूट लिये बटमार, दस्यु, पर ये सब नीरव भन्त मूक ।

ॐ

ॐ

ॐ

इतने में प्राची गगन मध्य, भेदता अखिल सदियों का तम,
गुदु मन्द—मन्ध फलमल—फलमल, निकला रवि—सा चमचम—चमचम ।

कर अन्यायी का रुधिर पान;
आलोक रूप बनकर विहान, सींचा मुरभाषा विकल प्राण ।

ॐ

ॐ

ॐ

तू था संहेश ' हे सर्जनाश ' तू ने उचारा अमर—मन्त्र,
हाँ गये एक पल में निरोह—निर्दोष—निबल—निर्भय—स्वतन्त्र ।

तू था लेनिन बोना, फमाद,

जल—निधि में डूबी महाशान्ति, सुन तव प्रलयंकर तिहनाद ।

ॐ

ॐ

ॐ

था क्रूर केशरी अभय मत्त, तू क्रुद्ध रगा था रक्त रग,
रलितों का दारुण व्यथा देख, तू ने कर डाला नियम—भंग ।

बन शिव—शकर कर गरल पान,
निज तृषा बुझा करके कराल, दे दिया जगत को अभय दान ।

ॐ

ॐ

ॐ

ले चमा—डाँड़, विकराल लाल, वैदिक—कृपाण को मार—मार,
पल में खल—दलको मार—मार, कर दिया भस्म—सा चार—चार ।

मच गई सृष्टि में उथल—पुथल,

कर दिया विकम्पित अवनि व्योम, भागे सब शत्रु दहल—दहल ।

ॐ

ॐ

ॐ

फिर कर्णसिंह का खङ्ग छीन, कर खण्ड—खण्ड पल में पछाड़,
पापी का तू ने गर्व खर्ब, कर दिया रणक्षय में दहाड़ ।

था देव—दुत तू हे अगाध,

फंटकाकीर्ण हिम—शैल शृङ्ग में, विचरा करते थे अवाध ।

तेरे विशाल उर—द्वयोम बीच, चमकी विद्युत सी ज्योति एक,
कम्पित विम्बित हो गये अमर, नर, नाग, दनुज, किन्नर अनेक ।
मिट गई विरव की सकल भ्रान्ति;
जल गये 'तत्त्वमसि, अहम्, दम्भ', पेसी फैलाई लाल क्रान्ति ।

卐

卐

मुष्ण—मण्डित—मन्दिर विशाल, या पर्यारचित जर्जर कुटीर,
तनु जीर्ण—शीर्ण दुर्बल फकीर, या भीमकाय सुन्दर अमीर ।
सब थे समान थल क्या निकुंज ।
क्या मञ्जुल—वञ्जुल—हरित—कुञ्ज, या स्रस्त—ध्वस्त जड़ शिला—पुञ्ज ।

卐

卐

卐

फिर हे प्रचण्ड ! तू चिर प्रकाश ! उफ ! किधर जा छिपे कर निराश,
नक्षत्र जहाँ करते बिलास ! रहने क्या उसके आस पास ?
हे जहाँ सत्य—सौरभ—उड़ान,
कोमल—कविवमय—सामगान, क्या वहीं बैठ कर रहे ध्यान !

卐

卐

卐

हैं वहाँ भाङ्गियां या मुकुलित, मंजरित लताओं का दुकूल ?
मरु—रजकण—मिश्रित—तप्त—पवन या मलयानिल वः मृदुल धूल ?
अथवा कालिन्दी—कलित—कूल,
चढ़ तरु—कदम्ब—दिङोले पर, अलि प्रेम-मत्त होरहे भूल ?

卐

卐

卐

या गिरि—गह्वर में गुर्क बने, सुलभाते वैदिक—विषम—फान ?
अब ध्यान भङ्गकर जाग अरे, जागो कण—कण में भर उफान !
जागो जीवन के दिव्य—ज्ञान !!
जागो अतिवर ! जागो महान् !! जागो ! हे जागो !! सावधान !!

卐

卐

卐

तू अनाद्यन्त—अथ—अनाचार, अम्बुधि—मर्दन—मन्दर—महान् ,
या विषम—विषय विषवर विषाद, के लिए उरग—अरि—उपवान ।
भीषण विमर्श ! भय ! क्रान्तिगात !!
हे अरिमर्दन, घन वज्रनाद ! हे महाकाल——दुर्गम——निशान !!

卐

卐

卐

तू या मृत्युञ्जय महाजटिल, द्रुत वहिन-बाढ़ था अज, अनन्व,
तेरा शम—दम—'डम' डमरुनाद, सुन धर्रा उठते दिगदिगन्त !
दुर्जेय मार को दिया मार;
हे महारौद्र शत नमस्कार ! कवि करता सौ सौ नमस्कार !

卐

卐

卐

ब्रह्मसूत्र का मोक्षप्रकरण

(लेखक—श्री प० मुक्तिरामजी उपाध्याय)



वेदान्त दर्शन में चतुर्थाध्याय के चतुर्थपाद में महर्षि व्यास ने मुक्ति के सम्बन्ध में कुछ विशेषताओं का बतलाना आरम्भ किया है। उन विशेषताओं के लिये जिन उपनिषद् वाक्यों को महर्षि व्यास ने आधार बनाया है उनका व्याख्यान श्री शङ्कराचार्य जी ने अपने भाष्य में किया है। हम इस लेख में उन सूत्रों और वाक्यों का उल्लेख कर, उनमें, मुक्ति के सम्बन्ध में, महर्षि व्यासन्द के प्रदर्शित विचारों की झलक, बिना किसी प्रकार की खोजतानी के, झिल्लाने का यत्न करेंगे।

महर्षि व्यास की निर्दिष्ट विशेषताओं में से एक यह है—

“मुक्ति नवीन वस्तु नहीं पुरानी है”

इस शीर्षक को सिद्ध करने की आवश्यकता का जन्म इस संशय के आधार पर हुआ है कि—जिस प्रकार उत्कृष्ट पुण्य कर्मों का फल मनुष्य को स्वर्ग जन्मान् उत्पन्न सुख मिलता है, और वह एक नवीन वस्तु है, जो कि उस मनुष्य को उस सुख की प्राप्ति से पहिले उपलब्ध न थी। क्या मुक्ति भी मनुष्य को इसी प्रकार की कोई नवीन वस्तु मिलती है अथवा किसी प्राप्त वस्तु की ही प्राप्ति का नाम मुक्ति है ?

इस संशय का निर्णय व्यास जी ने छान्दाग्य उपनिषद् का यह उद्धरण देकर आरम्भ किया है—
एवमवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं वशो तरुपसम्पद्यत्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते।

इस प्रकार यह निर्मल तत्त्व, इस शरीर से वृथक होकर, सर्वोत्तम प्रकाश के अत्यन्त समीप पहुँच कर, अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है।

छा० ८—१२—३

व्यास जी का सूत्र है—

“सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्”

प्र० सू० ४-४-१

ऊपर लिखे छान्दाग्य के वाक्य में अभिनिष्पद्यते पद आया है, इस पद का अर्थ उत्पत्ति भी किंवा जा सकता है, और उत्पन्न होने वाली वस्तु आत्मा के लिए नवीन हो होगी, इस लिए मुक्ति कोई अभिनिष्पद्य वस्तु ही सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त अन्य फलों की भाँति मुक्ति भी एक फल है और अन्य फल सभी अपनी उत्पत्ति से पहिले आत्मा को अप्राप्त ही होते हैं। इस लिए इस दूसरी युक्ति से भी अप्राप्त की प्राप्ति को ही मुक्ति कह सकते हैं। व्यास जी ने अपने सूत्र में इन शब्दों का समाधान किंवा उनका प्रथम वाक्य है “सम्पद्याविर्भावः” सम्पत्ति या अभिनिष्पत्ति का अर्थ यहाँ उत्पत्ति नहीं प्रत्युत, आविर्भाव (प्रकट होना) है। आत्मा का वास्तविक रूप जो पहिले यत्न विज्ञेय आदि के कारण अप्रकट था, वह उन सबके निवृत्त हो जाने पर प्रथम प्रकट हो जाता है। आत्मा को इसी अवस्था विशेष को ही मुक्ति कहते हैं अपने इस विचार की पुष्टि के लिए महर्षि व्यास ने हेतु दिया है “स्वेनशब्दात्” (स्वशब्द के कारण)। तदर्थमे यह है कि छान्दाग्य के प्रकृत प्रबन्ध में आए हुए “स्वेन रूपेण” वाक्य का अर्थ है “अपने स्वरूप से” सम्पन्न हो जाता है। और अपना स्वरूप आत्मा को सदा प्राप्त ही है फिर उसकी उत्पत्ति वा प्राप्ति कैसी, इस लिये स्वच्छ सिद्ध है कि छान्दाग्य के “अभिनिष्पद्यते” शब्द का अर्थ उत्पन्न होना न प्रकट होना है।

इस सूत्र के भाष्य में आचार्य शंकर ने भी अपने ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं। इस प्रकार का आगे चलाने से पहिले हम पाठकों का ध्यान,

इसी प्रसंग से सम्बन्ध रखने वाली मुक्ति की पुनरावृत्ति की ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

छान्दोग्य पनिषद्, महर्षि व्यास, और आचार्य शंकर यहा एक स्वर से मान रहे हैं कि मुक्ति में जीव अपने स्वरूप से सम्पन्न हो जाता है। यह जानना भी आवश्यक है, कि उसका वह अपना स्वरूप कौनसा है? यहा हम छान्दोग्य के शब्दों में ही आत्मा के स्वरूप का वर्णन करना चाहते हैं। इसी इन्द्र विरोचन आख्यान के आरम्भ में छान्दोग्य में आया है -

“य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्यु विरोकोऽविजितसाऽपिपास सत्यकाम सत्य सकृत्स्य”

आत्मा पाप, बुद्धाया मृत्यु, शोक, भूल, और व्यास से रहित है, उसकी कामनाएँ और सकृत्स्य सत्य होते हैं। छा० ८-७-१। यह है आत्मा का अपना रूप। किसी वस्तु के अपने स्वरूप का लक्षण होता है उसका अपना स्वभाव। वह स्वभाव किसी अन्य जाति की वस्तु के साथ मिलने से विकृत भी हो जाया करता है। और उस ससर्ग के दूर हो जाने पर फिर अपने वास्तविक रूप को भी प्राप्त कर लेता है। उदाहरण के लिये ससार में भौतिक प्रकाश के ही अनेक रूपों का देख लेना पर्याप्त होगा। अग्नि जब लकड़ी के रूप में है। उसका प्रकाश और गर्मी दोनों ही जल और पृथ्वी के सम्बन्ध से अब प्रकट नहीं है। परन्तु जब तक जल और पृथ्वी के साथ वह नहीं मिला था, तब तक उसमें वे गुण विद्यमान थे। और जब उसे किसी दूसरे अग्नि के सम्बन्ध से जल और पृथ्वी से पृथक् कर दिया जावेगा, वे गुण फिर उसके अन्दर प्रकट देखने को मिल सकेंगे। इस दृष्टान्त से हम इस परिष्कार पर पहुँचते हैं, कि जो गुण जिस पदार्थ के स्वभाव के नाम से पुकारे जाते हैं, वह उन गुणों के विकृत होने से पहिले और पीछे भी उन गुणों से सम्पन्न देखा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् में भी इस विषय को स्पष्ट करने के लिए ऐसे ही भौतिक दृष्टान्तों का उल्लेख किया है। इसी आख्यान में आया है—

“अशरीरो वायुरभविद्य तूस्तनयित्पुरशरीरास्येतानि तथ्येतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुप-सम्पद्य स्वेनरूपेण अभिनिष्पद्यन्ते”।

वायु वाष्प, बिजली और मेघ यह सब शरीर से रहित है। ये इस आकाश से उठ कर और परम ज्योति का प्राप्त कर अपने अपने स्वरूप में परिणत हो जाते हैं। छा० ८-११-२।

जिस रूप में अब हमारे सामने वायु, बिजली, मेघ आदि विद्यमान हैं वह ही इनका शरीर है। परन्तु वस्तुतः इनका यह स्वाभाविक स्वरूप इनके इस स्थूल शरीर से रहित है, सूक्ष्म है। और इसी लिए उपनिषद् में इन्हे अशरीर कहा है। भगवान् जब सृष्टि का सहार करते हैं, तो वह सब, कई पदार्थों के मल से बने हुए अपने इस विकृत रूप को छोड़ देते हैं, और फिर उसी प्राचीन स्वाभाविक सूक्ष्म रूप में परिणत होकर उस व्यापक शक्ति परम ज्योति भगवान् की गोद में रहते हैं। इस प्रकार जावात्मा का भी जो स्वरूप छान्दोग्य में कहा गया है वह मुक्ति के समय तो प्रकट होता है, परन्तु मुक्ति से प्रथम उस में वह रूप जो लोग मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं मानते, उनके मत में कभी भी न था। क्याकि वे लोग जीव को अनादि काल से ही बन्धन में मानते हैं, और बन्धन के समय उसका वास्तविक रूप प्रकट नहीं हो सकता।

अब पाठक गम्भीर दृष्टि से सोचें कि जो-धर्म किसी धर्म में कभी भी नहीं रहा, उसे उसका अपना रूप या स्वभाव किस प्रकार माना जा सकता है। प्रत्युत इस के विपरीत मानना यह पड़ेगा, कि जो धर्म आत्मा में अनादि काल से चला आता है वह ही उस का अपना रूप है स्वभाव है। और अब (मुक्ति के समय, जा दोनों से रहित रूप उस का कहा गया है उसका स्वाभाविक धर्म नहीं कृत्रिम होगा। वह उस का प्राचीन नहीं, नवीन रूप होगा। यह प्राप्य वस्तु की नहीं, अप्राप्त की हो प्राप्ति कही जावेगी। उसे प्रकट हाने वाला न कह कर उत्पन्न होने वाला ही रूप कहना पड़ेगा। और जिसकी उत्पत्ति होती है नियमानुसार उस का नाश भी होना ही चाहिए। इस लिए जीव के इस नये रूप का नाश भी मानना

पड़ जावेगा। और इस रूप का नाश ही मुक्ति का नाश है। फलतः बचने का उपाय करने पर भी मुक्ति की अनित्यता का भूत फिर भी पिछड़ छोड़ता ही। तब क्या छान्दोग्य का यह प्रकरण और व्यास जी का यह मूल संगत नहीं है? संगत हैं, और दोनों ही संगत हैं। परन्तु उन के अभिप्राय को न समझ कर भ्रम से अर्संगति का भान हो रहा है। इस प्रकरण को संगत करने का एक मात्र उपाय मुक्ति से पुनरावृत्ति का स्वीकार है। संसार यात्रा में योनियों के अन्दर भ्रमण करता हुआ जीव अनेक प्राकृतिक दोषों से अस्मान्त हो जाता है। इस अवस्था में इस का वास्तविक रूप उन दोषों से आच्छादित होने के कारण स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु यह बात नहीं है कि इसका वह वास्तविक रूप इस के अन्दर कभी प्रकाश में आया ही न हो। सृष्टि चली आरही है। और इस अपरिमित काल में जीवात्मा अनेक बार मुक्त और बद्ध हो चुका है। और जब जब यह मुक्त हुआ, प्रकृति से प्रथक हुआ, इस का वह अपना स्वाभाविक रूप प्रकट होता रहा। इसलिए आत्मा में उसके ये धर्म इस संसारिक अस्थिति से पहले प्रकट थे, और इस के पश्चात् जब मुक्ति होगी फिर भी प्रकट होंगे। बीच में जो क्षण प्रतीत होते हैं, वे प्रकृति के सम्बन्ध से हैं। इस के अपने नहीं प्रकृति के हैं। इसका अपना स्वरूप बही है जा पहली मुक्ति के समय था और इससे आगे की मुक्ति के समय होगा और यह अपना रूप इसे तब ही प्राप्त होगा, जब प्रकृति की गोष् से निकल कर उस परम ज्योति भगवान् की गोष् में पहुँचेगा। इस प्रकार छान्दोग्य का यह प्रकरण और व्यास जी का सूत्र 'दानो ही स्वरस संगत हैं।'

अपिदधानन्द भी जीव का मुक्ति से लौटना मानते हैं। इसलिए यह प्रकरण उनके विचारों का पोषक ही है, विरोधी नहीं। यहाँ पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि व्यासजी का यह प्रकरण यदि मुक्ति से पुनरावृत्ति के अनुकूल है तो इस प्रकरण के अन्त में उन्होंने इस पुनरावृत्ति का निषेध क्यों किया? उनमें का यह सूत्र है "अनावृत्ति शब्दादानावृत्ति शब्दात्" प्रक. सू. ४।४।२२

इसका तात्पर्य यह है कि शब्द प्रमाण के आधार पर मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं होती। वह शब्द प्रमाण जिस का कि व्यास जी अपने इस सूत्र में संकेत कर रहे हैं छान्दोग्य के इसी आख्यान के अन्त में आता है, हम यहाँ सम्पूर्ण को ही उद्धृत किये देते हैं। पाठक इसे पढ़ कर अपना सम्मति स्थिर कर लें। "स खल्वेव वर्तयन् यावदायुष ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते"

इस प्रकार आत्म-विन्तन में लगा हुआ पुरुष, सृष्टि की आयुपर्यन्त ब्रह्मलोक में रहता है। फिर नहीं लौटता, फिर नहीं लौटता। छ. ८।१५१

इस प्रकरण में पढ़ा गया "आयुपर्यन्त" शब्द सृष्टि की आयु का बोधक है, इस विषय का स्पष्टीकरण छान्दोग्य में अन्यत्र किया गया है। वहाँ लिखा है "एतेन प्रतिपद्यमाना इम मानवमावर्त्त नावर्त्तन्ते" अर्थात्

इस मार्ग से गये हुए इस मानव चक्र तक नहीं लौटते।

यहां मानव चक्र शब्द सृष्टि की आयु का बोधक स्पष्ट है। इसलिए ऋषि दयानन्द का यह सिद्धान्त कि "एक सृष्टि को आयुपर्यन्त मुक्ति का आनन्द भाग कर जीव फिर कर्म करने के लिए संसार में लौट आता है", वेदान्त के इस प्रकरण से स्पष्ट सिद्ध है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि ब्रह्मलोक तृतीयदिव, तृतीय ज्योति, और तृतीय धाम ये सब शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। और तृतीयधाम शब्द यजुर्वेद में मोक्ष अर्थ में आया है, इस लिये उस के पर्यावाचक इन सब शब्दों को भी मोक्ष अर्थ के प्रतिपादक ही मानना पड़ेगा। तृतीय धाम का अर्थ मोक्ष ही है, इस विषय को प्रमाणित करने के लिए यजुर्वेद के मन्त्र का भाग पढ़िए।

"यत्र देवाभ्युत्पन्नानि शान्तिस्तृतीये धामन्नन्ध्वैरयन्त"।

जिस तृतीयधाम में अमृत (मोक्ष के आनन्द) का उपभोग करते हुए देवता लोग (मुक्त पुरुष) रहते हैं। इस मन्त्र में अमृत शब्द पढ़ा गया है और अमृत शब्द मुक्ति के आनन्द से भिन्न और किसी अर्थ में आता नहीं। इसलिए यह अर्थ सुतरां सिद्ध है कि

मन्त्रों के ऋषि

(लेखक—श्री प-भियर नजी आर्ष वैदिक रिसर्चस्कालर)



न्त्रों के ऋषियों के सम्बन्ध में अभी तक 'कर्त्तृवाद' और 'द्रष्टृवाद' नाम से वा ही प्रसिद्ध पत्त है। ऐतिहासिक विद्वानों का कर्त्तृवाद पत्त है और इसके लिये उनके निम्न दा प्रबल प्रमाण है—

१—वैदिक ग्रन्थों में ऋषियों को 'मन्त्रकृत्' कहा है। इसलिये

ऋषि मन्त्रों के कर्त्ता हैं।

२—मन्त्रों में उन उन ऋषियों के कही कही नाम आ जाते हैं। इससे 'कर्त्तृवाद' पत्त ही ठीक सिद्ध होता है।

ऋषियों को 'मन्त्रकृत्' (मन्त्र बनाने वाले) प्रतिपादक विशेष बचन—

"कर्त्तृवाद पत्त—यस्य वाक्य स ऋषि" (ऋग्वेद-द्वितीया बृहत्सर्वानुक्रमणी १।२।४)

जिसका वाक्य होता है वही उसका ऋषि है।

विवेचन—"यस्य वाक्य स ऋषि" यह उनका बचन द्वयार्थक होने से 'कर्त्तृवाद' पत्त के सिद्ध करने में सन्दिग्ध प्रमाण है। अत एव व्यभिचारी या अनेकान्तिक हेतु होने के कारण साधक नहीं हो सकता, क्यों कि साक्षान्त तो इस बचन में यह बात प्रतिपादित

तृतीयधाम, मुक्ति का ही दूसरा नाम है। इसलिप ऊपर लिखे ये सब ही शब्द मुक्ति के बांधक हैं। और मुक्ति की अबधि है एक ऋषि की आयु का परिमाण। महर्षि व्यास ने भी इस सूत्र में मुक्ति से न लौटन का निर्देश, एक ऋषि की अबधि तक ही किया है। इसके बाद लौटने में उन्हें भी कोई विप्रतिपत्ति नहीं है, और थह ही ऋषिद्वयान्त का मत है।

* यहाँ लेखक का भ्रम प्रतीत होता है। मुक्ति की अबधि एक ऋषि की आयु नहीं अपितु ३६००० ऋषि और प्रलय के बराबर है।—सम्पादक

है ही नहीं कि ऋषि 'मन्त्रकृत्' होता है। प्रत्युत 'निमग्न वाक्य हो वही ऋषि है' ऐसा कहा है। यदा सन्देह होता है कि स्वामि-सम्बन्ध से या कर्त्तृ-सम्बन्ध से। स्वामि सम्बन्ध से तो द्रष्टृवाद का साधक होगा और कर्त्तृ-सम्बन्ध से कर्त्तृवाद का। एवं परस्पर विरुद्ध के उभयार्थ साधक प्रमाण प्रामाणिक नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त जब तक कर्त्तृवाद ही अन्य प्रमाणों से सिद्ध न हो जावे तब तक 'यस्य वाक्यं स ऋषि' इस बचन में कर्त्तृ-सम्बन्ध दु साध्य या साध्यसम ही है। हाँ, स्वामि सम्बन्ध तो 'देवदत्तस्य गृहं यज्ञदत्तस्य गौरितिवत्' अनाथान ही सिद्ध हो रहा है। तथा दर्शन ज्ञान द्वारा किसी वाक्य विद्या या शास्त्र पर अधिकार होना सम्भव है ही। एवं स्वामिसम्बन्ध के शोचन में शास्त्र-प्रमाण भी है—

"ऋषिभ्यामन्त्रपतिभ्यो नमः" (ऐ० आरण्यक १।१।१)

इस लिये यस्य वाक्यं स ऋषि' यह बचन कर्त्तृ-वाद को सिद्ध करने में प्रमाण न रहा, कोई अन्य प्रमाण ही इसके सम्बन्ध में होना चाहिये।

(क) "कारुहर्मसि कर्त्ता स्तोमानाम्" (निरुक्त ६।३)

(ख) "ऋये मन्त्रकृता स्तोमैः" (ऋ० ६।१।१।२)

(ग) "भूमिमुपसृषेदरन इयं नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो नमो वो अस्तु" (ऐ० आरण्यक १।१।१)

इन बचनों से भी ऋषियों का कर्त्तृवाद सिद्ध किया जाता है।

विवेचन—उपयुक्त (क, ख, ग) बचनों में आद्य 'कृ' धातु के प्रयोगों के आधार पर ही ऐतिहासिक विद्वानों का कर्त्तृवाद पत्त मान लेना उचित नहीं जंचता। कारण कि वह 'कृ' धातु अनेकार्थ है। देखिये इसके सम्बन्ध में महाभाष्य व्याकरण के निम्न बचन

“करोतिरभूतप्रादुर्भावे घट्टो निर्मलीकरणे चापि वर्तते। पृष्ठं कुरु पादौ कुरु। उन्मृदानेति गम्यते। निक्षेपणे चापि वर्तते। कटे कुरु घटे कुरु अश्मान-मभिः कुरु स्थापयेति गम्यते ॥”

महाभाष्य व्याकरण १।३।१।

इस प्रमाण में ‘कृ’ धातु अनेकार्थक सिद्ध होजाने पर कर्तृ वाद पक्ष को साधने के लिये “कारुहमस्मि” आदि प्रयोगों में ‘कृ’ धातु का ‘करना’ अर्थ ही है यह कथन साध्य कोटि में आगया जो अन्य प्रमाणापेक्षित हो जाने से स्वयं प्रामाणिक न रहा। इसके अतिरिक्त उक्त वचनों को भी जब विचार से देखते हैं तब यह बात स्पष्ट ही होजाती है कि उक्त वचन कर्तृ वाद के साधक नहीं है। देखिये—

(क) “कर्ता स्तोमानाम्” (निरुक्त ० ६।५) का “स्तोमो मन्त्रो का बनाने वाला” अर्थ हो ऐसा नहीं है। निरुक्तकार ने ‘कर्ता’ शब्द कारु का सारूप्यनुवाद किया है प्रत्युत ‘कर्ता’ स्तोमानाम् का अर्थ ‘प्रयोक्ता स्तुतानाम्’ स्तुतियों का प्रयोग करने वाला है। यह बात दुर्गाचार्य के भाष्य से भी स्पष्ट होजाती है।

“स्तोमानां कर्ता स्तोमकर्ता स्तुतीनां प्रयोक्ता यज्ञ-कर्मणि होतृ त्वेनावस्थितो वहिर्वा यज्ञान् प्रियवक्ता लौकिकारिभवांचोयुक्तिभिर्जीविकापरतया” (निरुक्त ५।६ दुर्गाचार्य)

(ख) “ऋषे मन्त्र कर्ता स्तोमै” (ऋ० ६।११४। ६२) में मन्त्रकृताम् शब्द का विशेष्य ‘ऋषीणाम्’ शब्द इस मन्त्र या सम्पूर्ण सूक्त में कही नहीं है, फिर ‘मन्त्र कृताम्’ को ऋषियों का विशेषण बनाना उचित नहीं है। किन्तु यहाँ भी पूर्व की भाँति ‘मन्त्रकृताम्’ का अर्थ ‘मन्त्रप्रयोक्ताणाम् ऋत्विजाम्’ मन्त्रों का प्रयोग करने वाले ऋत्विजों के ही है।

(ग) “ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः” (नि० आरण्यक १।१।१) में भी ‘कृ’ धातु बनाने अर्थ में नहीं है यह बात इसके सहयोगी ‘मन्त्रपतिभ्यः’ शब्द से स्पष्ट होजाती है। मन्त्रबनाने वालों के साथ मन्त्रपति का विशेषण लगाना निरर्थक है। हाँ, ‘मन्त्र-कृद्भ्यो मन्त्राध्येतृभ्यस्तथा मन्त्रपतिभ्यो मन्त्रद्रष्टृ-भ्यः’ अर्थात् मन्त्रों का अध्ययन करने वाले तथा

तदर्थों के द्रष्टा ऋषियों के लिये नमस्कार हो ऐसा सुसंगत है। एवं यहाँ ‘कृ’ धातु पढ़ने अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस बात को स्पष्ट समझने के लिये निम्न प्रमाण दे देते हैं—

“परचादनेरचत्वार्यासनान्युप कल्पयति। तेषूप-निविशन्ति पुरस्तात्प्रत्य ङमुखो वाना परचात् प्राङ्मुख’ प्रतिप्रदीता दातुरुत्तरत प्रत्यङ्मुखी कन्या दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकार’ (वाराह गुह्य-सूत्र)

यहाँ विवाह संस्कार में वेदि के दक्षिण भाग में उतर को मुख करके मन्त्र पढ़ने वाले को बैठने का आदेश है। ‘मन्त्रकार’ का अर्थ मन्त्र पढ़ने वाला है यह बात सुस्पष्ट है। इससे ‘मन्त्रकार’ या ‘मन्त्रकृत्’ शब्द को कहीं प्रयुक्त देखकर मन्त्र बनाने वाला अर्थ समझ कर कर्तृ वाद के संदेह में पड़ जाना ठीक नहीं है, किन्तु मन्त्रकार’ या ‘मन्त्रकृत्, का अर्थ ‘मन्त्र पढ़ने वाले’ का है। अस्तु,

कर्तृ वादपक्ष के प्रधान वचनों पर विचार किया जा चुका और अन्त में यह परिणाम निकला कि उपर्युक्त ‘कर्ता स्तोमानाम्’ आदि वचनों के आधार पर कर्तृ वाद पक्ष स्थापित करना ठीक नहीं है। हाँ इसके प्रतिकूल ‘द्रष्टृवाद’ पक्ष का प्रतिपादन और स्वीकार तो वैदिक ग्रंथों में शतशः स्थलों पर उपलब्ध होता है। दो चार स्थल यहाँ निदर्शन मात्र ही रख देते हैं। यथा—

“त्रिश्वामित्र सत्तृतीयं मण्डलमपश्यत् ॥”

(ऋग्वेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणा । १६)

“इन्द्राय सोममिति तृचोऽथर्वाऽपश्यत् ॥”

(अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणी । अथ ६ ११)

ऋषिर्दर्शनान् स्तोमान् ददर्शत्स्योपमन्यव ॥”

तत्रनेनांस्तपश्यमानान् ब्रह्मस्वयम्भुवभ्यानर्षन् ॥

त ऋषयोऽमवंसन्तृपीणामृषित्वमिति विज्ञायते ॥”

(निरुक्त । २।११)

“ऋषिर्दर्शनान् पश्यति ह्यसौ सूक्तमान्ध्वर्यान् ॥

ब्रह्मयजु सामाख्यं स्वयम्भु-ऋकृतकमभ्यानर्षदभ्या-गच्छत् ॥”

(दुर्गाचार्य.)

उपर्युक्त वचनों में द्रष्टृवादपक्ष का स्वीकार किया

है। निरुक्त के “स्वयम्भु ब्रह्म” इस वचन से तो वेद अगौकथेय ही सिद्ध होता है। दुर्गाचार्य ने भी “ब्रह्म-ऋग्यजु सामाख्यं स्वयम्भु- अकृतकम्” से उक्त अभि-प्राय सिद्ध किया है। इससे कर्तृवाद पक्ष निराकृत ही हो जाता है।

आचार्य देवपाल ने भी इसी विषय में पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष द्वारा विचार किया है। † उन्होंने लौगा-त्ति गृह्यसूत्र के भाष्य में “ओ भूः। ओ भुव ओ स्व। ओ मह। ओ जन। ओ तपः। ओ सत्यम्।” इन सातों मन्त्रों के ऋषि कौन हैं यह विचार करने के लिये प्रथम शौनकाचार्य का वचन “ऋषिगण्य प्रजापति” दिया है। पुनः एक और आचार्य का निम्न वचन भी उद्धृत किया है—

विश्वामित्रो जमदग्नि भरद्वाजोऽथगौतम।

ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च कश्यपश्च यथा क्रमम् ॥

इस वचन में विश्वामित्र आदि ऋषि यथाक्रम बतलाये हैं। अब उक्त ‘ओ भू’ आदि के ऋषियों के सम्बन्ध में आचार्य देवपाल के सम्मुख दो पक्षों की एक विचारणीय समस्या उपस्थित हो गई है, इसका निर्णय वे करते हैं कि “युज्यन्ते चैकत्रानेकं द्रष्टारः कालभेदेन युगपच्च” काल भेद या एकही साथ भी एक मंत्र के द्रष्टा ऋषि हो सकते हैं। आचार्य देवपाल के इस कथन से तो द्रष्टृवाद ही सिद्ध होता है। कर्तृ-वाद में तो यह समाधान सगत ही नहीं हो सकता।

(२) कर्तृवादपक्ष—मन्त्रों के जो जो ऋषि हैं उनका कचित्-कचित् मन्त्रों में नाम आ जाता है जो कि कर्तृवाद में ही सम्भव होने से कर्तृवाद पक्ष का साधक है क्योंकि कर्ता अपने नाम को अपने बनाये मन्त्र में डाल सकता है अतः मन्त्रों के ऋषियों का कर्तृवाद पक्ष ही मानना ठीक है।

विवेचन—मन्त्रों में कचित् आये हुये नामों को देख कर यदि ऋषियों को मन्त्रों के कर्ता मान लिया जाये तो सैकड़ों भयंकर आपत्तियाँ खड़ी हो जाती हैं। यहां दो चार ही उदाहरण देते हैं—

† आचार्य देवपाल सम्बन्धी विचार श्री प० विरचनार्थजी ने वैदिक विज्ञान में दिखाये थे।

(१) कचित्-कचित् मन्त्रों के ऋषि नदी, पर्वत सूर्यचक्र, कूर्म, मत्स्य, शङ्ख, कपीत, श्येन, ऋषभ, हैं। क्या ये भी कभी मन्त्रों के कर्ता हो सकते हैं।

(२) कहीं कहीं पर क्रियारूप ऋषि है। यथा—ऋ० १०।१९४११, ५-८)। का “अग्निवरुण सोमानां निहव-अग्नि, वरुण, सोम का आमन्त्रण” यहा ऋषि हैं। साम० पू० ५।२।२।६ का “वाजिना स्तुति आदि क्रियाएं” भी कभी मन्त्र बना सकती हैं ?

(३) कचित्-कचित् मन्त्रों में मनु या वी वाङ्म-नीय भावनाओं के वाचक शब्द ऋषि हैं। यथा—श्रद्धाऋषि—“श्रद्धयाग्नि समिध्यते श्रद्धया हूतेहवि श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामि ॥” (ऋ० १० १५१।१)

स्वस्ति ऋषि—“स्वन्तये वायुमुपत्रामहै” (ऋ० ५ ५१।१२)

इस प्रकार श्रद्धा आदि मानवीय भावनाये ऋषि हैं। कर्तृवाद पक्ष में इनका ऋषि होना किस प्रकार सम्भव है ?

(४) “हिरण्यगर्भ समवर्तताये” ऋ० १०।१२१।१) का हिरण्यगर्भ ऋषि है किन्तु यहाँ हिर-ण्यगर्भ को विरच का निर्माता तथा धारक कहा है और मृष्टिकं पहिले वर्तमान था ऐसा भी दर्शाया है। कर्तृवाद में हिरण्यगर्भ नामक कोई ऐसा मनुष्य हो सकता है। और वह ऐसा असम्भव साहस कर सकता है ?

(५) संदिान्तर में ऋषि भेद मिलता है। कहीं कहीं ऋषियों का विकल्प भी है यह ऋषि है या वह ऋषि हैं। कचित्-कचित् एक ही मन्त्र के अनेक ऋषि भी है ऐसे ही बहुत सी आपत्तियाँ आ पड़ती हैं इनका यहा उल्लेख करना कठिन है।

इस प्रकार आपत्तियों के कारण कर्तृवाद को मानने में किसी विचारशील विद्वान को साहस नहीं हो सकता और नहीं कर्तृवाद पक्ष में इनका कोई समाधान हो सकता है। द्रष्टृवाद में इनका सहज में समाधान हो जाता है क्योंकि तत्तद्विषय या तत्तद्विद्या के प्रतिपादक मन्त्रों के द्रष्टा उस उपाधिवाचक नाम के अधिकारी हो सकते हैं वे उन उन विषयों के ज्ञाता,

प्रचारक, शिक्षक होने से तथा उन उन भावों और परिणामों के अनुसूची होने से उपर्युक्त उपाधिरूप में नाम हो सकते हैं। इस प्रकार मानने में शास्त्र प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। यथा—

ऋषीणां नामधेयानि यारचवेदेषु दृष्टयः ।

शर्वर्यन्ते प्रसृतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥

ऋषियों के जो नाम और वेदों में उनकी जो जो दृष्टियाँ अर्थात् विद्याविषयक योग्यताएँ हैं अर्थात् अमुक विद्याविषयक ज्ञान से अमुक ऋषि कहला सके हैं। यह प्रलयके अन्त में अर्थात् आरम्भ मृष्टि में ही अजन्मा ईश्वर देता है।

इस प्रकार ऋषियों के विश्वामित्र आदि उपाधिवाचक नाम जैसे पूर्वकाल में ऋषियों के थे भविष्य और वर्तमान में भी होसकते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

“तद्वर्षं तसृषिं या देवतामभिष्टोष्यन् स्यात्ता देवता सुप धावेत्”

येन छन्दसा स्तोष्यन् स्यात्तच्छन्द उपधावेत् ॥”

(१।३।६।१०)

वेद का विद्यार्थी मन्त्रों के ऋषि, देवता और छन्दों पर ध्यान रखता हुआ योग्यतासम्पादन करे।

देवता, और छन्द का तो मन्त्रों से नित्यसम्बन्ध है इसका ध्यान रखना तो ठीक है पर ऋषि का ध्यान में रखना तो उपाधिरूप में लाभप्रद है। आज कल भी जैसे विद्यार्थी शास्त्री आदि उपाधि को ध्यान में रखते हुए योग्यता सम्पादन करते हैं। मन्त्र में उपाधि तो ऋषि है विषय देवता हैं और पाठ्याश (गोत्र) छन्द हैं।

आचार्य देवपाल ने गायत्री मन्त्र की व्याख्या करते हुए उसका ऋषि प्रजापति लिखा है परन्तु साथ में द्वैपायन के श्लोक को भी उद्धृत किया है जिसमें उक्त मन्त्र का ऋषि 'विश्वामित्र' कहा गया है। श्लोक निम्न है—

“विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्रं सविता तथा ।

देवतोपनये जप्ये विनियोगे हुते तथा ॥

उक्त विरोध के परिहार में वे लिखते हैं कि “सर्वमित्रो विश्वामित्रः प्रजापतिरेव विवक्षितः” द्वैपायन के कहे विश्वामित्र से अभिप्राय सर्वमित्र प्रजापति काही है। निररुकार यास्क ने भी कहा है “विश्वामित्र सर्वमित्र” (निरुक्त २।२४) दोनों आचार्यों के वचनों से यही सिद्ध होता है कि मन्त्रों के ऋषि नाम उपाधिवाचक ही है रूढ़ नहीं। अस्तु।

ऋषियों के विषय में हम तो इस से आगे जाना चाहते हैं उपाधिवाद भी गौरव होजाता है कर्तृवाद की तो कथा ही क्या। हम इसको “आर्षवाद” के नाम से वर्णन करते है—

आर्षवाद

विद्वानो ने जितनी भी परिभाषाएँ निर्धारित की है उन सभीका मूल संसार में उपलब्ध होता है बिना मूल के परिभाषा बन नहीं सकती इसी तरह संस्कृत साहित्य में परिभाषाओं का भी मूल अवश्य है। जैसे “तदेवार्थमत्र निर्भास स्वरूप शून्यमिव समाधिः—” (योग) समाधि किस को कहते हैं यह बात इस परिभाषा में खोली है परन्तु इस परिभाषा का मूल जो शब्दशास्त्र कृत ‘सम्-आधा कि + का समाधान अर्थ रूप है वह नष्ट नहीं किया जासकता। योगशास्त्र से भिन्न अन्य शास्त्रों में उसका मूलार्थ लिया ही जावेगा। “जा-नेश्वरपरेण प्रयुज्यमानायाः सुलभ समाधिः” (न्याय-वात्स्यायने १।१) इसी तरह निरुक्त में दी हुई ‘ऋषिदर्शनात्’ परिभाषा का मूल शब्दशास्त्र कृत ‘ऋष + कि’ का ज्ञान-गमन-प्राप्ति संयुक्त चेतन हो तो ज्ञाता, उपयोक्ता जब हो तो प्रेरक या कार्य में कारणता से प्राप्त उपाशन अर्थ रूप नष्ट नहीं किया जा सकता। निरुक्त शास्त्र से भिन्न मन्त्रों में परि पठित ऋषि शब्द या उसके विशेष वाचको में मूल अर्थ लिया ही जावेगा। नैगम पाठ में परिभाषा का ध्यान नहीं दिया सकता। वहाँ ऋषि परिभाषा से भिन्न है आगात्र पारिभाषिक न होंकर वहाँ ऋषियों का स्वतन्त्र स्वरूप है यही ऋषियों का “आर्षवाद” कहलाता है। इससे ऋषि विश्व के मौलिक पदार्थ सिद्ध होते हैं। वेद की भी इसमें स्पष्ट साक्ष्य है—

“त आर्यजन्त द्विविणं समस्ता ऋषयः पूर्वं जरितारो न भूमा। अस्तुते सूर्ते रजसिनिषत्ते ये भूतानि समकृएवन्निमानि ॥” (ऋ० १०।८२।४) “यां त्वा पूर्वंभूतकृत ऋषयःपरिवेधरे” (अथ० ६।१३३।५)

उक्त मन्त्रों में स्पष्ट ही “पूर्व ऋषयः...ये भूतानि समकृएवन्” तथा “भूतकृतः ऋषयः” ऋषियों को वस्तुमात्र के व्यक्तभाव के कारण पदार्थ कहा है।

अथएव देवता इनके फलस्वरूप वा परिणामरूप है ऐसा समझना चाहिये। चारों वेदों में ऋषि और देवता के नामों से ८६२ पदार्थों का उर्णन है जिनमें ३८६ केवल ऋषि, ७० ऋषि देवता हैं और ४०५ केवल ऋषि हैं। ये तीन कोटिया हैं। जैसे गेहूँ आदि बीज सब खाद्य पदार्थों के परम कारण हैं और उनका पिष्ट भाग बीजों से बना हुआ होने से उनका कार्य है। पुन उस पिष्ट भाग से राटी आदि बनी हुई खाद्य वस्तु केवल कार्य है। इसी प्रकार विश्व के पदार्थ जो मूल स्वरूप हैं वे केवल ऋषि हैं और उन ऋषियों के देवता जा अन्यो के ऋषि अर्थात् कारण हो जाते हैं वे मध्यम ऋषि तथा मध्यम देवता हैं। इन मध्यम ऋषियां क देवता केवल देवता हैं क्योंकि फिर देवता नहीं हैं। एव विश्व के क्षेत्रभूत पदार्थों के तीन विभाग हुए जिनमें केवल ऋषि, मध्यम ऋषि या मध्यम देवता और केवल देवता।

विदित हो कि ऋषि भी देवता की न्याई विश्व के भौतिक आदि उपयोगी पदार्थ हैं, केवल भेद इतना ही है कि इनका परस्पर काय कारणादि सम्बन्ध है अन्य सब बातें समान हैं। वही बात विस्तारभय से दो चार प्रमाणों द्वारा लिखलाते हैं—

(१) पूर्वो, अन्तरिक्ष और सौ स्थानों के भेद जैसे देवताओं के तीन गण हैं एव ऋषियों के भी तीन गण हैं—

“ऋषि — त्रय ऋषिगण ॥”

→ गोथि पवस्व वसुविरिद्विरण्यवित्रे तोधा इन्द्रो भुव नेवर्षित ॥ (साम० उ० प्र० ३।२।१)

कर्तृवाद में यह बात सगत नहीं होती। जब कि ऋषि लोग भिन्न भिन्न समय में कई वर्षों तक मन्त्र ब्रताते रहे ऐसा कर्तृवाद पक्ष में मानते हैं। तब क्या सारे मरे जीते इकट्ठे होकर ऋषियों ने यह मन्त्र बनाया? क्या कोई बुद्धिमान इस बात को मान सकता है।

(२) देवताओं के वर्णन में जैसे कश्चित् मन्त्र पर विकल्प का प्रयोग देखा जाता है वैसे ऋषियों के वर्णन में भी विकल्प पाया जाता है—

ऋषि — सुदितिपुरुमीलौतयोर्वाऽन्यत्र ॥”

(ऋग्वेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणी ५५ ऋ० ८।७१)

“ऋषि — कृष्णो यु म्नीको वा वसिष्ठः प्रिवंभोवा ॥”
(ऋग्वेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणी ४६ ऋ० ८।८७)

(३) देवताओं के विज्ञान में जैसे आचार्यों का पक्ष भेद है एव ऋषियों के विज्ञान में भी—

“ऋषि — मेधातथि मेध्यातिथी विश्वामित्र इत्येके ॥”
(साम प्र० १।१।३)

(४) देवताओं में जैसे दृष्ट्वालिङ्गा लिङ्गोक्ता वा’ से वर्णन है एव ऋषियों का भी—

“त प्रथया काश्यपोऽवत्सारोऽन्येच ऋषयोऽत्र दृष्टलिङ्गा द्वित्रिष्टुवन्तम् ॥” (ऋग्वेदीया बृहत्सर्वानु क्रमणी २६ ऋ० ५।४४)

अत्र उा ऋ प नामक कारण पदार्थों का मन्त्रो सहित प्रा प्रा परिष्ण न देन पर विस्तारभय से दोष चार स्थल हा रत्न संकेत, प्रथम निरुक्त के प्रमाण से यह बतलाते कि ऋषि प्रथिवी अन्तरिक्ष और सौ के भौतिक आदि पदार्थ हैं—

“पुनरोहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै
य एष रत्नतनशनाऽस्तमेपि यथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥” (ऋ० १०।८६।२१)

इस मन्त्र का ऋषि ‘वृषाकपि’ है और निरुक्त-कार ने इस वृषाकपि को रश्मियों के द्वारा कम्पाने वाला कहा है, जो कोई व्यक्ति नहीं ‘अथ यद्र-शिमभिरभिप्रकभ्ययन्नेतितद वृषाकपिर्भवति वृषाक-म्पन । स्वप्नतशन स्वप्नाज्ञाशयत्यादित्य उद्व्यम् सोऽस्तमेपि यथा पुन सर्वस्मादिन्द्र उत्तरस्तमेतद् ब्र म आदित्यम् ॥” (निरुक्त (२।२८) “वर्षिता चावरयो-माना कम्पनश्च भूतानाम्’ (दुर्गा)

“वय सुपर्णा उपसेदुरिन्द्र प्रियमेधा ऋषयो नाधमाना । अपध्वान्तमूर्णुहि प्रद्विदचक्षुर्मुग्ध्य स्मन्निषयेव वद्वान् ॥” (ऋ० १०।७३।११)

प्रियमेधा नाम के ऋषि वेग में सुन्दर पक्षियों के समान हैं। वे इन्द्र की सेवा में उपस्थित हुए पार्थना करते हैं कि आप हमें पाशबद्ध हुए जैसी की छोड़कर विश्व में अपनी दर्शनरश्मि को फैला दें और ससार स अ धरे को दूर कर दें।

उक्त मन्त्र में प्रियमेधा नाम के ऋषि सूर्य की किरणें हैं, निरुक्त में भी इस मन्त्र की व्याख्या में यही बात स्पष्ट की है।

“क्यो वेर्वहु वचनम् । सुपण्याः सुपतना आदित्य
ररमय उपसेदुरिन्द्रं याचमानाः । अपोरुं श्वाध्वस्तं
चक्षुः । चक्षुः क्यतेर्वा चष्टेर्वा । पूर्द्धि पूरय देहीतिवा ।
मुश्र्वात्मान् पारीरिव वद्वान्” (निरुक्त ४।३)

इस प्रकार समक में आजाता है कि ऋषि विश्व
के भौतिक आदि पदार्थ हैं और वे देवताओं के
अभिन्याजक उत्पत्ति के कारण आदि मूल पदार्थ हैं
जो कि प्रवर्तक-प्रेरक, उपयोक्ता ज्ञाता, तत्प्रार्थी
अधिकर्ता वर्णयिता, निवर्तक देवता वस्तु का विशेष
धर्म, आधार, उपादान कारण निमित्त, साधक,
क्रिया आदि हैं । हम यहां केवल दो तीन उदाहरण
ही देते हैं ।

उपयोक्ता ऋषि—

‘या ओषधी पूर्वा जाताः’ (अ० १०।६७)

इत सूक्त का ऋषि ‘भिषक्’ है देवता ओषधि
स्तुति (ओषधि का गुण-ज्ञान) है । ओषधियों का
उपयोक्ता भिषक् होता है यह बात सर्वादिदित है ।
निवर्तक ऋषि—

‘नासदासीञ्चो सदासीत्तदानी नासीद्रजो नो व्योमा
परोयम् । किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्
गार्हं गभीरम् ॥ इयं बिन्वृष्टि र्यत आबभूव’
(अ० १०।१२६) ‘नासत्सप्त प्रजापतिः परमेष्ठी
मर्षिधृत्तं तु’ (ऋग्वेदीया वृ० सर्वाणु० ६३)

‘इस सम्पूर्ण सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई,
यह बतलाया है । अतएव इसका देवता भाववृत्त
अर्थात् वस्तुओं का निर्माण क्रम है और ऋषि
प्रजापति अर्थात् निमोता परमेवर है । निवर्तक रूप
में प्रजापति यहाँ आये हैं ।

* ‘इश्वरम्यच प्रजापति विष्णुरित्यादि पर्याय-
साधक ॥ आचार्य देवपाल लौगाक्षि गृह्यसूत्र २६)
साधक क्रिया ऋषि—

‘उषा अप रामुस्तमं संवर्तयति वर्तनि सुजातताम्”
(अ० १०।१०२।५) ‘आयाहि संवर्त उपम्यं द्वैपदम्’
(ऋग्वेदीया वृ० सर्वाणु० क्रमणी ६५)

इस मन्त्र में उषा रात्रि के अन्धकार की एक
मास में घुमा देती है यह वर्णन है । अतएव उषा
देवता है और उषा के प्रादुर्भाव के निमित्त उसका
संवर्त अर्थात्-सूर्य के साथ-साथ घूमना है । यह बात

मन्त्र में आए हुए ‘संवर्तयति’ क्रिया पद से स्पष्ट है
अतएव इसका ऋषि साधक क्रिया रूप में ‘संवर्त’ है ।

यद्यपि यह ठीक है कि मन्त्रों के ऋषि ‘आर्यवाद’
से विश्व के भिन्न भिन्न क्षेत्र के मूल पदार्थ हैं तथापि
उस-उस विद्याक्षेत्र के अनुचान विद्वानों को भी
उक्त ऋषिवाचक नाम उपाधि के रूप में दिये जा
सकते हैं क्योंकि ज्ञाता विद्वानों का आत्मा तद्वर्त
या तदाकारता को प्राप्त हो जाता है । महाभाष्य
व्याकरण में लिखा भी है—

‘महान देवः शब्दः । महता देवेन नः साम्यं यथा
स्मादित्यन्वयं व्याकरणम्” (महा० १।१।१)

शब्द अर्थात् शब्द के ज्ञान से साम्य, तद्वर्तना,
तदाकारता हो जाती है । उसी प्रकार में हम एक
उदाहरण देते हैं । वह यह कि अथर्व वेद के सभी
सर्प-विष-चिकित्सा वाले सूक्तों और मन्त्रों का
ऋषि गरुत्मान् है और देवता तक्षक सर्प है गरुत्मान्
गरुड़ पक्षी को कहते हैं वह यहाँ आर्यपद में ऋषि है,
गरुड़ पक्षी सर्प को पकड़ लेता है उसके विष को हरने
वाला है ।

‘जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम्’
(भागवत । उ० १६।११) इस पक्षी के सदृश जो
समुप्य सर्प-विष का चिकित्सक हो वह भी ‘उपाधि-
वाद’ से गरुत्मान् कहला सकता है । लोक में सर्प
विष का इलाज करनेवाले को गरुडिया भी कहते हैं ।
इस प्रकार उपाधि द्रष्टा को मिलती है अतः ऋषियों
का कर्तृवाद सर्वाथा ऽ अमाननीय है ।

अन्वार्थ कौन है ?

जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से धर्मवृत्त
व्यवहार की शिक्षापूर्वक विद्या होने के लिए तन,
मन, धन से प्रयत्न करें उसको आचार्य कहते हैं ।

† ऋषियों के सम्बन्ध में अधिक विस्तार के
साथ हमने “वेद में इतिहास नहीं” ग्रन्थ में लिखा
है जो अभी अग्रकाशित है, और जिसमें अन्ध अनेक
निबन्धों में निरुक्त के २५ ऐतिहासिक स्थलों पर
भी विस्तार से समाधान किया है ।

प्रत्येक आर्य्यसमाजों में रखने योग्य

मनु और स्त्रियाँ

लेखक—श्री विन्तामणि "मणि"

भूमिका लेखक—श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एन० ए०

मनुस्मृति वैदिक सिद्धान्तों का सरल और रोचकता पूर्ण प्रतिपादन करने वाली संस्कृत साहित्य की एक उत्कृष्ट पुस्तक है। कुछ पढ़े-लिखे मन चले, श्री स्वन्-नाता की ओट में महर्षि मनु की मखील उड़ाते तथा मनुस्मृति को काजल की कोठरी और लुत्चेपन का सूत्र कहते देखे जाते हैं। उनका विश्वास है कि मनुस्मृति के पृष्ठ कफः और पित्त में सने हुये हैं। विद्वान् लेखक ने ऐसे उद्दण्ड विचारों का जोरदार खण्डन किया है। साथ ही अनेकों श्लोकों का प्रमाण स्वरूप उद्धरण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि मनुस्मृति उतना ही अधिकार स्त्रियों को भी देती है जितना कि पुरुषों को प्राप्त है। पुस्तक के कुछ चुने हुए विषय इस प्रकार हैं—

स्त्रियों कौन है ? स्त्रियों के अधिकार। स्त्रियों की स्वतन्त्रता। अर्धों का पक्ष। गृह शिक्षा का प्रश्न। श्री-जाति का सम्मान। दाम्पत्य-जीवन। तलाक़ समस्या। अर्थशास्त्र और स्त्रियाँ आदि।

पृष्ठ संख्या ४००। मूल्य ३) मात्र। डाक व्यय अलग।

पता—मन्त्री, आर्य्यसमाज,

कीटागज—इलाहाबाद।

‘पतित’

(२७०—श्री हरिप्रसाद मिश्र-सेवक)

देखि तरु लता वितान तनाव सुखद मारुत अति शीत न घाम ।
 भावना हुई बलवती यही यहीं रम जावें अपने राम ॥ १ ॥
 हरित दूर्वांन्वत शाभितमञ्जु धरणि प्यारी माना को गाद ।
 फैल कर सुकृति सुयश सी सुरभि, दे रही थी स्वर्गीय प्रमाद ॥ २ ॥
 गगन मे बिखरा मेघ समूह, क्षणिक छाया थी क्षण म धूप ।
 वदन त्यो खिलता कुम्हलाता, हृदय की छाया के अनुरूप ॥ ३ ॥
 पवन प्रेरित हो पत्नी गिरी त्याग तरु प्रियतम अंक प्रदेश ।
 पतित पत्नी हा जाती त्याज्य, प्रकृति का ऐसा है आदेश ॥ ४ ॥
 वायु हिल्लोलित शाखा सदृश, विचारा के भूले मे भूल ।
 हृदय ने कर अतीत की याद, गीत गाया निज गति अनुरूल ॥ ५ ॥
 अरे धिक हृदय शम्भू है व्यर्थ, चेत, ममता कृत है अज्ञान ।
 जले जो उसे जलाओ और, विधाता का है यही विधन ॥ ६ ॥
 कौन किसका, रा दिन का खेल भटकता क्यो प्यारे पथ भूल ।
 शान्ति है मृग मराधिका तुल्य विचारे क्यो न फूल के शूल ॥ ७ ॥
 विश्व प्राणमे खेलो मुदित, साधियों का न करो उपहास ।
 चूक उनसे यदि होपे नही, विजय श्री किमि आवे तब पास ॥ ८ ॥
 खेल मानवता का हो शिशु, विश्व-शाला का नूतन छात्र ।
 रूप जादू के वश जग-जाँव, सभी हैं सदा दश के पात्र ॥ ९ ॥
 पतन है मानवता सन्देश, पतन दिखलाता है उत्कर्ष ।
 गिरे जो, धूल भाड कर उस, लगाओ हिल मिल गले सहर्ष ॥ १० ॥
 पतित उद्धारक ऋषि उपदेश, सुनों हे सुहृद कलेजा धाम ।
 पतित अपनाने मे ही हुआ, पतित-पावन है हरि का नाम ॥ ११ ॥

(‘पतिता’ नामक अप्रकाशित काव्य-नाटिका से)

पुरोहित

(ले०—श्री प० रामदत्तजी शुक्ल एडवांकेट लखनऊ)

शुक्ल शंस्कृतिका प्रशास्त प्रवाह गुरु-
शिव्य परम्परानुसार अत्र्याहृत न
ति से जब तक प्रवाहित रहा, उम
श्रौत ज्ञानगङ्गा की विमल वारितरङ्ग
के स्पर्श-मात्र से जब तक आर्य
नर नारी अवगाहन करके अमलमति शुद्धान्त करण
बन कर जीवन के परमोत्कृष्ट आदर्श की सिद्धि करते
रहे, श्रुति सम्मत आर्जव के मूर्तिमान स्वरूप बनकर
जयतक अमृतपुत्र वैदिक आर्य मन बचन एवं कर्म
इस विन्दुत्रयी का अपने व्यावहारिक जीवन में सदा
साम्य दृष्टि से देखकर तदनु आचरण करते रहे मनस्ये
क वचस्येकं कर्मण्येक महत्सनाम के सच्च अर्थ में
आचारवान जयतक सनातन सत्य धर्मावलम्बी बने
रहे तब तक आर्य वैदिक संस्कृति सभ्यता, धर्म एवं
साहित्य के शुद्ध स्वरूप को नमस्काने में किसी प्रकार
को कठिनाई नहीं होसकती थी। उस अवस्था में सू-
क्ष्मातिमूर्धन तत्व के अनुसन्धान में सतत लीन रहने
के कारण स्थूल पदार्थों, और उनमें होनेवाले क्षण
भङ्ग व्यवहारों की ओर ऋषियों की विशेष रुचि
नहीं रहती थी। जिस प्रकार एक अत्यन्त मूल्यवान्
रत्न को प्राप्त कर लेने के उपरान्त साधारण कौ-
ड़ी की ओर प्राकृत पुरुष की दृष्टि भी नहीं पड़ती
उसकी प्राप्ति की अभिलाषा का तो कहना ही क्या
है। ठीक इसी प्रकार जिसके प्राप्त हो जाने पर अन्य
सब कुछ प्राप्त हो जाय तो किस लिये साधारण व-
स्तुओं की ओर ध्यान दिया जाय? भारतीय संस्कृति
के परमोपासक महर्षि याज्ञवल्क्यने अपनी सती
पत्नी मैत्रेयी के द्वारा हम को यह अमर आदेश दिया
है कि आत्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार अथवा आत्मवर्दान
से सब कुछ प्राप्त हो जाता है और इस से ही अमृ-
तत्व की प्राप्ति होती है। यो वै भूमा तसुखं नाल्पे सु-
खमस्ति। यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मत्यम्
(छन्दो० उप० अ० ७, २३-२४)

एक शब्द में इस भूमा को ही अपने जीवन में
व्यवहृत करने का विधान ही श्रुति प्रतिपादित वैदिक
धर्म है। अनेक ऋषियों ने अपने विभिन्न ग्रन्थों में
इसी बीज का परिवर्धित रूप देने का आয়োजन
यथा शक्ति किया है। ऋषियों की वर्णन शैली में
उनकी अपनी परिभाषाओं का बड़ा महत्व है। उस
ऋषि शैली के पारिभाषिक शब्दों के मर्मों को न समझ
कर अथवा विपरीत अर्थों समझ कर अनेक प्रकार
के अनर्थ हथे, किये गये और आज भी इस आशीव-
चातुरी क अनेक उदाहरण सुलभ हैं।

देशकालकृत विभिन्न कारणों से वर्तमान समय
में वैदिक ऋषियों की शैली की जाग्रत अवस्था हमारे
जीवनों में कदाचित् नहीं दिखाई पड़ती है। इस के
लिये कौन दोषी है, इस विषयका विचार करने का
यह उपयुक्त अवसर नहीं है किन्तु इतना प्रत्यक्ष है कि
प्रायः अनार्य युग में ही रहकर हम सब यथाशक्ति
चेष्टायें कर रहे हैं। फिर चाहे उन चेष्टाओं का स्वरूप
अघोर हो अथवा घोर, कल्याणकारी हो या
अकल्याणकारी। अतः वैदिक परिभाषाओं को भली
प्रकार जानने वाले गुरु शिष्य परम्परा मार्ग के
प्रायः अभाव में सूक्ष्म तत्वों के स्थान में स्थूलतम प-
दार्थों की ओर ही अनन्त दृष्टि रखने के कारण भू-
मा के स्थान पर अल्प की ही सदा भावना रखने से
यदि हम वैदिक परिभाषिक शब्दों को भी विपरीत
अर्थ में समझकर उनका दुरुपयोग करने में ही अप-
नी इति कर्तव्यता माने तो कोई आश्चर्य नहीं है।

विज्ञ पाठकों के समस्त श्रवण हम उदाहरणार्थ एक
वैदिक पारिभाषिक शब्द रख कर उपरोक्त प्राक् कथन
की सन्गृष्टि करने का प्रयत्न करेंगे। पुरोहिते शब्द
चारों वेदों में उपलब्ध होता है। अग्नि मीडे इत्यादि
ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में ही "पुरोहितम्" शब्द आता
है। इसका निर्बचन भास्कराचार्य अपने निरुक्त २-३-

१२ मे इस प्रकार करते हैं “पुर एनं दधति। स्वामी जी ने पुस्तासर्वा जगदधाति छेदनधारण कर्षाणादि गुणांश्रुपित। पुरोहितपुर एनं दधाति होत्रायवृतः कृषायमाणोऽन्वध्यायद् (नि० २-१२)। इसी प्रकार उन्वद महीधर सायणदि प्राय समस्त भाष्यकारो ने यास्क्रीय व्युत्पत्ति को स्वीकार करते हुये मन्त्रार्थ किया है। साधारण भाषा में इसका अर्थ यह हुआ कि “आगे (पुर) जिसको(एनं) रक्खा जाय (दधति)। वह अर्थ अपने पूर्णमहत्व को प्रदर्शित करने के लिये किसी अन्य की अपेक्षा रखता है। उस अपेक्षित के लिये ऐतरेय ब्राह्मण ८-२७ मे ‘पुरोधाता’ शब्द आता है। इसप्रकार पुरोहित और पुरोधाता सम्पेक्षित शब्द हुये। पुरोहित और पुरोधाता के महत्व को सम्यक् रूप से प्रकाशित करने के लिये ऐतरेय ब्राह्मण मे ‘यो हवात्रीन् पुरोहितांस्त्रीन् पुरोधातुवेद स ब्राह्मण’ पुरोहितः स बदेत पुरोधाय। अग्निर्वाचं पुरोहित पृथिवी पुरोधाता, वायुर्वाचं पुरोहितोऽन्तरिक्षं पुरोधातादित्यो वाच पुरोहितो यो पुरोधाता एष हवै पुरोहितो य एवं वेद,, (ऐ० वा० ८-२७) अर्थात् जो तीन पुरोहितों और तीन पुरोधाताओं को जानता है, वह ब्राह्मण पुरोहित है। वह पुरोधाता इत्यादिक हैं। अग्नि ही पुरोहित है, पृथिवी पुरोधाता है; वायु ही पुरोहित है, अन्तरिक्ष पुरोधाता है; आदित्य ही पुरोहित है, योः पुरोधाता है। जो इस प्रकार जानता है वह ही पुरोहित होता है। अन्यत्र (ऐ० वा० ७-२६) में,, अर्थात्सो हवाएष पुत्रियस्य यत्पुरोहित [पुरोहित क्षत्रिय का अर्थ आत्मा ही है]। न ह वा अपुरोहितस्य राज्ञो देवा अन्नमदन्ति तस्याद्राजा वक्ष्याम्यो ब्राह्मणं पुरोदधति (ऐ० वा० ८-२४) पुरोहित रहित राजा का अन्न देवगण स्वीकार नहीं करते हैं। अतः यह करने वाला राजा ब्राह्मण को पुरोहित बनाता है। इसी ब्राह्मण में राजा इन्द्र और उनके पुरोहित वृहस्पति की प्रतिकृति रूप से राजा और उसके पुरोहित का राजसूय प्रकरण में विशद वर्णन किया गया है।

उपरोक्त कतिपय प्रमाणों से पुरोहित और उससे समन्वित पुरोधाता की आधिदैविक और आधिभौतिक क्षेत्रों में सङ्गति लगाई गई है।

इसी प्रकार से आध्यात्मिक क्षेत्र में भी हम बुद्धि को पुरोहित और मन को पुरोधाता मानकर उनके पारस्परिक नाना प्रकार के व्यापारों को समझ सकते हैं, एवं एक दूसरे के प्रभाव को भी जान सकते हैं। मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिये अग्नि पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य पुरोहित राजा की भांति ही बुद्धि और मन के सम्बन्ध को भी पुरोहित पुरोधाता रूप से मानकर तद्वन् आचरण करे तो वस्तुतः काया पलट होने में देर न लगे, और तभी वैदिक शब्द पुरोहित के मर्म को भी हम हृदयङ्गम कर सकें।

बुद्धि की क्षेत्रों का परिणाम ज्ञान है और मन के व्यापारों के परिणाम को ही कर्म कह सकते हैं। निरपेक्षित रूप से मन अथवा बुद्धि के सहारे सफल जीवन नदी बनाया जा सकता है। इसी तत्व को स्पष्ट करती हुई याजुषी श्रुति का आदेश है कि, “विद्यां चाविद्या, च यस्तद्दोषाभयश्चै सह। अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्यायाऽमृतमश्नुते (यजु० ४०) गीता के अन्तिम श्लोक में योगेश्वर कृष्ण + धनुर्धरपार्थ के समन्वय में ही श्री, विजय, भूति का निश्चित रूप से प्राप्त होना ध्रुवनीति कहा गया है। “ब्रह्मणा क्षत्राय च श्री परिग्रहीता भवति” इस वचन से शान० ब्रा० ने भी उसी तत्व का प्रतिपादन किया है। ज्ञानपूर्वक कर्म या बुद्धिपूर्वक मनोव्यापार के आदर्श को सार्वदेशिक और सार्वकालिक कहने में किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं कही जा सकती है। इस प्रकार पुरोहित और पुरोधाता की व्यापकता द्वारा अंत-भ्रत रूप से विश्व के समस्त अग्नि + सोमीय, ऋत + सत्य, मित्र + वरुण, प्राण + अश्विन, आदि-आदि पारिभाषिक द्रव्यों के परमार्थों का उद्घाटन हो जाता है। निदान जिन-जिन क्षेत्रों में पुरोहित पुरोधाता का यह समन्वित क्रम यथा निर्दिष्ट रूप से व्यवहार में आता रहता है, उन-उन क्षेत्रों में साम्य, शान्ति और समुन्नति देखने में आती है और इसके विपरीत जहाँ विपर्यय रूप हो जाता है तो परिणाम भी विपरीत हो जाना अनिवार्य है।

आधिदैविक क्षेत्र में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है कि यदि अग्नि और पृथिवी अपने-अपने स्वाभाविक

गुणधर्मों को त्याग दें तो इतना ही नहीं कि केवल प्रथिवी या अग्नि का ही अपकार या हानि हो, किन्तु इस च्युति का भयंकर प्रभाव समस्त विश्व पर पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार पुरोहित और राजा के भी स्वाभाविक गुण-धर्म हैं कि जिनको त्याग कर राष्ट्र किसी भौति शान्ति, सुख का भागी नहीं बन सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि अपने कल्याण की इच्छा रखने वालों की प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक कर्म करने में ही होती है किन्तु अपने यत्न-साधनार्थ अनेक मनमानी बुद्धि रखते हैं।

कपिलाचार्य ने अपने सांख्य दर्शन में आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुखों की अत्यन्त न्यून वृत्ति को ही अत्यन्त पुरुषार्थ माना है। या यो कह सकते हैं कि इन तीनों प्रकार के सम्यक् ज्ञान का ही परम पुरुषार्थ माना गया है। इस आदर्श से अच्छा आदर्श अन्य किसी ने नहीं दर्शाया है। भूमा की साधना का सर्वोच्च शिखर इस आदर्श प्राप्ति का कह सकते हैं।

कर्मयोग, मनोयोग, पृथिवीयोग, अन्तरिक्षयोग तथा यौग्यो-योग प्रधान वर्तमान (machine Age) में ज्ञान योग, बुद्धियोग, अग्नियोग, वायुयोग, और आदित्ययोग के रहस्य को हृदयङ्गम करने के लिये किस को अवकाश है पुरोधता (Elector) ही आज अपने और पुरोहित To be kept in front of the elected Leader के स्थानों को आक्रान्त किये हुये हैं। न तो अब राजा को पुरोहित (प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि-नेता) की आवश्यकता शेष रही और न अब वैयक्तिक जीवन में बुद्धि कोही कोई विशेष महत्व रहा है। जो जो जिस जिस के मन में समाता है करने लगता है। परिणाम भी जो होना अनिवार्य है वही होता है नह वा अपपुरोहितस्त राज्ञो देवा अन्नमदन्ति (मे ० वा)।

सर्वत्र विपर्यय से भावनाये विपरीत और भावनाओं के विपरीत होने के कारण विचार कलुषित हुए और उनका परिणाम कर्मों में मिलनता हुआ।

और अन्त में चरित्र बल का दयनीय हास हुआ। आज यदि हमारे सामने पुरोहित शब्द का उच्चारण किया जाना है तो हम उसका यही अर्थ समझते हैं कि "पुरोहित वह प्राणी होगा जो अपद होने पर भी स्वर्ग नरक की बातें सुना सुना कर अनेक प्रकार से भोले भाले साधारण विद्या हीन जनो को ठगने के लिये झल कपट से काम करके अपना स्वार्थ साधन करता है। इस प्रकार के जीव देश जाति के लिये कलङ्क मात्र भार रूप है। जितनी आसानी से इन का नाम शेष किया जासके उतना ही अच्छा है।, पुरोहित के इस संस्करण को सर्वथा अग्राह्य, निष्पत्तीय, बहिष्करणीय और अवाञ्छनीय मानलेने पर भी हमारी कठिनाइयाँ दूर होने के स्थान में द्विगुणित हो जाती है।

प्रथम तो हम अब भी दृढ़ता के साथ यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि जिस आदर्श का प्रतिपादन वैदिक ऋषियों के ब्राह्मण वाक्यों द्वारा किया है वह अब अनावश्यक हो गया है और दूसरे अब तक अन्य कोई विधि विधान भी किसी प्रकार का ऐसा नहीं बनाया जा सका कि जिस से उक्त आदर्श के स्थान की पूर्ति सफलता और सन्तोष के साथ की जासके। उदाहरणार्थ जिन लोगों ने पुरोहित पुरोधाता (यजमान) व्यवहार सर्वथा त्याग दिया है, उन्होंने उसकी पूर्ति के लिये जो कुछ भी प्रयत्न किया है वह तो और भी विकृत है। अपद पुरोहित तो जैसे तैतें कुल्ल न कुल्ल निर्भीकता के साथ कह कर अपना काम कर लेता है किन्तु उसकी नूतन प्रति मूर्तिउत्पत्ती भी जानकारी न रखने के कारण अपने अपने कार्य में नितान्त असफल सिद्ध होती है।

इन सब बातोंका अत्यन्त भयंकर परिणाम यह होता है कि आजर्था हमारे सामने 'राष्ट्रव्यथे जाभियाम पुरोहिता' (यजु-६-२२)को उच्चारण किया जावे तो हम 'राष्ट्रमें हम पुरोहित जगें इसका क्या भाव निकालें' इस मंत्र में "पुरोहिता" शब्द में न तो वेद का यह प्रयोजन है कि अनपद या स्वल्पज्ञ पुरोहित जो जैसे जैसे स्वार्थरत है और न अस्संस्कृत तबीन प्रकार का पुरोहित जो उस से भी न्यून ज्ञान रखता है। तब

वैदिक संस्कृत के स्वरूप के खोजी के पूछने पर हम अंगुली उठाकर कहे कि अमुकव्यक्ति हमारा पुरोहित है और इसे वैदिक धर्मानुसार पुरोहित कहा जा सकता है तथा हम भी वैदिक पुरोधाना या यजमान हैं। अन्यथा "यजमानस्य पशून पाहि" (यजु -१-१) के "यजमानस्य" का वास्तविक अर्थ कर के किसी व्यक्ति का यजमान संज्ञा प्रदान करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही है।

अपने व्यष्टि और समष्टि जीवन से हमने वैदिक शब्दों को यहां तक गिराया कि अब उनका ठीक अर्थ जानना दुर्लभ सा होगया है। तभी ता गोस्वामी तुलसी दास ने भी पुरोहित कर्म को अत्यन्त निन्दनीय कहा है। आज कल भी ब्राह्मणों ने पुरोहित कर्म करने वालों का आदर नहीं किया जाता है। इसके विपरीत उनको कुछ तिरस्कार को दृष्टि से देखा जाता है।

एक परिणाम इस प्रवृत्ति का यह भी हुआ कि मध्य कालीन वादक युग में तथा शङ्कर युग में समान रूप से कर्म काण्ड की अवहेलना और निंदा होने लगे से सर्व साधारण की अभि रूचि कर्म काण्ड से हटाई गई किंतु उसके स्थान में सूक्ष्म ज्ञान काण्ड की ओर भी वह दृढ़ता के साथ प्रवृत्त न होसके।

वैदिक कर्म काण्ड प्रधान मुख्य मुख्य कार्या का सुचारु रूपसे करने वालों का शनैः शनैः स्वरूप परिवर्तित होता गया और अन्ततोगत्वा शुद्ध वैदिक यज्ञों का अबतो नाम शेष रहगया है। अनेक प्रकार के यज्ञों का क्या रहस्य है, उनमें कितन व्यापक अर्थ भरे हैं, उनको प्रतिकृति मानकर किस प्रकार विश्व क तथा आध्यात्मिक रहस्यों क समाधान करने की चेष्टा की गई है इत्यादि बातों को जानना तो दूर आज ऐसे व्यक्ति भी कठिनाई से मिल सकेगे जा अनेक यज्ञों के नाम, ऋत्विक् संख्या तथा नामानि को भी जानते हे।

ऐसी अवस्था में प्रत्येक वैदिक संस्कृति के उपासक का परम कर्तव्य है कि यथा शक्ति प्रयत्न करके शुद्ध वैदिक कर्मकाण्ड प्रचारार्थ सच्चे पुरोहितों और पुरोधानाओं (यजमानों) का पवित्र जीवन स्वी-

कार कर वैदिक आदर्शों को आचरण में लाने का समुचित प्रयत्न करे।

स्वनाम धय ऋषिवर विरजानन्द जी तथा श्री २१० दयानन्द जी सरस्वती ने अपनी पूर्णशक्ति व्यय करके आर्य जाति में जाप्रत अवस्था में लाने का प्रयत्न किया और नन्द विरवास किया कि पुन वैदिक धर्म का आर्यवर्त देश में और उसके द्वारा अन्यत्र वैदिक आर्य संस्कृति का प्रकाश अज्ञानान्धकार को दूर करेगा। ऋषि-परम्परा और उस के द्वारा प्रवाहित पावनी ज्ञानगङ्गा में अवगाहन करने के अभिलाषी प्रत्येक नर नरी के प्रति दीक्षावलि के पुनीत दिवस पर यही साम्रह निवेदन है कि आय पथ के पथिक बनने के लिये सच्चे पुरोहित और वास्तविक यजमान बन कर ही हम ऋषि ऋण का परिशोध करने में समर्थ हासकेगे, इस बात को चरितार्थ करने का ब्रत धारण करे सर्वनियामक परम पुरोहित हमको वृद्धि श्लेढे कि हम अपने अभिलिपित आदर्शों-तुष्टान में सफल मनोत्तर ह। राष्ट्र वयं जाप्रियाम पुरोहिता स्वाहा ॥

ऋषि श्रद्धाजलि

मैंने स्वामी दयानन्द सरस्वतीके अनेक बार दर्शन किये और उपदेश सुने। मुझे उनके चरणां में बड़ी श्रद्धा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती गत शताब्दी में जन्मे हुये देश भक्तों और सुधारकों के गगन मण्डल में सबसे अधिक जागृक्यमान नक्षत्र थे। उन्होंने देश के सामाजिक नैतिक और बौद्धिक स्थान में अग्र्य समस्त सुधारकों के सम्मिलित। कार्यो से भी कहीं अधिक कार्य किया है।

—अवधवासी श्री लाला सीताराम एम० ए० एम०

आर० ए० ऐस०

आर्यमित्र ऋष्यङ्क



महाराजकृमाय श्रीमान श्री सुदर्शनदेवर्जी बहादुर (शाहपुराराज्य)

चार सींग का बैल

(ले०—श्री प० धुरेन्द्रजी शास्त्री न्यायभूषण)



चत्वारि शृङ्गान्यो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त-
हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवां
मर्यां आ विवेश ।

अग्नेश् मण्डल ४, सूत्र ५८, मन्त्र ३ ।

यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र ६१ ।

विलसन महोदय को वेद में अनिश्चितपना
प्रतीत होता है । उन्होने लिखा है —

‘A good specimen of Vedic Vagueness
and Mystification and of the straits to
which Commentators are put to extract an
intelligible meaning from the text

अर्थात् उपर्युक्त मन्त्र वेद की अस्पष्टता और
अन्वित-जनकता को अच्छा नमूना है और वेद में से
बोधगम्य अर्थात् निकालने के लिए टीकाकारों को
कितना संकुचित होना पड़ता है, इसको भली-भांति
प्रकट करता है ।

वैदिक रचनाशैली से अनभिन्न पुरुष ही ऐसे
मन्त्रों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत कर यह कहने का
साहस कर बैठते हैं कि वेद गद्गरियों के गीत हैं ।
साहित्य सेवी सत्पुरुष ही समझ सकता है कि लेखक,
वक्ता अथवा कवि (लौकिक पुरुष) वई प्रकार से
अपने प्रतिपाद्य विषय का प्रतिपादन किया करते हैं ।
कहीं भाषा की सुन्दर शब्द-शृंखला में मनेमगत भाव
को धरने का भरसक प्रयत्न करते हैं, कहीं श्लेष
आदि अलंकारों से अलंकृत करते हैं, और कभी
प्रकरोन्तर ही का अवलम्बन करते हैं । जब लौकिक
पुरुषों की इस प्रकार की रचना गौरान्वित, श्रद्धास्पद
हो सकती है और जनमन-मोदन कर सकती है, तो
अलौकिक वैदिक शब्द शृंखला की तो बात ही
क्या है ।

लौकिक कवि अपने भावोंको सुन्दर शब्द सौँचे

में भरने का किस प्रकार प्रयत्न करते हैं । वह पाठक
के समक्ष कुछ उदाहरणों द्वारा उपस्थित हैं । देखिये—

“आधरि पदमेषु तद्वर्षिष्ठा घृणा क तच्छ्वय-
च्छाय लवोऽपि पल्लवे । तदास्य दास्येऽपि गतोऽपि-
कारतां न शारद पार्षिकशर्यरीरवर ॥

नैषधचरित सर्ग १, श्लोक २० ।

इस श्लोक में राजा नल की सुन्दरता का वर्णन
है । राजानल के पैर ने पदमों में घृणा उत्पन्न करदी
अर्थात् पदम से पैर सुन्दर थे । जब पैर ही पदम
से अधिक सुन्दर थे तो हस्त-सौंदर्य की समता कोई
क्या कर सकता है । शरद ऋतु की पूर्णिमा का
चन्द्रमा बहुत ही सुन्दर होता है, किन्तु राजा नल का
मुख इतना सुन्दर था कि शरद ऋतु का चन्द्रमा
उसकी सेवा के योग्य भी नहीं था । इसी प्रकार राजा
भोज और लोलम्बर राज कवि का विचार विनियम
देखें—

‘भो लोलम्ब कवे । कुरु प्रथमं किं स्थायुषत्
स्थीयते, कर्म भोज नृपाल । बाल शशिने, नाथं शशिः
वत्तते । किं तद् व्योम्नि विभाति चास्त समये चन्द्रयुते-
र्वाजिन पादत्राय मन्त्र जवाद्विगलितं से राजत
राजते ।’

हे लोलम्ब कवि ! क्या स्थायु (ठूँठ) के सदृश
खड़ा है, नमस्ते कर ।

हे राजा भोज ! मैं किसको नमस्ते करूँ ?

इस नर्वाचन चन्द्रमा को ।

कवि—यह चन्द्रमा नहीं है ।

राजा सूर्य के अस्त समय आकाश में यह क्या
चमक रहा है ?

कवि—दौड़ते हुये सूर्य के घोड़े के पैर का नास
निकल गया है और वह ही आकाश में चमक
रहा है ।

किसी की दुराशा पूरी नहीं होती है, इस भाँव
का एक कवि किस प्रकार योतन करता है, वह निम्नी
पंक्तियों में देखते ही बनती है ।

“इन्द्र प्रयास्यति विनक्षति पंकजश्रीः स्थास्यन्ति लीडतिमिरा न मण्डिप्रदीपाः अन्धं समग्रमपि कीट मणो भविष्यत्युन्मेषमेध्यति भवानपि दूरमेतत्”

जुगन् अंधेरी रात में अपना प्रकाश करने के लिए कहता है कि चन्द्रमा छिप जायगा, पंकज की श्री समाप्त हो जायगी, अंधेरे को चाट जाने वाले मणि प्रदीप भी न रहेंगे। जब सर्वत्र अंधेरा ही अंधेरा होगा तब मैं अपने प्रकाश से संसार को प्रकाशित करूँगा। किन्तु यह दूर है।

दरिद्रता के साथ स्नेह सम्बन्ध भी कवि-कल्पना के अमत्कार रूप में किस प्रकार दिखाई गई है, यह पाठक देखें—

“दारिद्र्य शोचामि भवन्तमेव अस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा। विपन्न देहे मयि मन्द भाग्ये चिन्ता ममेति क ममिष्यसि त्वम्”

हे दरिद्रे! तू मुझको अपना मित्र समझ कर मेरे पास आई है। मैं अभागा जब मर जाऊँगा तब तू कहाँ रहेगी, मुझे इसी की बड़ी चिन्ता है। साहित्य रस शून्य व्यक्ति ही इस कवि कल्पना को कृतित्तित्त करेगा।

शब्द अनेकार्थ प्रतिपादक होते हैं यह व्यवस्था संस्कृत में ही नहीं अपितु सर्वत्र उपलब्ध होती है।

“शीश पै, तिहारे पद रज को चढ़ाऊँगी”

एक स्त्री कृष्णचन्द्रजी के प्रति कहती है कि अपने शीश पै आपकी चरण रज को चढ़ाऊँगी। दूसरा यह अर्थ भी किया जा सकता है कि शीश पै तिहारे, पद रज को चढ़ाऊँगी। तुम्हारे शिर पर अपनी चरण रज चढ़ाऊँगी।

छोटे छोटे बच्चे भी शब्द का अर्थान्तर करने में अपना पटुता दिखाने का प्रयत्न करते हैं। भरतपुर में शिवदत्तजी के गृह पर योगेन्द्र आदि कई बच्चे पढ़ रहे थे। मैंने उन बच्चों से कहा कि देखो एक यह नियम है कि कर्ता यदि पुंलिंग हो तो क्रिया भी पुंलिंग हो। यदि कर्ता पुंलिंग है और क्रिया स्त्रीलिंग लगती जावे तो वाक्य अशुद्ध हो जावेगा। जैसे कोई कहे देवदत्त खाती है तो उसका यह वाक्य अशुद्ध होगा, क्योंकि देवदत्त पुंलिंग है और क्रिया स्त्री लिंग है। इसलिए देवदत्त खाता है वाक्य ही

ठीक है। तब उन बच्चों में से योगेन्द्र या विद्याभूषण ने उत्तर दिया कि ‘देवदत्त खाती है’ वाक्य ही शुद्ध है। मैंने पूछा—यह वाक्य कैसे शुद्ध है? लड़के ने कहा—देवदत्त खाती है, इस वाक्य का यह अर्थ है कि देवदत्त खाती (बढ़ई) है। इस शब्दार्थ-सम्बन्ध को सुनकर मैं अवाक रह गया। सब बच्चों ने मिलकर करतल ध्वनि की और हँस कर कहने लगे कि आज शास्त्रीजी को हरा दिया। दूसरे दिन एक वाक्य बच्चों ने पुनः पूछा कि ‘जानकी तुमके परवाह नहीं है’ इसका क्या अर्थ है? मैंने कहा कि रावण कहता है—हे जानकी-सीता, तुमके (मेरी) चिन्ता नहीं है। लड़केबोले—नहीं नहीं, इसका यह अर्थ नहीं है, इसका अर्थ आपको नहीं आया है। इसका तो यह अर्थ है कि जानकी जीवन की तुमके चिन्ता नहीं है। वह कहते हुए बच्चों ने शोर मचा दिया कि आज भी हारा दिया। मैं उन बच्चों के बुद्धि वैशद्य पर बड़ा ही मुग्ध हुआ। ऐसे ही दो पद्यों द्वारा सुरदासजी ने बड़ा ही सुन्दर सन्देश दिया है—मन्दिर अरथ अवधि पिब वदि गयो हरि अहार तरिजात। अजयाभक अनुहा रत नहीं ताते जिय अकुलात।

पति देव मन्दिर की आधी अवधि कह कर गये थे किन्तु हरि (शेर) का आहार (मांस) टला जाता है। अजया (बकरी) का भस्व (खाना) पत्ता बह भी आया नहीं है, इसलिए चित्त पबराता है।

“मघ पञ्चम ले गयो सांवरो कैसे दिवस सिरान्। मघ, नक्षत्र अरु वेद अरथ करि सोई वनत अब स्वात”

मघ पञ्चम त्वारा ले गया अब दिन कैसे कटे। मघ, नक्षत्र और वेद को आधा करि के खाजाना चाहिए। इस अर्थ में कोई गौरव नहीं है अतएव गौरवान्वित अर्थान्तर करना चाहिए। मन्दिर, मफान का आधा भाग पास्व, पत्त १५ दिन का होता है। मांस के अनुस्वार (विन्दी) को हटादे वो रह जायगा मांस। मांस महीना को कहते हैं। पत्ता को पत्र, पत्र को चिट्ठी खत कहते हैं। प्रथम दोहे का बह अर्थ हुआ कि पति देव १५ दिन की कहकर गए थे। अब महीना बीत रहा है न स्वयं आये और न पत्र ही आया है, इसलिये चित्त व्याकुल हो रहा है।

दूसरे दोहे का अर्थ—

मया नक्षत्र से पञ्चम नक्षत्र चित्रा है चित्रा मे से रेफ निकाल दिया जावे तो चित्र रह जायगा, ग्रह ६, नक्षत्र २५, वेद ४ सब जोड़ने से हुए चालीस और चालीस का आधा बीस हुआ 'बीस' वीं "५" को ह्रस्व (छोटी) करदी जावे तो विस हो जावेगा विस जहर को कहते है। सब का यह अर्थ हुआ कि यदि पति देव अपने चित्र को भी मेरे पास छोड़ जावे तो मैं उसके ही महारे दिन काटती रहती किन्तु चित्र को भी ले गए अब दिन कैसे कटे। अब ता जहर खा के प्राणान्त कर देना चाहिए। यदि दोनो दोहो का पहला ही शब्दार्थ ठीक समझा जावे ता उन्मत्त वाक्यवत् उपेक्षणीय ही कहे जा सकते हैं।

प्रति दिन व्यवहार मे आनिवाले शब्दो के अर्थान्तर भी ध्यान देने योग्य हैं। मैने भात को खाया, मच्छरो और खटमलो ने मुझको खाया, जैसे मैने भात को खाया था। कदापि ऐसा अर्थ नहीं हो सकता है। "खाया" यह एक शब्द दोनो जगह अर्थान्तर को द्योतित करता है। वह मनुष्य हलुभा खाता है और रिरवत भी खाता है जिस प्रकार हलुभा दाढ़ से दबोच गले से उतार कर पेट में पहुचाया जाता है, क्या उसी प्रकार रिरवत का भी दौत से खोच कर गले से उदर मे डाला जाता है? कदापि नहीं।

कहीं कहीं किसी किसी विषय का आलंकारिक प्रतिपादन होता है। नेता कैसा होना चाहिए इसके लिए गणेशोपाख्यान अच्छा उदाहरण है। गणेश-गण-समुदाय का, ईश-स्वामी गणपति-गण का मालिक विनायक विशेषरूप से ले चलने वाला। यह तीनों शब्द समानार्थक हैं।

पुराण मे गणेशोत्पत्ति प्रकरण इस प्रकार है कि जया और बिजया नाम की पार्वती की दो सहेली थी। एक दिन इन दोनो ने पार्वती को कहा कि शकर के पास नन्दी भृंगी आदि कई गण है जो उनकी आज्ञा को पालने के लिए सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं किन्तु आप के पास ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो आपकी आज्ञा पालन में प्रवृत्त रहे। पार्वती को यह बात ज्ञेय गई और निरन्तर किया कि अब ऐसा ही व्यक्ति

बनाना चाहिए, जो मेरी आज्ञा के पालन मे ही प्रस्तुत रहे। शरीर के मैल अथवा मिट्टी और पानी के मेल से गणेश बना डाला और दरवाजे पर खड़ा कर हुक्म दे दिया कि किसी को अन्दर न आने देना। जब शकर घर मे घुसने लगे तब गणेश ने उनका रोका। इस अपमान को देखकर शकर ने अपने नन्दी भृंगी आदि गणों को युद्ध के लिए अनुमति दी। युद्ध होने लगा किन्तु शकर के गण पराजित हो गए और विष्णु के पास जाकर पराजय का समाचार सुनाया। अब विष्णु और गणेश का युद्ध होने लगा। शकर ने अबसर पाकर पीछे से आकर गणेश का शिर रज्जुदण्ड कर दिया। शिव गणेश युद्ध तो समाप्त हुआ किन्तु अब मिया। बीबी (शकर पार्वती) मे युद्ध होने की तैयारी को देख समझौता कराया गया। जब तक पुत्र जीवित न हो तब तक मुलह नामा कैसा। तुरन्त एक हाथी के शिर का पेबन्द लगा दिया गया। हाथी का शिर भी ऐसा लगाया जिसमे एक डी दौत था। और सवारी के लिए चूहा मिला।

यह एक अलंकार है। नेता कैसा होना चाहिए, इसको यहाँ अलंकार रूप से कहा गया है। चूहा एक छोटा जन्तु है, बिल और छिद्र करता है, उपयुक्त सामग्री को कुतर कुतर कर छिन्न भिन्न कर डालता है। नेता को चाहिए कि वह छोटे से छोटे व्यक्ति को भी अपने पास रखे जिससे विरोधि समुदाय के सकल सामग्री को कुतर कुतर कर छिन्न भिन्न करदे, कार्य को सज्जिद बनादे। एक दन्त अर्थात् द्रवैत, द्विविधा, सन्देह नेता मे न हो, अपितु एक दन्त, अद्रवैत द्विविधा रहित और सन्देह शून्य हो। कृष्ण-चन्द्रजी महाराज ने इसको प्रकारान्तर से इस प्रकार कहा है "दु खेपु अनुद्विममना सुखेषु विगत सृष्टा"।

हाथी का सब से बड़ा शिर होता है। नेता का भी बहुमतरूपी शिर बड़ा ही होना चाहिए। जिसके मस्तिष्क मे जनता का बहुमत नहीं है वह नेता होने के योग्य नहीं है। यह ही बात यजुर्वेद के पुरुष सूक्त से भी सिद्ध होती है। जिसके मस्तिष्क की आज्ञा में सड़को मस्तिष्क, नेत्र, हस्त और पैर रहे बही (पुरुष) नेता है, दूसरा नहीं। हाथी के शिर कोरखने

मे एक यह भी आशय प्रतीत होता है कि अन्य मस्तिष्को में केवल ज्ञानेन्द्रिय और सू ड कर्मेन्द्रिय भी रहती हैं। नेता ज्ञानी भी हो और कर्मी भी हो।

मैंने पाठको के समस्त अब तक यह प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है कि कहीं कहीं सुन्दर शब्द-सौच में भाव भरे जाते हैं, कहीं एक ही शब्द भिन्न भिन्न अर्थों में व्यवहृत होता है और अन्यत्र आलंकारक वर्णन होता है। जिन मन्त्रों का स्पष्ट अर्थ अवगत न होता हो उन मन्त्रों को परात्त वृत्ति कहते हैं। जो मनुष्य वैदिक रचना शैली से अपरिचित होते हैं वे ही मन्त्रों को दृष्टान्तरूप में प्रस्तुत किया करत हे उसमें कैसा सुन्दर भाव भरा है—मैं अपनी आर स अल्पमति ननु नच न करूँगा, अपितु महर्षि स्वामी श्री दया नन्दजी महाराज ने जो अर्थ प्रतिपादन किया हे उस ही को प्रस्तुत करता हूँ। इसका यज्ञ परक अर्थ इस कार है। यज्ञ रूपी वैलके चार वेद सींग, प्रात, माध्या न्दिन और साय, तीन सबन, तीन पैर, उदय और अस्तकाल दो शिर तथा गायत्री आदि सात छन्द सात हाथ के सदृश हे। मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प इन प्रकारों से बँधा हुआ है ऐसा महानदेव सुखों की वर्षा करने वाला यज्ञ प्रात आदि सबन क्रम से शब्द करता हुआ मनुष्यों में प्रवेश करता है।

द्वितीय अर्थ शब्द शास्त्र परक होता है जिस शब्द शास्त्र के भूत भव्य और वतमान काल तीन पर नाम, आख्यात, उपसर्ग, और नितान्त चार सींग, नित्य और कार्य को शिर के, प्रथमा आदि विभक्तियों सात हाथ के समान है। हृदय, कण्ठ और शिर इन तीन स्थानों में बँधा है वह शब्द शास्त्र ऋग् यजु, साम और अथर्ववेद से शब्द करता हुआ मनुष्यों में प्रवेश करता है।

ऋग्वेद में इस मन्त्र का अर्थ स्वामीजी महाराज ने धम परक किया है—

चार वेद धर्म के सींग कर्म, उपासना और ज्ञान तीन पैर, अभ्युदय और निश्रेयस दो शिर, पाच ज्ञानेन्द्रिय, अन्त करण और आत्मा अथवा पञ्च कर्मेन्द्रिय, अन्त करण और आत्मा सात हाथ के सदृश है। यह धर्म श्रद्धा पुरुषार्थ और योगाभ्यास से बँधा हुआ है।

ऋषि दयानन्दजी की वेद भाष्य शैली यह है। सौन्दर्यसमन्वित वैदिक शब्दार्थ सम्बन्ध क प्रस्तुत रहते हुए क्या कोई सुबुद्धि सम्पन्न सज्जन यह कहने का साहस कर सकता है कि वेदमें वेगनेस(अस्पष्टता) है, कदापि नहीं।



आचार्य स्कन्द स्वामी तथा महर्षि दयानन्द स्वामी

(लेखक—श्री आचार्य विश्वश्रवा)



ति प्राचीन शाखा ब्राह्मण आदि के अतिरिक्त वेदार्थ करने वालों को उपलब्ध सामग्री के अनुसार स्कन्द सबसे प्राचीन और ऋषि दयानन्द सब से अन्तिम हैं। एक द के रिता का नाम भद्रध्रुव

निवास स्थान बलभी और काल सप्तम शताब्दी है। इसकी कृति निरुक्तभाष्य और ऋग्वेद भाष्य प्राप्त हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती श्रीरीच्य ब्राह्मण कुल में मौर्वीराज्य टङ्गारा के जीवापर मुहल्ले में उत्पन्न हुए थे। पिता का नाम करानजी लालजी त्रिपाठी था। जन्म तिथि अरिबन बही सप्तमी संवत् १८८१ है इस सम्बन्ध में स्वामी जी के शिष्य पं० उमालादस का निम्न श्लोक है—
शोणीभाहीन्दुभिरभियुते लौकमे वत्सरे य,
प्रादुर्भूतो द्विजवरकुन दक्षिणे देशवर्षे ।
मूलनासी जननविषये शकरेणोपरेण,
स्वाति प्रापत् प्रथमव्यासि प्रीतिदः सज्जना नाम् ॥

इन दोनों स्वामियों के सिद्धान्तों की तुलना प्रस्तुत लेख में है। उद्धरण सकेत मात्र है, पूर्वापर संगति और पूर्व परिचय मूल ग्रन्थ देखने से होगा।

१—वेद का काण्ड ।

स्कन्द—

तत्र मृष्ट्यादौ य ऋषयस्तं ऽतीतमृष्टावधीनं सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन मन्त्रब्राह्मण स्मरन्ति ॥

निरुक्तभाष्य भाग १ पृष्ठ ११४

दयानन्द—

वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाण्य व्यतीतानि ? अत्रोच्यते एको वृन्दः षण्णवतिः कोटयोऽष्टौ लक्षाणि द्विपञ्चारात्सहस्राणि ।

भूमिका शताब्दी संस्करण पृष्ठ २८३

अर्थात् अन्य मत भेदों के होते हुए भी सृष्टि के आदि में ऋषियों को वेद प्राप्त हुए इसमें दोनों सहमत हैं।

२—वेद और इतिहास

स्कन्द—

श्रीपचारिको ऽय मन्त्रेष्वारुक्वानसमथ परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम् ।

नि० भा० भाग २ पृष्ठ ७८

दयानन्द—

स्वा सरस्वती दुहितरं मैथुनाथ अप्राहेति सा मिथ्यैवास्ति कुतः अस्थाः कथाया अलंकार विषयत्वात्
भू० श० सं० पृष्ठ ६०६
अर्थात् वेद में वस्तुतः इतिहास है यह भी दोनों को सहमत नहीं।

३—वर्षा व्यवस्था

स्कन्द—

“स (वेदापिः) गुर्वनुग्रहान् तेनैव शरीरेण वीतहृत्पयत्त विरवामित्रवक्त्र ब्राह्मणो बभूव” ।

नि० भा० भाग २ पृष्ठ ७१

दयानन्द—

“यस्य वर्षस्य गुणैर्युक्तो वो वर्षः स तत्तदधिकरं प्राप्नोति”

अर्थात् दोनों इस बात में एक मत रखते हैं कि एकही जन्म में वर्ष बदल सकता है।

४—निधोग ।

स्कन्द—

“काचिद् ब्राह्मणी पत्यौ प्रज्जिते कामात्ता प्रज्जति”

नि० भा० भाग २ पृष्ठ २३४

दयानन्द—

‘अन्वमिच्छस्व सुभगे पतिम्’

अन्व पति की इच्छा कर

सत्वा० श० सं० पृष्ठ २१०

अर्थात् यम बर्मा सूक्त निधोग परक है तथा निधोग दोनों की दृष्टि में वैधिक है।

५—उपसर्ग और नाम ।

?

स्कन्द—

“आकार उपसर्गश्छन्दसस्त्वाद्समस्तोऽपि प्रातिपदिकेनैव सम्बध्यते”

नि० भा० भाग २ पृष्ठ ४४५

श्वानन्द—

“आ कृष्येन आकर्षणगुणेन सह वर्तमानोऽस्ति”
भू० श० स० पृष्ठ ४३६

अर्थात् असमस्त भी उपसर्ग को क्रिया के साथ न जोड़ कर नाम के साथ सम्बन्ध कर व्याख्या करने की शैली है ।

स्कन्द— ६—निरुक्तव्याख्या ।

“एक सत् कारणात्माख्य वस्तु”

श्वानन्द— नि० भा० भाग ३ पृष्ठ ८१

“स चैकस्य सद्वस्तुना ब्रह्मणो नामास्त”

भू० श० स० पृष्ठ ६३०

अर्थात् निरुक्तकार ने ‘इन्द्र मित्रम्’ आदि शब्दों में यह बताया है कि परमात्मा के इन्द्र आदि नाम हैं । यह व्याख्या निरुक्त के स्थल की दानो एक प्रकार समझते हैं ।

अनार्षे ग्रन्थों के अभ्यासी या दो चार ग्रन्थ पढ़ कर ऋषि दयानन्द की अशुद्धि या निकालने वालों को यह स्थल विशेष रूप से देखने योग्य हैं कि मन्त्रार्थ—प्रकार मन्त्रार्थ नियाम या किसी सिद्धान्त के सम्बन्ध में दयानन्द ने गल्प हाँही है या वस्तुतः उन्हें कुछ तत्व का पता था । निरुक्त आदि ग्रन्थों के किन्हीं उद्धरणों के जो अर्थ ऋषि ने किये हैं, अनार्षे परम्परा से पढ़ने वाले काश्च नाटकों के अभ्यासी जो उन अर्थों को देख कर असगत दै ऐसा सहसा कहने को तैयार हो जाते हैं उनकी सेवा में निवेदन है कि या ता वे बहु पठित बनें - दो पुस्तकें पढ़ कर ऋषि का निर्णय न करें और यदि बहुत सी पुस्तकों के पढ़ने में आलस्य है तो जिन्हें ऋषि के सिद्धान्त और वेदार्थ शैली पर विश्वास है उनसे विचार कर कि उन्होंने घर बैठ कर अधूरे को निरर्थक किये हैं उनमें किटना सार है ।

[उपर्युक्त लेख में दिये हुये प्रमाण ऋषि की वेदार्थ शैली की विजय कराने वाले हैं । विशेषकर ‘उपसर्ग और नाम’ का विषय अत्यन्त महत्व का है । हम आर्य विद्वानों का ध्यान इधर आकर्षित करते हैं । सम्पादक]

(शान्ति नन्दन विशारद)

“तम पूरित इस घोर निशा मे,
आज उजाला है कैसा ?
दीपावली । बनाया तुमने,
वेश निराला है कैसा ?
क्या जगमग जगमग तारों से,
होड़ लगाने आई हो ?
शरदमखी की रत्न राशि या,
आज दिखाने लाई हा ?
भारत के उस गौरव से हो,
मांद हृदय मे मान रही ?
अपने शतश नेत्र खाल या,
भारत का पहिचान रहो ?

श्री सम्पन्न समुज्ज्वल फिर से,
इसका करन आई हो ?
या फिर इसको स्वर्ग बनाने,
दिव्य शक्तियों लाई हा ?
पुष्पावली वीर पूजा का,
तुमने आज बनाई है ?”
या विजयी का स्वागत करने,
आरति आज सजाई है ?”

* * *

‘भारत भानु दिव्य रत्नाकर,
भारत का गौरव ग्यारा ।
उस भारत को आकर जियने,
इस भारत मध्य उतारा ।।
दू द रही हू उस ही को मै,
आज नही बह मिलता है ।
फूलों की माला सूती है,
मेरी यही विकलता है ।।
थाल आरती का यह मेरा,
यों ही क्या रह जावेगा ?
या माई का लाल सामने,
कोई मेरे आयेगा !

स्थायी ग्राहकों से पौने दाम
मौस्मेरेजम तथा पेगनेरिजम पर अपूर्व ग्रन्थ

क्रियात्मक-मनोविज्ञान



इसमें आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् प० प्रियरत्नजी आर्ष ने अपनी लम्बी खोजों और अनुभवों का सार रस्य दिया है।

यदि आप बर्शीकरण विद्या का रहस्य जानना चाहते हैं, अपनी मानसिक शक्तियों को जागृत करके सब रोगों और दुःखों का इलाज और जीवन-सुधार का अभ्यास करना चाहते हैं, तो आज ही इस ग्रन्थ को खरीद कर एक बार पढ़ जाइए।

प० प्रियरत्नजी आर्ष आर्यसमाज के उन विद्वानों में से हैं, जिन्होंने वेदों का केवल फोरा अध्ययन ही नहीं किया बल्कि वर्षों की तपस्या से योग के सभी अङ्गों का विधिपूर्वक अभ्यास भी किया है और अपने चमत्कारों से अनेक बार राजा-महाराजाओं, बड़े-बड़े वैद्यों और डाक्टरों एवं सिविल सर्जनों को यह प्रयोग देखकर चकित होना पड़ा। गुरुकुल कांगड़ी में भी अपने इन प्रयोगों की बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। यदि आप भी कुछ कमाल जानना चाहते हैं तो आज ही ग्राहक बनिए। मूल्य ज्ञागत मात्र १।)

दयानन्द डायरी। (दयानन्द कलैण्डर = , राधास्वामी मत लावन =) तथा

हर प्रकार की धार्मिक पुस्तकें हमसे मंगाइये।

न्यापारियों को भारी रियायत

भोमसेन वर्मा, अध्यक्ष—आर्य-साहित्य-मन्दिर, ^{दरपताल} रोड लाहौर।

स्थायी ग्राहकों से पीने दाम

पौराणिक पोल-प्रकाश

लेखक—प० मनसाराग "वैदिक तोप"

— मुंहफट पौराणिक उपदेशक कालूराम शास्त्री-लिखित :—

“आर्यसमाज की मौत”

का प्रामाणिक उत्तरों-सहित मुंह तोड़ जवाब !

तैयार हो गया:— — — छप रहा है !!

पौराणिकों को मुंह की खानी पड़ी !

घबड़ाइए नहीं ! ३० नवम्बर तक तैयार !!

इस पुस्तक की उपयोगिता देखकर आर्डरों की संख्या ने
प्रबन्धकों के मुंह में पानी ला दिया !

क्यों न हो —

हैं भी तो आर्य-संसार में बे-जोड़ योजना !!

आज ही ? प्रवेश-शुल्क भेजकर स्थायी ग्राहक बन जाइए, अन्यथा पीछे
संस्करण समाप्त हो जाने पर, लेखक-कृत “वैदिक तोप” की
तरह पड़ताना पड़ेगा !

हर प्रकार के अर्थ साहित्य के लिये सूचीयत मंगाइए

वीमलेन वर्मा, अध्यक्ष:—आर्य-साहित्य-मन्दिर ^{दरस्पताल} रोड लाहौर ।

वेदों का महत्व

(लेखक—स्नातक सत्यव्रत वेदविभागद)

वेदों का हंका आलम मे बजाने के पूर्व बजाने वालों को उक्त वात ठीक ज्ञात होना चाहिए कि वेद हैं क्या चीज ? अगर छोटे मुह बड़े बाल न मानी जाय तो कहने का धृष्टता करूंगा कि ५० साल के बाद भी हमारे छाट भाइयों मे से ऐसे बहुत कम सज्जन निरालेग जो वेदों का स्वाध्याय करते हों ? आर्य समाज की स्थिति को जानने वाले इस स्वाध्याय क्षीनता से खिन्न हैं, क्यों क मनुस्मृति के अनुवादक सर विलियम जॉन्स ने यथार्थ ही लिखा था कि "मैं बड़े बल पूर्वक कहता हूँ कि जब बल पूर्वक नियम पूर्वक वेदों का स्वाध्याय किया जाता था तो आर्यवर्त में बड़े बड़े विद्वान् और सितारे के समान चमकने वाले ज्ञानी पैदा हुआ करते थे। परिस्थिति आज वेद विमुखाता से सर्वथा बदल गई है। जिस 'दयानन्द वेदो वालों' ने वेद के स्वाध्याय प्रचार के लिए समय जीवन समर्पित किया उनी दयानन्द के अनुयायी हम लोग वेद स्वाध्याय से विमुक्त हो, यह कैसी आश्चर्यजनक बात है ? हाँ, यह ही सकता है कि सभी वेदों की गहराई तक नह। पहुँच सकते, अगर जिनका स्वाध्याय की रुचि है, वे इतर जनों के स्वाध्याय फल से कुछ लाभ सद्भाव पूर्वक उठा सकते हैं। ऐसे ही पाठकों के लिए यह मेरा नम्र प्रयास है। न मैं कोई वैर का पक्षित हूँ, न वेदों की गुणियों सुलभाने की योग्यता रखता हूँ मैं तो एक मामूली विद्या लिप्त हूँ।"

वेद और वेदस्—वेद में वेद यही एक शब्द नहीं उस मे वेद और वेदस् ऐसे दो शब्द हैं। वेद शब्द पुल्लिङ्ग है, और वेदस् नपुंसक लिङ्ग है। ये दोनों वेद और वेदस् शब्द विद्वान्तु से निष्पन्न होते हैं। कर्णार्थ में घञ् प्रत्यय होने से वेद शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ ज्ञान होता है, और विद्वन् लृगः "विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभन्ते वा परिर्वर्मादिपुरुषार्था

दतिवेदाः "जित से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चारों पुरुषार्थ जाने जाते हैं उनका नाम वेद है" ऐसा कहने है। वेदों के भाष्य कार श्री सायणाचार्य उस का व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं—

इष्ट प्राप्त्यनिष्ठपरिहारयोरलौकिकमुपाय यो भन्था वेदयति स वेदः" अथ-इष्टार्थ की प्राप्ति और आन्तर्गतों का निवृत्ति के लिए अलौकिक उपाय को दिखाने वाला वेद है।

महर्षि दयानन्दजी महाराज ने वेदशब्द की व्युत्पत्ति अपने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका प्रथ मे इस प्रकार से की है—

"विदन्ति-जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते इन्द्रति विचारयन्ति सर्वे मनुष्या सर्वा सत्य विद्या देतेषु वा तथा विद्वान्तरथ भवन्ते तु वेदाः" अर्थात् जानते है, प्राप्त करने है, विचार करते हैं सर्व मनुष्य सर्व सत्य विद्याओं को जिनसे अथवा जिनमे और विद्वान बनते हैं उनका नाम वेद है।

'वेदम्' शब्द का अर्थ 'घन' और 'ज्ञान' ऐसा अनेक स्थलों पर आा है। श्री यास्काचार्य ने निष्पट्ट (२ : १०) 'घननामानि शब्दमाला में 'वेदस्' शब्द का उल्लेख 'मघं, रेक्य, रिक्थं वेद. रूप में किया है। अगर 'जातवेदस्' शब्द की निरुक्ति करते समय 'जातविन वा जातिपन, इसके स्मथ साथ, जातविश व जान प्रज्ञान', ऐसा भी किया है। इससे 'वेदस, शब्द का अर्थ 'ज्ञान, भी श्रीसास्कमुनि को मान्य था. ऐसा प्रतीत होता है। श्री सायणाचार्य ने ऋग्वेद २- ७-६ के विरवरनाश अनुषो वेदसम्परि मंत्रार्थ मे वेदस. का अर्थ उरुकृष्ट ज्ञानान् ऐसा किया है। आगे ऋग्वेद ३ ६०-२ इहेह वा मनसा बन्धुता नर उशि जा जग्मुभितानि वेदसा मंत्र मे वेदस् का अर्थ यज्ञ भाग १५६ कर्मविषयकज्ञानेन, ऐसा ज्ञानार्थक किया और ऋग्वेद ४ : २५। ७ आत्य वेद सिदन्ति

हस्तितनयनं' में वेद का अर्थ ज्ञान वा 'धन वा ऐसा करते हैं। मगर मित्रिथ साहच्य तो उक्त तीनों स्थलों पर केवल धन (wealth) अर्थ ही करते हैं।

'वेदस्', के धनपरक अर्थ तो अनेक स्थलों पर आते हैं मगर एक ही मन्त्र में श्री सायण और महीधर 'ज्ञान, और 'धन' ऐसा भिन्न भिन्न अर्थ करते हैं। पृथानी यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदन्ध स्वस्तये" मन्त्र ऋग्वेद १।१६।५ में आता है और (शुक्ल) यजुर्वेद २५।१० में भी आता है। उपर्युक्त ऋगमन्त्र में 'वेदस्', का अर्थ सायण 'धन, करते हैं और महीधर यजुर्वेद में उसका अर्थ 'ज्ञान करते हैं जब सायण और महीधर की यह दशा है, फिर मि. मित्रिथ की कौन कहे? इसी मिलसिले में वेदार्थ को दुरुहता के बारे में प्रो. मेक्सम्युजर की बात याद आती है, जो उन्होंने अपने ग्रन्थ भारत हमको क्या सिखा सकता है, (India, what can it teach us) में कही है कि "मैंने स्वयं तीस वर्ष के सतत स्वाध्याय और परिश्रम के बाद ऋग्वेद के कई मन्त्रों का अनुवाद किया है वह नमूना के तौर पर कलित है। हम तो अभी तक वैदिक साहित्यरूपी समुद्र की सतह पर फिर रहे हैं। कोई और विद्याकीपुराना स्मारक समार में ऐसा शिक्षादायक और लाभदायक नहीं है जैसा कि वेदों का स्वाध्याय।" आकारोंत शब्द वेद' सारी ऋक्संहिता में सिर्फ एकही स्थल पर आया है। वह मन्त्र यह है "यः समिधा य आहुती यो वेदेन द्वाशा मर्तो ऋग्नये नमसा स्वध्वर" (१११।५) डधर 'वेदेन' पद का अर्थ वेदाध्ययनेन ब्रह्मयज्ञेन" ऐसा अर्थ सायणाचार्य ने किया है मगर विद्वान् प्रो० मोक्षमूलर ने 'वेद, वा अर्थ 'कुशमुष्टि (Broom) किया है और मित्रिथ महादयने वेद का अर्थ विधिविद्य (Ritual Lore) कर दिया है? मगर यह तो शायद यह प्रकरण में कहीं कहीं 'वेद, पद का अर्थ दर्भपिञ्जल वा मार्जनी परक होने को आभारी है जैसा कि भीमांसा ने 'वेदं कृत्वा वेदिं करोति" वाक्य प्रमुलता से आया है।

'वेदस्' शब्द यजु और सामवेद में शायद ही कहीं कहीं आया हो, विशेषतया वेद शब्द बहुता-

यत से पाया जाता है, अतः 'वेद' शब्द का ऋग्यजु सामाथर्ष के समुच्चयार्थ में पाया जाना सहज है, जैसा कि "ऋच साम यदप्राचं हविरोजो यजुर्बलम्।"

एषमा तस्मान्मा हिंसीत् वेद' पृष्टः शचीपते ॥
अथ० ७५७-१.

यहाँ पर सायणाचार्य ने 'वेद' का अर्थ "एष वेदं ऋक् साम यजुरात्मकः" ऐसा समुच्चयवाचक किया है; और अथर्व १६-९-११ "ब्रह्म प्रजापतिर्घाता लोक्यः वेदाः सर्पतश्चयोजनय" में 'वेदः' का अर्थ "धत्वारः साङ्गा वेदाः" ऐसा अर्थ किया है, इसी तरह आज 'वेद' पद का अर्थ चारो वेद ऐसा समझने हैं और 'विदुःज्ञाने', 'विदुः विचारणे', 'विदुः सत्तायाम्' और 'विदुःलालसे' इन अर्थों में किवा-नुकूल भी भिन्न-भिन्न अर्थ वेद के होते हैं। ज्ञानार्थक में वेद एक है; परा अपरा दोनो विद्याएं वेद में निहित हैं, अत वेद दो हैं, ज्ञान-कर्म-उपासना श्रेय से वेद में त्रयी विद्या का विवरण होने से वेद तीन भी हैं; और ऋग्यजुसाम और अथर्व इन विभागों में वेद चार भी हैं। इस प्रकार से एक तार्किक विचार-धारा आजकल आर्यसमाज में बढ़ती हुई दमोचर होती है। आखिर 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' तो है ही।

वेद का महत्व

'वेद शब्द का और 'वेदस्' शब्द का विवरण छोड़ कर अब देखना है कि जिन वेदों के बारे में प्राचीनकाल से लेकर आज तक के विद्वान् इनना परिश्रम करते चले आये हैं, उसका कारण—उसका महत्व क्या है? यह तो एक स्वतन्त्र निबन्ध का विषय है, मगर यहाँ संक्षेप से अवलोकने करें तो अनुपपुक्त नहीं होगा।

बोकासा भी जिसको संस्कृत का ज्ञान है, उसको मालूम होगा कि गौतम संहिता में आया हुआ 'वेदो ऽस्त्रलो धर्ममूलम' वेद समग्र धर्म का मूल है ऐसा सूचित करते हैं, श्री अत्रि महाराज नासि वेदाख्ये शास्त्रं नासिताशुः समाशुः' कह कर वेद से बढ़ कर कोई दूसरा शास्त्र नहीं, इस प्रकार वेदों का गौरव गान करते हैं।

बौद्धावन सूत्रकार जिसको "प्रणवात्मकोषेदः कश्च" "प्रणवो ब्रह्म" तक की कक्षा देते हैं वे एकौल औरानसंस्मृतिके 'सर्वेषामेवभूतानां वेदरचसू, सनातनः सनातन वेद सब भूतों की बसु हैं, यथा' कइते हैं; (मगर उनसे कोई देखनेका कष्ट उठावे तब न ?)

'उर्ध्वर्वादिरोम्येष न च कश्चित्कृतु षोतिमे' की फर्साद करने वाले वेदव्यासजी भी कहते हैं कि 'धर्म' जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं अति.—वर्म जिज्ञासुर्भों के लिए अति ही परम प्रमाण है। क्यों कि 'वेदे सर्वे प्रतिष्ठितम्' वेद में सब कुछ प्रतिष्ठित है, अतः "सर्वं विदुर्वेदविद्" वेद के जानने वाले सब कुछ जान सकते हैं। इसमें भी० याज्ञवल्क्य महा-राज की भी निम्न संमति है.—

'न वेद शास्त्रादन्यत् किञ्चित्त्रास्त्रं हि विद्यते' वेदों से बढ़ कर अन्य शास्त्र धराधाम पर विद्यमान ही नहीं, इसलिए कि —

'वि.सूतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात्सनातनात्' सनातन वेद से ही सर्वशास्त्र निकले हुए हैं। भला, इस दावे के आगे ईसाई, मुसलमान, जैन पारसी आदि के दावे कहाँ ठहर सकते हैं? कहीं भी नहीं। क्यों? इसका भी उत्तर लीजिए—

"दुर्बोध्यन्तु भवेद्यस्मा दध्येतु" नैव शक्यते त्वयादुदृत्य सर्वं हि शास्त्रं तु ऋषिभिः कृतम् ।" अतः वेदों के समझने और पढ़ने की शक्ति लोगों में नहीं, अतः ऋषियों ने—वेद से ही तत्व निकाल कर शास्त्रों का निर्मास किया।

इन सारी बातों को लक्ष्य में रख कर ही पूर्व काल से महर्षि मनु ने आदेश दिया फिर.—
बोऽनाधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुठेतममम् ।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति साम्भयः ॥

जो द्विज होकर वेदों की न पढ़े और अन्य भ्रम करे, वह इसी जीवन में अति शीघ्र अपने कुछ शक्ति शूद्रत्व को प्राप्त होता है।

अतएव महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज का वीसरा नियम वेद का पढ़ना, पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म निश्चित किया।

हमारे देश के ही शास्त्रकार वेदों की महत्ता गाते ही ऐसा बात नहीं किन्तु पाश्चात्य पंडित गण भी इन बातों को दुहराते हैं। प्रो०मेक्समूलर ने ऋग्वेद को सत्तर के सर्वा प्रन्थालयों में सर्वा प्रथम प्रन्थ होने का कडा है। यथात ता सबका विदि ही है। मोलियर विलियम ने भी लिखा है कि जब आर्यों में ऋग्वेद प्रचलित था तब वे सभ्यता की चोटी पर पहुँचे थे।

और मि० फिलिप ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि वेद न कवल आर्यजाति की पुस्तक हैं, बल्कि वे तमाम सत्तर यात्री मनुष्य मात्र के लिए अस्तित्व प्राचीन धर्म प्रन्थ हैं।

ब्लूमफील्ड महोदयने लिखा है कि ऋग्वेद अपने आदर्श का अन्तिम और अद्भुत पुस्तक है। उसमें सुन्दरता सम्पूणता और शुद्धता पाई जाती है" आदि आदि। इस प्रकार अनेक विद्वान कह गये लिखने वाले लिख गये और सुनाने वाले सुन गये। पुरन्तु अब यह हमारा कौन्य रह जाता है कि हम वेद-स्वाध्याय के उचित मार्ग पर आर्वे येनेष्ट तेज गन्धता। जहाँ चाह है वहाँ राह है मगर वह न भूलोना चाहिए कि—

"कर्मानुरूपणि शुभा शुभानि प्राप्नोति सर्वा हि जन कर्मानि,"

पति पत्नी का प्रेम

जब विवाह होवे तब स्त्री के साथ पुरुष और पुरुष के साथ स्त्री बिक चुकी अर्थात् जो स्त्री और पुरुष के साथ हाव, भाव, नख-लिखाप्रवर्तन को कुछ हैं वह जोर्यादि एक दूसरे के आधीन होजाता है। स्त्री वा पुरुष प्रसन्नता के बिना कोई भी व्यवहार न करे। इनमें बड़े अभियंकारक व्यवहार वेदका पुरुष गमनादि काम है इनको छोड़ के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्रीके साथ पति सदा प्रसन्न रहें।

दृष्टिकोण

(ले०—श्री प्रो० देवकीनन्दनजी शर्मा एम० ए०)

किं
सी व्यक्ति अथवा समाज के जीवन-निर्माण में दृष्टिकोण का महत्व कुछ कम नहीं। जो मनुष्य अथवा जाति उन्नति की आरंभ करती है उसका दृष्टिकोण नीचा होता है।

किन्तु वह दृष्टिकोण कैसा बुरा! मनुष्य की नाना प्रकार की इच्छायें होती हैं। ये इच्छायें मिलती जुलती भी होती हैं, जैसे लड़कूँ पाने और दूध पीने की, परन्तु साथ ही इस प्रकार की विरोधी भी होती हैं, जैसे ईश्वर प्राप्ति और मदिरा पान का। उन्नत इन इच्छाओं की पृथक् पृथक् कोई स्थिति नहीं होती इन में संगठन होता है। किन्तु निम्न सिद्धान्त तन्तुओं में ये बंधी रहती हैं वे भिन्न हो सकते हैं। यदि भगवद्भजन, साधु संगति तथा वेदगव्ययन की इच्छायें एक सिद्धान्त पर संगठित हों तो मदिरापान, व्यभिचार तथा मांस भक्षण की इच्छायें दूसरे सिद्धान्तों पर। इस प्रकार मनुष्य की इच्छायें भिन्न भिन्न सिद्धान्तों पर आश्रित भिन्न भिन्न वर्गों (universes of desires) में विभक्त हैं। इन्हीं भिन्न दृष्टिकोण (points of view or selves) भी कह सकते हैं। अब मनुष्य के स्वभावानुसार इन इच्छासमूहों का भी वर्गीकरण होता है। कोई एक इच्छा समूह का सर्वोच्च स्थान देते हैं तो अन्य दूसरे को। जो साहसी पुरुष है, उन में साधारण तथा साहस सम्बन्धी इच्छाओं का वर्ग प्रधान रहता है, जो कामी पुरुष है उन में बहुधा इन्द्रिय तृप्ति सम्बन्धी काम रूप वामनाओं का वर्ग प्रधान रहता है, आचार शास्त्र की दृष्टि से जिस प्रकार के इच्छा वर्ग को मन में प्रधानता दी जायगी, उसी प्रकार का आचरण अथवा दृष्टिकोण उस का बन जायगा। अतः सदाचार निर्माण में उचित दृष्टिकोण का स्थान सर्वोच्च होना आवश्यक है।

उदाहरण के लिए पञ्चाय में सैनिकों जात पाँत के मनुष्य रहते हैं। किन्तु साधारणतया उनका दृष्टिकोण उनकी उदरपूर्ति विषयक इच्छाओं की पूर्ति में ही सीमित रहता है। किन्तु उनमें से कुछ व्यक्तियों ने अपनी जाति पर किये गये अत्याचारों को न सहन करने का बोझ उठाया उनके हृदय में अपने धर्म की रक्षा की अग्नि धधकने लगी। फल यह हुआ कि थोड़े से व्यक्तियों की समाज होने पर भी आज उनके साहस उनकी वीरता, उनके बल और संगठन के सामने अन्य जातियाँ शिर झुकाती हैं। वह सब केवल दृष्टिकोण में परिवर्तन का ही फल था। अन्यथा सब पञ्चायियों का रहन सहन, खान पान, जलवायु तथा इतिहास तो लगभग समान ही हैं, परन्तु दृष्टिकोण में परिवर्तन ने सिरों को यस्तुत नरसिंह बना दिया जबकि अन्य जातियों जैसी की तैसी बनी रही।

श्री स्वामी दयानन्द का ध्येय भी समस्त हिन्दुओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन करना ही था। उन्होंने यही किया भी, उनकी शिक्षा का बीज मन्त्र था, 'कुरुवन्तो विश्वमार्यम्'। कितना परिवर्तन! कहा तो हिन्दू लोग विधियों के ब्रास बने जा रहे थे कहाँ स्वामी जी ने कहा कि जातियों की भाग दौड़ में आचरण का सर्व श्रेष्ठ उपाय दूसरों के अनुचित बल का कम करना है। बस इसी दृष्टिकोण के परिवर्तन के अन्तर्गत आचरण के कितने ही दृष्ट सुधार आ जाते हैं, जैसे निर्भीकता, स्वधर्म प्रेम, शोषण में लगेन तथा समानता जब तक आर्य समाज अपने बच्चों के कान में आरम्भ से ही उपर्युक्त बीज मन्त्र न फूँकेगा, आर्य आचरण की रक्षा—आर्य धर्म और प्राचीन भारतीय संस्कृति की रक्षा नितान्त असम्भव है।

यह दूसरा प्रश्न है कि इस दृष्टिकोण का परिवर्तन कहाँ तक धर्म नीतिसे सम्बद्ध है। इसी प्रश्न पर

एक समस्या

(ले०—श्री० पं० गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय)



क समस्या कुछ काल से मेरे मस्तिष्क में घूम रही है। यह कुछ नई नहीं है परन्तु आजकल मेरे मस्तिष्क पर इसका विशेष आधिपत्य है। मैं इसका समाधान नहीं साध सका, इसीलिये लिख रहा हूँ।

आर्यसमाज एक संस्था है धर्म नहीं है, पिछले दिनों मेने अपने स्कूल के छात्रों का लिखा था कि AryaSamaj is an organisation not a religion इस संस्था का उद्देश्य वैदिकधर्म का पुनरुद्धार है, its aim is to revive old Vedic religion

मैं समझता हूँ कि मेरे इस कथनमें किर्माका भी आपत्त न होगी। इसका अर्थ यह है कि ऐसे पुरुष हो सकते हैं जो स्वामी उद्यानन्द के मतानुसार वैदिकधर्मियों हैं, परन्तु किसी आर्यसमाज के सभासद न हों। मेरे तो समझता हूँ कि ऐसे सैकड़ों पुरुष हैं। यह भी हो सकता है कि एक मनुष्य आर्यसमाज का सभासद हो परन्तु वस्तुतः वैदिकधर्म न हो, यह बात प्रकट रूप से तो कठिन है परन्तु किसी किसी अंश में यह भी सर्वथा असत्य नहीं है, आप कहेंगे कि इसमें समस्या किस बात की? परन्तु ठहरिये मैं समस्या को स्पष्ट किये देता हूँ। मेरी समझ में समान के उपनियम कुछ इतने कठिन हैं कि थोड़े दिनों बाद सनातन धर्मियों और आर्य समाजियों में मतभेद रहता है। किन्तु स्वामी जी का यह विश्वास था कि यदि उपयुक्त सिद्धान्त का प्रयोग हिन्दू लोग न करेंगे तो प्राचीन सभ्यता, जिसकी किञ्चित् मूलक उपनिषदों में दिखाई देती है लुप्त हो जायगी और इसके ह्रास के साथ ही समस्त मनुष्य समानता जो भौतिक उन्नति के उवालामुखी पर्वत के साथ खेल रही है, मर्दाना हो जायगा।

बहुत लोग आर्य सभासद नहीं रहते। इतने में ही कोई आर्गना न थी। परन्तु तमारा यह है कि समाज से नाम कटने ही वह वैदिकधर्म भी नहीं रहते। सैकड़ों मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो न केवल सभासद ही किन्तु पदाधिकारी भी रहे। परन्तु ज्यों ही उनका नाम कट गया वह उदासीन और उनके सम्बन्धी फिर पौराणिक हो गये। इसमें सन्देह नहीं कि आर्यसमाजों और आर्यसामाजिकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हाते जाती है। परन्तु नये नये आते रहते हैं और पुराने जाते रहते हैं। यह बात यू० पी० के तो प्रायः प्रत्येक नगर और ग्राम में मिलेगी। समस्या यह है कि इसका क्या इलाज किया जाय? एक मुसलमान किसी सोसायटी का सभासद हो या न हो मुसलमान रहता ही है। इसी प्रकार ईसाई भी। इसी प्रकार जैनी आदि। परन्तु हमारे वैदिकधर्मियों होने का सम्बन्ध आर्यसमाज की सभासदी से है। जहाँ रजिस्टर से नाम कटा और हम खिसके। यदि इच्छा से न सही तो बिना इच्छा के ही। और समाज के रजिस्टर से नाम कटने के एक हप्ता एक कारण हो सकते हैं जिनका दुहराना व्यर्थ है। जितना अधिक हम सगठन-सगठन चिल्लाते हैं हमारा शीराजा बिखरता चला जाता है।

यदि कोई महानुभाव इस समस्या का इलाज बतावेगें या मुझे ऐसा अनुभव करादेगें कि यह राग नष्ट मेरा भ्रम मात्र है तो भी मैं कृतज्ञ होऊँगा। ऋष्यक के पाठकों के लिये किसी गूढ सिद्धान्त सम्बन्धी विषय पर लिखनेकी आपेक्षा मैं यह अपनी समस्या भेद करता हूँ। आशा है कि श्री सम्पादकजी क्षमा करेंगे। मेरे लिये तो यह एक टेढ़ा व्यावहारिक प्रश्न है।

मुक्त-अवस्था-विचार

(ले०—श्री पं० जगदेवजी शास्त्री)



प काल के पश्चात् महर्षि दयानन्द ही प्रथम आचार्य हैं कि जिन्होंने मुक्ति से पुनरावृत्तिवाद की बड़े प्रबल प्रमाणों द्वारा घोषणा की। यह निश्चित है कि मुक्ति ज्ञान और कर्म के समुच्चय से होती है यतोऽन्यदय निश्रेयस सिद्धिः सधर्मः

अर्थात् निश्रेयस (मुक्ति) धर्म जन्म है। "धर्म युक्त कर्म करना और अधर्म को छोड़ देना ही मुक्ति का साधन है-अपि दवानन्द" स्पष्ट हो गया कि मुक्ति धर्म से प्राप्य है। धर्म और अधर्म का हम विद्या (यथार्थ ज्ञान) से जान सकते हैं। 'तमेव विदित्वा-सियुष्युमेति-यजु०' अर्थात् ज्ञान से बन्धन दूर हो सकता है। मुक्ति का शब्दार्थ "छूट" है, अर्थात् कोई प्रतिबन्धन न होना। बन्धन से छूटा हुआ जीव मुक्त कहता है। बन्धन हट जाने पर जीव स्वतन्त्र हो-जाता है। चूंकि मुक्ति प्राप्य है अतः अनित्य है। मुक्ति में जीव नियत काल तक आनन्द प्राप्त कर पुनः अपने स्वाभाविक गुण अल्पज्ञता को प्राप्त हो जाता है। स्वामी शंकराचार्य जी मोक्ष को नित्य मानते हैं। चूंकि वह जीव को ही ब्रह्म मानते हैं, अतः ब्रह्म भावी मोक्ष" अर्थात् ब्रह्म हो जाना ही मोक्ष है, ऐसा वे स्वीकार करते हैं। इस कारण उनके मत में मुक्ति नित्य हुई। वह मोक्ष को साधन जन्म नहीं मानते। इससे बरते हैं, यथा—“साध्यश्चेन्मोक्षोऽभ्युपगम्यते, अनित्य एव स्यात्” अर्थात् मोक्ष साध्य हो जावे तो अनित्य भी हो जावे। आगे कहते हैं “नित्यश्च मोक्षः” मुक्ति नित्य है। यहाँ उनका दिया हुआ हेतु भी देखने योग्य है। “सर्वैर्लोकादिभिरभ्युपगम्यते” अर्थात् सब मोक्षवादि नित्य स्वीकार करते हैं। एक स्वप्न और भी देखिये—“न चाप्यत्वेन कार्यापिक्त्वा स्वात्मस्वरूपत्वे सत्यनाप्यत्वान्” अर्थात् मोक्ष प्राप्य होने पर भी कार्य नहीं है क्योंकि ब्रह्म स्वरूप होने के कारण अनाप्य (अप्राप्य) है। एक ही वाक्य में मोक्ष को अप्राप्य और अनाप्य मान लिया। किन्तु बड़ा तार्किक

और उसकी मुक्ति किन्ती लघु और भद्दी, क्या कर विचारे असत्य सिद्धान्त मान बैठे। हमारे मतमें मुक्ति प्राप्य है, अतः अनित्य है। “अविद्याया सृ-युं तर्त्वा विद्यायाऽमृतमश्नुते” यजु० अर्थात् ज्ञान और कर्म से दुःख दूर करके अमृत मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त करता है। वेद प्रमाण से सिद्ध हो गया कि मुक्ति प्राप्य है अतः कार्यापिक्त्वा होने से अनित्य है। यह ध्रुव सिद्धान्त है। इसको हम आर्य समाजियों ने माना है। परन्तु स्वाध्याय के अभावके कारण हम यह नहीं जानते कि मुक्ति के पूर्व, मध्य में और पश्चात् मुक्त आत्मा की क्या अवस्था होती है। आर्य विद्वाना में भी इस सम्बन्ध में अनेक विवादास्पद विचार पाये जाते हैं। जिनके कारण आर्य जनता भी समझे प्रस्त है। यहाँ निम्नलिखित प्रश्न विचारणीय है। (१) मुक्ति से पूर्ण कर्म शेष रहते हैं वा नहीं? यदि रहते हैं तो शुभ अशुभ अथवा दोनों—क्या व्यवस्था है? यदि नहीं रहते तो मुक्ति के पश्चात् बिना कर्म के शरीर कैसे मिल सकता है? (२) क्या मुक्ति काल में भी शरीर रहता है? (-) क्या मुक्तिकाल को अर्धदि सव मुक्तों के लिये एक जैसी नहीं है? (४) क्या मुक्ति काल में परोपकारार्थ स्थूल शरीर धारण किया जा सकता है? (५) क्या मुक्त आत्मा गर्भ में नहीं आता? क्या उस का जन्म सृष्टि की आदि (अमैथुनी सृष्टि) में ही हो सकता है? (६) क्या वेदोक्त प्रकाश सर्गारम्भमें मुक्तों के ही हृदय में हो सकता है? इन प्रश्नों के सुलभने पर अवान्तर भेद भी ठीक हो जावेगे। अब इन पर क्रमशः प्रश्नोत्तररूप में विचार करते हैं। (प्रश्न) मुक्ति से पूर्ण कर्म शेष रहते हैं वा नहीं? (उत्तर) रहते हैं। (प्रश्न) “तीयन्ते चास्य कर्माणि” अर्थात् सब कर्म नष्ट हो जाते हैं फिर कैसे कहते हो कि कर्म शेष रहते हैं। (उत्तर) कर्माणि शब्द का अर्थ यहाँ दुष्ट कर्म अर्थात् मुक्ति विरोधी कर्म है। यही अर्ध अपि दयानन्दजी ने सस्यार्थप्रकाश में किये हैं। अर्थात्

दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं। योग दर्शन में देखिये—“ततः क्लेशकर्म निवृत्तिः” अर्थात् क्लेश दायक सब कर्म छूट जाते हैं। “दोषबीजक्षयै कैव-
ल्यम्” अर्थात् दोष के कारण दुष्ट कर्म नाश होने पर मुक्ति होती है। न्यायदर्शन में भी लिखा है—
“न प्रवृत्ति प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य” अर्थात् जिस के क्लेश कर्म नष्ट हो गये हैं, वह फिर जन्म धारण करने में प्रवृत्त नहीं होता। वेदान्त दर्शन इस विषय पर खुब विस्तार से विचार किया है। केवल दो सूत्र यहाँ उपस्थित करना हैं। ‘तद्विषयमेतन्न पूर्वाचयोरलक्ष्य विनाशौ तद्व्यपदेशात्’ अर्थात् जीवन मुक्त हो जाने पर आगे कोई पाप कर्म नहीं होता और पूर्वकृत पाप का नाश हो जाता है। क्या कि ऐसा ही उपदेश पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो गया कि पाप कर्म ही नष्ट होते हैं सब नहीं। “इतरस्या-
प्येवमसंश्लेष पाते तु” अर्थात् पाप कर्म से इतर शुभ कर्म का भी (पात) मुक्तिकाल में (असंश्लेष) सम्पर्क नहीं होता। ठीक है, शुभ कर्म मुक्ति समय में फल नहीं दे सकता, परन्तु मुक्ति के परचात् कौन रोक सकता है। इस सूत्र में इतर अर्थात् शुभ कर्म का केवल असंश्लेष माना है, नाश नहीं और वह भी मुक्ति समय में ही। इस बात का ‘पाते’ बहुत साफ का रहा है। यद्यपि इस सूत्र की शङ्कर स्वामी ने अन्यथा लगाया है, परन्तु उनको भी इतना मानना हो पड़ा है कि ‘न हि वय कर्मण फलदायिनी शक्तिमवजानीमहे विप्रन एव सा। सा तु विद्यादिना कारणांतरेण प्रतिषेधत इति वदाम - अर्थात् हम कर्म की फल देने वाला शक्ति से इनकार नहीं करते, वह है परन्तु विद्या कारणांतर आदि से रुकगई है।” कहिये विद्याआदि कारणांतर दृष्ट जान पर उसकी शक्ति क्यों न काम देगी ? मुक्ति से बाहर कर्मों न कर दिया जावेगा। मुक्ति समाप्त होने ही शुभ कर्म जन्म के कारण हो जावेगे। इतने सन्दर्भ से स्पष्ट हो गया कि “क्षीयन्ते चास्य कर्माणि” में कर्माणि” पद का अर्थ दुष्ट कर्म ही है न कि सब कर्म इस श्लोक को पूरा देखने से भी यहाँ बात स्पष्ट होती है अर्थात् ‘मिथ्यते हृदयमग्नि शिल्पयन्ते सर्व सशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्ष्टे परावरे ॥” अविद्या

नष्ट हो जाती है तत्त्वज्ञ हो जाता है सब सन्देह दूर हो जाते हैं। अविद्या कृत कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। यही प्रमुख करना प्रकरणानुकूल और युक्तियुक्त है। शुभ कर्म मुक्ति के परचात् जन्म के कारण हो जावेगे। कर्म शेष न मानना ईश्वराराचार्य की नकल है। अतः सिद्ध है कि विना कर्म के शरीर नहीं मिल सकता। (प्रश्न) मुक्ति में शरीर रहता है वा नहीं। (उत्तर) स्थूल शरीर नहीं रहता किन्तु सूक्ष्म शरीर अवश्य रहता है। जब मुक्ति से पूर्व के कर्म शेष हैं और उनको वासनाएं भी हैं तब सूक्ष्म शरीर अवश्य रहेगा। (प्रश्न) ऋषि दयानन्दजी मुक्ति में शरीर नहीं मानते। (उत्तर) यह बात अशुद्ध है। ऋषि ने कहीं कहीं लिखा कि सूक्ष्म शरीर नहीं रहता। यह लिखा है कि स्थूल शरीर नहीं रहता। देहो स० प्र० में नवम समु०—“इन १७ तत्त्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्म मरणान्तर में भी जीव के साथ रहता है। यहाँ जाति से मुक्ति का ही ग्रहण है, क्योंकि जन्म मरण से पृथक् मुक्ति ही है। अन्य कुल नहीं। और भी आगे देखिये— इसके दो भेद हैं एक भौतिक जो सूक्ष्म भूतों के अशरीर से बना है। दूसरा स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुणरूप है। यह दूसरा भौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है।” यह अतिना स्पष्ट है कि मुक्ति में सूक्ष्म शरीर रहता है। स्थूल और शरीर का नियेष ऋषि दयानन्द जी कर ही चुके थे। और भी हैं देखिये— वे मुक्तजीव स्थूल शरीर छोड़कर सङ्कलन मय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विद्यमान कर्माणि शरीर वाले होते हैं वे सांसारिकदुःख से रहित नहीं हो सके हैं। यहाँ सङ्कलन मय शरीर से भी सूक्ष्म शरीर का ही ग्रहण है। जिसमें विचारार्थक मन आदि तत्व होंगे। दूसरे सङ्कल्प का अर्थ यदि भिन्न किया जावे, तब भी शरीर का भाव तो रहा ही। ऋषि दयानन्द ने जहाँ जहाँ पर लिखा है कि शरीर नहीं रहता वहाँ उनका अभिप्राय स्थूल शरीर स ही होता है। शरीर मात्र से नहीं। यह बात उपर्युक्त स्वयं वचन से स्पष्ट हो गई। ऋषि ने एक प्रश्न में लिखा है कि “मुक्त जीव का स्थूल शरीर होता है वा नहीं”। यदि ऋषि का अभि-
प्राय मुक्ति में शरीर मात्र का अभाव होता तो प्रश्न में केवल स्थूल का ग्रहण न करते किन्तु यह क्लेश कि

मुक्ति में शरीर रहता है वा नहीं। अब ऋषि का अभिप्राय स्पष्ट है, कि सूक्ष्म शरीर मुक्ति में रहता है (प्रश्न) मुक्तिकाल की अवधि सब मुक्तों की एक जैसी है वा भिन्नभिन्न। (उत्तर) एक जैसी। अर्थात् ३६ सश्ल बार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय काल के समय की बराबर। इसी को परान्त काल कहते हैं। (प्रश्न) एक नवीन ग्रन्थमें आर्य समाजिक एक उच्च अधिकारी ने लिखा है कि मुक्ति भोग का समय सबका एक जैसा नहीं होता। (उत्तर) यह बात अशुद्ध है। आर्य समाज के उच्च अधिकारी होने से कोई वेदाचार्य बोके ही बन जाते हैं। उनको यह बात प्रमाणशून्य होने से स्थाप्य है। दुष्ट कर्मों का अभाव ही मुक्ति देता है। यह अभाव सब मुमुक्षु लोगों का एक जैसा होता है। फिर फल में भिन्नता कैसे हो सकती है। प्रमाण भी हमारी बात की पुष्टि करते हैं। परान्त काले परिमुच्यन्ति सर्वे” यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते अर्थात् एक परान्त काल तक ब्रह्मलोक की आयु है। इसके परचात् ही मुक्ति से लौटते हैं। अथर्ववेद का एक स्पष्ट प्रमाण देता है।

‘प्रपद्येव नेनिधि दुश्चरित यच्छचार शुद्धैः शकैराक्रमता प्रजानन्। तीर्त्वांनमांसि बहुधा विपर्य-
ज्जत्रो नाकमाक्रमतां तृतीरम् ॥९५-३॥ यहाँ स्पष्ट लिखा है कि जो दुष्टकर्मों को छोड़ कर शुद्ध कर्म ही करता है वह दुष्टकों को पार करके आनन्द भोगता है। दुष्ट कर्मों को छोड़ना ही सर्वत्र है इसके बिना मुक्ति नहीं। यह सब का एक समान है। अतः फल भी एक समान हुआ इस कारण मुक्ति का काल सब मुक्तों का एक जैसा है। भिन्न भिन्न नहीं। हों ज्ञान का तारतम्य होने से आनन्द भोग की तारतम्यता अवश्य है। परन्तु मुक्ति समय दुष्ट कर्माभाव सामान्य कारण जन्म होने से एक जितना ही रहेगा। (प्रश्न) मुक्ति काल में परोपकारार्थ मुक्त आत्मा स्थूल शरीर ग्रहण कर सकता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं कर सकता, विकुल नहीं। यह मत बड़ा दूषित है कि आत्मा बीच बीच में जन्म लेकर संसार का उद्धार करते हैं। इसी बात ने अरुमैयता फैलाई है। आर्य-समाज भी अवतारवाद को तो नहीं मानते परन्तु कई

विद्वान् इस भ्रम में अवश्य भूल रहे हैं। वेद में स्पष्ट लिखा है “अमृते लोक अक्षिते इन्द्राये-वो परिश्रव” अर्थात् हे (इन्द्रो) आनन्दवायव्य ब्रह्म तु (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (अक्षिते अमृते लोके) नाश रहित सदा वर्तमान मोक्ष में (परिश्रव) सब अंग से आनन्दित कर। यहाँ (अक्षिते) पद बतलाता है कि मुक्ति एक जैसा अमृत स्वरूप है वाच में नहीं टूट सकता। ऋषि दयानन्दजी ने “लदा” शब्द कई जगह इसी बात को स्पष्ट करने के लिये लगाया है। इसी भाव को दर्शाने के लिये दर्शनो में इसको अत्यन्त विमोक्ष और अत्यन्त निवृत्ति माना है यहाँ अत्यन्त शब्द का अर्थ परान्त काल तक दुःखों में न गिरने का है। यदि न होता तो सूत्रकार “तदत्यन्त विमोक्षापवर्ग” की जगह “तदभावोपवर्ग” कहते। परन्तु ऐसा न होने से अत्यन्त का अर्थ मुक्ति काल के बीच में दुःख में न पड़ने का ही है। (प्रश्न) मुक्त का जन्म क्या अमैथुनी सृष्टि में ही होता है? क्या वह गर्भ में नहीं आता? (उत्तर) यह कोई आवश्यक नहीं कि सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में ही जन्म ले। जब भी उसका परान्त काल समाप्त हो जावेगा तब ही जन्म ग्रहण करना पड़ेगा। (प्रश्न) इस प्रकार तो गर्भ में भी जाना पड़ेगा। (उत्तर) हों अवश्य गर्भ में जावेगा। आप गर्भ में जाने में क्यों डरते हैं। (प्रश्न) गर्भ में बड़ा दुःख होता है। “दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः न्या० और ‘दुःख बहुलः संसार’ योग भाष्य में कहा है, कि जन्म लेना ही दुःख है और यह संसार दुःख में भरा पड़ा है। (उत्तर) न्यायदर्शन और योगभाष्य का तात्पर्य यह है कि विवेकी इस संसार में दुःख को जाने और सुख को भी क्षणिक-अस्थायि जाने और मुक्ति प्राप्त करके आनन्द भोगे, जिसमें दुःख है ही नहीं। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि संसार में सुख है हीनही अवधा थोड़ा है। देखो सत्यार्थ प्र० में ऋषि लिखते हैं। “सृष्टि के सुख दुःख की तुलना करे तो सुख कई गुणा अधिक है। उन्नत आत्मा के लिये यह संसार साधन है और मुक्ति प्राप्त करने का एक ही मार्ग है। गर्भ में जीव को कोई दुःख नहीं होता। जब जीव की वहाँ जाग्रत और स्वप्न अवस्था ही नहीं तो दुःख सुख कैसे हो सकता है, वह तो

सुख प्त मेही रहता है। न दुःख है न सुख है। गभ में दुःख का भात अकमएय लाग दिया करत है। (प्रश्न लुम्हारे पास क्या प्रमाण है।) क मुक्त आत्मा गभ में आता है। (उत्तर) सुनिय— स नो मद्य आदितय पुनर्दान् पितर च दृशय मातर च। ऋग्वद् ॥ ऋष दयान द कृत अर्थ देखिय— हमको मुक्ति म आनन्द सुगावर पृथिवी में पुन माता पिता के सम्बन्ध में जन्म दर माता पिता का दर्शन कराता है। इस स अधिक और स्पष्ट प्रमाण क्या चाहत है। (प्रश्न) कई लाग कहत है कि मुक्ति चाहे जब हात्र परन्तु मुक्त क परचात् जन्म अमैथुना सृष्टि में ही हागा। जैसा हम नोकर की तबख्वाह दिनों क अथवा मासों के हिसाब से बेंते हैं। मास के आग एक दो दिन की कुछ गणना नहीं। दिनों के आगे घण्टों का हम नहीं गिनत। सरकार भी २५ साला हात ही नौकरी से हटा देता है, उसकी नौकरी चाहे कितने वष की हो। इस का काइ अन्याय नहीं कहता, इसी प्रकार मुक्त भी चाह जब मुक्त हुये हो परन्तु जन्म सृष्टि की आदि में लग। इसमें कुछ दोष नहीं (उत्तर) यह बात हम अल्पज्ञों की है। यदि हम किसी नोकर का वतन काट लता क्या यह भी प्रमाण ह गा। कितन ओछी मुक्ति है। याद मज दूरी घण्टा क हिसाब से दी जाता है ता घण्ट नहीं कट सकत। अरे परमात्मा ता क्षण क्षण का हिसाब जानने वाला है और कम फल न्याय पूवक देता है। उस के हिसाब में गढ़वड कहा है 'स न्य ता अस्य निमिषा जनानाम्। उसक ज्ञान में क्षण भा पूरे मूल्य का है। अत ठीक अवधि समाप्त पर ही जन्म दगा। कटाती नहीं कर सकता। गभ स डरने वाल लार्गों ने अनेक शिकुड रूपनाए बनाली है। यह सब दूषित एव बाण्य हैं। इससे सिद्ध हुआ कि मुक्त आत्मा सृष्टि के बीच में भी गर्भ में आ सकत है। (प्रश्न) बीच में भा गभ में आ सकत है। (प्रश्न) बीच में परमात्मा इस लिय नहीं भेजता कि इनका आदि में वेद ज्ञान भी दे वेता है। एक ट्रेकट में लिखा है कि सब से पाब्द मुक्त हाने वाल मुक्त होने वाले जीव को परमात्मा वद ज्ञान देता है। (उत्तर) यह शिकुल निराचार है। वेद ज्ञान उन

जीवों का मिलता है तिन क कम पूव सष्ट में सब से उत्तम हात है। दक्षा सत्याय प्रकाश ७ म समुल्लास— व ह चार जीव सब जीवों से अधिक पावत्रात्मा थ। अन्य उनक सदृश नहाथ इस लिय पवत्रावद्या का उपदेश इन्हीं में किया इसा प्रकार ऋग्वेदाद भाष्य भूमिका में भा लिखा है। इस स यह सिद्ध हा गया कि मुक्ता का वदामलना आत्यक नहीं है। अत उनका सृष्टि के आदि म परमात्मा जन्म देकर अपनी व्यवस्था नहा विगाड़ सकता। जिस जीव क पावत्र और सर्वोत्तम कर्म होंग उन चारों का वद ज्ञान दिया जाता है। (प्रश्न) क्या मुक्त स भा ससार जीव व कम पावत्र हा सकत है। (उत्तर) बाह जी वाह बाह आप मुक्तों के सारे कर्म नष्ट मान चुक है। आप क मुक्त बा मुक्ति में वदाभ्यास न रहन क कारण अल्पज्ञ हा गय हैं। उनक पावत्र कर्म कहा रह गय थ। जब उनक कर्म ह हा नहीं ता पावत्रता विचारो कहा रहा। अत परमात्मा उनका वद ज्ञान का अधिकारी कस मान सकता है। अत न पाहल मुक्ति का वद मिलता आर न पछे मुक्त हाने वाला का। परस्पर विरुद्ध बत छाड़ देना चाहिय। कपाल रूपना काठ का दडा है। बहुत वार नही चढ़ सकता। समाज शून्य बात का कोइ बुद्धिमान् स्वाकार नही कर सकता। एक बात और भा है कि मुक्त मिल सब स पाब्द और जन्म लना पड़ सब स पहल है और बिना गभ ऐसा अवस्था क्या। सज्जना परमात्मा गवगण्ड सदृश नहा है। नहा यह ससार अ धरनर्गरी है। वद ता बड़ा गीतज्ञ है। य मूत च भन्य च सब यशवाधातट्टिते वहे ता सपदी यती न सब का स्वामा आर न्याय धरा है। हम ठीक ठीक कर्मा के फल का प्रदाता है। उपयक्त सब दर्शन पर निचार हो चुका इसा प्रकार अवा तर प्रश्न नद मा समझ लेना चाहिय। आय विद्वाना स प्रथना है कि वद आर आप प्रन्या का स्वाभ्याय करक ऋष्य दयानन्द प्रदर्शित सिद्धान्ता का प्रचार सधत्र फलाव यहा सभा ऋष पूजा है। प्रभा हम सामर्थ्य दाजय ताक हम गवगान् दयानन्द के मार्ग पर चलते हुय ऋषि ऋष्यस उष्यण हो जावे।

आर्यकुमारो ! दयानन्द बन जाओ

(ले०—प्रो० किशोरीलालजी एम० ए०)



रत वर्ष के सामने आज जो विकट
समस्या उपस्थित है वह कदाचित इस देश
के इतिहास में कभी उपस्थित नहीं हुई।
सतयुग को जाने दीजिये। उस स्वयंयुग का तो
हम आधुनिक नारकीय, दास भारतीयों को अनु-
मान ही क्या हो सकता है। हाँ त्रेतायुग के रामराज्य
की भक्तक संस्कृत भाषा के आदि कवि वाल्मीकि जी
महाराज का कृपा से आज भी नसीब होती है।
राम उस जीवित काल के प्रतिनिधि-स्वरूप आर्य
कुमार हैं। आर्य भाषा को इनका यत्किंचित परि-
षय कराये।

श्रयतांतु गुणरेभ्यो युक्तेन चन्द्रमाः

इससे पता चलता है कि त्रेतायुग का आदर्श
आर्यकुमार राम अपने आर्योचित गुणों द्वारा ऐसा
चमकता था जैसे रात्रि के समय पूर्ण चन्द्र। इसी से
नर-चन्द्रमा की उपाधि देने के लिये कवि ब्रह्म
हुआ। कौन गुण हैं सुनिधे—

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः

धर्म के जानने वाले, दूसरे के ब्रह्मसानों को याद
रखने वाले, सत्यवाणी बोलने वाले, इरादे के पक्के।

श्लोकों से आप कहीं घबड़ा न जाय इसी भय
से कुछ एक अन्य गुणों का दर्शन मात्र कराकर
आगे बढ़े। तपः स्वाध्याय नरतः; प्रियदर्शनः आत्म
घान जितक्राधः। केवल एक भीषण गुण भी सुन-
लोजिये—

अस्य विभक्ति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे

साधारणतया तो 'जितक्रोध' ही है, किन्तु यदि
संयोगवशात् भद्रक लठ और रोष आज्ञाय तो,
असुरों की तो क्या चले, स्वयं देव-दल भी भय-
भीत हो लठे।

पाठक प्रवर ! क्या हमारे आधुनिक भारतीय
कुमारों से-देवों को जाने दीजिये, असुरों को परे

रखिये, किसी देश का भरण धर्मा-मनुष्य भी डरता है ?
कोई जापानी, कोई जर्मन, कोई फ्रेंच, कोई अमेरिकन
नहीं नहीं, कोई हवशी तक भी डरेगा ? नहीं।
क्यों नहीं ? इसलिये कि हमारे युवक राम की भांति
बिपुलांस नहीं, उनके कंधे तो तिरछे पड़ गये हैं।
वे 'महाबाहु' नहीं। सीक सी बाह लेकर किम्से
भिडे ? राम महोरस्क थे। हमारे नव युवकों की
छाती पाताल लोक को दिन व दिन धंसी चली जा
रही है। वे गूढ़-जत्रु थे। हमारे युवक जन के
कंधों की हड्डियाँ सीपसी, खड़ी साक दिखाई देती
हैं। कहां तक गिनाये ? वे अनजानु-बाहु थे 'सुशिर'
थे, सुललाट थे 'सुविक्रम' थे। हनुमान जैसे विदेशी
बज्र-भंग-वली पर भी उनकी धाक थी।
वे स्वामी थे और वज्ररंगी उनका दास। रावण की
शक्ति उस समय आसुरी-शक्ति की चरम सीमा पर
थी किन्तु आदर्श कुमार के रण कौशल के सामने
उसे चूर चूर होते देर न लगी।

अब चलिये कुछ द्वार युग की सौर करे। लीजिये
तीन लोक से न्यारी मथुरा नगरी का पट्टा चि।
यमुना का रुन्द मन्द प्रवाह कैसा मन-मोहक जान
पड़ता है। वह देखिये वृन्दावन के कुंज कैसे सघन
और शान्तप्रद दिखाई दे रहे हैं। कैसी शांतल मद
सुगन्ध समीर प्रवाहित हो रही है। इसी के आस पस
नन्दग्राम, बरसाना, गोवर्धन, गोकुल आदि स्थान
वसे हुये हैं। यहाँ पुरुषभूमि, लोका पुरुषोत्तम कृष्ण
की क्रीडास्थली थी। इसे ब्रज के नाम से पुकारती
हैं। अहा ! कैसा सुन्दर समय था ! पुरुष धन धान्य
से कैसे सम्पन्न थे। उनके पशु उनका धन थे। गो-
धन आज भी उस वास्तविक धन की याद दिला
रहा है। हमारा चल हो सन्नाधन है। निर्बल का
धन भी अपना धन नहीं रहता उसका सबकुछ
होता हुआ भी उसका कुछ नहीं। नन्दबाबा की
नीलख धेनु आज भी प्रसिद्ध है। दुध की नदियाँ

वती थीं। व्रज भूमि आज भी दिखाई देती है, किन्तु गोरस की कीच कहीं। उसके आनन्दनृत्य आज स्वप्न हो गये हैं किस लिये ? इस लिये कि आज वहाँ कृष्णचन्द्र जैसा द्वितीय आर्य कुमार व्रजचन्द्र नहीं। नहीं वहाँ उनके आधुनिक सखाओं की माखन मिश्री खाने को मिलता है। अब बताइये कंस हनन कौन करे, सिनेमा के नृत्य देखने वाले 'तप स्वाध्याय विरत', 'सर्वभूत-नैत', 'करुण दर्शन, आरम शून्य, दत्त-क्रोध, स्कूल और कलिका की अयोध्या और व्रज की वायु मण्डल में पले बाधू ? उनर आप स्वयं देखें।

और आगे चलिये। यह देखिये सामने पाटली पुत्र नगरी बसी हुई है। महाराज चन्द्रगुण मोगी सिंहास गम्बूज हैं यथासित्यूकस (शैलक्य) पश्चिमी सीमा द्वाता हुआ चला आरहा है। मौर्य राज के गुप्त चर समाचर सुनाते हैं। आर्क्यवीरोकी सुसज्जित सेना किस अलौकिक उमग के साथ पश्चिमाभिमुख विदेशी लुटेरे का मुँह तोड़ने के लिए भागी चली जा रही है। वह देखिये कैला भयङ्कर युद्ध हो रहा है, दुस्मन के पैर उखड़ रहे हैं। देखिये यवन दुलारी को सामने लिये यवन राज बढ़ कर भीरुमना क्या प्रार्थना कर रहा है ? मौर्य कुल मुकुट के सामने विजयश्री यवन श्री की उपहार लिए नतमस्तक खड़ी है। विश्व विजयी अलक्षेन्द्र का उत्तराधिकारी मौर्य सम्राट को दामाद बनाने में अपना गौरव समझना रहा है वीर पृथ्वीराज तर्काजपूनी तूरी बोली और आगे भी बोलती यदि जयचन्द्र अपने नाम को कलंकित कर पराजय का कारण न बनता।

मुत्सलमान काल में भी हकीकत राय जैसे आदर्श कुमारों ने त्याग और अत्यम समर्पण का उल्लसत उदाहरण विजेताओं के सामने रख देश के धर्म और गौरव की रक्षा की बाद का सिक्खों ने अपना सिक्का भी जमा लिया। पंजाब वेशरी रणनीतिसिंह जब तक जीवित रहा किमी गीदड़ की पंजाब की और आँख न उठी। मरहटे भी एकबार वीर अपनी सी कर के ही हटे। वीर शिवाजी ने नौरंग औरंग के झन्के छुड़ाहो तो दिये। उसकाल में

वे वातो ने हमारा बहुत साथ दिया। एक हमारे शास्त्र हमारे पास रहे। निहत्थे कर हमें बधिया कोई न बना सका। दूसरे हम विदेशी-बोधियों पर मोहित कभी नहीं हुए। स्वदेश, स्वराज, स्वधर्म स्वभाषा स्ववेश, स्वभूषा, स्वदेशी वस्तु आदि स्वतंत्रों से हमें बराबर प्रेम बना रहा।

किन्तु हा ! विदेशी बोधियों ने अपनी चमक धमक दिखा हने वि-मोहित कर लिया। एक प्रकार से नहीं विविधि प्रकारी से और विरोध प्रयत्नों द्वारा हमें अपने विपक्ष प्रेम प्राश में बुरी तरह फंसा लिया जिन बातों के लिये हम जीवन निझावर करने तक को उद्यत रहते थे उन्हीं को करने आज चंडी के भुकुटि भय के कारण श्वानवत् दुम हिलाते और पेट दिखाते नहीं लजाते।

किन्तु धन्य है भगवान्, तेरी अपरम्पार लीला ! पर-मकारुणिक ने अन्त को करुणा दिखाई। अन्धकूप में गिरने से भक्त भारत को बचा लिया। लोग मर्त्या पुरुषोत्तम राम और लीला पुरुषोत्तम कृष्ण को ईश्वर का अवतार मान हाथ पर हाथ धरे बैठे थे कि बही फिर जन्मले तो दुःख सागर से नैया पार लगे। उन्हे विश्वास था कि मानवी शक्ति स्व-प्रयत्न से कितनी विकसित हो सकती है। यह पाठ पढ़ने-नहीं नहीं स्वयमेव बना कर दिखाते के लिये दिव्य-गुरु दयानन्द को मर्त्य-लोक में भेजा। जो कुछ उसने कर दिखाया कल की सी बात है।

हमें तुलना करके किसी के गौरव को कम करना अभिमत नहीं। केवल सत्य प्रकट करना है। राम को केवल रावण से पाला पड़ा। अन्य छोटे मोटे की गणना ही क्या ? कृष्ण को एक साधारण मण्डलेश कंस से मुठभेड़ करनी पड़ी। जरासिंधु के सामने से तो भाग जाने का ही वाध्य होना पडा ? फिर उन दोनों पुरुषों के पास फंज भी ना इकट्ठी हो गई थी। इधर देखो ? सिवाय सोटे और लंगोटे के तीसरी वस्तु पास नहीं। और फिर एक रावण और एक कंस कोही पछाड़ना नहीं अनेकों दानवों से और एक ही साथ जंग ठानी। आक्षानुसार दम्मासुर,

तब, अब और आगे

(ले०—श्री वा० मदनमोहनजी सेठ एम० ए०)



ॐ संसारात् ॐ यंसमाज का उद्देश्य गुरु की आज्ञा ॐ
ॐ और ऋषि दयानन्द द्वारा दी गई ॐ
ॐ आ ॐ 'गुरुदक्षिणा' मे छिपा है। संसार ॐ
ॐ के संपूर्ण इतिहास के पृष्ठ उलट ॐ
ॐ जाइये, विरजानन्द से गुरु और ॐ
दयानन्द से शिष्य कितने मिलेगे? विरजानन्द की ॐ
पाठशाला मे अनेक शिष्य पढ़ते थे, उनमें अनेक ॐ
विद्वान् भी थे, किन्तु उन्होने दयानन्द से ही 'जीवन ॐ
दक्षिणा' क्यों चाही? दयानन्द की यथार्थ वैदिक

सत्यज्ञान प्राप्ति की इच्छा को पूर्णकर सत्य सनातन वैदिक धर्मगचार को अग्नि को अधिकाधिक क्यों प्रवृत्त किया? गुरु ने शिष्य को पहिचाना और उनके जीवन को स्थिर कर दिया।

गुरुदक्षिणा की यह माँग—भारत के अन्धकारको दूर कर सत्य सनातन वैदिक संस्कृति की रक्षा करो—अनार्थ ग्रन्थों का खण्डन कर आर्ष ग्रन्थों की महिमा स्थापित करो, आज भी आर्यसमाज को अपने उद्देश्यपूर्ति के लिये प्रकाश-स्नम्भ का काम दे रही है। दक्षिणा रूपी बलिबेनी पर ऋषि ने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया।

पाखण्ड सिधु, दुराचार, अनाचार, अत्याचारदि न जाने कितने दैत्य दानवों का सामना करना पड़ा। शरीरधारी दैत्यों के मानसिक दैत्य कहीं प्रवलतर होते हैं धार्मिक क्षेत्र में भी हजरत ईसा को इतनी कठिनाइयों से पाला पड़ा, न श्रीमान् मुसा को। मुहम्मद साहब अलस्सलाम को तो सिर्फ बुतपरस्तों के साथ जहाद उठानी थी। महात्मा बुद्ध को पशु बलि रुकवाने का मुख्य काम था। और शंकर को केवल बौद्धमत का मूलोच्छेदन मात्र। हमारे लंगोटबन्द को तो क्या किरानी, क्या कुरानी और क्या पुरानी सभी को युद्ध—स्थल मे आह्वान देना पड़ा। सचतो यह है सारी खुदाई एक तरफ, वैदिक सचाई दूसरी तरफ सभी को परास्त किया। परिचमी प्रवाह को कान पकड़कर पूर्वाभिमुख कर दिया। कभी मैदान न छोड़ा। कोई प्रलोभन प्रलोभित न कर सका। निर्भय था, निश्शंक था। शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नतिका जीता जागता नमूना ऐसा दूसरा इस युग मे नहीं प्रकट हुआ। जो कहा सो करके दिखाया। कर दिखाने का समय है। उसके मार्गपर चलते, अवश्य कल्याण होगा।

ऋषि की अमृतत्व प्राप्त करने को अभिलाषा-ज्ञानानि, शिवलिङ्ग पर चूहे के चढने से प्रबुद्ध हुई। प्रकाश की वह कीण रेखा—पिता के तिग्स्कार, शुद्ध चैतन्य रूप में घूमना, संन्यास ग्रहण, योग-विद्या के रहस्य भेद के लिये यौवन काल में ही शीत, बुधा पिपासा, जंगल के भय आदि क्लेशों को कुछ न गिनकर उत्तराखण्ड भूमण, नदीतट के भीषण पार्वत्य देशों मे विचरण, मठाभीशों का प्रलोभन, अलख-नन्दा तट पर हिमावर्त पर्वतीय प्रदेशों का अतिक्रमण आदि दुखों से, जंगल में वदती हुई वनाग्नि की तरह अधिक से अधिक प्रवृत्त और शक्तिशाली होती गई। उनके गुरु के संसर्ग से अग्नि शुद्ध होकर स्वच्छ प्रकाश देने लगी—अन्धकार दूर होने लगा, प्रचलित अर्धवैदिक मतमतान्तरो का प्रभाव कम होने लगा—सत्य सनातन वैदिक धर्म का स्वरूप प्रकाशित हुआ।

इस समय

गुरु की उसी आज्ञापूर्ति का उत्तरदायित्व पूर्ण भार ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के कन्धों पर

डाला। आर्यसमाज का प्रारम्भकाल स्वर्ण युग का समय था। प्रत्येक आर्यपुरुष 'सत्य' के आधार पर युगविधाता गुरु का सच्चा शिष्य होने के प्रयत्न में ही अपने जीवन की सार्थकता समझता था। उस समय के आर्यपुरुषों ने क्या क्या कष्ट नहीं सहे? आर्य समाजों का बराबर प्रेम व्यवहार क्या भूलने योग्य है? आज भी उस समय की दिव्य मूर्तियों के दर्शन प्रायः हो जाते हैं।

आर्यसमाज ने शिक्षा, वैदिक प्रचार, कुरीति निवारण आदि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की। उसने सैकड़ों शिक्षणालय, गुह-कुल, अनाथालय तथा अनेक परोपकारी संस्थायें स्थापित कीं। उस समय के उपदेशकों ने निस्वार्थ भाव से, श्रद्धा से श्रोत-श्रोत होकर वेद प्रचार में अपने सम्पूर्ण जीवनो को लगा दिया। अर्थनेताओं और उपदेशकों ने जिस अपने आदर्श जीवन की आहुतियों दी हैं उनके प्रकाश से समाज आलोकित हो उठा है।

आर्यसमाज के कार्य तथा उसके संस्था संगठन और अनुशासन की धाक चारों ओर जम गई। आर्यसमाज को भारतीय विक्रमयुग में एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ, परन्तु

अब

अवस्था बदल रही है। सेवा का स्थान अधिकार ने ले लिया है। प्रत्येक शक्ति अपने हाथ में रखना चाहता है। स्थान स्थान पर भगड़े नजर आते हैं। मुकद्दमेबाजी तक नौबत पहुँचने लगी—अपनी अपनी मनमानी करने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। संस्थायें जो उद्देश्यपूर्ति के लिये उत्तम साधन थीं स्वयं उद्देश्य बन रही हैं, संगठन शक्ति का हास हो रहा है, केन्द्रित शक्ति बिखर रही है—न भावभाव है और न अनुशासन। पहला प्रेम कहाँ है? उपदेशकों में वह त्याग और तपस्या—बह आग—नहीं जो दूसरों को प्रज्वलित कर सके। नेताओं में वह धार्मिक आकर्षण नहीं जो दूसरों को अपनी ओर खींच सके। आर्य-

समाज के मुख्य उद्देश्य वेद प्रचार की दशा भी छिपी हुई नहीं है, उत्तम वैदिक साहित्य भी हमारे पास नहीं है, फिर प्रचार कैसे हो?

क्या यह समय आत्म चिन्तन का नहीं है? हमारी क्या अवस्था है? हमें सोचना चाहिये कि कहीं हमारा

भविष्य

अन्धकारपूर्ण तो नहीं है। काम बहुत कुछ करने का है। दो सम्भताओं के इस संघर्ष में वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द के शिष्यों के लिये मुस्ताने का समय कहाँ है? यह समझना भूल है कि आर्यसमाज का कार्य समाप्त हो गया। पश्चिमीय सभ्यता के अत्यवस्थित आचार विचार भारत की प्राचीन सभ्यता को—भारतीय समाज को उलट-पुलट कर रहे हैं। अधिकारवाद और भोगवाद के चक्राचौब ने नवयुवकों को युद्धि फेर दी है—समाज की नम नम में विष व्याप्त होता जाता है।

ऐसे विकट समय में कर्तव्य को भूलकर कहीं पथभ्रम तो नहीं हो रहे—यह बड़ी गम्भीरतापूर्वक विचार करने को बात है।

ऋषि दयानन्द का उद्देश्य तो पूरा होगा ही लेकिन देखना यह है कि ऋषि तथा उसके अनुयायी होने का दावा करने वाला आर्यसमाज आर्य वैदिक संस्कृति की रक्षा में तथा आर्य ग्रन्थों की महिमा स्थापित करने में कितना सहायक होता है?

प्रत्येक आर्य पुरुष को ऋषिके इस पवित्र जीवन आहुतिपूर्व पर अपने हृदय में विवेचन करना चाहिये कि हम कहाँ पर हैं? विरासत में, सत्य सनातन वैदिक धर्म का जो प्रकाश हमने प्राप्त किया है उससे दूसरों को हम कितना प्रकाशित कर रहे हैं?

धर्म-प्रचार में व्यक्तित्व का प्रभाव

(ले०—श्री रमेशचन्द्रजी वन्गोपाध्याय एम० ए०)



दि हम, परमतावलम्बियों को स्वमत की दीक्षा देने वाले धर्मों के इतिहास का अध्ययन करें तो हमें पता लगेगा कि धर्म—परिवर्तन के सम्बन्ध में सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यक्तित्व का स्थान अधिक महत्व का है। बौद्ध धर्म ईसाई धर्म, इस्लाम, सब का इतिहास यही प्रकट करता है। आदि के बौद्ध भिक्षु, आरम्भ में होने वाले ईसाई (विशेष कर ईसा के प्रथम शिष्य) तथा प्रथम खलीफाओं ने दार्शनिक वक्तव्यों और तर्कपूर्ण शास्त्रार्थों की अपेक्षा अपने वैयक्तिक आचरण के उदाहरण से अपने अपने धर्म का अधिक प्रचार किया। अपने शास्त्रों की उच्चता की घोषणा अथवा आचरण सम्बन्धी विधि निषेध की अपेक्षा प्रेम और सेवा की वह भावना जो उक्त मिशनरियों में से कुछ ने मनुष्यमात्र के लिये तथा अन्यो ने अपने अनुयायियों और सहयोगियों के लिये प्रदर्शित की—अधिक बलवान् आकर्षण सिद्ध हुई। यह सब ऐसे युग में हुआ जब धर्म के लिये अधिक आदर था और गहरी सजा थी।

आज नास्तिकता का युग है। यह बात विस्मृत नहीं की जा सकती कि ससार के सभी भागों में मनुष्य के मस्तिष्क से धर्म का प्रभाव उठ गया है। अब तक यह विश्वास किया जाता था कि इस्लाम संसारके सभी धर्मोंमें अधिक कट्टर धर्म है और इसमें सिद्धान्तों और मजहबों की कृपों पर विश्वास करने के लिए सब धर्मों से अधिक कड़ा बन्धन है। किन्तु वहाबी और अहमदियों ने उन सिद्धान्तों को—जो इस्लाम का आधार समझे जाते थे—बड़ा भारी आपात पहुंचाया है। यदि योरोपीयन लेखकों की सम्मति ठीक है तो आधुनिक तुर्क और इराकियों ने भी कट्टरता के मार्ग को छोड़ दिया है। एक आंर

धार्मिक ग्रन्थों में अथवा कम से कम उनके अब तक किये जाने वाले अर्थों में श्रद्धा कम हो रही है तो दूसरी ओर कमालपाशा और इब्नसऊद में विश्वास बढ़ रहा है। धार्मिक क्षेत्र में वैयक्तिक प्रभाव का क्या फल होता है यह प्रसिद्ध वहाबी नेता के कार्यों से भली भांति प्रकट होता है। न्यूयार्क के प्रसिद्ध मासिकपत्र 'एशिया' ने इब्नसऊद के विषय में एक आश्चर्यजनक घटना का इस प्रकार वर्णन किया है कि एक बार एक ब्रिटिश आफसर इब्नसऊद का अतिथि बना। यह घटना उस समय की है जब कि प्रायः नित्य ही नई नई जातियां इब्नसऊद के भस्त्र के नीचे आ रही थीं, अर्थात् हुसैन से उसका युद्ध होने से कुछ ही पूर्व की। अस्तु। एक दिन संंध्या समय ब्रिटिश आफसर अपने डेरे के सामने खुली जगह में टहल रहा था कि यकायक एक बुढ़दा अरब उसकी ओर यह चिल्लाता हुआ दौड़ा—'काफिर, सुअर ! तू ने मेरी नमाज की जगह को नापाक कर दिया।' शीघ्र ही हथियार बन्द अरबों की एक भीड़ इकट्ठी हो गई और क्रोध में आकर वे उस आफसर पर टूटने ही वाले थे कि इब्नसऊद के अङ्ग—रक्तको का एक दल आ गया और उसने बुढ़दे शेर और उसके साथियों को पकड़ लिया। दूसरे दिन उन पर राजकीय महमान की अवज्ञा और शाही कैम्प में भगड़ा करने का अभियोग लगाया। बुढ़दे अरब ने बयान दिया कि मैं काफिर को दण्ड देने का यत्न कर रहा था, क्योंकि वह उम जमीन पर टहल रहा था जो सुबह नमाज पढ़ने के कारण पाक हो गई थी। इब्नसऊद को इस पर बड़ा क्रोध आया। उसने कहा, "क्या सारी प्रभुवी अल्लाह की प्रार्थना करने के लिये नहीं है ? इस्लाम ने यह कब बतलाया है कि जमीन का एक हिस्सा दूसरे हिस्से से अधिक पवित्र है ? तुम नहीं जानते कि इसी अन्धविश्वास के कारण मैं मस्जिदों की प्रतिष्ठा करने के विरुद्ध हूँ।"

अपराधी श्रवणों के काँड़े लगाये गये और इसी प्रकार के दूसरे कठोर दण्ड दिये गये ।

केवल इन्धनसऊद के समान चरित्रवान् और प्रभावशाली पुरुष ही ऐसे लोगों में, जो अपनी मरिजदों के लिए असाधारण प्रतिष्ठा करते हैं यह काम करसका। इसकेप्रमाण भातवर्ष मेनित्य ही देखने में आते हैं इन्धनसऊद से पहले वहाबी लोगों का कोई उल्लेखनीय अस्तित्व नहीं था। परन्तु अब एक के बाद दूसरी श्रवणों की जानियाँ उनके भण्डे के नीचे आ रही हैं। व्याख्यान द्वारा प्रचार बहुत दिन से बन्द हो चुका। परन्तु ऐसे लोगों में जो अपने चरित्र की भयङ्करता और कठोर कट्टरता के लिए प्रसिद्ध थे, धर्म-परिवर्तन अब भी जारी है। वैयक्तिक प्रभाव से व आश्चर्यजनक कार्य हुए हैं जो अपने धर्म और शास्त्रों के महत्व की घोषणा से कभी नहीं हो सकते थे। इस सम्बन्ध के उदाहरण हमारे देश में भी पर्याप्त रूप में पाये जाते हैं। मेरा ऋषि दयानन्द तथा आर्य-समाज के पुराने नेता स्वामी श्रद्धानन्द लाला लाजपतराय आदि के जीवन का अध्ययन भी इसी-सच्चाई का समर्थन करता है। यही बात छोटे आदिमियों के लिये भी लागू होती है। आर्यसमाज के प्रत्येक प्रचारक को यह अनुभव होगा; और यदि उसका हृदय काम करना चाहता है तो वह इसी प्रकार करेगा। क्या यह नहीं कहा जाता कि प्रत्येक आर्य अपने क्षेत्र में प्रचारक है, किन्तु व्यवहार में हम क्या पाते हैं? समाजों के मन्त्री और प्रधान ऐसा व्यवहार करते हैं मानो वह गवर्नमेंट के किन्हीं विभागों के सेक्रेटरी और मिनिस्टर हैं। सम्पत्ति और स्थान का गर्व प्रचारक की भावना का सबसे बड़ा शत्रु है—वह भावना जिससे प्रत्येक आर्य समाजी और विशेषकर पदाधिकारी प्रेरित होने चाहिये। यह ठीक कहा जाता है कि सबसे अधिक रचनात्मक काल आर्यसमाज के जीवन में वह था कि जब आर्य संख्या में थोड़े थे पर थे भावना में सच्चे। जब कि 'नमस्ते' शब्द से हृदय मिल जाते थे, जब प्रेम और सेवा की भावनाएं प्रत्येक आर्य

के हृदय में निवास करती थी। आर्यसमाज की उवलंत कीर्ति उसी समयसे सम्बन्ध रखती है। किसी जाति या वर्ग के लिये वह दुर्दिनही कहा जायगा जब कि वह अपनी पिछली कीर्ति को गती हुई जीवित रहना चाहे और उसको बढ़ाने में अशक्त बन जाय। आर्यसमाज का ऐसा ही दुर्दिन आया प्रतीत होता है।

मैं कई वर्ष तक आर्यसमाज के साथ घनिष्ठ सम्पर्क में रहा हूँ। कुछ वर्ष तक मैंने सार्वदेशिक सभा की ओर से अवैतनिक प्रचार किया। एक बार कलकत्ते के मेरे मित्रों ने मुझे प्रतिनिधि सभा का प्रधान भी बनाया। मैं अनेक आर्य प्रचारकों के सम्पर्क में आया और मैंने उनके प्रचार के विभिन्न ढंगों को भी देखा। मेरा विश्वास है कि जिसके हृदय में मनुष्यमात्र के लिए प्रेम नहीं है, वह धर्मप्रचार के कार्य में अवश्य असफल होगा।

संपत्ति और स्थान के गर्व के अतिरिक्त एक अभिमान है काल्पनिक पवित्रता का। मैं ऐसे एक सज्जन से मिला, जो कट्टर आर्य थे और जिनका चरित्र भी आदर्श था—केवल एक बात को छोड़कर, वह है उनकी जिह्वा का विष। अनेक प्रतिष्ठित पुरुष जो दूर से उनकी ओर आकृष्ट हुए, उनके कटु शब्दों के कारण उनसे सदा के लिए दूर हो गये। वह सच्चा धर्मप्रचारक नहीं है जो यह समझता है कि एक व्यक्ति से व्यवहार करने से पूर्व हमें यह निश्चय हो जाना चाहिये कि उस व्यक्ति में मानवीय दुर्बलताएँ विलकुल नहीं रही। ऋषि निर्वाण की स्मृति के इस अवसर पर आर्यसमाजों को इन दोषों से रहित हो जाना चाहिये। प्रान्तीयता विरादरी और मूर्तिपूजा की ओर झुकाव तथा गुरुद्वेष आदि ऐसे दोष हैं जो एक ऐसे समुदाय के लिये, जिसका अस्तित्व संगठन ही पर है, विषाक्त भोजन से कम हानिकारक नहीं है।

द्विपूर्व पुस्तक ।

आर्य सभ्यताका दर्शन !!

आर्य आदर्श !!

वैदिक सम्पत्ति ।

[लेखक भी० रव० प० साहित्यभूषण रघुनन्दन शर्माजी ।]

इस अपूर्व पुस्तक के विषय में विद्वान् लोगो को सन्मति देखिये—

श्री० प० नरदेव शास्त्रीजी को सन्मति ।

“हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह ग्रन्थ ‘यथा नाम तथा गुण’ कोटी का है। कई प्रकरण तो इतने मनारजक हैं कि उनको बार-बार पढ़ने पर भी तृप्ति नहीं होती। वस्तुतः ऐसेही ग्रन्थ वैदिक धर्म व आर्य सस्कृतिकी महत्ताको प्रसूत कर सकते हैं। ... प्रत्येक हिंदी पुस्तकालय व धर्ममंदिर में रखनेकी वस्तु है। ...”

श्री० आचार्य रामदेवजी, गवर्नर कन्यागुरुकुल देहरादून की सन्मति

(‘प्रकाश में प्रकाशित २० मई १९३४’)

मैं प्रकाशक के इन विचारों के साथ पूर्णतया सहमत हूँ कि इस के लेखक के वैज्ञानिक, भौतिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य, पुरानेशास्त्र, भूगोल, खगोल ज्योतिष, नानालिपिज्ञान, तथा भाषा आदि अनेक विषयोंका विभर्शन इस पुस्तकने हमें कराया है। और भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखे गये अनेक पत्रात्य तथा पूर्वीय विद्वानोंके विविध प्रयोगोंकी विवेचना करके आर्यसिद्धन्तों को युक्ति और प्रमाणों से पुष्ट किया है।

वेदोंकी प्राचीनता स्थापित करते हुए, अर्वाचीन उदाहरण देकर जो वेदोंमें अनित्य इतिहास सिद्ध करनेका अशक्य प्रयत्न किया करते हैं। इसका खण्डन आपके बहुतसे युक्तियों द्वारा उत्तम प्रकार किया है। ... इस प्रकार अनेकानेक प्रमाणोंसे वेद में अनित्य इतिहासकी स्थापना खण्डित की गई है। इसके अतिरिक्त प्राचीन आर्योंके कलाकौशल ज्ञान के संबन्धमें नयी खोज करके विद्वान् लेखकने अपनी खोज संबंधी योग्यता का बड़ा उत्तम परिचय दिया है। ... इसमें कोई संदेह नहीं कि ... यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी और नयी खोज और उपयुक्त प्रमाणों से युक्त है। इसलिये हर एक आर्य पुरुष, आर्य उपदेशक, अध्यापक और व्याख्यानदाता के मनन करने और पास रखने योग्य यह पुस्तक है। सभा, समाजों में इसकी कथा करनी चाहिये ताकि उनका विद्वान् लेखक के परिश्रम से पर्याप्त लाभ उठा सके।

अनेकानेक महानुभावों ने इस पुस्तक को मुक्तकण्ठ से प्रशंसा किया है, इसलिये आप इसे लेकर एक बार पढ़िये— पृष्ठसंख्या ८२० है मुख्य केवल ६) छ २० है और ढाकः १) है शीघ्र लीजिये। म० आ० से ७) विदेश के लिये ८)

प्राप्ति स्थान

मंत्री स्वाध्यायमण्डल, श्रीध (जि०सातारा)

स्वामी दयानन्द और कुरान

(लेखक - श्री प्रो महेशप्रसादजी मौलवी आलम फाजिल)



सत्यार्थ प्रकाश पहले पहल सन् १८७४ ई० मे प्रकाशित हुआ था। उसमे चौदहवों समुल्लास नहीं है जिसमें श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने मुसलमानों के मत के विषय मे लिखा है किन्तु श्री स्वामी जी ने इस संस्करण के दसवें समुल्लास के अन्त मे यह अवश्य प्रकट किया कि हम मुसलमानों के मत के विषय मे खण्डन और मण्डन लिखेंगे। सत्यार्थ प्रकाश का दूसरा संस्करण सन् १८८४ ई० मे हुआ। इसके चौदहवें समुल्लास में स्वामी जी ने मुसलमानों के विषय मे जो कुछ लिखा है उसके पहले एक अनुभूमिका लिखी है, जिसमे पहले यह लिखा गया है —

“जो यह १४ चौदहवों समुल्लास मुसलमानों के मत के विषय मे लिखा है सो केवल कुरान के अभिप्राय से अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं। क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा पूरा विश्वास रखते हैं। यद्यपि फिरके होने के कारण किसी शब्द अर्थ आदि विषय मे विरुद्ध बात है, तथापि कुरान पर सब एकमत्य है। जो कुरान अर्था भाषा मे है उस पर मौलवियों ने उर्दू मे अर्थ लिखा है उस अर्थ का वैधानागरी अक्षर और अर्थ भाषान्तर कराके पश्चात् अर्थों के बड़े बड़े विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको रचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमों का खण्डन करे, पश्चात् इस विषय पर लिखे। कुरान अर्था मे जैसा सैकड़ों वर्ष पहले था वैसा ही आज भी है, किन्तु जिस प्रकार आज बहुत सी बातों मे परिवर्तन हो गया है उसी प्रकार कुरान के अर्थ में भी कहीं कहीं भारी परिवर्तन हो गया है। निदान

कुछ लाग वह उठते हैं कि श्री स्वामी जी ने जो अर्थ सत्यार्थ प्रकाश मे कुरान की आयतों अर्थात् वाक्यों का दिया है वह ठीक नहीं है किन्तु इस विषय मे स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है वह उपर्युक्त अनुभूमिका के अर्थ से स्पष्ट ही है। अस्तु। मैं पाठकों को बतला देना चाहता हूँ कि जिस समय श्री स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश का इसलाम विषयक समुल्लास लिखा उस समय तथा उस समय से पहले पूर्णतया अथवा लगभग वही अर्थ कुरान के अनुवादकों ने माने है जैसा कि उनके रचित ग्रन्थों से स्पष्ट है।

(१)

श्री स्वामी जी ने एक आयत का अनुवाद यह दिया है — “अल्लाह ने उनके दिलों कानों पर माहर कर दी और उनकी आंखों पर पर्दा है और उनके वास्ते बड़ा अज्ञाव है।” (चतुदरा समुल्लास मे अंक ५ का अन्त)

अब यह जानना चाहिये कि श्री सर सैयद अहमद खॉ साहब मुसलमानों के एक मुख्य नेता थे, उनकी जीवित स्मृति वर्तमान काल की मुसलिम यूनिवर्सिटी है। श्री सैयद साहब और श्री स्वामी जी मे मित्रता थी। अस्तु। श्री सैयद साहब ने “तफ्सीरुल कुरान” के नाम से जो उर्दू भाष्य किया है उसका प्रथम भाग पहले पहल सन् १८८० ई० मे अलीगढ से प्रकाशित हुआ था। उस प्रथम भाग का एक संस्करण लाहौर से प्रकाशित हुआ है वह फजल उदीन बुकसेलर काश्मीरी बाजार लाहौर के यहाँ से मिलता है। जिस आयत का अर्थ सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत किया गया है उसी का अर्थ उक्त संस्करण के पृष्ठ १४ मे इस प्रकार है — “माहर कर दी है अल्लाह ने उनके दिलों पर और उनके कानों पर और उनका आंखों पर पर्दा है और उनके लिये बड़ों अज्ञाव है।”

कुरान के प्राचीन उर्दू अनुवादकों में से जो अनुवाद आज भी प्रचलित हैं और आदर दृष्टि से देखे जाते हैं वह दिल्ली के मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब और शाह रफीउद्दीन साहब के हैं। यह दोनों अनुवाद स्वामी जी से बहुत पहले और भी सैय्यद महोदय के अनुवाद से लगभग ६८-७० वर्ष पहले के हैं। अनेक प्रेसों से प्रकाशित है। इन दोनों अनुवादों के शब्द श्री स्वामी जी द्वारा लिखे हुये शब्दों के कहीं तक समर्थक हैं इसका निर्णय नीचे दिये हुये शब्दों से भली भांति हो जायगा —

(अ) मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब — “मोहर कर दी अल्लाह ने उनकी दिल पर और उनके कान पर और उनकी आंखों पर है पर्दा और उनको बर्षी मार है।”

(आ) मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब :— “मोहर की अल्लाह ने ऊपर दिलो उनके के और ऊपर कानों उनके के और ऊपर उनकी आंख के पर्दा हैं और वास्ते उनके अजाब है बड़ा।”

सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास के अंक ६ में लिखा हुआ है :— “उनके दिलो में रोग है अल्लाह ने उनका रोग बढ़ा दिया।” अब देखिये उक्त तीनों अनुवादकों के शब्द क्या हैं :—

(अ) मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब :— “उनके दिल में आजार है फिर ज्यादा दिया अल्लाह ने उनको आजार।”

(आ) मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब — “बीच दिलो उनके के बीमारी है पस बढ़ाई उनकी अल्लाह ने बीमारी।”

(इ) श्री सर सैयद अहमद खाँ साहब :— “उनके दिलो में बीमारी है फिर खुदा ने उनकी बीमारी को बढ़ा दिया।”

(३)

चौदहवें समुल्लास के अंक ७ में लिखा है :— “जिसने तुम्हारे वास्ते पृथ्वी बिछौना और आस्मान भी छल को बनाया।”

यही आशय तीनों अनुवादकों ने इन शब्दों में दर्शाया है :—

(अ) मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब :— “जिसने बना दिया तुम को जमीन बिछौना और आस्मान छत।”

(आ) मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब :— “जिसने किया वास्ते तुम्हारे जमीन को बिछौना और आस्मान को छत।”

(इ) श्री सर सैयद अहमद खाँ साहब :— “(खुदा वह है) जिसने बनाया तुम्हारे लिये जमीन को बिछौना और आस्मान को डेरा।”

अब अन्त में हमारे पाठकों को यह जानना चाहिये—

(१) उक्त तीन अनुवादों के सिवा कुरान के कुछ और भी उर्दू अनुवाद सम्पूर्ण अथवा अपूर्ण श्री स्वामी जी के समय से पहले के हैं। किन्तु इस समय केवल उक्त तीनोंसे ही मुकाबिला करके दिखाया गया है और यह तीनों बहुत प्रसिद्ध हैं।

(२) जिस प्रकार उक्त तीन अनुवाद ऐसे हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में दिये हुये अनुवादों से मिलते जुलते हैं उसी प्रकार आशा है कि अन्य सारे भी मिलते जुलते ही होंगे क्योंकि उक्त तीनों के सिवा मैंने कुछ अन्य को भी मुकाबिला करके देखा और उनको उक्त तीन अनुवादों के भावों के अनुकूल ही पाया है, किन्तु इस अवसर पर सत्यार्थ प्रकाश से केवल तीन बातों के ही विषय में नमूने के तौर पर लिखा गया है।

(३) जिन आयतों के विषय में श्री स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में थोड़ा बहुत लिखा है उनका तथा कुछ अन्य आयतों का अनुवाद तथा भाष्य श्री स्वामी जी के समय के बाद उर्दू में हमारे भारतीय मुसलमान विद्वानों ने क्या किया है? यदि अब इस बात पर दृष्टि डाली जाय तो अनेक बातें बर्षी मनोरंजक प्रतीत होंगी।

क्या सृष्टि की आदि में वेद एक था ?

(ले०—श्री प० देवेन्द्रनाथजी शास्त्री सांख्यतीर्थ)



छ शताब्दी पूर्व लोगों का यह विरवास था कि सृष्टि के प्रारम्भ में वेद एक ही था, द्वापर तक एक ही रहा। परन्तु श्री वेदव्यास ने उसके चार विभाग कर दिये, जो उसी समय से ऋग्वेद, यजुर्वेद साम, अथर्व के नाम से चले आते हैं। इसी पत्र के मानने वाले इस समय भी हैं। अनेक विद्वान् भी ऐसा ही मानते रहे हैं, अतएव इस विषय पर प्रकाश डालना उचित है। ऋषि दयानन्द ने इस पत्र का खण्डन किया है। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यास जी ने इकट्ठा किया वह बात झूठी है, क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति वसिष्ठ और ब्रह्म आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे।" इन पत्रों में सत्य कौनसा है और असत्य कौनसा इसका विवेचन किया जाता है। इस विषय में वेदभाष्यकार महीधर का मत ऋग्वेद के आरम्भ में इस प्रकार है:—

"तत्रादौ ब्रह्मपरम्परया प्राग्वेदवेदव्यासो मन्वन्तीन् मनुष्यान् विचिन्त्य तत्कृपया चतुर्धा ऋक्स्यऋग्यजुः सामाथर्वा ख्यारचतुरो वेदान् पैल, वैशम्पायन, जैमिनि सुमन्तुभ्यः क्रमादुपदिदेश, ते च स्व शिष्येभ्यः, एवं परम्परया सहस्र शास्त्रो वेदो जातः।"

अर्थात् ब्रह्म की परम्परा से प्राप्त हुए वेद को ऋषियों को मन्वन्ति समझ कर वेद व्यास जी ने ४ विभागों में विभक्त कर दिया और उनके यजुर्वेद आदि नाम रख दिये, और अपने चार शिष्यों पैल, वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु-को पढ़ाया, जो परम्परा से हजार शाखावाला वेद हुआ। यही बात दुर्गाचार्य ने निष्कर्ष में लिखी है—

"वेद तावदेकं सन्तमतिमहत्वात् दुरधेयमनेकशाखाभेदेन समाग्नसिषु । मुखप्रहणाय व्यासेन समाग्नान् यन्त । अर्थात् वेद जा कि एक था और पढ़ने में अग्नि कठिन था, उसकी व्यास जी द्वारा अनेक शाखाएँ समाग्नता हुई ।

अब विचारणीय यह है कि वेद एक था और व्यास जी ने उसका विभाग किया। यह कल्पना कहा से आई ? इसका उत्तर यह है कि यह पुराणों की कल्पना है जिम्मेकारण यह भ्रम फैला है। विष्णु पुराण के ३-३ में विस्तार पूर्वक इसका उल्लेख है। यद्वा मैत्रेय जी ने श्री पराशर जी से यह प्रश्न किया कि युग युग में व्यास जी के द्वारा जो वेदों का विभाग हुआ है, कृपा कर उसका वर्णन कीजिये ? पराशर जी बाले— "हे मैत्रेय ! प्रत्येक द्वापर युग में भगवान् विष्णु व्यास रूप से अवतीर्ण होते हैं और एक वेद के अनेक भेद कर देते हैं।" पराशरजी बाले— "हे मैत्रेय, इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्रत्येक द्वापर युग में व्यास महर्षिओं ने अब तक अट्ठाइस बार वेदों का विभाग किया है।" इसके आगे पराशर मुनि सारे व्यासों के नाम गिनाते हुए लिखते हैं कि तत्परन्तु हमारे पिता शक्ति व्यास हुए और फिर मैं व्यास हुआ, और मेरे अनन्तर जात कर्ण व्यास हुए और फिर कृष्ण द्वैपायन व्यास हुए इस प्रकार इन २८ व्यासों ने द्वापरादि युगों में एकही वेद के चार चार विभाग किये हैं।

एको वेदश्चतुर्धा तुतै कृतो द्वापराविषु ॥२०॥

उपर के उद्धरण से विदित होता है कि पुराण सृष्टि की आदि में एकही वेद मानता है और फिर द्वापरादि युगों में प्रत्येक में एक एक व्यास का होना मानता है, जो वेदों का विभाग करते आ रहे हैं। वेदों के सञ्चय में मत्स्य पुराणादि में भी ऐसा ही लेख है। यहाँ तक हमने पूर्वपत्र दिखाया, अब इस

का विवेचन किया जाता है। विष्णु पुराण के उ५२ के लेख में प्रतिज्ञाही प्रतिज्ञा है, हेतु कोई भी नहीं है। प्रथम तो यह विचारणीय है कि द्वापर युग में ही व्यास क्यों पैदा होते हैं? क्या द्वापर में ही वेद अस्तव्यस्त हो जाता है, जिसका सुधार करना पड़ता है, और फिर हर एक व्यास वेदों के जब चार विभाग करता है तो वे विभाग सबके भिन्न भिन्न सृष्टि में आने चाहिये किन्तु ऐसा नहीं है। २८ वार विभाग होने पर भी वेदों का वत्त मान विभाग ही सर्वत्र मिलता है। यदि कहा जाय कि सब से पहिले द्वापर में ब्रह्मा जी ने जैसा विभाग किया था, पीछे के व्यासों ने उसी का सुधार कर दिया है तो यही क्यों न मान लिया जाय कि सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने ही चार विभागों में चार ऋषियों द्वारा चारों वेद प्रकट किए। क्योंकि २८ द्वापर बात चुके इस लिये २८ वार वेदों का विभाग हुआ इस कल्पना में न कोई प्रमाण है और न हेतु। द्वितीय बात विचारणीय यह है कि प्रथम तो पुराण कहता है कि प्रत्येक द्वापर में एक व्यास विभाग करता है पुन नीचे लखता है "परचात् हमारे पिता व्यास हुए, फिर मैं व्यास हुआ। मेरे अनन्तर जातु कर्ण और फिर मेरा पुत्र व्यास हुआ। अब यह ४ व्यास क्या चार द्वापरों में हुए है? कदापि नहीं। एकही युग में शक्ति पराशर जातु कर्ण, कृष्ण द्वैपायन इस प्रकार ४ व्यास हो गये ता पुराण के २८ द्वापरों के २८ व्यासों का लेख मिथ्या हो गया। यदि हमसे पूछा जाय तो कहना होगा कि विष्णु जी के महत्व घोटनार्थ यह सारी कपेल कल्पना पुराणों ने घड़ी है, जिससे रक्ती भर सार नहीं है। विचारे महीधर आदि अत्यन्त अर्वाचीन भाष्यकार इनही पुराणों के मद्दे अवर्त्तन में फसे चक्कर काट रहे हैं। एक तरफ वेदों को नित्य कहते जाते हैं, दूसरी तरफ व्यासों के द्वारा विभाग कराते जाते हैं। न उनको निज की बुद्धि है और न स्वतन्त्र विचार शक्ति। विचारे क्या करें? यही हाल अन्य परम्परा के पीछे चलने वाले ग्रन्थ लोगों का है।

वेदों का उत्तर

वेद सृष्टि की आदि से ४ हैं या एक। इसका उत्तर वेद ने स्वयं दिया है जो सर्वथा अकाम्य है। यदि वेद एक होता तो वेद में वेदों के लिये सर्वत्र एक वचन आना चाहिये था, किन्तु आता है बहु वचन जिससे सिद्ध है कि वेद एक नहीं।

अथर्व १६—६—१२ में है

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदा सप्त ऋष्याऽमन्यं ।
तैर्मेकृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्मयच्छतु ।

अथर्व ४—३५—६

यस्मान् पकादभूत् सम्भव्य यो गायत्र्या
अधिपतिर्वभूव यस्मिन्वेदा निहिता विश्वरूपास्ते
नीदने नातितराणिमृद्युम् । यही बात नहीं है, जब वेद स्वयं वेदों के चार नामों का उल्लेख करता है तब कैसे माना जा सकता है कि वेद एक था।

अथर्व का० ११—सू० ४

ऋक्साम, यजुर्ऋच्छष्ट उद्गीथ प्रस्तुतं
स्तुतम्। हिङ्कार उच्छ्रष्टे स्वर साम्नो मेदिश्चं
तन्मयि—पुनः इसी सूक्त में ऋच. सामानि, छन्दसि
पुराणं यजुषा सह उच्छ्रष्टाञ्जिह्वे सर्वे दिविदेव-
दिविभ्रित ॥२३॥

इत्यादि मन्त्र चारों वेदों में आते हैं, जिनमें स्पष्ट चारों वेदों के नाम आते हैं तब यह कैसे संभव हो सकता है कि वेदों के विभाग के साथ नाम भी व्यास जी ने रखे। प्रसंग वश ऊपर के मन्त्र में आए पुराण शब्द का समाधान भी कर देना उचित है, क्योंकि कोई कोई विद्वान कहते हैं कि पुराण भी परमात्मा से ही प्रकट हुए। इनका उत्तर यह है कि यहाँ पुराण शब्द क्रिया विशेषण है। पुराण शब्द का अर्थ नित्य है, अर्थात् उच्छ्रष्ट—परमात्मा से नित्य रूप ऋग्वेद, साम, छन्दसि अर्थात् अथर्व और यजुर्वेद प्रकट हुए—पुराण शब्द नित्य का वाची है, इसीलिये गीता में आता है—“अजो नित्य शारवतोऽयं पुराणे न हन्यते हन्यमाने शरीरे” यही बात नहीं कि वेदों से ही वेदों का अनेकत्व सिद्ध होता हो, अन्य आर्षार्थ भी ऐसा ही मानते हैं यह भाष्यकार पतञ्जलि लिखते हैं “चत्वारो वेदा साज्ञा

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता' इस मन्त्र के भाष्य में सायण ने भी 'वेदा' पद का अर्थ 'वेदाः साङ्गारचत्वार' किया है।

कठ ब्राह्मण मे—

'चत्वारिंशद्ब्रा इति वेदा वा एतदुक्ताः—अर्थात् 'चत्वारिंशद्ब्रा' मन्त्र मे ४ वेदों का कथन है।

उपनिषदों मे—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं योवै वेदांश्च प्रहियो तितस्मै। कहकर वेद बहुवचन होने से अनेक वेदों का ग्रहण है इत्यादि। सैकड़ों प्रमाण यह बताते हैं कि वेद एक कभी न था उसका यह विभाग ईश्वर से ही प्राप्त हुआ है।

यदि यह विभाग व्यास कृत होता तो व्यास जी से भी अति प्राचीन रामायण के किष्किन्धाकाण्ड मे यह श्लोक न आता जैसा कि हनुमान के विषय मे राम ने कहा है—

"नातृभ्यवेदविनीतस्य नाम यजुर्वेद धारिण
नासामवेदाविदुषः शक्यमेवंविभाषितुम् ॥"

श्लोक २८

अर्थात् यह हनुमान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद न पढ़ा हुआ होता तो ऐसा सुन्दर भाषण न कर सकता।

यही बात द्रोणपर्व अ० ५१ महाभारत मे कही है—

'वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीता' प्राणुवन्ति दिवौकसः।'

किवहुना ? यह बात निश्चित है कि वेदों का यह विभाग व्यास कृत नहीं है। अब यह शंका होती है कि फिर पुराणादि ने यह वर्णन क्यों किया है। इसका उत्तर यह है कि जब अनेक ऋषियों ने अपने शिष्यों के पढ़ाने के लिये वेदों के भाष्य किये तब कहीं पाठ भेद कहीं सूक्त भेद, कहीं क्रम भेद हो गये। उस समय तो पठनपाठन—क्रम के कारण और गुरु शिष्य परम्परा से यह ज्ञान रहा कि अमुक शब्द मन्त्र का है अमुक भाष्य का किन्तु दीर्घकाल के अनन्तर यह बात ज्ञात न रही तब वेदव्यास जी ने बड़ी सावधानी से इसका संशोधन किया। ब्राह्मण ग्रन्थों को ठीक क्रम लेकर संहिता भाग से प्रत्येक

कर दिया। उस समय जो लोग ब्राह्मणों को वेद कह देते थे उन्होंने यही कड़ना प्रारम्भ कर दिया कि वेदों का विभाग व्यास जी ने किया है। इस समय भी सभाष्य कुरान को कुरान और सभाष्य के वेद को वेद ही कहते हैं। अतः उस समय यह कड़ना उचित ही था कि व्यास जी ने वेदों का विभाग कर दिया।

यह विषय बड़ा गहन है कि व्यास और उनके शिष्यों ने किन किन शास्त्राओं का संकलन किया है। लेख विस्तार भय से इस विषय को थोड़ा और लिख कर समाप्त किया जाता है। 'तेन प्रोक्तम् सूत्र की व्याख्या मे पतञ्जलि लिखते हैं—'नहिच्छन्दांसि क्रियन्ते, नित्यांश्चिच्छन्दांसीति, बराप्यर्थो नित्यो यात्वसौ वर्णानुपूर्वा सानित्या तद्देवाच्चेतद्भवति काठक, कालापकं मौदकं, पैपलादकम्' अर्थात् मन्त्र बने हुए नहीं हैं मन्त्र तो नित्य है यद्यपि अर्थ नित्य है पर वर्णों का क्रम अनित्य है। इसीलिए काठक, कालापक शास्त्राएँ बनी हैं। पाठक देखें क्या स्पष्ट वर्णन है अर्थात् पतञ्जलि कहते हैं कि ऋषियों ने अपने शिष्यों का पढ़ाने के लिये कुछ पाठान्त कर लिये किन्तु अर्थ भेद नहीं किया। इन्हीं पाठान्तरीयों के समुदाय का नाम शाखा है, जो कि कठ, चर, मौदक, पिपलाद आदि ऋषियों के नाम से मशहूर हैं, इसीलिये पतञ्जलि ने अथर्व का प्रथम मन्त्र शन्नो-देवी लिखा है जिस पर वेद विरोधी कहते हैं कि पहिले यह वेद इस मन्त्र से प्रारम्भ होता था किन्तु अब "ये त्रिपत्ता." से प्रारम्भ होता है जिससे जान पड़ता है कि वेद बदल गये। पहिले वेद नष्ट हो गये, उसके उत्तर मे पाठकों को स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि वेद कहीं नहीं बदले। यह मन्त्र शन्नोदेवी पिपलाद शाखा मे प्रथम पढ़ा गया है। उसीको पतञ्जलि ने लिख दिया है। इन थोड़ी सी पंक्तियों को लिख कर मैं आर्यों से निवेदन करता हूँ कि उनका वेदों के स्वाध्याय मे अपने जीवन को लगाना चाहिये, जिससे सारी वैदिक उलभने स्वयं सुलभ जायंगी।

नमोऽस्तु वेदेभ्यः

वेदार्थ-पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द

(ले०—श्री ५० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु)

— X —



द आर्यजाति की परम पवित्र सम्पत्ति है। उसके आधार पर ही ऋषि मुनियों ने अपनी कृतियों द्वारा सामान्यतः संसार में विशेष तथा भारतभूमि में आर्य संस्कृति की आधारशिला स्थापित की, जो

संस्कृति अथावधि भी उन प्राचीन परम्पराओं को किसी न किसी रूप में सुरक्षित किये हुये हैं। इस संस्कृति का आदि स्रोत तो वेद ही है जो प्रभु की वाणी है जिसे आदि सृष्टि में परमपिता परमत्मा ने जीवों के कल्याणार्थ अनेक विधि जीवन सामग्री की भौतिक ऋषियों के हृदय में प्रकाशित किया, जिसके विषय में महर्षि मनु से लेकर कपिल कणाद तथा जैमिनि पर्यन्त महर्षियों की सार्वाङ्गी स्पष्ट विद्यमान है। पुराकाल में ऋषि महर्षि अपने शिष्यों को प्रवचन द्वारा वेदार्थ का बोधन करा देते थे। किसी वेदांग या उपांग की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। प्राणिमात्र के दिव्यचित्तक इन महर्षियों ने सुहृद् होकर उस प्रवचन को ग्रन्थ रूप में संकलित कर दिया जिससे वेदार्थ संसार से लुप्त न होने पावे। यही ग्रंथ निरुक्त्यादि वेदांग उपांगों के नाम से प्रसिद्ध हुये। यही ज्ञात निरुक्त के प्रथमाध्याय के अन्त में यास्कमुनि ने दर्शाई है। यास्क के काल तक यह वेदार्थ प्रवचन की परम्परा द्वारा चलता रहा, प्रथक् कोई वेद का भाष्य या व्याख्यान बना ही, ऐसा ज्ञात नहीं जाता, क्योंकि इस प्रकार रचना करने की आवश्यकता ही नहीं थी। ब्राह्मण ग्रन्थ मुख्यतया विनियोजक ही प्रसंगत व्याख्यान भी करते हैं। व्याख्यान करना इनका मुख्य कर्ष्य नहीं।

वेदार्थ अन्वकार में

यास्क से पीछे तीसरी शताब्दी पर्यन्त वेदार्थ अन्वकार में रहा, इसमें अस्तुति नहीं। समय समय पर कभी कभी प्रकाश की झलक दिखाई देती रही

पर वह भी बहुत घीमी। ऐसे ऐसे योग्य आचार्यों के वेदार्थ को लुप्त करने का यत्न किया गया। लुप्त परम्पराओं (Tradition) के प्रकाश में आने पर ऐसा विश्रान्तः कहना पड़ता है। वेद और शास्त्रों के नाम पर क्या क्या अनर्थ हुए यह उस काल के भाष्यकारों के भाष्यों से जाना जा सकता है। महीधर के गन्दे अर्थ इसका प्रमाण हैं।

‘निरस्तपादपे देशे परएवऽपि दू मायते’

का लोकोक्ति के अनुसार सायणाचार्य की तू ती सब ओर बजने लगी। यह अवस्था कई सौ वर्ष तक रही। अंगरेजी राज्य के भारत में आने पर जब विदेशी लोगों ने भारतीयों का अपनी सभ्यता से उदासीन बनाने के अभिप्राय से की उत्तम उत्तम कृतियों को भी दूषित रूप में, जानकर या न जानकर संसार के सम्मुख रखना आरम्भ किया। तब उनको अपने उद्देश्य की पूर्ति में सायणाचार्य ही सब से अधिक सहायक प्रतीत होत हुये। इसलिये उन्होने वेद को सायण प्रदर्शित स्वरूप में ही संसार के सामने उपस्थित किया। वहीं से सायणाचार्य के वेदार्थ की झूठी घाक जमाना आरम्भ हुई। यदि विदेशी स्कॉलर-सायण को इतना सिर पर न उठाते तो इनका भाष्य भी अन्व्यों की भौतिक रहता। सर्व साधारण की दृष्टि में इतना आगे नहीं आता। दूसरे यह भी कारण हुआ कि सायण से प्राचीन वेद भाष्यकारों का नाम तक नहीं लिया (एक र को छोड़कर) यद्यपि यास्क के परचात वेदार्थ की प्रतीमा बहुत कुछ शिथिल हो चुकी थी; परन्तु फिर भी वेदार्थ की परम्परा (Tradition) अपने वास्तविक स्वरूप में नहीं तो कुछ विकृत रूप में तो आ रही थी। उस रही सही वेदार्थ परम्परा को नष्ट करने का श्रेय सायणाचार्य को ही है। शताब्दियों पर्यन्त जनता वेदार्थ क्रिया से गुमराह रही। यहीं तक नहीं अपितु तीसरी शताब्दी में ऋषि दयानन्द जैसे महा पुरुष के वेदार्थ प्रक्रियों का प्रकाश कर देने पर भी उनका नाम लेतेकर बड़ी बड़ी संस्थाओं के संघालकों—बड़ी बड़ी समाजों के मुख्याधिकारियों तक

की बुद्धियों अनार्यशैली तथा अनार्य साहित्य के निरंतर अनुशीलन करते-कराते रहने के कारण दयानन्द का विद्युत् ज्योति का दर्शन न कर सकी। फरती भी कैसे! अनार्यशैली से आर्य ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है। वस, ऐसे लोगों ने कहना तथा लिखना आरम्भ कर दिया—

(१) 'सायण का भाष्य जैसा सुसङ्गत-सुसम्बद्ध प्रतीत होता है वैसा दूसरा नहीं। 'स्वामीजी के भाग्य की धारक नहीं बैठती'।

(२) "यह एक सचाई है कि श्री स्वामीजी कृत वेद भाष्य का क्रम सर्वसाधारण की समझ में नहीं आता। यह एक दूसरी सचाई है कि जिन विद्वानों ने इसे देखा है उनके अन्दर इसके सम्बन्ध में उचित श्रद्धा पैदा नहीं हो सकी। यह ध्वनि अनेक रूपों में आर्यजनता के सामने आती रही और इस समय भी कहीं कहीं से आया करती है। यह है आर्य कहलाने वाले कुछ एक विद्वानों के उद्गार, जो आर्यसमाज या उसकी सस्थाओं के मुकट मणि बने हुए हैं। यह आर्य जनता ऐसे लोगों के कदमों पर गिड़ गिड़ा कर गिरती हुई दिखाई देती है, जिसका परिणाम अत्यन्त हानिकर हुआ और होता रहेगा। प्रामाणिक वेद भाष्य ऐसे कृपालुओं की सहायता से ही तो बन रहा है !!!

सायण की इस धारक ने आर्य कहलाने वाले विद्वानों की बुद्धियों को कहा तक दूषित कर दिया यही दर्शाना हम यहाँ अभिप्रेत है।

सायणाचार्य के वेदार्थ—

समझ में भी नहीं आया।

अब हमें इस बात की सम्प्रमाण विवेचना करना उचित होगा कि श्री० सायणाचार्य को वेदार्थ कहातक समझमें आया। सायणाचार्यकेपक्षपाती विद्वानों ने दयानन्दभाष्य पर जो आपत्तियाँ की, उनमें सब से बड़ी आपत्ति यह थी कि—'खैर और जो कुछ हा सो हो पर "अग्निमोले पुरोहितम्" आदि वेद मंत्रों में "अग्नि" शब्द का अर्थ परमात्मा नहीं हो सकता।" भ्रान्ति निवारण पुस्तक के ६ पृष्ठ पर कलकत्ता ओरियन्टल विभाग के प्रिन्सिपल श्री० पं० महेशचन्द्र न्याय रत्न का उठाया हुआ पूर्वपक्ष देख सकते हैं। हेतु वह

क्या देते हैं—“क्योंकि अग्निशब्द से लोक में चूल्हे की आग ही लिया जाता है, ईश्वर अर्थाँ नहीं लिया जा सकता इसमें साक्षी सायणाचार्य की है”। इत्यादि जब स्वामी दयानन्द ने वेदभाष्य का प्रकाशन किया। सारे भारतभूमें एक कोलाहल सामच गया। स्वामीजी ने आरम्भ से ही अपने वेद भाष्य में वेद मन्त्रों के अर्थ आध्यात्मिक-आधिभौतिक आधिदैविक प्रक्रियाओं को लेकर किये। सायणाचार्य इन प्रक्रियाओं के विषय में कौन है। जहाँ देखो वही यजमान और यज्ञाग्नि की ही भरमार है। भूमिका में भी जो थोड़ा सा लिखा वह भी अस्पष्ट सा है। उसका कारण भी उस से पूर्ववर्ती भाष्यों का उपस्थित होना ही कहा जा सकता है, जिनका कि उसने नाम तक नहीं लिया।

आचार्य दयानन्द के तीन प्रकार के अर्थाँ दिखाने पर अनार्य साहित्य सेवी मन्त्रिष्क उस पर उपहास (मखौल) करने लगे। पूर्ववर्ती विद्वानों विशेषकर सायण से विपरीत होने की दुहाई देकर दयानन्द भाष्य को सर्वथा हेय तथा कालोत्पलित बताया गया और कहने लगे कि स्वामी दयानन्द सब अर्थ उलटा करते हैं।

स्वामी दयानन्द ने स्पष्ट घोषणा की कि मैं तो लगभग तीन सहस्र ग्रन्थों को प्रामाणिक मानता हूँ। मेरा भाष्य प्राचीन ऋषि मुनियों के आधार पर है। मैं आप लोगों के उलटे किये हुए अर्थाँ को उलटा अवश्य करता हूँ”।

सायण से प्राचीन लगभग १०० सौ वेद भाष्यकार अबसे कुछ वर्ष पूर्व तक ऋग्वेदीय तथा विदेरी विद्वानों के सामने एक सायण भाष्य ही उपस्थित रहा, परन्तु अब अनेक विद्वानों की निरंतर खोज से (इसका सब से अधिक श्रेय आर्यसमाज के रत्न अद्वितीय वैदिक मिर्चा स्कालर श्री० पं० भगवद्दत्त जी लाहौर को है) सायणा से प्राचीन लगभग १०० सौ वेदभाष्यों का पता लग रहा है जिनमें लगभग बीस वेद भाष्य मिल भी रहे हैं।

उपर्युक्त आध्यात्मिकादि प्रक्रियाओं को लेकर अनेक आचार्यों ने वेद की व्याख्यायें कीं। आचार्य

स्कन्द स्वामी इनमें सर्व प्रथम हैं। नारायण और उद्गीक भी उनके सङ्कारो थे, जिनमें नारायण का वेद भाष्य तो अरो तक नहीं मिला। स्कन्द और उद्गीक दोनों का मिलता है। यह तीनों विद्वान् समाज से लगभग ८००-६०० वर्ष पूर्व हुए। इन सन्ध्या में उद्धरण आगे देखें।

आचार्य आत्मानन्द ने अष्टाध्यायीय सूक्त का कितना सुन्दर आध्यात्मिक अर्थ किया है। वेदुटपावन ने अपनी अतुल्यमणी के वेदार्थ सम्बन्ध में कितने उज्वल विचार आध्यात्मिक मुखा के रूप में तथा वेदार्थ करने वालों को कैसी योग्यता का सम्पादन करना चाहिये इत्यादि मौलिक बातों पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। हरिस्वामी के शतपथ ब्राह्मण भाष्य में ऋद्धभास्कर के तैत्तिरीय संहिता ब्राह्मण, आरण्यकों में, और भरत स्वामी के सामन्त भाष्यमें प्राचीन वेदार्थ पद्धति का उज्वल स्वरूप अनेक स्थलों में भासित हो रहा है।

आज से कुछ वर्ष पूर्व तक दुर्गाचार्य की निरुक्त टीका वेदार्थ का प्रकाश इतना स्पष्ट रीति से करती दिखाई नहीं देती थी पर अब इस उपर्युक्त बहुमूल्य प्राचीन सामग्री के प्रकाश में देखने से अब दुर्गा का वह स्वरूप नहीं रहा अपितु वह भी उपर्युक्त आचार्यों की भाँति अपने काल तक वेदार्थ की उन प्राचीन परम्पराओं से बहुत कुछ परिचित प्रतीत होते हैं।

वेद मन्त्रों में आये 'अग्नि' शब्द का परमात्म अर्थ हो ही नहीं सकता कहाँ तो यह विद्वान् कहलाने वालों की धारणा थी और कहाँ अब सायण से ६०० वर्ष पूर्व प्राचीन वेदभाष्यकार आचार्य स्कन्द स्वामी

यास्क के मत में प्रत्येक मन्त्र का तीन प्रकार का अर्थ

बताते हैं। जैसा कि ऋषि दयानन्द ने अपनी वेद भाष्य भूमिका में स्थापना की तथा वेद मन्त्रों का अर्थ करते हुये पदे पदे दर्शाया। आचार्य स्कन्द स्वामी लिखते हैं—कि निरुक्तकार यास्क मुनि के मत में वेद के प्रत्येक मन्त्र का अर्थ आध्यात्मिक, नैतिक, वाहिक-

और शुद्ध वाहिकदि प्रक्रियाओंके अनुसार होता है। तदुच्यते—

“सर्वदर्शनेषु च सर्वे मन्त्रा योजनीयाः। कुतः। स्वयमेव भाष्यकारेण सर्वमन्त्राणां त्रिप्रकारस्व वितयस्य प्रदर्शनात्। “अर्थो वाचः पुत्ररुत्तमाह” इति यज्ञादीनां पुत्रफलत्वेन प्रतिज्ञानात्” (निरुक्त स्कन्द स्वामिभाष्य भाग ३ पृ० ३५) ॥

अर्थात् सब दृष्टियों (प्रक्रियाओं) में सब मन्त्रों का अर्थ करना चाहिये। क्योंकि स्वयमेव भाष्यकार यास्क मुनि ने (वेद के) सब मन्त्रों का अर्थ तीन प्रकार का होता है यह दर्शाने के लिये “अर्थो वाचः पुत्रफलमाह इत्यादि (कि० अ० ?) प्रकरण में यज्ञादिकों का पुत्रफल रूप से वर्णन किया है।”

इस विषय के और भी बहुत से प्रमाण सायण से प्राचीन तथा अर्वाचीन भाष्यकारों के ग्रन्थों से दिये जा सकते हैं; परन्तु इस प्रकार के लेखों द्वारा अधिक नहीं लिखा जा सकता।

क्या आचार्य स्कन्द स्वामी के उपर्युक्त लेख को पढ़ कर कोई विद्वान् कह सकता है कि सायणाचार्य को वेदार्थ का स्वरूप समझ में भी आया हो ? यदि आया तो इन वादों और प्रक्रियाओं को लक्ष्य में रख कर उसने वेद मन्त्रों का अर्थ क्यों नहीं किया ? है इसका कुछ भी उत्तर ?

सब मन्त्रों का अर्थ आध्यात्मिकादि सभी प्रक्रियाओं में होना चाहिये। इस युग में क्या यह ऋषि दयानन्द के मस्तिष्क की उपज नहीं ? क्या यह स्पष्ट नहीं कि सायण से सैकड़ों वर्ष पहिले वेदार्थ की यह प्रक्रिया विद्यमान थी, जिसकी सायण ने जान कर या न जान कर उपेक्षा की। अपने से पूर्व वर्ती भाष्यकारों आचार्य स्कन्द स्वामी, भरत स्वामी, आत्मानन्द, ऋद्धभास्करादि अनेक आचार्यों का नाम तक नहीं लिया। क्या इससे वेदार्थ के विषय में उनकी अज्ञाता स्पष्ट नहीं ? क्या एतद्देशीय तथा विदेशीय स्कालरो या विद्वानों का सायण के पीछे चलना “अन्धनैव मीयमाना यथाग्वाः” नहीं कहा जा सकता ? इसमें पक्षपात रहित विद्वान् ही साची हैं।

वास्तविक वेदार्थोद्धारक

ऐसी अवस्था में आचार्य दयानन्द को वेदार्थोद्धारक कदना कदापि अर्थार्थ नहीं कहा जा सकता। वेदार्थ करने वालों में किन किन योग्यताओं तथा गुणों का समावेश होना परमावश्यक है इस विषय में हम आचार्य स्कन्द स्वामी के शब्दों में ही लिख कर आगे दुर्गाचार्य का एक स्थल सहृदय पाठकों की सेवा में बरसित करेगे। स्कन्द कहते हैं कि मन्त्रों में आध्यात्मिक ज्योति का प्रकाश किनको हो सकता है—

‘तत्राध्यात्मविदस्तावन् सन्मात्र निबद्ध बुद्धय शिथिलीभूतकर्मग्रहप्रत्यया भिन्न विषय भव सक्रम स्थान वैराग्याभ्यासवशाद् समासादित स्थिर समाधयो निरस्त समस्ताधयो निरस्त बाह्य विषयैषणा निरुधान्त करण वृत्तयो निष्कम्पदीपकत्वा राज्ञ्ञ ज्ञान मनना ॥’

अर्थात् वेद मन्त्रों द्वारा परमात्मा का ज्ञान उन्हीं को हो सकता है—जिनकी बुद्धियों सत्य के ग्रहण करने में तत्पर हों, जिनकी कर्म ग्रह प्रतियोग्य शिथिल हो चुकी हो, अभ्यास और वैराग्य से जिनकी सासारिक विषय वासनाओं की धारा नष्ट हो चुकी हो और जो स्थिर समाधि को प्राप्त हो चुके हों, सम्पूर्ण क्लेशों से रहित हो बाह्य विषयों की वासना जिनकी नष्ट हो चुकी हो अतः करण वृत्तियों जिनकी नष्ट हो चुकी हो इत्यादि ॥

सज्जन वृन्द ! यह सब विशेषण किस सुन्दरता से महापुरुष दयानन्द में घटित होते हैं, यह निष्पक्ष विद्वान् स्वयं सोच सकते हैं।

वेदार्थ का अपूर्व अश्वारोही

वेदार्थ की प्रक्रिया के विषय में एक बहुत उत्तम बात दुर्गाचार्य ने लिखा है—

“तत्रैवं सति प्रतिबिम्बितयोगमस्यान्धेनार्धेन भवितव्यम् । त एते बह्वुरधिप्रायवशादन्यत्रमपि भजन्ते मन्त्राः । न ह्येतेषु अर्थस्यैव तावद्धारणमस्ति । महार्था ह्येते दुष्परिज्ञानारच । यथाश्वारोहवैशिष्ट्याव्रवसाधु साधुतररच वहति, एवमेते बह्वुवैशिष्ट्यान् साधु साधुतररचाथान् प्रवहन्ति ॥”

“तत्रैवं सति लक्षणोद्देश मात्रमेवैतस्मिन्नाधे निर्वचनमेकैकस्य क्रियते। कश्चिच्च आध्यात्मिकाधियज्ञोपदर्शानार्थम् ।

‘तस्मादेतेषु आन्तोर्धा उपपद्येरन् आधिदैवाध्यात्माधियज्ञाश्रया भर्त्ता एव ते योज्यः । नात्राय राधोऽस्ति ॥”

(२) इदंशेषु शब्दार्थान्याय सङ्केतेषु मन्त्रार्थ घटनेषु दुस्त्वोपेयु मतिमर्ता मतयो न प्रतिब्रह्मन्त्ये, वयं त्वचेतावद्वावदुष्यामहे ॥” पृ० ६२४

अर्थात् ऐसी अवस्था में विनियोग के भेद से इसका भिन्न भिन्न अर्थ होगा। सो यह वेद मन्त्र वक्ता के अभिप्राय भेद से भिन्नार्थ को भी प्राप्त हो जाते हैं।

इसमें घबराने को कोई बात नहीं है।

मन्त्रों का ब्रह्म इतना ही अर्थ है, इसकी कैंद नहीं लगाई जा सकती। यह मन्त्र महान् अर्थ वाले हैं। अत्यन्त ही दुर्गन्धिमान (बड़े ही परिश्रम क्रियायोगादि की शक्ति से जाने जा सकते हैं) ॥ जैसे अश्वारोही (पुडसवार) दो के भेद से घोड़ा अच्छा-बहुत अच्छा-बहुत ही अच्छा चलने लगता है। इसी प्रकार वक्ता जितना अधिक योग्य और तपस्वी होगा उसके दर्शाये वेदार्थ से भी उतने ही अधिक साधु—और साधुतर अर्थों का प्रकाश होगा। आजकल के वेदभाष्यकार कहलाने वाले महानुभाव इससे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

सायण का अश्वारोहण (सवारी करना) स्कन्द स्वामी आदि की अपेक्षा कितना भिन्न था, यह संक्षेपत दर्शा चुके हैं। स्कन्द ने (यद्यपि वह भी प्रवाह से बच नहीं सके तथापि) अपने समय तक की परम्पराओं (Traditions) को किसी अंश-तक सुरक्षित रखा। सायण की दृष्टि वहाँ तक नहीं जा सकी। इसके परिणाम स्वरूप वेदार्थ का परिणाम (Studied) हीन (Low) होता चला गया। उसकी रही नहीं आभा (अब) तदनुवर्ती एख्खेशीय तथा विदेशीय विद्वानो-स्कालर कहलाने वालों ने नष्ट करदी। कारण वही ‘निरस्तसमस्ताधयो’ ॥” इत्यादि गुणों का अभाव ॥ उपर्युक्त गुणों से युक्त

होने का सौभाग्य इस युग में दयानन्द को ही प्राप्त हो सका। यह बात हमारे उपर्युक्त लेख से सिद्धि है।

सामान्यतया लोकानुसारतो यही है कि कोई 'क्या कहते हैं' इसका ही विचार किया जाता है, न कि 'कौन कहता है'। परन्तु वास्तविक बात यह है कि 'कौन कहता है' और 'क्या कहता है' इन दोनों बातों को ही देखने की परमावश्यकता है।

देश-नेत्री श्रीमती सरोजनी नायडू के खड्ग के वस्त्र धारण करने पर "तुम बहुत सुन्दर प्रतीत हो रही हो" महारमा गौधी के यह शब्द पापी से पापी के मन में भी पवित्रता का संचार करते हैं। कोई भी इन शब्दों में स्वान में भी दुर्भावना का विचार नहीं कर सकता। परन्तु यदि यही शब्द एक कामी या होन चरित्र व्यक्ति किसी परस्त्री—माता-देवी के प्रति प्रयुक्त करता है, तो संसार में कोई भी इनसे पवित्र भावना की कल्पना नहीं कर सकता।

पवित्रात्मा दयानन्द के शब्दों में चाहे वह व्याख्यान रूप हो या सामान्य पुस्तक रूप—या वेद-मन्त्रों का काण्ड—यह पवित्रात्मा सर्वत्र दृष्टिगोचर होगी। यह उनको भिन्न भिन्न कृति से ज्ञान हो रहा है। इस आत्मा को पचासो मिलकर भी कैसे प्रकाशित कर सकते हैं। जिनकी इन्द्रियाँ बश में नहीं। किसी भी संसारी प्रवाह में लौकिकता के वशीभूत पदे पदे गिरावट में फंसे रहते हैं। धन के वशीभूत अपनी अन्तरात्मा को बेच तक देने में संकोच नहीं करते। स्वयं वेद पर विश्वास नहीं। ऋषि-मुनियों का मार्ग उनको निस्तार प्रतीत होता है। पर यह सब कहने को तथ्यार नहीं। पूछने पर हाथ भी जोड़ दें, हम तो सब मानते हैं। ऐमे सैकड़ों आत्मघाती विद्वान एकत्रित कर देने पर भी वेदार्थ का गौरव संसार में बैठेगा, यह स्वप्न से अधिक नहीं कहा जा सकता। बोटिङ्ग से कोई वेद भाष्य हुआ करते हैं। अतः पहिले अपने विद्वानों की व्यवस्था ठीक करो। वेदार्थ की मौलिक बातों (Fundamental Principles) पर पूर्ण विचार करने के लिये कम से कम सप्ताह-दो सप्ताह विचार करने की योजना करा, तभी कुछ व्यवस्था बन सकेगी।

जिस साहित्यिक प्रक्रिया को लेकर सायणाचार्य ने इतना कुछ लिखा उसका ही स्वरूप उसने कहाँ तक

समझा, यह बात भी अग्नी साध्य कोटि में ही समझनी चाहिये। सम्प्रति इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि याज्ञिक प्रक्रिया में भी सायण ने भारी भूलें की हैं जो कभी अवसर आने पर ही दराई जा सकेंगे।

भूल कर जाना बड़ी बात नहीं। मनुष्य संसार में भूलनहार ही तो है, परन्तु सायण के भाष्य की भूठी दुहाई देकर दयानन्द की दिव्य उद्योति को मेघाच्छादित करने का व्यर्थ प्रयत्न आर्यसमाजी नामधारी विद्वान कहलाने वाले द्वारा भी कहीं कहीं दृष्टिगोचर होता है। अतः हमें विवशतः ऐसा कहना पड़ता है। गुण प्राप्ति होने तो प्रत्येक के लिये उचित है। परन्तु यह भी तो न हो कि गुण ग्रहण के बहाने लोगों का कुमार्ग पर डाला जावे।

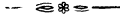
आर्य बन्धुओं! दयानन्द का अध्ययन शुद्ध मस्तिष्क से करो। उस महापुरुष के दर्शयि मार्ग का अनुशीलन करो वेद या दयानन्द के नाम पर संसार को धोखा मत दो "वेद प्रचार के नाम पर मिथ्या प्रचार मत करो। अधिकांश के लिये कनवेसिंग (पाठियों बनाना और भूटा आन्दोलन करना) रूपी पिशाचिनी के उपासक मत बनो। आचार निष्ठ विद्वान ब्राह्मणों (गुण कम से न कि जन्म से) का आश्रय लो, जो केवल तुम्हारी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने वाले न हों, अपितु तुमको समय पड़ने पर हित की दृष्टिसे कान से पकड़ करभी सीधे रास्ते पर ला सकें। गुलाम उपदेशक-ब्राह्मण-जाति की दासता को तीन काल में दूर नहीं कर सकते।

देखना! वैदिकता के नाम पर अवैदिकता का ही विस्तार और प्रचार न कर बैठना जब ऐसी व्यवस्था हम लोग कर पायेगे तभी दिव्यउद्योति: दयानन्द का सच्चा दर्शन हमें प्राप्त होगा।

संसार को भावी उथल पुथल में आर्य समाज या आर्य भाई अपने शुद्ध आचार-व्यवहार-वेद का स्वाध्याय-आर्य ज्ञान का अनुशीलन-दृढ़ संकल्प परिवारों में विषय वासनाओं के राज्य को नष्ट कर शुद्ध आर्य जावन द्वारा संसार का नहीं तो भारत का ही भविष्य निर्माण कर सकते हैं। ऐसी आशापूर्ण दृष्टि आर्य समाज ही की ओर लग रही है। देखें इस में आर्य समाज कहीं तक उत्तीर्ण होता है। —

सच्चा आर्य

(ले०—श्री शंभाराम धेनुसेवक कविरत्न)



विश्व प्रेम ही जिसके दुर्लभ जीवन का आधार हुआ ।
 स्वार्थ व्यक्तिकत रहान जिसका वसुधा ही परिवार हुआ ॥
 मनुजमात्र हैं एक भेद—भावों को जो ठुकराता है ।
 वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥१॥
 मानव होकर जो मनुजो पर विखलाता है प्यार नहीं ।
 दानव है वह मनुज कहाने का उसको अधिकार नहीं ॥
 वही धन्य नर जो दक्षितो को देकर मान उठाता है ।
 वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥२॥
 है जग की कल्याण—कामना जहां क्लेशा का नाम नहीं ।
 विश्व प्रेम के राम राज्य में राग द्वेष या काम नहीं ॥
 प्रवर पुजारी विश्व-प्रेम का जग को पाठ पढ़ाता है ।
 वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥३॥
 मैं शासक हूं तू शासित है मैं ऊँचा तू नीच भरे ।
 मैं स्वतंत्र तू पराधीन है जहां भाव ये गरल भरे—
 पहुँच न पाते, उसके उर से दम द्वेष धा जाता है ।
 वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥४॥
 ईश पुत्र है सभी विषमता लखना इन के बीच नहीं ।
 हैं समान अधिकार सभी के कोई ऊँचा नीच नहीं ॥
 समता का ये भाव सुधामय जहां सुधा सरसाता है ।
 वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥५॥
 विश्व भलाई करने में जो आरम भलाई लखता है ।
 सभी सुखी संबर्द्धित हो ये ध्येय सामने रखता है ॥
 दुखी न दुनिया में कोई हो सब का भला मनाता है ।
 वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥६॥
 उर उदार हो मनुज परस्पर नहीं संकुचित दृष्टि बने ।
 भीषणता यह हटें, स्वर्गसी शान्ति सौख्यमय सृष्टि बने ॥
 जीवन देकर जो दुखियों के जीवन धन का त्राता है ।
 वही विश्व में वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥७॥
 नहीं विषमता की ज्वाला से शान्ति जगत की दग्ध बने ।
 मानव जीवन को सुख देकर मानव जीवन सुग्ध बने ॥
 नर की सेवा करने में जो नारायण को पाता है ।
 वही विश्व में वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥८॥

* वेदों और पुराणों के विषय *

(लेखक—'श्रीपद्' शान्तिभिडुजी त्रिशूली)

यं विदुर्नियत नैत देवा दिव्यविभूतयः ।

वन्दे तं सच्चिदानन्दशरीरमशरीरिणम् ॥ १ ॥

विशावाचस्पतिं वन्दे भीमरुं मधुसूदनम् ।

श्रद्धाभूम्ये यमाश्रत्य श्रुतीनामर्थगौरवे ॥ २ ॥

वेदे च वे पुराणे च विषया मुलमादाः ।

ते संगृह्यात्र द्रश्यन्ते प्रोतये शोमुर्षाञ्जुषाम् ॥ ३ ॥

आर्य जाति के साहित्य में सर्व प्रथम स्थान वेदों का है तदनन्तर पुराणों का। इन वेदों और पुराणों में किन किन विषयों का प्रतिपादन है इस बात को जानने का मेरे हृदय में बड़ा लालसा थी। मैं यह जानकर कि पूर्वपाद श्री० ब्र० मधुसूदनजी के यहाँ वेदों की रहस्यमयी चर्चा हुआ करता है सुनने के लिये उत्सुक होने लगा। कईबार जाने का विचार किया, पर हिम्मत न पड़ी। अन्त में उत्कटाभिलाष के कारण जाही पहुँचा, और अन्ततः शिव प्रादयर्थ प्रार्थना की। उन्होंने विद्या-चर्चा में आन की आज्ञा दी। मैं जाने लगा। यद्यपि मुझे प्रशस्त पंडितजी का शिष्यत्व अब तक प्राप्त नहीं हो सका है, फिर भी यह आशा है कि यदि मुझे वह सौभाग्य मिल सके तो वेदों का रहस्य जन समुदाय का अबगत हो सकेगा और प्रशस्त पंडितजी का स्वाध्यायभ्रम शीघ्र ही फलीभूत होकर संसार में एक स्थायी प्रभाव समुत्पन्न करेगा। अस्तु ! एकबार वार्तालाप के प्रसंग में मैंने वेदों और पुराणों के विषय के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की। उन्होंने उस पर जो बतलाया उसी को स्मृति के सहारे लिखकर 'आर्यामित्र' के पाठकों को उपलब्ध कर रहा हूँ।

वेदों के विषय को समझने के लिये सर्व प्रथम दो शब्दों पर ध्यान देना चाहिये। वे दोनो शब्द हैं अग्नि और सोम। यह दोनो शब्द यद्यपि शिक्षित समाज से अपरिचित नहीं हैं तो भी इनसे जिस अर्थ का बोध होता है वह अर्थ वेद भाषा में व्यवहृत 'अग्नि और सोम' के अर्थ को पूरा नहीं कर सकता। लोक में अग्नि शब्द प्राय उष्णस्पर्श-युक्त द्रव्य-

विशेष के लिये तथा सोम शब्द चन्द्रमा के लिये व्यवहृत होता है। परन्तु वेद में इन दोनो का बहुत विस्तृत अर्थ होता है। इसी विस्तार के कारण ही हमारे यहाँ आचार्यों ने जगत् का स्वरूप ही अग्नि-सोममय बतलाया है। जिसका तात्पर्य यह है कि संसार के सभी पदार्थों का यदि रासायनिक र्श्लेषण Chemical analysis किया जाये तो उनमें दो तत्व मिलेंगे एक अग्नि और दूसरा सोम। यह अग्नि और सोम क्या है इसका निर्णय करने के लिये एक ऐसे पदार्थ पर ध्यान डालिये, जिसे क्रमशः उत्पन्न स्थिर तथा लीन होना है। सरल एवं लौकिक होने के कारण वृक्ष की उत्पत्ति स्थिति तथ्य का निरीक्षण कोजिये। जब हम बीज को पृथिवी में गाड़ देते हैं तो पार्थिव अग्नि बीज में प्रविष्ट होकर उसके आकार—परिवर्तन का कारण बन जाता है। अब बहाँ पर आप देखें तो मालूम होगा कि बीज में स्थित सोमारा अग्नि से बिखरने लगता है—भक्षित होने लगता है। इस प्रकार भक्षक अग्नि तथा भक्ष्य सोम के युद्ध का परिणाम यह होता है कि अंकुर रूप तीसरा पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। फिर भी यह लड़ाई बन्द नहीं होती यहाँ तक कि अंकुर बढ़ते बढ़ते वृक्ष हो जाता है। और वृक्ष भी युद्ध वृद्ध होते होते एक दिन सूख जाता है। वृक्ष की इस प्रकार की उ पत्ति, वृद्धि और क्षय का क्या कारण है ? सरल शब्दों में यदि हम इसका उत्तर दें तो कह सकते हैं कि—'अग्नि और सोम' का विशेष अनुपात। ही (किसी पदार्थ का) उत्पादक, वर्द्धक और नाशक है। इस अनुपात को यो समझिये कि—जब वृक्ष शैशावास्था में होता है तब उसे अपने स्वरूप को बनाने के लिये जितना अज्ञादिरूप सोमारा मिलता है वह उसे संग्रह कर लेता है। उस समय उसके शरीर से अत्यल्प सोम भाग बाहर निकला करता है। तात्पर्य यह कि शैशावास्था में वह जितनी शक्ति व्यय करता है उससे अधिक सङ्कलित कर लेता है।

पर बौवनावस्था में यह बात नहीं रहती वह जितना समझ करता है उतना ही—फल पुष्पादि द्वारा दूसरा को दान भी कर देता है। यह अवस्था समता की होती है। इसमें न तो वृद्धि हाती है न क्षति। पर ज्यों ज्यों वृद्ध वृद्ध होने लगता है त्यों त्यों उसमें समझ शक्ति कम होने लगती है पर व्यय जारी रहता है। इसा सिधे एक दिन उसे क्षीण हो जाना पड़ता है।

इस प्रकार ज्ञात हुआ कि—अग्नि और सोम का विशेष अनुपात ही सृष्टि स्थिति और लय का हेतु हुआ करता है इस अग्नि और सोम ही से ससार व्याप्त है ससार में जो कुछ है वही वेद के वर्णन वा विषय है। एव अग्नि सामात्मक विषय भेद से यह वेद विभक्त किया जाये तो उसके दो भेद होंगे। एक अग्नि वेद और दूसरा सोम वेद।

अब देखना है कि अग्नि वेद अर्थात् वेद का वह विभाग जिसमें अग्नि का वर्णन है कौन है। यहा पर यह बतलाना आवश्यक है कि हमारे यहा ग्रन्थों की यह शैली है कि वह आरम्भ में विषय को बतलवा करतें हैं तथा यथासम्भव ग्रन्थ का प्रबो जन ग्रन्थ पढ़ने के अविकारी आदि की चर्चा कर दिया करते हैं इस रीति पर ध्यान देकर ऋक्, यजु और साम इन तीन वेदों के प्रारम्भिक मन्त्रों पर निगाह डालिये। वे मन्त्र यह हैं—

१—अग्नि मीले (हे)। ऋक् ॥

२—इषे त्वोर्जं त्वा वाचवस्थ देवो व सविता। यजु ॥

३—अन्न आयाहि। साम ॥

इन मन्त्रों में प्रथम और अन्तिम मन्त्र अग्नि विषयक हैं इस बात का अनुमान (अग्नि) शब्द देखकर और साधारण अर्थ ममक कर ही होजाता है। दूसरे मन्त्र में वापि अग्नि शब्द नहीं है पर सविता शब्द है। सविता (सूर्य) भी अग्नि ही है। एवं उपर्युक्त तीनों वेद अग्नि के प्रतिपादक हैं।

पृथिवी अन्तरिक्ष और सौ इन तीन स्थान भेदों से अग्नि के तीन प्रकार हैं। एक एक प्रकार का एक एक वेद में वर्णन है। मुख्यतया ऋक् में पार्थिवानि

का, यजु में अन्तरिक्षाग्नि का साम में दिव्याग्नि वा वा गौणतया तत्सम्बन्धी विषयों का कहीं सक्षेप स कहीं विस्तार से विवेचन है।

यह अग्निवेद का वर्णन हुआ। अब सोम—वेद पर निगाह डालिये। अथर्व वेद ही सोम वेद है। सोम के चार प्रकार हैं। प्राण, पवमान, मातरिश्वा और सविता अग्नि वेद में भी सोम का पर्याप्त वर्णन है। फिर भी अथर्व वेद का सृजन क्यों हुआ यह 'अथर्वा' शब्द से मालूम हाता है। इसका अर्थ है—'अथ अर्वाक् किञ्चिद्विशिष्यते ॥' तात्पर्य यह कि—सोम के चार प्रकारों से अतिरिक्त भी कोई विशेष सोम तत्व शेष रह जा ता है। उसका ही विशेषतया वर्णन होने के कारण सोमवेद अथर्व वेद कहलाता है। इस अथर्व तत्व से ही वनस्पति जगत जीवित रहता है। वनस्पति शास्त्र और आयुर्वेद विद्या का भी यही मूल है। अथर्ववेद का आयुर्वेद स कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह विद्वानों से ज्ञाना नहीं है।

वदों के विषय का अति सक्षेप से वर्णन हो चुका। अब पुराणों के विषय पर निगाह डालिये। पुराणों के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ लोग पुराणों का सर्वथा हेय समझते हैं। पर बात यह नहीं। पुराण अपने सबे स्वरूप से उपादेय हैं। परन्तु उनका इस समय जो हीन रूप है वह कथावाचकों की कृपा का फल है कि जिन्होंने अगणित वास्तविक कथाओं का प्रक्षेप करके उनके वास्तविक रूप को बिगाड़ डाला है। अस्तु।

पुराणों में वर्णित विषयों का यदि वर्गीकरण किया जाय तो वह पांच भागों में विभक्त होते हैं। क—पहिला भाग सृष्टिवाद है। इसमें सत्ताई की उत्पत्ति जैसी हुई इसका निरूपण है। इस सृष्टि विज्ञान के प्रतिपादक छ पुराण हैं। १—ब्रह्म, २—पद्म, ३—विष्णु, ४—वायु, ५—देवी भागवत, ६—नारद। स्व—दूसरा भाग मतवाद है। इसमें सृष्टि विषयक आचार्यों के मतभेदों का निरूपण है। इसके प्रतिपादक चार पुराण हैं। १—मार्कण्डेय,

आत्मबल बढ़ाने का सर्वोत्कृष्ट साधन

(ले०—मा० दुर्गाशंकरजी नागर सम्पादक "कल्पवृक्ष")



श्व प्रचारक प्रसिद्ध मानसोपचारक एमीली कुई शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक उन्नति के लिये एक बहुत सरल सूत्र बतलाते हैं और उनका कथन है कि इसका नित्य प्रातःकाल तथा सांयकाल बीस बार चिंतन करने से मनुष्य अपने जीवन में एक विलक्षण उन्नति कर सकता है। वह सरल सूत्र निम्न लिखित है।

Day by day in every way I am getting better and better दिन प्रतिदिन मैं सर्व प्रकार से उन्नति कर रहा हूँ।

साधारण लोगों को यह आत्म-सूचना निगी

२—अग्नि, ३—प्रविष्य, ४—ब्रह्मवैवर्त।
ग—तीसरा विभाग अथवा बाद है। इसमें प्राकृतिक विज्ञानमयी विभूतियों का निरूपण है। इसके प्रतिपादक ६ पुराण हैं। १—लिंग, २—बाराह, ३—स्कंद, ४—वामन, ५—मत्स्य ६—कूर्म। घ—बौधायन भाग आद्यविवाद है। इसमें मरने से बाद (उत्तर काल में) क्या होता है इसका निरूपण है। इसका प्रतिपादक एक ही गणह पुराण है। ङ—पाँचवा भाग आद्यतन बाद है। इसमें सृज्यमान जगत् के आधार का निरूपण है। इसका प्रतिपादक ब्रह्मांड पुराण है। इस प्रकार अठारह पुराण उपयुक्त पाँच भागों में विभक्त है।

बह बेरो और पुराणों की संक्षिप्त विषय चर्चा है। ऐसा सुन्दर वर्गीकरण वेद विषयक बहुत से निबन्ध; तथा देवता आदि के प्रपञ्च तथा वेद आध्यायिका का अवलोकन करता हुआ भी मैं नहीं कर सकता था यह केवल गुरु का प्रसाद है। आशा है वह लेख कलेवर में परम लघु होता हुआ भी पाठकों को मुग्ध करेगा।

कल्पना मालूम होगी किन्तु इसमें वड़ा रहस्य है। इस मानस-शास्त्र के तत्व को चाहें जो आजमा सकता है।

किसी काम को "मैं नहीं कर सकता" इस तरह थोड़ी देर तक अपने आपको उत्तेजन (प्रेरणा) देते रहो। अपने आपको कहते रहो और तुम देखोगे कि तुम्हारी सारी क्रिया-शक्ति नष्ट होती हुई मालूम देगी। शरीर ढीला पड़ जायगा, कुछ आगे मुकने लगेगे, पाँव लड़खड़ाते लगेगे, सारा शरीर निर्बल और कमजोर मालूम होने लगेगा और मन गिरी हुई दशा में प्रतीत होगा।

अब तुम किसी कार्य के लिए "मैं कर सकता हूँ" (I can) अपने आपको आत्म सूचना (Suggestion) दो। इसके प्रभाव से तुम्हारा सिर ऊपर उठा हुआ होगा, कन्धे पीछे झुके हुए होंगे, फेफड़े बराबर दीर्घ रवास-प्रवास लेते हुये काम करते रहेगे और पाँव मजबूती से जमीन पर जमे हुये होंगे।

सारांश यह है कि आत्म-सूचना मनुष्य-जीवन का कोचवान है यदि तुम्हारा कोचवान शुभ संकेत (शिव सकल्प) हो तो तुम्हारा जीवन सुख शांति और आनन्द से बीतेगा। इसलिये किसी भी काम को "मैं नहीं कर सकता" ऐसा कदापि न कहो। कठिन से कठिन कार्य को मैं कर सकता हूँ—ऐसा कहो, तुम उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच सकोगे। मैं कर सकता हूँ (I can) इस संकेत को नियम पूर्णक निरन्तर चिन्तन करने से मनुष्य अपने आपको अपने अधिकार में रख सकता है। प्रत्येक मनुष्य का जीवन उसके विचारों से बनता है, मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है। वर्तमान काल की नवीन खोज से पता लगा है कि रोगों की जड़ शरीर में नहीं, बल्कि मन में और भावों में रहती है। जब तक इन दोनों की शुद्धि नहीं की जाय रोग कदापि निर्मूल नहीं होते केवल शरीर की आरोग्यता ही पूर्ण आरोग्यता नहीं

है। शरीर मन और आत्मा तीनों की स्वस्थता ही पूर्ण आरोग्यता है। प्रत्येक कल्पना जो तुम्हारे हृदय में उठती है, उसमें विद्युत् की सी प्रचण्ड शक्ति विद्यमान है केवल दृढ़ कल्पना शक्ति के प्रभाव से ही तुम अपने में अद्भुत परिवर्तन कर सकोगे। जब तुम शारीरिक व्यायाम कर रहे हो, उस समय अपने मन की एकाग्र वृत्तियों को शक्ति पर ही केन्द्रित करो और दृढ़ कल्पना करो कि तुम बल पूर्ण व्यायाम कर रहे हो। शरीर के जिस किसी अंग का व्यायाम करो उसी भाग पर दृढ़ कल्पना करा कि उस भाग में बड़े बेग से रुधिराभिसरण होने लगेगा और वह भाग वलिष्ट और पुष्ट होगा।

अपने हाथों को धीरे धीरे शिर के ऊपर ले जाओ और साथ ही साथ यह कल्पना करो कि कोई भारी बजन ऊपर उठा रहे हो और फिर उसी भावना से हाथों को अपने स्थान पर ले आओ दस बीस बार यह मानसिक व्यायाम करो। इसमें तुम्हारे भुज दण्ड बनने लगेंगे और तुम्हें भावना शक्ति का आश्चर्य जनक प्रभाव मालूम देगा।

कल्पना करो कि तुममें अपूर्व मेधा शक्ति, स्मरण शक्ति, धारणा शक्ति, प्रतिभा शक्ति, अत्यन्त तीव्र है और धीरे धीरे तुम बुद्धिमान और तेजस्वी बनने लगोगे।

जब तुम अपने विचारों की धारा को अन्दर गहरे में उतारोगे और जब तुम्हारे बाह्य जागृति के सब विचार बन्द हो जायेंगे तब तुम्हारे अन्दर मन में विलक्षण स्फुरणा होगी। मानस बल और आत्मिक बल में जागृति करने की वैदिक मन्त्रों में अपूर्व शक्ति है। आत्म बल बढ़ाने के लिये महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने प्राणायाम संध्या और अग्निहोत्र को नित्य नियमित रूप से करने के लिये विशेष जोर दिया है। जितने बड़े लोग हुये हैं सब ने प्राणायाम के अभ्यास को आवश्यक बतलाया है।

दीर्घ श्वास प्रश्वास या प्राणायाम से रुधिर शुद्ध होता है, आरोग्यता प्राप्त होती है रोगोंका नाश होता है। संध्या से एकाग्रता बढ़ती है बुद्धि सामर्थ्य बढ़ती है और अग्निहोत्र से जीवन में शान्ति प्राप्त

होती है जिस समय मनुष्य मन को एकाग्र करके संध्या करता है तो मन्त्रों का प्रभाव उम पर अप्रतिहत हाता है, मन के संस्कार शुद्ध हाते हैं अथम वासनाओं पर विजय प्राप्त होती है और शुभ सब ल्या का उदय मन में होने लगता है और वैदिक मन्त्रों के प्रतिदिन अनुष्ठान से हमारे चित्त का संसर्ग श्रुधि जीवन से हाता है।

मनुष्य एक बड़ा चुम्बक है, उसके स्थूल शरीर का सम्बन्ध पृथ्वी से है। चन्द्रमा का सम्बन्ध चित्त से है और चन्द्रमा का प्रभाव चित्त द्वारा मस्तिष्क में आता है। सूर्य का सम्बन्ध आत्मा से है और उसका प्रभाव हृदय द्वारा हाता है जिस प्रकार के परिणाम सूर्य के उदय और अस्त पृथ्वी में होते हैं वैसे ही परिणाम शरीर में भी होते हैं। प्रातः साय सन्धिकाल में अपनी चेतना शक्ति को जाग्रत करके कोई मानसिक अनुष्ठान करेगा उरुके जीवन में विलक्षण उन्नति होगी और मस्तिष्क की सुप्त शक्तिया जाग्रत होगी और तीनों चेतनाये शुद्ध होगी। स्थूल में कार्य करने वाली चेतना भौतिक कहाती है सूक्ष्म में कार्य करने वाली चेतना मानसिक कहाती है और स्थूल सूक्ष्म से सम्बन्ध रखने वाली आत्मिक या आध्यात्मिक चेतना कहाती है।

इन तीनों वृत्तियों को एक करने के लिये महर्षि दयानन्द जी ने (१) प्राणायाम (२) संध्या (३) अग्निहोत्र और (४) याय इन साधनों को अनिवार्य बतलाया है। प्राणायाम से शरीर बलवान होता है। संध्या से मन शुद्ध और शिव संकल्प वाला होता है और अग्निहात्र और स्वाध्याय से आत्मानुभूति प्राप्त करता है। जिससे स्वस्थ और बलवान शरीर से शान्त और शुद्ध मन से आत्मा की शक्ति की ओर गति पाता है उस समय तीनों चेतनाये शुद्ध होकर मनुष्य पूर्णतया लाभ करता है और जीवन को आनन्द मय बनाता है।

मानस शास्त्र का सिद्धान्त है कि Suggestion gives strength by Repeattion। सूचनाये बार बार दुहराने से बलप्रद हाती है इस लिये संध्या के समय वैदिक मन्त्रों को एकाग्र मन से अर्थ

दीपावली का संदेश

(ले०—श्री मदनमोहनजी विशाखर)



जब संसार के सम्पूर्ण प्राणी दीपावली के परम विषय तथा महत्त्वपूर्ण अतीत के गौरव के मूर्त का इस त्वीक्ष्ण को मना रहे थे, कोई हंस रहा था, कोई बज्रल रहा था, कुछ युवा बाल स्त्री पुरुष सभी के हृदय आनन्द से प्लावित और नवीन उमंग से सहित चिंतन करने से जिस भावना का मन्त्र हो वे संकेत तुम्हारे रुधिर तक पहुँच जायेंगे। और तुम्हांगी चेतनता से संकेत (Suggestion) या मन्त्र का विलक्षण फल प्रकट होगा नमूने के लिये एक वैदिक मन्त्र दिया जाता है—

आग्नेम् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।

वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ॥

बलमसि बल मयि धेहि ॥

ओजोऽस्योजो मयि धेहि ॥

मन्धुरसि मन्धुं मयि धेहि ।

सहाऽसि सहां मयि धेहि ॥

यह इच्छानुसार कोई मन्त्र चुन लो और उसका चिन्तन करो या निम्न लिखित संकेतों को एकाग्र मन से पन्द्रह मिनट प्राणायाम के साथ दुहराओ।

‘मैं शक्ति हूँ’ मेरे शरीर व आत्मा में शक्ति का प्रवाह संचार कर रहा है, मैं आरोग्य हूँ मेरे शरीर मन और आत्मा में आरोग्यता का प्रवाह बह रहा है। मैं आनन्द हूँ मेरे शरीर, मन और आत्मा में आनन्द का अखण्ड प्रवाह बह रहा है।

एकाग्रता सम्पादन करना ही उसकी एक मात्र कुंजी है, किसी भी तरह एकाग्रता सम्पादन करने का प्रयत्न करो। और फिर जो कुछ भी तुम्हें करना या होना चाहोगे वही हो जाओगे यही सफल जीवन का रहस्य है। साधन में बड़ी शक्ति है और वैदिक मन्त्रों का मनन आत्म शक्ति बढ़ाने के लिये सर्वोत्कृष्ट साधन है।

भरे से प्रतीत होते थे, तब मैं विषाद से गम्भीर मुख बनाए ऊपर ऊपर पर टहलने को निकला। आशा थी मेरे अन्धियारे हृदय को दीपक उजियाला देंगे और मुझे शान्त बनाने के लिये ठण्डी बहार मुझे पखा झलेगी। संसार हँसी के फूलों मे था अकेला मैं ही विषाद की भँवर में चक्कर खा रहा था। थक कर मैं बैठने का ही था कि दीपकों की तड़फड़ाहट ने मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा। मैं उन दीपकों की रखवाली पर हो गया जो निर्दय वायु के मोंकों की लपेट में आ चुके थे या उसके अदृश्य प्रहारों को किसी तरह झुक झुक कर मानों उसे प्रणाम करते हो, सह रहे थे। हवा का भोका आता, थोड़े से दीपक मौत के मुख में बले जाते। मैंने सोचा इन पर भी असंख्यों पंतगो ने अपना बलिदान कर दिया, क्या यह भी किसी पर बलिदान होते हैं। जी घृणा से भर गया पर क्या निरर्थक बलिदान होने वाले इन निरपराध सुन्दर दीपकों को हत्या देखना भी मेरे बस से बाहर था।नीचे प्राण में पटापट पटाको का शब्द उठ रहा था। और मेरा हृदय बेग से धड़क रहा था। कुभला कर हवा के भोंके से पूछा—

“यह निर्दयता कैसी? निरपराधों का बलिदान।

“यह परख है। जो उत्तीर्ण होंगे, वे ही जल्दने योग्य समझे जावेंगे।” उसने अपेक्षा से कदम बढ़ाते हुए कहा।

मैं अपना सा मुख लिये पहरों पर से उठ आया और अपने आप पर पहरा देने लगा। पर दिल कैद से भाग निकला और दीवार की छोट में सुरक्षित स्थिरता से लौ उठाने वाले दीपक के पास जा बैठने को कहने लगा। मुझे देख कर पहिले बह अकड़ा, फिर मानों मुक कर प्रणाम किया और

हँस पड़ा। क्रोध तो आया पर जामे में ही रहते हुए
पूछा:—

“ऐसी हँसी क्यों ? यह प्रसन्नता कैसी ?

“मैं राम की आरती के लिये चुना गया हूँ।
मुझे आनन्द है, मेरे खिलखिलाने का कारण यही है।”

अगले ही दिन उसे ऋषि की ममाधि पर
समाधिस्थ, मौन साधे, शान्त, मस्ती में भूमते पाया।
मुझे आया देख वह फिर हँसा खिलखिलाया।

“क्यों आज यह खुरी कैसी ?” पूछा,

“मैं ही ऋषि की कन्न के लिये चुना गया हूँ।
मैं संसार को सत्य का मार्ग दिखाने वाली ऋषि की
ज्योति हूँ, जो मूर्त रूप धर, यहां उपस्थित हूँ।
अखिल विश्व के भवसागर से परित्राणार्थ प्रकाश
स्तम्भ हूँ।” उसने अपनी उसी पूर्व मुसकराहट के
साथ उत्तर दिया।

मैंने देखा वही लाखों की संख्या में पतंग गिरे
पड़े थे। भट पूछा—

“वो क्या अपने पर दीवाने परवाने की मौत पर
भी तुम्हारा हास्य प्रवाह चलता है ?

मुझे झल करते देख वह तन कर खड़ा हो गया
बोला—

“ज्योतियाँ किसी में फँसा नहीं करती। यही
देख मैं इनके पागलपन पर हँसता हूँ। वह फिर
उसी प्रकार स्थिर हो गया।

तो क्या हँसते ही हँसते अपना जीवन बिता
दोगे ? जरा रोकर तो देखो। उसमें भी आनन्द है।
मीठा दर्द है दूसरों के दुःख पर ही एक आध आँसू
.....” उसने बीच ही में सिर हिला दिया।
फिर अपना सिर उठा कर बोला—“सुख और दुःख
में समान रहना ही मेरा स्वभाव है। आनन्द बेला
में सुमधुर घण्टानाद के बीच मैं ही आरती के
थाल में हँसता हूँ, फूलों की गोद में मैं ही भागीरथी
में विहार करता हूँ परन्तु कन्न पर गीदड़ों की
चिल्लाहट के बीच कंकड़ों के सेज पर भी मैं ही हँसा
करता हूँ।

मैं भट कमरे में आ बैठा और कागज पर
लिखा “सुख दुःख में समान रहना” यही दीपावलि

का रान्देश है। गीना ने भी सुखदुःखे समे कृत्वा
“समत्वं या। गने” इस वचन से उर्मि मत की
पुष्टि की है।

परन्तु यह बात, बात: काल उठा तो देखा सब
दीपक बुझ चुके थे। सबके गले कटे हुए थे। संसार
को प्रकाश देने के लिये अपना वलिदान कर गये।
मुझे मालूम पड़ गया “आत्माहुति का मूर्त रूप यही
है, यह मयी भावना और त्याग का आदर्श यही है।
उच्चकोटि का वलिदान इन्हीं से सीखा जासकता है।

क्या दीपावलि के दिन अपने शरीर को दीपक
बनाते हुए ऋषि ने सुख दुःख में समता और
उच्चकोटि के वलिदान का आदर्श संसार के सामने
उपस्थित नहीं किया ?

जर्ननी की } रंग देखलो ॥ } सोने से
नई ईजाद ! } } मिलासो ॥

* कैमीकल गोल्ड सोनेकी चूड़ियाँ *

इनको कारीगर ने ऐसी खूबसूरती से बनाया है
कि हाथ चूम लेने को जी चाहता है। ५००) रुपये
की चूड़ियाँ भले ही इनके मुकाबिले रखवो, फिर
देखो कौनसी सुन्दर मालूम होती हैं। अनुभवों
साहूकार यह कह ही नहीं सकता कि यह सोने की
नहीं हैं। जिस दिशाओगे वहाँ २००) से कम की
नहीं बतावेगा। काटलो, तपालो, कसौटी पर
कसलो सोने का कस आवेगा। गोरे-गोरे हाथों में
इनकी बहार देखो, जब २ में ये नई-नई तर्ज की
दीखती हैं। दो चार अलग होजाती हैं तो फूल की
पँखड़ों सी लगती है। यदि सब मिला हो जाती है
तो उम्दा करचली दिखाती हैं। इनको पहन कर
स्त्री स्त्रियों में बैठे तो जो रात दिन सोना चॉबी
पहनती हैं। वे भी ताज्जुब में पड़ जाती हैं और
उनका मांगने को जी चाहता है। हर एक की इन
पर नज़र न पड़े तो बात नहीं। चमक, दमक, रंग,
रूप हमेशा ताज्जुब रहता है। बारह चूड़ियों के सेट
का दाम २॥) ६०, तीन के खरीदार को एक
मुस्त। बाकसर्व अलग। आर्द्धर के साथ नाप भी
भेजो। पता—भारत सेवक कम्पनी, मथुरा।

“महर्षि महिमा”

(ले०—श्री अटल बिहारीलाल ‘अटल’)



वेद-भानु पर आनि अविद्या के घन छाया,
आर्य जाति मन पन्थ अनेको दीप जलाए।
फूट खाइ भद्र पान दासता को कर सोए,
छोड़े खुले कपाट देखि डाकू दल आए।

लूट लिया सर्वस्व न घर मे कुछ भी छोड़ा,
भद्र को भी सब भौंति उन्होने तोड़ा मोड़ा।
अस्व व्यवस सब भौंति किया अधिकार जमाया,
आर्य जाति का अङ्ग अङ्ग हा ! तोड़ मरोड़ा।

दुस्खि अवस्था दीन-बन्धु को जाति पुकारा,
दिन्व, दयालू दयानन्द आया ऋषि प्यारा।
देख जाति की लूट नैन में आंसू आए,
रक्षा के हित सत्य खड्ग लेकर ललकारा।

डेढ़ अरब के बीच नहीं मन में दहलाया,
ऊंचे स्वर से सत्य वेद उपदेश सुनाया।
ममता, माया, मोह त्याग कर कूश रण में,
आर्य देश अरु जाति सभी को शीघ्र जगाया।

लुप्त हुई अज्ञान तिमिरि में जो निपुणार्द्र,
करि कुरीति संहार कीर्ति फिरि से चमकाई।
बनो वीर बलवान् जाति को पाठ पढ़ाया,
द्विज भिन्न सब शक्ति सूत्र में आनि मिलाई।

फूट फकीली हटा, प्रेम पीयूष पिलाया,
रूढ़िवाद के सुट्टे दुर्ग को आनि गिराया।
किये अनाथ सनाथ, दुःख गौर्भों का टारा,
कूत-भूत विख्यात भगा, भय से घबराया।

विधवाओं का दुःख हटाया ऋषि ने आकर,
विछुड़े मिलते बन्धु, हृदय से हृदय मिलाकर।
अपनी भाषा, वेश, सभ्यता को अपनाते,
शिल्प सीखते आज विदेशों में जा जाकर।

मत वादी नाह आज सामने हो मुख खोलें,
गलती करें सुधार, नहीं बढ़ बढ़ के बोलें।
प्रतिमा-पूजन छुटा, श्राद्ध का करना छुटा,
करिके सन्ध्या, हवन, एक ईश्वर जय बोलें।

छुटै दासता यत्र यही मिलकर करते हैं,
वस्तु स्वदेशी प्रेम सहित धारण करते हैं।
भरें कोप साहित्य स्वदेशी से प्रिय अपना,
हिन्दी, हिन्दू, हिन्द सभी की जय कहते हैं।

जीवन देकर आप जाति में जीवन लाए,
यह दीपावलि दिवस प्राण बलिदान चढ़ाए।
‘अटल’ करै गुणगान आपका क्या जीवन में,
चमक सूर्य मे जाति अखी तब तक गुण गाए।

वैदिक व्याकरण

(ले०—श्री प० तेजोनारायणजी शारत्री काव्यतीर्थ)

—X—



स्वामीजी महाराज की प्रतिज्ञा है 'वेद सब सत्य विद्याओं का मूल है', संसार में जितनी भी विद्यायें हैं उनका मूल वाग्वच में वेद ही है। वेद में समस्त विद्याओं की सूत्र रूपेण प्राप्ति होती है यह तथ्य है—

आज हम कुछ वैदिक व्याकरण की चर्चा करने बैठे हैं कुछ लोगों का मत है कि व्याकरण का वैदिक भाषा पर प्रभुत्व नहीं है। वेदकाल का भी वे निश्चय करते हैं अर्थात् वेद को अमित्य मानते और यह कहते हैं कि वेद के समय लोक की अवस्था ऐसी न थी कि भाषा व्याकरण—स्वतंत्र हो सकती इसी लिये व्याकरण निर्माता पाणिनिमुनिनं वैदिक ऽ.योगों की सिद्धि के लिये जगह जगह पर अपनी अष्टाध्यायी में "बहुलञ्जन्सि" सूत्र बनाये हैं। अभिप्राय यह है कि जैसे लोक में अकारान्त पुस्त्रिण शब्दों का लृषीया के बहुवचन में "राभैः" "घटै" ऐसा प्रयोग बनता है उसी प्रकार वेद में 'देव' शब्द का देवैः' और 'द्विवेभिः' ये दोनों प्रयोग बनते हैं। अतएव कोई नियम न होने के कारण पाणिनि मुनि ने अपनी अष्टाध्यायी में 'अतोभिसु ऐस्' सूत्र के अनन्तर 'बहुलञ्जन्सि' सूत्र बना दिया जिसका अ.भ.प्राय है कि वेद में 'मिस्' को ऐस्' आदेश होता भी है और नहीं भी। इसी से किन्हीं महाराजों की यह भावना होती है कि वैदिक भाषा अव्यवस्थित तथा अपूर्ण है। किंच—महाभाष्यकार ने भी—"द्वीधो वेवी ङास्" सूत्र का लक्षण करते हुए कहा है "सर्वे विधयः ङन्सि विकल्पन्ते" "द्वीधो वेव्यो ङन्दो विषय स्वात् ङन्सि दृष्टानुविधित्वात्" इत्यादि—अर्थात् वेद में सभी विधियों का प्रायः विकल्प होता है जैसा कि आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा।

पहली बात जो कर्षों के विषय में है कि पाणिनि

मुनि ने 'द्वै' और 'द्वेभिः' दो प्रकार के प्रयोगों को देख भाषा को अव्यवस्थित समझ कर 'बहुलञ्जन्सि' सूत्र बनाया यह उचित नहीं क्योंकि लौकिक भाषा जो कि सर्वथा व्याकरण के सूत्रों से बद्ध है उसमें भी एक ही विभक्ति के परे एक शब्द के ही दो प्रकार के क्या आठ आठ नौ नौ प्रकार के प्रयोग देखे जाते हैं। उदाहरणार्थ गवाक शब्द को लोजिये इसके प्रथमा के ही एकावचन में "गवाक् गवाक् गोश्च आश्च गोऽक् गोऽक् गवाक् गोश्च गोऽक् गोऽक् ये ९ रूप हाते हैं तब वैदिक भाषा को अपूर्ण कहना केवल साहसमात्र है।

दूसरी बात जो 'ङन्सि दृष्टानुविधि' वेद में दृष्ट प्रयोग जैसा हो बही साधु होता है इस विप्रति पत्ति को लेकर जो वैदिक भाषा में अपूर्णता कही जाती है वह भी निर्मूल है इस भाष्य वा अभिप्राय यह नहीं है कि वेद के शब्दों की साधुता वा असाधुता का निर्णय व्याकरण द्वारा न होने से हम उसमें प्रयुक्त शब्दों ही पर साधुत्व आसाधुत्व मानकर वैदिक भाषा को अपूर्ण कहे किन्तु इसका भाष्य अभिप्राय यह है—कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है उसकी इयत्ता प्राणिमात्र का विषय नहीं बन सकती क्योंकि जीव अस्पृह्य और ब्रह्म सत्त्व है, अस्पृह्यमें सर्वज्ञता नहीं सकती हो फिर अविमुनिधो द्वारा निर्मित व्याकरणशास्त्र उस इयत्ता शून्य वैदिकशब्द-राशिका अनुशासन कैसे कर सकेगी? यही बात ध्यान में रखकर पाणिनि-मुनि पतञ्जलि मुनि आदि वैदिकारणों ने वेद में दृष्टान्तु विधि का सिद्धान्त निर्णय कर दिया है। है। किंच स्थान स्थान पर "बहुलञ्जन्सि" सूत्र बना कर भी काम न बनने पर "व्यत्ययो बहुलम्" ल० अ० पा० १—० ८५ द्वारा वेदों में व्यत्यय ८ प्रकार का बतलाया परन्तु जब व्यत्यय से भी वैदिक भाषा पर कावू न चला तब "दृष्टानुविधि" की कल्पना करके यह सिद्धान्त निरचय किया गया। अतएव यह

दूसरी युक्ति भी वैदिक भाषा को अपूर्ण कहने में असमर्थ हो गई।

अब वैदिक व्याकरण कौन से हैं उनका क्या उपयोग है इस बात को लीजिये और लौकिक व्याकरणों से उनकी तुलना कीजिये। वेदत्रयी के तीन व्याकरण भिन्न भिन्न ऋषियों ने बनाये हैं—और उनके नाम “प्रातिशाख्य” पद से व्यवहृत हैं। ऋग्वेद का व्याकरण “ऋक् प्रातिशाख्य” है इसके प्रणेता महर्षि शौनकाचार्य हैं। यजुर्वेद का “यजु प्रातिशाख्य” है इसके प्रणेता महर्षि कात्यायनमुनि हैं। सामवेद का “साम प्रातिशाख्य” है इसके प्रणेता महर्षि सामगाचार्य हैं इनके अतिरिक्त बहुत कुछ व्याकरण से सम्बन्ध रखने वाले “शिखा” नाम के ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। जैसे—यजुर्वेदोय शिखा कात्यायन मुनिकत सामवेदीय शिखा नारदमुनिकत इत्यादि। लौकिक व्याकरण—गार्ग्य, गालव, शाकल्य, शाकटायन, स्फोटायन, आदि के रचित इस पाणिनीय व्याकरण के पूर्व थे—परन्तु इन सब व्याकरणों से प्रथम माहेश्वर व्याकरण था जो कि माहेश्वर प्रणीत था—इसी व्याकरण में सब से प्रथम त्रष समाप्ताय का उपदेश दिया है जो कि १४ सूत्रों में विभक्त है। प्रथम अर्वाका उपदेश तदनन्तर हलों का उपदेश है। इन वर्णों की संख्या ६३ है। इन्हीं पर समस्त लोको के व्यावहारिक तथा वैदिक शब्द निर्भर हैं। चाहे कोई सी भी भाषा क्यों न हो इन से वाक्य नहीं हो सकती। अन्यान्य भाषाओं में पूरी वर्ण माला भी नहीं है इसका हेतु यही है कि उनके प्रवर्तक मनुष्य थे परन्तु वैदिक वर्णमाला पूर्ण है। जिसका कि उपदेश माहेश्वर व्याकरण में किया है और इस उपदेश का प्राय सभी व्याकरण प्रणेताओं ने अनुसरण किया है। प्रातिशाख्यों में तो वर्ण समाप्तायका उपदेश नहीं पाया जाता है हों “उपदिष्टा वर्णा” इस प्रकार के सूत्र ही पाये जाते हैं जिनका कि अभिधाय यही निकलता है कि वर्णोपदेश कर चुके हैं वह संकेत माहेश्वर व्याकरण की ही तरफ दे। परन्तु पाणिनीय व्याकरण में तो स्पष्टतया उन्हीं सूत्रों को प्रारम्भ में रख दिया है और अन्त में “इतिमाहेश्वराणि सूत्राणि”

यह भी लिख दिया है। पाणिनीय व्याकरण इ ही वैदिक प्रातिशाख्यों तथा शाकल्य आदि के व्याकरणों के आधार पर बना है। जहाँ जहाँ मत भेद है वहाँ वहाँ पाणिनीय व्याकरण में उन उन आचार्यों के नाम देकर सूत्र बनाये हैं जैसे “ल.प शाकल्यस्य” “अ.तो.गार्ग्यस्य” अर्थात् इस प्रयोग में शाकल्य से हमारा मतभेद है—या गार्ग्य से हमारा मतभेद है। शाकल्य के मत में ऐसा रूप होता है गार्ग्य के मत में ऐसा—इत्यादि।

पाणिनीय व्याकरण में जो प्रकरण है वह भी प्रातिशाख्यों से मिलता जुलता है, देखिये—“उपर्षासज्ञा—का सूत्र यजु प्रातिशाख्य के प्रथमाध्याय में “अनयाद्विणीत पूर्व उपधा” ॥ ३३ वां है पाणिनीय व्याकरण में “अत्रोन्नात् पूर्व उपधा” हैं दोनों संज्ञा एक ही प्रकाः की हैं अर्थात् दोनों में शब्दन्तः अर्थत साम्य है। इसी प्रकार सर्वर्ण सज्ञा का प्रातिशाख्यों में “समान स्थान करणाभ्य प्रयत्न. सर्वर्ण.” सूत्र है। पाणिनीय व्याकरण में “तुल्यास्य प्रयत्न सर्वर्णम्” वह सूत्र है। दोनों संज्ञाओं में शब्दतः अर्थतरब साम्य विद्यमान है। इत्यादि बहुतेरे उदाहरण ऐसे पाये जाते हैं जिनके द्वारा यही निष्कर्ष निकलता है कि पूर्व पूर्व व्याकरण उत्तरोत्तर व्याकरण के हेतुभूत है।

हाँ अन्यन्तर रचना व्याकरणों की कुछ भिन्न सी है। पाणिनीय व्याकरण में सन्धि आदि के ऐसे सूत्र हैं जो कि प्राय. लौकिक तथा वैदिक दोनों व्याकरणों में काम आजाते हैं परन्तु प्रातिशाख्यों में केवल वैदिक प्रयोग देकर ही सूत्रों में निदेश कर दिया है इमका एक मात्र कारण यही है कि वह वैदिक व्याकरण है जिससे सम्बन्ध है केवल उसीका प्रतिपादन उद्देश्य है। इस उद्देश्य को ही उन्होंने लक्ष्य में रखकर वैसी रचना की है। स्वर सम्बन्ध में यद्यपि पाणिनि जी ने बहुत कुछ कुशलता की है बड़ी होशियारी और बुद्धिमत्ता से चारों वर्णों के स्वरों का उपदेश किया है परन्तु वह इतना सुस्पष्ट नहीं है जैसा कि वैदिक प्रातिशाख्यकारों का उपदेश। और यह ठीक ही है कि जो स्पष्टता प्रत्येक के विषय

व्याकरणों में आ सकती है वह समष्टि रूप में कैसे आ सकती है। इसी ध्येय को भी सामने रख कर वेद में दृष्टानुबिधि पाण्डितजी को मानना पड़ी है और अष्टाध्यायी द्वारा जब समस्त प्रातिपदिकों के स्वर का निर्णय जब न हो सका तभी शान्तवनाचार्य ने (फिट्) सूत्र की व्याख्या करके और बहुत सारे सूत्र प्रातिपादिक सम्बन्धी बनाकर उसे पूर्ण करने की चेष्टा की है। यद्यपि शान्तवनाचार्य पूर्णतया उनमें भी सफल नहीं हो सके तथापि कुछ बहुत अंश में सफलता प्राप्त हो गई। उदाहरण जैसे—'गोध' शब्द है इसके परे 'अवग्रह' नहीं होता यह पाणिनीय व्याकरण द्वारा नहीं ज्ञात हो सकता परन्तु प्रातिशाख्य "वायुरसजात गांधो ... सुभिनरिष्ठयै। अध्याय ५। सूत्र ३७ से निर्णय हो जाता है इत्यादि इस प्रकार के कई एक विषय ऐसे हैं जिनके ज्ञान के लिए वेद पढ़ने वालों को पहले वैदिक व्याकरण अवश्य देखना चाहिये क्यों किना व्याकरण के भाषा खुलती नहीं है जैसे किना

ताली के ताला यद् व्याकरण शब्द राशि की कुंजी है। इस लिए शिक्षा में छन्दः पाठो तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् यह लिखा है। जैसे शरीर में मुख मुख्य है वैसे वेद ज्ञानने के लिए व्याकरण भी मुख्य है। वर्तमान काल में इन प्रातिशाख्यों के अध्ययन की प्रथा उठती चली जा रही है। इन्हीं ग्रंथों के उद्धारार्थ महर्षि ने गुरुकुलों की आयोजना की थी—हमारी आशायें उन भावी स्नोतकों की तरफ लगी हैं जो कि शीघ्र कपिल कथाद के स्थान की पूर्ति करेंगे। बिना ब्रह्मचर्य के वेद विद्या नहीं प्राप्त होती है। वैसे वेदों में ही कहा है—(यमेव तु शुचि विद्याभियत ब्रह्मचारिणम् तस्मैऽर्थाः) जिसको ब्रह्मचारी समजो उनको वेद विद्या उपदेश दो। यह वेद की आज्ञा है। जहाँ ब्रह्मचर्य है वहाँ तप है जहाँ तप है वहाँ समस्त ऋद्धयों हैं वहाँ वेद। है वेद ज्ञान का मूल ब्रह्मचर्य ही है इसी की तरफ हमको चलना चाहिये परचात् सर्वाभोष्ठ सिद्ध होते दीखेंगे।

हमारी शाखा दिल्ली में नई सड़क पर खुल गई है

पञ्चाश अर्द्धश शब्दी के अवसर पर सत्स्पर्ध प्रकाश मुफ्त

बाँटकर घर घर प्रकाश फैला दो

- १०० प्रतिशो लेने पर।) प्रति पुस्तक २०० के लेने वाले के नाम मुख पृष्ठ पर छापे जावेंगे संस्कार विधि पूरी ३) अश्वेदादि भाष्य भूमिका १०) महर्षि दयानन्द का प्रामाणिक जीवन चरित्र सजिल्द ६) अजिल्द ५॥) चारों वेद हिन्दी अनुवाद सहित १४ भागों में प्रति भाग ४) स्थायी ग्राहकों से ३) घरक हिन्दी अनुवाद सहित इभागों में ४) १० प्रति भाग
- | | | | |
|-----------------------|----|----------------|-----|
| योग भाग | ३) | जीवन पथ | १-) |
| वेदापदेश | ॥) | वेद में शिक्षा | ॥) |
| भारतीयसमाज शास्त्र १) | | यजुर्वेद अष्टक | ॥॥) |

इनके अतिरिक्त अन हर प्रकार की प्रामाणिक व सामाजिक पुस्तकों हमारे यहाँ बहुत किफायत से मिलती है।

मण्डल के १०) रुपये के हिस्से लेकर लाभ उठावें और वेद

प्रचार का यश मुफ्त में लूटें।

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर।

स्वामीजी की आर्य भाषा

(ले०—श्री ५० चन्द्रवली पम० ९०)



ववाणी के प्रकारके परिष्कृत स्वामी
दयानन्दजी सरस्वती ने हिंदी भाषा का
आर्यभाषा घोषित कर उसे जा प्रतिष्ठा
की उससे उनकी सत्यनिष्ठा दूरदर्शिता
और मंगल बुद्धि का पूरा पता चलता है।
हिन्दी के लिए वह परम सौभाग्य का दिन

था जिस दिन एक गुजराती तपस्वी ने उमें अपनाकर
उसे चर्म भाषा का चाला दिया और समस्त आर्यों
की भाषा निर्धारित की। स्वामीजी को आर्य भाषा
का तात्पर्य बहुत कुछ बही है जो व्याजकल राष्ट्र
भाषा का हो रहा है। स्वामीजी के इस नूतन नाम
करण का यह अर्थ नहीं कि स्वामीजी ने एक नवीन
भाषा का प्रवर्तन किया, प्रत्युत यह कि स्वामीजी ने
प्रचलित हिन्दी भाषा को ही आर्य भाषा की उपाधि
की। उनकी आर्य भाषा पर विचार करने से यह स्पष्ट
अवगत होता है कि स्वामीजी टकसाली भाषा के
कारण से, शुद्ध संस्कृत गर्भित भाषा के हामी नहीं।
राष्ट्रभाषा के हितैषियों और भारत के सुराज्यो को
स्वामीजी की भाषा पर पूरा विचार कर आगे बढ़ना
चाहिये हमारी तो धारणा है कि स्वामीजी की भाषा
हमारी राष्ट्रभाषा का एक नमुना है और व्याकरण
से अच्छी तरह व्यवस्थित न होने पर भी व्याकरण
की पुजारिण है। स्वामीजी को अपनी भाषा की
शुद्धता का कितना ध्यान था, इसका पता उनके पत्रों
से भली भाँति बख जाता है। संशोधकों से उबकर
वह स्वतः लिखते हैं, * इन अशुद्धियों में भाषा की
कम और संस्कृत की अधिक है। और जब हम संधि
विषय का पाठ करें, तब तुम्हारी और + भी०से० की
न जाने कितनी निकलेंगी। अब ऐसा हुआ तो
हुआ परन्तु आगे कभी ऐसा न करो। आगे से हम

* दयानन्द प्रथम भाषा मालाकी सरकाय प्रथम भाग

की सूचिका पृष्ठ १०

† पंक्ति ४ मसेन।

सब पुस्तक देखा करोगे और अपना लिखाया और
तुम्हारा शोभा पुस्तक भी माँग लिया करेंगे, और
आज से हम वेद भाष्य भी देखा करेंगे कि
कितनी अशुद्धि है ... जो छप गया तो खैर
परन्तु आगे कभी ऐसा न होगा।" पाठकों को
भूलना न होगा कि स्वामी जी की भाषा का
इतना ज्ञान नहीं था जितना कि संस्कृत का।
उनके लिये इतना ही बत है कि वे शुद्ध भाषा
के उपासक थे। और उसे व्यवस्थित और शुद्ध
रूप में देखना चाहते थे। उनके † "एक व्याख्यान
का अनुवाद पं० महेशचन्द्र ने अशुद्ध किया। उस
दिन से दयानन्द ने निश्चय कर लिया कि हिंदी
भाषा द्वारा ही उपदेश किया करेंगे।" इससे प्रकट
है कि स्वामी जी अशुद्धि से कितना दूर रहना चाहते
थे। स्वामी जी को अपनी इस कमी का ज्ञान था,
और वे बराबर इसका कम करते जा रहे थे।
उन्होंने स्वतः लिखा है— * "जिस समय मैंने यह
ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था उस समय और
उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठन में
संस्कृत ही बोलने, और जन्म भूमि की भाषा गुज-
राती होने के कारण से मुझ को इस भाषा का
विशेष परिज्ञान न था। इससे भाषा अशुद्ध बन
गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास
हो गया है। इसलिये इस ग्रन्थ को भाषा व्याकर-
णानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है।" मतलब
यह है कि स्वामी जी व्याख्यानानुसार चलना चाहते
थे। अपनी कमी को छिपाने के लिये व्याकरण
को व्यर्थ ही कोसते न थे। जैसा कि हिन्दी में बहुत
से लोग कर रहे हैं। और साधारण भूल करते
जा रहे हैं। स्वामी जी को इतना अब कशा कहीं था
कि भाषा का अध्ययन कर जनता में प्रचार करते।

† दयानन्द प्रथम भाषा प्रथम भाग पृष्ठ ३६।

* सत्यार्थप्रकाश की सूचिका का पार ३१।

उस समय के साहित्यिकों की भाषा भी किसी व्यक्ति विशेष की भाषा न थी। उसका परिमार्जन तो आगे चल कर होगा। संस्कृत के पठितों की भाषा से स्वामी जी की भाषा बहुत कुछ व्यवस्थित और साफ सुथरी होती थी और वे बराबर उनको उनकी त्रुटियों से आगाह करते थे। उनकी शिकायत है * “अब यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता जैसा कि पहिले बनाता था, जैसी कि प्रतिदिन उन्नति करनी चाहिये यह प्रतिदिन गिरता जाता है।” ठीक यह दशा आज हिंदी की हा रही है, यह प्रतिवित गिरती जा रही है। पदार्थ है कुछ और भाषा बन रही है कुछ और। मतलब यह है कि स्वामी जी की चेतावनी पर ध्यान देना चाहिये और घास काटना छोड़ कर भाषा का निर्माण करना चाहिये। सत्प्रेम में आर्य भाषा बननी चाहिये।

स्वामी जी की आर्य भाषा के सम्बन्ध में विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि वे विजातीय शब्दों के शत्रु नहीं थे। अरबी पारसी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग करने में जरा भी नहीं हिचकते थे। उनको इस बात का पता था कि राजा शिवप्रसाद का आमफहम जनता के किसी काम का नहीं है। वह यह भी जानते थे कि यबन शब्दों का निकाल फेंकना भाषा की शक्ति को नष्ट करना है। अतएव जनता के हृदय में उस की प्रचलित भाषा के द्वारा प्रवेश करना चाहते थे। और उसकी भाषा को खड़े पड़ी न कह कर आर्य भाषा कहते थे। हिन्दी की अपेक्षा आर्य भाषा उन्हें विशेष प्रिय था और वे इसे आर्यमात्र की भाषा बनाना चाहते थे। आज भा उनके अनुयायी इस भाषा का प्रचार सघन करना चाहते हैं, और विदेश में भी उसका प्रचार कर रहे हैं। स्वामीजी तथा उनके अनुयायियों ने। आर्यभाषा को जो प्रोत्साहन दिया उसके साहित्य का जो निर्माण किया उसके सम्बन्ध में विचार करना विषयान्तर समझा जायेगा। और यहाँ हो भी नहीं सकता। अतएव विद्वानों के विवेचन और जनता की जानकारों के लिये स्वामीजी को

भाषा के कुछ नमूने दिये जाते हैं, जिन्हें देखकर ‘हिन्दुस्तानी’ के हिमायती भी समझ जायेंगे कि वास्तव में दयानन्द सरस्वती उनका शत्रु अथवा विरोधी न था वह उसी भाषा का पक्षपाती था जो जनता की हो, और जिसे जनता अपनी भाषा समझ सकती हो।

स्वामीजी ने ब्रह्मा, व्याख्याता, विचारो आदि अनेक रूपों में आर्यभाषा को अपनाना। उनके नाना रूपों पर विचार कर उनका समुचित लेखा ले लेना अर्थात् हमारी पहुँच के बाहर है। जब तक सारी सामग्री प्राप्त नहीं हो जाती तब तक यह कार्य सुगम नहीं हो सकता। स्वामीजी की भाषा के प्रत्येक रूप का परितः परीक्षण यहाँ सम्भव नहीं। निदान उनकी आर्य भाषा क कुछ नमूने पेश किये जाते हैं भगवान मनु के ‘सप्त प्रहृत्या भाव्य गृहकार्यपुच्छज्ञया’

सुसंस्कृतोपस्करया ज्येष्ठा मुक्तहस्तया की व्याख्या में लिखते हैं। ‘स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराई युक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार तथा घर की शुद्धि रखे। और व्यय में अत्यन्त उदार न रहे अर्थात् (व्या योग्य स्वर्च करे) और सब चीजें’ पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे जो औषध रूप होकर शरीर व आत्मा में रोग को न आने देवे। जो जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् सब को पति आदि को सुना दिख करे। घर के नौकर चाकरों से यथावत् काम लेवे, घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे।’ इन्होंने की आवश्यकता नहीं कि इसमें स्वर्च चत्र, हिसाब आदि अनेक शब्द विजातीय अथवा मुसलमानी हैं, जिन्हें इसी रूप में स्वामीजी ने प्रयुक्त किया है।

परिष्ठित और स्वास्ती के वाद विवाद पर गौर कीजिये और देखिये कि कितनी टकसाली भाषा है। †(स्वास्ती) देख हम रात दिन नगे रहते, धूनी

† सप्तपञ्चाशत्पुत्रसंज्ञा - पृष्ठ १११ (सकल संस्कार)

† सप्तपञ्चाशत्पुत्रसंज्ञा पृष्ठ ११६ (सप्तपञ्चाशत्पुत्रसंज्ञा)

तापसे, गाँजा चरस के नैकड़ो दम लगाते, तीन तीन लोटा भोंग पीते गाँजा, भोंग, चतुरा की पत्ती की भाजी बना खाते, संखिया और अकीम भी चट भिगल जाते बरा में गर्क रात दिन बेदम रहते, दुनबाँ को कुड़ नहीं समझते। भीख माँग कर टिफकड़ बना खाते। रात भर पेनी खाँसी उठती जो पास में सोवे उसको नींद कमी न आवे इत्यादि सिद्धियाँ और साधुपन हग मे है फिर तू हमारी निन्दा क्यों करता है। चेत बाबूड़े जो हमको विक करेगा। हम तुमको भस्म कर डालेंगे (पथिहत) ये सब ब्रह्मचर्य असाधु मूर्ख और गवरगंडे के हैं साधुओं के नहीं। सुनो—“जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो विद्वान् सत्पोपदेश से सब उपकार करे, उसको साधु कहते हैं।”

सरल और सामान्य बोल-बाल को भाषा की भाषा की बानगी लीजिये और देखिये कि इसमें भी कितना स्वामाविक माधुर्य है। ‘ओलोगो ने कहा हमको दर्शन क्यों नहीं होता। वह बोला नाक की आड़ हो ही है जो नाक कटवा आवे तो नारायण दोखें नहीं’ वो नहीं। उनमें से किसी मूर्ख ने चाहा, नाक जाय तो जाय नारायण के दर्शन हो जायें।” कितनी भीठी चुटकी ली गई है, कितना बढ़िया परिहास है।

समीक्षक की भाषा बहुत ही सटोक और नासुर पैदा करने वाली है। उसके आक्षेपों का उत्तर देना तो दूर रहा उन्हें शास्त्र चित्त से सुन लेना ही दुस्तर है। स्वामीजी के प्रहार से न जाने कितने लोग कातर हो गये, और उन्हें शिष्टाचार की सीख देने लगे। पर स्वामी जो कड़वी श्रेयज बिन पिये मिटै न तन की ठाप के क्राबल ये, और अपनी कट्टकियों से जनता को सचेत कर पालंढियों को रूकभोर देना चाहते थे। अंध विश्वास के वो वह कट्टर शत्रु थे। और उसे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे किसी डोगी की भड़ उकाने में जरा भी तरस न आता था। और उनकी भाषा भी कभी कोमल न होती थी

कबीर के विषयमें कहते हैं—कथा कबीर साहब मुनगा था जो फूले से उरभ हुआ और अन्तमें फूलहागया

मुस्लिम मत की समीक्षा में स्वामी जी ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह सबसुख हिन्दुस्तानी है और इस बात का पुष्ट करती है कि स्वामी जी की भाषा प्रतिपाद्य विषयके अकृतुल बल्लती चलती थी। किसी रूप विशेष से प्रदर्शित नहीं होता थी स्वामी जी ने लिखा है—जो कुरान अरबी भाषा में है उर्दू/पर मौलतियियो ने उर्दू में अर्थ लिखा है उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य भाषान्तर करा के परचातु अरबी के बड़े बड़े विद्वानो से शुद्ध करा के लिखा गया है।^१ इस हिन्दुस्तानी को स्वामीजी आर्य भाषा ही मानते थे। इसका एक नमूना देखिये जब मुसलमान लोंग सिवाय खुदा के किसी के साथ ईमान नही लाते और न किसी को खुदा का साम्नी मानते हैं तो पैगम्बर साहब को क्यों ईमान में खुदा के मोय शरीक किया अस्ताह ने पैगम्बर के साथ ईमान लाना लिखा इसी से पैगम्बर भी शरीक हो गया पुन साशरीक कहना ठीक न हुआ। अस्तु समीक्षक की यह भाषा स्वामी जी की असीष्ट आर्य भाषा नहीं है मुसलिम मत के समीक्षक में उस हिन्दुस्तानी का निर्वाह भले ही हो जिस के लिए बहुत से लोग प्रयत्न शील हैं पर आर्य संस्कृति के विवेचन में इस हिन्दुस्तानी से काम नहीं चल सकता स्वामी जी को आर्य भाषा का आदर्श उनके पत्रों और व्याख्यान अथवा भूमिका में मिल सकता है जिनमें उर्दू के प्रचलित शब्द आर्य रूप में स्वीकृत हुए हैं। निष्कर्ष यह है कि स्वामी जी अलंकृत और कृत्रिम भाषा को पसन्दी नहीं समझते थे उनकी समझ में भाषा का वही रूप अथ और मनोरम है जो जनता के हृदय में घर करले और जिसे पहिचान नेके लिए किसी व्याख्याता अथवा मध्यस्थ की आवश्यकता न पड़े। संक्षेप में जो, “सुरसरि सम सब कहं हित होई, हो। किसी सम्प्रदाय विशेष के लिये ही न हो।

* स्वामीजीका एकदम समुद्रकाम पृष्ठ २२२

× औरहवे समुद्रकाम की अनुभूमिका।

† स्वामीजीका औरहवाँ समुद्रकाम पृष्ठ ७३०

“कैवल्य और वेद”

(ले०—आचार्य श्री चन्द्रकान्तजी वेदवाचस्पति)



❀ ❀ ❀ ❀
 ❀ रतीय आस्तिक दर्शनों में मनुष्य
 ❀ भू के जीवन का उद्देश्य मोक्ष—प्राप्ति
 ❀ बताया गया है। अपवर्ग, मोक्ष
 ❀ अत्यन्त पुरुषार्थ आदि शब्दों में
 दुःख से सर्वथा विमोचन का भाव भरा हुआ है।
 आत्मा स्वभावतः चित् स्वरूप, सत्स्वरूप है। पर-
 मात्मा सत् चित् तथा आनन्द त्रिविध स्वरूप है।
 आत्मा तथा परमात्मा जब तथा शिव, नर तथा
 नारायण में भेद इतना ही है कि प्रभु आनन्दचन है
 और आत्मा को आनन्द प्राप्त करना है जिस वस्तु
 का जो धर्म स्वाभाविक होता है। वह धर्म उस वस्तु
 में सिद्ध व परिनिष्ठित रूप से रहता है साध्वरूप से
 नहीं, अतः दुःख निवृत्ति एवं आनन्द प्राप्ति स्वरूप
 मोक्ष आत्माके लिये प्राप्य होने से उसका स्वाभाविक
 धर्म नहीं, अपितु नैमित्तिक धर्म है इस लिये मोक्ष
 दशा विनाश-अर्थात् अनित्य भी है। वेद में एक
 सुन्दर श्लोका है—

“द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिष-
 खजते । तयोरन्य पिप्पलु स्वाद्द्वत्यनश्नन्नन्योऽ
 भिषाकृषति ।” आ० १।१।३।२०

अर्थ—“दो पक्षी (जीवात्मा, परमात्मा) जो
 साथ रहने वाले और मित्र हैं एक वृक्ष (शरीर) को
 आलिंगन किये हुए (स्व स्वामि भाव से) है
 उनमें से एक (जीवात्मा) स्वादु अस्वादु फल (कर्म-
 फल) को खाता है और दूसरा (परमात्मा) न खाता
 हुआ प्रकाशता (वैश्वता) है।

उपर्युक्त मन्त्र में स्पष्टतया कहा गया है कि
 जीवात्मा रूपी पक्षी के लिये ता-भोक्तव्य अर्थात् शिष्ट
 है जब कि परमात्मा रूपी पक्षी वृष्ट होने से दृष्टा के
 समान अपनी स्थिति में विद्यमान है। महर्षि दश-
 न्वाजी महाराज ने सत्यार्थ-प्रकाश नवम समुद्रान

मुक्ति प्रकरण में लिखा है—(परम) × + × वह मुक्त
 जीव एक ठिकाने रहता है या स्वेच्छाचारी होकर
 सर्वत्र विचरता है। (उत्तर जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है
 उसी में मुक्त जीव अज्याहृतगति अर्थात् उसकी कहीं
 रुकावट नहीं × × आनन्दपूर्वक स्वतंत्र विचरता है
 अर्थात् मुक्ति की अवस्था में मुक्तात्मा आनन्द मय
 परब्रह्म में विचरा करते हैं। उनका ब्रह्म के साथ
 ऐक्यत्व नहीं हो जाता, वे ब्रह्म नहीं बन जाते हैं। वे
 अपना सूक्ष्म तन्मात्राग्राही इन्द्रियों के बल से किसी
 अद्भुत अपूर्व आनन्द का आस्वादन करते हैं।

मायावादी वेदान्तियों का कहना है कि जीव का
 ब्रह्म से व्यावहारिक मिथ्या भेद होने से मोक्ष दशा
 में जीवकी ब्रह्मभावापत्ति होजाती है, अतएव आत्माके
 लिये मोक्ष सिद्धावस्था है तथा नित्य है। एक बार
 अज्ञान निमिर के सत्व-पुरुषान्ध्याकाशात् द्वारा नारा
 होने पर अखण्डकार” अर्ह ब्रह्मास्मि इस प्रकार के
 ज्ञान के उदय होने पर हमेशा के लिये भव बन्धन
 छूट जाया करते हैं।

वेदान्तियों के इस कथन के साथ वेद मन्त्रों का
 कहीं तक सामञ्जस्य है, यह देखना आवश्यक है।

अथर्व में एक मन्त्र आता है—

“परिविश्राम भुवनाभ्यायमृतस्य तन्तुं विततं
 दशोकम् । यत्र देवा अमृतमानतानाः समाने योना
 वष्येरयन्त” अ० २।१।३

अर्थ—“सब भुवनों में घूम कर सत्य के फैले
 हुए आनन्दरायक सूत्र (प्रभु) को देखने को मैं
 आया हूँ जिस सुख स्वरूप एक ही अविच्छाता
 कारण भूत प्रभु में विद्वान् अमरत्व को प्राप्त करते
 हुये विचरण करते हैं।” मन्त्र से प्रतीत होता है कि
 मुक्तात्मा देव (लोग प्रभु) के आश्रय में रहते हुए इच्छा
 पूरक विचरते हैं। वे ब्रह्म स्वरूप नहीं बन जाते हैं।
 वे परमात्मा के आश्रय में रह कर सुखास्वाद लेते

निरिक्रिय नहीं बन जाते। श्रद्धेय में एक और मन्त्र है—

“यश्चेन यज्ञमवजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमा-
न्यासम् तेषानाकं महिमान्। सधन्त, यत्रपूर्वं साध्या-
सन्ति देवाः॥” श्रु० १०।१०।६

अर्थ—यज्ञ स्वरूप (यज्ञ के आत्मा) मनुष्य से देवों ने जिस उद्देश्य से प्रारम्भ में सृष्टि यज्ञ को पूरा किया। अतः वे (यज्ञ) मनुष्यों के लिये मुख्य धर्म (कर्तव्य कर्म) हुए। जो मनुष्य इस मुख्य धर्म को करते हैं वे निश्चय लोक में महिमा (विभूक्ति) वाले हुत्रे अन्त में उस दुःखरहित स्थान (पूर्ण प्रभु) को पाते हैं। जहाँ सृष्टि यज्ञ के साधने वाले देव (सृष्टि निर्माण शक्ति रूप) रहते हैं।”

मन्त्र का भाव सुस्पष्ट है। मन्त्र में यज्ञ कर्म द्वारा मोक्ष प्राप्ति बताई गई है, अतः मोक्ष साध्य दशा का ही नाम है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रतिपादित किया गया कि मोक्षोपस्था (आनन्द-वस्था केवल धाम, में जीव प्रभु के आसरे रहते हैं। वे स्वयं ब्रह्मरूप नहीं हो जाते हैं बसुर्वेद में भी इसी आशय का मंत्र बताया है—

स नो बन्धुर्जनिता सं विधाता धामानि वेदं भुवनानि
विरवा यत्र देवाः संमृताः आनशानाः स्तृतीयो धाममभ्यै
यताः वह ब्रह्म हमारा बन्धु है हमारा पिता और
हमारे सुख दुःख का बनाने वाला है। वह सब लोको
को और परमों को जानता है जिस व-क्त अव्यक्त से
तोसरे (मिन्न) उक्ताव्यक्त के आश्रय भूत ब्रह्म में
स्थित वाले विद्वन् अमृतत्व को भोगते हुये कर्मों में
प्रवृत्त होते। है इस मंत्र में भी स्पष्ट रूप से जीव को
मोक्षदशा में परमात्मा से भिन्न ही प्रतिपादित किया
गया है। प्रभु को तृतीय धाम कहा है, क्यों कि जीव
प्रकृतिसे भिन्न तृतीय परमात्मा ही है। यही मोक्षस्थान
है—आनन्द धाम है। त्रिरेव अर्थात् तृतीय उयो-
वि-स्वरूप स्थान भी यही परमात्मनाम है। यह
तृतीय धाम अत्यन्त सुख युक्त है अनपत्र इस ओ
(अज्ञो नाकमाकर्मतां तृतीयम्) श्रु० ६।५।१

कहीं कहीं 'नाक' शब्द से भी कहा गया है
'क' का अर्थ आनन्द है। इस से-पूर्व दो 'नन्व'

लगाये गये हैं, जिससे प्रकृत सुखरूप अर्थ में दृष्टा
या गई है (नन्व द्वयं प्रकृतार्थवादेयबोधकम्) अर्थात्
सर्वथा दुःखरहित जो सुखधाम है वह नाक है—
“यत्र दुःखेन संभिन्न न च प्रस्तमनन्तरम्”

“अभिलाषोहनीतश्चतत् सुखां स्वःपवास्पदम्
वही स्वः, नाक, तृतीय धाम शब्दों का तात्पर्य है
यही मोक्ष है। यह मोक्ष ज्ञान तथा कर्म दोनों की
से ही उपलब्ध होता है। इस विषय में अनेक
प्रमाण उपलब्ध हाते हैं जिन्हें कभी किसी अन्य लेख
में देने का प्रयत्न करेगे।

एक और मन्त्र देखिये—

“श्रुतरथ पपन्धामनुपरय साध्वङ्गिरसः सुकृतो
येनचन्ति। तैर्भियां हृषभिमिः स्वर्गं यत्राहित्याः
मधु भक्षयन्ति तृतीयो नाकेऽधिविश्रयश्च १८।४ ३
अर्थ—हे सायक ! सत्य के पथ को अजीर्णित
लगादार देख जिससे कि सुकर्मी ज्ञानी चलते हैं,
उनसे सुखमय स्थान को प्राप्त कर।

यहाँ आदित्य-अश्वि ब्रह्मचारी ज्ञानामृत को
भोगते हैं।

हे प्रकृष ! उस तृतीय सुखधाम प्रभु-पद में अपने
को प्रतिष्ठित कर।

इस मंत्र में भी मोक्ष-धाम को सुकर्मियों का
लोक बताते हैं मुक्त को आधार और जीव को आश्रय
बताया है, अतः ब्रह्म तथा जीव में सादृश्य सम्बन्ध
की कल्पना वैदिक दृष्टि से दुरूह प्रतीत होते हैं
परिणामतः उपर्युक्त वैदिक प्रमाणों के आधार पर
हम कह सकते हैं कि ज्ञान कम उभय साधनों से
साध्य मोक्षोपस्था रवत। सिद्ध प्रतीत नहीं होती है
वह एक भाव पदार्थ है। उस दशा में Positive
happiness (विधेयात्मक सुख) मिलता है मोक्ष
दुःखात्यन्त निवृत्तिकर अवस्थाही नहीं है। यह बात
है कि संसारिक सुख की अपेक्षा मोक्ष सुख इस बात
में सुन्दर श्रेष्ठ है कि वह क्षणिक तथा दुःख समिश्र
नहीं है परन्तु साथ ही मोक्षसुख कर्म का परिणाम
होने से साध्य कोटि में माना गया है अतः मोक्ष
अस्तित्व भी है। वर्ग से उत्पन्न होने वाला पदार्थ
होने से काल दृष्टि से उसकी अतिरिक्त, जो कहीं

वार्तिक व वेदान्त केशरी रोक नहीं सकता। मोक्ष में किस किस प्रकार के सुख होते हैं, एतदर्थं श्रु १। ११२ द्रष्टव्य है। उदाहरणार्थ एक मन्त्र ऐसे हैं।

यन्नानुकामं चरणं त्रिणाके त्रिदिवे दिव । लं का
वत्र श्चोतिषमन्तः तत्र मामभूतं कृवीन्द्रायेन्द्रो परिस्त्र
वत्र उषोस्त्रिजस यस्मिन् लोके स्वर्हितम् । तस्मिन् मां
पेहि पवनासूते लोके ऽङ्घितेन्द्रायेन्द्रो परिस्त्रवम् ॥

६। १११ ७.

अर्थात् 'जहाँ प्रकाशमय सुखरूप तृतीय दिव्य-
धाम प्रभु पर में यद्येष्ट विचरण होता है, जहाँ
प्रकाशमय लोक है' (६ मन्त्र)

जिस मुक्ति धाम में नित्य प्रकाश है जिस में सुख
है, हे पवित्र करने वाले प्रभो ! उसी अभूत चिर-
स्थाई मुक्ति-लोक में मुझे धारण कराओ। इन्धो !
मुझ आत्मा के लिये सुख की वर्षा करो" ।

इस प्रकार अन्य अनेक मन्त्रों में मोक्ष के सुखो
का वर्णन है। यह सुख बौद्धिक सुख से कोटियों
गुना उच्च तथा चिरस्थाई है परन्तु पुरयो के लीख
होजाने पर इस अवस्था से लौटकर भी आत्माओं
की संसार में आना ही होता है, अर्थात् मुक्ति सान्त
होती है। इस लेख में स्थावना को भी हम युक्ति से
नहीं, प्रत्युत एक दो प्रमाणों से ही पुष्ट करना चाहते
हैं—

श्रुत्येव्दं में एक मन्त्र आता है:—

अनुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणसिंह नो
पेहि भोगम् ज्योक्परयेम सूर्यमुक्चरन्तमनुमते मृलया
नः स्थलित् ॥

अर्थ— हे प्राणप्रेरक प्रभो ! हममें वर्तनशक्ति
फिर से धारण कराइये। हमें इस संसार में फिर से
जीवनीशक्ति तथा भोग दीजिये ऐसा कीजिये कि हम
उच्च होते सूर्य को चिरकाल तक देखें । हे अनुमते !
हमें सुख हो" ।

मंत्र में मुक्तजीव की प्रार्थना है कि प्रभो मुझे
फिर से शरीर आवि प्रदान करो, ताकि पुरुषार्थ
करके फिर इस अवस्था को प्राप्त करूँ।
इसी प्रकार श्रु १ अ० १, २ मंत्र से भी मुक्ति की

अवध समाप्ति के अनन्तर प्रभु की कृपा से मुक्त
जीव पुन मा बाप वाले हो जाते हैं और पुनः मुक्ति
के लिये प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार एक अनवरत
चक्र चलता ही रहता है।

श्रुत्येव्दं में एक सुन्दर मन्त्र आता है—

'ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सत्त्वमसु-
तस्व मानशुः । तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वोऽस्तु प्रतिगृभ्णीत
मानव सुमेधसः' श्रु ० अ० १०। ६२ ॥

जो यज्ञ की दक्षिणा से युक्त इन्द्र (प्रभु) की
मित्रतारूप मोक्ष को प्राप्त हुए हो, ऐसे हे ज्ञानवान्
मुक्तात्मा । (अगिरस- सुमेधसः) उन आप के लिये
बन्धाण हो । (मानव) मनुष्य सम्बन्धी लोक को
फिर पाओ । इस मंत्र में कहा गया है कि भद्र कर्म
करने के लिये ज्ञानी पुरुष संसार में फिर फिर कर
आते हैं; मत्तावस्था जीव वा परमात्मा की मित्रता
की अवस्था है न कि ब्रह्मस्वरूपापत्ति ।

इस प्रकार हमने वेदमंत्रों के आधार पर संक्षेप
में यह बताया का प्रयत्न किया है कि मायावादियों की
मोक्ष के सम्बन्ध की कल्पना के आधार में श्रुति नहीं
है। वेद तो मोक्षावस्था को साक्षात्स्था बताते हैं,
जिसमें कि आनन्दधन ब्रह्म के सामीप्य में रहकर
सत्त्वा-रूप जीव आनन्द मग्न रहता है। जिस समय
पूर्व गांचित ज्ञान व कर्म का परिपाक समाप्त हो
जाता है उस समय शरीरधारी जीवात्मा संसार में
आकर पुनः कर्म में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार माण
दशा अनित्य है और इसमें ब्रह्म व जीव का ऐक्य
नहीं होता है; आप्तुत आधारायैय सम्बन्ध ही रहता है

ब्रह्मवर्ष-वैभव

जो श्रुद वर्षाभर अस्त्रण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन
करता है वह अकेला भी गोलचक्र के समान ६४
योद्धाओंको चक्र के समान भ्रमा सकता है। मनुष्योंमें
दश वर्ष तक बाल्यावस्था पचीस तक कुमारवस्था
उदन्तनर द्वावीसवें वर्षके आरम्भसे युवावस्था पुरुष
की होती है और सत्रहवें वर्ष से कन्या की युवावस्था
का आरम्भ है। इसके उपरांत जो स्वयंवर विवाह
करते हैं व महाभाग्यशाली होते हैं।

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

(ले०—श्री प० हार्दितजो शास्त्री)

जगत्यां समत्या सकलबुधवैरैरभिमत ।

भविष्यत्यस्यासीन्नगमगदित धर्मसुधनम् ।

यतो भ्रान्त्या भ्रान्तैरुदितहृत्धर्मान् क कुशली

नरो मन्तुं शक्तोत्यपगतबलान् बालुकगृहान् ॥ १ ॥

ततः सर्वैराप्तैर्विदितनिगमैः सत्यकृतिभिः,

वदद्भिर्यत्सत्यं परसमुपकारप्रतधरैः ।

नरैर्यत्सम्प्रोक्तं सकलमनुजानां हितकृते

महर्षिब्रह्माद्यैश्चरमभवजैमियुषिवरैः ॥ २ ॥

तथा यान् मन्ये ऽहं 'प्रभु' मुखपदाथान् च्छितितले ।

स्फुटं वक्तुं मे तानयमिह प्रथतः प्रवितलः ॥

न मे वाङ्मलाशेषः, "मतमभिनवं यत् प्रचलत्वात्" ।

नवो द्वेषः किञ्चित् प्रति भवति चित्ते मम मनाक् ॥ ३ ॥

अयं मे ऽभीलाषः वितधमतसन्त्रासजनन ।

यथा ऽऽ दैयान् हेयान् प्रहणपरिहाण्येपिसततमान् ।

विधायीशान् शुद्धं श्रुतिमतमुपैत्वाशुचिसृतिम्

प्रभोरीषा सैषा यदि मम मनीषा प्रभवति ॥ ४ ॥

मनुष्य लक्ष्मणम्

मनुष्यं तन्प्राहुर्मनननिरेतः वात्मसदृशम् ।

परेषां यो दुःखं सुखमपि च तद्वद्गणयति ॥

तथान्याय्ये तिष्ठन् इदि न कुरुते साध्वसलवन् ।

प्रहामं पापीयो नृपतिदमने वात्वसुवसुः ॥ ५ ॥

अपिचः—

“मवेद् यो धर्मात्मा धनजनतनूभिर्गतबल ।

परित्रातुं तं यः सकल निजशक्त्या दृढमतिः ॥

तथा यो ऽ धर्मात्मा नियतिवशतरश्चक्रनृपतिः ।

अवानेतुं हन्तुं तमिह यतते स्तोऽस्ति मनुजः ॥ ६ ॥

यथाऽऽ हस्म श्रीमान् नयविनयभाक् भर्तृ हरिरि—

त्वमित्यः, श्री व्यास, मनुवरथ, पुराणाश्च मुनयः—

“निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु ।

लक्ष्मीः समाविशतु गण्डयुवा बवेष्टम् ।

अथैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ७ ॥

भर्तृहरि ।

न ज्ञातु कामात्र भयात्र लोभात् ।
धर्मं त्यजेवजीवितस्यापि हेतोः ॥
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये ।
जोषो नित्यः हेतुरस्यत्वनित्य ॥

महाभारतम् ।

एक एव सुहृद्धर्मो निधने प्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्वि गच्छति ॥

मनु ।

सत्यमेव जयते नानृतम् । सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्
नहि सत्वात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।
नहि सत्वात् परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥

उपनिषत् ।

“अतोऽमीषाभिष्टं व्यवसितुमभीष्टं नरवरैः
ब्रुवे सप्रत्यर्थानहमिह समासेन, शृणुत ॥ ८ ॥

प्रथमं मन्तव्यम् ।

“तदेकं सच्चित्सर्वमयमनपरं ब्रह्म समवित् ।
यमाहुः सर्वान्वा पिनमजमनन्तं परगुरुम् ॥
दयालुः सन्ध्याय, सकल जगदुत्पत्तिविलय
स्थिति प्राप्तौ हेतुः, सहि मम मतस्त्वकीश्वर इति ॥ १ ॥

द्वितीयं मन्तव्यम्—

चतुःसंख्याः वेशाः सहितशुभमन्त्रा मम मते ।
स्वतो मानम्, यद्बद्धं मणिमखिन्नाभास्वरतमा ।
तदंगोपाङ्गानि स्मृति तदुपवेदी चित्तसुराः ।
स शास्त्राः (११२७) सन्याख्याः गणाय परतो मानमखिलम् ॥१॥

तृतीयं मन्तव्यम्—

य आचारः शुद्धो वितथलवहीनः समुचितः ।
तथा पक्षे पाताद्विषय वचनात्वेव रहितः ।
सधर्मो मन्तव्यः, तद्वितरदिहाधर्मपरतः,
प्रगीतं लोकेषु श्रुतिवधि वचो नानुदरते ॥

महर्षि का ध्येय और हमारा कर्तव्य

(ले०—श्री बा० श्यामसुन्दरलाल जी एडवोकेट)



महर्षि का ध्येय क्या था उसका स्वयं महर्षि ने अपने सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम वाक्य खण्ड में स्पष्ट बर्णन कर दिया है जिसका सार यह है कि—

“उन सार्वभौमिक वैदिक सिद्धान्तों को जिनको उन्होंने स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में संक्षेपत और सत्यार्थप्रकाशादि स्वरचित ग्रन्थों में विशद रूप से बर्णन कर दिया है मनुष्य मात्र अंगीकार कर अर्थान् मनसा वाचा कर्मणा उन पर आरूढ़ हो मतमतांतरों के व्यर्थ भगड़ो से पृथक् हो परस्पर प्रेम तथा अन्यान्य सुख वहनपूर्वक धर्मार्थ, काम, मोक्ष की सहज से प्राप्ति करते हुए सदा उन्नत और आनन्दित रहे ।”

महर्षि ने अपना प्रतिनिधि रूप केवल आर्य समाज को उक्त ध्येय की पूर्ति के लिये छोड़ा है इस के लिखने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। अवलोकनीय यह है कि आर्य समाज ने अपने इस समय तक के काल में क्या किया है और भविष्य में उसे क्या करना चाहिये यह बात भी विचारणीय है।

मैं सुगमता के लिये अब तक के काल को तीन भागों वा युगों में विभक्त करना उचित समझता हूँ अर्थात् आरम्भिक युग, मध्य युग और उत्तर युग। प्रत्येक युग के विषय में मेरी दृष्टि में निम्न सारांश है:—

(१) आरम्भिक युग—इस युग में आर्य सामाजिक की वैयक्तिक और सामाजिक दोनों अवस्थाएं आचार विचार, स्वाध्याय, धर्मनिष्ठा पारस्परिक प्रेम, प्रचारध्वनि, प्रिय भाषण, तप और त्याग से भरपूर थीं। प्रत्येक आर्य समाजी ने जो पदा लिखा या महर्षिकृत ग्रन्थों में से कम से कम सत्यार्थ प्रकाश के नियम पूर्णक श्रद्धायुक्त पढ़ने और उसके अमूल्य उपदेशों को हृदय में धारण करने का

नैतिक कर्म बनाया हुआ था। संध्यावन्दन का कदाचित् ही कोई शिक्षित आर्य समाजी अनभ्यासी था। सत्याचरण और सत्यवादिता उसके जीवन के आकर्षक चिन्ह थे। प्रत्येक आर्य समाजी स्वयं ही प्रचारक था। उच्च कक्षा के विद्यार्थियों में भी केवल नमस्ते के उच्चारण से अगाध समुद्रवत् हृदय प्रेम तरङ्गों से भर जाता था। ऐसा प्रेम का दृश्य मेरे हृदय में, जब भी स्मरण करता हूँ तरोंताजा हो जाता है। सन् १८६० ई० में एण्ट्रेस की परीक्षा के समाप्त होने पर जब आगरे से मथुरा आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिये हम कई विद्यार्थी मथुरा स्टेशन पर उतरे तो स्टेशन भर नमस्ते की प्रेम भरी आवाज से गूँज गया और नवयुवक स्वयंसेवकों ने हाथों हाथ टूट भर के सामाजिक आगन्तुको का सामान स्वयं उठा कर इस प्रकार समाज मंदिर में फुर्ती से पहुँचा दिया और हम सब को मानो प्रेम की गोद में लेकर वहाँ उपस्थित कर दिया कि वहा पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि सबका मामान सुव्यवस्थित रक्खा हुआ है। यह दशा प्रेम के वर्तव्य की सामान्य थी। प्रत्येक आर्य समाजी कुंडल काल के लिये अपनी जन्मगत जातपात को भूल गया था। आर्य समाज का प्रत्येक सदस्य अपने अन्य सदस्य को सहोदर भाई से अधिक भ्रातृस्नेह में बंधा हुआ प्रतीत करता था और अपने धार्मिक भावों में इतना दृढ़ था कि वैदिक सिद्धान्तों के ग्रहण करने के कारण जो हिन्दू समाज की ओर से जातीय उत्पात होने लगे थे उन को टण्डवत् समझ कर उनका साम्मुख्य करता था। वैयक्तिक और सामाजिक उक्त निष्ठा से सर्व सामान्य शिक्षित और अशिक्षित वर्गों में आर्य समाजी और आर्यसमाज के लिये आन्तरिक आदर का भाव उदय हो गया था। ऐसे उदाहरण उस समय के अप्राप्त नहीं हैं जबकि कतिपय सरकारी न्यायालयों में आर्य समाजी की साक्ष्य पर अनेक

साक्षियों के प्रतिकूल होने पर भी अभियोग का निर्णय किया गया। सारांश यह कि यह युग वैदिक धर्म का जीता जागता स्वरूप था और उसका देख कर अनेक पारचात्य उच्च कक्षा के परिष्ठित यह स्वप्न देखने लग गये थे कि सम्पूर्ण भूतल के मत मतान्तर शीघ्र ही दूर होकर वैदिक धर्म के प्रकाश में मनुष्य मात्र विचरने लगेगा। सुशिक्षित अनेक मुसलमान और ईसाई महातुभाव आशा भरी दृष्टि से देखने लगे थे कि निकट भविष्य में वैदिक धर्म के सार्व भौमिक सिद्धान्त उनमें आर्य्य समाज की शरण में आन के लिए वाध्य करेगे।

(२) मध्ययुग—इस युग का नाम, सरयायुग अधिक उचित प्रतीत होता है। इस युग में विधर देखो उधर स्कूलो और कालिजो को समाज की ओर से स्थापित करने और खोलने की ध्वनि सामाजिक पुरुषो में उत्पन्न हो गई। विशेष शिक्षित और प्रभावशाली पुरुष इन सस्थाओ के लिये पृथक् पृथक् और डेपूटेशनों द्वारा धन सचय के लिये सर्वथा प्रयत्नशील हो गये। स्वभावत आत्माभिमान और आत्मावलम्बन का भाव शनै शनै मद् होकर संस्थाओ के लिये धन सप्रह का काम केवल शेष रह गया। हार्दिक प्रचार का भाव लुप्त हो गया। न स्वाध्याय रहा न धर्म में श्रद्धा रही। इने गिने अवेतन और अशुक्ल भोगी उच्च कक्षा के उपदेष्टाओ को छोड़ कर ऐसे वेतन भोगी अथवा शुल्क रागी उपदेशकों के सिपुर्द प्रचार का काम हुआ जिनके कटु भाषण और सामाजिका ध्वनि ने वैदिक सिद्धान्तों का आकर्षक बनाने के पलटे अपकर्षक रूप में परिणत कर दिया। उपदेश का स्रोत वाणी थी न कि हृदय। यह उपदेश शुष्क और तीव्र रूप में स्मृति पूजा से श्रद्धा उठाने में तो बहुत सफल हुआ। परन्तु मृतक ाद के रोकने में नितान्त अशक्य रहा और जन्मगत जात पात के बन्धन को दूर करना तो पृथक् रहा किन्तु सामाजिक पुरुष स्वयं उसमें जातीय सभाओ द्वारा उसके पृथक् करने के प्रयास में अधिक सम्पन्न हो गये। अन्ध में भूल से ऐसे मार्ग का अवलम्बन किया जिससे

मुसलमान और ईसाई दोनों समुदायो को निश्चय हो गया कि आर्य्य समाज के निर्देशित सार्ध भौमिक वैदिक सिद्धान्त केवल किताबी हैं। अथवा आर्य्य समाज और हिन्दुओ में कोई विभेदक अन्तर नहीं है। तथा आर्य्य पुरुष इस प्रणाली और संस्था जय ईर्ष्या द्वेष और पारस्परिक कलह के कारण पहिले युग के प्रेम से लगभग शून्य हो गये। स्मृति पूजा के स्थान में ब्रह्मोपासना, मृतक श्राद्ध के स्थान में जीवित माता पितादि की शारत्रीय सेवा शुद्धा का कोई विशेष वातावरण, खण्डनात्मक और अश्रद्धात्मक कार्य के स्थान में मण्डनात्मक और श्रद्धात्मक व्यवस्था के उत्पन्न करने का उपरोक्त दशा में भला किली को विचार ही क्या हो सकता था? कवल रुग्ण मागने और लान में दत्त और चतुर समाज के क्षेत्र में विशेषज्ञ रह गये। जिस लालच से स्कूल और कालिज खोले गये थे वह तो स्वभावत स्वप्न रहना ही था किन्तु यह स्कूल और कालिज लगभग सारांश में सामयिक। राजा के प्रवाह में बढ़ने को वाध्य हागये। इन प्रथा के दुष्परिणामों से बचने और वैदिक शिक्षा की प्रगतिता द्वारा प्रथम युग को लौटाने के उद्देश्य से इसी युग में गुरुकुलों की भी स्थापना हो गई है। परन्तु इस प्रयास का फल अभी भविष्य के गर्भ में है और उभ पर इस समय कुत्र न लिताना अधिक श्रेयस्कर है। उनसे भीटे फलों की आशा से विमुक्त होने के लिये सम्प्रति कोई पर्याप्त प्रारण नहीं है। फलत इस युग में समाज पहले युग की प्रगति वैदिक धारा को प्रवाहित और समृद्धिशाली खने में ही अकृत कार्य नहीं हुआ किन्तु वह स्वयं बहुत अंश तक सामयिक प्रवाह में बह गया और अब तक बह रहा है। नेतृत्त हुए बिना नेता होने की अप्रशंसनीय सामयिक (माडर्न) अभिलाषा और प्रवा ने सामाजिक क्षेत्र में भी अन्त्रेत्त के नेताओं को बहुत कम उत्पन्न होने दिया। और नव बयस्को के किली के भी नेतृत्व में नेतृत्त न होने की मनोवृत्ति ने अन्धे तल के कार्यकर्ता भी उत्पन्न बहुत कम होने दिये।

(३) तृतीय युग—इस युग में वह समय होता है

जो जन्म शताब्दी काल से आरम्भ हुआ है। इस युग की संस्था वृद्धि-व्यसन काल के नाम से पुकारना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। न्यून से न्यून द्विगुण संस्था सामाजिकों को कर दिखाने के आघोष से जो वास्तव में अच्छे भाव से किया गया था समाज में ऐसे पुष्पों का समावेश हो गया है जो न ऋषिभूत ग्रन्थों से अभिन्न थे और न यह जानते थे कि वास्तव में आर्यसमाज क्या वस्तु है और उसका क्या उद्देश्य है। बहुतेरे महानुभाव तो ऐसे हैं जो केवल नमस्ते का नाता रखते हैं और अधिक से अधिक समाज के सहायक कहे जा सकते हैं। हां कुछ कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त पुरुष यथा प्रेम्बूरट अष्टर प्रेम्बूरट एल-एल० बी० डिग्री प्राप्त भी इन काल में दालिज हुए हैं परन्तु लगभग सर्वतो दृष्टा यह महानुभाव न तो समाज के सिद्धान्तों और उद्देश्यों को समझ कर उसमें प्रविष्ट हुए हैं और न उनके हृदय उस वातावरण में परिपुष्ट हुए हैं जिनके भीतर धर्म की सच्ची लगन हो वा सहसा उत्पन्न हो सकती हो। अधिकतर उनमें से ऐसे ही सिद्ध हो रहे हैं जो समाज को राजनैतिक वा सौरौल संस्था समझते थे और राजनैतिक छल कपट प्रपंच मय चतुराइयों के अभ्यासी थे। और मसल मराहूर है कि विद्या एक हथियार है जो अच्छे काम में भा उपयुक्त हो सकता है और निकृष्ट काम में भी, इन महानुभावों के हाथ में यत्रतत्र समाज की नकेल होने के कारण समाज एक बाह्य आडम्बर की वस्तु बन गया है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में जहां मन्त्री और प्रधान होते हैं यदि कोई स्पर्धा है तो यह है कि समाज का वार्षिकोत्सव बहुत ठाठबाट से किया जावे और उस ठाठबाट का आदर्श यह है कि उपदेशकों और भजन मंडलियों का ठट्टा लग जावे। और प्रत्येक कार्य में एक प्रकार की हृदय और अद्वा शून्य प्रदर्शनी की रंगत आजावे। समाज के कार्यकर्त्ताओं में वैदिक सिद्धान्तों में प्रवोषता और स्वाध्याय की मात्रा इतनी बढ़ी हुई है कि उपदेश का प्रबन्ध ग्रन्थों के लिये है उनके स्वयं बैठकर उपदेशों को श्रवण करने के लिये विविध आडम्बरों के कारण समय ही नहीं मिलता है अथवा ऐसा करने के लिये आवश्यकता ही प्रतीत नहीं

होती है। प्रत्येक समाज अब सम्मेलनों के एकत्रित करने में भी प्रशंसा समझता है और चाहे जितान्तरगत लिखित भाँति में पन्द्रह बीस वा उससे भी अधिक संस्था समाजों की क्यों न हो यदि उनमें से दशमांश वा पंचमांश भी शरीक हो गये तो उनका कागजी भाँति में वह सम्मेलन प्रशंसनीय और विज्ञापनीय हो जाता है। फलतः अब समाज के भीतर जो स्वाध्याय श्रद्धा और भक्ति में पहले से ही खोलला हो गया था कोई ऐसी बात शेष नहीं रही है जिससे शिक्षित वर्ग उसको आदर और उच्च भाव से देख सके अथवा उसकी ओर आकर्षित हो सके। हां मन्दिरवेश हरिजन उद्धार आदि जब तब ऐसे आकर्षक सार्वजनिक आन्दोलन अवश्य उठ खड़े होते हैं जिनमें आर्यसामाजिक पुरुषों को नव वयस्कों के लिये थिएटर वा सिनेमा की भाँति कुछ रुचिकर व्यवसाय मिल जाता है और उनका पतित तर छोड़ जाता है।

उपरोक्त अन्धकारमय पहलू है जो अनुपात दृष्टया दूसरे और तीसरे युग में प्रत्येक अनुशीलक को आर्यसमाज के इतिहास में विद्यमान मिलेगा। पाठक गल भूल करेंगे यदि वह यह समझेंगे कि अपवाद रूप उज्ज्वल पहलू रखने वाले आर्यसमाज नहीं हैं अथवा अनेक आर्य सज्जन अब भी ऐसे नहीं हैं जो विद्या स्वाध्याय, तप और त्याग में किसी समाज के भूषण हो सकते हैं और जो अब भी उक्त दशा पर आबिदित भाँति में आसू बहा रहे हैं परन्तु सुव्यवस्था उत्पन्न करने में इस कारण से अराध्य है कि नकारखाने में तूती की आवाज का सुना जाना असंभव सा ही है। जो हो अब देखना यह है कि भविष्य में आर्यसमाज का क्या कर्तव्य होना चाहिये। निवेदक की सम्मति यह है:—

(१) कृत्रिम रूप संस्था वृद्धि का भाव सर्वथा छोड़कर जो नर-नारी वर्तमान काल में आर्यसमाज के सदस्य हैं उनको अपेक्षित मात्रा में वास्तविक आर्यसमाजी बनने और बनाने का प्रयत्न होना चाहिये। प्रत्येक सदस्य को चाहिये कि वह विरोधतः सत्यार्थप्रकाश के पूर्वार्ध भाग का नित्य प्रति स्वाध्याय आरम्भ करवे और बार बार उसका मनन और

निदिध्यासन करे और ब्रह्म मुद्गल में उठने के अभ्यास पूर्वक ब्रह्मयज्ञ और देवयज्ञ (सन्ध्या और अग्निहोत्र) का सेवी बने।

(२) आर्यसमाज का संगठन इस प्रकार सुदृढ़ किया जावे कि जो नियम अब शिरोमणि सभा ने पास किये हैं उनके अनुसार ही आर्य्य सभासदों को बनाया जावे और यह ध्यान में रक्खा जावे कि लोक चातुर्य्य और विद्या बड़ी तक आदरणीय है जहाँ तक कि उसके माथ धर्म की लगन, श्रद्धा और शुभाचरण है तथा 'समाज की बागडोर सदा उन्हीं के हाथ में देनी योग्य है जो विद्वान् स्वयाय और अनुभवशील, शुभाचरण और वैदिकधर्म में अनुरक्त हैं' तथा जिनकी आयु लगभग चालीस वर्ष से न्यून नहीं है। आर्य्य सभासदों के बनाने में भी यह बात बहुत अश तक ध्यान देने योग्य है। प्रत्येक दशा में यह बात अत्यन्त सावधानी से ध्यान में रखने योग्य है कि जिन लोगों में चुंगी वा डिस्ट्रिक्टबोर्ड वा अन्य इसी प्रकार के सामयिक निर्वाचनकर्त्ता संगठनों के समान कैन्वैसिंग (काना-फून्सी) का स्वभाव दुर्भाग्यवश पडा दृष्टि पड़े उन पुरुषों को कदापि आर्य्य सभासदी जैसे पवित्र और द्रबन्ध निर्माणक पद पर आसीन नहीं करना चाहिये क्योंकि वास्तव में इन्हीं आर्य्य सभासदों के ठीक ठीक निर्वाचित होने से उनके द्वारा आगे की प्रबन्ध रचना आदि का कार्य्य ठीक ठीक सम्पादन हो सकता है अन्यथा नहीं।

(३) समाजों की नियन्त्रण कर्त्री सभाओं का सम्बन्ध ध्यान क्लृप्त काल के लिये समाजों और सामाजिक पुरुषों में एक प्रकार की स्वाध्याय और संन्यादि की आत्मा फूंक देने की ओर लग जाना चाहिये और वाणी द्वारा उपदेश के अतिरिक्त आर्य्य भाषा में विशेषतः ऐसी पुस्तक और पुस्तिकाओं को निर्माण और मुद्रित करा आर्य्यसमाजों और आर्य्य पुरुषों के पास सस्ते दामों में पहुँचाना चाहिये जिनसे स्वाध्याय संन्यादि और शुभाचरण की ओर अपेक्षित प्रेरणा हो।

(४) ऐसी सुविधाओं के उत्पन्न करने और ऐसे

शिक्षण के प्रबन्ध करने की आवश्यकता है जिसके द्वारा अवेतन भागी और अशुल्क सेवी उपदेशों की शीघ्रतर वृद्धि हो और वेतन भोगी और शुल्क रोगी उपदेशकों की शृङ्खला समाप्त हो और जो वेतन भोगी वर्त्तमान काल में उपदेशा हैं उनको रूपया माँगने और लाने के काम से सर्वथा मुक्त कर दिया जावे। और वेतन भोगी उपदेशकों की संख्या में वृद्धि न की जावे।

(५) प्रत्येक प्रान्त में शहरो के लिये केवल एक लकचरर क्लृप्त काल के लिये नियुक्त किया जावे जा अंग्रेजी शिक्षकों और कालिज के विद्यार्थियों में वैदिक धर्म की महत्ता स्थापित कर सकें और आर्य्य भाषा की ओर उनके विशेष ध्यान को आकर्षित कर सकें। परन्तु इसके साथ साथ हिन्दी और अंग्रेजी के प्रचुर मात्रा में साहित्य में पहुँचाने की आवश्यकता है जिसके बिना वाणी द्वारा उत्पन्न हुए भाव और विचार कभी स्थिर और सुदृढ़ नहीं हो सकते।

(६) आर्य्य समाजों में जो संस्थाएँ ऐसी हैं जो अपने पैगों पर खड़ी नहीं हैं और जिनके लिये इधर उधर घूमकर द्रव्यसन्ध की आवश्यकता है उनको तत्काल प्रमत्ता और मोह को त्यागकर बंद कर दिया जावे और उनमें लगे धन और सम्पत्ति को अपने प्रारम्भिक संगठन द्वारा साक्षात् वैदिक धर्म प्रचार में लगा दिया जावे और आगे के लिये कोई नवीन संस्था बिना प्रान्तिक शिरोमणि सभा का आज्ञा के न खोली जावे। कम से कम आर्य्यों को ऐसी संस्थाओं की सहायता कदापि नहा करनी चाहिये। परन्तु जो संस्थाएँ स्वयं साध्य होने के योग्य स्थिर रहस्यी जावें और जिनके प्रबन्ध के लिये रजिस्ट्री शुदा प्रथक कमेटी वा कमेटीयॉ न हो उनके प्रबन्ध का सम्बन्ध अन्तरंग सभा से साक्षात् न रक्खा जावे किन्तु उनके प्रबन्ध के लिये अन्तरंग सभा द्वारा कोई नियमानुसार उपसमिति बनाई जावे जो उसका साक्षात् प्रबन्ध करे। तथाच इन सम्पूर्ण स्वयं साध्य और अस्वयं साध्य संस्थाओं के लिये निम्न बातें अनिवार्य समझी जानी चाहिये अर्थात्

[अ] विद्यार्थियों के लिये एक ही प्रकार की

धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध हो जो शैक्षिक वा सार्व-
देशिक सभा द्वारा निरिषत की गई हो ।

[क] सहशिक्षा (Co-education) अर्थात् विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियोंके एकसाथ बढ़नेके रोगसे जसका विदेशीकी भाँति इस देशमेंभी शनैःशनैः प्रवेश होना दृष्टि पड़ रहा है नितान्त मुक्त रहना ही पर्याप्त नहीं है किन्तु इन संस्थाओं के प्रबन्धकों को उसके विपरीत तीव्र आन्दोलन खड़े करने की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि उनका वह पवित्र भारतवर्ष देश इस रोग के आक्रमण से बचा रहे और वैदिक संस्कृति के पुनः आवर्तन करा पाने का अवसर सदा के लिये न जाता रहे ।

(७) प्राग्भक्त संगठन में विद्वान् स्वाध्यायशील धर्मरत्न, अनुभवी दीर्घवक्त्रक पुरुषों का ही प्रतिनिधि बनकर भेजा जावे न कि केवल विद्वान् परंतु बालक अननुभवी नवयुवक पुरुषों को जिनके योग से संगठन शिथिल ही हो सकता है न कि सुदृढ़ और महत्त्व सूचक क्योंकि यह ध्रुव सार्वतन्त्रिक सिद्धांत है कि बिना अधिक वक्त्रक हुए और अनुभव प्राप्त किये तत्काल निष्णात विद्यार्थी चाहे उसने किसी भाषा के विद्यालय में उच्च शिक्षा क्यों न पाई हो प्रायः संगठन की महिमा के भार को समझने और वहन करने के योग्य कदापि नहीं हो सकता, हों शिक्षा के तलानुसार अपेक्षित अनुभव प्राप्त करने के लिये काल की मात्रा न्यूनाधिक हो सकती है । वास्तव में अन्तरंग सदस्य, अधिकारीवर्ग और उनमें भी क्रमशः मन्त्री और प्रधान के पद एक दूसरे से उत्तरोत्तर इतने गुरु और महत्त्वपूर्ण हैं कि उन पदों पर भूलकर भी ऐसे सज्जनों को पदासीन नहीं करना चाहिये जो पदों के शोषण और भ्रूषे हैं किन्तु उन पदों पर यथायोग्य उन पुरुषों को नियुक्त करने की आवश्यकता है जो इन पदों से अकृत्रिम भाँति में बचने वाले हैं और उसी अवस्था में वह उन पदों को स्वीकार करने वाले हैं जब कि उनकी दृष्टि में उनके उक्त पदों पर आसीन न होने में सामाजिक कार्यों में या ही क्षति पहुंचने की सम्भावना है अथवा स्वीकार करने से ही सामाजिक कार्यों में विशेष

उन्नति होने की आशा है तथा जो सर्व सम्मति से न चुने जाने को अपने लिये एक प्रकार का दोष समझने वाले हैं ।

(८) ग्रामीणों की ओर उस समय तक विशेष ध्यान नहीं देना चाहिये जब तक कि आर्यसमाज का वर्तमान संगठन अधिक सुदृढ़ न हो जावे और विशेष प्रबन्ध और सुविधाओं द्वारा ऐसे अचेतन भोगी, ग्रामोणों के मध्य में रह कर प्रचार करने वाले महानुभाव न समुपस्थित हो जायें जो किसी सीमा तक चिकित्सक भी और ग्रामीणों के साधारण रोगों का आयुर्वेदिक प्रयोगों द्वारा निवारण कर सकते हों और स्वभाविक रूप में इस प्रकार उनके प्रीतिभाजन और शिस्तक हो सकते हों ।

(९) आर्यसमाज को रोटी बेटी सम्बन्ध के विषय में शीघ्रतर वैदिक वर्ण व्यवस्था का शुद्ध स्वरूप अपने भीतर समुपस्थित करने का उद्योग करना चाहिये और अपने से भिन्न समुदायों के साथ चाहे वह हिन्दू वा बौद्ध, मुसलमान हो वा ईसाई सबके साथ उसका सममेत का वर्ताव होना चाहिये । आर्यसमाज का ध्येय वैदिक संस्कृति है न कि कोई और । यदि उस संस्कृति से उपरोक्त किसी समुदाय की संस्कृति अधिक निकट है तो स्वभावतः उस संस्कृति के नर नारी सब से अधिक और सबसे शीघ्र आर्यसमाज में आकर्षित हो आवेंगे । हमको कोई आश्चर्यकता नहीं है कि किसी समुदाय के साथ तदात्म्यभाव को प्रहण कर किसी अवैदिक बात में उसके साथी बनें और अपनी वैदिक वास्तविक स्थिति को अन्याया समझे जाने का किसी को अवसर दें ।

(१०) जहाँ तक स्वदेश अर्थात् भारतवर्ष का सम्बन्ध है हमको वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिये प्रधानतया आर्य भाषा का माध्यम और तत्परचात् देवनागरी लिपि का माध्यम जो वैज्ञानिक आधार पर आरूढ़ होने के कारण, अब वा तब, सार्वभौमिक नहीं तो कम से कम सार्वदेशिक माध्यम बनने के सुसाध्य समर्थ और योग्य है इतने बल और लगन से सुदृढ़ पकड़ना चाहिये और तत्परचात्

अंग्रेजी और उर्दू माध्यम को क्रमशः उतना ही महत्त्व देना चाहिये जो उन न देशों में इस देश को एक सूत्र में शीघ्रतर बांधने के लिये अनिवार्य है, जिससे इसदेशका प्रत्येक मनुष्यसमुदायिक भावोंको छोड़कर प्रेमपरक एकात्मभाव में पुनः संगठित होने का सुश्रवसर निकट भविष्य में प्राप्त कर सके। अन्त में पाठकगण से आशा है कि उक्त लेख में जहाँ जहाँ वह आर्य पुरुषों और आर्यसमाजों के विषय में अनुस्मृतता बोधक चित्रण का प्रसंग देखेंगे वहाँ-वहाँ उस प्रसंग के साथ साथ महर्षि दयानन्द के उच्च ध्येय का आदर्श अपने सम्मुख रखकर उम चित्रण का अभिप्रेत मूल्य स्थिर करेंगे। अन्यथा इस निवेदक की दृष्टि में यह कहना साहसमात्र नहीं है कि आज-कल को अन्य सम्पूर्ण मानवीय संगठनों की तुलना में सर्वतो दृष्ट्वा उन का तत्त्व इस समय भी ऊँचा ही है और यही कारण है कि अन्यों के साथ उनको अबतरित और प्रवाहित होता देखकर निवेदक को इतना खेद प्रदर्शन और सावधानी के संकेत करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई है। इसी के साथ साथ आर्य सज्जनों से भी अभ्यर्थना है कि वह आर्य-जगत में ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न करने का भरसक उद्योग करें कि आर्यसमाज को प्रचुर मासिक वार्षिक वा अन्य प्रकार दान देते हुए भी उसके आगन्तुक के भीतर यह भावना जाग्रत हो कि वह पदों के लिये उसमें सम्मिलित नहीं हो रहा है किन्तु समाज में शरीक होने में उसका ध्येय अपनी आत्मोन्नति तथा स्वदेश और संसार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक अबस्था के उत्कृष्टतर बनाने में सहायक होने का विशेष उद्देश्य है जिसके लिये आर्यसमाज से बढ़कर दूसरा निर्भ्रान्त और उच्च क्षेत्र नहीं है।

“ऋषेरन्तःकरणम्”

कमलमंशुमवाच्य रवेर्यथा हिमकरस्य यथा कुमुदाकर ।
पीकमितं ऋग्साम तथा मनः कलिहरं सुखदं श्रुति दर्शनम्
—शिवचरणलाल सारस्वतः ।

महर्षि से—

(“राकेश”)

[१]
हे सत्य—सन्व ! हे ऋषिबर !
हे सात्त्विक—मन ! करुणाकर !
पावन कितना, कैसा था ?
तब निर्मल—जीवन—निर्गमर !

[२]
शुभ कर्म तुम्हारे सारे,
ये अद्भुत, अनुपम, ग्यारे;
निज जीवन—ऊषा से ही,
तुम थे आदर्श हमारे ।

[३]
सेवा समाज की करने,
चिर—वश्रद्ध—भ्रम को हरने;
त्यागा था तुमने सब कुछ,
साफन्ध—त्री को वरमे;

[४]
ये अनुपमेय तुम योगी,
शिवकर, शिव से विष—भोगी;
शिवमय थे जब तुम शिव में,
फिर कहाँ पराजय होगी ?

[५]
घन दे घातक से कहना—
तुम भगो, वहाँ मत रहना—
या कृत्य तुम्हारा ही तो—
अथ मृत्यु—सरित में बहना ।

[६]
फिर ऐक्य—भाव सिलझाने,
वह सोई उषोति जगन्ने;
आओ, महर्षि ! भारत में,
कलि—मानस—तिमिर भगाने ।

ब्रह्माण्ड का विराट् यज्ञ

(ले०—पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती)

— 10 —

द मे प्राकृत नियमो से यज्ञ का वर्णन अनेक स्थलो पर स्पष्टरूप में आता है, जिसमें कोई यज्ञ सामान्य और कोई विशेष है। जहा सामान्य यज्ञ का वर्णन है वहा सृष्टि के सब प्रदान भागो का यज्ञ के अन्नो और साधनो के रूप में निदर्शन कराया गया है। ब्रह्माण्ड की स्थापना जहा यज्ञ रूप में की गई है वहा समस्त पृथिवी को ब्रह्माण्ड यज्ञ की वेद्यो सिद्ध किया गया है, जैसा कि यजुर्वेद अध्याय २३ के ६२ वें मन्त्र में स्पष्ट है—
 “इय वेदिं परो अन्तं प्रथिव्या । अर्थात् प्राकृत मदान यज्ञ के लिए यह पृथिवी ही वेदि—यज्ञकुण्ड रूप है जिसको यज्ञाग्नि कारूप ‘अग्निर्होता कविक्रतु’ कहते हुए भौतिक अग्नि को बताया है, और यह है भी ठीक । स्योकि अग्नि ही सब पदार्थों को भस्म करने वाला है। पार्थिव, मनुष्यादि जड चेतन सभी को पृथ्वीरूप वेदी में हव्यकव्य के रूप में भस्म करने का कार्य अग्नि और केवल अग्नि का है। इस प्राकृत यज्ञ का मण्डप समस्त नक्षत्र चन्द्रमा सहित अन्तरिक्ष को माना गया है, और समस्त नक्षत्र चन्द्र तारादि सहित अन्तरिक्ष द्वारा पृथ्वी रूप वेदी सुरभित होती है। वायु इस यज्ञ का अध्वर्यु इस लिये कहा गया है कि उसी की चेष्टा और क्रिया द्वारा इस महान यज्ञ के हव्यकव्यों का यथास्थान सचय और प्रेषण होता रहता है। सूर्य इस यज्ञ के होमद्रव्यो को भस्म करने वाला अग्नि माना गया है। इसी प्रकार जगत् के समस्त पदार्थ इस नैसर्गिक ब्रह्माण्ड यज्ञ के साधक सिद्ध किये गये है। गोपथ ब्राह्मण (१-१३) में तो स्पष्टत तमाडरत् येनायजन तत्याऽग्निर्होतामिन् वायुरध्वर्युः सूर्य उद्गाता चन्द्रमा ब्रह्मा पर्जन्यः सद्यस्य ॥ अर्थात् ब्रह्माण्ड यज्ञ का होता अग्नि, अध्वर्यु वायु, द्गाता सूर्य, ब्रह्मा चन्द्रमा और सद्यस्य वर्षा है।

ब्रह्माण्ड यज्ञ के द्रव पूजा, गतिकरण और दान, कर्म, मोक्ष, शरद्, जल, वयु, प्रशाश और अन्धकार से हाते हे यह यज्ञ कल्प मल्पान्तरो पर्यन्त अहोरात्र रूप में हाता ही रहता है जिसकी वेद में स्पष्ट रूप में इस प्रकार साक्षी दे रहा है यः पुरुषेण हविषा देवायज्ञमतन्वत वसन्ताऽऽयासीदाज्यं प्राप्सु इध्मं शरद्धवि ॥ अर्थात् पुरुष के द्वारा हवि से देवता जिस यज्ञ को पैलात हैं उस यज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु ईधन है, और शरद् ऋतु हवि है।

इस नैसर्गिक यज्ञ के हामनीय मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृत्त, लतादि सब पदार्थों की दुहने वा उत्पन्न करने के लिए देवताओं ने विराट् यज्ञ रूप एक पुरुष पशु नियत किया है कि इस विराट् पशु से मनुष्यादि उत्पन्न हाफर पृथ्वी रूपी वेदी में हाम (लय) जाने के लिये सतत माभग्री मनुष्यलव्य होती रहे। इम सामान्य यज्ञ की सात परिधि अर्थात् मेखला है तथा बारह महोने, द्दह ऋतु तथा भूत, वर्तमान और भावयत् तीन काल इस प्रकार इकोस समिधा इस महान यज्ञ के लिए नियत की गई हैं। जिस प्रकार समिधा रूप ईधन के यज्ञकुण्ड में पडने वाला मव सन्ध्य कव्य कव्य भस्म हो जाता है वैसे ही इन काल विभागो के चक्र में पडकर सब मानव और स्थावर जगम जीर्ण हो पृथ्वी रूप यज्ञ कुण्ड में समाते जाते है। इसलिए यह नैसर्गिक यज्ञ ईश्वरीय सुख के नियमानुकूल स्वयमेव क्षण प्रति क्षण हो रहा है। हमारे उपर्युक्त कथन का आधार इस प्रकार है।

सन्ताऽयासन परिधपन्त्रिसाय समिध कृता

देवाययज्ञं तन्वानाश्चध्वन पुरुष पशुम् ॥

अग्निवायु आदि देवता स्वाभाविक यज्ञ का विस्तार करते हुए पुरुष अर्थात् विराट् जगत् रूप

शरीर को पशु रूप यज्ञ के लिए तु गादि के समान हविष्य बनाने के लिए बांधते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सामान्य यज्ञ का विधान वेद में है, इसी प्रकार इस विशेष प्राकृत ब्रह्माण्ड यज्ञ का भी वेद में वर्णन है, और अग्नि आदि एक एक देवता से उसका विशेष सम्बंध दिखाया गया है, यथा—“अग्निः पशुरासीत्तेनाय-जन्तु अथात् अग्नि को पशु नियत किया है और उससे यज्ञ हुआ। जिस प्रकार पशुजन्य घृतादि से होम होता है, उसी प्रकार आग्नेय पदार्थ जहाँ होम की सामग्री हो वहाँ अग्निदान यज्ञ होगा।

‘अग्निर्वाश्रव’ अग्नि ही को अश्रव कहते हैं। अश्रव शब्द ‘आशु’ अर्थात् शीघ्रगामी होने से जहाँ घोड़ा आदि पशुओं का वाचक है वहाँ अग्नि विद्युत् शक्ति का भी—क्योंकि उसकी अपेक्षा आशुगामी कोई पदार्थ नहीं। वह इतने अल्प समय में अपना काम कर जाती है कि जिसका अनुमान करना भी कठिन है। विद्युत् के प्रयोग से वायरलेस आदि का आविष्कार अग्नि की आशुगामी शक्ति का साक्षात् रूप में परिचय करा ही रहा है। अत अश्रव नाम्ना अग्नि के समस्त उत्कृष्ट गुणों के अपने शरीर, मन, आत्मा, पुत्र, कलत्रादि के उन्नयर्थ लगाने का काम अश्रवमेध हो सकता है।

शतपथादि ग्रंथों में सम्भवतः इसी प्रकार से अग्नि आदि देवताओं से कार्य लेने वाले राजा को अश्रवमेध का अधिकारी दिग्विजंता माना गया है। वहाँ स्पष्ट रूप में उल्लेख है—

सर्वाः वै देवता अश्रवमेधे अन्वायत्ता तस्माद् अश्रवमेधयाजी सर्वं दिशा अभिजयन्ति—अर्थात् सब देवता अश्रवमेधमे आते हैं अश्रवमेध करनेवाला सब दिशाओंके जीतनेवाला होता है। इसीलिए ‘श्रीवैराट्’, राष्ट्रवै अश्रवमेधः तस्माद्वाप्री अश्रवमेधेन यजेत्’ आदिसे स्पष्ट है कि ऐश्वर्य ही राज्य है, राज्य ही अश्रवमेध है और सम्राट् ही अश्रवमेध करे।

विद्वान् लोग और भी प्रकार मनन और विचार पूर्वक यज्ञ के विविध रूपों की सिद्धि कर सकते हैं। और सब वेद के उपयुक्त नैसर्गिक नियम के अनुसार ही, अन्यथा नहीं। —

खेल

(लेखक—श्रीप्रो० सु शीरामजी शर्मा ‘सोम’ एम. ए.)

खेल क्या खेलोगे तुम आज ?

देश के ओ प्यारे युवराज !

तुम्हीं बड़े भागत की आस !

तुम्हीं हो खास तुम्हीं प्रखास ॥

देश गौरव के बल विश्वास !

तुम्हीं में संघित आत्म बकास ॥

तुम्हारे हाथ बचेगी साज !

खेल क्या खेलोगे तुम आज ?

कभी केराखिया भगवा वस्त्र !

तुम्हीं ने धारण किये सरास्त्र ॥

कभी पीताम्बर धर सचेत्र !

हुये हाथों में शोभित भस्त्र ॥

सजते हो अब कैसा साज ?

खेल क्या खेलोगे तुम आज ?

चलायें तुमने तीर कमान !

कान तक तान अचूक निशान ॥

पटा, परिषा, रवजर, खर शान !

कुन्त करवाल विविध विध बान ॥

कहाँ बह आग ? कहाँ बह गाज ?

खेल क्या खेलोगे तुम आज ?

खिलौने खेल खेल पेमेल !

वहाने हे विपम विष—जेल ॥

बसाई जेल यातना मेल ॥

मुक्ति की मिली न कोई मेल ॥

पाप का रहा विपाक विराज !

खेल क्या खेलोगे तुम आज ?

सूट धारण कर भर भर माँग !

पाउडर लेख सजाये साँग ॥

बैबमिन्टन टैमिस की माँग !

भुलाती रजत वहाने साँग ॥

अरे, झोड़ो बह स्वाँग समाज !

खेल क्या खेलोगे तुम आज ?

देश के ओ प्यारे युव राज !

वेदों में मनुष्य आयु पर विचार

(ले०—श्री प० गोकुलचन्द्रजी दीक्षित)



ध्या में जो मंत्र आते हैं उनमें परम प्रसिद्ध मंत्र कि जिसमें प्राणी परमात्मा से प्रार्थना करता है कि—

“परयेम शरदः शतम्”

अर्थात् परमात्मन् । मैं सौ

वर्ष पर्यन्त जीवित रहूँ। यहा

यह भी विचारणीय है कि वेद ने वर्षों के वारह मासों में से न तो सौ वसन्तों का वर्णन किया न शीष्म अथवा वर्षा का किन्तु सौ शरद का वर्णन किया कि भगवन् हमें सौ शरद देखने को मिले। पाणिनि आचार्य भी “श्राद्धे शरदः” सूत्र ही प्रवचन करते हैं यद्यपि शरद ऋतु में न तो पिएड पितृ यज्ञ न आयुनिक श्राद्ध ही होते हैं यहाँ सौ शरद का वर्णन वर्षा, शीष्म अथवा वसन्त का ही अनुकीर्तन मात्र है क्योंकि वर्ष के वारह मास में यदि किसी भी मास का नाम वेदों में आता तो फिर भी यही शंका रहनी सम्भव थी कि जो अब ‘शरद’ के सम्बन्ध में है। वेदों में शारदीय वर्षान रहस्य पूर्ण है। इस विषय में फिर कभी लिखा जावेगा। इसके अतिरिक्त दूसरी प्रार्थना आयुष्य वर्द्धन के लिये और भी है कि ‘रोहेम शरदः शतम्’ कि भगवन् ! मेरे चक्षु सौ शरद तक देखने वाले बने रहें। पुनश्च—

शतं जोष शरदो वर्षमानः शतं हेमन्ताव द्रुतमुव-
सन्तान् । शत मिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषो
हविषेमपुनर्दुः ।

शतमेव मेव शतात्मानं भवति ।

शत मनन्तं भवति ।

शत मेरुर्क्यं भवति ।

शतमिति शतं दीर्घमायु ।

निरुक्तपरिशिष्टभागे

और इसी लिये जीव को यह आर्शावाद दिया जाता है कि त्वंजीव शरदः शतं वर्द्धमानः । आयु वर्ष शतं नृणां परिमितम् आदि भर्तृ हरि के वाक्य

से प्रतीत होता है कि मनुष्य की सौ वर्ष की ही आयु होना विद्वानों को भी अभिमत है।

परन्तु इसके विपरीत एक पक्ष और है कि जिसे प्राचीन ऋषियों से आधुनिक कालीन ऋषियों तक ने विचार की कसौटी पर कसा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ‘त्र्यायुषं जमदग्ने कारयपरय’ इस वेदमंत्र की व्याख्या करते हुये ऋषि दयानन्दने मनुष्य-आयु चारसौवर्षकी मानी है इसी प्रकार यज्ञ परिभाषा सूत्रों में शास्त्र सम्भवा दिति भारद्वाज । ५

अर्थात् भारद्वाज ऋषि यह मानते हैं कि “मित्र विन्द्याऽऽयुष्कामो यजेत” इस वाक्य से ‘कोऽपि दीर्घकाल नैरन्तर्यं संःक्रामा सेवितं मित्रं विन्द्र्यायु पाय मधि मात्र तीव्र संवेगेनानुष्ठास्यति तस्य सहस्त्रा युष्टं’ सम्भ्रतीति भारद्वाज आचार्यो मन्यन्ते’ अर्थात् मित्रविन्दा यज्ञ से सहस्र वर्ष का आयु ही जना भारद्वाज के मत में है। सुश्रुत महर्षि रसायनो द्वारा दश सहस्र वर्ष की आयु ही जाना मानते हैं। (सिद्धनागार्जुन के तन्त्र भी इसी प्रकार के हैं) इसके अतिरिक्त “दिव्यं वर्षं सहस्त्रं” इत्यादि वाक्यों में भी पुरा कल्पीय लागो की आयु सहस्र वर्ष की बतलाई गई है—(कातीय श्रौत सूत्र) । मीमांसा शास्त्र में—

“विप्रतिषेधात्तु गुण्यन्यतरः स्यादिति लातुकायन” लातुकायन ऋषि का मत दिखलाया है और “गुण्यन्यन्तरः” से दिव्य सहस्र वष का अध्ययन गौण मान कर आयु का ही परिमाण परिसंख्या किया गया है और उसमें युक्ति यह दी है कि जैसे कोई कहे कि “सिंहो देवदत्तः” कि देवदत्त सिंह है इसी प्रकार इस भाव का कोई यह अर्थ करे कि “सहस्र वर्ण का आयुष्य नहीं होता” यहां सहस्र संख्या अन्य की द्योतक है तो यह कथन मुख्य न होकर गौण ही होगा क्योंकि ‘देवदत्त सिंह नहीं हो सकता’ अपतु देवदत्त का पुरुषार्थ सिंह बन् होने से नृसिंहत्व का बोधक होगा जैमिनि आचार्य

ने मीमांसा सूत्र ३० अध्याय छः के सातवें पाद मे सूत्र प्रवचन किया है कि—

अर्थवादो वा विधिशेषत्वात् स्मान्नित्यानुवादः स्यात् । अर्थात् अर्थवाद के कारण सहस्रो वर्षों की आयु का कथन है क्योंकि विधि शेषत्वात् (वेद प्रमाण पाये जाने से) इस लिये नित्यानुवादः अर्थात् वेदार्थ का ही अनुवादक अर्थवाद है । अन्यार्थ का विधायक नहीं । तब यह सिद्ध हुआ कि महर्षि दयानन्द, भरद्वाज, सुश्रुत, लाबुकायन और जैमिनि इस बात को अर्थवाद से मानते थे कि सौ वर्ष से भी अधिक मनुष्य की आयु हो सकती है क्योंकि मित्रविन्दादि आयुष्य वर्द्धक सत्रों का वर्णन पाया जाता है जिसमे आयु वृद्धि के उपाय सत्रों द्वारा बतलाये हैं ।

यहां यह प्रश्न उठता है कि वेदों के विरुद्ध क्या कोई यज्ञ हो सकता है ? क्योंकि विधि विधायक मन्त्रों द्वारा ही यज्ञ सम्पादन होता है और विधि मे पश्वेम शरदः शतम् "रोहेम् शरदः शतम्" आदि आदि और भी मंत्र हैं कि जिनमे सौ वर्ष से अधिक आयु के लिये प्रार्थना करना नहीं बतलाया अतः इस पर विचार किया जाता है ।

सब से परिले ऋषि दयानन्द ने पश्वेम शरदः शतम् के हाँते हुये भी 'त्रायुषं जमदग्ने कार्यपस्य की व्याख्या चार सौ वर्ष की आयु परक क्यों की शास्त्र अनुशीलन से यह पता चलता है कि ऋषि दयानन्द ऋषि परम्परा के एक मात्र समर्थक और स्थापक थे उन्हे महाभाष्य में जब पतञ्जलि का ऐसा प्रवचन मिला कि "दीर्घ सत्राणि वर्षा शत द्वानि वर्षा सहस्रकृष्णि च । न चाश्वत्थे करिचद्रुपि व्यवहरति केवल सृष्टि सम्प्रदायो धर्म इति कृत्वा याज्ञिकाः शास्त्रं यानु विदधते" ।

पतञ्जलि ऋषि ने यहां यह स्पष्ट माना है कि अधिक आयु मनुष्य कीन होने से इतने बड़े सत्रयज्ञ मनुष्य नहीं कर पाता अथवा करता इसकी अर्था पति से निरचय होता है कि यदि तीनों काल में जब कभी भी संभव हो और मनुष्य को दिव्य सहस्र वर्ष की आयु मिले तो विधि विधाबक यज्ञ मनुष्य

सहस्र वर्ष पर्यन्त कर सकता है यही नहीं किन्तु पतञ्जलि के विद्यमान समय में सत्रों के आतिरिक्त भिन्न २ यज्ञ भी प्रचलित थे अतः सहस्र वर्ष के आयु की धारणा नितान्त निर्मूल नहीं है ।

काल्यायन के मत से भी यदि जब कभी भी सदस्त्रायुष्य (हजार वर्ष की आयु) मिले सत्र यज्ञ हो सकते हैं । इससे प्रमाणित हुआ कि ऋषि दयानन्द का वचन ऋषि सम्मत है और वेद विरुद्ध भी नहीं क्यों कि सत्र यज्ञ वेदा नुकूल हैं । मीमांसा दर्शन मे यह प्रश्न उठाया गया है कि—

निर्देशाद्वा तद्धर्मं स्यात् पञ्चावच वत् । २८ । ६ । ७

कि आदि सृष्टि के मनुष्यों के भी देह भौतिक पांच तत्वों के बने थे । और अन्य धर्म भी समान थे कोई अलौकिक सामर्थ्य न थे । इसीलिये "सदा चारेण पुरुषः शत वर्षाणि जीवति" इस प्रवचन में सदाचार से सौ वर्ष तक जीता है आख्यान किया गया है । इसी निमित्त मीमांसाकार "विधैतु वेद संयोगा दुपदेशः स्यात् । २६ । ६ । ७ ।

इस सूत्र में यह लापन करते है कि वेद के सम्बन्ध द्वारा उपदेश पाये जाने से सौ वर्ष की आयु वेद मे विधान की गई है । इसको और पुष्ट करने के लिये वे पुनः उन्हे यह सूत्र बनाना पड़ा कि "सहस्र स्मृत्स्वरं त्रायुषाम सम्भात् मनुष्येषु । ३१ । ६ । ७ । कि सहस्र वर्ष की आयु मनुष्य की होनी असम्भव है इसलिये यहां यह मानना चाहिये कि—

"अपिवा तत्रधिकारान्मनुष्य धर्मं स्यात् ३२ । ६ । ७ । कि यहां अध्यापन मे मनुष्यों का अधिकार पाये जाने से मनुष्य धर्म ही मानना होगा नकि देवादिकों का ।

तब वेद के इस वाक्यों की सौ वर्ष तक हम जीवें अथवा इस प्रति द्वन्दी वाक्य का कि "दिव्यं वर्षं सहस्रं" पर्यन्त हम जीवें का यथार्थ भाव क्या है । केवल यह कि "शत, सहस्र वाची हो ।"

महर्षि कार्ष्णाजिनि ने इसकी मीमांसा करते हुये यह प्रवचन किया कि "स कुलकल्प स्यादिति एकस्मिन्नसम्भवान् ।" कि यहां कुल कल्प अर्थात् दिव्य सहस्रवर्ष अध्ययन मानना चाहिये वह एक कुल का है क्योंकि एक पुरुष में सहस्र वर्ष अध्ययन

संभव नहीं। परन्तु पूर्व पत्र करने वाला शंका करता है कि—

“अपिवा कृत्स्न संयोगा देकस्यैव प्रयोगः स्थान ३६।६।७।” कि कृत्स्न शब्द के साथ सम्बन्ध पाये जाने से ‘एक का’ ही निश्चय सम्बन्ध है न कि ‘कुल का।’ इससे यही मीमांसा की गई कि दिव्य सहस्र वर्षों में ‘वर्ष’ की व्याख्या है कि जिसकी इतनी विव्यता है। वहाँ कहे हैं कि—

सम्बत्सरो विचालिचान्। ३८।६।७।

सम्बत्सर शब्द एक अर्थवाची नहीं, कहीं चन्द्रमा कहीं दिन, और कहीं ऋतुओं का वाचक है। अतः स्थान की योग्यता से ही अर्थ लिया जावेगा न कि गीण। दूसरे यह भी कि—

* अहानिवाऽभि संख्यत्वान्। ४०।६।७।

दिन में सम्बत्सर शब्द वर्तता है। “कुल सत्र मिति काष्णजिनिः।” इस परिभाषा सूत्र से पिता-पुत्र, पौत्र, तथा प्रपौत्र अनेक पीढ़ियों पर्यन्त मनुष्य सहस्र वर्ष के सत्र यज्ञ को कर सकता है यदि ऐसा होना असम्भव हो तो

साम्मुत्थान मिति लौगाक्षिः।

आधा सत्र करके समाप्त कर देवे इस लौगाक्षि आचार्य के प्रवचन से विस्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने इसी आधार पर सहस्र वर्ष के अर्थ को तीन सौ या चार सौ कहा है क्योंकि यहाँ पर सत्रयज्ञ की चर्चा है जो दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त रहनी चाहिये। इसके अतिरिक्त योगियों की अवस्था का भी दिव्य विचार है जो प्राणायामादि ब्रह्मचर्य से चिरायु होते हैं। निष्कर्ष यह निकला है कि वेदों में शत जी वेम शरदः से तात्पर्य केवल एक जन्म में सौ वर्ष की आयु के प्रार्थना करनी चाहिये और कुल कल्प पर्यन्त सत्रयज्ञ के लिये दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा से प्रार्थना करनी चाहिये क्योंकि वेदो-

* यहाँ शावर भाष्य में दिन का सम्बत्सर में वर्तना इस प्रकार माना है कि सूर्योदय से बसन्त, भस्वदिन वर्षा, पूषोदय से ग्रीष्म, बुधने से शरद पक्ष ही दिन में वर्त जाते हैं। यह कातीय श्रौत सूत्र के आधार पर लिखा है।

हि अखिलो धर्मः। और उसमें वर्णित यज्ञ, अध्ययन और अध्यापन कुलकल्प में प्रचलित रहने चाहिये और शतपथ ब्राह्मण में भी एक ही दिन में छः ऋतु बीतने का उही अर्थ होगा कि जो दिव्य सहस्र वर्षों में कुल कल्प का है। और “भूयश्च शरद शतान्” कहने से आयु का अधिक अनियत होना बतलाया अतः कभी कभी किसी किसी का महत्त्वायु होना सम्भव है। क्योंकि काया कल्प विधान सत् शास्त्रों में पाये जाते हैं।

जगन्नाथ चानणरा की सुप्रसिद्ध

अगड़ी चादरें

आर्यमित्र तथा अन्य समाचार पत्रों द्वारा प्रसिद्ध शुद्ध रेशमी सुन्दर मुलायम मजबूत आसाम काशी से भी बढ़िया सूत की एक भी तार नहीं इसलिए पूजा पाठादि के समय भी पहनी जाती है ६ गज लम्बे १। गज चौड़े चादर जोड़े का मूल्य ६) १० मय महसूल काक ना पसन्द हो वापिस नमूने के तौर पर एक जोड़ा ध्रुवश्र मंगा कर देखिए।

जगन्नाथ चानण राम

विभाग न० ५१ लुधियाना पंजाब

आवश्यकता

एक सुन्दर २२ वर्षीय ज्ञान्वानी गौड़ ब्राह्मण के लिए जो कि भी दयानन्द ब्राह्मण विद्यालय काहौर से अन्तिम उपाधी प्राप्त करके, अध्ययन कार्य कर रहे हैं। एक सुन्दर सुशील व सुशिक्षित कन्या की आवश्यकता है। सम्बन्ध ब्राह्मण मात्र में हो सकेगा। पता:-बे० रामलाल आर्य मु० खपरौली जि० मेरठ

हमारे ऋषि का वेदार्थ

(ले०—श्री प० बिहारोलालजी शास्त्री काव्यतीर्थ)

स
प्रम मानव मंडल पर पहले वेद का प्रभाव था, इसके अब अनेक पुष्ट प्रमाण उपलब्ध हो रहे हैं। "भारत से बाहरके देशों में वैदिक कर्म धर्म का ही प्रचार था" इस धारणा के अब अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मिल रहे हैं। परन्तु आज भी प्रत्येक विद्या का प्रयोग मनुष्य अपने सात्विक, राजस, तामस स्वभाव के अनुसार उत्तम मध्यम और निकृष्ट करता है। उसी प्रकार पुराकाल में भी था। आज भी विज्ञान (Science) का उपयोग नरसंहार में भी हो रहा है और मानव उपकार में भी। ठीक इसी प्रकार वेद का प्रयोग दैवी प्रकृति वालों ने शुभ कर्म में किया, और आसुरी प्रकृति वालों ने अशुभ कर्मों में। उदाहरणतः "होइहै सोई जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावहि शाखा ।" इस चौपाई को एक व्यौपारी व्यौपार के उलभनों को जब सोचते सोचते थक जाता है तो मन को विराम देने के लिये बोलता है। तात्पर्य यह कि तेजी मन्दी जो कुछ होगी देखी जायगी। अब कौन माथा पची करे। एक किसान पकी हुई खेती के समय आकाश को घटाओ से आच्छादि देख कर भी यही चौपाई पढ़कर चिन्ता से छुटकारा पाना चाहता है कि जो कुछ होगा देखा जायगा। खेती मारी जाय या बचे मेरा वश क्या है। भगवान् का भक्त अनेक आपदाओं के सहते हुये भी अधीर नहीं होता। और निश्चित करता है मैं तो अपना कर्त्तव्य पाले जाऊंगा आगे भगवान् की मर्जी। परन्तु एक चोर भी इसे पढ़ता है इस आशय से कि चलो अब सेंध लगाओ, लूट का प्रारम्भ करो। जो भगवान् करे सो होगा। गरज यह कि इस चौपाई का प्रयोग अपनी अपनी मंशा के अनुसार भले बुरे सब कर सकते हैं। चौपाई उनको रोक नहीं सकती। चौपाई ही क्या, ईश्वर तब का ताम अछड़े बुरे सब कामों में ले लेते हैं। परन्तु

इसमें ईश्वर के नाम का क्या दोष ? ठीक इसी प्रकार वेदों का विनियोग देव दानव सब ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार किया। धार्मिक आर्यजनों ने अपने लोक हितकारी कामों को वेद मंत्र पढ़ पढ़ कर किया और अधर्मी राक्षसों ने अपने हिंसामय स्वार्थपूर्ण काम, वेद मंत्र पढ़ पढ़ कर किये। आर्य भगवान को करुणा बरुणालय जान भगवान को प्रसन्नता के लिये सर्वभूतों की कल्याण कामनों से यज्ञ करते रहे, और राक्षसों ने अपने इष्टदेव को भी अपने समान क्रूर मानकर हिंसामय कामों से उसे रिझाना चाहा, और अपने अपने कामों को करते रहे वेद मंत्र पढ़ कर। इनके अपने अपने धर्म गुरुओं ने उनकी रीतियों को क्रम बद्ध किया और देवता व राक्षसों की यही अलग अलग पद्धतियाँ हो गयीं। यज्ञ दोनों करते थे मगर देव हिंसा रहित और राक्षस हिंसा सहित। वेद मंत्र दोनों पढ़ते थे एक समक बूझकर एक अन समक। धीरे धीरे दोनों प्रकार के लोगों में मेलजोल का परिणाम यह हुआ कि एक दूसरे की यज्ञ विधियाँ गड़बड़ हो गयीं। वेद के ज्ञानात्मक प्रचार के कम हो जाने से वेद को केवल यज्ञ में पढ़ने की पुस्तक मान लिया गया। उसके अर्थ की उपेक्षा कर दी। बस यही से ब्राह्मण ग्रन्थ और सूत्र ग्रन्थों में हिंसा का विधान हुआ। देवताओं की विधि निर्दोष पढ़ गई और राक्षसों की विधि बल पकड़ गई। वेद के अर्थ के पीछे मनुष्य नहीं चलता था किन्तु मनुष्य की रीतियों के पीछे वेद दौड़ने लगा। वेद के अनुसार ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थों को चलने की ज़रूरत नहीं रही। किन्तु सूत्र ग्रन्थों और ब्राह्मण ग्रन्थों का अनुसरण वेद का करना पड़ा। "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्तः (मित्र की दृष्टि से प्राणी मात्र को देखे) का उपदेश देने वाले वेद केवल हिंसापूर्ण यज्ञों में माने के गीत रह गये। "राज्ञो भवंतु रिपवो शं चतुष्पदे की प्रार्थना सिखाने वाली भगवती श्रुति पशुओं की हत्या कराने वाली बना डाली गयी" कहाँ

तो "गो मा हिंसीरिति विराजम्" यजु० १३।४३ का उपदेश और कहीं गोमेध मे गोबध" कहीं तो गौ को वेद अधुन्या बतलावे और कहीं याज्ञिक लोग गोबध करावे"। अथर्ववेद का खड १० । अ० ५ सूत्र १० मंत्र ११ में अण्वा शब्द पढ़ा हुआ है। परन्तु श्रीसायणाचार्य जी इसी सूक्त पर लिखते हैं "आघायताम्, इति सूक्तम्, आहुत्यर्थं गोबधे विनियुज्यते"। शिव शिव आर्यजाति राक्षस बन गयी।

† येनामन्दमरन्दे दलद्वरविन्दे दिना यनाधिषत ।

कुटजे खलु तेनेहा तेने हा मधुकरेण कथम् ॥

अध्वर (हिंसा रहित) जिसका नाम वेद ने बताया वह यज्ञ हिंसामय बन गया। दयामयी यज्ञ-स्त्री सुनागृह (कसाई खाना) हाँ गयी। ऐसे समय में जो भाष्यकार हुये वे ध्रम में कँप गये। सर्व शास्त्र निष्पन्न होते हुए भी वे तार्कालिक यज्ञ विधियों में ललभ गये। हिंसा-विधायक सूत्र और ब्राह्मण ग्रन्थों के रोष में आकर इन्होंने वेद के अर्थ को इनके अनुसार कर डाला। हिंसाप्रिय याज्ञिकों के सूत्र जाल को ये न काट सके। विद्वत्मान्य स्वर्गीय श्री सत्यव्रत सामश्रमीजी ने ठीक ही लिखा है—

‡ वस्तुतो ध्याताच्छन्न विज्ञानकालिकानामशेष

श्रीमुषीनामपि तेषां सायणमहीधरादीनामधि

देवतार्थ तोऽपि मंत्रामिप्रेत प्रकृतविज्ञान नैवस्फुरितं

सम्यगितितकञ्चोच्यमेवाभवत् १ ऐतरेयालोचन १८९॥

भी सायण महीधर से सर्व मंत्र विद्वान् तो वेद के अर्थोद्धार की कामना करते हुए भी वेद के जिस सार्थ को प्रकट न कर सके उसे अपने विवारात्मक सपोषल से ऋषि दयानन्द प्रकट करने में समर्थ हुये। नीचे एक मंत्र दिया जाता है जिससे पाठक जान सकेंगे कि वेद का हमारे ऋषि ने वास्तविक अर्थ कैसी भली प्रकार प्रदर्शित किया है।

आर्वते शुन्धामि प्राण ते शुन्धामि चक्षुते शुन्धामि श्रोत्रते शुन्धामि नाभिते शुन्धामि मेरुते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रान्ते शुन्धामि । य० ६।१४

† यज्ञ वगैरेषां अन्तः कुट्टनः तद्वत् भवति ॥

‡ अण्वण्ण से आचक्षुष मरय मे हांमे के काय परम विज्ञान होते हुए भी सायणमहीधरादि वैदिक विज्ञान न जान सकें यह सोच है।

"पशोःप्राणोऽण्डुधति पत्नी मुखनासिके बक्षी कर्णौ नाभि मेरु" पायु पाषाणसंहृत्य वाचन्ते शुन्धामि इति प्रति मन्त्रमिति । का० ६।६।१३

पत्नी पशुसमीपे उपविश्य सूतस्य पशोः प्राणा-न्मुखादीन्यष्टौ प्राणायतनानि प्रति मंत्रं शुन्धति शोधयति अङ्घ्रिः पशुरिति इति सूत्रार्थः ॥ पशुदेवत्वानि, हे पशो अहम् ते वाच वागिन्द्रं शुन्धामि शोधयामि चरन्तिगच्छन्त्येभिरितिचरित्रा पादा एवंत्वदीवानि सर्वेन्द्रियाणि शुन्धामि । —महीधरभाष्य ।

यहाँ कात्यायन सूत्र को मुख्य स्थान देकर महीधरजी ने वेदार्थ को बर्सी और घसीटा है, पर तमारा यह है कि मरे हुये पशु से यजमान पत्नी कह रही है। "हे पशो" मैं तेरे बाणी आदि अंगों और चरित्र अर्थात् पाँवों को शुद्ध करती हूँ। जल से धोती हूँ।

सूत्र ग्रन्थों ने भाष्यकार को बुद्धि का प्रयोग करने से रोक दिया। वरना मरे पशु को यजमान पत्नी से सम्बाधन न कराते। बुद्धिमान विचारे कि क्या मरा पशु सुन रहा है। क्या मौस धोने मात्र को विनियुक्त होने से वेद मन्त्र का कोई गौरव बढ़ेगा ? क्या यह नृशानसतापूर्ण क्रिया में वेद को धर्म पुस्तक सिद्ध होने देंगे ? क्या वेद भगवान् को वामीय मत प्रवर्तक कात्यायन सूत्र के आधीन कर देना उचित है ? अच्छा ऋषि दयानन्द के अर्थ पर विचार करिये तो इस मंत्र के देवता विद्वान् हैं अतः स्वामी जी महाराज ने यह युक्ति शिष्य के प्रति गुरु की मानी है। गुरु का काम है कि शिष्य को ऐसी शिक्षा दे कि शिष्य की बाणी मीठी रहे, प्राण बलिष्ठ रहें नेत्र और कानों की शक्ति बनी रहे, नाभि की क्रिया ठीक होती रहे, ताकि पावन ठीक हो, उपस्थेन्द्रिय गुदेन्द्रिय रोग पीड़ित न हो। अतः उसे सावधान करे और ब्रह्मचर्य की शिक्षा दे। यह विद्वानो का काम है कि बालको को कुटिलो से सावधान रखें और ग्वारिधय रक्षा का उपदेश दे। इसी भाव से ऋषि दयानन्द "चरित्रान्" का अर्थ "व्यवहारान्" करते हैं।

अब खींचा तानी को देखिये कि किधर है:— वाममागी सूत्र का वेद से अनुसरण कराने के लिये

महीधरजी "चरित्र" शब्द का अर्थ पाद (पाँव) करते हैं और ऋषि दयानन्द चरित्र शब्द का लाक प्रसिद्ध अर्थ 'व्यवहार करते हैं तुलनात्मक शब्द (Comparative Philology) की रीति से भी अर्थों पर विचार किया जाय ता चरित्र के लिये अगरेजी शब्द (Character) है c। मिलकर "च" होता है लिखा अगरेजी में भी 'चेरैक्टर' गया। वाला कैरेक्टर गया। यह चरित्र का ही अपभ्रंश है। अर्थ वही व्यवहार के हैं। चरित्र शब्द के अर्थ पाव करने म महीधर जी को खँचातानी करनी पड़ी है, इससे उगल मन्त्र में है। ओषधे त्रायस्व मनश्चिसी, अ पधि = सकारणा करे इसे कष्ट न हो। अब बुद्धिजीवी जन विचारें। क्या घत पशु की आधि रक्षा करेगी? क्या उसको औषधि कष्ट से बचायेगी? ऋषि दयानन्द का अर्थ स्पष्ट है और शिक्षाप्रद तथा वर्दों का गौरव बढ़ाने वाला। वद मन्त्र ने गुरु का कर्त्तव्य बताया कि यह शिष्य को केवल मानसिक शिक्षा ही देकर सतोष न करले। किन्तु उसके आचार की भी रक्षा करे। उसके प्रत्येक इन्द्रिय और अंग मन प्राण तथा बुद्धि को पवित्र बनावे। शारीरिक उन्नति मानसिक उन्नति के साथ आचरण को दृढ़ करदे। यहाँ गुरु शिष्य के प्रति अपने कर्त्तव्य को कहता है, वहाँ मुर्दा पशु के मांस का धोती हुई यजमान पत्नी राग गा रही है। एक पामर पौराणिक ने "पायुन्त शुन्धामि, मेदू ते शुन्धामि, को देखकर मजाक उड़ाया है वह इसमें अरलीलता देखता है। पर कुण्ठित मति वाले इस भाई को यह नहीं मालूम कि शरीर विज्ञान की शिक्षा देने में यह शब्द अरलील नहीं माने जाते। शिष्य और शिष्याओं को गुरु और गुरुवानियों नि संकोच गुप्तेन्द्रियो में होने वाले रोगों और उनके कार्यों से भवभाव कर दिया करे तो बहुत सी बालक बालिकाओं के सदाचार और स्वास्थ्य की रक्षा हो जाया करे मातायें यदि लड़कियों को रजोधर्षक समझ रखने वाली सावधानियों को बतला दिया करें तो बहुत सी लड़कियाँ प्रदर का शिकार होने से बच जायें। गुरु लोग यदि विद्यार्थियों को मिथ्या लज्जा को छोड़कर नववीचन के प्रारम्भ में सावधान कर दिया करें तो अनेक नवयुवक कुटुंबों से बच र

अपने स्वास्थ्य को बना सके। प्रमेह का रोग बहुत उल्लूक जाता रहे। ऋषि दयानन्द ने इस विषय में सत्यार्थप्रकाश में कई जगह सावधान किया है और यही सावधानी वेद मन्त्र सिखाता है। यह है ऋषि दयानन्द की वेदमर्मज्ञता।



श्री प० धुरेन्द्रजी शास्त्री न्यायभूषण
आजकल आप महाराज कुमार शाहपुरा को
धार्मिक शिक्षा दे रहे हैं।

शास्त्रोक्त और उत्तम हवन सामग्री
बनाने वालों का एक मन्त्र
कारखाना

स्थापित सन् १८८२
सीताराम आर्य्य ऐपदसन्न धूमस मिश्री वाले
लाहौर

उपहार १९३६ प्रकाशित होगये

पहली नवम्बर तक आर्डर देने वालों को
भारी रियायत

आर्य डायरी हिंदी

हम प्रति वर्ष आर्य संसार के लिए आर्य डायरी प्रकाशित करते हैं। जिसके गुणों से प्रेमी माहक भली भांति परिचित हैं। इस वर्ष भी आर्य जगत् की पूरी जानकारी के लिए रेल व डाक के कानून किराया रेल व माल आदि इसमें दर्ज है। इतना सर्वप्रिय और उपयोगी ह ने पर भी सुनहरी जिल्द के साथ। मुख्य (१) प्रति डायरी। पहली नवम्बर तक लेने वालों के साथ २॥) दर्जन

आर्य कैलेंडर हिंदी

यह कैलेंडर हम ने बड़े परिश्रम से तैयार कराया है। ३६ इञ्च लम्बा और २० इञ्च चौड़ा यह कैलेंडर पांच मनोमोहक रंगों में बढिया आर्ट पेपर पर छपा है। इससे बढिया और सुन्दर कैलेंडर आपको और कहीं नहीं मिलेगा। अंग्रेजी और देसी तारीखे अलग-अलग रंगों में दी गई हैं जिससे इसकी उपयोगिता और भी बढ गई है। कैलेंडर के चारों ओर प्रसिद्ध आर्य नेताओं के चित्र दिए गए हैं। मध्य में ऋषि का तिरंगा चित्र है, यह वंज ऐसी है कि हार्थों हाथ बिक जाए। मुख्य) प्रति कैलेंडर, पहली नवम्बर तक लेने वालों को २॥) दर्जन।

कैलेंडर— मोटी तारीखों वाला भी छपा जायगा, जिसके बीच में एक तीन रंगी तस्वीर होगी जिसमें भारतमाता को द्यकङ्को लगी हुई होंगी और स्वामी दयानन्दजी वेद के प्रकार से उसे ताड़ रहे हैं, साथ ही महात्मा गान्धी भी उसी रास्ते का अनुकरण कर रहे हैं। कीमत ३) प्रति कैलेंडर, पहली नवम्बर तक लेने वालोंको १॥) दर्जन।

मिखने का पता—**राजपाल एण्ड सज़**

कार्य पुस्तकालय सरस्वती आश्रम अनारकली लाहौर

गृहदेवियों की प्रवृत्ति

(ल०—श्रीमती रूपकान्तादेवी आर्योपदेशिका)



र्य शास्त्रों में गृहिणी को घर की लक्ष्मी बतलाया है और उसका कतव्य गृह कार्यों का सम्पादन है। परन्तु आज पारिचात्य सभ्यता के प्रवाह में पड़कर जहाँ पुरुष स्वयं अपने कर्तव्य पथ से प्रयत्न हा गये हैं। वहाँ स्त्रियों क अन्दर से भी अपनी रही गयी सभ्यता और शिक्षा का लाप



लेखिका

होता हुआ दिखाई दे रहा है। यह क्या कम शोचनीय अवस्था है कि जिन आर्य कुलललनाओं ने अपने सर्त्तरव, अपनी प्राचीन मान मर्यादा, आर्य सस्कृति और सभ्यता को मुसलमानी समय में भी वीरता पूर्वक आतातायियों से सुरक्षित रखने में भी अपनी सफल सागर्य्य दिखाई थी वहाँ आज पारिचात्य

सभ्यता की छाप बड़े वेग के साथ प्राचीन सस्कृति के ठेकेदार आर्यसाम्राजियों के घरों तक में विदेशी वष भूया और शिक्षा के रूपमें घर करती दिखाई देरही है। मुझे ना यह कहने में तनक भी संकोच नहीं जो गृह देवियों आज से कुछ दिन पूर्व गृह स्वामिनी बनी हुई थीं आज पारिचात्य सभ्यता के अनुकरण में गृह कार्य को गह्रित समझ कर पराई नौकरी बजाने में अपना भाग्य और कल्याण समझ रही हैं। मानाकि आज हमने परिचम के अनुकरण में आचरणाकताएँ इतनी बढ़ाला हैं कि स्त्रियों के बिना कुछ कामप गृहस्थ की गाड़ी चलना असम्भव प्रतीत होता है। परन्तु इसमें भी दोष किसका? एक समय था जब स्त्री के धनोपाजन को हमारे यहाँ घुणित कहा जाता था, यहाँ तक कि माता पिता के दिए हुए स्त्री धन को पति अथवा उसके कुटुम्बी कभी अपने काम में न लाते थे। परन्तु आज यह अवस्था है कि स्त्रियों से जगह जगह नौकरी कराई ज ती है और स्त्रियों को गृह लक्ष्मी के स्थान पर कार्यालयों में लूका बनाने का प्रयत्न किया जाता है जिसका स्वभाविक परिणाम यह हो रहा है कि भारत का भविष्य सभालने के लिए जाति के अन्दर उपयुक्त सतान नहीं बन रही है जिन माताओं ने अपने घरों में रह कर गृह देवी कहलाकर अपने घर को स्वयं सभाला, उनकी सताने राम, अर्जुन, कृष्ण, दयानन्द आदि बनीं। क्या जो माताएँ अपनी सतान के सभालने आदि गृहस्थ के संधालन का भार पुरुषों पर अथवा वैतनिक सेवकों पर छोड़कर घर से बाहर के कामों में जुट पकी हैं, क्या यह सम्भव है कि उनकी सताने कभी देश और जाति का कल्याण कर सकेंगी। क्या परतन्त्रता के वातावरण में पत्नी देवियों की सतान कभी भारत को स्वतन्त्र कर सकेगी। इस प्रश्न पर बड़ी गभीरता पूर्वक देश के सच्चे हितैषियों को विचार करना चाहिए।

खरी बात

आर्य बन्धुओं के प्रति
(रचियता श्री कर्णाकमित्री)

x

(१)

जारहे किधर आर्यवर ! आप,
होरहा है कितना अपलाप ?
कजिये इस पर गहन विचार;
भाव निज रखते हुए उदार ॥

(२)

आपका प्यारा आर्य्य—समाज;
खोरहा अपना गौरव आज ।
आपही इसमें कारण एक;
आप इसका रखते न विवेक ॥

(३)

आप करते हैं वेद—प्रचार;
चरित का करते हैं न सुधार ।
आपमें दल—बन्दी का रोग;
इसे कटु अनुभव करते लोग ॥

(४)

आपका सामाजिक सत्सङ्ग;
ही गया है विवाद का अङ्ग ।
आप वह करते हैं व्यापार,
कि जिससे होता कष्ट अपार ॥

(५)

आपके साथ वही हैं लोग,
कि जो करते कटु नीति प्रयोग ।
आपके भाव नहीं वे आज,
कि जिससे फूले—फले समाज ॥

(६)

नहीं वह आज आपकी ताल,
नहीं वह आज आपका मोल ।
दूर हैं आप च्येय से आज,
नाम ही के हो आर्य्य—समाज !

(७)

आपकी हैं विधवा व्यापार
आपके हैं अनाथ पीवार ।
कहें क्या इससे भी विरुष्ट,
इसे कह कर होता है कष्ट ॥

(८)

आपके पद लिपना के भाव,
आपका घटा रहे सुप्रभाव ।
आप लड़-लड़ आपसमें आज,
खो रहे हैं समाज की लाज ॥

(९)

आप हैं प्रायः अनय प्रधान,
आप में है कौटिल्य महान ।
आपके कलुषित सारे कार्य्य,
आप कहलाने ही के आर्य्य !

(१०)

आप रखते जैसा उद्देश,
आप करते जैसा उपदेश ।
आपके लिए एक वह बात,
आप होते इतने ही ज्ञात ॥

(११)

आप अपने ही शोभाघाम;
आप अपने ही हैं प्रिय राम ।
न इससे कोई भी उपयोग;
आप पर हँसते हैं सब लोग ॥

(१२)

आपने बिराद्री को आज;
बना रक्खा है आर्य्य समाज ।
इसीसे अन्नरङ्ग बहिरङ्ग;
आपका ही है सुन्दर अङ्ग ॥

वेद और पार्थिव गतियाँ

(ले०—श्री ज० लक्ष्मणसिंह गुरुकुल काँगड़ी)



यँ समाज के दृवीय नियम के रूप में ऋषि का कथन है वेद सब सत्य विद्याओं का मूल है। ऋषि की मृत्यु के पश्चात् आज उसके इस कथन की सत्यता का हमें भी अनुभव हो रहा है। वास्तव में वेद विद्याओं की खान है। इस खान को जो मनुष्य

जितना दत्तचित्त हो कर परिश्रम से खोदेगा उसे उतने ही ज्योतिष रत्न प्राप्त होंगे। यह हमारा दृढ़ विश्वास है। इतना होने पर भी हमारा ऐसा विश्वास है कि वेदों का ज्योतिष के साथ विशेष सम्बन्ध है। यही कारण है कि वेद के ६ अंगों में तर्कों कृष्ट स्थान ज्योतिष को ही प्राप्त है। जैसा कि कहा है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पथ पृथ्वे
ज्योतिषामयनं चक्षु निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्
तस्मात्सांगमधीत्यैव ब्रह्म लोके महीयते ॥

अर्थात् वेद रूपी शरीर के पैर छन्द शास्त्र हैं, हाथ ब्रह्म हैं, चक्षु ज्योतिष है, निरुक्त कान हैं, नासिका शिक्षा है और व्याकरण मुख स्थानीय है। इन्द्रियों में सब से मुख्य इन्द्रिय चक्षु है और उसी का स्थान ज्योतिष को मिला है।

ज्योतिष के सब सिद्धान्तों का, इस लेख में विचार करना कठिन ही नहीं असम्भव है अतः हम प्रस्तुत लेख में केवल पृथ्वी की गतियों के सम्बन्ध में ही विचार करेंगे।

प्रत्यक्ष प्रमाण से तो पृथ्वी स्थिर दिखलाई देती है किन्तु इस वैज्ञानिक युग में इसे स्थिर नहीं माना जाता। ज्योतिष (Astronomy) की किसी पुस्तक को उठाकर देखिये वहाँ लिखा होगा। यह पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूम रही है और एक साल में इस चक्र को पूरा कर लेती है। इसके साथ-साथ यह अपने अक्ष पर भी घूमती है। * पृथ्वी की ये दो गतियाँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि इन्हे बच्चा भी स्वीकार करता है।

* It revolves round the sun along a vast orbit that it accomplishes in a year And while it thus glides along the lines of solar attraction, the terrestrial ball rotates rapidly upon it self in twenty-four hours (Astronomy For Amateurs P 215 216.

(१३)

आप जब करते कोई बात;
यही उससे तब होता ज्ञात।
आप है विनयावनत महान;
आपही सच्चे आर्य्य निदान।

(१४)

किन्तु जब खुल जाना है भेद;
हृदय को होता तब अति खेद।
आप रखते हैं रूपा विचित्र,
न उस का खिच सकता है चित्र।

(१५)

आपके जीवन में न विकास;
आपके हृदयों में न उजास।
आपका रूपा और से और;
आपके झूठे तीनों ठौर।

(१६)

आप जब अप्रिय सभी प्रकार;
आपका जब अनार्य्य परिवार।
आप तब क्या रखते अधिकार ?
कि हो घरघर भर वेद—प्रचार।

(१७)

आपका तभी आत्म सम्मान;
आपका तभी कहीं उत्थान ?
कणें जी ! हों जब आप विनीत;
हृदय के कोमल, इन्द्रिय जीव ।

इन दोनों गतियों को क्रम से Revolution और Rotation कहते हैं। किन्तु इस समय पृथ्वी की एक और गति स्वीकार की गई है जिसे अग्रजों में Precession कहते हैं। अर्थात् पृथ्वी का अक्ष भी घूम रहा है। वैज्ञानिक परिभाषा में इसको यों कहेंगे कि पृथ्वी क्रान्ति वृत्त के साथ कोण बदलती रहती है।

अब हमें यह देखना है कि वेद इस विषय में क्या कहता है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मन्त्र है—

आयं गौः पुरिन रकमीदसदन्मातर पुर
पितरं च प्रथन्त्व ॥ ऋ. १०. १८६. १।

प्रस्तुत लेख में हम आपका ध्यान मंत्र के चार शब्दों पर खींचना चाहते हैं। वे ये हैं:—

१. गौ

२. अकमीत्

३. असदन्

४. प्रयन्

सब से पूर्व हम प्रयन् और अकमीत् पदों पर विचार करेंगे कि इनका क्या अर्थ है और ये किस लिये प्रयुक्त हैं।

प्रयन्—यह शब्द यहाँ पर गो (पृथ्वी) का विशेषण होकर प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ है चलते हुए। अतः मन्त्रार्थ इस प्रकार हुआ 'चलती हुई पृथ्वी आगे पैर रखती है (प्रयन् गौः अकमीत्)। यदि पृथ्वी अपने आप किसी और प्रकार की गति अक्ष पर घूमने की गति न कर रही हो तो मन्त्र में 'अकमीत्' पद पढ़ने पर 'प्रयन्' से सूचित होने वाली गति से भिन्न है। अतः यह ज्ञात होता है कि पृथ्वी में अपने आप एक गति है जिसे अक्ष पर घूमना कहिये, चाहे Rotation कहिये। वैदिक परिभाषा में पृथ्वी की इस गति को 'प्रयाण' कहा गया है।

अकमीत्—यह शब्द वेद मन्त्र में क्रिया रूप में प्रयुक्त है। इस संपूर्ण मंत्र में दो क्रियाये हैं, १ अकमीत् और २ असदन्। असदन् का विचार पीछे करेंगे। 'अकमीत्' शब्द 'कम्' पाद विच्चेपे' धातु से बना है जिसका अर्थ है आगे पैर रखते हुए चलना। यह क्रिया 'गो' विशेष्य के लिये प्रयुक्त हुई है अतः मन्त्रार्थ इस प्रकार हुआ—प्रयाण करती हुई पृथ्वी आगे

आगे पैर रखकर चलती है। इससे यह ज्ञात हुआ कि जहाँ पृथ्वी में प्रयाण गति है वहाँ उसमें एक और गति है जिसको सूर्य के चारों ओर घूमना कहा है अग्रजों में उसी को Revolution तथा वैदिक परिभाषा में उसे 'आक्रमण' कहा गया है।

गौ—इस मन्त्र में ध्यान देने योग्य तीसरा शब्द 'गौ' है। यद्यपि पृथ्वी का प्रयाण (Rotation) और आक्रमण (Revolution) बतलाने को वेद में प्रथक प्रथक दो शब्दों का उच्चारण किया है। फिर गति निदर्शक तीसरा 'गौ' शब्द पढ़ने की क्या आवश्यकता थी? 'गौ' के स्थान पर पृथिवी वाचों कोई और शब्द पढ़ना चाहिये था ताकि पढ़ने और सोचने वालों को भ्रम न हो। फिर भाषाकारों दृष्टिसे भी अशुद्ध प्रयोग है जैसे एक वृत्त गोल है, यह प्रयोग अशुद्ध है। तो प्रश्न होता है कि यह शब्द क्यों पढ़ा गया है।

यदि पृथिवी में तीसरी गति न होती तो ईश्वर या तो 'गौ' शब्द के स्थान पर कोई और पृथिवी-वाचक शब्द पढ़ता या प्रयन् विशेषण हटा देता। इससे ज्ञात होता है कि परमात्मा का ऐसा पढ़ना इस बात का द्योतक है कि पृथिवी में एक और गति है जिसे गमन कहते हैं। अब ज्योतिर्विज्ञान ने इस तथ्य को पा लिया है कि पृथिवी में एक और 'गमन' (Precession) गति है, अर्थात् पृथिवी का अक्ष भी दिशा बदल रहा है। दूसरे शब्दों में पृथिवी का अक्ष क्रान्ति वृत्त (Orbit) के साथ परिवर्तनशील है।

असदन्—हमारे ज्योतिर्विज्ञान पृथिवी की इन तान गतियों को जानकर हो सन्तुष्ट हो गये। किन्तु हमारा वेद इतने पर भी सन्तुष्ट नहीं होता। वह इससे भी आगे जाता है उसने पृथिवी में एक और गति स्वीकार की है वह है पृथिवी का संसदन।

इसी मन्त्र का चरण है:—

मातरं पुरः असदन्

अर्थात् माता को प्राप्त होती है। पूरा अर्थ इस प्रकार हुआ—गमन करते हुए अपने अक्ष पर प्रयाण करती हुई पृथिवी 'आक्रमण' करता है और माता को प्राप्त होती है।

संस्थारं साधन हैं साध्य नहीं

(ले०—श्री म० श्रीरामजी आगरा)



वि द्यानन्द का आर्यसमाज की स्थापना में प्रमुख उद्देश्य वेद-प्रचार था। उसकी पूर्ति के लिए जो साधन उन्होंने प्रस्तुत और प्रयुक्त किये उनमें एक संस्थाओं का संचालन भी था। स्वयं ऋषि

के समय में पाठशालाओं और अनाथालयों तक की स्थापना हुई, परन्तु वह सब उनके द्वारा आर्यसमाज के प्रमुख कार्य-वेदप्रचार-में सहायता पहुँचाने के लिए। वास्तव में संस्थाओं की स्थापना है भी देश सुधार में एक साधन। यदि उनको ठीक रूपमें सच्चे आर्य नियम और धर्म पूर्वक संचालित करते रहे। इसी लिए समाज ने इस समय तक अपनी शक्ति

यहाँ विचारणीय बात यह है कि माता कौन है ? माता उसे कहते हैं जो निर्माण करती है। अर्थात् माता से, यहाँ पृथ्वी के निर्माता का तात्पर्य है। पृथ्वी का निर्माता सूर्य है, यह सिद्धान्त आज वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं और हमारा वेद भी इसी को मानता है। अतः मंत्र-चरण का अर्थ हुआ पृथ्वी सूर्य को प्राप्त होती है। इससे यह पता लगता है कि पृथ्वी सूर्य की भोर जा रही है, सूर्य उसे खींच रहा है। खिंचते खिंचते यह अन्त में सूर्य में जा मिली और उसी में समा गई। इससे जहाँ पृथ्वी में होने वाली चतुर्थ गति का ज्ञान होता है वहाँ यह भी सिद्ध होता है कि अन्त में, प्रलयवायस्था में यह पृथ्वी उसी सूर्य में जा मिलेगी और इस प्रकार सूर्य का एक भाग बन जावेगा और सूर्य के समान ही इसका स्वरूप भी बनकरा हुआ एक प्रकार का द्रव हो जायेगा।

• But the sun is a patriarch, and each of his daughters has own children (Aston-phy for Amateur P 114)

× विद्यो अने पृथ्वी सूर्यस्य (ऋ० पृ. ८५. ५)

संस्थाओं के संचालन में लगाई और देश में सर्व साधारण के सामने उदाहरण उपस्थित कर दिया। अब हिन्दू भाई अनेक संस्थायें प्रायः उन्हीं नियमों पर चला रहे हैं जिन पर कि आर्य संस्थाएँ चल रही हैं। इसके विपरीत आर्यसमाज की सारी शक्ति आजकल इन संस्थाओं के संचालन में ही लगी हुई है और एक तरह से जो कार्य साधन रूप था वह साध्य वस्तु सा बन गया है। इसका प्रभाव यह हो रहा है कि जो आर्यसमाज के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति के इच्छुक हैं उन्हें यह बात बुरी लगती है, और है भी बात सोलहोआना बुरी लगने की हमने देख लिया कि दूसरे लोग संस्थाओं को संचालित कर हमारे काम में साधन रूप बन सकते हैं तो क्यों न इन संस्थाओं का प्रबन्ध उनको सौंप दिया

पृथ्वी की इसी चतुर्थ गति को वैदिक परिभाषा में 'ससदन' कहा गया है। इसके लिये ऋग्वेदी में अभी कोई शब्द नहीं है। इसका कारण यह है कि वे पृथ्वी की इस गति को स्वीकार ही नहीं करते हैं। इस प्रकार मंत्र के तत्त्व को हम यों बतला सकते हैं—

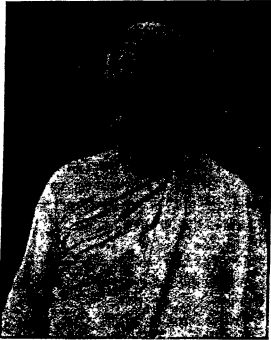
मंत्र शब्द—प्रयत्न, अक्रमीत, गौ, असदत्
पृथ्वी की वैदिक गति—प्रयाण, आक्रमण, गमन
ससदन।

पृथ्वी की विज्ञान से स्वीकृत गति—Rotation
Revolution, Precession

इसके अतिरिक्त भी ज्योतिर्विज्ञान के कई सिद्धान्त इसी मन्त्र से ज्ञात होते हैं। जिनका हम विषय से सम्बन्ध न होने के कारण इस लेख में विचार न कर लेख को यहीं समाप्त करते हैं।

इसी प्रकार यदि वेद के एक-एक मंत्र को हम गम्भीर दृष्टि से देखें तो हमें एक ही मंत्र से अनेक रत्न प्राप्त हो सकते हैं। इसी के साथ हम ऋषि के ऊपर लिखित कथनों को सत्य साधित कर सकते हैं।

जाय और हम आर्य लोग अपनी सारी शक्ति वेद-प्रचार के विभिन्न मार्गों को ठीक करने में लगा दें। इस प्रकार से काम करने से देश और जाति को दुहरा लाभ होगा। एक तो हम अपना हाथ बँटाने वालों का सहयोग प्राप्त कर लेंगे और सामाजिक शक्तियों का जो दुरुपयोग इन संस्थाओं के कारण उत्पन्न हुए वैमनस्य से हो रहा है उसका भी अन्त हो सकेगा। दूसरे हमें और काम करने तथा शक्ति सञ्चय करने के लिए अवसर प्राप्त हो जायगा। साथ ही सभी समुदायों के अच्छे कार्यकर्ताओं की हमारे



म० श्रीरामजी उपप्रधान सभा

साथ वास्तविक सहायता भूति हो जायगी, क्योंकि उन्हें अनुभव हो जायगा कि आर्य पुरुषों को लोकोपकारी कामों को ठीकरूप से चलाना ही अभीष्ट है। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं कि वे हमारे ही द्वारा चलाए जाते हैं या नहीं। ऐसा करने पर आर्य भाइयों को बहुत सा समय आत्मसुधार और वेदप्रचार के लिए मिल जायगा। वैयक्तिक सुधार बिना कोई मनुष्य किर्मी आन्दोलन में पड़कर न उस आन्दोलन को

लाभ पहुँचा सकता है और न अपना तथा अपने परिवार—पुत्रकुलत्रादि का वास्तविक हित कर सकता है। यही कारण है कि बड़े बड़े नामी आर्यों की सन्तान भी आज आर्य नहीं दिखाई देती। यह क्या कुछ कम घाटे की बात है? वर्षों प्रधान मन्त्री रहने वाले लोगों के घरों में आर्यत्व का प्रवेश भी न हो, यह क्यों? इसी लिए ही न कि आर्यसमाज के अधिकारों पर अधिकारी आर्य पुरुषों को स्थान न दिया जाकर संस्थाओं को सहायता देने वाले पुरुषों को प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। और जो लोग भी प्रधान मन्त्री होते हैं उन्हें संस्थाओं के चक्र में रात दिन पंसे रहने के कारण इतनी चिन्ता कहाँ कि वह अपना जीवन अपनी सन्तान के लिए भी अनुकरणीय बना सके? संस्थाओं की चक्रियां आर्यसमाजों के गले में बंध रही हैं और इन्हीं के कारण आर्यसमाजों में जनार्थों का प्रवेश, पारस्परिक कलह, चिन्ता की वृद्धि हो रही है। आज आर्यसमाजों पर प्रायः आर्य नामधारी अनाय अधिकार जमा कर बैठ गये हैं। वे उनके द्वारा न वैदिकधर्म का प्रचार स्वयं करते हैं और न अन्य सच्चे आर्य नवयुवकों को ही प्रचार के लिए आगे बढ़ने देते हैं। इस तरह संस्थाओं को साध्य मानकर आर्यसमाज का भी विपरीत प्रयोग होने लगा है। इससे अधिक और शोचनीय अवस्था क्या होगी?

मेरी आर्यसमाज के वास्तविक कार्यधारों से इस अवसर पर ऋषि की पुण्यस्मृति में अपील है कि अब बहुत समय सोच विचार में न लगावें किन्तु एसा क्रियात्मक कार्य आरम्भ करें कि जिसके अनुसार आर्यों को वास्तविक आर्य बनने का गौरव संसार में प्रेम और वैदिक भ्रातृत्व की लहर बहाते हुए प्राप्त हो। एक बात और फिर समाप्त। वह यह कि जिन आर्यसमाज के अधिकारियों को संस्थाओं के स्वयं संचालन करने में ही हित दिखाई देता हो उनके लिए भी मार्ग खुला हुआ रहे और वह इस प्रकार अपनी वैयक्तिक शक्तियों का उपयोग संस्थाओं के संचालन में उपयोग कर सकते हैं। आर्यसमाज की सामूहिक शक्ति का उपयोग तो उसके मुख्योद्देश्य वेदप्रचार में ही होना चाहिये। साध्य न बनने पावे—यही प्रार्थना है।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधिसभा

लाहौर की ओर से

(दयालबाग वाले श्री आनन्दस्वरूप की पुस्तक यथार्थप्रकाश (भाग ३) का उत्तर
लेखक—प० बुद्धदेव जी मीरपुरी महता सावनमल्लजी

यथार्थप्रकाश की हकीकत (उर्दू)

पृष्ठ लगभग २६० + २० सुनहरी जिल्द सहित मुख्य लगभग ॥३॥
छपगई छप गई छपगई

इस पुस्तक में आर्य सम्राज पर किये गये सब आरोपों के असली और अलजामी दिये हैं
इस पुस्तक को पढ़कर आप राधास्वामिभा का मुद्दा बन्द कर सकेंगे। रामा स्वामी सन्त सगियों को
कठिनाइयों भी हल हो जायगी। शीघ्र आर्डर भेजें नहीं तो दूसरे सस्करण की प्रतीक्षा करना पड़ेगी।

सत्यार्थप्रकाश भाष्य—प्रथम समुद्रालस। ले० श्री वाचस्पति देवयज्ञप्रकाश—ले० श्री वाचस्पति
प० प०। मुख्य ॥३॥ प० प०। मुख्य ॥३॥

Rational Faith in God By Prof Bahadur Mall ji M A Price Re 1 40
Modern Science & ancient Hindu thought with special reference to the
age and end of our earth by P moipal Sam Dass ji 0 1 6
Conversion & Reconversion in Hinduism during the muslim period, by
Prof Sri Ramji M A Price 0 1 0 6

प्रभु प्रेम संगीत—
प० ३)

मूर्ति पूजा सीमासा—ले० प०
बुद्धदेवजी मीरपुर १०० पृष्ठ मू० ३)

ऋग्वेद शतक। यजुर्वेद शतक। सामवेद शतक। अथर्ववेद शतक। ले० श्री अक्षयुतानन्दजी
महाराज इनका इतना प्रचार हुआ कि तीसरे दो सस्करण भी निकल रहे हैं। मू० प्रति गुटका सुनहरी
जिल्द सहित ॥३॥

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—भाग ३। सम्पादक श्री० प० भगवदत्ताजी रिसर्वस्का-
लर। प्रतिभाग २)

अन्य पुस्तकों के लिए सूची पत्र मगाए। लाहौर से जो धार्मिक पुस्तकें चाहिये हमें लिखें
पत्र व्यवहार इस विभाग के अध्यक्ष के साथ करें

महर्षि की आज्ञा

महर्षि ने निम्न पांच यज्ञ तथा स्वाध्याय करने का आदेश किया है, अतः मयङ्गल ने आर्यों के लाभार्थी अनेक आर्य वैद्यों के परामर्श से यह अत्यन्त सुगंधित, सर्वरोग नाशक ऋतुओं के अनुसार वैदिक रीत्यानुसार हवनसामग्री तैयार की है। अब्बल नं० मूल्य १) सेर द्वितीय नं० ॥१) सेर।

आर्य तथा हिन्दुओं के लिये स्वाध्यायी पुस्तकें

विष्णु ध्यानन्द १), वीर जवाहर नाटक १), कुरान मजीद हिंदी १), विश्वासघात १), कुरान में परिवर्तन ॥१), खूनी इतिहास ॥१), भयानक पडयत्र =, स्वामी बहामन्द की हत्या और इस्लाम की शिक्षा ॥१), कुरान की छानबीन १-), हिन्दुओं चेतो ॥२) आर्य जाति की पुकार १-), मलकानो की पुकार १-), खतर का घंटा १-), लेखराम प्रथावली १-), पतित पावन ॥१-), अर्धचंद्र प्रताप ॥१), पंच महायज्ञ पीयूष १-), भीष्म विश्वास १), सुदामा नाटक १-), जबरदस्त जिमीदार १-), सहीब बहामन्द १), भर्तृहरि शतक ॥१)

भजनों की पुस्तकें

बद्धा संकीर्तन १-), भजन संकीर्तन १-), कन्या गीत रत्न १), आर्य भजन कीर्तन १-), प्रेम भजना वली १-), संगलामुखी १-), ईश प्रार्थना १-), संगीत सागर १-), पराकौमुदी १-), धर्मशिक्षा १-), संक्षी देवियाँ ॥१), पोस्टेज व पैकेट प्रथक।

व्यवस्थापक

आर्योपकारक मन्डल कागरील-आगरा।

प्रसिद्ध विद्वानों समाचारपत्रों द्वारा प्रशंसित
मासिक-पत्र

“संजय”

के महाभारत अंक का मूल्य १।) है जो स्थिर प्राहकों को ३-३) वार्षिक मूल्य भेजने पर या वी०पी० द्वारा संगाने पर मुफ्त मिलता है। एजन्टों को भारी कमीशन। नमूना मुफ्त। विज्ञापन के रेट सस्ते।

मैनेजर ‘संजय’ कार्यालय नया बाजार देहली।

भगवान गौतम बुद्ध

६६३॥१॥३॥

६६३॥१॥३॥

(विशुद्ध, संपूर्ण और प्रामाणिक जीवनो तथा पावन उपदेश)

हिन्दू महासभा के सभापति रेवरेण्ड उत्तमा मिश्र के इस अनमोल ग्रन्थ पर राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू लिखते हैं—“मैंने उसे बहुत ही चाब और प्रसन्नतापूर्वक पढ़ा। भगवान् बुद्ध के जीवन का इतिहास दुर्भाग्यवश हम विहारियों को, संचित और परिमार्थित रूप में, मिलना कठिन था। आपने बहुत परिश्रम करके इस अभाव की पूर्ति की है, इसके लिये कोटिश धन्यवाद। आशा है, आपके प्रयत्न से हमारी जनता में बुद्धदेव सबन्धी ज्ञान का प्रसार होगा, और अपनी जन्मभूमि में बौद्धधर्म को लोग फिर से पहचानने लगेंगे।” प्रत्येक देशभक्त हिन्दू को पढ़ना चाहिये। पृष्ठ संख्या ५००; संचित्र, छपाई कागज, उत्तम; जिल्द दर्शनीय; मूल्य २॥)

पता मैनेजर हिन्दू समाज सुधार कार्यालय लखनऊ

हवन कर्ताओं को शुभ समाचार

सफरी हवन हेण्ड बक्स १२ बीजो का पूरा सैट सिर्फ २॥) १० में। आर्य राजा होने से शाहपुरा में यज्ञ हवन का विशेष प्रचार है हमारे यहाँ की संस्थाओं व विद्वानों के आदेशानुसार हवन सामग्री तैयार की जाती है। हवन सामग्री थोक भाव २०) १० मन और महाराजा धूपबत्ती १) १० सेर मिलती है। मार्ग व्यय प्राहकों को देना होगा। अजमेर अर्द्ध-शताब्दी पर आने वाले यात्रियों ने हमारी सामग्री को लेकर बड़ी प्रशंसा की थी। एक बार अवश्यमेव परीक्षा कीजिये। परिमाण से बने हुये तैयार के हवन कुण्ड, छोटे बड़े ऊनी आसन, तपेदिह और प्लेग नाशक सामग्रियाँ भी हर समय तैयार मिलती हैं।

अजमेर में एजेंट सूर्यनारायण एण्ड सन्स केशरगज, अजमेर। जेटमल आर्य सराफ कच्चा चौक, अजमेर।

गोकुललाल आर्य एण्ड सन्स शाहपुरा स्टेट (राजपूताना)

वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद

—: के:—

स्वाध्याय करने योग्य अमूल्य रत्न

आध्यात्मिक पुस्तकें ।

सांग्यदर्शन भाषानुवाद

आस्तिक दर्शनो में महर्षि कपिल प्रणीत सांग्य-
दर्शन का सत्र से अमृत्यान है। मूल्य सजिल्द १॥)

न्याय दश (भाषानुवाद) मूल्य १॥)

वैशेषिक दर्शन (भाषानुवाद) मूल्य १॥)

योगदर्शन, व्यास भाष्य

भाजवृत्ति सहित

पहिले मूत्र फिर उसका पदार्थ फिर भावार्थ
पुन. उसी सूत्र पर व्यास कृत संस्कृत वृत्ति फिर
उसका भाषानुवाद दूसरी रीति पर सूत्र का आशय
यथा सम्भव व्यक्त और सरल किया गया है। मूल्य
अजिल्द ३) सजिल्द ३॥)

दशोपनिषद्

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड गांएङ्कय, तैत्तिरीय, ऐत
रेय और छान्दोग्य वृहदारण्यक इन दश उपनिषदो
पर पंडित बदरीदत्त जी जोशी का किया सरल अनु-
वाद है। इसमें प्रथम श्लोक पुन. उनका सरल पदार्थ
तत्परचात भावार्थ दिया गया है, जिससे मूत्र का
आशय भली प्रकार हृदयगम्य हो जाता है। मू० ५)

छान्दोग्योपनिषद् भाष्याभाष्य १॥)

वृहदारण्योपनिषद् भाष्याभाष्य १॥)

ध्यानयोग प्रकाश

इसमें अष्टांगयोग और उसकी क्रिया का बड़ी ही
उपम रीति से निरूपण किया गया है इसके ले० श्री

स्वामी लक्ष्मणानन्द जी मदा राज हैं, जो योगक्रिया
में पूर्ण कुशल थे। योग का क्रियात्मक अध्ययन करने
के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मू० १॥)

ध्यान की राति मू० १)

मानव धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) मू० ॥)

गीता विमर्श

(लेखक श्री प० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ)

यदि आप महाभारत का सर्ग और भगवद् गीता
का सत्वा रहस्य जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को
एक बार आद्योपान्त पढ़ जाइये आपको सारी महा-
भारत की कथा हस्तामलकवत हो जाइगी। इस किस्म
का भाष्य गीता पर आर्या जगत् में नहीं हुआ है।
मू० १॥)

इतिहास और जीवन चरित्र

श्री कृष्ण का जीवन चरित्र

गीतोपदेष्टा श्री कृष्ण के नाम को भला कौन नहीं
जानना, उनका यह प्रभावोत्पादक जीवनचरित्र
श्रीमान् देशभक्त ला० लाजपतराय की आज्ञास्वनी से
लेखनी से निकला है। मूल्य १।)

छःपति शिवाजी

इस पुस्तक के लेखक श्री भारत-भूषण श्री ला०
लाजपतराय जी हैं मू० ॥२)

दानवीर कर्ण मू० ॥२)

हर्कताराय धर्मो ॥३)

हजरत मुहम्मद साहब मू० ॥)

श्री स्वामी विरजानन्द मू० ॥२)

सिक्कों के दस गुरू मू० ॥१)

बालपयोगी पुस्तकें

बालसस्यार्थ प्रकाश

सस्यार्थप्रकाश के गूढ़ सिद्धांतों को बालापयोगी सरल भाषा में ढाला गया है मू० ॥)

संवात शिक्तक मू० ॥)

बजमिन प्रीक लिन

अमेरिका के राष्ट्रपति महात्मा बेंजमिन प्रीकलिन एक दरिद्र कुल में पैदा हुये थे। अपने पुरधार्य से किस प्रकार इन्होंने अमेरिका का सर्वोत्थपद प्राप्त किया था। इसके पढ़ने से ही ज्ञात होगा। मू० ॥२)

विविन्न ब्रह्मचारी

आखो घनात्मक व ईसाई दुसलमान

धर्म की खरखन पुस्तकें

बिबलला-ले० याजी धर्मपाल ॥२), तर्क इस्लाम १), कुरान की खानबीन १-), वैदिकधर्म इस्लाम १), खतरे का घण्टा २), अल्ला मिया की सुभ्रत १), अल्ला मिया का हुलिया १-), इस्लाम की गण्य १-), दुसलमानी बुर्का १-), फाठ का उल्लू १-), कुरान भाषानुवाद १), ईसाई सिद्धांत दर्पण १२), भोदूजाट व पावरी साहब ३), ईसाई मत परीक्षा ॥), ईसाई मत में मुक्ति असम्भव है ॥), ईसाई विद्वानों से प्रश्न ॥)

अन्य उपयोगी पुस्तकें

देश दिवाकर ।

इस पुस्तक में अगरेजी शायम में जो भारत की जो जो आर्थिक हास और प्रजा की जैसी दरिद्रता और दुर्दशा हुई है, उसका दिग्दर्शन कराया गया है इसके ले० स्वामी भास्करतीर्थजी शारदा पीठ हैं । मू० १)

शुद्धनामावली

“ आज कल नाम रखने की परिपाटी बहुत बिगड़ गई है द्विजों में भी प्रायः बर्णकट्ट और निरर्थक नाम रखने जाते हैं । इस पुस्तक में ३५०० नाम ऐसे

दिये गये हैं, जो भूति प्रिय होने के आतिरिक्त भाव बोधक भी हैं, पुस्तक अति उत्तम है मू० ॥)

आर्य पर्वानखी

आर्यसामाजिकों को बौन कौन से रपोहार और किस प्रकार मानने चाहिये । इसका विवरण देखना हो तो इस पुस्तक को मंगाइये । मूल्य ॥१) स्वर्ग में सबजैकट कमेटी २) ॥, स्वर्ग में महासभा १), कण्ठी जनेऊ का विवाह २), यह तीनों पुस्तकें स्वर्गीय पं० कट्टका शर्मा लिखित हैं । और हाम्यरम पूर्ण हैं । सन्ध्या मंजूम ॥१), नवयुवकों उठो १-), मुकदमेशामी से बचो १-), मुक्ति और पुनरावृत्ति १- ॥, ग्रहण क्या है ॥१), छात्रधर्म १-), नशा निवारक ॥, शिवलिंग पूजा ॥, बकरा विनय १), ईश्वर विचार ॥)

स्त्री गीत मंत्रह

यह पुस्तक बड़े परिश्रम से स्त्रियों के गाने के लिये तैयार की गई है । इस पुस्तक का पहला मंस्करण हजारों की तादाव में छपा और हाथो हाथ बिक गया । अब दूसरा एडीशन बड़ी सजधज के साथ निकाला गया है । टाइल तिरंगे चित्र से चित्रित है, इस पर भी पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ॥१) है ।

श्री शिदा की अपूर्व पुस्तक बालाबोधिनी

(श्री सन्तूला जी कृत)

जिनकी लिखी हुई पुस्तक श्रीसुबोधिनी लाखी की तादाव में बिक रही है, वही इसके सुयोग लेखक हैं । पुस्तक के विषय में अधिक कहना ब्यर्थ है । छोटी छोटी कथाओं से लेकर युवकों तक के लिये प्रथम से ही पढ़ने के लिये लिखी है, पुस्तक बार जिल्दों में समाप्त हुई है। मू० २), १), १-), १) बुकसेलरो को खास रियायत दी जाती है ।

पता:—वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद यू० पी०

भीमसेनी सुरमा

मोतियाबिन्द के सिवाय आँखों के इसके रोगको दूरकरके मज्जर को तेज करता है। भीमसेनी सुरमे से बहुतसे कोमो'की चरमा जगाने की भावत छूट गई है और वे वारीक से वारीक ऊपर पढ़ सकते हैं कमजोर, सुर्खी, सुख्खी, फूला परवाज और रोहे तट होजाते हैं। कीमत तथा रूपया शीशी श्रीमान भर्मावतार गुडकुज स्नातक फार्मेसी देहखी

आपके सुरमे से हरिमल्लजाल हैच कामरेबिल पेन्शनर कामपुर नं० ४२५२१ को ऐनक जगाना छूट गया है तो हमको भी भेज दीजिये।

मगजाचमसाद पात्रपैवी कामपुर।

मैंने आपके भीमसेनी सुरमे का इस्तेमाल किया औरअपनी माताजी को भी कराया। मेरी माताजी बहुत दिनों से सुई में धागा नहीं धाज सकती थी लेकिन आपके सुरमे ने जादू का असर किया, एक ही बार के जगाने से वह धागा पिरोने लग गई।

रामचन्द्रसाद नं० १६० सी० ऐज० टी०

ईकमास्टर काजकाम हाईस्कूल पानीपत

स्त्री सुखदा

श्री रोगों की एक ही दवा है। इससे मरुत यानी सफेद पासी का बहना तथा माहवारी सुखदा में दिनों का कमती बढ़ती होना, कमर, शिर तथा पैरू में दर्द होना इत्यादि रोगों को दूर करदे उनरो। स्वस्थ तथा गर्भ



धारण के योग्य बनानी है मूल्य व दई रूपया।

बिच्छू की दवा

बिच्छू का विष तुलस दूर हो जाता है। ॥ श्री० १-१ ॥ डा० ल० १२ श्री० ४ १ शीशी २॥ डा० लक्ष्मी माक।

दिमाग को तराबट और सर दर्द दूर होता है

॥ श्रीशी।

ब्राह्मीतेल

गुच्छल स्नातक फार्मेसी देहखी नं० २



यदि

आप नया खून, नई ताकत नई जवानी प्राप्त करना चाहते हैं तो तलवार मार्का शर्जत नं० १०० सेवन करें जिसकी पहली

खुराक से ही नस-नस में ताकत की लहर दौड़ जाती है दिल में सरूर आँखों में नूर पैदा होता है। शुद्ध रुधिर पैदा होकर चेहरा कुन्वन की तरह हमकने लगता है, भूख खुलकर लगती है जो खाओ हजम हो जाता है जिस्म फीलाह की तरह मजबूत होकर लोहे की क्षाठ बन जाता है एक बार खरीदकर जरूर परीचा करें मूल्य ४० खुराक की बोटल १॥)

हर ऋतु में सेवन कर सकते हैं, हर शहर के दवा फरोशों से मिलता है

आपके शहर के एजेंट

(१) मेरठ शहर, गरीबदास लक्ष्मीनारायन

(२) हापुड़, किडमस देवासरन (३) बुलन्द शहर, कन्दैया लाल भञ्जुमल (४) मास्टर रोड को अलीगढ़ (५) भूपाल, म०मूल-चन्द फूलचन्द जैन जुमारासी गेट

एजेन्सी के लिये गुप्तारोड कम्पनी टोहाना, जिनिसार को लिखो।

₹५०००) ₹० नकद इनाम जीतिये

	१२	
८	७	ई
	२	

पहिला इनाम ७०००) पहले न० सही उत्तर के लिये ।
दूसरा इनाम ३०००) दूसरे न० सही उत्तर के पर ।
तीसरा इनाम २०००) तीसरे न० सही उत्तर पर ।
चौथा इनाम २०००); २५ प्रश्नों के लिये सही उत्तर पर ।

पाँचवा इनाम ₹००० सिर्फ लड़ी उत्तरवाली महिलाओं को

नियम — ऊपर दिये हुये ख ली खानों को इस प्र र भरों कि त्रिधर से जाड़े पूर हो हो ।

नोट — उत्तर चाहे कितने पाँ हो सब स्वीकार गि, प्रत्येक उत्तर के साथ १) मनीआर्डर द्वारा आना जरूरी है, जिससे बना आपका उत्तर स्वीकार नहीं होगा । उत्तर २५ दिसम्बर तक भेजे जा सकते हैं । न तिजा ३० दिसम्बर को निकलेगा नतीजे के लिये -) का टिकट भेजिये, मैनेजर का निर्णय सर्वोमान्य होगा स ।

मनिआर्डर तथा उत्तर इस पते से भेजिये:—

सेक्रेटरी—“प्रेमी” पब्लिस क्लब, आगरा सिटी ।

आर्यसमाजों आर्य भ्राताओं

के उत्सव, नगर कीसनों के निष्प व नैमित्तिक और सांवाहिक सस्मंगो व कर्म के लिए बा० परमेश्वरीसहायजो बी० ए०, एल०एल०बी०, द्वारा सम्प्रहीत हद से ज्वादा सस्ती और उपयोगी पुस्तक

आर्य-भजन-कीर्तन

क्या इसमे है ? — प्रार्थना मन्त्र प्रातः पठनीय मन्त्र अर्थ सहित, संध्या अर्थ सहित, संध्या अर्थ सहित, दैनिक व सांवाहिक हवन मन्त्र अर्थ सहित, शान्ति पाठ पांचिक यज्ञ, स्वस्तिवाचन, शान्ति प्रकरण, पर्व—पद्धति, शेष तीनों दैनिक यज्ञ, सांते समय के मंत्र अर्थ सहित, ६५ चुने हुये मनोहर, भजन सम्मिलित प्रार्थना अर्थ सहित, प्रातः वचना वली अर्थ सहित और आर्यसमाज के नियम ।

पृष्ठ सख्या १३२. मूल्य ₹)। २५ प्रति का ४।०) और १०० का १६) रु । एक पुस्तक के लिए १-) और २ के लिए १।०) के टिकिट पेशगी भेजे । ५ से कम का की० पी० नहीं भेजा जयगा । २५ व अधिक मंगाने वाले रेलवे स्टेशन वा नाम आवश्यक लिखें ।

पता—दुर्गाप्रसाद आर्य, कान्तिप्रेस, मार्वान, आगरा ।

आर्य भास्कर प्रेस आगरा

में छपाई



आर्यभास्कर प्रेस जिसमें आर्य

मित्र छपता है, संयुक्त प्रांतीय

आर्य प्रतिनिध सभा की सम्पत्ति

है । इस प्रेस मे हिन्दी, संस्कृत

और अंग्रेजी छपाई कर काम

बहुत अच्छा होता है । अनेक

अच्छी-अच्छी कितार्थ बड़ी सुन्द-

रता से छपती रहती हैं । प्रेस के

पास सब तरह के टाइपो कास्टाक

बहुत काफी है । नये कई प्रकार के

उत्तम टाइप भी काम में लाये जाते

हैं । कई मैशिन काम करती हैं ।

भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस

को छपाई द्वारा जो लाभ होता है,

वह किसी व्यक्ति की जेब में न

जाकर सभा को मिलता है । ऐसी

दशा में, सर्वसाधारण-विशेष कर

आर्य और आर्यसमाजों से प्रार्थना

है कि वे आने सब काम भगवान-

दीन आर्यभास्कर प्रेस में ही छपा-

वें । हमारा विश्वास है कि उन्हें

इस प्रेस के कार्य से पूर्ण समतोष

होगा और किसी प्रकार की शिका-

यत का अवसर न मिलेगा ।

—मैनेजर

दीपावली के उपलक्ष में भारी रियायत

(यह सुनहला अथसर केवल पन्द्रह नवम्बर तक रहेगा, इस बीच जो सज्जन अपना पत्र संसार के किसी भी डाकखाने में डालेंगे उनको मेरे औपचारिक निम्नलिखित तब रत्ने पौन मूल्य पर ही जायेगी)

वीर्य-संजीवनी सुधा:— नज्जो ! शरीर में धातु ही उत्तम पदार्थ है। जिन्दगानी का दार-मदार इसी पर है। इसके विगड़ने से अनेक प्रकार के रोग घेर लेते हैं। इसके विगड़ने का मुख्य कारण कुचाल है। इसके सेवन से स्व-नदोष, पेशाब व दस्त के साथ धातु गिरना, शिर में दर्द, चेहरे पर जर्दी आना, आलस्य, नपुंसकता, अजीर्ण और शीघ्रपात इत्यादि समस्त रोगों को नष्ट कर नामर्द से मर्द, हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनाता है। (मूल्यर)

अशोकारिष्ट:— यह सब प्रकार के स्त्री रोग की दवा है। इसके सेवन से सब तरह के प्रदर, मासिक धर्म के दोष, योनि शूल, गर्भाशय का शोथ उबर, रक्तपित, मन्दाग्नि, अर्ध, प्रमेह, सूजन, ऋतु में गड़बड़ी, बाधक, हिम्टिरिया, प्रभृति, बन्ध्या, गर्भाशय के शिथिल हो जाना इत्यादि शीघ्र दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। इससे बन्ध्या स्त्री को भी गर्भ प्रगट होकर ठहर जाता है और कभी नष्ट होने का डर नहीं रहता। मू० १॥)

द्राक्षारिष्ट:— स्वाद्य वस्तु अन्न व फलों में सबसे अधिक शक्ति व गुण तार्क्ष अग्रगं में है। अतः इसमें अधिकाधिक परिमाण में अगूर दी गई है। यह वाजारू व नकली द्राक्षारिष्टों से अधिक गुणकारी है। यह शुद्ध रीति से परिश्रमपूर्वक तैयार की गई है। इसमें स्मरण-शक्ति की कमी, पाचन-शक्ति की शिथिलता, दिमाग तथा हृदय की कमजोरी, स्वास खौसी, स्वरभंग, राज्यक्षमा (ज्ञय), क्षीणता, दुर्बलता और प्रसूता स्त्रियों की कमजोरी, विमारी के बाद की कमजोरी अर्थात् समूल नष्ट करती है। मू० १॥) बोटल ।

नेत्र-सुधा सुरमा:— नेत्र ही जीवन का सुख है। अतः इसकी रक्षा करना प्रथम कर्तव्य है। यह शुद्ध रीति एवं अमूल्य नेत्र उपकारी दवाओं से बनाने के कारण अधिक गुणकारी है। आँखों में लगते ही शीतलता छा जाती है। यह रतौन्धी, कौंच, मौस वृद्धि, पटत्य, आँखों में अंधेरा छा जाना, माड़ा, जाला, धुन्ध, फुली, परवाल, आँखों से पानी बहना, नेत्र का लाल व पीला रहना और आँखों में खुजली होना आदि नष्ट कर आँखों की ज्योति ज्योति बढ़ाता है। मू० १)

महावातारी तैलः— गठिया व वातरोग की अचूक दवा। यह अस्सी प्रकार के वात रोगों को समूल नष्ट करती है। और पक्षाघात गतिभंग, शरीर का कम्प व सुखना, दर्द जोड़ों की सूजन, कमर, पसली और गर्दन का पीड़ा इसके मालिश से निश्चय दूर होता है। मू० ॥)

खांसी की गोलीः— खांसी को पूर्ण रूप से फौसी। इससे सूखी या तर, नई या पुरानी, हर प्रकार की खांसी, जुकाम, श्वास आनन-फानन में चली जाती है। मू० ॥)

हितैषी का बालामृतः— बच्चे, लड़के व प्रसूति के लिये अपूर्ण दवा। यह दवा अत्यन्त ही मीठी है। अतः बालक इसे सुशी से पीते हैं। इससे बच्चों के सब प्रकार के रोग दूर होते हैं। इससे बच्चों का चिद्विद्वाहट, अधिक दस्त होना, खांसी, बुखार, उलटी, पेट का फूलना, सिर का बढ़ना तथा अजीर्ण इत्यादि दूर होकर बच्चे बलवान होते हैं। मू० ॥)

स्त्री-रोग की महौषधिः— देखिये चमत्कारिक औषधि की शक्ति, जिसके सेवन मात्र—स्त्रियों की हर प्रकार की क्षीणता, मासिक धर्म का होने वाला समस्त दोष, पेट या कमर का दर्द थोड़ा या कम, या असमय में मासिक धर्म का हो जाना, ठीक या शुद्ध रक्त का न होना, दुर्बल सन्तति होकर मर जाना व वांछने का दोष इत्यादि समस्त स्त्री-रोगों को शीघ्रता से हटाकर स्त्री हृष्ट-पुष्ट होकर सदैव स्वस्थ रहकर दीर्घायु तथा स्वस्थ एवं बलिष्ठ सन्तान पैदा करने की शक्ति प्रदान करती है। लाखों रोगों पर इस औषधि का व्यवहार हो चुका है। इसकी सहस्रों ने प्रशंसा की है। परीक्षा प्रार्थनीय है। निर्गुण सावित करने वाले को १०००) इनाम। मू० १॥)

स्वेत कुष्ठ की महौषधिः— वे घृणित रोग जीवन को अत्यन्त दुःख-मय एवं हीन बना देते हैं। पर निराश क्यों? चिन्ता नहीं, वह कितना ही विपैला और अधिक दिन का पुराना हो, हमारी जगद्विख्यात औषधि का प्रयोग कीजिये और आप पूर्ण स्वस्थ होते हैं। यह अत्यन्त प्रभावशाली है और तीन बार के प्रयोग से उत्तम फल देती है। फुंसिया नहीं उठती। तीस वर्ष से अधिक से लाखों ने परीक्षा की है। शीघ्र आरडर दीजिये और दुष्ट रोग से मुक्त हूजिये। गलत सावित होने पर ५००) इनाम। मूल्य केवल १॥)

पता—आर्यहितैषी औषधालय,

नं० २६ पो० कतरी सराय, लि० गया।

—: निम्नलिखित भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन से प्रमाणित :—

गुरुकुल कांगड़ी का

च्यवनप्राश

बसन्त, वृश्चि, मघान, रवी व पुराण सर के जिल्द हर मी नम के योग्य चन्द्रिका टांकिक है। हृपवे फेकने मन्त्रन होते हैं, दिल को ताकन मिलती है और शुक तथा बीसों की वृद्धि होती है। कीमन ४) से।
भी मन्त्रमस्ते !

आपका भेजा हुआ १ नी यह च्यवनप्राश ६ माशा सुरमा और २ तोला सत शिलाजीत प्राप्त हुआ। मैंने इनका व्यवहार किया और अत्युत्तम पाया। कृतया दो पी यह भी भेजिये।

म० बी० एम० सू० १०० बाबेरा वृटिश सोसिजि लैंड वाया चयन।

आप से जो च्यवनप्राश मगवन्ना था, वह निहायत फायदेमन्द् साबित हुआ है। कुरया आष सेर और भेजिये।
—एम० एव० प्रसाद् लैंड चीनर, पाकौन रगून।

सतशिलाजीत— कम तोरी, सुस्ती बीर्दोष, प्रमेर, कमर दर्द, आदि के लिए निहायत सुफीद है।
कीमत ३) ६० तोला

द्राक्षारिष्ट— चकन, बर्दजमी, पुरानी काली की मसहर चीपधि। घटावट के बाद हृवे पीने से खरीर
५ मन ताजा हो जाता है। कीमन ११) का आष सेर, ॥) का एक पाव।

भीमसेनी सुरमा

आँसों को बुझ वे तक सुखित करने के लिए 'भीमसेनी-सुरमा' का नियमपूर्वक हृतेमाक कीजिये। आँसों से पानी बहना, लुबकी, कुदरे आदि रोग कुल ही दिनों में दूर हो जाते हैं। कीमत ३) हृपया तोला।

❀ सूचीपत्र मुफ्त ❀

एकबटो को विशेष सुविधा—बड़े बड़े शहरों में सोल एजेंसी के लिए पत्र व्यवहार कीजिये।

पता—आयुर्वेदिक फार्मसी नं०१ गुरुकुल कांगड़ी
(सहारनपुर)।

दुनियां में हलचल सचादेने वाली पुस्तक

आसामी बाङ्गाली तिलसमी राज रेवजानी-करामात

इय पुस्तक में आसाम, बंगाल, नेराल, भूटान आदि प्रदेशों के बिकट जंगली पहाड़ों में साधु महात्माओं से प्राप्त किए हुए ऐसे ऐसे अद्भुत प्रयोग हैं जिनकी प्रत्यक्ष शक्ति से एक बार तो सुदूरों को भी उठाया जा सकता है। कामरूप देश (आसाम) बंगाल और नेपाल की तराई में ब्राह्म और बशीकरव की अद्भुत लीलाओं का निर्गर्जन, तथा उपश्रुति की भी हृद्य नकल ही गई है जिनको जगज्जनों एकपुत्रे भिद्र-महात्मा भूजने छोड़ गए थे और जिसका मतलब हल करने के लिए बिदेशों के कई विद्वान तथा कलकत्ता यूनिवर्सिटी के बहुरासों इतों भाषाओं के बुरम्भर विद्वान पूरुष सर आसुतोष मुकुर्ति को भी विमोग खपाया पवा था। यह पुस्तक नहीं बल्कि भारत के पूज्य महात्माओं की अद्भुत शक्ति का अयकार, हमारों प्राणियों को प्रति वर्ष काळ के मुक से बचावेवाली, निर्यनों को बन्, बाँजों को सन्तान, नामधों को मर्द बनाकर संसार में सब तरह का सुख देनेवाली एक अद्वितीय शक्ति है। हमारा ही नहीं, हमारों का यह कहना है कि ऐसी अद्भुत पुस्तक प्रत्येक घर में रचना चाहिए। न गालुन किस समय आपके हाथों से इसा प्राणियों की जान बचाई जा सके। आज से इन्नों सन्तान ही न बाँकस्री पुरुषों के घर इयके प्रत्यक्ष प्रयोगों से सन्तान की वधाति से जगमगा रहे हैं। आप स्वयं ही कहेंगे कि यदि ऐसे अद्भुत कर्मी न फेज होनेवाले प्रयोगों के हाते हुए मृत्यु कुङ्ग भी नहीं है इय पर भी हमारी यह गारंटी है। पुस्तक आप को ना पसन्द हो तो ३ दिन देकर वापिस कर सकते हैं। इय में बहू कर सपाई की और तथा गारंटी अभी तक आपने फाँडर न दिया हो तो आज ही पत्रजिख में, देर होने से आरभ्य नहीं हो हुये एबीशन का इन्तजार करना पड़े, मूल्य नागरी २) ६० ठावुं पृथिन ४) डाक महसूल ॥) और सप्रवर्ष के ॥) फ्रिचि है। पृष्ठ संख्या जग मग ४०० पृष्ठ हैं।

नोट—मूल्य मनिप्रार्डर से पेशगी भेजने पर ॥) डाक महसूल के माफ, परम्पु, कान पर पता साक २ जिखे।

मैनेजर—इण्डियन स्टोर्स (४) "शिलांग (आसाम)"

गरीबी में। अमीरी
जरूर मंगाइये ??।



बहुत सुन्दर वेड्स यज-
वृत्त कलकत्तो की बना-
वट नये फैशन की सजा-
वट देख कर ही
आश्चर्यजनक घड़ी कहते हैं। इस
के बायलपर "अमङ्क" शीशा लगा
है जिसे हथौरा मारकर भी नहीं
तोड़ सकते हैं। ठोक टाइम वेसी है।
गारन्टी ३ वर्ष। दाम २॥) चेनका
दाम ॥) तीन लेने से डाक खर्च
नहीं लगेगा। इसी फैशन की हाथ
घड़ीका दाम ३॥) अपने इष्ट
मित्रों में इसका प्रचार करके फयदा
उठाइये। सूची मुक्त। पता—जी०
एम० शर्मा, पोस्ट बकमन नं० ६७०६
बदाभाजार कलकत्ता।

प्रदान्तक—तया और पुराना

कैसा भी प्रद हो १५ दिन में
शर्विषा आराम। लाभ न होने पर
दूने दाम वापिस, अधिक प्रशसा
व्यर्थ। दाम १॥) डाक सहित।

प्रमेहान्तक—प्रमेहकी अचूक
महोपधि केवल दिन में विशिष
चमत्कार। लाभ न होने पर दूना
दाम वापिस। अधिक प्रशंसा व्यर्थ
दाम १॥) डाकव्यय सहित।

**आचार्य फार्मसी आर्यनगर
खखनऊ**

ऋषि दयानन्द का उत्कृष्ट स्मारक

सभी लोगों का शिकायत है कि अंग्रेजी भाषा में आर्यसमाज के कोई ग्रन्थ नहीं। क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि ऋषि दयानन्द की मृत्यु को ५२ वर्ष व्यतीत हो गये और आर्य समाज ने ऋषि की एक जीवनी अंग्रेजी में अभी तक तैयार न की। उच्चशिक्षित लोग जो केवल अंग्रेजी की पुस्तकें पढ़ते हैं वह ऋषि दयानन्द से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। केवल कुछ बातों के जो उनके कानों में पड़ गई कि ऋषि दयानन्द एक बड़े समाज सुधारक थे वे कुछ नहीं जानते। समाज सुधार तो ऋषि का एक

छोटा सा कार्य था। ऋषि यदि समाज सुधारक न भी होते तो उनके दार्शनिक सिद्धान्त जगत को चकित करने के लिये पर्याप्त हैं। यह पुस्तक श्री विश्वप्रकाश प्रिन्सिंगल-गल-वीने अथक परिश्रम में लिखी है। इसमें २० अध्याय हैं और ऋषि दयानन्द के सभी पहलू पर बड़ी उन्नतता से प्रकाश डाला गया है। कुछ अध्याय बिल्कुल अनूठे हैं— जैसे आर्य समाज और थियोसॉफिकल मुमाइटी, आर्य

LIFE & TEACHINGS OF SWAMI DAYANAND BY VISHWA PRAKASH B. A., LL. B.

ABOUT 300 PAGES WELL BOUND
Price Rs TWO & As. EIGHT

AN EXHAUSTIVE SURVEY OF HIS LIFE
AND TEACHINGS IN 22 CHAPTERS
THE FIRST BOOK IN ENGLISH
OF ITS KIND

KALA PRESS, ALLAHABAD.

समाज और ब्रह्म-समाज। कर्नल आल्काट के अमूल्य पत्र जो अभी तक किन्हीं हिन्दी की पुस्तक में भी उद्धृत नहीं किये गये इसमें मिलेंगे। पुस्तक की प्रशंसा करना आवश्यक नहीं।

ध्यान दीजिये

(१) अपने लिये एक पुस्तक शीघ्र मंगा लें। स्वयं अध्ययन करें और अपने मित्रों को दे आप को शर्माना न पड़े कि आर्य समाज ने अंग्रेजी साहित्य तैयार नहीं किया।

(२) समाज के मंत्रियों से प्रार्थना है कि एक पुस्तक मंगा कर अपने पुस्तकालय में अवश्य रखें। यह पुस्तक बाग २ न छपेगी।

(६) शिक्षित पुरुषों को इसकी भेंट कीजिये। वे आर्यसमाज के विषय में बहुत कुछ जान जावेंगे।

(४) स्कूल तथा कालिजों के पारितोषिक वितरण के लिये यह पुस्तक उपयोगी होगी।

यह पुस्तक छपनी आरम्भ हो गयी है। दिसम्बर मास में तैयार हो जावेगी। पृष्ठ संख्या लगभग ३००। सुन्दर जिल्द और सचित्र मू० २॥ १ ली नवम्बर तक आर्डर भेजने वालों को २)

पता—कला प्रेस, इलाहाबाद (U. P.)

कहानी-माला की ५ लाख प्रतियां निकल गईं

प्रसिद्ध पत्र **आर्यमित्र** लिखता है—

“प्रयाग के कला प्रेम से यह कहानी माला प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई है। कोई भी ट्रैक्ट / पृष्ठा से अधिक का नहीं है। सब ट्रैक्टा पर, उनके विषय के अनुरूप, शिक्षाप्रद व्यंग्य चित्र भी दिये गये हैं। विषय कहानी के रूप में समझाया गया है। कहानी बड़ी सुन्दर और मरल भाषा में लिखी गई हैं। ऐसे ट्रैक्ट जनता में बड़ी रुचि से पढ़े जाते हैं। समर्थ आर्यसमाजों और सम्पन्न आय पुरुषों का चाहिए कि वे इन ट्रैक्टों की सैकड़ों, सहस्रों काफियां खरीद कर उन्हें सर्व-साधारण में वितरित करें। इस सदुद्योग के लिए श्री विश्वप्रकाश जी बधाई के पात्र हैं।”

मार्गदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान म० नारायण स्वामी जी लिखते हैं।

“मैंने श्रीयुत विश्वप्रकाश जी रचित लगभग २० कहानियों को देखा जो कहानी माला के मिलमिले में कला प्रेम, इलाहाबाद से निकल रही हैं। ये छोटी छोटी कहानियाँ हैं जिन्हे सभी बड़ी दिलचस्पी में पढ़ सकते हैं। कहानियाँ जहाँ एक ओर मनोरञ्जक हैं तो दूसरी ओर शिक्षाप्रद भी हैं जिन्हे बच्चा और कन्याओं के हाथ में बिना सकोच के दे सकते हैं। १) सैकड़ा मूल्य हाने में बड़ी सुगमता से प्रचारार्थ बाँटी जा सकती हैं। इनका खूब प्रचार होना चाहिये।”

“यह कहानी माला नहीं किन्तु **कहानी रत्न-माला** है इनके द्वारा आर्य शास्त्रों के गूढ़ विषयों को हिन्दू तथा आर्य समाजों के गूढ़ तथे तक पहुँचाना हमारा काम है। कोई भी हिन्दू तथा आर्य समाजों घर बिना इसके नहीं रहना चाहिये। वर्षों में हिन्दू तथा आर्य विधियों के सम्मेलनों पर महानुभाव दानवीर अनेक सज्जन मुक्त समाज सुधारक तथा कुरीति निवारक पांथिया बाटने की जरूरत जो अनुभव कर रहे थे वह निसन्देह उक्त कहानी रत्न-माला में यह काम ले सकते हैं। रत्न के डबो में यदि हम उनके बचन वा बाटने का प्रबन्ध कर सकें तो मुसाफिरो का भारी उपकार हम कर सकेंगे।

—आत्माराम अमृतमरी, बड़ौदा

श्री पूरनचन्दजी एडवोकेट भूतपूर्व प्रधान

आर्य प्रतिनिधि सभा, सयुक्तप्रान्त

मेरा छोटा पुत्र जिमकी आयु ८ साल के लगभग है उसने इन सब कहानियों का वडे प्रेम में पढ़ा और वह इनको समझ सका। यह कहानियाँ प्रत्येक परिवार में रखने योग्य हैं और इनका जितना प्रचार हो उतना ही अच्छा है। आपके परिवार ने जो साहित्यिक जगत में वृद्धि की है उसको लज में रखकर यह कहने में कुछ अत्युक्ति न होगी कि ‘ई ग्वाना हया आफ्ताबस्त’।

१) सैकड़ा

॥ प्रति

- (१) गुरु घण्टाल
- (२) शराबी पति
- (३) विधवा की आंखें
- (४) ब ब महादेव
- (५) पण्डों की लीला
- (६) छुआ-छूत
- (७) मरे बाप भोजन

- (८) भूत की लैंगटी
- (९) कन्न के फरिश्ते
- (१०) स्वामी दयानन्दकी कहानी
- (११) स्वा० श्रद्धानन्दकी कहानी
- (१२) धमवीर प० लेखराम की कहानी
- (१३) आर्यसमाज की कहानी

- (१४) शुद्धि की कहानी
- (१५) बुढ़ौती में जवानि
- (१६) गुड़ियों का व्याह
- (१७) शीतला महारानी
- (१८) जादू की पुड़िया
- (१९) हमारा बालबाला
- (२०) धर्म की फरियाद

आस्तिकवाद

[द्वितीय संस्करण]

ईश्वर विषयक सर्वोत्तम पुस्तक।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने (१२००)
का मंगला प्रसाद पुरस्कार दिया
है। मूल्य १)

अद्वैतवाद



शंकर के अद्वैतवाद का
तीव्र विद्वत्ता पूर्ण गण्डन
मूल्य १॥)

जीवात्मा

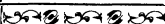


मजिल्द अति सुन्दर ग्रन्थ।
'जीवात्मा' की सारी गुणधियां
सुलभाई गई है। म० ३)

शंकर, रामानुज, दयानन्द

तुलनात्मक अध्ययन

मूल्य १२)



लखक

श्री प० गंगाप्रसाद जी

उपाध्याय

एम० ए०



राजा राममोहनराय

केशवचन्द्रसेन

दयानन्द

तीन भारतीय सुधारकों का
नष्टिकोण म० ॥२)

धम्मपद

महात्मा बुद्ध के उपदेश

मूल्य १)

नई पुस्तक

जा

छुप रही है

सर्वदर्शन संग्रह

[अनुवाद]

मूल्य ॥२)

भाग १ तथा भाग २

प्रथम भाग—ईश्वर के सम्बन्ध में ललित वेद मंत्र उनका अर्थ तथा उनकी व्याख्या
मूल्य ॥)

द्वितीय भाग—अन्य उपयोगी विषया पर ललित वेद मंत्र उनका अर्थ तथा उनकी
व्याख्या मूल्य ॥)

यह पुस्तक सांप्राहिक अधिवेगनों में पढ़ी जाने योग्य है। स्वाध्याय प्रेमी अक्षर्य मंगावे।

वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप

श्री सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, प्रयाग विश्वविद्यालय

इधर समाचार पत्रों में अनेकों गन्धे लेख निकले हैं जिन में वेदों पर अश्लीलता का आक्षेप लगाया गया है। इन लेखों का पढ़कर बहुत में भ्रम में पड़ जाते हैं। विद्वान-लेखक ने प्रबल युक्तियों और अनेक उद्धरणों में यह सिद्ध किया है कि वेदों पर यह आक्षेप नहीं लगाया जा सकता। अवश्य मगा कर पढ़िये। म० ॥>

स्त्रियों के रिश्ते

ले०—श्री विश्वप्रकाश बी० ए० एल-एल बी०
भारतीय गृहों की कलह का एक मात्र कारण वही है कि परिवार के व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों में उदासीन हैं। इस पुस्तक में परिवार के सभी व्यक्तियों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की अच्छी विवेचना की गई है। प्रत्येक गृह में इसका हाना आवश्यक है। रेशमी जिल्द सचित्र पुस्तक का मूल्य १॥)

महिला सत्यार्थ प्रकाश

ले० श्री विश्वप्रकाश बी० ए० एल-एल बी०
जिस प्रकार बाल सत्यार्थ प्रकाश बालक के लिये उपयुक्त था, उसी तरह यह पुस्तक कन्याओं तथा स्त्रियों के लिये उपयुक्त है। इसकी भाषा बड़ी सरल है जिसमें कन्यायें और स्त्रियाँ जा मूल सत्यार्थ प्रकाश का नहीं समझ सकती थीं इसका समझ सकती हैं। यह पुस्तक अनेक कन्या पाठशालाओं में पढाई जाती है। मूल्य ॥)

हृदय के आंसू

श्री विश्वप्रकाश बी०
ए० एल-एल बी० रचित
साहित्यिक कहानियों का
समूह म० ॥)

श्रीमद्भगवद् गीता

श्री विश्वप्रकाश ने इसकी
टीका इतनी सरल की है कि
प्रत्येक व्यक्ति उनको सरलता
से समझ सकता है म० >

The Enchanted Island

by
SATYA PRAKASH D. Sc.
A charming book-
let upon the philo-
sophy of life
As. SIX

पता—कला प्रेस, इलाहाबाद (U. P.)

—: अमृत भस्मातकी :—

रसायन

—>><<—

शीतकाल में सेवन करने योग्य

अत्यन्त स्वादिष्ट ! अत्यन्त पौष्टिक !!

अपरिमये शक्ति वा देनेवाला और अत्यन्त लाभप्रद यह दिव्य
रसायन अत्यन्त गुणगारी और बहुमूल्य द्रव्यों के योग
में तैयार हुआ है इसके दिव्यशुणो पर शीक
कर ही ऋषियों ने इसके नाम में
'अमृत' शब्द जोड़ा है ।

प्रशक्ति (अर्श) बवासीर और प्रदर पर
अत्यन्त लाभदायक है ।

२७ और ३० वर्ष के पुराने अर्श-रागी इसका सेवन कर मुक्त-कण्ठ से इसकी
भरसा कर रहे हैं । शीतकाल के केवल इन बार मासा में ही इसका सेवन किया जा सकता
है, अन्यथा अनावश्यक विलम्ब न कर तुन्त आर्दर भेजिये । मू० ८) सेर ।

प्रयोगशाला गुरुकुल वृन्दावन (मथुरा)

नम्र निवेदन

ऋषि निर्वाण दिवस के समय प्रायः 'भार्यमित्र' सदा ही अपना विशेष रूप धारण करता रहा है। आर्यों के पर्व केवल मनोविनोद और मिष्टान्न भोजन के लिये ही नहीं अपितु सामाजिक जीवन में एक नवस्फूर्ति भरने तथा गम्भीर समस्याओं और भावी कार्यक्रम पर एक दृष्टि ढालने के हेतु भी होते हैं। भगवान की प्रेरणा से इस वर्ष आर्यसमाज को एक स्वर्णावसर अपनी परीक्षा देने के लिये हैदराबाद सत्याग्रह के रूप में मिला था। सन्तोष की बात है कि समाज उसमें अनुत्तीर्ण नहीं हुआ। अतः इस वर्ष के निर्वाण दिवस पर हम अपने सामाजिक जीवन को सत्याग्रह युद्ध में प्राप्त हुई सफलता के प्रकारा में विशेष रूप से देख सकें इसी उद्देश्य से इस वर्ष के ऋष्यङ्क ने हैदराबाद विजयाङ्क का रूप धारण किया है। किन्तु अनेक अनिवार्य कार्यों से इसमें विशेषाङ्क की तक भङ्क नहीं है और इसे विशेषाङ्क के रूप में रखने में हमें सकोष हो रहा है। इस विशेषाङ्क के निकालने का निर्णय बहुत शीघ्रता से किया गया अतः बहुत सी अपेक्षित सामग्री मिल नहीं सकी। फिर भी जिन महानुभावों ने हमारी भर्त्सना पर शीघ्र ही अपने विचार लिखकर भेजे उन लेखकों और कवियों के प्रति हम कृतज्ञ हैं।

प्रबन्ध सम्बन्धी परिवर्तन की तयारी होने तथा महायुद्ध के कारण कागज की महँगी हो जाने से प्रकाशन भी सज्जबज के साथ नहीं हो सका। तथापि जिस उद्देश्य से यह अंक निकाला गया है उसकी पूर्ति अवश्य करेगा इसमें सन्देह नहीं है। प्रेमी पाठकों से अनुरोध है कि वे इसे उसी दृष्टि से देखेंगे।

'भार्यमित्र' सारे जगत् की और विशेषकर संयुक्त प्रान्त के आर्यसमाज की रबास के समान है इसकी रचा सहायता और इसे पुष्ट करना मत्वेक आर्यसमाज और आर्यसमाजी का कर्तव्य है।

अन्त में हम उन लेखकों से क्षमा चाचना करते हैं जिनके लेख देर से आने के कारण स्थान नहीं पा सके अथवा समय पर आने पर भी उन्हें कुछ अन्य आवश्यक लेखों के कारण स्थान नहीं दे सके। परिमित समय और परिमित स्थान के कारण ऐसा करना अनिवार्य हो जाता है। ऐसे सामग्री को साधारण अंकों में स्थान दिया जायगा।

निवेदक

बाबूराम सम्पादक

हमारा अन्तिम निवेदन

सन् १९३६ ई० के समाप्तिकाल में हमने 'आर्य-मित्र' और 'आर्य भास्कर प्रेस' का ठेका लिया था। हमने आर्यजगत् की जो सेवा की उसे आर्य संसार भली प्रकार जानता है। जिन उस्ताहों से हमने 'आर्य-मित्र' और 'आर्य भास्कर प्रेस' को पर्याप्त उन्नत स्थिति पर पहुँचाने के उद्देश्य से इसका ठेका लिया था, बहुत प्रकार के यत्न किये कि हम इस लक्ष्य तक पहुँचें परन्तु ज्यों-ज्यों यत्न किया गया त्यों-त्यों और नये-नये अड़ोंगे लगते गये और भविष्य की उन्नति की आशा, मन की मन में डूबती रही।

चाहते थे कि 'भ० दी० आर्य भास्कर प्रेस' का आमूल नूल नवीभाव हो जाय, उसका अंग-प्रत्यंग सर्वथा नया, तरोताजा हो जाय, परन्तु बेलुपेशन करने वाले मध्यस्थ ने यह पंक्ति लिख दी कि 'प्रेस की कोई वस्तु बेची न जायेगी' इसी आधार पर मनमाना बेलुपेशन कर दिया गया, और हमने प्रेस के अंगों में जीवन डालने की अपेक्षा, सब पदार्थों की वैसी की वैसी रक्षा करना उचित समझा। इसी प्रकार समय समय पर हमे हमारे कार्य में प्रोत्साहित करने की अपेक्षा हमें निराशा करने का यत्न किया गया, स्वयं आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्तर्गत सदस्यों तक ने आर्यमित्र को धका पहुँचाने का यत्न किया और हमारे विरुद्ध बातावरण उत्पन्न किया गया। पहले भी कई बार कागज की मंहगाई आई, इस समय भी कागज का भाव दूना हो गया, सब पत्रों ने मूल्य बढ़ा दिये, परन्तु हमने अनेक प्रकार से घाटा सहकर भी अपने प्राहकों से मूल्य वृद्धि की चर्चा तक नहीं की, स्वयं भारी घाटा सहा, तो भी आर्य

[मण्डल के डाइरेक्टर श्री शिवहरे जी ने उक्त पक्षियों में सभा के सदस्यों पर अनुचित आक्षेप किया है। हम केवल इसलिए कि ठेका छूटते समय ठेकेदार अपने मन की बात कह सके इन पक्षियों को जाने देते हैं—सम्पादक]

प्रतिनिधि सभा को तो किसी प्रकार भी हानि नहीं होने दी।

सम्पादन की दृष्टि से भी हमारा सदा यत्न यही रहा कि 'मित्र' के स्तम्भों में नया जीवन संचार हो, 'मण्डल' ने बीच में बढ़ा अरुद्धा यत्न भी किया, परन्तु आर्य प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के प्रतिकूल आन्दोलन के कारण हमें पुनः अपने नये कार्य पर भी रोक थाम सहनी पड़ी। हमने अपनी शर्तों के अनुसार सम्पादकों पर कभी कोई बन्धन नहीं रखा, वे स्वतन्त्रतापूर्वक 'मित्र' को चाहे जैसा संचालित करते थे, हमने अपनी आर से कभी ऐसा मौका नहीं दिया कि कोई कार्य सभा को स्वीकृत नीति के विपरीत हुआ हो।

इस प्रकार हमने सब प्रकार से आर्थिक हानियाँ सहकर भी आर्य जनता की बड़ी लगन से सेवा की, १६ नवम्बर १९३६ को हमारा ठेके का काल समाप्त होता है, हम उसी सद्भाव से "मित्र" और "प्रेस" का भार श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा के कर कमलों में पुनः सौंप रहे हैं, यदि अवज्ञान में हमसे कोई किसी के प्रतिकूल कार्य हुआ हो उससे उनके चित्त में खेद या मानसी व्यथा उत्पन्न हुई हो तो हम उसके लिए इरबद्ध क्षमा याचना करते हैं, और आशा करते हैं कि आप भविष्य में भी हमारे प्रति सद्भावना बरायेंगे।

मथुराप्रसाद शिवहरे

मैनेजिंग डाइरेक्टर आर्य साहित्य मण्डल-लि०

अजमेर।



सन्यास्रही दयानन्द

सयुक्त-प्रांत के कुछ कार्यकर्ता



श्री डा० कर्णसिंहजी छाकर



श्री रासबिहारी जी तिवारी



श्रीयुत श्रीराम जी भारती



श्री देशराज जी भट्टिकारी

विषय-सूची

विषय

पृष्ठ

१—ईश-प्रार्थना—श्री ज्ञेमचन्द्र 'सुमन'	१
२—आर्यसमाज विजयाष्टक (कविता)—श्री रत्नाकर शास्त्री आयुर्वेद शिरोमणि	२
३—सत्याग्रह और असहयोग—श्री म० नारायण स्वामी जी महाराज	३
४—महर्षि दयानन्द और अहिंसा धर्म—श्री कुं० चांदकरण जी शारदा	४
५—खतरे की घन्टी (कहानी)—श्री ब्र० महावीरसिंह वर्मा	७
६—भाग्यनगर सत्याग्रह—श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी	६
७—दिवाली का प्रसाद—श्री प्रो० ज्ञानचन्द्र जी एम० ए०	१२
८—हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता—श्री आर सी० मसानिया	१३
९—भाग्यनगर में आर्यसमाज का कार्याकल्प—श्री प० रामदत्त जी शुक्ल एम० ए० एडवोकेट	१६
१०—क्या अहिंसा अभाव अस्त्र है ?—श्री प० विहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ	१८
११—आर्यसमाज का कार्या-कल्प—श्री प० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ	२१
१२—बधाई (कविता)—श्री राजेन्द्र वर्मा	२२
१३—विजयी सत्याग्रह और परवान्—श्री स्वा० आनन्द घन जी एम० ए०	२३
१४—अमर आहुति (गद्य-गीत)—श्री कल्याण कुमार 'शशि'	२६
१५—मलखान (कहानी)—श्री विद्यानिधि सिद्धांतारंकार	२७
१६—सफलता—श्री स्वा० सवदानन्द जी महाराज	३०
१७—महान् विजय और महान् भय—श्री प० सूर्यदेवजी शर्मा साहित्यालंकार एम० ए०	३३
१८—चिन्तन (कविता)—श्री कुं० हरिश्चन्द्र देव वर्मा 'चातक' कविरत्न	३६
१९—महर्षि दयानन्द तथा हमारी विजय—श्री बा० श्यामसुन्दर लाल जी एडवोकेट	३७
२०—हैदराबाद आर्य सत्याग्रह की सफलता और उससे शिक्षा—श्री पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति	४२
२१—पथ-प्रदर्शक (कविता)—श्री पं० नागेन्द्र शर्मा 'अरविन्द'	४५
२२—सत्याग्रही दयानन्द—राजगुरु श्री पं० धुरेन्द्रजी शास्त्री	४७
२३—बलिदानों पर भद्राञ्जलि (गद्य-गीत)—श्री 'अम्बेश' माथुर	४६
२४—सत्याग्रह या आत्म शुद्धि—श्री भगवतीप्रसादजी अभ्याषक	५०

२५—सत्याग्रह में गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन का भाग	५३
२६—विजय के बाद—श्री पं० महेन्द्रप्रतापजी शास्त्री एम० ए० एम० ओ एल०	५६
२७—विजय गान (कविता)—श्री 'अन्वेश' माथुर	६०
३८—एक सत्याग्रही श्री सेठ गूजरमलजी का परिचय—श्री डा० महावीरसिंहजी	६१
२६—आर्य सत्याग्रह आन्दोलन में पंजाब का भाग—श्री हितैषी अलावलपुरी	६४
३०—आर्य सत्याग्रह का परिणाम—श्री पं० भगवानस्वरूपजी न्याय भूषण	६६
३१—हमारी विजय—श्री देशबन्धुजी अधिकारी	६७
३२—हैदराबाद सत्याग्रह में आर्यसमाज की विजय क्यों हुई ? —श्री प्रियरश्न आर्ण रिसर्चकालर	६८
३३—हैदराबाद का सत्याग्रह और सयुक्त प्रान्त—आचार्य श्री विश्वनाथ	७२
३४—गुरुकुल महोत्सव और आर्यसमाजों का कर्तव्य	७४
३५—आर्य साहित्य मंडल लिमिटेड अजमेर का भावी कार्यक्रम	७५

खुलती है अब काराबन्दी !

(ले०—श्री सत्यभूषण 'योगी' वेदालकार)

खुलती है अब कारा बन्दी !

प्रहरी चिर अभ्यात करो से

लेकर ताली सूने मन से

खोल रहा है ताला, देखो दुनियों का उजियारा बन्दी !

खुलती है अब कारा बन्दी !

(२)

बाहर आओ अभिनन्दन हो,

कोटि कोटि मुख से बन्दन हो,

देख रहा है उत्सुक नयनों से तुमको जग सारा बन्दी !

खुलती है अब कारा बन्दी !

(३)

तुमने उल्टा मार्ग बनाया,

मुक्ति हेतु बन्धन अपनाया,

जग बन्धन का प्यारा बन्दी, तुमको बन्धन प्यारा बन्दी !

खुलती है अब कारा बन्दी !

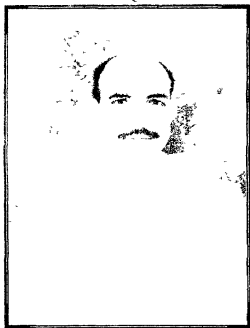
['बन्दी गीत' से]



हैदराबाद सन्यास्रह के द्वितीय सर्वोधिकारी
देशभक्त कुँवर चोटकरणी शास्त्री



हैदराबाद सन्यास्रह के तृतीय अधिनायक
लाला सुशहालचन्द्रजी सुसंन्द



हैदराबाद सन्यास्रह के चतुर्थ अधिनायक
राजगुरु श्री प० भुन्द्रजी शास्त्री

हैदराबाद विभागाङ्क



हैदराबाद सत्याग्रह के पञ्चम सर्वाधिकारी श्रीवृत्त धीरज वेदवतकी वामनरथी ।



हैदराबाद सत्याग्रह के सप्तम सर्वाधिकारी श्री आनन्दजी सिद्धान्तशिरामणि ।

✽ ओ३म् ✽

आर्यमित्र

का

हैदराबाद-विजयांक

वर्ष ४२

✽ दोषावलो संवत् १९६६ वि० ✽

६ नवम्बर १९३६

अङ्क १

४५-४६

✽ ईश-प्रार्थना ✽

ॐ आ संयतमिन्द्र खः स्वस्ति शत्रुत्प्रायं बृहतोममृधाम् ।
यया दासान्यायांसि वृत्रा करो वज्रिन्सुतुका नाहुषासि ॥

अंक० ६१२२।१०

शुचि यज्ञ विज्ञानादि से प्राप्तव्य हो तुम सर्वदा ।

विरवेश ! हम पावें अहिंसा शुद्धता युत सम्पदा ॥

अज्ञानयुत इस विरव को ऐसी अहिंसा दो प्रभो ।

ध्रुव धर्म से युत हो सदा यह 'आर्य' सब संसार हो ॥

—हेमचन्द्र 'सुमन'

आर्यसमाज-विजयाष्टक

(१)

दुर्दम्भ दाहण दुख भेटा देश का जिसने सभी
दुख दीन का अबलोक सुख अपना नहीं समझा कभी
रक्षा सदा करता रहा जो जन्म भू के लाज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(२)

निःस्वार्थ सेवा का जिसे निज गर्भ से हो ध्यान है
कर्तव्य पालन का जिसे निज देश पर अभिमान है
धुन है सदा जिसको अकेले अन्य हित के काज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(३)

होवे जगत् में दासना पर वह सदा स्वाधीन है
उसके विवेक समुद्र का यह विश्व सारा मीन है
प्रतिष्ठा मयी मणि रूप जो है मातृ भू के ताज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(४)

है सार जिसको ही मिला विज्ञान पारावार का
मर्मज्ञ जो है द्रव्य में अद्वैतता के प्यार का
महिमा सिवा जिसके न कोई जानता प्रभुराज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(५)

वलिदान होना जानता जो धर्म के संग्राम में
है नाम की इच्छा न जिसको अन्य हित के काम में
जिसको हटा सकती न पीछे भीति भी यमराज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(६)

अन्यान्य मत जिसको पकड़ अंगुलि खड़े होने लगे
वे बाल्य धी से आज हैं यद्यपि बड़े होने लगे
पर सामने जिसके जगत् की पन्थ माया आज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(७)

गौरव समेत अगम्य जिसका माननीय गुरुस्व है
गधर्व गण भी गा रहा जिसका प्रकृष्ट प्रभुस्व है
शोभा नहीं अन्यत्र उसके सत्यता मय साज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(८)

जिससे दलित हो दम्भ सेना दूर छिप रोया करी
अज्ञान माया विश्व की तज कर उसे किससे डरी
भुक्त-भुक्त करूँ मे बन्दना उस घोर तेजोभाज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

लेखक—

आयुर्वेद शिरोमणि कविराज
श्री रत्नाकर शास्त्री

सत्याग्रह और असहयोग

(खे०—प्राथम्य सत्याग्रह के प्रथम डिक्टेट ओ ग० नारायण स्वामीजी महाराज)



बिल न करमानी (Civil disobedience) ये शब्द प्रचलित अर्थों में सबसे पहले अमरीका के प्रसिद्ध विद्वान थोरिया (Thoreau) ने प्रयुक्त किये थे, अमरीका वाले इसका प्रयोग कतिपय कानूनों के विरुद्ध खासकर युद्ध में हथियारों के सीमित प्रयोग और अनुचित टक्स से सम्बन्धित कानूनों के विरुद्ध करते थे। परन्तु महात्मा गांधी ने सभी बातों में इसका प्रयोग किया है।

(२) इस देश में महात्मा गांधी से पहले, अहिंसात्मक असहयोग का प्रयोग, ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध, १८१२ ई० में, बनारस में किया गया था। ब्रिटिश कर्मचारियों की प्रबन्ध सम्बन्धी कुछ बाते ऐसी थीं जिन्हें बनारस वाले अपने लिये अन्याय पूर्ण समझते थे, चिरकाल तक दूकानें बन्द रहीं, लोगों ने काम छोड़े रक्खा और अपने नेताओं की आह्वानों का पूर्ण रीति से पालन किया। फल यह हुआ कि आन्दोलन सफल हुआ अगरेज कर्मचारियों को मुकना पड़ा और वे बाते रह गईं और टैक्स भी माफ किया गया।

(३) १८३० ई० में मैसूर राज्य के विरुद्ध भी सफलता पूर्ण सिविल नाफरमानी की गई थी।

(४) महात्मा गांधी के नेतृत्व में अफ्रीका के बाद्, इस देश में भी कई बार असहयोग आन्दोलन किया गया परन्तु सत्याग्रहियों के पूर्णतया अहिंसक न रहने अथवा सत्याग्रह की मर्यादाओं को भंग करने से वे आन्दोलन बन्द करने पड़े अथवा असफल हुये।

(५) सत्याग्रह के इतिहास में, हैदराबाद का आन्व्य सत्याग्रह एक विशेष स्थान रखता है। इस आ दालन की खूबिया ये थीं—

(क) आन्दोलन प्रारम्भ से अन्त तक पूर्णतया सत्य और अहिंसा पर अवलम्बित रहा—

(ख) सत्याग्रहियों ने अनेक प्रकार के अपमान सहने और उदात्त किये जाने पर भी नियम और मर्यादाओं का भंग नहीं किया।

(ग) अब तक के सत्याग्रह बराबर स्थानिक हाते रहे हैं अथत् तो जहा रहता था उसने वहीं सत्याग्रह किया था। परन्तु इस हैदराबाद सत्याग्रह में सत्याग्रहियों को लम्बी लम्बी यात्रा और बहुत सा धन व्यय करके सत्याग्रह करना पड़ा।

(घ) भिन्न भिन्न जेला में सत्याग्रहिया पर अनेक प्रकार की सख्तिया की गईं, अमानुषिक व्यवहार किये, रुग्ण होने पर चिकित्सा का भी अच्छा प्रबन्ध नहीं हुआ, इसीलिए २१ सत्याग्रहियों की मृत्यु भी हुई परन्तु फिर भी हमारे सत्याग्रही प्रसन्नता से इन सभी अत्याचारों को सहते रहे और नियमा से विचलित नहीं हुये।

(च) सत्याग्रहियों के सत्याग्रह केन्द्रों तक पहुचने में अनेक प्रकार की असुविधाओं के होने पर भी, बड़े बड़े जत्थे स्पेराल दलों द्वारा, सत्याग्रह करने के लिए, सत्याग्रह स्थला पर पहुँचते रहे।

(छ) सत्याग्रह करने के लिए तीसरी और चौथी पक्ति में रहने वाले व्यक्ति ही नहीं गये थे अरिंतु डिक्टेट बन कर जाने वाले प्राय सभी प्रथम पक्ति में रहने वाले व्यक्ति थे।

(ज) सत्याग्रह का संचालन स्वनी उत्तमता से हुआ कि इस देश ही में सबका ध्यान उसकी ओर

आर्यवोर-दल स्थापित करो महर्षि दयानन्द और अहिंसा धर्म

[ले०—राजस्थान के गौरव देशभक्त श्री कुंवर चाँदकरण शारदा अजमेर]



मारी राष्ट्रीय विजय की धोतक दीपावली के शुभ अवसर पर लक्ष्मी की लीला-स्थली, सरस्वती की क्रोडा-भूमि सभ्यता की जननी, भारत भूमि के सच्चे उद्धारक, आर्य-लाल

महर्षि दयानन्द के बनाये अहिंसा धर्म पर ही कुछ उल्लेख कर मैं अपने को पवित्र करता हूँ। मनुष्य स्वभाव ही से सुख चाहता है, परन्तु फिर भी संसार में दुःख अधिक प्रतीत होता है। योरुप भयंकर जर्मन युद्ध से दुःखी है और भारत पराधीनता और दरिद्रता से दुःखी है। वह साम्राज्य-वाद और हिटलर शाही दोनों का नाश चाहता है। सुख और दुःख हमारे मनोदेव पर निर्भर है। जैसा हम कार्य करते हैं, उसका ही फल सुख-दुःख रूप में हमें अवश्य मिलता है। अब प्रश्न यह उठता है कि कैसे काम करना चाहिये जिससे हमें सुख मिले और दुःख न हो। कौन से कार्य करने में दुःख और

आकर्षित नहीं हुआ किंतु इंग्लैंड में भी उसका प्रभाव पहुंचा और चार बार पार्लियामेंट में प्रश्न भी किये गये।

(क) सत्याग्रह के देवता महात्मा गांधी ने भी आर्य सत्याग्रह की मुककठ से प्रशंसा की।

(त) सत्याग्रह पूर्णतया सफल हुआ और सभसे बढ़कर मार्क की बात यह हुई कि हैदराबाद राज्य और आर्य समाज के सम्बन्ध, सत्याग्रह की समाप्ति पर अच्छे रहे।

कौन से कार्य करने में सुख है। सभी धर्मों का आदि स्रोत वैदिक धर्म बतलाता है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह इन पांच यमों के पालन करने से तथा शौच सन्तोष तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान इन पांच नियमों के पालन करने से मनुष्य परमानन्द को प्राप्त कर सकता है।

अहिंसा के अर्थ यह हैं कि किसी भी निर्दोष प्राणी को मनसा वाचा कर्मणा किसी प्रकार दुःख न पहुंचाया जाय। हमें दुःख है कि कुछ लोगों ने अहिंसा के भूटे अर्थ लगा कर अत्याचार सहना और अत्याचारी को दण्ड न देना अहिंसा धर्म में सम्मिलित कर लिया है। प्रश्न यह है कि संसार में जब दूसरे मनुष्य अहिंसा धर्म का पालन न करें तो अहिंसा परमो धर्म को मानने वाले को किस हद तक अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिए। नर संहारक हिंसक तोपों हवाई जहाजों के सामने हम कैसे अहिंसा धर्म बोलते हुए हाथ पैर बांधे ठहर सकते हैं। ऐसी दशा में यदि हम प्रतिकार रूप में दुष्टों का शास्त्र से दमन न करें तो निश्चय ही मारे जाते हैं। जो भाई यह कहते हैं कि जर्मनी और रूस के सामने निःशस्त्र प्रतिकार और सत्याग्रह करके विजयी हो जावेंगे तो मुझ को उन पर हंसी आ जाती है। क्योंकि रूस और जर्मनी के लोगों को अपनी बढ़ती हुई प्रजा को बसाने के लिए भूमि चाहिये अतः वे निर्दोष होकर अपने उपनिवेश बसाने के लिए आपको हवाई जहाजों से ही उड़ा देंगे, और आपको निःशस्त्र प्रतिकार निरर्थक सिद्ध होगा। आप मारे जायेंगे और स्वर्णमयी मातृभूमि पर वे आकर बसेंगे

और 'वीर भोग्या बसुन्धरा' के सिद्धान्त के अनुसार आनन्द लुटेंगे। इसलिए सशस्त्र विदेशी फौज के सम्भाम में निःशस्त्र होकर बैठने वालों को मैं हिंसक मानता हूँ क्योंकि अत्याचार सहना महात्न हिंसा है तथा अयाचारी एवं अन्यायी को न मारना हमें नरकगामी बनाने वाला है। जब मैं उपर्युक्त बात कहता हूँ तो मेरे कुछ भाई कहते हैं कि आप ऐसी बातों से हिंसा धर्म का प्रचार करते हैं। उन भाइयों की सेवा में मेरा नम्र निवेदन है कि भाई! यदि कोई नपुंसक कहे कि मैंने आजन्म ब्रह्मचारी होने का व्रत लिया है तो क्या उस नपुंसक को कोई भला आदमी ब्रह्मचारी मानेगा? उत्तर मिलेगा कि नहीं। क्योंकि जिसमें जो शक्ति नहीं उसके त्याग का यदि वह दम्भ करे तो ससार उसे भूटा ही समझेगा। ब्रह्मचारी तो वह है कि जिसमें वीर्य और पुरुषार्थ है और फिर वह इन्द्रिय निग्रह करता है। उसी प्रकार भारतवासी जब पराधीन है उनके पास शस्त्र नहीं हैं, वे स्वार्थ में फंसकर चात्र धर्म व चात्र तेज को भूल गये हैं तब यदि वह यह कहे कि हम अहिंसावादी हैं इसलिए नहीं लड़ते तो ससार यहाँ कहेगा कि ये कायर हैं और अपनी कायरता अहिंसा के आडम्बर में छिपाते हैं। सच्चा अहिंसावादी तो वह है जिसके शरीर में शक्ति है जो वीर्यवान् और तेजस्वी है जो अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग जानता है, तोप चलाना हवाई जहाज से बम बरसाना और नई नई गैसें छोड़कर फौजों का मूर्च्छित करना और मारना जानता है और फिर इतनी शक्ति रखते हुए भी हिंसा नहीं करता है। जिसके शरीर में शत्रु के पराजित करने का बल है पर आत्मिक बल से शत्रु पर विजय प्राप्त करता है तभी वह सत्य और अहिंसावादी कहला सकता है। अतः सचचे अहिंसावादी बनने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम तोप नलवार हवाई जहाज से बम गिराना बन्दूक सख खोलकर निशाने लगाना सब आधुनिक अस्त्र शस्त्रों का चलाना सीखें, जब हम इस प्रकार शक्तिशाली बन जायेंगे तो हिंसक जातिवां अपने आप हमसे भय

खायेंगे और हमारे सामने से भाग जावेंगी।
 आर्यसमाज के प्रबतक संसारीद्वारक महर्षि दयानन्द ने हमें बतलाया है कि अन्यायकारी बलवान् से बलवान् का भी बल त्तय करने के लिये हमें सदा तत्पर रहना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने बलवान् वार्ते ही नहीं बताई बल्कि शारीरिक बल का प्रयोग सिद्ध करके बताया। उनमें शारीरिक बल था तभी तो उन्होंने कर्णसिंह की तलवार के दो टुकड़े करके फेंक दिये थे। उनके शारीरिक बल और उनके ब्रह्मचर्य तेज के सामने दुष्टों का मान मर्दन होता था अतः सिद्ध हुआ कि देश, धर्म और आर्य्य संस्कृति की रक्षा का एक सरल उपाय यही है कि महर्षि दयानन्द के पद चिन्हों पर चलकर हम आज के पवित्र दिवस स्थानस्थान पर पुरुषों के लिये आर्य्य वीर दल और स्त्रियों के लिये आर्य्य शक्ति-दल स्थापित करें। स्थान स्थान पर व्यायाम शालायें और शारीरिक शिक्षण विद्यालय स्थापित करें और उनमें भर्ती होना अपना कर्त्तव्य समझें। फौजी कवायद और अस्त्र शस्त्र के प्रयोग सीखने से हम आर्य्यसमाज के शारीरिक उन्नति वाले नियम का भला प्रकार पालन कर सकेंगे और सच्चे आर्य्य कहलायेंगे, मुमेलिखते हुये हर्ष होवा है कि आर्य्य पुरुषों ने कायर पुरुषार्थ हीन अकर्मण्य लोगों के अहिंसा धर्म को टुकड़ाकर स्थान स्थान पर आर्य्य वीर दल, महावीर दल, अग्नि दल, गेंती दल आदि अनेकों दल स्थापित कर दिये हैं आर्य्य-हिन्दू जाति भली प्रकार समझ गई है। यदि हम अहिंसा धर्म के ढकोसले को लेकर निर्बल और कायर बने रहेंगे तो निश्चय ही बलशाली राष्ट्र हमें पैरों तले रौंधते ही रहेंगे। हाल ही में सारे भारत का जेल से छूटने के बाद मैंने भ्रमण किया है। वसमें मैंने अपने व्याख्यानों में आर्य्य वीर दल स्थापित करने पर ही जोर दिया और सभी स्थानों पर आर्य्य हिन्दू जनवा ने मेरी अपील को सुनकर आर्य्य-वीर दलों का सुसंगठन किया है और हजारों नव युवक इनमें भर्ती हुये हैं। अतः आर्य्य वीरो! आर्य्य बेवियो!! संसार की गति बिधि से लाभ उठाओ। तुम्हारे

विपत्ती तुम्हारी सभ्यता को मिटाने के लिये किस प्रकार खाकसारादि दल संगठित कर रहे हैं और तुम्हारे विरुद्ध नाना प्रकार के षड्यन्त्र रच रहे हैं। आपने हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम जीता है और आगे भी विस्तृत कार्य्य क्षेत्र पड़ा हुआ है। अतः त्नात्र धम जाग्रत कर सत्य और न्याय की तलवार हाथ में लेकर कमर कस कर खड़े हो जाओ। संसार की कोई भी शक्ति दयानन्द की सेना का मुकाबला नहीं कर सकती। बीरता हमारो विश्व विजयी प्यारी मातृभूमि का अपना बीज है। साहस हमारे सुमनोद्यान का सुरभित पुष्प है। आन और शान पर जीवन बलिदान करना हमारी पुरानी आदत है। विश्व विख्यात वीरों! और वीरांगनाओं को कृपण करने वाला हमारा प्यारा आर्यावर्त देश ही है। पुष्पक विमान में बैठने वाला धनुर्धारी राम, और सुदर्शन चक्र घुमाने वाला, गीता का रचयिता भगवान् कृष्ण जैसे हमारे दिव्य ज्योति स्तंभ हैं वीरत्व से परिपूर्ण, धर्म के लिये सर्वस्व बलिदान करने वाले संसार के इतिहास में अद्वितीय वीर हमारी ही आर्य्य-जाति सदा से उत्पन्न करती आई है। स्वदेश प्रेम से उन्मत्त होकर रणांगण में देश द्रोहियों के रक्त पीने वाली रण-चण्डिकायां, धर्म रक्षार्थ ज्वाल मालाओं को छाती से लगाने वाली सतियां हमारे ही प्यारे भारतवर्ष के गौरव को आज दिन बढ़ा रही हैं।

अतः हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम के विजयी आर्य्य वीरो! विजय के मद में कहीं सो मत जाना कर्म वीर बन कर सार्वदेशिक सभा द्वारा बताये हुए रचनात्मक आर्य्य वीर दलों के संगठन कार्य में लग जाओ और इस प्रकार अपना संगठन दृढ़ करके आगे के लिए कूच करो। आर्य्य वीरो की विजयी दयानन्द की सेनाओं के हाथ में सदा ओ विभूति और विजय रहेगी। उसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। संसार के भूले भटके भ्रम पूर्ण नर नारी अपने ओशम् के भ्रष्ट के न.चे आकर अपने को गौरव शाली समझेंगे विशाल मन्दिरों के उत्तुंग, स्वर्ण-शिखर मस्जिदों के श्वेत गोल गुम्बद, गगन चुम्बी गिरजों की मीनारों पर आपके पवित्र ओशम् के भ्रष्टे लहरायेगे। सब मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों में संसार के सब धर्मों के आदि स्त्रोत वेदों के मन्त्रों का गान होगा। हवनें यज्ञ होंगे। दूध घी की नदिया बहेगी। भारत को प्राचीन आर्य्य गौरव पुनः प्राप्त होगा। हमारे विरवजित और अश्रुमेध यज्ञ फिर सफल हागे। सारे संसार में सुख और शान्ति फैलेगी और सारा संसार एक स्वर से बोलेगा—

‘वही वृद्ध भारत गुरु है हमारा’

बोलो महर्षि दयानन्द की जय।

‘जो बोले सो अभय। वैदिक धर्म की जय’।



कहानी

खतरे की घन्टी

(ले०-श्री महावीरसिंह वर्मा "वीर" म० वि० ज्वालापुर)

टन टन घंटी का नाद हुआ,
निस्तब्ध हुआ थिय बन्दोघर !
नालो पर ताले जडे गये,
अरु टन टन से छाया था डर ॥

फुर फुर करती हुई सीटियों बज रहीं थीं मानो विडिया न जेल पर धाबा बोल दिया हो। साथ ही धम धम का अन्यक्त नाद सेनिको के शुभागमन की सूचना दे रहा था। नारगा की झूत कोंप रही थी। टन टन टन टन करती हुई खतरे की घन्टी बज रही थी। यह आध घन्टे तक रो चुकी थी, और आगे भी यही कार्य क्रम था। घन्टा बजती ही जा रही थी, उस घन्टी को आवाज और सीटी की फुर फुर ने एक समोँ सा बोंध दिया था। आज वे भूखे थे, कौन ? वे बोरप्रती सत्याग्रही ! जो सिर से कफन बोंध कर समाग मे कूड़े थे, और जिन्हाने स्वाभिमान पूत्रैक कबो सड़ी रोटियों के खाने से इन्कार कर दिया था। रात्रि ६।। का टाइम था कि अरुस्मात् निष्ठुर सुपरिन्टेडेन्ट ने खतरे की घन्टी बजवा दी। घन्टी, अरु वह खतरे की घन्टी, जिससे जेल की दुनियाँ कराह उठती है। घन्टी किसी अज्ञात अशुभ की सम्भावना पैदा कर रही थी, निशस्त्र सत्याग्रही दिजड़ा में बन्द हो चुके थे। वह कालरात्रि अब भी मुझे याद है। नर्ही नर्हीं नू दे टपक रही थीं अन्त रिक्त मेवाच्छन्न था। भ्रमा के भाके शीतलता का आदान प्रदान करते हुये भूम रहे थे। कभी कभी चपला भी चमक कर उस नीरव रजनी को भयकर बना देती थी। क्या होने वाला है ? भाई क्या होगा ? हम लोग परस्पर सशक्तित होकर पूछ रहे थे। मैं भी गुनगुना रहा था। गान मे आल्हाद नहीं, विषाद था।



लेखक

'भाई पल मे क्या होना है,
इसका है कुछ ज्ञान नहीं।
कर्तव्य मार्ग है कटकयुत,
भगने का लेना नाम नहीं ॥'
'ऐ' प्राणो के पुनीत दीपक,
दो लाम की है तेरी आभा।
प्रतिपल जगती का परिवर्तन,
जग मेरा है भूटा दावा ॥'

मैं इन विचारो में तल्लीन था, रह रह कर अज्ञात आशका मुझे बेचैन कर देती थी। एक दूसरे का सुह ताक रहा था, मानो सकट की छाया देखना चाहता हो। ३०० सैनिको ने यथावत् निरीक्षण करके बारगा के फाटक खोलकर जेलर के आदेश पालन करने का प्रयास किया। जेल के पहले हिस्से मे उन्होंने बारगो को खोलने के निमित्त यथाशक्ति प्रयत्न किया। परन्तु सत्याग्रहियों ने दर्वाजा अन्दर से पकड़ रक्खा था। ये सैनिक जिनमें १५० खाकधार तथा गुखडे भी सम्मिलित थे, जेल के दूसरे भाग में

आ नमूदार हुये। खतरे की घन्टी श्वभ भी बज रही थी। इन सैनिकों के समीप लाइटें तथा गैसें भी थीं। १५७ के पास संगीन संयुक्त बन्दूकों तथा १५० के पास लोहे से मढ़े हुये से बड़े मौजूद थे। इस बारग के एक कोने पर एक कोठरी थी, जो दर्वाजे से शून्य थी, अधिक संख्या होने के कारण कुछ सत्याग्रही बारग में कुछ बरामदे में, कुछ कोठरी में और कुछ निद्रा देवी की गोद में विश्राम ले रहे थे। बारग के अन्दर वाले सत्याग्रहियों ने सैनिकों को आते देख दर्वाजा मजबूती से पकड़ लिया था। सैनिकों ने बरामदे के सत्याग्रहियों को उठकर अन्दर चलने को कहा, और कोठरी के अन्दर वालों को बाहर आने को कहा, बीच में निहत्थों के ऊपर पुलिस टूट पड़ी। निद्रादेवी के उपासकों के ऊपर भी लाठी चार्ज किया गया तथा बन्दूकों के कुन्दों से मारा पीटा गया। इसके उपरान्त सैनिक बारग पर कपटे, परन्तु उनको एक न चलो। दर्वाजा अन्दर से बन्द था, दर्वाजा मोटे लोहे का था, बाच में जालीदार चदर लगी हुई थी। पुलिसमेंतां ने संगाने चुभोना शुरू कर दिया, उधर सत्याग्रहियों ने बिस्तर दर्वाजे से सरका कर रख दिये। अन्त में पुलिस हताश होकर फिर उन्हीं घायलों पर टूट पड़ी। एक एक सत्याग्रही पर पचास पचास सैनिक टूटते थे। बड़ा रोमाञ्चकारी दृश्य था। सच पूछो तो जलयान वाला बाग बनने में थोड़ी सी कसर थी। कामदा खून से तर होगया, सत्याग्रहियों के सिर फट गये, भ्रैदान भी रक्त से रंग गया। घायलों के आर्त्तनाद से वह दुनियाँ रो रही थी। पानी! पानी! दो फूट पानी की पुकार थी, एक चीख थी, लेकिन बहाँ पानी कौन देता वह तो प्राणों के भूखे थे। शायद किसी शायर ने इसी समय के लिये कहा था—

“बच्चे जिबह जानवर को देते हैं, पानी पिला।”

“हृत्तरते इन्सान को पानी पिलाना है मना ॥”

मैं भी अपने कुछ भिन्न गुणकुलीय छात्रों के साथ भोजनशाला के एक कोने में बन्द था। इस भीमत्स काण्ड के उपरान्त हम रोटी परोसने वालों को

एक नूतन बारग में बहुत से सैनिकों की संरक्षता में लाया गया। क्या अद्भुत दृश्य था, हम लोग भाबी को सोच कर काँप रहे थे। बारग में हमें बन्द कर दिया गया, रोशनी पहले ही हटाली गई थी, सबैत्र शान्ति थी। हों आकाश अवरश्य आँसू बहा रहा था। कवि हृदय भी रो रहा था।

उन नन्हीं नन्हीं वृद्धों से,
आकाश बहाता था आँसू।
वीमत्स दृश्य को देख देख;
करुणेश बहाता था आँसू ॥

अंधेरी बारग में हम लोगों को बिस्तर नहीं दिये गये। हम सब चुप-चाप बैठ गये। अचानक पानी पानी का शब्द कानों में आया, आवाज में विषाद था, और थो करुणा। हम लोगों ने आँ फाड़ फाड़कर देखना शुरू कर दिया, तो ज्ञात हुआ कि हमारे साथ ही घायलों की एक पंक्ति लेटी हुई है, भला पानी कहा! घायलों से लाठीचार्ज की राम-कहानी सुनते सुनते प्रभात होगया, प्रथम ऊषा की भ्रक्ती मनोहर थी, तदुपरान्त भगवान् भास्कर का तेजोमय ललाट अनोखी छटा दिखला रहा था। मैं खिड़की से मोंक रहा था बरामदे का खून धोया जा रहा था। प्रभात बीता, मध्याह्न आया, मध्याह्न बीता सन्ध्या आई, परन्तु घायलों तथा सम्पूर्ण बन्दीघर के सत्याग्रहियों की सुधि किसी ने न ली। ताला जड़ा रहा, घायलों का एक बूंद पानी का शब्द दिल में आग लगा देता था। जब यह घायल चीख रहे थे उस समय की एक घटना स्मरणीय रहेगी। सुसुलमान के एक लड़के ने टीन के डब्बे, को पिचका कर सीकचो से पानी को पिलाया और हम लोगों ने तसले से पानी लेकर घायलों के मुँह में डाला, अपने मुँह में नहीं। १ टट्टो थी और १५० आदमी, टट्टी घर में पाखाना भर गया था, पेशाब का पानी बह बह कर बारग में आने लगा था। यह था हमारी बारग का अजीब नश्वारा। दो दिन के उपरान्त हम सबको एक एक मुट्टी चावल दिये गये। घायलों को पानी दिया गया, उनके घाब धोये गये, डाक्टर ने आकर

पट्टियों बाँधी'। अगले दिन फिर हम बन्द रहे, पानी की याचना पर एक बारग पर दुबारा लाठीचार्ज किया गया। ऊपर खड़ा हुआ पहरेदार चिल्ला रहा था—'और पीटो! और पीटो! काफिरों को और पीटो।' यह ओ३म् का भण्डा फहराने आये हैं।' इसके उपरान्त हर एक बारग वालों को डण्डों से पीटा गया। बहुत छोटे व्यंकटराव, धर्मपाल, मोहन इत्यादि बालकों को थप्पड़ों से पीटा गया। वह धम से जमीन पर गिर पड़े। इसके उपरान्त अधिकांश लोगो को डण्डा बेड़ियों, डाल दी गई। उनकी आबाज बड़ी ही करुणापूर्ण थी। मुझे उस समय शिमला साहित्य सम्मेलन में पठित किसी कवि के यह शब्द याद आगये।

“गोत जंजीर की भंकार पै हम गावेंगे।

देखकर इस जोश को सन्तरी समायेंगे ॥”

सत्याग्रही उन बेड़ियों को भ्रुकभोर कर खूब गाया करते थे। इस प्रकार मैं पन्द्रह दिन तक और-ज्ञावाद ही रहा। रोज सत्याग्रही बन्द रहत थे। केवल भोजन के लिये शेर बाहर निकाले जाया करते थे। फिर उनके दशन सोकचो मे ही होते थे। मैं इसके परचात् हैदराबाद के बन्दोघर के दर्शनार्थ चला गया। पता नहीं फिर बेचारों पर क्या होती? हों बिजय के परचात् लौटते हुये मैं औरंगाबाद के अत्याचार सुनकर सिहर उठा था। क्या मनुष्य का इतना पतन हो सकता है। क्या मानवता का उन्हर पशुता हां है। अब भी मुझे उस काली रत्रि की बः टन-टन याद आ जाती है और उस खतरे की घन्टो का इतिहास याद आ जाता है तथा कानों में कभी कभी वह ध्वनि सुनाई देने लगती है और मैं चौंक उठता हूँ।

ए खतरे की घन्टी बेरा;

इतिहास रक्त से भरा हुआ।

उस टन टन में इक क्रन्दन है;

वह बलिदानों से पगा हुआ ॥

(औरंगाबाद जेल के जाठीचार्ज की एक सषी घटना)

भाग्यनगर सत्याग्रह

(ले०—श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी

प्रधान युद्ध समिति)



ई वर्ष पत्र व्यवहार करके जिस समय सावंदेशिक सभा निराश होगई उस समय ६-१०-३८ को इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया। श्री नारायण स्वामी जी सर्वाधिकारी नियत हुए तथा व्यक्त गत सत्याग्रह की आज्ञा दी गई और सोलापुर में सम्मेलन

कणके, गमष्टि रूप से सत्याग्रह किया जाय चा न किया जाय निश्चय हो।

श्री नारायण स्वामीजी २८-१०-३८ को देहली से फ्रांटियर मेल से चले और प्रातः काल मुंबई में मे उतर कर आर्यसमाज मन्दिर में ठहरे और रात को १० बजे की गाड़ी से चलकर प्रातः काल ३० १०-३८ को सोलापुर पहुँच गए वहाँ पं० बसीलाल जी स्वागतार्थ उपस्थित थे। श्री स्वामी जी कुछ दिन पागा जी के बगले में ठहर कर फिर मंगलवार पेठ में कनाले जी के मगान मे चले गए और सम्मेलन के लिये उधर हो भूमि ती उस भूमि में २५-२७-१९-३८ को आर्य सम्मेलन हुआ, जिसके प्रधान श्री एम० एस० अण्णे जी यवतमाल निवासी थे उसी में समष्टि सत्याग्रह का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

जनवरी में निजाम सरकार को पत्र स्वामीजी की ओर से लिखा गया जिसका भाव था आर्यसमाज की यह मांगें हैं इनको पूरा किया जाय अन्यथा सत्याग्रह होगा। उस पत्र का कोई उत्तर न मिला। तब २२-१-३६ को हैदराबाद दिवस मनाया गया। परचात् ३०-१-३६ से समष्टि रूप में सत्याग्रह

आरम्भ होगया जब श्री नारायण स्वामी जी हैदराबाद पहुच कर पकडे गए ।

स्मरण रहे हैदराबाद नगर मे व्यक्ति गत सत्याग्रह अक्टूबर से आरम्भ हो चुका था जब सप्ताह मे २ दिन काफ़ेस, १ दिन हिन्दू मन्ना, १ दिन आर्य समाज सप्ताग्रह करता था खम्बा में आर्यसमाज ने २ दिन प्रति सप्ताह सत्याग्रह किये और जुलाई २२-१६ ३६ तक सत्याग्रह होता रहा हैदराबाद के बीरा में से केवल एक को घटना लिखता हूँ ४ भ्राता थे जो क्रम से सत्याग्रह करके जेल मे गए सबसे कनिष्ठ भ्राता भारत भूषण नाम का था जब ३ भ्राता कारागार में थे तो इसने सत्याग्रह किया इसके १ मास की कैद हुई जब यह छूटा तो इसने जेल आफिसर से कहा 'मेरी सदरकत (विशेष भोजन जो जेल में डाक्टर की आज्ञा से मिलता है) तयार रखना मैं ८ दिन मे पुन भ्राता हूँ और यह सत्यवादी बालक ठीक आठवें दिन सत्याग्रह करके फिर कारागार में पहुँच गया ।

द्वितीय सर्वाधिकारी श्री कु० चोंदकरणजी शारदा बने, उन्होंने बड़े उस्साह से काम किया और प्रत्येक समाज से एक एक वीर सत्याग्रह के लिये भेजने की प्रेरणा की और ५-३-३६ को सत्याग्रह किया, उनके साथ ७० वीर थे, तृतीय सर्वाधिकारी लाला सुशहालचन्द्रजी १५० वीर लेकर २२-३-३६ को सत्याग्रह के लिये गए उनके साथ ही सत्याग्रह में गरमी उत्पन्न हो गई और उनके उत्तराधिकारी श्री धुरेन्द्रजी शास्त्री थे जिन्होंने सयुक्त प्रान्त राजस्थान, गुर्वा प्रान्त में भ्रमण करके आन्दोलन की धूप मचादी और प० हरिशकरजी शर्मा प्रागरा निवासी को अपने साथ ले जाकर दिग्विजय का सम्पादन उनको सौपा जो सम्पादन कला मे सिद्ध हस्त हैं । और २-४-३६ को ५०० सत्याग्रहियों को स्पेशल लेकर सत्याग्रह किया उसी समय से सब प्रान्तों से सत्याग्रही विरोध रूप से सत्याग्रह के लिये आने आरम्भ हो गए ।

पाचवें सर्वाधिकारी प० वेदव्रत जी थे इन्होंने बिहार, सी० पी० में आन्दोलन किया और ५-५-३६ को पुसद से समरखेड होकर हद्द गाम में ५०० वीरो सहित सत्याग्रह किया उस समझ जेल सब भर गई थी और स्थान की तलाश निजाम सरकार कर रही थी हैदराबाद गुलबर्गा, आरगाबाद में नई जेल बनाई थी । सप्तम सर्वाधिकारी म० कृष्ण जी बने उन्होंने मनमाड से ७८२ वीरों सहित स्पेशल ट्रेन द्वारा ५-७-३६ का सत्याग्रह किया, इन्होंने पंजाब में भ्रमण करके खूब आ दोलन किया इन्होंने ७० सहस्र रुपये सत्याग्रह के लिये जमा किये । जिस समय इन्होंने सत्याग्रह किया उस समय निजाम सरकार के प्रबन्ध की सन्धु हागई । न स्थान न भोजन न वस्त्र न पात्र, न जेल का नियम न कैदियों की गणना थी । सबमें गडबड थी अधिकारी बर्ग हैरान था और कि कर्त्तव्य विमूढ होरहा था ।

सप्तम सर्वाधिकारी श्रीज्ञानेन्द्रजी सिद्धान्त भूषण थे जो १७० सत्याग्रहियों सहित पकडे गए थे इन्होंने गुजरात, काठियावाड़ प्रात में प्रचार किया था इ होने २२-७-३६ को सत्याग्रह किया था ८ वें सर्वाधिकारी प० विनायकराव जी थे जिन्होंने २२ ८-३६ को सत्याग्रह करना था वह उसी दिन रोक दिये गए । ६ वें सर्वाधिकारी श्री आर० सी० मसानियाजी थे जिन्होंने विनायकरावजी के पीछे कार्य सम्भालना था ।

इनके अतिरिक्त निजाम राज्य के सर्वाधिकारी थे, श्री विनायकरावजी दोनों ओर से आठवें थे । निजाम राज्य के डिक्टेटर श्री दत्तात्रेयप्रसावजी, श्री शेपरवजी, दिगम्भरावजी वकील, श्री हरिकन्तजी वकील, इनके कारण निजाम राज्य में आन्दोलन बढ़ा । वहाँ से ४-५ हजार तक सत्याग्रही आए । सब सत्याग्रही १२ हजार थे जिनका समिति को पता है । इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी थे जो निजामराज्य में अन्दर सत्याग्रह करके पकडे गए उनकी सूची समिति के पास नहीं आई ।

सफलता के कारण

प्रथम वह बीर हैं जिन्होंने सत्याग्रह किया और अपने जीवन कारागार में समाप्त कर दिये उनकी संख्या २५ है। मैं एक घटना लिखना उचित समझता हूँ वीर शांति प्रकाश, कलानौर जि० गुरदासपुर का रहने वाला था उसने २२ ३६ को गंजोटी में सत्याग्रह किया, वहाँ से धारा शिव (उसमानावाद) भेजा गया वहाँ टाईफाइड हो गया, चूमा के लिए कड़ा गया तो उसने उत्तर दिया कि जब तक सत्याग्रह समाप्त न हो वापिस न जाऊँगा। उसके पूज्य पिता रामरत्न जी को बुलाया गया उसका देहान्त वहाँ २६-६-३१ को हो गया, स्वर्ग सिंघारने से पूर्व उसने पूज्य पिता से कहा— आपने शांति नाम दिया था मैंने धर्म युद्ध में शहीद होकर शांति प्राप्त की है अप मेरे विषय में निश्चिन्त रहे।

दूसरे वह १२ सहस्र वीर हैं जिन्होंने कारागार में दुःख सहते हैं अनेक उन वीरों को जानता हूँ जिन्होंने घरपर कुछ नहीं किया था वहाँ वह सानन्द जेल का जीवन व्यतीत करते थे।

तीसरे देवियाँ हैं जिन्होंने सत्याग्रह की आज्ञा न मिलने पर धन संग्रह करने, और सत्याग्रही भेजने में अभूतपूर्व कार्य किया कुलांगनाओं ने न धूप देखी, न शीत, सत्याग्रह के लिए काम किया। चतुर्थ दानी सज्जन हैं जिन्होंने ७ मास में १० लाख रु० व्यय केलिए दे दिया, और यह धन कर रूप में नहीं अपनी इच्छा से दे दिया। स्वयं सेवकों को बुला बुला कर दिया।

इसके साथ साथ हिन्दू महासभा जिसने अन्त तक साथ दिया और कांग्रेस के नेता जिन्होंने आर्य समाज को पूरी पूरी सहायता की इनके अतिरिक्त पैरामाट पावर जिसने सभ्यता करवाने में सहायता दी और कार्य समाप्त हो गया। यदि यह सब शक्तिया एकत्र न होती तो इस प्रकार, इतना शीघ्र सत्याग्रह समाप्त न हाता यह कहा जा सकता है।

सफलता के कारणों में स्थायी संचालकों का भी धन्यवाद होना चाहिए, जो यह हैं—श्री चिरजीवलाल जी वानप्रस्थी कश्मीर प० धर्मवीर जी वेदालंकार श्री आर० सी० मसानिया जी, श्री ठाकुर कर्णसिंह जी छोकर मथुरा, प० ज्ञानचन्द्र जी सदस्य दयानन्द सेवा सदन लाहौर, प्रो० शिवदयाल जी लाहौर, प० वशीलाल जी मंत्री निजाम प्रतिनिधि सभा, (यह सबसे मुख्य आरंभ और अनथक कार्यकर्ता इस सत्याग्रह के जीवनाधार थे) डा० डी० आर० दास जी आदि सज्जन हैं।

इस सत्याग्रह से शिक्षा लेनी आवश्यक है। सबसे प्रथम यह है, कि जो विपत्ती यह कहते फिरते थे कि आर्य जाति वैदक धर्म के नाम पर एकत्र हो सकती है उनको पता लग गया होगा कि इस सत्याग्रह में सब वैदिक धर्मों मिल कर कार्य कर रहे थे कोई भेद भाव न था भावप्य में भी आर्य जाति को इसी प्रकार मिलकर कार्य करना चाहिये यदि संगठित होकर, शुद्ध मन से दृढ़तापूर्वक कार्य किया जाय तो ऐसा कोई कार्य नहीं जा संपादन न हो सके।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो सव्य आहितः



दिवाली का प्रसाद

(ले०—मो० ज्ञानचन्द्र जी एम० ए० अक्टूबर)



वाली को रात्रि आर्यजगत् के लिये एक महत्वपूर्ण रात्रि है क्योंकि यह रात्रि आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द जी के नाम से सम्बन्धित है। इसी रात्रि को सत्य के दूत और वेदों के सूर्य महर्षि का परलोक गमन हुआ था। अत आर्यजगत् के लिये दिवाली का मनाना तमो सार्थक हो सकता है जब वह उस वस्तु के लिये जो महर्षि को अति प्रिय थी अपना सारा जीवन अर्पण कर दे। महर्षि आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखते हैं कि “वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है” इसलिये महर्षि का सच्चा स्मारक मुख्य रूप से वेद का ही प्रचार है। इस नियम में दो रहस्य हैं। प्रथम यह कि महर्षि इसे न केवल धर्म परन्तु परमधर्म के नाम से वर्णन करते हैं, द्वितीय यह बात है कि वह केवल आर्यों के लिये ही नहीं अपितु सर्व आर्यों पुरुषों के लिये इस नियम को निर्धारित करते हैं।

वेद की महिमा

मनु महाराज अपने धर्मशास्त्र में पाठकों के लाभ के लिये वेदों की महिमा इस प्रकार वर्णन करते हैं।

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यम् यथाकालमन्वित्तम् ।
तं ह्यत्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥

मनु ४-१७०

अर्थात् गृहस्थ अग्रमादी होकर ठीक समय पर वेद का नित्य अभ्यास करे क्योंकि यह उसका परम धर्म है और अन्य धर्म उसके नीचे हैं।

वेदमेव सदाभ्यन्वेत्तपस्तप्यन् द्विजोत्तम ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तप परमिहोच्यते ॥

मनु ५-१७२

अर्थात् तप करने की इच्छा वाला ब्राह्मण वेद का ही सा अभ्यास करे क्योंकि इस शास्त्र में वेदाध्ययन ही सदा ब्राह्मण का परम तप है।
यो ऽनधीत्य द्विजो वेदभयत्र कुरुते भ्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय ॥

मनु २-१५६

अर्थात् जो द्विज वेद को न पढ़कर अन्यत्र भ्रम करता है वह जोता हुआ ही सपरिवार शूद्र भाव को प्राप्त होता है।

चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकेश्वरचारश्रमा पृथक् ।
भूत भव्यं भविष्य च सर्वं वेदारपसिष्यति ॥

मनु १२-६४

चारों वर्ण, तीनों लोक अलग अलग चारों आश्रम और भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् तीनों काल यह सब वेद से ही प्रसिद्ध होते हैं।

सेनापत्य च राठ्य च दृष्टनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकान्विपत्य च वेदशास्त्रविद्वत् ॥

मनु १२-६८

सेनापत्य राठ्य तथा दृष्ट देने का स्वामीपन और सब लोगों पर आधिपत्य वेदशास्त्र का ज्ञानने वाला ही कर सकता है।

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राग्रे वसन् ।

इहैव लोके विष्णुस ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १२
वेदशास्त्र के अर्थ का तत्त्व ज्ञानने वाला चाहे जिस आश्रम में रहकर इसी लोक में रहता हुआ मोक्ष को प्राप्त होता है।

हैदराबाद त्रिजयाड्ड



हैदराबाद सत्याग्रह क वरु सवाधिकारी—महाशय कुलुणजी बी० ए० ।



हैदराबाद सत्याग्रह क अष्टम सवाधिकारी—बैरस्टर आ विनायकरावजी विशालङ्कार ।

हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता

(ले०—श्री आर० सी० मसानियों उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा
सम्यवेसा व विदर्भ)



ह परमात्मा की महती कृपा है जो मुझे हैदराबाद सत्याग्रह में काम करने का मौका मिला, नहीं तो मैं कोरा रह जाता। कारण कि मुझे सत्याग्रह में जाने का मौका नहीं मिला मेरे सत्याग्रह में जाते जाते

सलाह का पैगाम आया।

मैंने पुसद, उमरखेड तथा आशिम इन तीन नगरों में शिविर खोलकर सत्याग्रह का काम चलाया था। सब से बड़ी तथा विशेष बात यह है कि इन तीनों नगरों की जनता ने मेरा पूरा साथ दिया अर्थात्

इसी प्रकार अथर्व वेद में लिखा है।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदय तां पात्रमानी
द्रिबानाम्। आयु प्राण प्रजां पशु कीर्ति द्रविणं
ब्रह्मवर्षसम् मह्यं दत्त्वा प्रव्रत ब्रह्मनोकम् ॥ अथर्व १६॥

अर्थात् मन को वरदाह से प्रेरणा करने वाली वेदमाता की मैंने स्तुति की है। (प्रभु आदेश करते हैं) आयु प्राण प्रजा पशु कीर्ति ज्ञान तेज मुझे देकर मुक्ति प्राप्त करो।

प्राचीनकाल में वेदाध्ययन की प्रथा

वेद का प्राचीन समय में इतना मान होता था कि उस समय ब्रह्मचारी को गुरुकुल से समावर्तन के परवाना घर आते समय गुरु यह उपदेश देते थे

स्वाभ्यासान्मा प्रमद।

इस तरह ऋषि तर्पण के पूर्व पर भी ऋषि ऋण से उच्च्य होने के लिये पुराने और नये शिष्य गुरु के

सत्याग्रह के लिये मुझे जनता की तरफ से सब तरह की सहायता मिली, फलस्वरूप इन तीनों शिविरों का खर्च बजाने के लिये मुझे सार्वदेशिक सभा के सत्याग्रह फण्ड का रुपया उपयोग में लाने की जरूरत नहीं पड़ी। बल्कि शिविरों का खर्च पूरा कर बचा हुआ धन लगभग तीन हजार रुपया सार्वदेशिक सभा के कोष में जमा कर दिया गया, यह सफलता प्राप्त होने का कारण यह है कि सत्याग्रह का कार्य गुरु करने के पूर्व प्रचार कर जनता को प्रेम पारा में बांध लिया गया था।

दूसरी विशेष बात यह है कि इन तीनों शिविरों में सत्याग्रह करने की गति विधि दूसरे शिविरों से

पास एकत्रित होकर यज्ञ करते थे और उत्तरचार्त्तिस वेद के अध्ययन का निश्चय करते थे उसका पाठ गुरु आरम्भ कर देते थे।

अन्तिम निवेदन

हैदराबाद दक्षिण को जेलयात्रा से बापिस आने के परवात् मैंने इस प्रतिज्ञा को धारण किया है कि बभारशक्ति वेद विषयक ग्रन्थों का अध्ययन करके रोचक विधि से उनके सार को सर्व साधारण के सामने रक्खा जाये। मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि आर्यसमाज का भविष्य वेदप्रचार के बिना कदापि उज्ज्वल नहीं हो सकता। अतः मैं 'आर्यसमाज' के पाठकों से सविनय निवेदन करता हूँ कि वे महर्षि के मृत्युदिवस पर वेद के पढ़ने अथवा पढ़ाने की प्रतिज्ञा धारण करें, इससे उनका और आर्य्य जाति का कल्याण होगा।

निराली थी, वहाँ तो साधान् जैसे कि फौज युद्ध में जाती है उसी प्रकार युद्ध के स्थान पर अर्थात् सत्याग्रह करने के स्थान पर सत्याग्रहियों को खुब सजा कर पंक्ति के रूप में ले जाया जाता था। नगर की खिबां जगह जगह सत्याग्रहियों का पुष्पों से सत्कार करती थी, कहीं इन्हें मिट्टाज खिलवाया जाता था और कहीं इन पर पुष्पों की वर्षा होती थी। इस प्रकार बँड बाजे से दर्शकों के साथ उमरखेड़ से निजाम के हद्गांघ पैन गंगा नदी पर चार मील पैदल चल कर पहुँचते थे।

हर सत्याग्रह के समय दर्शकों की अपार भीड़ रहती थी, इसकी संख्या बढ़ते बढ़ते चालीस हजार तक पहुँच गई थी, इसमें निजाम की जनता पांच हजार तक शामिल रहती थी, जिनके लिये निजाम सरकार की आज्ञा निकली थी कि जो मनुष्य स या ग्रह के जुलूस में शामिल होगा, उस पर पांच रुपया दण्ड किया जायगा। इतनी सख्त होने पर भी निजाम के पांच हजार मनुष्यों तक आजू-बाजू के खस्ते से आकर जुलूस में शामिल हो जाते थे और आये हुए विद्वानों का सत्कार कर उन्हें भेट देते थे।

सत्याग्रह के दिवस एक बड़ा भारी मेला लगता था इनकी भूख प्यास के लिये बाजार लगता था, होटल लगते थे, जिनमें यात्रियों को सब तरह के भोज्य पदार्थ मिलते थे। जनता को इरितहार द्वारा सूचना दी जाती थी कि अमुक दिवस सत्याग्रह किया जायगा। इसलिये सत्याग्रह का मैदान दूर दूर के दर्शकों की मोटरों तथा बैल गाड़ियों से खुब भर जाता था, जुलूस में खो, बच्चे और मनुष्य सब शामिल होते थे, आफिसरों के ठहरने के लिये तम्बू बनाये जाते थे और मेज-कुर्सी का भी इंतजाम रहता था।

वीसरी बात—सत्याग्रहियों को विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद पाने के लिये बड़े बड़े नेताओं को बुलाया जाता था, नेताओं के स्वागत में उमरखेड़ नगर छोड़-पताका आदि से खुब सजाया गया था, जगह-जगह दरवाजे बनाये गये थे, मानवीय भी

सोकनायक बापूजी अण्णे, श्री बाबा साहेब साधुजी, श्री वीर साबरकर जी सभापति हिन्दू महासभा आदि नेताओं को बुलाकर जनता में खुब प्रचार कराया गया, इनके व्याख्यानो में श्रोताओं को सत्याग्रह हज़ार से अधिक रहती थी, इसलिये जनता के सुभीते के लिये लौहस्पीकर का प्रब च किया जाता था।

सत्याग्रह करने के स्थान का चयन

सत्याग्रह करने के स्थान पर एक तरफ निजाम की फौज सत्याग्रहियों को गिरफ्तार करने के लिये खड़ी है, दूसरी तरफ सत्याग्रहियों की फौज खड़ी है, तीसरी तरफ अंग्रेज सरकार को पुलिस तथा आफिसर्स दृश्य देख रहे हैं। इन दलों के बीच में बड़े बड़े विद्वान् स्टेज पर खड़े होकर सत्याग्रहियों को उपदेश सुना रहे हैं कि वीर सत्याग्रही आप लोग सत्याग्रह समाप्त फतेह करके आये और विजय प्राप्त करने का उन्हें आशीर्वाद भी दिया जाता था।

गरमी का मौसम है, धूप कही है मैं हूँ सो कोई नहीं। ऐसी कड़ी धूप में निजाम की फौज तथा आफिसर्स गुपचुप व्याख्यान सुनने खड़े हैं, इधर छोटे-छोटे बालक ऐसे जोरा भरे जयकारे लगा रहे हैं कि हृदय हिल जाता है।

यह सब कार्यवाही समाप्त होने पर सत्याग्रही पंक्ति के रूप में जयकारे लगाते हुए आगे बढ़ते हैं। निजाम के अधिकारी व हे रोक कर समझाते हैं, आप लोग कहीं जा रहे हैं।

उत्तर—हम लोग अपने भाइयों को धार्मिक हक दिलाने के लिये जा रहे हैं।

प्रश्न—धार्मिक हक तो सब लोगों को बराबर मिल रहे हैं, सब जनता सुख पैन में है, आप लोग फजूल ही गबबड़ मचा रहे हैं।

उत्तर—यदि ऐसा है तो बड़ब लुगरी है, हमें जाने की आज्ञा दें। हम अपने भाइयों से मिलेंगे और जनता में धार्मिक प्रचार करेंगे।

प्रश्न—नहीं, नहीं, आप लोग मजमे के रूप में नहीं जा सकते, एक एक मनुष्य जा सकता है।



आप जाने की इजाजत नहीं देते हैं तो हम सत्याग्रह करेंगे—जो बोले सो अभय वैदिकधर्म की षय । उसी समय सच सत्याग्रही गिरफ्तार कर लिये जाते हैं और उन पर फौजदारी मुकद्दमा चला कर उन्हें जेल भेजा जाता है ।

बीच बीच में पुसद् के मुसलमानों ने कई बार मारपीट की, फौजदारी मुकद्दमे चले और दण्ड देना पड़ा । स्वामी नित्यानन्द जी पर भी मुसलमानों ने ११३३ ए० का मुकद्दमा चलाया, स्वामी जी के सत्याग्रह की सजा भोग कर निजाम जेल से बाहर निकलते ही पुन अफ़्जेजी पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर यवतमाल जेल में दाखल किया । आर्यों ने जमानत देकर स्वामी जी को छुड़ाया और अभी स्वामी जी का मुकद्दमा चल रहा है । उमरखेड में भी मुसलमानों ने ऋगड़े किये और तय होगये ।

बाशिम में किसी प्रकार का ऋगड़ा नहीं हुआ, सत्याग्रह का कार्य शान्ति पूर्वक समाप्त हुआ, यहाँ पर आर्यसमाज नहीं था इस कारण प्रचार करके यहाँ आर्यसमाज कायम कर दिया गया । यह सफलता श्री पंडित देवराज जी आर्य मिरनरी होशियारपुर के परिश्रम से हुई है, मैं उस समय नवम सचोबिकारी बन कर सत्याग्रह के लिये गया था ।

इसमें कुछ शक नहीं, भाग्यनगर सत्याग्रह समाप्त में आर्यों की बहुत ही कड़ी परीक्षा हुई है । यह तो आर्यों के सच्चे तप और त्याग का फल है और परमात्मा की विशेष कृपा है जो आर्यों को ऐसी विकट परीक्षा में भी सफलता मिली है । विजय प्राप्त करने का दूसरा कारण संगठन शक्ति है । इसलिये हम संगठन की ओर अधिक ध्यान देने की कोशिश करें और जहाँ जहाँ विजयता है उसे मिटाकर एकता की ओर लाया जाय, इसी में हमारी भलाई है ।

गुरुकुल कांगड़ी का च्यवनप्राश

बच्चे, बुढ़े, जवान, स्त्री व पुरुष सबके सेवन करने के लिये
उत्तम स्वादिष्ट रसायन है । मूल्य ४) सेर

चन्द्रप्रभा

सब प्रकार के पेशाब के रोगों में तथा कमर व शुर्दा के दर्द में विशेष लाभदायक है ।
कमजोरो को दूर कर शक्ति बढ़ाती है । मूल्य ॥=) टोला

पता—आयुर्वेदिक फार्मसो गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

प्रांच लखनऊ—श्रीराम रोड

एजेन्ट अजमेर—श्री सरदारोलाल देवराज कड़का चौक

भाग्यनगर में आर्यसमाज का कायाकल्प

[ले० - श्री पं० रामदत्त श्री शुक्ल एम० ए० एडवोकेट लखनऊ]

निराहारो यथा हारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ।
ददतुस्तौ बलिं चैव निज गात्रास्त्रगुह्यतम् ॥

ऋषि दयानन्द ने प्रज्ञाचक्षु एवं भीतरांग यति विरजानन्द से प्राप्त की हुई वैदिक संस्कृति को प्राणपण्य से साधारणतया समस्त संसार में किन्तु विशेषतया भरत खण्ड में वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करने के निमित्त अपने जीवन का प्रत्येक क्षण व्यतीत करते हुये सन् १८८३ का दीपमालिका के के पुरय दिवस में ऐहिक जीवन का अवसान किया । उन्होंने जिस महान् आदर्श को पूर्ति के लिए अपने जीवन की आहुति दी उस कार्य में आंशिक सफलता तो प्राप्त हो सकी किन्तु उसकी पूर्णता के लिये ऋषि ने सन् १८७५ में आर्यसमाज को स्थापना करके उस सस्था को ही अपने महान् लक्ष्य को पूर्ति का निमित्त बनाया ।

वेदप्राण दयानन्द के परचातु आर्यसमाज ने गठ साठ वर्षों में अलौकिक उत्साह के साथ धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, और शिक्षा सम्बन्धी जीवन क्षेत्रों में अप्रतिहत प्रभाव के साथ कार्य किया, देश कालिक परिस्थिति और अपने बलाबल को तुलनात्मक दृष्टि से देखते हुए आर्यसमाज ने अनेक अर्थों में आशातित सफलता प्राप्त की और अनेक आन्तरिक झुटियों के होते हुए भी आर्यसमाज सर्व साधारण सत्य और न्यायप्रिय धर्मेप्राण जनता की प्रति और सहानुभूति का उचित भाजन बना । मनुष्य स्वभाव का यह एक वैलक्षण्य है कि असुखधा बहुल काल में तो उसमें विशेष स्फूर्ति बल पराक्रम और संपर्प प्रियता दिखाई पड़ती है किन्तु सुखिधा बहुल अवस्था में शिथिलता निर्वलता, मोहता, दीनता, और अकर्मयत्नतादि दुर्गुणों का प्रकोप होने

लगता है, आर्यसमाज भी मनुष्य स्वभाव सम्बन्धी इस सिद्धान्त का अपवाद प्रत्यन करने पर भी सिद्ध न हो सका, क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति ज्यों ज्यों व्यापकता के साथ बढ़ती गई थीं त्यों प्रायः समस्त विचारक और कर्मठ व्यक्ति उसमें मनोयोग के साथ सहायग प्रदान करने लगे । शनैः शनैः राजनीतिक काय क्षेत्र ही कर्मयोगियों के लिए कर्तव्यपालन का एक विशाल वेन्द्र बन गया और ऐसी अवस्था में दुर्धर्प आर्यप्राण ऋषि दयानन्द से अनुभाषित होने पर आर्यसमाज अपने अन्दर भी अनेक अनार्योचित दोषों को अनुभव करने लगा ।

ऐसे विषम समय में आर्यसमाज को उदासीनता से आपाततः प्रश्न देखकर घर और बाहर के हित साधकों एवं अहित साधकों ने आर्यसमाज की कठोर आलोचना आरम्भ कर दी और आर्यसमाज ने भी ऐसे अक्षर पर शान्ति और सुवधा के सहारे कालयापन करना अवसरोचित समझा अभिसन्धि प्राप्त होने पर वैदिक संस्कृति वैदिक धर्म आर्य जातीयता आर्य साहित्य संस्कृत भाषा और आचार व्यवहार परम्परा को निर्मूल करने वालों ने आर्य समाज और उसके प्रमुख कार्य कर्ताओं को अनेक अनुचित अर्थात् एवं कूट रणियों से दवाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया, उपर्युक्त अवसर प्राप्त होने पर भी आर्यसमाज ने "पयः पलायति स जीवति" इस सिद्धान्त के अनुसार आचरण करना सुविधाजनक समझा, किन्तु कालपुरुष के विशाल नियमों के विरुद्ध अधिक समय तक चलना कठिन होता है, इस कारण उचित मात्रा में अपने अन्दर आत्म विरवास संपर्प, सामर्थ्य, अदम्य साहस शक्यता

हैदराबाद सत्याग्रह विजय के उपलक्ष में

विरहास बाबू—मुसलमानों के बीच में हिन्दुओं' साथ क्या क्या विरहासबाबू किये गये । इय पुस्तक को अबरय पदे । मू० १)
सत्यार्थ प्रकाश (लक्ष्मी में) सुन्दर छपाई कागज बढ़िया बने साईंभ में छपा है । मू० १)
प्रथम सर्वाधिकारी श्री नारायण त्वासी जी की कुछ पुस्तके' योग रहस्य १०) उपनिषदों का रहस्य १०)
आर्षसमाज केदसविषमों की व्याख्या, १) वैदिक सिद्धान्त १॥)

खतरों का विगुल

कामिसे की नीति मुसलमानों के मुकामिसे हिन्दुओं' के प्रति कैसी है तथा हिन्दुओं के साथ क्या क्या उपाद तिर्ना की गई हैं, इसे अबरय पदे' । मू० २)

चरक संहिता हिन्दी अनुवाद

आयुर्वेद के प्रेमियों को खुशखबरी

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर ने

तीनों खण्ड केबख १) ६० में बहुत सुन्दर सुनहरी जिल्द बढ़िया छपाई बढ़िया कागज के दिये जा रहे हैं । जल्दी मगाइये नहीं तो शीघ्र समाप्त होने के बाद फिर पकृताना पड़ेगा ।

सुश्रुत संहिता सम्पूर्ण

सरख हिन्दी अनुवाद केबख १) ६० में सरख, सुन्दर, सचित्र तीन खण्डों में शीघ्र प्रकाशित होगा प्रत्येक खण्ड का फुटकर दाम ४) होगा परन्तु अभी से १) ६० जमा देकर स्थिर प्राइस बन जाने वालों को ये तीनों खण्डपूबक् पूबक् भी केबख १) ६० में ही दिये जायेंगे । शीघ्र प्राइस बनिये ।

चारों वेद हिन्दी अनुवाद

१४ खण्ड में पूर्ण मू० ४२)

प्रत्येक खण्ड का दाम ४) रु० मात्र

ऋग्वेद

यजुर्वेद

अथर्व

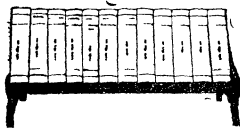
साम

० खण्ड

१ खण्ड

२ खण्ड

३ खण्ड



अथर्व का लुवीव और यजुः का प्रथम खण्ड पुन छप रहा है ।

अभ्य प्रकाशकों की पुस्तके' भी नीचे लिखे पते से ही मंगाये और बड़ा लुचीपत्र मुफ्त मगावे' ।

पता—आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर ।

Approved Contractors to U. P. Government

ऋषियों की बुद्धि का चमत्कार

गुरुकुल की दुर्लभ औषधियां

‘शिरामणि’

च्यवन प्राश्न

बल, वीर्य और बुद्धि बढ़ाने वाला स्फूर्ति दायक,
रक्त शोधक शक्ति वर्धक है।
तपैदिक, क्षय, पुरानी खाँसी, दमा, हृदय की
घड़कन और समस्त कफ रोगों को
समूल नाश करता है।

इसे च्यवन ऋषि ने इसी के सेवन से
दुबारा जीवन पाया था।

हर ऋतु में हर एक के सेवन करने योग्य
काष्ठनीवर से भी बढ़िया टानिक है।
मूल्य ६) सेर

पराग रस

स्वप्न दोष की शर्तिया दवा है।
अब तक जितने इलाज इस रोग के निकले हैं,
उनमें “पराग रस” का सेवन सब से उत्तम
और सस्ता इलाज है। यदि रोग नया
है तो १५ दिन पराग रस के
सेवन से जड़ से मिट
जायगा, जिसका
मूल्य २।) ५० मात्र है।

सारिवाद्यारिष्ट

सारिवादि सालसा ४) सेर

वातरक्त, सब प्रकार की रक्त की खराबी,
गठिया, आमबान, यकृत (लीवर) के
दोष, लीवर के दर्द, हाथ पैर की
जलन, उपर्श आदि की प्रसिद्ध
औषध है।

१—पित्त के विगड़ने से हाथ-पैर की
जलन, अम्ल, शूल, पित्त, कामला बिसर्प,
वातरक्त, कुष्ठ, शित्र, फोड़ा-कुन्सी आदि अनेक
चर्मरोग हा जाते हैं। सारिवाद्यारिष्ट उन सब
की अत्यन्त लाभकारी दवा है। सब प्रकार के
पित्त व रक्त दोष को दूर करता है। उपर्श
(सूजाक) गर्मी व पारे की खराबी से बिगड़े
स्वास्थ्य को ठीक करता है। लीवर को ठीक
रखता, हाथ पैर, आँख का जलन और खाँसी
को निरपेय ही दूर करता है।

द्राचासब सुमधुर

तन्दुरुस्त रखने वाला, निर्बलता दूर करने
वाला, कब्ज को नाश करने वाला, आँख
साफ रखने वाला, पाचन शक्ति बढ़ाने वाला,
और रक्त साफ रखने वाला है। नं० १ का
मू० ३) सेर ढाक उषध १=)

प्रवृष्ट संलग्नता और चित्रयोचित धीरता की पर्याप्त मात्रा का अनुभव न करते हुए भी धनञ्जय की भाँति सर्व-साधन-सम्पन्न ओत प्रोत पशुबल युक्त हैदराबाद को निरंकुश निजाम शाही के विरुद्ध वैदिक धर्म, वैदिक सभ्यता आर्य राष्ट्रीयता आर्य साहित्य और आर्य आचार व्यवहार परम्परा की रक्षा के लिए आर्यसमाज ने अहिंसात्मक सत्याग्रह संघर्ष की दीक्षा ली।

अहिंसात्मक सत्याग्रह संग्राम १० जनवरी १९३६ से ३१ अगस्त १९३६ तक चलता रहा, इस संघर्ष के सम्बन्ध में अंग्रेजी सरकार परेन रूप से निरंकुश निजामशाही को अनुचित और अवैध सहायता देती रही, सुदूरवर्ती टर्की, स्पेन अविसीनिया, आस्ट्रिया, अलबानिया जैकोस्लोवेकिया, चीन, और पालेण्ड निवासियों के उपांडन पर अचिभल अश्रुधारा बहाने वाले राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के प्रमुख नेतागण हैदराबाद के ६८ काराग्रहों में पैशाचिक पशुना के साथ प्रपीडित किये जाने वाले सय निष्ठ, धर्मप्राण, तप त्याग की दीक्षा लेकर अहिंसात्मक सत्याग्रह संग्राम में प्रवृत्त होने वाले आर्य वीरों के प्रति अचम्य उदासीनता धारण किये र्हे। देश के गण्यमान्य अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त "वसुधैव कुटुम्बकम्, की माला जपने वाले महापुरुषों ने अपने को हैदराबाद सत्याग्रह से उतना ही दूर रक्खा जितना कि शाश के भृंग होता है, प्रेस एजेन्सियों के प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों और अनेक भुक्त भोगी मञ्जिबध्वंसक धुआधार व्याख्याताओं ने किसी अनिर्वचनीय आत्मीयता के कारण निरंकुश निजामशाही के अभ्याय और अत्याचार पूर्ण शासन कार्यों की अनुचित सराहना की तथा अन्यान्य प्रकार से अनेक विघ्नबाधाएँ उपस्थित होने पर भी आर्यसमाज ने अभूत पूर्व सगठन और समय के साथ इस संघर्ष को सात मास तक चलाया, इस संग्राम में २० सत्याग्रहियों ने अपने प्राणों की हवि देकर निजामशाही की नृशंसता को मनुष्यता में परिणत करने का सफल उद्योग किया, और

सात सर्वाधिकारियों की संरक्षता में १५ हजार बीर आर्य सत्याग्रहियों ने नारकीय यन्त्रणाओं से परिपूर्ण निजाम शाही की जेलों को अपने धार्मिक आचार व्यवहार से परिपूत कर दिया। इस संघर्ष में न तो नृशंस निजाम शाही और उसके नराकार दास पशुओं ने हिंसा के किसी भी क्रूरतम साधन को प्रयोग में लाये बिना छोड़ा और न आर्य सत्याग्रहियों ने ही सत्य और अहिंसा व्रत से अग्रुमात्र विचलित होने का विचार किया। अन्त में निजाम शाही पराजित हुई, वैदिक धर्म आर्यसमाज की अहिंसात्मक सत्याग्रही सेना की विजय हुई, मित्र शत्रु और उदासीन सभी ने एक स्वर से आर्यसमाज के प्रति साधुवाद और प्रशंसात्मक भाव प्रकट किये। जिन धार्मिक अधिकारों की परिरेक्षा के हेतु आर्यसमाज ने अहिंसात्मक सत्याग्रह की दीक्षा ली थी, उनको अभिलषित रूप में पूर्ण करने की घोषणा निजाम शाही की आर से की गई और आर्यों के साथ न्यायोचित व्यवहार करने का आश्वासन दिया गया।

इस प्रकार सर्वथा शिथिल आर्यसमाज का एक प्रकार से कायाकल्प सम्पन्न हुआ और उसमें पुनः यौवनानुरूप स्फूर्ति पराक्रम उत्साह और सघर्ष प्रियता आदि उदात्त मानवोचित गुणों का प्रतिष्ठापन हुआ, इस महान् विजय के उपलक्ष्य में समस्त सम्बन्धित महानुभाव रचितरूप से प्रशंसा के भोजन हुये हैं। अप्रतिहत चक्र धर कालपुरुष की अनुकूल प्रेरणा से नितान्त विषम परिस्थिति में पड़ कर भी आर्यसमाज का यश सर्वत्र फैला और अब निर्बल एवं लुद्ध हृदय युक्त लोगों को भी विश्वास हो गया है कि आर्यसमाज किस धातु का बना हुआ है और अबसर आने पर किस प्रकार क्षात्रोचित मर्यादाओं के अनुरूप प्राणपण से संग्राम क्षेत्र में अवर्तणी होकर अपने पूर्वज आर्य वीरों की भाँति सफलता के साथ विजय लाभ कर सकता है।

किन्तु इस कायाकल्प के अनन्तर अब आर्य समाज के प्रमुख नेतागणों का उत्तरदायित्व अस्थ-



क्या अहिंसा अमोघ अस्त्र है ?

(ले०—श्री पं० बिहारीलाल जी शा त्री काव्यतीर्था)

जे

लोग प्रह्लाद की जैसी कथाओं,
 यशु जैसे चमत्कारों और तरह-
 तरह के मौजिबों पर विश्वास कर
 सकते हैं, उनके लिये तो अहिंसा
 और मत्याग्रह से आततायी क्रूर-
 त्माओं, नृशंस नरपिशाचों के
 हृदय परिवर्तन होजाने का विश्वास
 कर लेना अनहोनी बात नहीं है पर

गोतम और कपिल की जाति जिसे तर्क तुला पर बिना
 तोले किसी बात को स्वीकार न करना चाहिये या
 आज ऐसे अयुक्त गणों में फैल गई, वह शोचनीय
 बात है। अहिंसा व्यवहार शील है और बहुत अचञ्छा
 गुण है, इसमें कोई सन्देह नहीं मगर उसे जाति गत
 धिक बढ़ गया है, और उनका कार्य क्षेत्र भी अपेक्षा
 कृत विस्तृत हो गया है, इसलिये निकट भविष्य में
 अबसर आने पर पुनः संग्राम दीक्षा लेना अनिवार्य
 होगा इस सैनिक भावना से प्रभाविन होकर अविलम्ब
 जात्रोचित शिक्षा दीक्षा का सर्वांगीण आयोजन
 आरम्भ करने का सुप्रबन्ध करना चाहिए इस प्रसंग
 में आर्यसमाज का संगठन सुदृढ़ आन्तरिक अनु-
 शासन, सुसंगठित रचनात्मक कार्य उन्नत, विस्तृत,
 और बहिरंग परिस्थिति का सम्यग्ज्ञान स्व और
 पर बल का परिणाम और प्रभाव देशकालानुकूल
 रचनात्मक अथवा ध्वंसात्मक शक्ति प्रयोग और
 वैदिक धर्म मर्यादा अनुसार सार्वजनीन आर्य
 राष्ट्रीयता का स्थापित करने का महान् आदर्श अपने
 समस्त विचारों और कार्यों के साथ समन्वित करते
 रहने पर कार्याकल्पोपार्जित शक्ति प्रतिष्ठित रह
 सकती है, और आर्यसमाज के द्वारा मानव जाति
 का कल्याण साधन कर सकती है।



कार्यों में भी लागू करने अहिंसा का दुरुपयोग ही
 है। मनु महाराज तो कहते हैं—

“आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्”

अर्थात् आततायी दुष्टों के मारने में सोच विचार
 न करे।

वेद भगवान् कहते हैं:—

रन्धवा शासद्वतान् । अथर्व ।

अग्ने तं भस्मसात्कुरु । यजुः ।

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरालम्बोर्ध्वाम् ।

यार्ध्वते हस्त इषवः परातामगशोचप ॥ यजुः ॥

अर्थात् दुराचारियों को कुचबो । जो तुम्हें सवाधे
 उसे खाक करदो । धनुष पर बाण संचालन करके
 शत्रुओं पर जोड़ो और उनके बाणों को दूर कर दो ।

अब बताइये भक्ति, स्मृति के विरुद्ध आर्थाजाति को जैन बौद्धधर्म की अव्यवहारों शिक्षा जैसे मान लेनी चाहिये। अहिंसा के पूर्णवतार सत्याग्रह के आविष्कारक और एक मात्र शहीदी महात्मा गांधी कायदे इत्येको न बदल सके। अहिंसावादी को कायल न कर सके। राजकोट में अहिंसा असि की धार खुदल होगयी। जिन्ना और उनके साथियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मगर फिर भी भायुक्तक अभय-देव जी जैसे अहिंसा और सत्याग्रह से हृदय परिवर्तन होजाने का विश्वास करते हैं। जिस प्रह्लाद को ये लोग उदाहरण में पेश करते हैं, वह स्वयं अपने पिता का हृदय परिवर्तन न कर सका। अहिंसा प्रह्लाद के इष्टदेव नरसिंह का हिरण्यकरयप के उदर का अपरेशन करना पड़ा।

“दुष्ट मानता डबडं से”

गांधीवादी इसका उत्तर देते हैं कि “अगर हृदय परिवर्तन नहीं हुआ तो सिद्धान्त को त्रुटि नहीं किन्तु अहिंसा का अर्थता है। पूर्ण अहिंसा। सिद्ध होने पर अवश्यमेव हृदय परिवर्तन हो जायेगा। क्रूर से क्रूर दानव भी दयालु मानव बन जायेगा।” अच्छा अगर यही बात है तो ऐसी सिद्धि क्या जातिगत हो सकती है? क्या एक समूचे देश का योगी बन जाना संभव है? फिर अहिंसा का हथियार जातिगत कहाँ हुआ? हाँ व्यक्तिगत बात हो सकती है, और विशेष विशेष संस्कारी हृदयों पर ही इसका असर पड़ सकता है। समूची जाति के लिये अहिंसा अथवा को लाभदायी बनाना, प्रत्येक राष्ट्र के लिये इसी शास्त्र का प्रयोग करना एक पवित्र बहम है। अच्छा तो यह प्रश्न हो सकता है कि आर्यसमाजिया ने हैदराबाद में अहिंसात्मक सत्याग्रह क्यों किया? इसका उत्तर स्पष्ट है। जब अपने धर्म पर आ बनें तो बलिदान हो जाना चाहिये यदि राष्ट्र बलवान् हो तो भी न्याय और सत्य की रक्षा के लिये, अपने सिद्धान्तों को अटल रखने के लिये मर जाना चाहिये। जान देते मगर अन्यायी के आगे सिर न झुकावे। इसी भावना से आर्यसमाज ने सत्याग्रह किया था। आर्यसमाज का सत्याग्रह

हकीकतराय और गुरु गोविन्दसिंह जी के पुत्रों के सत्याग्रह के समान ही था। हाँ, शक्ति होते हुए आर्य समाज उसी तरह के सत्याग्रह को भी उचित और धर्म समझता है जैसा कि वीर बन्दा और शिवाजी ने किया और जैसा कि राम, कृष्ण, अर्जुन आदि महावीर धीर आर्यी पुष्ट कर रहे हैं। यदि राम-चन्द्र जो लका के द्वार पर अनशन करतें, यदि पांडव दुर्योधन के द्वार पर अहिंसात्मक सत्याग्रह करते तो पंरथ म क्या होता? क्या शिवाजी सत्याग्रह के शास्त्र से औरंगजेब का वश में ला सकते थे? क्या समूहों में साधु सत्याग्रह करके औरंगजेब के मुकाबले में सफल हुए? औरंगजेब ने सबको हाथियों से कुचलवा डाला। कत्त कर दिया मगर उनकी मांग पूरी न की, और न आज उनका कोई प्रभाव रहा? यदि सिक्ख भी अहिंसात्मक सत्याग्रह करते रहते तो उनका नाम ही शेष रह जाता। लोकतन्त्र शासन का दम भरने वाली सभ्य ब्रिटिश सरकार के साथ ही ऐसे आन्दोलन किये जा सकते हैं। आततायी बर्बर नृशंस उदर्यों के प्रति नहीं।

हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता अहिंसा की विजय नहीं है। वहाँ के अत्याचारियों पर इसका जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा। यदि वे किसी ऊँची शक्ति से न बचाये जाते। यदि उन्हें ब्रिटिश सरकार का भय न होता। यदि आर्यी वीरों की आगामी शक्ति और हिन्दुओं के भङ्गक उठने की आशा ही होती तो आर्यों को पीसने का सवाब बिना लूटे : मानते। काकिरी को कल्ल कर बहिरत में हूरी के हन वार बने बगैर न रहते। आज हिन्दुत्वान भर में मुसलमान मुस्लिम राष्ट्र के स्वप्न देख रहे हैं। तुर्किस्तान से सहारनपुर तक का मुस्लिम साम्राज्य का सुस्वप्न उन्हें दीखता रहता है। वह किसी देश विशेष-बन्धन में नहीं पड़ना चाहते। अब तो वे ‘हिन्दी हमबतन हैं हिन्दोस्तां हमारा’ की जगह ‘मुस्लिम हमबतन हैं सारा जहाँ हमारा’ गाते हैं। मुस्लिमती ने दो तीन वर्ष से साम्प्रदायिकता का वह विष बर किया है कि इस उग्र विष से सारा देश उल्लस होर



है। मुसलमान विरवमुस्लिम-बन्धुत्व के राग भलाप रहा है और बहुसंख्यक हिन्दुओं को काफिर कह कर घृणा करता है। मुस्लिम नेता किसी तरह भी अनाये परचाये में नहीं आ रहे हैं, और मुस्लिम संघटन की तन्त्राये में लगे हुए हैं, और बहुत हद संघटन उन्होंने बना भी लिया है। आज कांग्रेस नेता उनके संघटन से दहल गये हैं। बार बार उनके द्वार खट खटाते हैं। मगर वे सूधे मुंह बात नही करते इधर हिन्दू अचेत पड़ा है। अहिंसा = जगत् विजय के मोठे स्वप्न देख रहा है। हिन्दू, मुसलमान ईसाई, सब आपस में भाई भाई की भग पीकर मस्त है। विरव बन्धुत्व का ब्यामोह इसे घेरे हुए है।

विरव बन्धुत्व का विचार बुरी बात नहीं, वेद रचय कहता है—

‘मित्रस्याहं बन्धुषा सर्वाणि भूतानि सम च्चे ।’

परन्तु इसक साथ ही यह भी तो है कि “मित्र स्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्” सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, और मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखू। बकरी के बच्चे अगर विरव बन्धुत्व की भावना से भेड़ों के माट पर चले जाएं तो सिवा इसके कि उसको चुबा बुझाने का पुष्य कमाणं, अपना या अपनी जाति का कोई हित नहीं कर सकते। मुसलमानों में ख्वाकसारी की आतककारिणी सेना बन गई है। उसके कारनामे सामने हैं। गांधीजी के भक्त और पं० जवाहरलालजी के प्यारे खुदाई खिदमतगार अपने को पलटनी कबा बद् और तलवार आदि से लैस बनाये हुए हैं। अह रार कॉम्रेस का कफमा पढ़ते हुए भी तलवार और भाले लिये हुए हैं। मगर अभागा हिन्दू, कृपाण की जगह करवा तलवार की जगह तकली और धनुष की जगह धुनकी से काम लेना चाहता है। बरखे को सुदूरने कह कर एक दिव्य अस्त्र का उपहास कर रहा है। हिन्दुओं का एकछत्र नेता बम के गोलों का मुश्किला हई के गोलों से करना चाहता है। तोप को तकली से जीतने की असम्भव कल्पना कर रहा है। विप्लवकारी अस्त्रों को अनशन और अहिंसा से विफल करने की धुन में हैं। ईश्वर कृपा करे आज हिन्दुओं

के सामने वैसी ही परिस्थिति है जैसी महमूद के समय थी। आज किसी नगर में भी हिन्दुओं की जानमाल सुरक्षित नहीं है। कोई खोहार बरख या जलसा निर्बिन्न समाम होजये तो बड़ी गनीमत समझी जाती है। बहुसंख्यक वर हिन्दू दूतों की दया पर ही जी रहे हैं। इनकी अहिंसा कायवता समझो जाकर उपहास्य बनाई जा रही है। आज संयुक्त प्रान्त में ख्वाकसार उपद्रवों की ख्वाक उनीष रहे हैं। सरकार उनकी मिन्न मनोती कर रही है। हिन्दुओं पर रौष जमाया जा रहा है बकील विधोगी हरि जी

चूत बरगण शृगाल के गज मद् मर्दन शेर ।

भ्रपटव बाजन वे लबा हाय दिनन के फेर ॥

इस विपरीत परिस्थिति को बदलना पड़ेगा। हिन्दुओं को स्व स्वरूप की स्मृति करानी होगी, और आतताइयों से रक्षा करनी होगी, और यह काम सिवा आर्यसमाज के कौन कर सकता है? इस समय बिल्ली हुई हिन्दू जाति का संघटन आर्यसमाज फिर कर सकता है। अपनी संस्कृति सभ्रना और साहित्य की रक्षा के लिये हिन्दुओं को आर्यसमाज क सिवा और आश्रय नहीं दू देना चाहिये, और आर्यसमाज को भी इस पुरातन ज्ञाति, इस महान् वेदा की रक्षा का भार अपने सिर समझ लेना चाहिये क्योंकि हिन्दूमात्र में कोई सस्था ऐसी नहीं है, जिसे भारत और भारतीय संस्कृति से इतना प्रेम हो। अत आर्य समाज को इस महत्त्वपूर्ण कठिन काम को पूरा करने के लिये बल संघय करना चाहिये। अनुशासन का बल, धन का बल, शारीरिक संघ बल, आन्दोलन का बल, यह सब शक्तियों संघित करनी चाहिये।

अनुशासन का बल हटू होगा नेताओं की आजा पालन से धन बल बढ़ेगा उदारता और व्यापारिक कार्य खोलने से, शारीरिक सब शक्ति के लिये आर्य वीर दलों को बढ़ाना चाहिये। आन्दोलनों के लिये अस्त्रधार हाथ में करने होंगे। आर्यसमाज को यह भावना बहुमूल्य कर लेनी चाहिये कि भारत की संस्कृति की चौकीदारी उसे करनी है और वह इसके

शुभ-सन्देश आर्यसमाज का कायाकल्प



(ले०—भी नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ)



यें सत्याग्रह से हैदराबाद के मुसलमानों पर एक प्रकार का भातक सा छा गया है और वे अब समझ गये हैं कि आर्यों के साथ कर्म करने में कोई लाभ नहीं है। उनकी मनोवृत्ति बदल गई है और इसका परिणाम यह होगा कि भविष्य में वे आर्य-समाज के कार्यों में किसी प्रकार के भी अड़ने नहीं लगायेंगे।

हैदराबाद राज्य के आर्यों का कर्तव्य है कि वे शान्त रीति से अपना काम करते रहें। सहनशीलता तथा प्रेम से जनता को अपनी ओर खींचें अपने व्यवहार से यह सिद्ध करके दिखायें कि आर्यसमाज प्रेम करने की वस्तु है। आर्यसमाज आत्मा को ऊपर उठाने वाला समाज है वह मानव समाज को सुख शान्ति-पूर्वक समृद्धि का सन्देश देता है। वह अध्यात्मिक वाता-योग्य है। बहम, कल्पना, भावुकता और चमत्कारों के विरवास से राष्ट्रीय कार्य नष्ट करना करते हैं। ईश्वर भी कार्यों की सहायता नहीं करता है। आजसी मक अन्धकूप में गिरते हैं। आर्यसमाज को हिन्दुओं का अन्धविश्वास दूर करना होगा। अन्धकारार्थ आदर्शों का मोह छोड़कर परिस्थिति को देखकर चलने की शिक्षा देना होगा। आर्यसमाज ठठ और अगली सार्वभौम विज्ञय की तैयारी करे। आर्यों! हैदराबाद विज्ञय के बाद एक और विज्ञय के लिये



लेखक

वरण को उरग्न करने वाला समाज है। वह किसी से घृणा नहीं करता, वह किसी से शत्रु भाव नहीं रखता, वह सबको मित्र की दृष्टि से देखता है, हैदराबाद के आर्यों का यह भी कर्तव्य है कि वे केवल तैयार बनें। आसुर्य और प्रमाद को मार भगाओ याद रखलो,

नीरचीरविद्येके हंसाहृत्यं स्वमेव वसुधे चेतु ।
विरवस्मिन्नधुनान्यः कुलप्रतं पालविध्यतिकः ॥
निध्वस्तं न्याय के लिये सत्य और असत्य के भेद के लिये दुर्जनों से सज्जनों की रक्षा के लिये तुम्हारा बलवान् बनना जरूरी है। निर्भय होकर कहो:—
सक्ये त इन्द्र वाजिनः मामेव सहसस्यते ।



बधाई



(१)

बेश हृदय स स्वागत करता सत्याप्रही जवानों का क्या स-यासी, निधन घनी क्या सधही क अरमाना का क्या पजाबी बगाली, मद्रासा वीर जवानों का अरे ! अटक से और अटक तक लेकर सध मदानो का

(२)

छोड़ा सब घर बर जो कि बन जेनों क महमान चल नब नब बलिदानों में उठ उठ अर्य-जति के प्राण चल बटे चले ये बढ कर करन अधिकारी का भाण चल शूर शिवाजी की भू पर भितने उनके बलवान चले

(३)

मचल उठे जब प्राण सधादी इनने प्राणों की हाली इनके खू से रग कर जेलों वनी नई यमोपाली पानीपत हल्दी घाटी का साहस ले सिर घर रोकी प्रान्त प्रान्त के नगर नगर से निकल पड़ी लाखों टोली



(४)

अ जलो क विजबा सै नक । तुमका आज बधाई है खुद ताकत ना आज तुम्हारे चरण चूने अर्द्ध है विजय पता ना विमल धाम म तुमने हा लडगाइ है विनय घाँ हूँ धनि अम्बर म घहर घहर घहराइ है

(५)

स्वागत स्वाभे तुम्ह रा भारत क अभिमानों से गगा लट क मलबाय व मुक्त हृदय क प्राणों से गोंधों क आशावाद स नहरू के बरदानो स नारायण शास्त्रा कृष्ण से आर्य जाति के प्राणो स

(६)

अमृतसर के गुरुद्वारे से, आर्य लाग क तन मन से और महल से कुटिया तक के महासभा के जनी जन से भारत के बालक बालक से भारत भू के कण कण स रुखी सूखी रोटी खाने वाल श्या ग कृषक गण से

लेखक—

श्री राजेन्द्र वर्मा

धार्मिक स्वतन्त्रता से ही सन्तुष्ट न हो बैठे पूर्ण नागरिक अधिकारी (जो कि राजनैतिक अधिकारी पर निर्भर रहते हैं) की अपेक्षा करने से भी काम नहीं चलेगा । धार्मिक स्वतन्त्रता भी राजनैतिक अधिकारों के बिना सुरक्षित नहीं रह सकती ।

समय की गति कभी एकसी नहीं रहती । समय

ने हैदराबाद राज्य की गति भी बदल दी और आर्य सत्याग्रह के कारण आर्यसमाज में भी काया-कलन हो गया एवं आर्यसमाज की आयु बढ़ गई । आर्य सत्याग्रह द्वारा जो बोध हुआ है उसमें यदि यथार्थ लाभ उठाया गया तो निःसन्देह आर्यसमाज अविध्य में भी बहुत बढ़ा काम कर सकेगा । तथास्तु !

विजयो सत्याग्रह और पश्चात्

[ले०—श्री स्वामी आनन्दचन जी एम० ए०]

इसे सन्तोष की बात है हैदराबाद सत्याग्रह बड़े गौरव के साथ विजय श्री से सम्भवित हुआ। इस सत्याग्रह में आर्यसमाज का मुख्यतः और हिन्दू जाति का साधारणतः त्याग और तप, सहयोग और संगठन धार्मिक शासन और अनुशासन का अच्छा प्रदर्शन हुआ और भारत की सबसे दीर्घकाल और धनाढ्य रियासत के शासन के भी जो अहिंसा में विश्वास नहीं रखते, पता चल गया कि अहिंसात्मक सत्याग्रह में कितना बल है। न केवल आर्य नवयुवकों और वृद्ध पुरुषों को ही इस धार्मिक सेवा और तप से लाभ हुआ किन्तु हमें पूर्ण विश्वास है कि वहाँ के शासक वर्ग जेलर, सुपरिन्टेंडेंट पुलिस इन्स्पेक्टर, सिपाही, डाक्टर, कलक्टर, आदि तथा गार्डर कैदी, आदि के भी विचारों और चरित्रों में भी काफी सहायुभूति और निरपेक्ष भावों का समावेश हुआ। इस विजय से और भी कितने ही गौण लाभ हुए।

१—सब प्रान्तों के आर्य भाई एक स्थान पर एकत्र हुए और मैत्री भाव पैदा हुआ। प्रान्त प्रान्त के निवासियों की भाषा, वेश, भाव का ज्ञान तो हुआ ही अपितु वहाँ पर समाज के कार्य और प्रभाव का भी पूर्ण परिचय मिला जो वैसे कभी हो ही नहीं सकता था।

२—पंजाब, बंगाल, यू० पी० व सीमाप्रान्त के भाइयों ने दक्षिण देश का 'नरीक्षण किया और अनायास ही एक पंथ दो काज सम्पन्न हो गये। माता के सागर प्रचलित चरया भाग का दर्शन करके उसका समग्र रूप जाना।

३—हमें अपनी योग्यता और निर्बलताओं का पता चला और कितनी ही सुधार योजनाओं का विचार और सूत्र पात जेलों में ही आरम्भ होगया। यह भी गणेश अभिनन्दनीय है।

४—इस सत्याग्रह की विजय से आर्यसमाज की बहुत शक्ति बढ़ गई जिसको शीघ्र काम में लाकर लाभ उठाना चाहिये। अंगरेजों में एक कड़ावत है। Nothing succeeds like success कि 'विजय के समान कोई विजयी नहीं होता। इस विजय से छोटी छोटी रियासतों में किसी को हिम्मत नहीं होगी कि आर्यसमाज के न्याययुक्त धार्मिक कृत्यों में बाधा पहुँचाएँ और यदि किसी ने नादानी से बाधा उपस्थित की भी तो आर्य वीर दल हिम्मत और विश्वास से उसका मुकाबला कर सकता है। अभय हो गये हैं फिर क्या ?

धर्म केवल पुस्तकों को वस्तु नहीं बल्कि यतः 'धारणादन्तर्मिस्थादुःधर्मो धारयते प्रजाः अतः आर्यसमाज के जो अंग शिथिल हो रहे हैं उनमें जीवन फूंक कर खूब सबल और व्यवहार कुशल बनाने से ही यह लोक और परलोक बन सकते हैं। शिक्षा, संगठन गौरव, प्रचार, दान सुधार अछूतोद्धार स्वराज्य प्राप्ति आदि क्षेत्रों में क्या करणीय है यह विचारना चाहिये।

१—शिक्षा बड़े महत्त्व का विषय है। गुरुकुलों की शिक्षा पूर्ण नहीं है और न वह राष्ट्रव्यापी ही बन सकती। अतएव एक चार्टर्ड 'आर्य विश्व विद्यालय' के स्थापित होने की नितान्त आवश्यकता है जहाँ वैदिक आदर्शों के अनुसार त्याग और तप करते हुए सब विद्याओं का अनुशीलन किया जा सके।

वैदिक संस्कृति, व्यासक पाण्डित्य, ब्रह्मवर्ष और कुलभाव (साम्यभाव) स्वामी दयानन्द की शिक्षा प्रणाली के मौलिक सिद्धान्त हैं। 'आर्य विश्व विद्यालय' होने से यह प्रश्न ही नहीं रहता कि हमारी उपाधियों को लोग स्वीकार नहीं करते अतएव हमारे लड़के फिर बाहर की परीक्षाएँ पास करें, न इस शिक्षायत के लिये भी अवकाश रहता है कि आर्य समाजी अपने लड़कों को गुरुकुल नहीं भेजते। वास्तव में अभी तक किस गुरुकुल में धनुर्वेद अर्थात् जो राज सम्बन्धी काम करना है, शास्त्राध्य विद्या नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास, कवयद आदि क्षत्रियोचित विद्या जिसका सत्य रूप प्रकाश में आदेश किया गया है सिलाई जाती है? अथर्ववेद जिसको शिल्प विद्या कहते हैं जिससे पदार्थ उनके गुरु विज्ञान, क्रिया कौशल नानाविध पदार्थों का निर्माण व सब प्रकार की हस्त क्रिया और यंत्र विद्या (जिनका स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में जोर दार निर्देश किया है उनके सिखाने का क्या प्रबन्ध किया गया है? अतएव स्पष्ट है कि क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों की यानी तीन वर्णों की शिक्षा का कोई खन्व नहीं। ऐसी दशा में समाज की रक्षा कैसे हो सकती है? केवल विज्ञापन बाजी लच्छेदार लेख और भावुक भाषणों से गुरुकुलों को चलाना सम्भव नहीं। शिक्षा को पूर्णता के लिये 'आर्य विश्व विद्यालय' की स्थापना जरूरी है। अब सरकारी सहायता लेना भी बुरा नहीं।

२—संगठन—सब कहीं भगड़े और दल बन्दी का जोर है। समाजों के चुनावों में ग्यारह महीने के चन्दे के बजाय चरित्र और धर्म मय जीवन को अधिक महत्व दिया जाना चाहिये। लोकोपकारी संस्थाओं का समाज से अलग संगठन किया जाना चाहिए और संस्थाओं में भी उनके अधिकार विशेष रूप से मिलने चाहियें जो पुष्कल धन से दीर्घ सेवा से संस्था की सेवा करें। समाजों के प्रधान व प्रतिनिधि सभा के प्रधान व प्रतिनिधि सभा के प्रधान धार्मिक व्यक्ति चुने जाकर उन्हें अपनी कार्य कारिणी समिति (cabinet) बनाने का अधिकार

दिया जाना चाहिये। जो लोग जाति पांति के भगड़े फैलावें उन्हें समाज से अलग कर दिया जाय तभी संगठन दृढ़ हो सकता है।

३—अच्छूतोद्धार—यद्यपि स्वामी दयानन्दजी ने शूद्रों को बहुत अधिकार दिये तथापि आर्यसमाज का अच्छूतोद्धार के सम्बन्ध में बहुत कर्तव्य शेष है। हमारे उद्देश्य की पूर्ति इससे नहीं होती कि अच्छूतों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार मिल जाय। इस प्रकार तो आर्यसमाज पर कार्य भार और बढ़ता है क्योंकि मूर्त पूजो की संख्या बढ़ती है। हमारे मन्दिर तो सबके लिये खुले हैं। हमारा तो यही कर्तव्य है कि अच्छूतों को अधिकाधिक संख्या में समाज के सदस्य बनाकर उन्हें शौच शिक्षा संस्कृत और वैदिक भाषों में समन्वित करें जिससे वे उत्तम नागरिक बन सकें।

४—गोरक्षा—के सम्बन्ध में आर्यसमाज ने क्रियात्मक कार्य विशेष नहीं किया। एक भी आदर्श गोशाला स्थापित नहीं की गई। यदि आर्य सज्जन प्रत्येक स्थान पर यथासम्भव एक एक सहकारी गोशाला स्थापित कर स्वयं व अपने बच्चों को गोदुग्ध पिलाने का व्रत ग्रहण करें तो अति उत्तम कार्य हो जावे। ऐसी गोशाला (Cooperative Dairy) के लिए सरकारी सहायता भी मिल सकती है। बूढ़ी गायें साहूकारों की गोशालाओं में भेजी जा सकती हैं क्योंकि वे केवल ऐसी ही गायों का पालन करने पर खर्च करते हैं।

५—प्रचार—प्रचार की बड़ी सखत जरूरत है। हैदराबाद को जेलों में हजारों सत्याग्रही ऐसे देखे गये जिनको संध्या भी नहीं आती थी। प्रचार से ही विचार परिवर्तन होता है। सौ प्रचारिकाओं की संख्या भी काफी होनी चाहिए। गाँवों में प्रचार के लिए कुछ बैलगाड़ी ऐसी तैयार की जायें जो बन्द डिब्बे नुमा हों उनमें एक फर्शी, पेट्रोमैक्स लेम्प, बाजा तबला व टूटने लाली मेज कुर्सी का सैट हो। उनमें अनेक विषयों पर ट्रैक्ट (पुस्तिकाएँ) और साधारण रोगों की दवा भी रहे। इनमें एक एक प्रचारक

कौशिकी रसायन

समस्त स्त्री रोगों की एक ही दवा है, श्वेत प्रदर पर अत्यन्त चमत्कार दिखाती है, स्त्रियों की हर प्रकार की दुबलता को दूर करती है और गर्भ के लिये अत्यन्त सहायक है।
मू० २० दिन की सेवन योग्य १०) तोले

स्वर्ण मिश्रित चन्द्रोदय

(सिद्धमकरध्वज)

यह आयुर्वेद की प्रधान औषधि है। हृदय तथा स्नायु को दुबलता को दूर करता है। स्मरण शक्ति का बहुत बढ़ाता है। सिर घूमना एवं आदि की अव्ययता औषधि है। होलदिली, विल का भङ्कन, किसी आकस्मिक घटना से एक दम स्थिर हो जाना आदि मानसिक रोगों में लाभकारी होता है।

विशेष कर सन्निपातावस्था में कफ घिर आने पर अद्भुत कार्य करता है। स्वप्नदोष, धातु दोषल्य, तरलता, तथा नपुंसकता इसके यथा विधि सेवन से समूल नष्ट हो जाती हैं बुढ़ापे को रोकता एवं रतिशक्ति बढ़ाता है।
मूल्य ४) माशा

स्वर्ण भरम

क्षय, मस्तिष्क के रोग बीर्य विकार पर अत्यन्त लाभदायक मूल्य ४) माशा।

मृगाङ्ग

राजयक्ष्मा (तपैदिक), जीर्ण उ्वर, विषम उ्वर फेफड़ा की कमजोरी, उ्वराभय, समग्रहणी आदि को कुछ दिन सेवन करने से समूल नष्ट करता है, शीत ऋतु में, इसका सेवन विशेष लाभकारी है। मूल्य ५) ४० माशा

सब शहरों में एजेन्टों की आवश्यकता है।

पता—आयुर्वेदिक प्रयोगशाला, गुरुकुल इन्दावन (मथुरा)

मालती वसन्त

विषम उ्वर, जीर्ण उ्वर, क्षय, मन्दाग्नि, निर्बलता, हरातर पर अद्भुत गुणकारी है। योरोप वाले भी इसका प्रयोग कर रहे हैं।

मू० १५) तोला

स्वर्ण पर्वटी

संग्रहणी, अम्लपित्त, क्षीणता, पतले दस्त आदि पर यह अत्यन्त गुणकारी सिद्ध हुआ है। उक्त रोगों की इससे बढ़िया औषध बहुत कम है।

मू० १५) तोला

नाम औषधि रोग मूल्य एक तोले के
स्वर्ण भरम क्षय, मस्तिष्क के रोग, बीर्य विकारे ४८)
अन्नक भरम क्षय, वृमा, अशक्ति, सर्व रोग ५)
ताज भरम उ्वर रोग, प्रमेह, अशक्ति, स्वप्नदोष ५)
अश्लीक भरम क्षय, जीर्ण उ्वर, श्वास ५)
शोह भरम रक्तवर्द्धक पांडु, संग्रहणी, क्षय, वृम, रजत भरम वातव्याधि, मस्तिष्क के रोग, प्रमेह १)
पराद भष्म प्रमेह, प्रदर, जीर्ण उ्वर, नेत्र रोग २)
नाग भरम मूत्र रोग, गुल्म, शूल, अर्श ३)
बङ्ग भरम अशक्ति प्रमेह, बहुमूत्र, वृम ॥)
श्वर्ण माणिक्य गाम्गाव के रोग, पांडु, अशक्ति, प्रमेह १)

शास्त्रोंका निचोड़ !!! अनुभूत योगों का भंडार !!!

वेदों के लिये कल्पतरु !

हरिहर संहिता

वैद्य समुदाय को यह जानकर अनान्यतन आनन्दोल्लास होगा कि दिल्ली के प्रसिद्ध वी० एल० आयुर्वेद विद्यालय के भूतपूज प्रधानाध्यापक तथा मुरादाबाद नगरके ख्यातनामा लब्ध प्रातःचिकित्सक वैद्यराज श्रीमान् पं० हरिहरनाथजी साहिवाचार्य ने महर्षिर्षी की पुरानी संहिताओं के दुरुद्ध होने के कारण तथा आयुर्वेद प्रेमियों की कठिनाइयों को दूर करने के लिये इस हरिहर संहिता का निर्माण कर दिया है। इस बहुमूल्य ग्रन्थ की रत्नाभा करना स्वर्ण है। आयुर्वेद के दिग्गज आचार्यों ने भी इसका यशो गान मुक्त कंठ से किया है। पुस्तक क्या है ? वैद्यराजजी के एक तिहाई सदी के अग्रमूल्य तथा अलभ्य अनुभव का निर्मल वपण है। इसके साथ साने में सुगन्ध यह कि भारत के दूसरे आचार्यों तथा मित्रवर्ग के गुप्त बहुमूल्य देशी विदेशी अनुभूत योग तथा उनके बनाने की सरल क्रिया, अनुमान पध्या, पथ्य संस्कृत में न केवल पद्यरूप में बल्क गद्य में भी लिखे हैं। इस प्रकार इस संहिता का नाम अन्वर्था है। तिस पर इसका साथ साथ हिन्दी अनुवाद मुरादाबाद निवासी वैद्यानुचर श्री श्रीमप्रकाश शर्मा ने अत्यन्त विशद सरल तथा भावपूर्वा भाषा में किया है।

इस पुस्तक दशान मार्ग से चिकित्सा करने पर साधारण से साधारण वैद्य भी कुच्छ से कुच्छ तथा आध्य से असाध्य राग की जड़ को निर्मूल कर यश सधुद्ध तथा धर्म वन अर्जन कर सकता है। संकट के समय यह गुरुवत् प्रथ प्रदर्शक है। वयों तथा छात्रों का अनिवार्य सहायक है।

प्राचीन संहिताओं के पथपर चलकर नवीन युग की आवश्यकताओं को आरचय जनक सुगम रीति से हल कर देता इस ग्रन्थ का अन्ठा गुण है। सच पूछिये तो आचार्य जी ने प्राचीन महर्षियों को तरह इसमें अपना हृदय खोल कर रख दिया है। भद्रा घड़ बिक रहा है। शीघ्रता कीजिए। इसका मूल्य गुण प्राप्ती ही समझ सकता है।

११२ पृष्ठ के विशाल काय ग्रन्थ का मूल्य लोकोपकारार्थ केवल ३) रु० छपाई आकर्षक तथा कागज सुन्दर और चिकना है। कमोशन डाक ठग्य पृथक।

पता—मैनेजर "महर्षि औषधालय" (A A)

मुनिगली, मुरादाबाद यू० पी० ।

कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ

की फकीरी जड़ी बूटी

इस फकीरी जड़ी बूटी के केवल १२ दिन के लेप से कुष्ठ श्वेत कुष्ठ (सफेदी) या चरकसा महारोग जड़ से प्रराम होता है। अगर आप हनामी बिज्ञापनों के भ्रोले में पढ़कर टो ना चुके हैं, तो एक बार इस बनीपधि को इस्तेमाल कर आशेय होवे विश्वास नहीं हो तो एक आने का टिकट जमा कर चौगुनी मूल्य वापिस की शर्त जिला लें। मूल्य २) रुपये १२ दिन का ३) रु०

सफेद बाल काला

जिजाब से नहीं। हमारे आयुर्वेदिक बीरेन्द्रमोहिनी सुगन्धित तैल से पका बाज जड़ से काला पैदा होकर स्याधी काला नहीं रहे तो चौगुना मूल्य वापिस की शर्त एक आने का टिकट पर जिला लें एक घाघ बाज पका हो तो २) घाघा से अधिक पका हो तो ३।) और बिककुल पका हो तो ३।) का लेख मंगा लें। पता—देश उपकारक औषधालय न० २२ पोस्ट कतरी सराय। (गया) (३६)

श्री पूज्य महत्मा नारायण स्वामी जी कृत उत्तम पुस्तक

गृहस्थ जीवन रहस्य

विवाह के अवसर पर वर वधू को भेट देने के लिए उत्तम ग्रन्थ। इस पुस्तक में विवाहित जीवन व गृहस्थ के सम्बन्ध में सब जानकारी के लिए विषय वर्ज हैं। श्री नारायण स्वामी जी के इन ग्रन्थ को पढ़ कर देवियाँ सच्ची गृह लक्ष्मी बनेंगी। आर्याभार्यों को इस पवित्र पुस्तक का विशय प्रचार करना चाहिए। सर्वज्ञ पुस्तक का मूल्य केवल १।) रु०

आत्म-दर्शन

आत्मा क्या है? यह विषय बड़ा गूढ़ है श्री नारायण स्वामी जी ने इस पुस्तक में आत्मा के विषय में भिन्न भिन्न धर्म वालों का मत और सिद्धन्त देकर उनकी भली प्रकार व्याख्या तथा समालोचना की है। फिर वैदिक धर्म का आत्मा के विषय में जो विश्वास है तथा सिद्धन्त है उसे भी विस्तार से समझाया है। मूल्य १।) रु०

आर्यसमाज क्या है?

इस पुस्तक में आर्यसमाज और वैदिक धर्म के सम्बन्ध में सब जानकारी भर दी गई है। मुखर सिद्धांत, नियम आदि सभी कुछ विस्तार से समझाया है। प्रचार के लिए अत्युत्तम है। मू० पाँच आना।

मृत्यु और परलोक

मृत्यु क्या है? मरने के बाद क्या होता है? परलोक क्या है? आदि आदि जितने भी इस विषय में प्रश्न किए जा सकते हैं उन सबका विस्तार से उत्तर दिया है। सुन्दर कण्डे की सुनहरी जिल्द सहित मूल्य बारह आना।

प्राणायाम विधि—मूल्य दो आना

हर आर्डर के साथ सुन्दर आर्ग कैलंडर १९४० मुफ्त भेजा जावेगा।

म० राजपाल एण्ड सन्स, आर्य पुस्तकालय,
अनारकली लाहौर।

अमृतांजन

आपका सखा

गो का चिकित्सक रोगी का सेवक



सिर दर्द, पुट्टे का दर्द, सर्दी, कफ

दांत का दर्द, कटा फोड़ा, घाव,

कीड़ों का बहक आदि का

“अमृतांजन” अकसीर

वधा है। यह दवा

विशुद्ध भारतीय

मसाला में

बना हुआ है।

सर्वत्र मिलता है।—

अमृतांजन लिमिटेड,

पो० बक्स नं० ६८२५ कलकत्ता

फोन व० न० २०५३

सावधान

सावधान

सावधान

शुद्ध-हींग

हींग के गुणों से अभागा मनुष्य परिचित न हीगा, चायुर्वेद में इसे पाचनशक्ति को दीप्त करने वाला, कोंकों का नाशक तथा वायु सम्बन्धी समस्त रोगों का उच्छेदक कहा गया है। परन्तु आजकल यह अमूल्य वस्तु शुद्ध नहीं मिलती। सब बड़े बड़े व्यापारी स्वार्थीवश इसमें पत्थर मिलान लग पड़े। इस अवस्था में शुद्ध हींग का प्रचार करना आवश्यक होगा है। जनता को देखे बाजों से सावधान करने के लिये हम शुद्ध और बना-बटी पत्थर मिली हींग की मुगम परीक्षा नीचे लिख देते हैं।

मुगम परीक्षा

आधा तोला पानी लेकर उसमें एक माया हींग कूट कर बालें और अगुली से उसे पानी में हल करें यदि हींग शुद्ध होगी तो सारी हल हो जावेगी और यदि पत्थर मिली होगी तो पत्थर नीचे बैठ जावेगा हल न होगा। इस यही हींग की ठीक परीक्षा है यह परीक्षा लाहौर से छपे कैथेद्वय छत निघण्टु के पृष्ठ ३६२ पर लिखी है। शुद्ध हींग का रंग लाल स्याह होता है और उस में तेज होता है। परन्तु रंग से हींग को परीक्षा करना बहुत कठिन है इसे कोई कोई विरोध परीक्षक ही समझ सकते हैं। नमूना हमारे यहाँ से मुफ्त भगावें जिसमें ६ माशा शुद्ध हींग हांगो मूल्य १० रु० ६० सें। डाकछत्रे प्राहक के जिम्मे कमोशन कुछ नहीं मिलेगी।

व्यापारी महोदय कृपया पत्थर मिली हींग का आर्डर न दें क्योंकि न वह हमारे पास है और नहीं हम दूसरे से लेकर भेज सकते हैं। "हींग का इतिहास" नामक सूचीपत्र मुफ्त भंगावे।

नोट:—हमारे यहाँ सच्चे मोती आदिक बड़ मूल्य वस्तु प्रो द्वारा तैयार किया हुआ शुद्ध सुरमा भी हर समय विक्रयार्थ प्रस्तुत रहता है। ऐनक छुदाने वाला.....१०) रु० तोला २।) रु० शीशी ३ माया की, कुकरे, पानी, जालो, जलन दवाई .

(=) शीशी फोलो, जाला, पड़वाल, नाखून व्वाई ॥) शीशी कमोशन और डाकछत्रे नहीं मिलेगा। सूचीपत्र मुफ्त।

मैनेजर—भीमसेन दिह्र सुरमा कार्यालय डेराहमाईलखान

Deraismail Khan

(४३)

बल व बोर्य बढानेवालो

महानुपारी

गालिया

स्वप्नरोध, कमजोरी, कञ्जयत्, धातु-क्षीणता, आदि रोगों को दूर करके शक्ति देगी है। फी (ड० १) रु०

पुरुषकत्वार्थि

पुरुष के गुण भाग की शिथिलता, बकता, आदि इस लेप के लगाने में नष्ट होकर सच्चा पुरुषत्व प्राप्त होगा है। फी (ड० १) रु०

राजवैद्य नारायणजी केशवजी
जामनगर, काठियावाड़
भागरा बासदेवमसाह सम्म जोहरी बाजार

हकीम तुलसी प्रसाद अग्रवाल की

असली-मोठी

बालजीवन

चवानेसे घुडी

बच्चों की हर एक बीमारी दूर होगी
निबल बच्चे चलवान बन जावेगे
सब जगह विक्री है, नेकली से बच्ची
नये सौदागर नमूना मुफ्त भगावे

मुफ्त में उपलब्ध लेखों के नाम भेजने पर
स्वास्थ्यसाधन पुस्तक भेजेंगे
पता: बालजीवन कार्यालय अलीगढ़, यूपी

आगरा एजेंट—हजारीलाल,
फिराना मचेंबट राबतवाड़ा, भागरा।

और एक एक हांकने वाला गांव गांव घूम कर प्रचार करें। हांकने वाले को तबला बजाना और लैम्प आदि जलाने का भी ज्ञान होना चाहिये। जो लोग दबा के दाम दे सकें उनसे लिए जायँ इससे भी बहुत खर्चा निकल आवेगा।

६—विशेष प्रचारक—समाज में कुछ विशेषज्ञों की भी आवश्यकता है। जिसे समाज के सिद्धान्तों का साधारण ज्ञान होते हुए किसी एक विषय का पूर्ण और गम्भीर ज्ञान हो। ऐसा व्यक्ति ही उस विषय पर कुछ महत्वपूर्ण सम्मति दे सकता और योजना तैयार कर सकता है। आर्यसमाज में शिक्षा विशेषज्ञ गोरक्षा विशेषज्ञ, दान प्रणाली विशेषज्ञ, जैसे परिदत्तो का अभाव सा ही है। यह युग विज्ञान और विशेषज्ञों का है। वायसराय भी विशेषज्ञों (experts) की राय लेता रहता है अतएव ऐसे विशेषज्ञ तैयार करने के लिए एक निधि स्थापित होनी चाहिये जिसमें से किसी विषय की खोज या विशेषज्ञान प्राप्त करने वाले को २-४ वर्ष के लिए समुचित छात्रवृत्ति दी जाये, जिसमें वह निरिचिन्तना पूर्वक विशेष ज्ञान का सम्पादन कर सके और समाज को लाभ पहुंचा सके।

६—दान प्रणाली—देश में कुदान बहुत होता है दान सु गार से सम्बन्ध में आर्यसमाज के सम्बन्ध में आर्यसमाज के महान् नेता स्वर्गाथ लाला लाजपतराय ने जो अपने ग्रन्थ यूनाइटेड स्टेट्स औफ अमरीका में लिखा है उसे अमल में लाने के लिए आर्यसमाजियों को दान संघ स्थापित करने चाहिये और दान प्रणाली का सुधार करना चाहिये।

८—स्वराज्य प्राप्ति—के लिए राजार्थ सभा का संगठन जोर से होना चाहिए जिससे धार्मिकता और राष्ट्रीयता का समन्वय हो सके। स्वराज्य शब्द सबसे पहिले स्वामीजी ने प्रयुक्त किया था यह स्मरण रहे।

९—आश्रम व्यवस्था—ब्रह्मचर्य आश्रम सब की आधार शिला है। स्वामी जी ने लिखा है कि राजनियम और समाज नियम ऐसा हो कि ८ वर्ष के पश्चात्

सब कोई लड़कों को गुरुकुल भेजने को बाध्य हों। इस पर अमल होना चाहिये। १०-१५ वर्ष के बाद आर्य लोग वानप्रस्थ हो जाने चाहिये, परन्तु उनके रहने को आश्रमों या गुरुकुलों में प्रबन्ध होना चाहिए और जो निर्धन हों उनके लिए भोजन का भी कुछ प्रबन्ध आवश्यक है। उनसे थोड़ा हल्का सा अर्थ समय (चार घंटे) कुछ काम भी लिया जाय तो कोई बुराई नहीं। समाज में संन्यासियों की काफी संख्या है परन्तु दीक्षा देने वाले महाराम इस बात का विचार नहीं करते कि स्वामी जी ने केवल ब्राह्मणों को अर्थान् गुण कर्म स्वभाव से ब्रह्मवृत्ति वालों को ही संन्यास लेने का अधिकार बताया है। सब प्रकार के साधुओं से आर्यसमाज का उद्देश्य गिर जाने की बहुत आशंका है।

ये कुछ आवश्यक और व्यावहारिक बातें पाठकों के सामने रखी गईं। आशा है अन्य सज्जन अपने अपने विचार प्रगट कर योजनाएं तैयार करेंगे। करने के लिए और भी बहुत सी बातें हैं क्योंकि महर्षि ने संसार को माया रूपी या असार नहीं बताया बल्कि सच्चा बतलाया है जिसकी उन्नति आवश्यक है।

गालियां

यह गोलियों अमीरों के लिए जिन्दगी का आनन्द उठाने और ऐसे नाकारा लोगों के लिये तैयार की हैं, जो दुनियाबी इच्छाओं को तरसते हों, शरीर में विजली के समान ताकत पैदा करेंगी, जिसका अन्दाजा सेवन करने वाले ही लगा सकते हैं।

३२ गोलियाँ ३॥ एक दर्जन १॥। फायदा न हो तो कीमत वापिस होगी।

सुखदायक कम्पनी जालन्धर शहर।

(४१) Jallundhar City


 गद्य-गीत

अमर आहुति !

एक वृत्त था—बहुत बड़ा और बहुत विशाल काय ! इस वृत्त पर स्वार्थ, साम्प्रदायिकता, ईर्ष्या, द्वेष गुलामी, दमन और आत्म-हनन के अनेकानेक फल लगे थे ।

इस वृत्त के प्रदेश में यह फल, उदारता, समानता, ऐक्य, प्रेम, आस्था, इन्साफ और तरक्की के नाम से प्रसिद्ध थे ।

इस वृत्त की छाया में सबा करोड़ से ऊपर चोटीचारी हाड़ मॉस के असहाय पुतले आस्रय ले रहे थे । वृत्त के यह फल ही इनके जीवन के साधन थे, और इन्हीं पर यह तड़पते—तिलमिलाते हुए धीरे धीरे सभ्यता, संस्कृति अधिकार, कर्षण्य, और जीवन मृत्यु का भेद भूलते जा रहे थे ।

परन्तु वृत्त का मूल आधार और स्तम्भ यही ऋषि पुत्र थे इन्हीं के खून पसीने की कमाई और सहयोग से यह हरा भरा था ।

तुमसे यह सब कुछ न देखा गया, और जब कि दुनियाँ भर में जीवन और अधिकारों का महान् संघर्ष मचा है—यह अत्याचार देखा भी कैसे जा सकता था ?

तुमने न्याय और मनुष्यता के नाम पर इस वृत्त की पर्याय बदलने का भरसक प्रयत्न किया—पर तु इसमें दुरभिमान, अहंकार कट्टरता और धर्मांधता की जड़े इतनी मजबूत होगईं थीं कि उन पर वास्तविकता और स्थिति का प्रभाव डाल सकना कठिन ही नहीं बरन् नितान्त असम्भव था । इसकी फिर से पर्याय बदलने के लिये इसे खींच कर नया खाद लगाने की जरूरत थी—और वह भी बलिदान ! कुरबानी ! समाज के नौनिहालों के शीरा, और प्राणों का ।

तुम इस वृत्त का महत्व समझते थे । तुम्हारे रक्त से उसे खोया नवजीवन मिलता था और विनाशकारी कड़वे फलों के स्थान पर नवीन पुष्प पल्लवों की महक से समाज और देश का सामूहिक उपकार होता था ।

तुमने इस विर बन्धनीय भावना का स्वागत किया और हँसते हँसते इस वृत्त पर अपने ध्रुव प्राणों की 'अमर आहुति' बदाही ।

शाहीद तुम धन्य हो ।

लेखक—

कल्याणकुमार 'शशि'

मलखान !

(हैदराबाद सत्याग्रह की
सच्ची कहानी)

लेखक—
विद्यानिधि सिद्धान्तालङ्कार



इकी के पास रामपुर गांव में सूर्य वंशी ठाकुरों की बस्ती है। मलखान-सिंह वहीं रहता है। अपने पूर्वजों का उष्ण रक्त अब भी उसकी धमनियों में बहता है। स्वाधीनता के दिव्य मन्त्र का कट्टर उपासक है।

पिछले दिनों, जब एक महात्मा के आह्वान पर, कांग्रेस ने नौकरशाही के विरुद्ध सत्याग्रह का विपुल संप्राम छेड़ा था, मलखान, कांग्रेसी सैन्य में भरती होकर, भोपण लाठी वर्षों में हँसते हँसते जा चुका था। कई मास को सख्त कैद भोगकर जब वह बिजयी वीर की भाँति अपने ग्राम में लौटा था—ग्रामवासियों ने उसका हार्दिक अभिनन्दन किया था। वह अनार्थों का रक्षक, दुखियों का सहारा और शरणागत वत्सल था।

उस दिन जब इकी का पहला जत्था हैदराबाद जाने लगा, मलखान उसके साथ हो लिया। लोगों ने बहुतेरा कहा, “कमसे कम पत्नी को तो सूचित कर दो”—मगर मलखान का जबाब तैयार था।

“वह अपने मायके है अब कौन खबर करता फिरे।”

“और लड़का ?”

“वह भी अपनी माँ के पास है।”

“तब तुम्हें इस तरह बाल बच्चों से लुक छिप कर नहीं जाने दिया जायगा। दूसरा जत्था थोड़े ही दिन

बाद रवाना होगा। उसमें चले जाना।” अधिकारियों ने कहा।

‘सूर्यवंशी सदा हिरोल७ में रहे हैं। मेरा स्थान पहले ही जथे में है।’

टह स्वर में मलखान बोला।

कोई चारा न देख अधिकारी चुप होगये। मलखान को पहले जत्थे में जाने का गौरव प्राप्त हुआ।

+ + + + +

एक साल सपरिश्रम कारावास का दण्ड पाकर वह जेल की चार दीवारी में बन्द कर दिया गया।

उसके गठले बदन और तेजस्वी चेहरे पर वार्डों और जेल वारोंगा को भी डह होनी। तंग करने के अभिप्राय से वे कभी कभी उसे ३०-३५ सेर ज्वार पीसने के लिए दे देते और न पीस सकने पर खूब मार लगाते। कभी कभी इतना बजन खिचवाने, मस्त भैसा भी जिसे मुश्किल से खेंच सकता।

इतनी मेहनत के बाद भोजन क्या मिलता ? वही ज्वार की सुखी रोटी। आधी रेत मिली हुई। लाल मिर्चों और तेल से भरा दाल का पानी, जिसमें डुबकी लगाने से भी एक दाना न मिले। पीने को पानी की मुश्किल से चौबीस घण्टे में सिर्फ दो छोटी छोटी लुटियायें। मलखान के श्रोत भी न भीगते। उसे सोने

✱ रजपूती लड़ाइयों में सबसे आगे चलने वाली सेना का नाम था।

के लिये जो कोठरी दी गई थी उसमें सूर्य की किरणों भी आने से घबराती।

मगर सत्याग्रही के लिये इन कष्टों की शिकायत कहा ? वह तो हँस हँस कर ऐसी विपत्तियाँ का सामना करता है। मलपान सत्याग्रह-सभामें मजा हुआ सिपाही था। गिडगिडाना, घगराना आता न था।

वार्डर लोग इस पर ओर भी खिजते। वे दारोगा से बिना पूछे ही उसे तरह तरह की मनमानी आज्ञायें दे दते।

एक दिन, षष्ठी मेहनत करने के बाद भा, यह २५ सेर बाजरा न पास सका।

वार्डर का माका लग गया। तुरन्त दारोगा से शिकायत की।

“वह तो अच्छा खासा तन्दुरुस्त जान है। उस से इतना मामूला सा काम भा न हा सका ?”

दारोगा ने पूछा।

“चाहे ता सब कर सकना हूँ हुजूर। थाली पर बैठ कर कटोरे के कटोर दाल पी जाता है। मस्त पड़ा है।”

“फिर ?”

“मजहब पाक और दीनदारों की खिल्ल उडाने से फुरसत मिले तब न ?”

“हूँ।” दारोगा का चेहरा गम्भीर होगया।

सायकाल होते न होते मनखान डपड़ा बेड़ी में पड़ा था। रात भर अकेला सूनी कोठरी में पड़ा रहा।

धीरे धीरे प्रभात हुआ। कोठरी का आवाज सुन कर मलखान ने अनुमान लगाया, सबेरा होगया है।

इतने में कोठरी का दरवाजा खुला और जेल दारोगा, हँसते हुए उससे सामने आ खड़ा हुआ। जब तक मलखान कुछ पूछता वह धीरे धीरे बोला—

“बाहर एक वार्डर कलम दवात लिये खड़ा है। यह लो, माफीनामा। मैं तब तक इस कोठरी से बाहर जाऊँगा, जब इस पर तुम्हारे दस्तखत देख लूँगा।

“और यदि मैं न करूँ, तब ?” मलपान बोला।

“तो आज की रात देखने के लिये तुम दुनियाँ में जिन्दान रह सकोगे।”

कठोर स्वर में दारोगा बोला।



शहीद मलपानसिंह जी का एकमात्र पुत्र
(राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री की गोद में)

“बोलो, दोनो मे से तुम्हें क्या पसन्द है ? रिहाई या मौत ?”

“ऐसी कायरत, पूर्ण रिहाई को अपेक्षा मैं मौत को ज्यादा अच्छी समझता हूँ।” दृढ़ निश्चयशक्त स्वर में मलखान बोला।

“तो बही हो”—कह कर दारोगा बाहर निकल गया और थोड़ी ही देर में चार दीर्घकाय अरब उस कोठरी में घुस आये।



धीरे धीरे पांच बज गये। सायंकाल हो आई। जेल से बाहर डूबते सूर्य की मन्द किरणें और पौधों पर पड़ रही थीं। बहुत दूर, गांव के किसान खेतों में स्वच्छ गीत गा रहे थे। गांव को आने वाली पगडंडो पर गाय जैसे के मुण्ड धीरे धीरे घर को चले आ रहे थे। स्वाज्ञा गा रहा था।

अकस्मात् मलखान को कोठरी पर से एक बड़ी चिड़िया विकट रुदन करती हुई उड़ गई। यह मलखान की चेतना थी। उसका घायल शरीर शाम होते न होते जेल अस्पताल में उपस्थित था। बेहोश। संज्ञाहीन।

सुदूर, ८०० मील के पानले पर, अपने मायके में बंठे मलखान को स्त्री मा, ठीक उसी समय, मानों किसीने भालों से काँच दिया हो, उड़ स्त्री सुलभ सकोच त्याग कर अपनी मा ने बोली—

‘मुझे रामपुर भिजवादा। मेरा जी बबड़ा रहा है। उन्हें ... उन्हें ... उन्हें ... उन्हें ...’ हमसे आगे न वाला गया। वह उच्छ्वसित स्वर में रोने लगी।

‘यह तुम्हें एकाएक क्या हो गया, बेटी ? अरे, तू रो क्यों रही है ? क्या बात है ?’ उसकी मां ने पूछा।
‘जैसे कोई मेरा गला दबा रहा है। मेरा दम घोट रहा है। मां, मां ! .. वे ... वे’

—बड़ पागलों की तरह आकाश के शून्य में तानने लगी। जैसे उसे कोई बुला रहा हो।

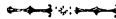
उसी समय, ठीक समय, हैदराबाद जेल के भैरव चिकित्सालय में मलखान के प्राण पखेरू उड़ गये। इधर उसकी स्त्री चीख मारकर बेहोश होगई।

... .. जब वह जागी प्रभात हो चुका था। उसके मा बाप उसे होश में आये देख आनन्द से उछल पड़े। उसकी मां धीरे धीरे उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी।

नीचे से डाकिये ने पुकारा। एक तार था। कांपते हाथों खोल कर वह पढ़ने लगा—

‘हैदराबाद जेल में कैदी मलखान का अस्पताल में देहान्त हागया।’ तार में लिखा था।

एक बार चीख कर मलखान की स्त्री फिर बेहोश होगई।



आत्रप्रयत्न सूचना

आर्थ मज्जन व आर्यसमाज के अधिकारी ध्यान दें !

‘सत्यार्थप्रकाश’ पुनः छपना शुरू हो गया है। जो महात्मात्र आर्य सज्जन व आर्य संस्थाएं प्रचारार्थ अपने नाम से अंकित विशेषरूप से सहस्रों की संख्या में ‘सत्यार्थप्रकाश’ चाहते हैं, वे अपने आर्डर अभी से शीघ्र भेजें जिससे कि उतने अधिक ह्रापे जावें। आर्डर के साथ २५) ८०)सैकड़ा के हिसाब से आधा मूल्य पेशगी भेजें।

पता—आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर।

सफलता

[ले०—पूज्य स्या० सर्वदानन्द जी महाराज]



सार में यह एक अद्भुत शक्ति है, यह दृष्टि पथ में तो नहीं आती तो भी प्राणीमात्र इसकी इच्छा करता हुआ दिखाई देता है। यही इसकी विचित्रता है। जिसको इसका दर्शन हो जाता है वह निहाल खुराहाल दृष्टि में आता है। यह सृष्टि में प्रत्यक्ष है। पशु आदि इच्छा की न्यूनता के कारण इससे बहुत दूर नहीं रहते हैं। मनुष्य ने अपनी इच्छाओं को बहुत ही विस्तार दिया है, इस कारण से ही यह सफलता कभी कभी इसका साथ छोड़ देती है। तत्काल मनुष्य विकल होकर दुःखों का स्थान बन जाता है। कुछ काल निढाल बेहाल रहकर पुनः इसके दर्शन के लिये बसनेबान् बन जाता है। इसी उधेड़वुन ताननुन में समस्त जीवन बीत जाता है। जो कार्य करना था वह तो न हुआ। अन्त समय जब अपने को असमर्थ पाता है, अतीत समय तो फिर नहीं आता पुनः यह अपनी भूल पर पड़ताता है। सफल होने की इच्छा से संसार में आया था निष्फल होकर के यहाँ से चला, संसार प्रवाह का यही कारण है। ऐसे दृष्टान्तों से शास्त्र भरा पड़ा है। जिसने मनुष्य के असली इशारा को समझ लिया, सफलता ने वास्तव में उसका ही साथ दिया। उसने ही संसार मार्गों को समाप्त और परमात्मा को प्राप्त किया। इस नियम के आधीन सफलता का तात्त्विक स्वरूप प्रकट होता है। यहाँ पर निष्फलता को पुनः स्थान नहीं है। जिसका कोई सरूप निष्फल नहीं होता है शास्त्र उसको ही परमात्मा बताता है। जब मनुष्य संसार के

स्वरूप को जनकर राग द्वेषादि दोषों को इसका कारण पहचान कर अपने स्वयत्न से सत्सग आभाषाय और प्रेम प्रयत्न से इससे पीड़ा छुड़ा लेता है तो वह भी परमात्मा क समान हो जाता है। इसी अवस्था का नाम मोक्ष है। यही सफलता या कामयाबी की चरम सीमा है। संसार में तो मनुष्य को सफलता और विफलता के साथ रहना ही पड़ता है बार बार की नःकामयाबी से मनुष्य रोता है और कभी कभी अपने हाथा अपने जवन को भी खाता है और सफलता का माथा हो जाने से मनुष्य हँसत और जीवन सुखमय हो जाता है। ससार ऐसे दृष्टान्तों से भरा पड़ा है। यथा परीक्षार्थी विद्यार्थी सफल होने के निमित्त दिन रात परिश्रम करता है परिणाम अनुकूल होने से प्रसन्न हो जाता और खुरी में फूला नहीं समता है। विपरीत परिणाम निकलने से विकल हो उदासीन है रोगी के समान दृष्टि में आता है। इस आघात से जिसने पीड़ा छुड़ा लिया वह न सफल होने के लिये यत्न करता है और कोई इस कष्ट की वृद्धि से भरता है। इसलिये मनुष्य को प्रत्येक कार्य करने के समय परिणाम पर दृष्टि अवश्य ही चालनी चाहिये। समझ से किया हुआ काम मनुष्य के सुख का कारण होता है। यदि आलस्य से किया या बिना सोचे ही कर दिया तो इसको दुःख का सामना ही करना पड़ता है। मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है फल परमात्मा के आधीन है। अतएव परिणाम जैसा भी निकले मनुष्य को अधिक इर्ष या शोक करना ठीक नहीं शांत स्वभाव होकर पुनः उस कार्य की सिद्धि के लिये यत्न करना ही उचित है। सफलता जब एक व्यक्ति का साथ देती है तो उसको प्रसन्न करती है

और जब इसका सम्बन्ध समुदाय से होता है तो समस्त समाज हर्ष में आजाता है। ऐसा तभी होता है जब समष्टि का भाव्य सुख प्रसार के लिये जागरूक होने पर होता है तब कोई इसका निमित्त बन कर केवल यश का भागी ही होता है वह गुण तो समष्टि में विद्यमान ही था उसके उदय करने के लिये किसी उच्च आत्मा की आवश्यकता थी, अतएव मनुष्यों को विचार पूर्वक पुरुषार्थ से कार्य करना चाहिये ज्ञात नहीं किस समय अष्ट मुखदायी पल में आरहा है और वर्तमान काल को सहायता को चाहता है यदि ऐसा न होगा तो फिर वह पीछे पड़कर कालान्तर में जागरूक होगा।

आर्यसमाज ने हैदराबाद का सत्याग्रह विचार-पूर्वक किया और सफलता ने उसका साथ दिया उस्ताह से सचेत और सावधान होकर वहाँ को आते थे। दर्शक लोग उनको देखकर हर्ष में आते थे। उद्यम के लिये द्रव्य दान की दाताओं के और सत्याग्रह में जाने वाले पुरुषों के अन्तःकरण में प्रभु की प्रेरणा ही थी। इस प्रकार की जागृति का हो जाना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है। दृढ़ विश्वास को देखकर अन्त में निजाम सरकार ने भी अपनी उदारता का परिचय दिया। सबको मुक्त किया और जो जड़ों से आया था किराया देकर वहाँ को भेज दिया अन्यथा दो लाख रुपये का और खर्च बढ़ जाता। ऐसी अवस्था से सामाजिक संसार को खुशी हुई इनकी अचित सलगतता से दर्शक समुदाय भी प्रसन्न हुआ। यह दृष्टि गत बात है कि प्रसन्न समुदाय को देखकर उदार पृष्ठ प्रसन्न ही होते हैं। अब समाज यदि पारस्परिक विवाद को हटा कर और अन्तर्वर्ती कलह को मिटा कर आगे बढ़ना चाहे तो बढ़ा ही अनुकूल अवसर है अन्यथा कुछ दिन परचात यह चर्चा हटी तो वहाँ की वहाँ ही गति सिद्धि होगी। विचार कर कोई अचछा प्रोप्राप्त सामने आने से और साधनी प्रवृत्ति में जाने से मनुष्य समुदाय के अन्तःकरण में बल का संचार होता रहेगा। उसके तीन उपाय हैं—
प्रथम—ऋषि दयानन्दजी महाराज ने गौ करुणानिधि

पुस्तक को लिखा जिसकी ओर आर्यसमाज का ध्यान ही नहीं गया, इस अंश में आर्यसमाज ऋषि के सम्देश से कितना दूर हट गया है आप ही जानें। दूध और घृत जिसका वल्लेख वेदों में आया है और जो बल बुद्धि की बुद्धि का निमित्त है इस पुरुषार्थहीन देश से कितना दूर हट गया है और जिस अंश में मिस्र भी था वह भी बनावट में जाकर असलियत से दूर होगया। इस ही कारण से काल पीढ़ित पशु लाखों की संख्या में मर रहे हैं। आर्यसमाज को इस तरफ ध्यान देना चाहिये था, जिसमें अचछा घृत और अचछा दूध मनुष्यों को मिले और कपिला, कामधेनु, सुरभी, विमला, रेनुका इत्यादि गौओं की नसलें जो अचछा दूध देने वाली बनें। गौ का दूध, घृत, तक्र, या दही जिस मनुष्य के आहार में सम्मिलित होता है यदि वह आरोग्यता के नियमों को जानता है तो निरोग ही रहता है। इस कार्य को समुदाय के सहारे किया जाय तो लाभ के सिवाय हानि कभी नहीं होती है, सैकड़ों आदमी इस कार्य में लगेंगे, बेरोजगारी से बचेंगे, शरीर अचछे हाँगे बर्दी साधारण पठन पाठन और स्वाध्याय सब कुछ हो सकता है। यदि आर्यसमाज इस कार्य को करे तो इसकी बुद्धि के लिये और उपाय भी सोचे जा सकते हैं। सात, आठ करोड़ रूपया गौशालाओं पर खर्च हो गया और हर साल पचीस, तीस लाख रूपया इसकी सहायता में आता है, लेकिन ऋषि का उद्देश्य इससे पूरा न हुआ और आर्यसमाज का इस ओर ध्यान न गया।

द्वितीय—सार्वदेशिक सभा का महोत्सव किसी भी प्रतिनिधि में प्रति वर्ष अवश्य ही होना चाहिये और वही प्रतिनिधि उसके समस्त भार को और उद्यम को संभालें, इस प्रतिनिधि के अचछे आदमी जो कार्य करने में चतुर हों उन्हें इस कार्य को सुपुर्द किया जाय और हर एक प्रतिनिधि से एक आदमी जो समझ की परीचा में चतुर हो भिन्नव से, आप्रह, प्रेम से या आदर से बुलाया जाय। इनका काम आर्यसमाज में आने वाली त्रुटियों पर विचार और उसके निराकरण



के उपायों का विचार ही करना होगा, पांच, छः वर्ष के बाद एक प्रतिनिधि का भाग होगा जो कठिन नहीं है। इसका होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक वस्तु संस्कारों से सुन्दरता में आती है और सबल हो जाती है। इसके अभाव में वस्तु वैरूप होकर निर्मूल्य सी दिखाई देती है। जो समय बीत गया सो बीत गया और इसका आरम्भ होना चाहिये और उसी स्थान से स्वयंसेवक भावों वीर दल का निर्माण भी होना चाहिये। सेवक का यह गुण हो—वह उत्साही, बलवान्, आज्ञाकारी और चरित्रवान् होना चाहिये। यह बड़ा ही जरूरी काम है, इसके बिना कोई भी समुदाय बल में नहीं आता, जब शिक्षा हो किसी को नहीं दी गई तो समय आने पर अस्वाभाविक काम को कैसे करने लगेगा। समय ने अपना स्वरूप दिखा दिया है यदि आर्यसमाज इस बात को हितकर समझता है तो उसको इस काम में तत्पर हो जाना चाहिये।

तृतीय—सार्वदेशिक सभा को एक समूह बनाना चाहिये जिसमें पांच हजार प्रति वर्ष ठय्य होगा यदि कार्य का स्वरूप ठीक हो गया तो अल्पकाल के ही परवान् अपने भार को आप उठा लेगा, वह ये हैं— एक अंग्रेजी का विद्वान् एम० ए० जो समझदार हो बोलने और लिखने में चतुर और वैदिकधर्म का प्रेमी हो। यत्न से इसका मिलना तो सुगम है और एक संस्कृत का विद्वान् जो सर्व शास्त्र निपुण, शास्त्रमर्मज्ञ इसकी संज्ञा ऋषि वेदभाष्य करते समय वेद पारंग लिखते हैं, ऐसा होना चाहिये और दो शास्त्री परीक्षा पास हों जिनकी लेखनशैली बहुत अच्छी हो और एक हिन्दी, संस्कृत से परिचित हो, फारसी का आलिम हो। इन पर पांच हजार रुपये साल खर्च होगा। इसका काम यह होगा—एक अखबार अच्छे कलेक्टर में जिसमें वैदिकधर्म की चर्चा हो, निकाला जाय। वह दोनों मिलकर विचारपूर्वक ऋग्वेद का आरम्भ करें। काम तो कठिन प्रतीत होता है, मगर थोड़ा समय आगे चल कर कार्य सरलता में आजायेगा, अम्बास के आधीन होकर बड़े बड़े भौतिक

काम लोकपथ में देखे जाते हैं। ये भी वैसा ही होगा और इनके निरुद्ध उपदेश को लेखक लिखेंगे और फारसी का जो आलिम है वह अच्छे प्रन्थों में से जिनमें आलिमों ने अपनी सम्मति को प्रकट किया है गया या पथ में, हिन्दी में इसके तात्पर्य को लिखेगा। जैसे फौजों ने गीता को फारसी में लिखा। यदि कोई शंका आर्यसमाज पर करेगा तो उसका उत्तर यही सभा देगी और यदि कोई लेखक शस्त्रार्थ चलायेगा तो उसका विचार यही सना करेगी और यदि कोई आर्यसमाज में ग्रंथ रचना करे तो वह इसी सभा के पास आवे यदि उपयोगी हो तो लेखक को उसका कुछ मूल्य तो दिया जाय मगर छपाना इसका ही काम होगा। यदि लेखक ऐसा न करे तो लेखक उस का स्वयं जिम्मेवार होगा इससे यह लाभ होगा कि अन्य रचित प्रन्थ को लेकर लोग आर्यसमाज पर शंका करते हैं और अड़चन सामने आती है उससे बचाव होगा ये मार्ग बड़ा ही अच्छा है ऐसे बड़े समाज-संसार में इसका होना बड़ा ही जरूरी था मगर इधर ध्यान नहीं दिया, आर्यसमाज को चाहिये था कि ऐसे कार्य के लिये उपयोगी विद्वानों को बना लेता अथवा यदि ध्यान दिया जाय तो पांच, सात वर्ष में ऐसे विद्वान् हो सकते हैं। संस्कृत का साहित्य बड़े ही विस्तार में विद्यमान है, उसको वैदिक मार्ग में लाने की आवश्यकता है और पाठ्यप्रणाली जो प्रचलित है एक मूल्य में लाना इसका काम होगा। यदि किसी अनुप्य या समाज से कोई उत्तम वा मन्द काम हो जाता है, उसने उसके स्वभाव का या विचार का ठीक ठीक पता नहीं चलता है, किन्तु उसके प्रति दिन छोटे छोटे कामों से या व्यवहारों से उसका असली स्वरूप जाना जाता है। इसलिये जो सुसाइटी अपने छोटे छोटे कामों को ठीक कर लेती है तो उनसे जो मिल कर बड़ा काम बनता है वह भी ठीक होता है।

दोहा—पंथों में पति रही, पाये लाज करोड़।
अब समाज समझ से काम ले, देतू तू मैं—मैं छोड़।
इसमें ही है हित लेना, बन जा स्वार्थ का त्यागी।
लोकमती है सर्वदा, नव-नव गुण अनुरागी ॥

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह का इतिहास आवश्यक निवेदन

परमेश्वर की असीम कृपा से आर्य-समाज को अपने सत्याग्रह के सत्य लक्ष्य में सफलता प्राप्त होगई। केवल आर्यसमाज के ही नहीं प्रत्युत जगत् भर के इतिहास में "हैदराबाद सत्याग्रह संभ्राम" एक अपूर्व घटना है। इसमें एक बड़ी शक्तिशाली राज-सत्ता से बिना किसी प्रकार के राजप्रयोग या रक्तपात के, श्याम, तप और आत्म-बलिदान के बल से, केवल अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा ६० प्रतिशत प्रजा के छिने हुए धार्मिक अधिकार प्राप्त कराये गये हैं। वस्तुतः इसका इतिहास बड़ा अद्भुत, आश्चर्यजनक रोमांचकारी होगा।

हैदराबाद राज्य के रोमांचकारी अत्याचारों की मर्मभेदनी कथाएँ, निर्दोष, निरपराध धर्म-प्रचारको पर जेलों की भीषण यातनाओं की दिल दहलाने वाली सत्य गाथाये और आर्य हिन्दू जनता के बीच धर्म प्रेमियों के त्याग, तप और आत्म बलिदानों का सत्य सत्य विवरण यथार्थ रूप में इतिहास के चमकते पृष्ठोंपर अंकित हो जाना अत्यन्त आवश्यक है, जो आगे की सन्तानों के लिये उज्वल पथ-प्रदर्शक का कार्य कर सकेगा।

हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि हिन्दू व आर्य किसी भी सस्या और किसी भी श्यामी, तपस्वी, आत्मबलिदान के साधक वीर सत्याग्रही और धर्म प्रेमी उरमाही कार्यकर्ता, जिसने इस सत्याग्रह-संभ्राम के लिये कुछ भी कार्य किया है, का विवरण इस इतिहास के

पृष्ठों पर अवश्य अंकित हो तथा पक्षपात रहित यथार्थता को लिये हुए, समस्त आवश्यक सामग्री से सम्पन्न हो। हमें विश्वास है कि आप अपनी संस्थाओं का विवरण, उनका सत्य ग्रह संभ्राम में कार्य, आपकी संस्था से भेजे गये वीर सत्याग्रही जनों के नाम, उनके जेल समय के सत्य अनुभव, तथा सत्याग्रह प्रचार में लगे कार्यकर्ताओं के विवरण उनके चित्र, तथा क्लक आदि सभी सामग्री इतिहास के निमित्त अवश्य यह भेजेंगे। समस्त सामग्री २० सितम्बर तक अवश्य कार्यालय में पहुँच जानी चाहिये, जिससे आपका मेजा विवरण आदि स्थान पाने से वञ्चित न रहे।

साथ ही यदि हो सके तो यह सूचित करें कि कितनी प्रतियों आप "हैदराबाद सत्याग्रह इतिहास" की लेने के इच्छुक हैं, जिससे आपके यहाँ का कोई सज्जन इस इतिहास से वञ्चित न रहे।

आपको विदित हो कि यह इतिहास २० x ३० = १६ पेजी के ३०० पृष्ठों से भी कहीं अधिक में पूर्ण होगा और सैकड़ों चित्र भी इसमें रहेंगे। इसका मूल्य भी लगभग केवल लागतमात्र ही रखा जावेगा। अतः हमारा नम्र निवेदन है कि आप अपनी सामग्री और हो सके तो आर्डर भी अवश्य ही उक्त आवधि तक भिजवा दें।

भवशीय निवेदक—मैनेजिंग डाइरेक्टर,
आर्यसाहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर।

* हैदराबाद सत्याग्रह विजय के उपलक्ष में *

सर्वाधिकारी श्री म० नारायण स्वामी को प्रसिद्ध पुस्तक 'कर्म रहस्य' मुफ्त लेवे।

[नोट—'कर्म रहस्य' उन प्र'हकों को मुफ्त भेजा जावेगा जो नीचे लिखी पुस्तकें तथा मयदल द्वारा प्रकाशित प्रचारित पुस्तकों में से कम से कम १०) रु० की पुस्तक मंगावेगे' उनको "कर्म रहस्य" भेजा जावेगा।]

इस वर्ष का नया और उत्तम साहित्य

वैदिक सम्पत्ति

ले० श्री प० रघुनन्दन शर्मा । मू० ६) यह विशाल पुस्तक है जिसने वेदों के विषय की जम्मेक समझापण सुलभता लायी है, यह एक बड़ी गम्भीर विवेचना से पूर्ण मौखिक पुस्तक है जिस पर प्रत्येक आर्यसमाज और स्वाध्याय शीघ्र आर्य पद लेने के परवाह गर्व अनुभव करता है।

भयानक षडयन्त्र

गुप्त रूप से हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिये हुए भेदों की जानना चाहें तो इस पुस्तक को अवश्य मंगावें। मूल्य २)

वेदामृत (वद्दा)

पंजाब आर्य प्रतिनिधि समा का बहुमूल्य प्रकाशित ग्रन्थ है। इमें जीवन के इरेक पहलू पर वेद ग्रन्थों को सरल अर्थों सहित ऐसे ढंग से लिखा है कि जीवन पर वैदिक प्रकाश पड़ने लगता है। मू० १॥)

"कर्म रहस्य"

ले०—श्री म० नारायण स्वामी महाराज आपने इस पुस्तक में वेद के कर्म सिद्धान्त पर खूब सूक्ष्मता से विचार किया है और परवाराय दार्शनिकों विचारकों और वैज्ञानिकों के विचारों से वैदिक सिद्धान्तों को पुष्ट किया है। मूल्य सत्रिंशद् १) अत्रिंशद् ॥)

वैदिक सिद्धान्त दर्पण

ले०—श्री यशपाल जी सिद्धान्तालंकार । आप पंजाब आ० प्र० समा के महोपदेशक हैं। आपने वेद के सिद्धान्तों पर यह बड़ा उत्तम पुस्तक लिखी है। मू० १)

स्वामी दयानन्द और विज्ञान के अन्तिम निर्याय—नाम से विषय रच है। मू० ॥)

हैदराबाद सत्याग्रह के शहीद—मू० —) बड़ी भेदो पुस्तक है।

आर्य सिद्धान्त विमर्श—आर्य विद्वान्ममे जन में पढ़े निबन्ध । इनमें आर्य विद्वानों के सशक्त का उत्तम निबोध है। मू० १॥)

यास्कपुग

अपे यास्काचार्य वेद के अन्ते विद्वान् ये, उम्होंने वेद के एक-एक शब्द का वैज्ञानिक रहस्य बतलाया है, वेद के प्रेमियों को पढ़ने योग्य है। मू० १)

सोम सरोवर

पंजाब के प्रसिद्ध विद्वान् श्री प० चम्पल जी की अपूर्व कृति है इपमें वेद के 'सोम' सम्बन्धी ग्रन्थों का रहस्य भक्ति पूर्व भावों से किया गया है। मू० १)

पता—आर्य साहित्य मयदल लिमिटेड, अजमेर।

महान् विजय और महान् भय

[ले०—श्री० वं० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालकार सिद्धान्त शास्त्री
एम० ए०, एल टी० अजमेर]



भी अधिक समय नहीं हुआ जबकि आर्यसमाज और हिन्दू महासभा द्वारा अपने धार्मिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए संचालित हैदराबाद सत्याग्रह में उनको अभूत पूर्व सफलता और शानदार विजय प्राप्त हुई है। इस आर्य सत्याग्रह की पूर्ण सफ-

के सम्बन्ध में किसी का मत भेद नहीं हो सकता, लेकिन इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि इस सत्याग्रह में आर्यबीरो ने जिस तप, त्याग और बलिदान का परिचय दिया है, वह संसार के इतिहास में एक अमर घटना के रूप में सर्वदा स्वर्णोच्चरो में लिखा जायगा। आर्यसमाज के हितैषी, तटस्थ और विरोधी जनों ने उसके इस अनुपम त्याग बलिदान और कठोर अनुशासन आदि की मुक्त कंठ से प्रशंसा है। वस्तुतः आर्यसमाज और उसके साथ समस्त हिन्दू जाति के लिए यह एक गौरव की वस्तु है, जिसने इस समय समस्त संसार में आर्यसमाज को घाक बिठादी है।

लेकिन संसार के इतिहास में प्रायः देखा गया है कि जब कोई जाति या राष्ट्र अपने किसी युद्ध में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करता है तो वह अपने विजयोल्लास में और हर्षोन्माद में इतना लवलीन हो जाता है कि वह अपने आगे के कर्तव्य को विस्मरण कर बैठता है, बस वहीं से उसका पतन प्रारम्भ होता है। परन्तु जो जाति और राष्ट्र अपने विजयोत्सव-काल में भी सजग रहकर पीछे को नहीं, किन्तु आगे को देखता है, वह अधिकाधिक उन्नति को और अप्रसर होता जाता है।

इसी मानव-समाज-शास्त्र के नियमानुसार इस समय हिन्दू जाति को भी एक जर्जर चेतावनी द्वारा आज हमें बतलाना है कि यह विजय और सफलता, जो हैदराबाद सत्याग्रह में प्राप्त हुई है, वह कुछ भी नहीं है यह तो एक बहुत छोटा सा संप्रभम था जो प्रत्यक्ष रूप में स्टेट द्वारा लागाये गये प्रतिबन्धों के हटाने के लिये किया गया था, लेकिन अब आगे हिन्दू जाति के लिये इससे भी कहीं बड़े बड़े भयंकर खतरे और युद्ध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में सम्मुख उदित हैं जिनका ज्ञान भी हमारे बहुत भोले भाइयों को नहीं है। वे खतरे इतने भयंकर और विनाशकारी हैं कि यदि इस समय हिन्दूओं ने सचेत होकर उनका प्रतिकार न किया तो बहुत थोड़े दिनों में ही न केवल आर्य सभ्यता, संस्कृति, भाषा, और वैदिक साहित्य का ही लोप हो जायगा अपितु हिन्दू जाति का अस्तित्व ही संसार से मिट जायगा। इन भयंकर खतरों का केवल दिग्दर्शन मात्र इस लेख में कराया गया है, जिनके आखें हों, वह जरा उन्हे खोल कर पढ़ें और हृदय हो तो तनिक उसे धाम कर अनुभव करें।

हिन्दू सभ्यता पर बाहरी आक्रमण

यूरोप के एक बड़े विचारक ने ठीक ही कहा है, "If you wish to destroy a nation, destroy its history, and the nation will be abolished of its own accord" अर्थात् यदि किसी जाति को नष्ट करना हो तो सबसे पहले उसके इतिहास का नष्ट करना, फिर उस जाति का नारा स्वयम्भव अवश्यभाव है। किसी उर्दू कवि ने ठीक कहा है— "कौम का तारीख से जो देखबरहा जायगा। रफता रफता आदमीयत खोके खर हो जायगा।" यही एक बात है। जिसको पारचात्य लोगों ने अच्छी तरह समझा है। उनो

लिये बार बार वे अपने प्रमथों और लेखों में इस प्रकार का प्रयत्न करते रहते हैं जिससे हिन्दू अपने प्राचीन इतिहास का भूल जायें, उसका गौरव उनके हृदय से कम हो जाय और वे अपने को तुच्छ और निकृष्ट (inferior) समझने लगें। उनके देखा देखी बहुत से उनके अन्ध भक्त भारतीय शिष्य भी हमारे साहित्य सभ्यता और धर्म पर आक्षेप करने लगते हैं और प्राचीन आर्य गौरव के इतिहास को ही



श्री ५० सूयदेव शर्मा साहित्यालकार

मिटाना चाहते हैं। इस प्रकार के हमारे इतिहास और संस्कृति पर आक्रमण करने वालों को हम चार अंगुली म बाँट सकते हैं।

(१) पाश्चत्य देशों के वे विद्वान् तथा उनके भारतीय शिष्य भी जो वैदिक साहित्य के अध्ययन करने का दम भरते हैं।

(२) योरुप और अमेरिका के पक्षपात पूर्ण लेखक और फिल्म कम्पनियों जो किसी राजनैतिक उद्देश्य को लेकर हमारी सभ्यता को बदनाम करने की चेष्टा करती हैं।

(३) वे अमेज और भारतीय इतिहास लेखक जो हमारे प्राचीन गौरव की सच्ची घटनाओं को तोड़ मरोड़ कर इतिहास में लिखते हैं।

(४) भारतीय प्रामाणियों की वे काब्रिस सरकारों जो राष्ट्रियता के नाम पर मुसलिम हिन्दू मेल के स्वप्न देखती हुई हमारा सभ्यता के इतिहास पर कुठाराघात कर रही हैं।

अब इनमें से प्रत्येक की जरा विस्तृत वृत्त ख्या सुनिये।

(१) पाश्चत्य विद्वानों का आक्रमण।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि योरुप और अमेरिका के अनेक विद्वानों ने हमारे वैदिक साहित्य का अध्ययन बड़े मनोयोग के साथ किया है और करते हैं यहा तक कि उनमें से अनेक ने अपना समस्त जीवन ही वैदिक साहित्य के विभिन्न अंगों के अध्ययन में लगा दिया है लेकिन अज्ञानता से हो या धार्मिक पक्षपात की भावना से इस बात का हमें अत्यन्त शोक है कि उन्होंने भारतीय भावना को हृदयगमन न करके अपना मनमाना अथ ही वैदिक साहित्य में घुसेड़ने की चेष्टा की है। किसी ने "अज एक पाद" का अर्थ "एक अज मा ईश्वर" के स्थान में "एक पैरवाला बकरा" कर दिया। किसी ने वेदों के निर्माण का समय केवल चार पांच हजार वर्ष ही बतलाया है, किसी ने वेदों में अनेक जादू होना और और मानवी सृष्टि का इतिहास सिद्ध करने की चेष्टा की है। किसी ने वैदिक और सांस्कृतिक साहित्य को आधुनिक और निकृष्ट बतला कर ससार की आखों में उसके मूल्य का गिराने का प्रयत्न किया है, और किसी ने तो रामायण और महाभारत के मुख्य पात्र राम सीता, दशरथ और युधिष्ठिर आदि पांडवों को ऐतिहासिक पुरुष माना ही नहीं, उनको

केवल कवि की कल्पना की एक बड़ी उड़ान मान कर कह दिया कि यह संसार में कभी हुये ही नहीं, यह कोई साधारण लेखक हो वह बात नहीं, किन्तु इनमें अमेरिका की कोलम्बिया यूनीवर्सिटी के प्रो० ब्लूम फील्ड, एडिनबरा यूनीवर्सिटी के प्रो० कोथ, लन्दन यूनीवर्सिटी के प्रो० मैकडोनल और जर्मनी के प्रो० श्री-गल आदि चोटी के विद्वान भी सम्मिलित हैं। यही नहीं संसार की दृष्टि में प्राचीन आर्यों को गिराने के लिए Gazetteer of India Vol II Page 257 पर प्रो० मैकडोनल ने प्राचीन आर्यों की रीति रस्मों का वर्णन करते हुए लिखा है कि "There (at the brides house) they were entertained with beer". अर्थात् विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से बारात के आर्यों को जो भोज दिया जाता था उसमें उन्हे गाय का मांस खिलाया जाता था। बस; हद हो गई! इससे बढ़कर आर्यों पर और क्या लांछन लगाया जा सकता है ?

इन पाश्चात्य वैदिक विद्वानों का प्रभाव हमारे भारतीय विद्वानों पर भी बिना पड़े नहीं रहा, और लोकमान्य तिलक तथा कलकत्ता विश्व विद्यालय के प्रो० आर० सी० दत्त आदि विद्वानों ने भी वेदों की उत्पत्ति का काल केवल कुछ सहस्र वर्षों तक ही सीमित कर दिया। शोक इस बात का है कि पाश्चात्य देशों में एक वर्ष में ही ४६ पुस्तकें तक वेदों के सम्बन्ध में प्रकाशित हो जाती हैं जिनमें वैदिक धर्म, सभ्यता, साहित्य, तथा आर्य जाति पर अनेकों आक्रमण किये जाते हैं, लेकिन हमको उनके उत्तर देना तो दूर रहा, उन पुस्तकों के नाम तक का पता नहीं हो पाता। इस प्रकार ससार के उच्च शिक्षित समाज में और विद्वान् मंडल में वैदिक धर्म और आर्य हिन्दू जाति का गौरव प्रति दिन नष्ट किया जा रहा है। यह हमारी सभ्यता और जाति पर कितना भयंकर आक्रमण है ?

(२) **पाश्चात्य आन्दोलनों का आक्रमण।**

पाश्चात्य देशों में जिन वैदिक विद्वानों का ऊपर वर्णन किया गया है, उनके अतिरिक्त अन्य लेखक

तथा राजनीतिज्ञ अपने धार्मिक उद्देश्य से अथवा राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्य से हर प्रकार भारत को बदनाम करने की चेष्टा करते रहते हैं। उनको हम निम्न लिखित भागों में बांट सकते हैं :—

(अ) वे लेखक और लेखिकाएँ जो किसी राजनीतिक उद्देश्य को लेकर भारत में आते हैं और भारत निवासियों के केवल अवगुणों का वर्णन करने के लिए प्रबंध प्रकाशित करते हैं। जैसे कुछ वर्ष पहिले मिस मेयो ने "मदर इंडिया" नामक पुस्तक लिखकर भारत वासियों और विशेष कर हिन्दुओं के गौरव को गिराने की असफल चेष्टा की थी। रडार्ड किपलिंग आदि अन्य अनेक लेखक भी इसी प्रकार चेष्टा करते रहे हैं।

(ब) पाश्चात्य साम्यवाद और विज्ञानवाद की लहर भी हमारे भोले भाले देश वासियों का तथा विद्यार्थियों को नास्तिकता की ओर ले जा रही है। यह भी हिन्दुओं की धार्मिक भावना के विरुद्ध हिन्दू धर्म के गौरव को कम करने वाली लहरें हैं।

(स) पाश्चात्य फिल्म कम्पनियाँ भी कुछ ऐसे फिल्म तैयार करती हैं जिनमें भारत वासियों और हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का मजाक उड़ाया जाता है, जिससे दर्शकों के हृदयों में उसका गौरव गिर जाता और वह हिन्दू जाति को दीन निकृष्ट, असभ्य और जंगली समझने लगते हैं। इस प्रकार की फिल्में "India speaks" "Bengali Longer" आदि ता पहिले ही अमेरिका में बन चुकी थीं, अब सन् १९३७ में "Sacred India" फिल्म, विशाखपट्टणम ने फ्रांस में तैयार कराई जो अमेरिका में भी दिखाई गई। उसमें सात भयंकर दृश्य हिन्दू धर्म को बदनाम करने के लिए प्रदर्शित किये गये हैं—

(१) नितान्त वृद्ध रहित नागा साधु (२) रीछों की तरह बाल बढ़ाये हुये, साधु जिनकी जटाएँ पैरो तक बड़ी हुई हैं (३) लम्बे लम्बे दो दो इंच नाखून वाले साधु, जिनके भालू के से पंजे हो जाते हैं (४) कुम्भ कोनम का छोटा सा कुंड

चिन्तन

(ले०—श्री कुँ० हरिश्चन्द्र देव वर्मा "चातक" कविरत्न)

घाटी निज नग्नता छिपाती हिम की चादर ओढ़ नबीन,
फिर न कहीं दिखलाई देते उसके निम्न गर्त छवि—हीन ।
नवल पल्लवों के मिस तरु भी निज नंगापन भोंप रहे,
कोंटों की क्रूरता छिपाये फूलों के दल कोंप रहे ।

हिम गलता, पल्लव गिरते हैं, भड़ जाते वे कोमल फूल,
फिर द्विगुणित नंगापन उनका हृदय वीच उपजाता शूल ।
हम न आबरण-पिय होवें सखि! हम न छिपाये अपने बाँ-
हम न कभी ललचायें मिथ्या गौरव के उस सपने बाँ ।

फूलों ने सुस्पष्ट कर दिया बलियों में जो था अस्पष्ट,
इसीलिए सब फूल चाहते सह करके कोंटों का कष्ट ।
उच्च देशवासी होकर भी दिखलाता निज चन्द्र कलक,
तभी उसे उडुराज मान कर गगन लगाये है निज अक ।

हम भी फूल और शशि सा ही सखि ! सबसे निज हृदय कहे,
व्यथोडम्बर की बहिषा मे कभी भूल कर नहीं घटे ।
अन्तिम शय्या पर प्रियतम के संग करने का चिर विश्राम—
सरपट भाग रही है सरिता, वर्षा शीत या कि हो घाम ।

अथक निरन्तर एक भाव से भरना करता कल कल नाद—
प्राणेश्वर के गुण गायन का क्या पड़ गया इमे भाँ रवाद ?
चल सखि ? चल हम भी सरिता—से निज प्रियतम से मिल जावें,
निर्भर—से उनके गुण गावें, हसी खुशी से खिल जावें ।

जिसके गदले और सड़े हुए पानी में दस दस लाख
आदमी स्नान करते हैं । (५) दो दो और तीन तीन
वर्ष की बाल विधवाएँ (६) उन बच्ची विधवाओं के
के शरीरों को गर्म लोहे की सलाखों से दागा जाना
(७) हिन्दू मूर्तियों (काली देवी आदि) के सामने
सैकड़ा बकरे और भैंसों के बलिदान से रक्त का
बहान । (JIndustan Times 5-11-37) इस
प्रकार के फिल्मों को दिखलाकर योरुप और अमेरिका
के पादरी लोग बड़ा यह सिद्ध करते हैं कि हिन्दू धर्म
और सभ्यता बिलकुल जंगली और निर्दयी है । इस-

लिए उसको मिटाने के लिए और हिन्दुस्तान में
ईसाई मत का प्रचार करने के लिये वे पादरी एक
एक साल में ५६ लाख रुपया तक जमा कर लेते हैं ।
लेकिन हतभाग्य हिन्दू जाति को अपने ऊपर होते
हुए इन भयंकर आक्रमणों का पता भी नहीं
चलता ।

[नोट—यह लेख लेखक की शीघ्र प्रकाशित
होने वाली पुस्तक "छतरे का बिगुल" से दिया गया
है । पुस्तक आर्य साहित्य भंडाल अजमेर में छप
रही है—सम्पादक)

महर्षि दयानन्द

तथा

हमारी विजय

(लेखिका • श्यामसुन्दरालाली पद्मवनेट मनपुरी)



प्रत्येक वस्तु के देखने का पृथक् पृथक् परिचय होता है और उसका शुभ और अशुभ माना देखने वाले की मना दृष्टि पर भी बहुत कुछ

निर्भर रहता है। आर्यसमाज महर्षि दयानन्द का प्रतिनिधि है और जो कुछ कार्य उसका हो रहा है उस पर वस्तुतः महर्षि की छाप की प्रतीक्षा की जाती है क्योंकि आर्यसमाज का प्रस्तुत वैदिकधर्म जिसका ध्यान उसका नियमों और विशेषतः उसके प्रथम तीन नियमों में किया गया है वहाँ है जिसके रंग रूप का चित्रण उक्त स्थानाग्रहण महर्षि का ही किया हुआ है। अतएव हमको अपनी विजय का परीक्षण उस महर्षि की दी हुई व्यवस्था से करना उचित है जो उनके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में सुस्पष्ट बखिच है।

महर्षि का दिया हुआ ध्येय ही वैदिकधर्म का ध्येय है और उसी ध्येय का पूर्ण करना आर्यसमाज का ध्येय और मिशन है और जहाँ तक हमने उस ध्येय को पूर्ण कर पाया है और गत निजाम हैदराबाद सत्याग्रह में उसके पूर्ण करने का परिचय दिया है वहाँ तक हमारी वास्तविक विजय है और वहीं विजय हमारे सच्चे हृदय का कारण बन सकती है।



लेखक—

यदि महर्षि के ध्येयों को ध्यानपूर्वक पढ़ा जायेगा तो विदित होगा कि महर्षि ने कोई कठोर और अकर्तव्य कर्म ऐसा नहीं छोड़ा है जिसके क्रमशः करने और न करने से सर्वाङ्ग पूर्ण नर नारी और सर्वाङ्ग पूर्ण उत्कृष्ट मनुष्य समाज का उत्थान और विकास हो सकता हो और उसको उन्होंने छोड़ दिया हो। उन्होंने गर्भधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त और प्रसवपर्यन्त से लेकर सत्यास भ्रातृम तक तथा गुणकर्मनुसार वर्णव्यवस्था और वैदिक राजतन्त्र को लेकर एक से एक महत्वपूर्ण नीति नीति का प्रदर्शन कर दिया है और सदस्यों बर्षों से अथवा विचारों के गर्भ में गिरती बली जाती और अब शशास्त्रियों

से पराधीनता और दासता की शृंखला में बंधी इस आर्य्य जाति को उठाने और उठाने के लिये सभी कुछ विवेचन कर दिया है और स्पष्ट बतला दिया है कि वह पुनः किस प्रकार उज्ज्वल भविष्य को पूर्ववत् प्राप्त कर सकती है और संसारस्थ अन्य मानव समुदायों को भी उस अशान्ति और दुःख से त्राण दे सकती है जिसमें वह शाने शाने, पदार्थ विज्ञान के शिखर पर पहुँचे हुए भी सब प्रकार नष्ट और भ्रष्ट हो जाने के निकट पहुँच गये हैं।

महर्षि का प्रथम निश्चय था कि यह आर्य्यवंश वंश ही सृष्टि के आरम्भ से महाभारत के आरम्भ से कुछ काल पूर्व तक सम्पूर्ण जगत् का शिक्षक और गुरु था और इसी देश के विद्वानों ने मिस्र, यूनान और रोम आदि देशों की सभ्यता को परिचय में और चीन आदि देशों को पूर्व में दीर्घकाल तक शिक्षित और दीक्षित रक्खा तथा संसार में जितनी विद्याएँ और कलाएँ विद्यमान हैं वह मूल रूप में इसी देश से बहाई पहुँची है और संसार क समस्त धर्म और उसकी समस्त भाषाएँ केवल वैदिकधर्म और वैदिक भाषा के उत्तरोत्तर भवान्तर रूप हैं। महर्षि का यह धारणा मनगढ़न्त नहीं है। उसकी पुष्टि अनेकानेक पारशात्य धुरन्धर पण्डितों ने की है। लेख के बढ़ जाने के भय से मैं केवल यत्किञ्चित् उद्धरण श्रीमती मैडेम वल्लैट्टेस्की विविध विद्या विशारदी तथा योबोसोफिकल सासाइटी की सयुक्त संस्थापिका के सुप्रख्यात ग्रन्थ (secret Dootime) सीक्रेट डाक्ट्रिन पृष्ठ २०८ से २१० तक देने की प्रेरणा को रोकना अनुचित समझता हूँ। वह अप्रोजी भाषा में लिखती है जिसका भाषान्तर निम्न है :—

“संस्कृत भाषा की मूल वैदिक भाषा भूल से ग्रीक भाषा ज्येष्ठ भगिनी कहाँ गई है। वास्तव में वह उसकी माता है जो कि अब पांचवीं मनुष्य जाति के योगियों की गुप्त भाषा है। सैमिटिक भाषाएँ तरानी भाषा सहित उसी प्राचीन संस्कृत भाषा की ज्येष्ठ सन्तानों के परचात् प्रथम बिगड़े हुए पद्यात्मक लेखों की क्षिप्री रूप वपज हैं। सैमिटिक

लोग मुख्यतः अरब के निवासी पीछे के आर्य्य हैं जो आर्य्यता से गिरे हुए और भौतिक जीवन में निपुण थे। यहूदी लोग भी भारतवर्ष से बहिर्गत भारतीयों के वंशज हैं जो कैलिफ़ोर्निया आदि देशों में जाकर आबाद हुए। पुनः उसके आगे लिखती है :—

“वेद ईश्वरप्रदत्त ज्ञान है। यह बात तुज्जानात्मक धर्मों के स्वाध्याय से स्पष्ट और सिद्ध होती है। प्रत्येक पैगम्बर का अपने आपको पैगाम लाने वाला बतलाना, और किसी नवीन धर्म का उपदेश न बनना यही सिद्ध करता है कि वह पिछले ज्ञान को आगे-आगे पहुँचाने वाला हुआ है।”

पुनः 'Is Unveiled' (आईसिस अन्वैहड) भाग २ पृष्ठ ३० पर लिखती है :

‘अब इतना प्रचुर क्रमागत लाज्य उपसंभव हो चुका है कि यत्किञ्चित् भी सन्देह नहीं हो सकता कि भारतवर्ष न केवल सभ्यता, शिल्प और विविध विद्याओं का ही किन्तु समस्त प्राचीन धर्मों का चाहे वह मूसाई और क्रिश्चियन धर्म हो अथवा अन्य सभी का मातृ भूमि वा आदि स्रोत है।

अतः ध्यान में रखने योग्य यह बात है कि महर्षि का अभिप्राय सब से पहले आर्य्यवंशों को अपने उपदेश का केन्द्र बनाने में केवल हिन्दू जाति से न था जिनको वह आजकल के आर्य्य (अर्थात् पतित आर्य्य) के नाम से सम्बोधन करते थे किन्तु मुसलमान और ईसाई भाई भी उनके अभिप्राय में शामिल थे, क्योंकि सभी विद्वान् गुरुषु ऋषि के ग्रन्थों से तथा अन्य भांति में जानते हैं कि भारतवासी मुसलमान और ईसाई वशानुवश क्रम से अन्त को भारतवासी ही हैं चाहे वह अधिक वा न्यून काल से धर्म परिवर्तन की दृष्टि से उन उन नामों से सम्बोधित क्यों न हाने लगे हों।

निदान में इस लेख में केवल सार्वजनिक मोटे मोटे महत्वपूर्ण और ठ्वापक सिद्धान्तों को लेकर बतलाने का प्रयत्न करूँगा कि विगत सत्प्रायः में उनमें से किस श्रेय का कौन सा अंश कहाँ तक प्राप्त

होगया है और उसको कहां तक आर्यसमाज की विजय कहा जा सकता है।

इसमें किञ्चित् सन्देह नहीं कि इस पुण्य देश में जहां पर इस्लाम हमलों और इस्लामी सल्तनत से पहले सहस्रों लक्षों वर्ष आदि काल से और पुनः ब्रिटिश साम्राज्य अर्थात् सन् १८५७ ई० से बराबर धर्म और संस्कृति के प्रचार और अनुष्ठान की पूर्ण स्वतन्त्रता रही हो और उस स्वतन्त्रता को मानवांश नैसर्गिक अधिकार समझा जाता रहा हो वहीं पर एक ऐसी बड़ी रियासत में जो देश की अन्य सारी रियासतों में बड़ी और सभ्य गिनी जाती हो और जिसमें अति अधिक हिन्दू जनता और अति अल्प मुसलमानी जनता आबाद हो इस्लाम धर्म के शासक उस नैसर्गिक अधिकार को, स्पष्ट कानूनी शक्तों में नहीं किन्तु अमली तौर पर छन कपट भरे फरमानों और हुक्मों के द्वारा हिन्दू जनता से छीन रहे हों, यह एक ऐसा अन्धेर था जिसके अन्धेर मात्र से कौतूहलमय आश्चर्य होता है और इस अन्धेर खाले को दूर करने के लिये जिसके कारण सभ्य से सभ्य, मृदुभाषी से मृदुभाषी उच्च कक्षा के धुन्धर वैदिकधर्म प्रतिष्ठत बेरोकटोक रियासत के भीतर वैदिकधर्म जैसे आदि कालीन अति उज्ज्वल धर्म के प्रचार करने के लिये नहीं जा सकते थे आर्य पुरुषों और आर्यसमाजियों का कई वर्षों के लगातार प्रयत्नों के असफल होने पर अहिंसात्मक सत्याग्रह का करना एक ऐसा कर्त्तव्य बन गया था कि उससे जी पुराना आर्यसमाज का दृष्ट पतन था तथा जिस प्रकार के अमानुषीय और शर्मनाक अत्याचारों और अन्यायुक्त प्रहारों के कई मास निरन्तर होते और उनके सहन करते रहने पर भी आर्यबीरों ने अपने अहिंसा व्रत को नहीं छोड़ा यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसी अनुपम थी कि उसके सदृश उदाहरण भिन्नना कठिन किन्तु असम्भव सा प्रतीत होता है। केवल ये दोनों बातें ही अपने आपमें ऐसी हैं और ऐसी विजय का दिग्दर्शन कराती हैं जिसके प्राप्त करने का सौभाग्य किसी संस्था को सहसा प्राप्त

नहीं होसका, और उस पर आर्यजगत् परमात्मा के धन्यवाद और निरभिमान पूर्ण जितना हर्ष मनावे वह अनुचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनकी इस सफलता में इतनी माथी कार्यक्षमता की मात्रा निहित है कि उसका अनुमान लगाना सहसा संभव नहीं है। परन्तु इसके उपरान्त उक्त रियासत ने कहां तक अपनी घोषणा से अपनी कानूनी विषमता को दूर किया है। कहां तक वह अपनी सभ्य और नम्र आश्वासन ध्वनि के अनुसार जिससे प्रभावित हो आर्यसमाजों की सर्व शिरोमणि सार्वदेशिक सभा ने सत्याग्रह को बन्द कर दिया है, अपनी निर्बलता और विषम नीति रीति की वास्तविक भीति को शीघ्रतर दूर कर देगी। इनका उत्तर भविष्य के ही गर्भ में है। यदि कानूनी भीति में उक्त घोषणा का अधिक मूल्य नहीं है अथवा कुछ भी मूल्य नहीं है, तो उसके विषय में अब सरपची वरना नर्वथा अनुचित और निष्फल है किन्तु अपने समय को व्यर्थ नष्ट करना है। यदि अस्ववारी में ऐसी मूचना छप रही हैं जो उक्त घोषणा और आश्वासन ध्वनि से मेल खाती दृष्टि नहीं पड़ती तो भवनीमान परिस्थिति का अवलोकन करते हुए यह अनुचित होगा कि हम अभी अधिक प्रतीक्षा न करें और गेटे के रवैये पर काँच प्रहार करना आरम्भ कर दें। हम सबको विश्वास रखना चाहिये कि हमारी सार्वदेशिक सभा अपना कर्त्तव्य इस विषय में अवश्य कर रही होगी और उसमें सचेत और सतर्क होगी। मेरी लघु सम्पत्ति में सधी परीक्षा उक्त रियासत की नेकनीयती और आश्वासन के मूल्य को कृतने के लिये यही हो सकती है कि हम शीघ्रतर भीमती सार्वदेशिक सभा के निश्चयानुसार अपेक्षित धन-राशि एकत्र कर रियासत के भीतर और बाहर वैदिकधर्म और संस्कृति के प्रचार और अनुष्ठान के सम्पूर्ण साधन को समुपस्थित कर दें। उक्त विजय के पीछे यदि हमने अपना उक्त कर्त्तव्य पूर्ण कर लिया और उक्त साधनों को जुटा दिया तो उक्त रियासत की नीधत और रवैये का ही पता न चल जायगा, किन्तु हमारी विजय ठोस और सच्ची विजय का रूप धारण कर लेगी अन्वथा

दुःख के साथ सिद्ध होगा कि हम केवल वसंतों के धनी हैं न कि वास्तविक कार्यात्मता युक्त सच्चे धनी ।

परन्तु क्या उपयुक्त विजय महर्षि के वास्तविक उद्योगों की दृष्टि से कोई भी मूल्य रखती है ? सत्याग्रह तो एक प्रकार का आपद्रव्य है, जो एक प्रकार से अपनी ही असहायता और अकर्मण्यता का स्मरण दिलाता है और जो कुछ उद्योग कष्ट और दुःख भोगने पड़े हैं वह एक प्रकार से वही असाहायता और अकर्मण्यता रूप पापों का फल था । किन्तु वस्तुतः वह तो परमात्मा की कृपा से प्रायश्चित्त रूपी हमारे संशोधन के लिये ही विरुद्ध समस्या के रूप में उदय हुआ था और उस प्रभु का अन्वेषण है कि वसंत हम वसीएँ हुए । अन्वेषण क्या यह शोक की बात नहीं है कि महर्षि के उद्देश को लगभग साठ-सत्तर वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी हमने न हिन्दू नेताओं और न मुसलमान नेताओं की आकुञ्चित मनोवृत्तियों को बदल पाया है जिनके कारण न ही देश में पराधीनता से मुक्ति पाने के लिये एक दृष्टिकोण हो पाया है और न अपेक्षित भावों और विचारों की समझ हो पाई है ।

अतएव निम्न पंक्तियों में केवल दिग्दर्शन मात्र महर्षि के थोड़े से शब्द उद्धृत करता हूँ जिनसे विदित होगा कि हम लोग ने कैसी बड़ी भूलें की हैं, जिनके कारण आर्यसमाज विजय तो क्या चरमरोग में ग्रसित हो अपने अस्तित्व को खोने की ओर अग्रसर हो रहा है । अथवा यों कहना चाहिये कि उन बातों में हिन्दू सोसाइटी के लोगों में यथा पूर्व फेरा रह कर रामानुजी, कबीरपंथी आदि किसी सम्प्रदाय विशेष की भाँति एक पृथक् सम्प्रदाय बन कर हिन्दू सोसाइटी में विलीन होने की तय्यारी कर रहा है । और इस सब का मूल कारण यह है कि प्रायः आर्य समाजी वाङ्मय वैदिकधर्म हैं जो साहित्यिक ऋतु की भाँति उसके अधिवेशनों में मिलते जुलते और उठते बैठते हैं, वससे आधिक वैदिकधर्म का प्रभाव रोटी-बेटी आदि के रूप में नहीं हो पाया है और न

वह मर्यादाएँ स्थिर हो पाई हैं जिनकी दृष्टि से आर्य-समाजियों का परस्पर एक दूसरे की ओर आकर्षण हो और वह एक संगठित होकर उत्तरोत्तर वृद्धिशील समुदाय में परिणत हो जावे और सम्पूर्ण भारतीय समुदायों को अपने भीतर शान्ति शान्ति किन्तु उत्तरोत्तर शीघ्र शीघ्र अपने भीतर सम्मिलित कर ले । मूलरूप से यह दोष दो हैं । अर्थात् पहला सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त एक परमात्मा के जीते जागते विश्वास और उसके सन्ध्योपासन के स्थान में मूर्तिपूजा का अहिंसात्मक प्रवृत्ति विरोध करना ।

द्वितीय गुणकर्मनुसार वर्णव्यवस्था का सतत अनुष्ठान और वर्तमान जन्मपरक जात पात व्यवस्था अर्थात् कास्ट सिस्टम का अपने अगल से उभे विरोध न होना जिसके भीतर रोटी बेटी, अनुचित छुआछूत, आचार अनाचार, प्रत्याभक्ष्य की उचित मर्यादाओं का स्थिर करना शाभावतः प्रविष्ट होजाता है ।

प्रथम मूर्तिपूजा क विषय में केवल इतना कहना पर्याप्त है कि यह वह प्रथा है जिसने हिन्दू समुदाय को विवेक शून्य एक ईश्वर के स्थान में विविध देवी देवताओं का उपासन बना एक राष्ट्रीय धर्म के अनुयायी होने के गौरव से सर्वथा वंचित कर दिया है । महर्षि दयानन्द ने उद्योग विषय में सत्यार्थप्रकाश स० ३ समुल्लास (पृ० २२२ से २६६ तक १७ विरोधी आक्षेप देकर पाचव व छठवें आक्षेप में लिखते हैं—

‘नाता प्रकाश की विरुद्ध स्वहृदय नाम चरित्रयुक्त मूर्तियों के पुजारीयों [मूर्तिपूजकों] का ऐक्यमत नष्ट होकर विरुद्ध मत में चलकर आपस में कूट बढ़ा करके देश का नश करने है तथा उसीके भंगसे मैं शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं और पराजित होकर अपना राज स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भट्टियारों के दट्टू और कुम्हार के गद्दे के समान शत्रुओं के बरा में होकर अपने विधि दुःख पाते हैं ।’ पुनः आगे “मूर्ति के अद्वैत गुण आत्मा में आने से विचारशक्ति बट जाती है, विवेक के बिना न



वैराग्य और वैराग्य के बिना विज्ञान, विज्ञान के बिना शांति नहीं होती। जो कुछ होता है सो उन [वीत राग शान्ती] के संग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है'' प्रीति होने का कारण गुण, ज्ञान है। ऐसे मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों से ही आध्यात्मिक में निकम्मे पुजारी, भिखु, आलसी, पुरुषार्थ रहित करोड़ों मनुष्य हो गये हैं, सब संसार में मूढ़ता उन्हींने ही फैलाई है। भूठ, छल भी बहुत सा फैला है। महर्षि क्लेशित हो यहाँ तक उस स्थल पर लिखते हैं कि 'जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाण प्रेमियों को पत्थर तोड़ने, बनाने और घर रखने आदि के कार्यों में लगाके खाने पीने को देता और निवृत्त कराता।'

शोक है ऐसे बड़े शोष से हम आर्यसमाजी उदात्तान से हो गये हैं। प्रीति पूर्वक हिन्दू सोसाइटी के इस शोष को दूर करने का प्रयत्न नहीं करते और न हिन्दू सोसाइटी के नेता अपनी उदासीनता तथा भीरुता से हिन्दू जनता के हृदय से इस अवैदिक पूजा को निकालने का प्रयत्न करते हैं जिसका आचार केवल महन्तों और मठधारियों आदि के स्वार्थों पर है, किन्तु दिन ब दिन उसकी वृद्धि होती जा रही है।

द्वितीय "गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था" के विषय में महर्षि ने पद्योक्त विवेचन सत्यां समुल्लास ५ पृ० ८५ से ९० तक किया है। परन्तु इस अभाग्य देश में यह ऊटपटांग जन्मपरक जात पाँव की व्यवस्था ऐसी चिपट गई है कि जन्म दिन से हम उसी के आचार पर चलते, चलते, फिरते, खाते पीते, रोटी बेटी का व्यवहार करते यहाँ तक कि उठते बैठते भी उसी के अनुसार हैं। महर्षि का उपदेश उनके ग्रन्थों में बन्द है और हम आर्यसमाजी उसी पुरानी रूढ़ि के अनुसार धडाधक ब्राह्मण नाम से प्रख्यात अपने अपने विशेष उपवर्गों में तथा ठाकुर, जाट, कायस्थ, बैश्य आदि समस्त उपजातियों के लोग अपनी अपनी ही उपजातियों में दौड़ दौड़ कर विवाह कर रहे हैं जहाँ तक यह भी नहीं हुआ है कि तीन सहस्र

उपजातियों के पलटे केवल चार बड़े ब्राह्मणादि प्रसिद्ध वर्गों में पारस्परिक विवाह सम्बन्ध होने लगते। पुनः विवाह सम्बन्ध तो दूर की बात है, प्रायः खाने पीने में भी शुद्धाशुद्ध और अद्यामद्य के आधार पर जैसा कि महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में वैज्ञानिक दृष्टि से निरूपण कर दिया है ऐसी मर्यादाएं आर्यसमाज स्थिर नहीं कर पाया है कि आर्यसमाजी मात्र में तो खान पान विषय में प्रायः ऐक्य स्थापित होगया होता। कितना शोक है कि विवाह में ही नहीं किन्तु खान पान में भी प्रायः आर्यसमाजी उसी प्रकार हिन्दुओं की रूढ़ियों में अकड़े हुए हैं जैसे कि आर्यसमाजी बनने से पहले। शोक है कि हमारी इसी निर्बलता ने मि० घर्मपाक जैसे न जाने कितने योग्य मुसलमान भाइयों को वैदिकधर्म में दीक्षित होने से रोक दिया। यदि उक्त निर्बलता न होती तो न जाने कितने भारतीय मुसलमान नामवारी भी वैदिक मत की शरण में आ जाते और आज दृष्टिकोण भारतीय मात्र का क्या होता। विवाहों पर शर्मनाक क्रारवाद और जैन दैन की भी प्रथा आर्यसमाजियों में वैसी ही स्थिर है जैसी पहले थी परन्तु विवाह लगभग सब के सब कहे वैदिक ही जाते हैं। सच यह है कि यदि शीघ्र हम आर्यसमाजियों का उक्त वृत्तियों की ओर ध्यान न गया और अन्दर बाहर एक सा हमने अपने आपको न कर पाया और वैदिकधर्म को आचरण रूप में न अपना पाया तो उक्त विजय शायद ही हमको पच पावेगी, किन्तु भय हो सकता है कि हमारा व्यर्थ प्रमाद और अभिमान बढ़ कर हमको और भी नीचे की ओर न ले जावे। त्रिस पाटीबन्दी और परलोलुपता के कौतूहलमय दृश्य सत्याग्रह से पहले प्रति ध्वनित हो रहे थे और 'आर्यमित्रादि' समाचार पत्रों के स्तम्भ रंगे जा रहे थे उनको सहसा बिना किसी तप त्याग और आत्म संयम की निष्ठा के ब्रत और आचरण के अपने आप पलायमान समझ हम कहीं इस विजय के घमंड में अपने दोषों के दूर करने के कर्त्तव्य को भूल न जायें और वल्लभा

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह की सफलता और उससे शिक्षा

(लेखक—श्री प० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति भू० पू० प्रधान कर्नाटक प्रान्तीय हैदराबाद आर्य सत्याग्रह, सहायक समिति-बंगलौर)



भे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि आर्यसमाज का सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठित पत्र 'आर्यमित्र' दीपावली के पत्रिका अवसर पर हैदराबाद विजयाक' प्रकाशित कर रहा है जिसके लिये मुझे भी एक लेख

लिखने को सम्पादक जी ने अनुरोध किया है जिसे सह्य स्वीकार करके मैं उपयुक्त विषय पर कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूँ। हैदराबाद रियासत में धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये किये गये सत्याग्रह सभामें आर्यों को जो शानदार सफलता प्राप्त हुई कौन स्वतन्त्रता प्रेमी या सज्जन है जो उस पर हथ प्रकाशित न करेगा। आर्य नेताओं के अतिरिक्त पूज्य महात्मा गान्धी, राष्ट्रीय महासभाध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद जी, प० जवाहरलाल नेहरू, महात्मा पं० मदनमोहन मालवीय जी श्रीयुक्त जमनालाल बजाज, श्रीमती सराजिनी नायडू,

कल यह न हो कि हम महर्षि के सौंपे मिशन को आत्मश्रम में सफल बनाने के स्थान में और भी दुःसह्य बना दें। आशा है कि हमको परमात्मा ऐसा सुबुद्धि प्रदान करेगा कि हम आत्मचिन्तन द्वारा अपने को अधिक अधिक सद्भावों, सहायों और सत्कर्मा बना अपने जीवन को अधिक अधिक आर्यत्व विशिष्ट कर ऋषि के मिशन को पूर्ण करने की ओर सतत प्रयत्न करेंगे और परमात्मा हमारे पुरुषार्थ को सफल करेगा।

डा० पट्टाभिसीतारामैय्या इत्यादि सभी राष्ट्रीय नेताओं ने आर्यसमाज की इस शानदार विजय पर उसे हार्दिक बधाई दी। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने सांदेशिक सभा के सुयोग्य प्रधान माननीय श्री धनश्याममिह गुप्त जी के नाम पत्र लिखते हुए लिखा था 'हैदराबाद में आर्यसमाज का धार्मिक आशादी के लिये सत्याग्रह करना पडा यही आश्चर्य की बात थी पर जिस स्वामी और संयम के साथ आपने उस सत्याग्रह सभामें का संचालन किया वह कम आश्चर्य की बात नहीं थी। आर्यसमाज अपने त्याग, वार्द्धत्ता और संयम के लिये बधाई का हकदार है। मैं आशा करता हूँ कि जो जागृति इस समय पैदा हुई है वह रचनात्मक काम में लगाई जाएगी और उससे स्थायी कल्याणकारी फल निकाला जाएगा।' सेठ जमनालाल बजाज जी ने श्री पूज्य प्रधान जी सा० स० के नाम पत्र में लिखा कि "इस युद्ध में इतने त्याग, कुरालता और संयम के साथ चलाने के लिये भापके जरिये मैं आर्यसमाज को हार्दिक बधाई देता हूँ।"

आर्य सत्याग्रह की इस शानदार सफलता और विजय ने निस्सन्देह आर्यसमाज का गौरव बहुत अधिक बढ़ा दिया है। मैंने सत्याग्रह सभामें के समय कर्णाटक प्रांत में की प्रचारयात्राओं में इस बात को सर्वत्र देखा था कि कट्टर से कट्टर मठाधिपतियों और आर्यसमाज के घोर विरोधियों में भी धर्म और संस्कृति की रक्षा तथा स्वतन्त्रता के लिये किये गये धर्मयुद्ध के कारण आर्यसमाज के लिये बड़ा सम्मान

का भाव उत्पन्न होगया था और आर्यसमाज ही वस्तुतः हमारे धर्म और संस्कृति की रक्षा कर सकता है इस बात को वे अनुभव करने लग गये थे। सत्याग्रह के इस शानदार अन्त ने तो उस गौरव के भाव को और भी अधिक बढ़ा दिया है। इस सफलता के कारणों पर विचार करते हुए हमें स्पष्ट ज्ञात होगा कि ईश्वर विश्वास तथा भक्ति, धर्म और संस्कृति का प्रेम, आत्मा की अमरता में विश्वास के कारण निर्भयता त्याग और बलिदान की शुभ-भावना, अहिंसा और सत्य के प्रतीकों का यथाशक्ति पालन, संगठन और नियन्त्रण (Discipline) इत्यादि उनमें से मुख्य थे। जेलों से भी जो पत्र मुझे

श्री नानूरामजी उपदेशक आर्य उपसभा बदायूँ



आप बदायूँ से जाने वाले पहले त्रये के अधिनायक थे।

तथा अन्त्यों को सत्याग्रहियों से प्राप्त होते रहे उनसे ज्ञात होता था कि ईश्वर-भक्ति ने आर्यों को कितना निर्भय तथा सहिष्णु बना दिया था। उदाहरणार्थ मेरे प्रिय शिष्य श्री गुरलीधर जी ने गुलबर्गा जेल से २६-७-३६ को भेजे पत्र में मुझे लिखा। 'यहाँ की हर एक तकलीफ आनन्द-पूर्वक बीतती है। मैं यहाँ रहता हुआ भी आपके पवित्र भावों के भजनों को गाया करता हूँ और उन विचारों के अनुसार

अपने आपको आनन्द में समझता हूँ।' ४-८-३६ के पत्र में उन्होंने जेल में बनाये दो भजन मुझे लिख कर भेजे जिनमें से निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत करना पर्याप्त होगा।

"ओरेमू का जाप हम करते रहे दिन रात जेलों में।
धृथा जाने न पाएँ हे प्रभो ये सौंस हमारे ॥
तपस्या करने को जेलों, में आये हैं तुम्हारे जन।
तपस्या से तपाकर दूर करदो ताप हमारे ॥"

इस ईश्वर भक्ति के भाव को आर्य लोग जितना दृढ़ करेंगे उतना ही उनका जीवन पवित्र और निर्भय बनेगा। इसमें सन्देह नहीं। अहिंसा और सत्य, सत्याग्रह के मौलिक तत्त्व हैं जिनका जितनी अच्छी तरह पालन किया जाएगा उतना ही शीघ्र और प्रबल रूप से विरोधियों पर भी उसका प्रभाव होगा। वेद भगवान् के 'ऋतस्य श्लोको बधिरा तत्तर्द कर्णा बुधान शुचिमान् आपोः' ये शब्द इस विषय में स्वर्णोक्तों में लिखने योग्य हैं जिनका अर्थ यह है कि सत्य का शब्द इतना तेजस्वी होता है कि वह बहरो के भी कानों तक पहुँच कर उसे प्रभावित कर ही डालता है। हैदराबाद के कट्टर मतान्ध शासकों पर आर्यों की सत्यनिष्ठा का आखिर प्रभाव हो ही गया यद्यपि इस विषय में बहुत से लोगों को बड़ा सन्देह था। अहिंसा व्रत का पालन आर्य जनता ने बहुत उत्तमता से किया। यदि सत्य के व्रत का भी पूर्ण रीति से पालन किया जाता तो मेरा विश्वास है कि इस धर्मयुद्ध में सफलता और भा शीघ्र प्राप्त होती। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कई बार जनता पर प्रभाव उत्पन्न करने के लिये कई बातें फैलाई गईं जो अत्युक्ति पूर्ण तथा पूर्ण सत्य नहीं थीं। इस विजयोत्सव को मनाते हुए सब आर्य सत्य के व्रत को पूर्णता से निभाने का व्रत धारण करेंगे ऐसी मैं आशा रखता हूँ। माननीय श्री घन्श्यामसिंह जी गुप्त आदि मान्य नेताओं ने इस आदर्श को आर्य जनता के रुन्मुख सम्पूर्ण रहख से रखकर उसके अनुसरण का आदेश दिया था। "सत्यमेव जयते नान-

सत्य" अर्थात् अन्त में सत्य की ही विजय होती है असत्य की नहीं इस ऋषिवाक्य को हमें वभी न भूलना चाहिये ।

सबसे बड़ी बात जिसने बाहर की जनता पर आध्यात्मिकता के गौरव की छाप लगादी वह आर्यों का त्यागभाव सगठन बल तथा अनुशासन (Discipline) था । किस प्रकार सभी आर्य अपने सर्वाधिकारियो तथा सत्याग्रह-समिति की आज्ञाओं का सम्पूर्णतया बिना ननुनच के पालन करते रहे, किस तरह सभी पादोभेद को भुलाकर एकता और प्रेम के सूत्र में बद्ध होकर त्याग और बलिदान का आदर्श जनता के सामने रखते रहे यह बात अत्यन्त अभिनन्दनीय थी । आर्य सत्याग्रह की विजय का एक मुख्य कारण यही आर्यों का प्रबल संगठन तथा अनुशासन था इसमें अगुमात्र भी सन्नेह किसी को नहीं हो सकता । त्याग भावना को धारण करने के साथ साथ सब आर्य इस सगठन और अनुशासन की भावना को हृदय करने का यदि सदा प्रयत्न करते रहते तो ससार की घोर से घोर विरोधिनी शक्ति से भी टकर ले सकेंगे ।

इसमें कोई सशय का कारण नहीं । इस विजय पर हर्षे मनाते हुए आर्य अभिमान को प्रदर्शित न करे किन्तु सशोशकमान् परमपिता के आगे नम्रता पूर्वक प्रार्थना करे आर उसे धन्यवाद दे' कि वसकी कृपा से ही उन्हे यह विजय भी प्राप्त हुई है । (त्वामभिप्रणोतुमो जेतारमपराजितम् ।) साथ ही वष्यु क गुणों को बढ़ाते हुए सब रचनात्मक कार्य में तत्पर हों, यही मेरा नम्र निवेदन है ।

सेवा में—

वैद्यरत्न श्री सत्यदेव जी रूप विलास कम्पनी

कंचौसी इटावा [यू० पी०)

वैद्यवर जी ।

नमस्ते !

मैंने आपके यहाँ से वीर्य संजीवन सत, तिला मस्ताना इत्यादिक औषधियां मंगाईं थीं । मेरे एक मित्र जो वीर्य सम्बन्धी बीमारियो से हमेशा ग्रसित रहा करते थे । तमाम औषधियों का सेवन कर बिबशा हो चुके थे अतएव मैंने आपके यहाँ से वीर्य संजीवन सत मंगा कर उन्हें दिया जिसके सेवन से उन्हें पूरा आराम हुआ । आपके संजीवन सत ने जादू का काम कर लोगों को चकित कर दिया । वास्तव में आप 'सत्य' के अवतार हैं । इस युग में जब कि देश में हजारों भूटे विज्ञापन निकला करते हैं और जनता मोहान्ध होकर उनके बंगल में फंस, अपनी पूंजी से हाथ धो बैठती हैं, ऐसे समय में आप अपनी सच्ची और जादू भरी तथा लाभयुक्त औषधियों से जनता का उपकार कर रहे हैं इस कृतज्ञता के लिए मेरे पास ऐमे शब्द नहीं हैं जिससे मैं आपको धन्यवाद दे सकूँ । मैं उन लोगों का ध्यान आपकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जो कि आजकल के अनाड़ी वैद्य, हकीमा के चंगुल में फंसकर अपने जीवन को मटियामेंट कर देते हैं । १ डिब्बो वीर्य-संजीवन सत अर १ शीशी तिला मस्ताना भेजने का कष्ट उठाइयेगा—इति

पारसनाथ अस्थाना

कायस्थ पाठशाला हाई स्कूल,

ता० २०-५-१६ ई०

जौनपुर ।

गुरुकुल वृन्दावन का महोत्सव

गुरुकुल वृन्दावन का ३५ वाँ महोत्सव ता० २५-२६-२७-२८ दिसम्बर १९३६ में होगा । समस्त जनता से निवेदन है कि वह अभी से अपने प्रिय गुरुकुल के महोत्सव के सफल बनाने के लिये पूर्ण उद्योग प्रारम्भ कर दे तथा अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित हो कर पुष्य और यश के भागी हों ।

—चेतरामसिंह मुख्याधिष्ठाया

हैदराबाद सत्याग्रह के अमर गहान विष्णुभगवान् तन्दूरकर



मृत्युशय्या पर



पीठ पर आतताइया द्वारा किये गये चोटों के निशान ।

पथ-प्रदर्शक

लेखक—
श्री नागेन्द्र शर्मा 'अरविन्द'
महाचर्याभ्रम-देवपर

प्रथम पथ भूले पथिक को,
सुगम मग किसने दिखाया ?

फल उदधि के बीच डगमग हो रहा जलयान था जब ।
तुमुल कोलाहल मचा था संकटों में प्राण था जब ॥
धन चचुर नाथिक कहो किसने तुम्हें इस पार लाया ?
प्रथम पथ-भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ?

लुप्त सुष-सुष हो चुकी थी, हाय ! सज्ञा-हीन थे तुम ।
भेद भावों की विकटतम भ्रान्तियों में लीन थे तुम ॥
विदित है किसने हृदय में, ज्ञान का दीपक जलाया ?
प्रथम पथ भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ?

हो चुका जब था परम निस्तब्ध आर्यावर्त उपवन ।
किस निराशा से न जाने मौन थे मधुकर, विहग-गण ॥
याद है उस काल किसने वेद-वेशू को बजाया ?
प्रथम पथ-भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ?

बित चुके वे दिन, बिता वह आपदाआ का जमाना ।
हो चुके उस ठौर से तुम कमर कस कब के रबाना ॥
हिन्द नभ में पवन घन का था कभी आतक छाया ।
प्रथम पथ-भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ॥

पथिक हिन्दू जाति ! अब तो है निकट मंजिल तुम्हारा ।
पर कहो उस दिन मिला किसका अरी, सुन्दर सहारा ?
तिलक, गांधी से सुबिज्ञों ने किसे गुरुवर बताया ?
प्रथम पथ-भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ?

सतत निर्भरिणी उसी को कीर्ति का कल गान करती ।
याद कर-कर उस 'दया-आनन्द' को रजनी सिसकती ॥
है अचेतन के हृदय में भी नहीं क्या वह समाया ?
प्रथम पथ भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ॥

❀ परिचय ❀

सुख सञ्चारक कम्पनी मथुरा की स्थापना १९६० ई० में हुई थी और अपने जीवन के इन सैतालिस वर्षों में हमारे कार्यालय ने जो वृद्धि की है वही हमारे कार्य की सच्चाई और सफलता का बल्लन्त प्रमाण है, कम्पनी के संचालकों का ध्यान सदा ही इस बात पर रहा है कि कमसे कम मूल्य पर उपयोगी वस्तुयें जनता के सामने रख सकें और इस प्रयत्न में वे सफल भी हुए हैं। वेबल भारत ही नहीं बरन् अन्य देशों ने भी हमारी सेवाओं को स्वीकार कर हमें यथेष्ट प्रोत्साहन दिया है। भारत तथा विदेशों में हमारी औषध एक लाख सैतालिस हजार एजेण्टों द्वारा बिकती हैं और लगभग १ लाख रुपया प्रति वर्ष इनके विज्ञापन पर व्यय किया जाता है और इन्हे बाहर भेजने के लिये सुख सञ्चारक पोस्ट आफिस के नाम से एक अलग पोस्ट आफिस है।

हमारे यहां की प्रभुत पेटे ट तथा अन्य औषधें कितनी गुणकारी एवं लोकप्रिय हैं। उन्हे भारत के अधिकांश मनुष्य जानते हैं हमारी आयुर्वेदिक औषध परीक्षोत्तीर्ण तथा अनुभवों वैद्य की देख रेख में प्रभुत की जाती हैं और उनके लिये व्यवहार होने वाली सामग्री भी शुद्ध तथा उत्तम व्यवहार की जाती है तथा उनके निर्माण में आधुनिक मशीनें व बिजली के यन्त्रों से आवश्यकतानुसार सहायता ली जाती है।

हमारे कार्यालय को देखकर सार्टीफिकेट हमें सम्मानित व्यक्तियों ने दिये हैं। हमारी औषधियों के जो प्रमाणपत्र प्रदर्शनियों से प्राप्त किये हैं वह आयुर्वेदिक सूचीपत्र में छपे हैं।

हमारे यहां की निर्माणित औषधों की आप स्वयं परीक्षा करके उनके गुणकारी होने का विश्वास करें वही हमारा अनुरोध है।

हमारे यहां प्रत्येक भाषा जानने वाले कर्मचारी हैं इसलिये सुविधानुसार जिस भाषा में आप चाहें पत्र व्यवहार करें, किसी विशेष रोग का पूरा विश्लेषण लिख कर उनके लिये औषधि मंगाई जा सकती है, गुप्त रोगों के सार्टीफिकेट आपसे नहीं जाते।

हमारे यहां व्हाट्सयों के सिवाय नीचे लिखा सामान भी बिकता और तय्यार होता है आपके जिस चीज की जरूरत हो हमें लिखिये। एक पोस्ट-कार्ड पर अपना नाम, गांव, डाकखाना और जिला लिखकर भेज दीजिये आपके पास घर बैठे सूचीपत्र भेज दिया जावेगा। अगर किसी खास चीज की जरूरत हो तो नीचे लिखे सूचीपत्रों में से जिसकी आवश्यकता हो मगायें, बीमारी की वास्त कोई सलाह हमसे पूछनी हो तो मुफ्त सलाह देते हैं। बीमारी का हाल किसीको बताया नहीं जाता, जबाब के लिये टिकिट की जरूरत नहीं।

नीचे लिखे सूचीपत्र जुदे भी छपे हैं।

१-रंगार का सूचीपत्र नाटक थियेटर रामजीला रासलीला, रथांग तमशां तथा गाने बजाने के सामान का सूचीपत्र।

२-रथ का मुद्रा, सीन मुद्रा चरगाछ, हस्ताक्षर और तारीख की मुद्रा का सूचीपत्र।

-आयुर्वेदीय औषधों का सूचीपत्र।

४-चड़ियों का सूचीपत्र जिसमें जेबी चड़ियां हाथ पर बांधने की चड़ियां, रीवार पर लगाने की चड़ियां टाइम्सों आदि का सूचीपत्र।

५-टाइप का सूचीपत्र छापेजाने वालों के काम का है जिसमें छापने को अक्षरों के नमूने हैं।

इनके सिवाय हम मथुरा में मिलने वाला सामान अचार, चूर्ण, चटनी, मुट्ठे, शर्बत, बर्तन, छपी हुई धोती, अगोड़े, फेन्सी साड्डियों, पेड़े आदि भी माहकों की प्रसन्नता के लिये भेज देने हैं।

माहकों को मख प्रकार संतुष्ट रखना हम अपना परमधर्म समझते हैं। इसलिये आपसे निवेदन है कि एक बार हमारे व्यवहार की परीक्षा अवश्य कीजिये, पूरा हाल जानने को सचित्र बड़ा सूचीपत्र मगाकर देखिये, पत्र में अपना पूरा पता जरूर लिखिये।

अप्रैल सन् ३७ से सरकार ने डाकखर्च बढ़ा दिया है यानी ४० तोले तक की पार्सल का महसूल रॉजस्ट्री फीस सहित (≡) लगता है इससे छोटी से छोटी चीज का डाक महसूल (≡) से कम न लगेगा। इसके सिवाय ≡) मनीआर्डर कमीशन के और लगेंगे।

सत्याग्रही दयानन्द

(ल०--राजगुरु श्री प० धुरेन्द्रजी शास्त्री चतुर्थ अधिनायक आर्य सत्याग्रह)

वि दयानन्द तप, तन के पुत्र थे । वे सत्य के लिये जिये और सत्य क लिये ही उ हाने अपने प्राणा की आहुति दा । सत्य उनक जीवन का सार था । सत्य परमा मा है आर सत्य ही ऋषि की साधना है । ऋषि के आचार, विचार लेख सम्भाषण युक्ति प्रमाण, शास्त्रा ि और व्याख्यान सब सत्य के आधार पर आश्रित थे । वे सत्य की रज मे घर से निकले आर सय की खोज मे ही बन बन घुमते फिरे । जब तक उन्हे सत्य का पता न लगा तब तक उ बराबर एक जिज्ञासु की भाति सत्य की तलाश मे रहे ।

ऋषि दयानन्द मयक अत्यन्त अनुयायी थे । उनके मन वचन आर कर्म मे पूरा समता थी । अर्थान् वे जैसा सोचते वैसा करते आर जैसा कहते वैसा ही करके दिखाते थे । उनके ब्रह्मचर्य युक्त मवल एव तेजस्वी शरीर का देखकर दशक पर एक अद्भुत प्रभाव पडता था । नका आत्मा सत्य से परिपूर्णा होने के कारण महान् था आर यही कारण है, बडी से बडी विराधिनी शक्ति भी ऋषि का मुहूर्तमात्र क लिए भी कतव्य से च्युत नहीं कर सकी । इन्हाने सत्य विरोधिया के भयकर प्रहार सह परन्तु हृदय मे कडुता वा प्रवश तक न होने दिया । उपनिषिया के ईट पाषाण प्रहार से बचने के लिय कइ बार ऋषि दयानन्द ने भयकर जोडो की रात्रिया जमुना जल मे खडे खडे बिताई । परन्तु उस समय भी उनके सत्य पूर्ण हृदय मे लोक मङ्गल कामना के अतिरिक्त आर कुछ न था ।

ऋषि का जीवन सत्याग्रह का जीवन है । हिंसा



लेखक

तो उनके कार्यक्रम का अग्रही न थी । जो महा मा अपने विप देने वाले को भी हथियों की धैली देकर चुपचाप विदा कर सकता है, जिसके मस्तिष्क में कट्टर से स्ट्टर विरोधी को भी व धन मे फसाने की बात नहीं समता, जो विरोधिया के प्रबल प्रहारों को हस्ते हस्ते बडी शान्ति के साथ सहने की अपूर्व क्षमता रखता है, वह सत्याग्रही नहीं, तो कौन है ?

ऋषि दयानन्द परम सत्याग्रही थे । उनके आदर्श जीवन से शिक्षा लेकर हम लोग भी सत्य की महिमा



को समझते हुए सत्य के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं। दम्भ, द्वेष, झल, छद्म, लिप्सा और लोलुपता का सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं। ये सब बातें एक सच्चे सत्याग्रही के लिए विष तुल्य हैं। जो व्यक्ति या जो समाज वास्तविक सत्याग्रही बनने का अभिलाषी है, उसे इस प्रकार के सब दुर्गुणों को तिलाञ्जलि देनी पड़ेगी।

आर्यसमाज का पौधा ऋषि दयानन्द द्वारा ही आरोपित किया गया था। वह अब विशाल वृक्ष के रूप में संसार के सामने है। आर्यसमाज की आधार शिला सत्य की अटल और अट्टिग चट्टान पर रखी गई है। आर्यसमाज का कर्तव्य है कि वह एक चूख के लिए भी सत्य पालन से विचलित न हो। सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी उसे सत्योपासना से विमुख न होना चाहिए। आर्यसमाज का प्रत्येक सदस्य सत्य के लिए प्राण न्यौछावर करने को तैयार रहे। उसके जीवन की साधना सचार्थ या सत्यता ही होनी चाहिये। सत्याग्रही की आत्मा में एक दिव्य शक्ति प्रादुर्भूत होती है, जिसकी समता में संसार का बड़े से बड़ा पाशविक बल भी निस्तेज और क्षीण सिद्ध

हो जाता है। एक ओर अकेला सत्य साधक लंगोटा-बन्द दयानन्द, और दूसरी ओर विरोध करने वाला सारा संसार! निष्पत्त विवेकियों के हृदय मन्दिर में आसन बिछा कर बैठते हैं। यह है सत्य का प्रताप-अभी कल परसों निजाम जैसी महती शक्ति के मुकाबले में संसार सत्य बल का साधारण-सा चमस्कार देख चुका है। विरवन्ध महात्मा गान्धी सत्य के सहारे ही आज विश्व की दृष्टि में भारत का गौरव स्थापित कर रहे हैं।

सत्य-सत्य कहने से कोई सत्य का उपासक या सत्याग्रही नहीं बन सकता। सच्चा सत्याग्रही बनने के लिए अपने आत्मा में पूर्ण सत्य का समावेश करना होगा। मन, बच और कर्म सत्यमय बनाना होगा। हमारा वायु मण्डल सत्यमय होगा। सोते जागते, उठते बैठते, खाते पीते सत्य ही का स्वरूप हमारी आँखों के सामने होगा। उस समय हमारे प्राण सत्य के लिए होंगे और सत्य हमारी सहायता करेगा हम सत्य को वेदों पर बलिदान होंगे और संसार में सत्य का महिमा बढ़ेगी सत्य कहते कहते हम संसार से विद्व होंगे और अन्ततः सत्य में ही विलीन हो हो जायेंगे।

पढ़ने योग्य पुस्तकें

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध	१॥)	घरेलू विज्ञान	१॥)
” ” उत्तरार्द्ध	१॥)	मनु हरिशतक	१॥)
वेदान्त दर्शन (दर्शनानन्द कृत) पू०	१॥)	मुसाफिर भजनावलो	१॥)
” ” ” उत्त०	१॥)	चाणक्यनीति	१=)
दृष्टान्त सागर ४ भाग में	३=)	धर्मोशाखा	=)
सच्ची देवियां	१॥)	सत्संग	१=)
केवलानन्द भजनमाला	१)	यज्ञ और विज्ञान	१=)
तेजसिद्ध गीताञ्जलि	१)	कथापवीसी	१=)

नोट:—उपरोक्त पुस्तकों पर कमीशन दिया जावेगा इसके अनिश्चित हमारे यहाँ सब प्रकार की धार्मिक पुस्तकें मिलती हैं। थोक व्यापारी, आर्यसमाज, लाइब्रेरी आदि के लिए विशेष कमीशन दिया जाता है।

मिलने का पता—श्यामलाल सत्यदेव वर्मा वैदिक आर्य पुस्तकालय बरेली।



बलिदानों पर

श्रद्धाञ्जलि

तब भी प्रकाश की किरणें विरब के अन्तः-
पुरों को अपने दिव्य तेज से आलोकित कर
रही थीं। एक पैशाचिक शक्ति उसे डस लेना
चाहती थी। परन्तु सूर्यास्त वेला की गोधूलि
में उनका भाग्य सूर्य तो चमक ही उठा था।

बह वसंत का समय न था। प्रकृति का
तरुणपन उसे आकर्षण विहीन करने लगा
था। मां भारती का कोमल वृक्षस्थल धर्मो-
न्मादी मुस्लिम दीवानों के अत्याचारों से रौंदा
जा रहा था। तब अत्याचार का अन्त करने
तुम भाग्यनगर को गये थे। तुम जेल में डाल
दिए गए। यही तुम्हारा छोटा सा विश्व था।
एक ओर यदि पशुता थी तो दूसरी ओर
मानवता। तुम अत्याचार की आग में जलते
और वह चेतनता देता, तुम उत्पीड़ित होकर
तड़फते और वह हंसता, तुममें जीवन था,
बह मारता, तुम मरते वह हंसता। कितनी
भयंकर थी वह हंसी। उसके पीछे कितनी
कुचली आँहें थी जो इसी मानवी जीवन के
ही साथ अन्त में विलीन हो जाती हैं !!

तुम पर हथोड़ों के घाव पड़ते, परन्तु तुम
उषा के आलोक में विहंसते। तुम हंसते हसते
अमर मृत्यु का आलिंगन करते जैसे तुम अपनी
विशालता की महान् सत्ता को अपने आप में
छिपाये रखकर मानव समूह से परे प्रकृति
देवि के अनन्त अञ्जल में विश्वरेने चले जा
एहे हो ! तुम ने आपत्तियां भेलना सीखा है,
अत्याचार सहना नहीं ! क्योंकि

“महा मृत्यु चलती है आगे,

करे अभिवादन मे विजय स्वर !”
यही तुम्हारे जीवन की साकार अन्तिम
व्यक्ति थी !!

× × ×

जीवन का संध्या काल था !

तुमने अपने जीवन की बलि दी थी !!
तुम्हारे दामन पर खून के दाग पड़े थे !!

× × ×

तुम्हारी अग्नि की ज्वालाएँ और भी
अधिक प्रबल होकर देश के कोने कोने में
क्रांति का सन्देश पहुँचा रही हैं। ज्योति की
वह टिमटिमाती लौ, प्रसुप्त प्रदेश को जागृत
करने का प्रयत्न कर रही है। जीवन का
तुम्हारा हुआ प्रदीप एकाएक फिलमिला
छटा, संसार ने समझा कि वह बुझ गया,
परन्तु अब उसने देखा कि अभी जीवन
शेष है।

तुम्हारी वह भीषण ज्वाला !

दीपक की अमर ज्योति !!

आवों के प्राणों का मधुर संगीत !!!

× × ×

आज जब तुम हमारे मानस में आते हो,
हमारे जीवन की अभिव्यक्ति हो वृद्ध आत्मा-
तुम्हारे चरणों में लुढ़क पड़ते हैं ! जब लाखों
मस्तक आगे झुकते रहेंगे तब कैसे ज्ञात होगा
कि—

‘वियोगी होगा पहिला कवि-
आह से निकला होगा गान !!”

× × ×

सत्याग्रह या आत्म शुद्धि

(२० — श्री मगवतीप्रसादजी अम्बापक)

सन् २१ के असहयोग आन्दोलन में महात्मा गांधी ने 'असहयोग या आत्मशुद्धि' नामक लेख लिखा था। जब आर्यसमाज का हैदराबाद सत्याग्रह आरम्भ हुआ तब मुझे उक्त लेख की याद आ गई। सत्याग्रह युद्ध जब चल रहा था तब कई व्यक्तियों ने ऐसा कहा था कि हम इस युद्ध का अवसर देने के लिए निजाम के कृत्रिम हैं कि जिससे आर्यसमाज

श्रीमती सुशीलादेवी जी पीलीभीत



आप आदर्श आर्य महिला हैं। आपने आर्य सत्याग्रह के लिए पूर्णतः धन राशि एकत्रित की थी।

मे एक अच्छा हलचल पैदा हुई है और स्थितिगत दूर हो रही है।

“असहयोग” और “सत्याग्रह” ही क्या प्रत्येक युद्ध अथवा यों कहिए कि प्रत्येक विपत्ति मनुष्य को कुछ ऊंचा उठाती है। कुछ पवित्रता प्रदान करती है और बहुत सा अनुभव और ज्ञान बढ़ाती है।

शुद्धिमान् धीर और साहसी लोग विपत्तियों से डरते और घबराते नहीं बरन् उनका बीरता से शमना करते हैं। इतना ही नहीं बरन् अनेक विजिगीषु दुःसाहसी बीर ऐसे होते हैं जो आपत्तियां का स्वागत करते हैं और स्वयम् उहे दूढ़ने जाते हैं।

उर्दू के किसी कवि ने कहा है— मुस वत में बशर के जोहरें मदाना खुलते हैं” और दूसरा एक कवि कहा है—

सुखरू होता है इम्हों आफतें आने के बाद।

ग लार्ता है हिना पत्थर पै पिस जाने के बाद ॥

इस सत्याग्रह में आर्यसमाज को कुछ सफलता मिली है। इसी सफलता से आर्यसमाज गर्वान्वित हो रहा है। ससार में आर्यसमान की धार बैठ रही है। लोग न देखा और समझा कि ऋषि दयानन्द के अनुयायियों में निर्भयता है, बल है, बलिदान भावना है, काय दक्षता है संगठन है और सबसे बढ़कर है आत्मसयम और सत्याग्रह के अनुरूप अहिंसा की भावना।

ऐसी सुन्दरता और प्रतिष्ठा के साथ सत्याग्रह समाप्त होने पर आर्यसमाज की बिमल यश पता का बहुत ऊंची लहराने लगी है। इसमें सन्देह नहीं। हजारों आर्य सत्याग्रहियों ने जो जेल की यन्त्रशाओं, हजारों मील की यात्रा के पोर कष्ट तथा अन्य अनेक प्रकार की विपत्तियों को सहा है इसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा और मानवृद्धि की अन्य कम है। प्रत्येक निष्पक्ष आलोचक (द्रष्टा) बिना हिचकिचाहट के यह कहेगा कि गांधी जी के सन् २० के महात्मा सत्याग्रह आन्दोलन की अपेक्षा हैदराबाद आर्य सत्याग्रह आन्दोलन यदि बढ़कर न था तो किसी भी प्रकार कस भी न था। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह

ग्रह की सम्मति पर जो बक्तव्य Statement प्रकाशित किया था उससे भी यही ध्वनि निकल रही थी।

किन्तु अब क्या हमको इसे विजय समझ कर इसके उल्लास में अभिमान से भर जाना चाहिए। यह एक प्रश्न है? मेरी सम्मति में तो इस महायुद्ध के परिचात अत्यन्त ठंडे दिल से तथा गम्भीरता के साथ गहरा विचार करने की आवश्यकता है। अगर कोई सुनने की हिम्मत रखता है तो मैं कहने का साहस रखता हूँ कि तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। यह सफलता आपकी पूर्ण विजय नहीं है। यह केवल एक मोर्चे की जीत है और अगर आप इसी की सुराही में फूल जांयगे तो शीघ्र ही सुर्मा जायेंगे। यह तो पहिली ही मन्त्रिजल है अभी बहुत लम्बा चौड़ा मैदान मारना बाकी है।

मेरा तो यह विश्वास है कि दैव ने इस सत्याग्रह युद्ध की प्रेरणा इसीलिए की थी कि ऊँघता हुआ आर्यसमाज जागे, चैतन्य हो, उठ खड़ा हो और दक्षिण देश में गहरी नींद में सोई हुई आर्य जाति को जगाए। यदि आर्यसमाज इस कार्य को नहीं करता तो सम्भूना होगा कि उसने दैवी प्रेरणा को, दैवी सकेत को नहीं समझा और उसने ईश्वर की सामयिक आज्ञा का पालन नहीं किया।

इस सत्याग्रह आन्दोलन को तीक्ष्ण दृष्टि से अवलोकन करने पर हमको अपनी अनेक त्रुटियों का भी पता लग सकता है। आर्यसमाज का यह एक अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह एक चतुर सेनानी की भाँति अपने दल के समस्त छिद्रों का अन्वेषण करके उनको पूर दे भर दे। इस स्थान पर मैं दो चार अत्यन्त आवश्यक त्रुटियों की ओर आर्य पुरुषों का ध्यान खींचना चाहता हूँ। आशा है विचारशील आर्य इस पर यथोचित ध्यान देंगे।

१—सबसे पहिली बात जो मुझे अखरी, यह है कि सैकड़ हिन्दुओं को हमने इस युद्ध में भेजा इसका स्पष्ट अर्थ है कि खास आर्यसमाज के क्षेत्र में सिपाहियों की कमी है। यह बड़ी-शोचनीय अवस्था है कि समाजों के पुराने गणकाम्य अधिकारी

जो आजीवन उच्च अधिकारों पर आरूढ़ रहे इस बलिदान के अवसर पर दुम दबा गए। बहुत सी प्रविष्टित समाजे ऐसी हैं जहाँ का कोई सदस्य सत्याग्रह में नहीं गया। कोई कोई बड़े अधिकारी तो युद्ध के आरम्भ से अन्त तक यही करते रहे कि बर्दा आदिमियों की आवश्यकता नहीं; रूपया चाहिए, रूपया भेजो। संभवतः उन्हें डर था कि कोई उन्हीं से न कह बैठे कि आप क्यों नहीं जाते। कई दलों के सेनापति माला पहिनते और भेंट लेते हुए शिबिर तक पहुँचे और बेचारे स्वयम् सेवकों को जेल में डकेल स्वयम् प्रचार के बहाने बाहर सैर करते रहे।

हमारी दूसरी त्रुटि यह थी कि जिस सन्ध्या और हवन का अधिकार दिलाने हम जेल जा रहे थे उसे हम जेल के बाहर बल्कि अपने शिबिर में भी भले प्रकार न करते थे। इससे हवनादिक में हमारी श्रद्धा को न्यूनता प्रगट होती है जो अत्यन्त गहित है।

तीसरे कार्य का संगठन कुछ इस प्रकार से हुआ कि सारी शक्ति कुछ गिने चुने आदिमियों के हाथ में रही और पचासों कुशाप बुद्धि, अनुभवी और कुशल तथा वीर व्यक्तियों की शक्तियों का कोई उपयोग न हुआ।

चौथा बड़ा भारी दोष यह था कि जेल में सत्याग्रहियों को आपत्तियों को जानकारी का कोई प्रबन्ध न था। और यह भी कि अनेक अबसरो पर खान पान सेवा सत्कार में पत्ताप पूरे व्यवहार हो जावा या जब कि इस व्यवहार में सैनिकों के साथ अत्यन्त कठोरता के साथ साम्य रखने की आवश्यकता है।

इन सब बातों का निष्कर्ष यह है कि हममें आर्यत्व की अभी बड़ी भारी कमी है। यह जो थोड़ी सी सफलता मिली है सो ईश्वर की विशेष अनुकम्पा का फल है। हमारे अन्दर दयाग बलिदान और पवित्रता अत्यन्त अल्प है। हमारी पवित्रता और बलिदान की अपेक्षा हमें कहीं अधिक फल मिल गया है। यदि हम अब सचेत न हुये, हमने अपने अन्दर से रूपया लाने वाले आर व्यवहार कुशल किन्तु अब-

समस्त भारत में ३० वर्ष से प्रसिद्ध भारत सरकार से रजिस्टर्ड

अनुभूत औषधियां

दयालु द्राक्षासव

सुमधुर के

सेवन से शरीर का खून और मांस बढ़ता है मूत्र लगती है दस्त साफ होता है चेहरे पर सुर्खी आती है त्वच की खांसी और दुर्बलता की खास दवा है पीने में मधुर और स्वादिष्ट होने से खुशी से पिया जाता है। कीमत फी शीशी २)

दयालु अशोकारिष्ट

रिजियों के श्वेत व रक्त प्रदर जैसे भयंकर रोग ठीक समय पर रजस्वला न होना गर्भाशय में किसी प्रकार की पीड़ा व दोष आदि रोगों को दूर कर शरीर को तेजस्वि कान्तिवान् बलवान बनाता है। की० २) फी शीशी

दयालु सालसा

रक्त संशोधक रजिस्टर्ड

यह दवा आतशक आदि से बिगड़े खून को शुद्ध कर रोगी से नया जीवन लाती है गर्मी और पारे की खराबी को अद्वितीय सुधारती है हाथ पैर आख की अलन गांठों का दर्द आदि उपद्रव थोड़े दिन सेवन करने से शान्त हो जाने हैं कीमत एक शीशी की० १)

सुवाम्बुसीधु

बिना अनुपान ही पेट का दर्द कफ खांसी

प० रामदयालु आयुर्वेद शास्त्री दयालु आयुर्वेदिक फार्मसी अलीगढ़ यू० पी०

दमा खून संमहणी कै करना औष, लोहू के दस्त बालकों के हरे पीले दस्त उलटी दूध पटकना जाड़ा बुखार आदि रोगों में निश्चय लाभ पहुँचाता है। कीमत ॥) शीशी

दयालु कर्पूरसव

हैजा संमहणी कफ खांसी मन्दाग्नि अरुचि अग्निद्रा आदि रोगों में अचूक हैं। कीमत फी शीशी ॥)

दयालु चूर्ण

बदहजमी और पेट के तमाम रोगों में अचूक स्वादिष्ट दवा है। मूल्य १-) फी शीशी

स्वर्ण भस्म

ताकत की दवा

यह भस्म दिल को ताकत पहुँचाने फेफड़े को मजबूत करने और नया खून बनाने में अद्वितीय है त्वच की बीमारी में यह औषध अपूर्व चमत्कार दिखाती है। कीमत ६०) तोला

असली बाल जीवनी घुट्टी

के पिलाने से दुबले पतले कमजोर बच्चों की बुखार खांसी बदहजमी पेट फूलना दूध डालना कै दस्त पसली हिचकी कब्ज मरोड़ आदि बीमारियां दूर होकर उनको मोटा ताजा बलवान् बनाती है और दांत सुगमता से निकालती है। मीठी होने से बच्चे खुशी से पीते हैं। कीमत फी शीशी १-)

सत्याग्रह में गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन का भाग



रुकुल वृन्दावन में शोलापुर आर्य सम्मेलन के पश्चात् २६ दिसम्बर को हैदरानाद की स्थिति पर विचार करने के लिए एक आर्य-सम्मेलन किया गया और तत्काल ही गुरुकुल के अध्यापक गण तथा ब्रह्मचारी सत्याग्रह प्रचार में जुट पड़े। गुरुकुल

वृन्दावन का प्रथम जन्मा १५ फरवरी १९३६ को स्नानक ब्रह्मचर्य जी आयुर्वेद शिरोमणि की अध्यक्षता में रवाना हुआ। इन जत्थे में सर्व श्री ब्र० नरदेव (सुपुत्र स्व० सेठ रामगोपान जी बेल) ब्र० नित्यानन्द, ब्र० सत्यपाल, ब्र० ब्रह्मानन्द एवं सुखदेव जी आदि सम्मिलित थे। इनमें कई एक ब्रह्मचारी श्याम व फीजी आदि दूर देशों के रहने वाले भी थे। यह जत्था द्वितीय सर्वाधिकारी श्री कुं० चांदकरण जी शारदा के साथ सत्याग्रह करना हुआ गुलबर्गा में गिरफ्तार हुआ और प्रत्येक दो १३ मास का सपरिश्रम

वित्र चरित्र व्यक्तियों को गला सड़ा अन्न समझ कर अलग न किया तो हम वहीं भयंकर स्थिति में पहुँच जायेंगे। इस पत्रिकारण को फिर विना यदि हम कोई और युद्ध छेड़ेंगे तो उसमें कभी सफलता न होगी।

मेरा तो निश्चय है कि यदि समाज में उपरोक्त दोष समझ कर उसका परिहार न किया तो सत्याग्रह युद्ध की सब आहुतियाँ निष्फल गइँ जैसे हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी की अहुति।

कारावास दिया गया। इन सत्याग्रहियों को जेल में घोर यन्त्रणायें दी गईं। कोल्हू चलाने व चक्की पीसने का कार्य कराया गया और ब्र० नरदेव जी को लकड़ वाई में उल्टा लटका कर मार पीट की गई।

गुरुकुल का दूसरा जत्था श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री के साथ श्री पं० शिवचैतन्य जी कार्यकर्ता गुरुकुल वृन्दावन को अध्यक्षता में २७ मार्च को गया। इस जत्थे में ब्र० ज्ञानेन्द्र, ब्र० देवी-शरण, ब्र० रामदेव, ब्र० सत्यदेव एवं राजेन्द्रसिंह वर्मा आदि सम्मिलित थे। इस जत्थे ने ५ अप्रैल को श्री निवृत्ति रेड्डी जी के साथ गुलबर्गा में सत्याग्रह किया और इनमें से प्रत्येक को ६-६ मास की कठोर सजा हुई। गुरुकुल को इस दूसरे जत्थे का भी जेल में भारी भारी कष्ट उठाने पड़े। अधिनायक तथा ब्रह्मचारियों को गड्ढे खोदने और चक्की पीसने आदि के कठिन कार्य दिए गए, जिनसे उनके हाथों में छाले हो जाते थे और दुष्ट भोजन के कारण प्रायः सबको रोगाक्रान्त रहना पड़ा।

गुरुकुल वृन्दावन के तीसरे जत्थे में गुरुकुल के अध्यापक स्वा० आनन्दधन जी एम० ए० एल एल० बी० तथा अनुसन्धान विभाग के कार्यकर्ता पं० प्रियरत्न जी आए गए थे, ये भिन्न भिन्न स्थानों में प्रचार करते हुए २० अप्रैल को शोलापुर पहुँचे। वहाँ से आर्ये जी १०५ सत्याग्रहियों के साथ उमानावाद में गिरफ्तार हुए। जिन्हें २५-२५ मास की सजा मिली। स्वामी आनन्दधन जी चतुर्थ सर्वाधिकारी श्री पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री के साथ गुलबर्गा में गिरफ्तार हुए और आपको भी २५ मास का कारावास हुआ।



इसके परचातु गुरुकुल का चतुर्थ जन्म पंचशिखरामा जी उपाध्याय आयुर्वेद शास्त्री की अध्यक्षता में रवाना हुआ, इसमें पंच सत्यदेव जी व्यायाम शिक्षक, स्नातक श्री सुधीन्द्र जी सिद्धान्त शिरोमणि, प्र० कृष्ण-स्वरूप जी अधिकारी, श्री सतीशचन्द्र जी २५ वर्ष तथा श्री रघुराज जी 'रघु' आदि सम्मिलित थे। यह जन्म ५ जून को छठे सर्वाधिकारी म० कृष्ण जी के साथ औरंगाबाद में गिरफ्तार हुआ और सत्येक को २५-२५ मास का दंड दिया गया। पंच सत्यदेव जी को दो बार भयंकर पेचिश हुई। जिससे आपका भार ४० पौंड कम होगया। स्नातक सुधीन्द्र जी को स्वा० स्वतंत्रानन्द जी ने मनमाड कैम्प का अध्यक्ष बना दिया इसलिए वे जेल न जा सके। गुरुकुल आगे और भी जन्मे भेजने को तैयार था किन्तु सत्याग्रह स्थगित हो जाने से रुक गया।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों, स्नातकों तथा कर्मचारियों ने सत्याग्रही के रूप में जेल जाने से पूर्व समिति के शिबिर में रहकर तथा मार्ग में मथुरा, आगरा, ग्वालियर, फाँसी, मऊरानीपुर, इटारसी, खंडवा; येवला मनमाड, नागपुर, शोभापुर और बम्बई आदि नगरों में सत्याग्रह के सम्बन्ध में प्रचार करते हुए वैदिक सिद्धान्तों को और मन्तव्यों को जनता के सामने पहुँचाया। व्याख्यान और उपदेश द्वारा जनता का ध्यान आर्यसमाज की ओर आकृष्ट किया। इसके सिवा हैदराबाद की जेलों में दूसरे सत्याग्रही भाइयों को नियमित जीवन व्यतीत करना मिलाया। दैनिक संध्या-हवन की पद्धति जेलों में प्रचलित की। जेल में रहते हुए अपने ध्येय पर सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए अविचलित रहे। हमें कहते हुए गर्व है कि गुरुकुल का एक भी सत्याग्रही अपने कर्तव्य से लेशमात्र भी च्युत नहीं हुआ और सदैव दूसरों के लिए आदर्श बना रहा। सत्याग्रह-संग्राम के समाप्त होने पर गुरुकुल (पधारने पर श्री स्वा० स्वतंत्रानन्द जी महाराज (अध्यक्ष स याग्रह समिति) ने गुरुकुल के सत्याग्रहियों के प्रति अपने उद्गार प्रगट करते हुए कहा था कि:—“मुझे गुरुकुल के

ब्रह्मचारियों तथा स्नातकों की धर्म परायणता, सत्य निष्ठा और कार्य शैली से अत्यधिक सन्तोष है। मैं कह सकता हूँ कि इस सत्याग्रह संग्राम में गुरुकुल की सार्थकता सबके सामने स्पष्ट हो गई। और उनके ऊपर व्यय हुई धन और शक्ति इस संग्राम में पूरी पूरी बसूल हो गई।” सत्याग्रही भाइयों के अतिरिक्त गुरुकुल के अन्य ब्रह्मचारियों तथा कर्मचारियों ने भी प्रचार कार्य में पूरा सहयोग दिया। समय समय पर सभायें करके वृन्दावन और मथुरा की सोई हुई हिन्दू जनता में जीवन और जागृति का संचार किया इस अवसर पर अन्य विश्वासों और रूढ़ियों के गढ़ में बन्द जनता के हृदय में जो वैदिक ज्योति जगी है वह सदियों तक उ-हे अलोकित करती रहेगी।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने सत्याग्रह संग्राम के लिए गुरुकुल में से ही लगभग ६००) की धनराशि एकत्रित की। स्मरण रहे कि ब्रह्मचारियों ने अपना भोजन त्याग कर-भूखे रह कर और कर्मचारियों ने मास में २ दिन की आय देकर इस धन को जुटाया था। जिनमें श्री वा० रामदीन जो तथा प० त्रिलोकी-नाथ जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने क्रमशः ५०) तथा २५) हैदराबाद सत्याग्रह के लिए दान दिया। इसका उपयोग सत्याग्रहियों को हैदराबाद भेजने तथा प्रचार करने में किया गया। यद्यपि यह राशि बहुत अल्प है परन्तु इसमें ब्रह्मचारियों के सात्त्विक त्याग तथा सराहनीय धर्म प्रेम की दृष्टि स्पष्ट झलकती है। पाप से संचित धन में से करोड़ों रुपयों की दान राशि भी इसकी तुलना में नहीं ठहर सकती इस धन राशि के अलावा बाहर से आने वाले सैकड़ों आर्य सत्याग्रहियों का ५ मास तक निरन्तर भोजनादि द्वारा सत्कार करना भी गुरुकुल के आर्थिक सहयोग का ही एक अंग रहा है। कदाचित् दान पर चलने वाली किसी और दूसरी संस्थाओं को इतने सत्याग्रही भाइयों का भोजनादि सत्कार का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ होगा। सत्याग्रह समिति के शिबिर में भी गुरुकुल के अध्यापक श्री सुधीन्द्रनाथ जी सिद्धान्त शिरोमणि येवला केन्द्र के

अध्यक्ष रूप में निरन्तर ४ मास तक काम करते रहे ।

उपनिवेशों के ब्रह्मचारियों के नवयुवकोचित वःसाह के समाचार से भारतीय उपनिवेशों में आर्य सत्याग्रह की लहर दौड़ गई । इस सत्याग्रह के विरव व्यापों बनाने में इन प्रवासों ब्रह्मचारियों का बड़ा हाथ है । इस दृष्टि से यह गुरुकुल सबसे आगे बढ़ रहा है ।

जेलों में सेवा, त्याग और तपस्या का आदर्श

हैदराबाद राज्य की अमानुषिक यातनाओं से परिपूर्ण जेलों में जो ता सभी आर्य सभी सत्याग्रही भाइयों ने पर्याप्त सहन-शं लता और धैर्य का परिचय देकर इस विशुद्ध धार्मिक युद्ध को विश्व-इतिहास के पृष्ठों में अमर बनाया है । प्रन्तु गुरुकुल के सत्याग्रहियों का उसमें अपना स्थान है गुलबर्गा, हैदराबाद, संगारेड्डी, औरंगाबाद आदि स्थानों में जहाँ भी गुरुकुल के ब्रह्मचारी और स्नातक रहे अपने त्याग, तपस्या और संयम का दूमरों के सम्मुख आदर्श उपस्थित करते रहे । दूसरों की सुविधा का ध्यान रखना, बीमारों की सेवा सुश्रूपा करना, आपत्ति के समय धैर्य एवं संयम रखना ही इनका जेलों में प्रधान लक्ष्य रहा, कठोर से कठोर यातना

और रोमांचकारी दंड भी हंसते हंसते भेलने का इनको अभ्यास होगया था । स्ना० ब्रह्मदत्त जी तथा ब्र० नरदेव जी ने लकड़वाड़े के अमानुषिक आस्था-चारों को सहन करते हुए मुंह से आह और उफ तक न निकाली । निरपराध होने पर भी लाठी चार्ज का शिकार बनने वाले ब्र० निस्थानन्द जी, ब्र० देवी-शरण जी, ब्र० राजेन्द्रसिंह जी बर्मों ब्र० सत्यदेव जी और ब्र० ब्रह्मानन्द जी जिस मुस्कराहट के साथ जेल में व्यवस्था को स्थिर किए रहे वह क्या भूल जाने की चीज है । जेल के अधिकारियों की हर एक दण्ड-व्यवस्था जैसे इनके अहिंसा व्रत को अचल बनाने वाली बन गई थी । जेल के बर्कशाप में बैठे जो सुन्दर सुन्दर वस्तुओं में ब्रह्मचारियों ने निर्माण की हैं वे हैदराबाद में आगे आने वाले कैदियों को अनुकरण का काम देगी ।

सत्याग्रह से लौटने के बाद राजगुरु श्री पंडित धुरेन्द्र जी शास्त्री ने इत गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को प्रशंसा करते हुए कहा था कि—“धैर्य, संयम, सेवा, तपस्या और धर्म प्रेम की भावना का जो उज्वल आदर्श यहाँ के सत्याग्रही ब्रह्मचारियों ने इस संग्राम में रक्खा है वह आने वाली पीढ़ी के लिए पथ-प्रदर्शन का काम देगा ।

आवश्यकता

भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस के लिए एक मैनेजर की तुरन्त आवश्यकता है जो कम्पोजिंग और छपाई के कार्यों का व्यावहारिक अनुभव रखता हो । बाहर से काम लाना और प्रेस में छपा कर उसकी छपाई वसूल करना उसका मुख्य कार्य होगा । काम की गारण्टी देनी होगी । पार्थना पत्र न्यून से न्यून वेतन क्या लेंगे इसके साथ निम्न पते पर तुरन्त भेजें ।

अभिज्ञाना भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस,
राजामहली आगरा ।

विजय के बाद

(ले०—भी प० महेन्द्रप्रताप जी शास्त्री एम० ए० एम० ओ० एल० देहरादून)

कटरो का कहना है कि बीमारी से अच्छा होने पर अधिक सावधानी की आवश्यकता हुआ करती है। बीस पचीस दिन तक टाइफाइड विषम और अथवा अन्य किसी ऐसी बीमारी से पीड़ित रह कर रोगी निर्मूल हो जाया करता है, इसलिये उससे पीछा छूटने पर उसे अधिक सावधानी से रहना चाहिये—ठर रहता है कि उसकी निर्भ्रता में कहीं वही अथवा कोई और बीमारी आकर उसे दबा न ले। कभी कभी ऐसा भी होता है कि बीमारी से छूटते ही रोगी और उसकी परिचर्या करने वाले कुछ जापरवाह होजाते हे—सोचते हैं कि अब तो दुश्मन को पछाड़ ही दिया, अब क्या है ? इसका परिणाम यह होता है, वह पछड़ा हुआ शत्रु मोटा पाकर फिर चमढ़ जाता है और तब जाने क देने पड़ जात है। इस अयंकर परिणाम से बचने के लिये पछाड़े हुए शत्रु से सतर्क रहने की आवश्यकता है।

इससे मिलती हुई एक ऐतिहासिक सच्चाई भी है। कभी कभी जीतने वाले हार जाया करते हैं। रोम और ग्रीस का प्रसिद्ध युद्ध इसका उदाहरण है। इतिहास ने इस प्रकरण में लिखा है कि—
“The conquered were the conquerors” अर्थात् पराजित विजेता बन गये। रोम वासी ग्रीक लोगों पर विजय पाने के बाद, अपनी विजय के हर्ष में अथवा अन्य किसी कारण से, इतने असावधान हो गये कि ग्रीक लोगों पर उनकी जीत का कोई प्रभाव नहीं हुआ। ग्रीक सभ्यता वैसी की वैसी बनी रही।

इस घटना—व्यतिक्रम के अनेक कारण होते हैं। सब से प्रथम और मुख्य कारण तो यह है कि यह अनुभव का स्वभाव है कि वह आपत्ति में अथवा उस



लेखक —

की सम्भावना में सतर्क रहता है पर जब आपत्ति टल जाती है तो वह लापरवाह हो जाता है। उसकी यह असावधानी टली हुई आपत्ति के लिये स्थिर अवसर का कार्य देती है। कभी कभी ऐसा होता है कि विजयी सेना अपनी जीव की प्रसन्नता में सो जाया करती है और शत्रु की सेना, अवसर पाकर, छापा मार देता है। कभी कभी विजयी सेना में अनुशासन अथवा नियन्त्रण (Discipline) की कमी होजाती है। विजयी सेना के सिपाही जीत के उ माप में आपे से बाहर हो जाते हैं; नियन्त्रण को भूल जाते हैं; लूट मार मचा देते हैं। अपने देरा और राजा

के गौरव को एक ओर रख अपने म्त्रार्थ को पूरा करने लगते हैं। यह बात कभी कभी यहाँ तक बढ़ जाती है कि सेना के अन्दर ही विद्रोह हो जाता है। जब विप्राहियों को लड़ने के लिये शत्रु नहीं मिलता तो वे अपने आहमियों को ही अपने शत्रु और बल का शिकार बना लेते हैं और इस प्रकार शत्रु से किये जाने वाले कार्य को वे स्वयं ही कर देते हैं। विजेता का धर्म भी कभी कभी उसके नाश का कारण बन जाता है। घमण्ड में आकर आदमी उचित अनुचित कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को भूल जाता है। वह ऐसे काम कर बैठता है जो 'चमरबी का सिर नीचा' इस कहावत को सच्चा साबित कर देते हैं। कभी कभी जीत आदमी को अकर्मण्य भी बना देती है—वह समझता है कि मुझे जो करना था कर चुका, अब कुछ करना शेष नहीं। वह भावी कार्यक्रम को एकदम भूल जाता है। इस प्रकार अनेक कारण हो सकते हैं जिनके द्वारा जीत हार से भी अधिक हानिकारक सिद्ध हो सकती है। इसलिये विजयी सेना को अधिक सावधानी से कार्य करना चाहिये।

इतनी भूमिका के बाद हम प्रकृत विषय पर जाना चाहते हैं। अभी आर्थोसमाज ने हैदराबाद में सत्याग्रह संभार जीता है। संभार के समय आर्थोसमाज ने अद्वितीय संगठन शक्ति, कार्य शक्ति, सहनशीलता, त्याग आदि का परिचय दिया है। उसके विरोधी भी उसका सिका मान गये। उसके प्रशंसक कहते हैं कि उन्हें पता न था कि आर्थो जाति में इतनी शक्ति है; समय पड़ने पर वह इतना कार्य कर सकती है। बहुते का कहना है कि वैदिकधर्म के नाम पर इतना बड़ा आयोजन सैकड़ों वर्षों से न हुआ था। ऐसी अनेक बातें प्रशंसा में कही जा रही हैं और ठीक भी हैं। पर हमें उन्हें सुनकर प्रसन्न होकर ही न रह जाना चाहिये। जीत के बाद के कार्य का ध्यान रखना चाहिये, नहीं तो, शेरबन न करे, हमारी जीत हार में परिणत हो जावेगी। हमारी सम्पत्ति में आर्थो जाति का कर्त्तव्य दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक तो दक्षिण प्रचार सम्बन्धी और दूसरा आर्थोस-

माज की उन्नति से सम्बन्ध रखने वाला। हैदराबाद सम्बन्धी कार्य दक्षिण प्रचार के अन्तर्गत है।

दक्षिण प्रचार के सम्बन्ध में प्रथम बात सार्वदेशिक सभा की माँगों को पूरा करना है। वहाँ प्रचार आदि के लिये सभा ने तीन वर्ष का कार्यक्रम बनाया है और उसे पूरा करने के लिये उसने तीन लाख रुपये की अपील की है। आर्थोसमाजों, आर्थो, वैदिकधर्म प्रेमियों का कार्य है कि सभा के लिये यह धन शीघ्र एकत्रित कर दे। सत्याग्रह के दिनों में धन खूब एकत्रित किया गया—सबने अपनी अपनी मामध्यानु-

श्री चौ० पृथ्वीसिंहजी 'विभङ्क'



आप प्रसिद्ध आर्थो प्रचारक हैं। आपने अपनी १००० की नौदरी को त्याग कर सत्याग्रह में भाग लिया था।

सार यह कि आहुतियों डालीं, जिसका परिणाम था ११ हुआ कि सत्याग्रह में लगभग आठ-दस लाख रुपये व्यय हुए। पर अब देखना है कि उसी प्रकार धन दिया और एकत्रित किया जाता है या नहीं। हमने अनेक स्थानों पर यह कहते सुना है कि अब सत्याग्रह समाप्त होगया, अब धन एकत्रित न हो सकेगा। इसे हम कायरता समझते हैं। हमें प्रायः चन्दे करने पड़ते हैं और हमारा अनुभव यह है कि धन देने वाले

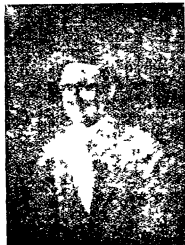
लोगों की कमी नहीं—कार्य करने वाले और धन एकत्रित करने वाले लोगों की कमी है। इसलिये यह कहना कि धन एकत्रित न हो सकेगा ठीक नहीं। एकत्रित करने वालों में लगन और उत्साह होना चाहिये। धन एकत्रित करने का कार्य आर्यसमाज को ही करना होगा—दूसरे लोग तो धन दगे—इससे अधिक कुछ नहीं। इसलिये सत्याग्रह के समय विभिन्न स्थानों पर धन एकत्रित करने के लिये जो समितियाँ बनायी गई थीं उन्हें अभाव रखना चाहिये और उन्हें यह कार्य कराना चाहिये। दूसरे सत्याग्रह के समय जो मासिक सहायताओं मिलती थीं, आगे छ मास तक उन्हें उसी प्रकार प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। यह अवश्य है कि कुछ आदमी उदासीनता दिखाएंगे, परन्तु उनसे धन प्राप्त करना हमारा ही कार्य है और यह करना होगा। धन तीन साल के कार्यक्रम की जड़ है। उसका धना वह पूरा नहीं हो सकता। इसलिये तान लाल खन्ना का एक त्रित हाजाना अत्यावश्यक है।

इस सम्बन्ध में दूसरा बात तावदशिक सना का नियन्त्रण मनना और उसे पूरा सत्याग्रह देना है। दाबण प्रचार का कार्य बड़ा सावधाना के साथ करना है। उसका सफलता और असफलता पर बड़ा आदर समाज के माध्यम का निष्पक्ष होगा। बड़ा याद अपने अपने चावलों का लिखड़ा पकाई गई ता बड़ी हानि होगी इसलिये वह कार्य अपनी शिरोमाणि समाज के ही हाथ में छाड़ देना चाहिये। सत्याग्रहों का प्रज्ञाना उपदेशकों का भेजना आदि सब कार्य समाज की ही देख रेल में होना चाहिये। समाज ने वहाँ सुपरीक्षित और विशेष दक्षता रखने वाले उपदेशक आदि को ही भेजना निश्चय किया है—जनता को उसमें योग देना चाहिये।

कहीं कहीं पर सत्याग्रह की सफलता पर सन्देह किया जा रहा है। एक दो सज्जन ने तो यहाँ तक अवसरता दिखाई कि सत्याग्रह की समाप्ति के साथ ही साथ अपने विचार पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दिये। अनेकों का कहना है कि हैदराबाद में अब भी

वही अवस्था है। यदि इस प्रकार के विचार सार्वदेशिक समाज के पाप पहुँचा दिये जायें तब तो कोई हानि नहीं, पर ऐसा न कर उन्हें लेखनी या मुख के द्वारा जनता में फैलाना अनुचित है। उससे आर्यसमाज के मान को बट्टा लगता है। इससे समाज के प्रति भक्ति में भी कमी आती है और आर्यसमाज का नियन्त्रण भी ढीला होता है। हम यह जानते हैं कि ऐसा करने वाले भी आर्यसमाज के शुभचिन्तक हैं, पर कभी कभी शुभचिन्तकों के द्वारा भी हानि हो

श्रीयुत लालदाजी पसादजी पकील, अम्बवाह (राजलियर)



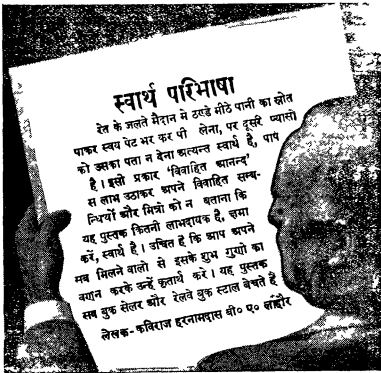
आप रुढ़ आर्थी सज्जन है। आपने सत्याग्रह चलाने तक २००, मासिक सहायता प्रदान की थी।

जाती है। इस बारे में अधिक से अधिक यह हो सकता है कि हैदराबाद में फिर सत्याग्रह करना पड़े, तो उसके लिये अब तो रास्ता देख लिया है। अब तो अनुभव भी होगया है। आवश्यकता पड़ने पर उसके लाभ उठाया जा सकता है।

सत्याग्रह में विजय होने पर दूसरी बात जिस पर हमें ध्यान देना चाहिये, आर्यसमाज की अवस्था

सुधारना है। सत्याग्रह से पहिले समाज के कार्यों में शिथिलता सी आती जाती थी, हालांकि तरह तरह से उसके बारे में कहते सुनते थे। परन्तु सत्याग्रह ने समाज में पुनर्जीवन का संचार कर दिया और अनुभव काने लगे कि आर्यसमाज एक कर्मण्य सत्था है। अब हमारा कर्तव्य है कि इस प्रशंसा को स्थायी बनायें। कहीं ऐसा न हो कि लोग कहने लगे कि आर्यसमाज ने सत्याग्रह की विजय से लाभ न उठाया। इस बदनामी से बचने के लिये हमें उसी प्रकार कार्य करना होगा। जिस प्रकार सत्याग्रह के दिनों में किया था। काय को डग से करने के लिये आवश्यक है कि आर्य समाज के लिये तीन तीन वर्ष का कार्यक्रम बनाया जाय करे। सब आर्यसमाज अन्य काय करते हुए भी, अपनी विरोध शक्ति उसी कार्यक्रम को पूरा करने में लग वे। इस कार्यक्रम के निर्धारण के लिये प्रति तीन बष बाद एक आर्य महा

सभा (Aryan Congress) हुआ करे—जिसमें आर्यसमाज सम्बन्धी अन्य बातों पर भी विचार हुआ करे। इस महासभा में कार्यक्रम तै होजाने के बाद उस पर कार्य करना सार्वदेशिक सभा का कार्य होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि सभा उस कार्यक्रम को पूरा कराने का पूरा प्रयत्न करेगी। केवल एक बार कार्यक्रम की सूचना दे देने से कार्य न चलेगा—मासिक अध्याय त्रैमासिक रिपोर्टों द्वारा यह भी मालूम करना होगा कि किम मयाज ने क्या किया, आदि। इससे सार्वदेशिक सभा की शक्ति बढ़ेगी, उसका कार्य व्यापक होगा और उसका महत्व बढ़ जायेगा। आर्यसमाज में बराबर जीवन बना रहेगा। वे बराबर जनता के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित किये रहेगी। यह अवश्य है कि आर्यसमाज के कार्यों को अन्य अनेक संस्थाओं ने अपना लिया है, परन्तु अभी बराबर कार्य करने का पड़ा है।



स्वार्थ परिभाषा

रेत के जलते मैदान में टण्डे भीटे पानी का स्रोत पाकर स्वयं पेट भर कर पी लेना, पर दूसरे प्यासी को उसका पता न देना अत्यन्त स्वार्थ है, पाप है। इसी प्रकार 'विरहित आनन्द' स लाभ उठाकर अपने विरहित सम्बन्धियों और मित्रों को न बताना कि यह पुस्तक कितनी लाभदायक है, जमा करें, स्वार्थ है। उचित है कि आप अपने सब मिलने वालों से इसके गुण गुणों का वर्णन करके उन्हें कृतार्थ करें। यह पुस्तक सब बुक सेलर और रेलवे बुक स्टाल बेचते हैं।
लेखक- कविराज हरनामदास बी० पी० लाहौर

अभी देश के हृदय गावा तक, विचारे अपद, निर्धन प्रामीणों तक सुधारों की आवाज भा नही पहुँची। फिर यदि औरों ने अपना लिया है तो अच्छा है—समाज भी करे और दूररे भी करे।

इसके अतिरिक्त आर्यसमाजों के भगदों को दूर करना भी आवश्यक है, परन्तु हमारी समझ में भगदें दूर करने से दूर नहीं हुआ करते। भगदें करने वालों के पास यदि काम नहीं होता तो वे भगदते हैं, पर यदि उनके सामने कोई पुरोगम हो, कार्य हो तो वे भगदें भूलकर उसमें लग जाते हैं। इस सत्याग्रह में इसका प्रमाथ मिल चुका है। इस लिये यह बुराई भी तीन वर्ष के कार्यक्रमों में सुट जाने से दूर हो सकती है।

विजय-गान

(ले०—श्री "अम्बेश" माथुर)

जग जीवन—जीवन जग,
निमल, अति सुभग, सुभग !
मां भारती वन्दे !

बरसो भारत मे भन भन,
जीवन हो उम्मन, उम्मन,
अलोकित हो जीवन करण !
मां भारती वन्दे !

सञ्चार गीत का बिकल बिकल,
हूँस मानव रे ! विमल विमल,
आराधर कर प्रतिपल प्रतिपल !
मां भारती वन्दे !

प्रचार दृष्टि से अत्यन्त सस्ता !

महर्षि दयानन्द का आदर्श जीवन परित्र
अब तक लुपे आधुनिक जीवनियों में से सबसे
सस्ता, सरल एवं अतीव रोचक। अंगरेजी, हिन्दी
और उर्दू के प्रमुख पत्रों तथा प्रतिष्ठित आर्य
विद्वानों द्वारा प्रकाशित। सजिबद सचित्र। पृष्ठ
५०० मू० १) ५० मात्र। जे० वेद व्याख्याता प्रो०
किशोरीदास गुप्त वम० ए० साहित्य वाचस्पति।

आर्य कुमार परिषद परीक्षा पुस्तकें:—

बाल वेदाभूषण—आर्य कुमारेपयोगी २५ अनु-
पम वेदोपदेश। सहायार शिक्षा की अनुपम पुस्तक
मू० 1=), आर्य धर्म—सरल शब्दों में आर्य धर्म
का मर्म सिखाने वाली पुस्तक। मू० 1-1) एष्यहार

भानु—एष्यहार—कुराज बनाने वाली महर्षि कृत
उपयोगी पुस्तक -)॥, ईशोपनिषद्—महर्षि कृत
हिन्दी भाष्य सहित -), आर्षोद्देश्यस्तमात्र —
आर्य जीवन के १०० उद्देश्य)।

महा सस्ती अन्य उपयोगी पुस्तकें:—

पंचमहायज्ञ विधि -), देश सन्देश -), वैदिक
सम्प्रदाय विधि—हिन्दी टीका एवं सरल व्याख्या
सहित)॥, मृत्यु पर विचार)।, दयानन्द के विषय
विचार)॥, उपनिषद् प्रकाश, सब उपनिषद् संग्रह
आग्निवेशिभाष्य भूमिका, संस्कारविधि, सक्ति
दर्पण, वैदिक धर्म प्रवेशिका, वेदान्त दर्शन, सांख्य
दर्शन, धर्म का आदि स्रोत, दर्शनावन्द ग्रन्थ संग्रह,
इत्यादि पचीसी आदि आदि।

पता—गोविन्द आदर्स बड़ा बाजार नं० १ अलीगढ़।

एक आदर्श आर्य परिवार

यह परिवार लखनऊ (गालियर) निवासी सेठ गृजरमल जी जोहरी का है
जिन्होंने हैदराबाद सत्याग्रह में जेल यात्रा की थी।



सेठ गृजरमल जी



भिमनी गुरदेवी (धर्मपत्नी)



म० राजपाल (पुत्र)



म० प्रकाशपाल (पुत्र)



सेठजी का भवन फाराजपुर (पंजाब) में



अरनिया (बुल-दशहर) में सेठजा का हाथा पर जलूस



सेठजी के जामाना ला० ब्रजलालजी चॅकर गढदिवाल



सेठ गूजरमलजी (जेन मुक्त हाने पर)

एक सत्याग्रही

सेठ गूजरमल जी का परिचय
(लेखक—भी डा० महावीरसिंह जी)



षि दयानन्द के अनन्य भक्त तथा आर्य-समाज के पुराने सेवक सेठ गूजरमल जी जोहरी लरकर (ग्वालियर) की प्रसिद्ध फर्म पाल ब्रदर्स के प्रोप्राइटर हैं। आपकी जन्म भूमि गोंडवाल जिला कमतसर (पञ्जाब) है। आप फीरोजपुर में भी कुछ काल तक निवास करते रहे हैं, जहाँ आपने एक बिल्किग 'आर्य भवन' नाम से निर्माण की है। आप आर्यसमाज लरकर तथा उसके डी० ए० बी० स्कूल की कमेटी और लाहौर के डी० ए० बी० कालिज की मैनेजिंग कमेटी के मान्य सदस्य हैं। आपके परिवार में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती गुरुदेवी के अतिरिक्त ६ पुत्र तथा बहुएँ और पौत्र हैं। आपका परिवार एक भादर्श आर्य परिवार है। आपका समस्त परिवार ऋषि तथा आर्यसमाज का पूर्ण भक्त है तथा आप समाज के सच्चे सेवक भी हैं। अब भी समय २ पर आप अपने कार्यों से जनता को मुग्ध कर लेते हैं तथा तन, मन, धन से समाज की सेवा करने रहते हैं। आर्यसमाज लरकर में आपने अपनी पृथ्वीय माता गंगादेवी के नाम में एक निधि भी स्थापित करा रक्खी है। आपका वैदिकधर्म से प्रेम आपकी उच्च कविता से प्रगट होता है जो आपने हैदराबाद जाने से पहले २ वर्षों को फीरोजपुर में अपने स्वागत के उत्तर में सुनाई थी। जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

बसीयत लिख दी ताकि काम से विग्राम पाजाऊँ।

जखरत आ पड़े तो मैं वहीं पर काम आजाऊँ ॥

जो मुझसे हो सकेगी धर्म की खिदमत बजाऊँगा।
रहूँगा जब तलक जिंदा धर्म के गीत गाऊँगा ॥
जहाँ तक हो सकेगा धर्म प्रण पूरा निभाऊँगा।
धर्म की राह में अपना तन-मन धन लगाऊँगा ॥
मेरी इच्छा है मेरे सारे बेटे धर्म को पाले।
फरायज्य को करें पूरा न उनको भूल कर टाले ॥
धर्म के काम आना ये मेरी वनको नसीहत है।
यह वैदिकधर्म ही उनके लिये असली बसीयत है ॥
हैदराबाद सत्याग्रह में अपूर्व त्याग

हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह आर्यसमाज के जीवन मरण का प्रश्न था। इस अवसर पर आर्य-समाज का अकर्मण्य व्यक्ति भी सत्याग्रह को सफल बनाने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहा था। ऐसे नाजुक समय पर सेठ गूजरमल जी कब चुपचाप बैठ सकते थे। आपने भी इस नगर से गुजरने वाले तथा वैसे ही आपके परिवार ने भी सत्याग्रही बिरों का तन, मन धन से, सेवा सत्कार करना आरम्भ कर दिया और आर्य सार्वदेशिक सभा देहली तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर की सेवा में सूचना दे दी थी। जब आपकी आत्मा को स्वागत करने मात्र से सन्तोष न हुआ तो आप स्वयं हैदराबाद सत्याग्रह में जाने के लिए उत्कण्ठित हो पडे और सत्याग्रहियों के सेवा सत्कार का कार्य अपनी धर्मपत्नी और अपने सुपुत्र म० राजपाल और म० प्रकाशपाल को सौंप कर १ मार्च को फीरोजपुर को चल दिये।

हैदराबाद जेलों के भयंकर समाचार पढ़कर और जेल अधिकारियों की सख्तियों और कठिन कार्य को देखते हुए और उनका सामना करने के लिए आपने

सत्याग्रह करने का निश्चय कर लिया। सेठ जी ने वह सम्पत्ति लिखा था कि मैं हैदराबाद से जिन्दा न लौटूंगा। अतः अपनी कुल सम्पत्ति (१-२३०००) एक लाख तैर्से हजार वसीयत द्वारा अपने पुत्रों के नाम अर्पण कर दी और पाँच हजार रुपया धर्म कार्यों के लिए दान कर दिया गया। इस सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए अपने भाई सा० महन्तराम को ट्रस्टी नियत करके हैदराबाद जाने का ऐलान कर दिया तथा २२ मार्च को आप और सा० महन्तराम हैदराबाद के मनाने के लिए लाहौर पधारे। परी महल में वृत्सव मनाया गया जहाँ श्रीयुत सत्यार्थी जी ने आपका परिचय कराया और आशीर्वाद देकर विदा किया। २ अप्रैल को फीरोजपुर शहर की आर्ष-समाजों की ओर से जल्सा हुआ, आपको सुशहाल वीर सेना के जत्थे के साथ विदा करने के लिए सहस्रों नरनारी एकत्रित हुए। फीरोजपुर और गोंदवाल की जनता की ओर से आपको मानपत्र प्रदान किए गए। सा० अनन्तराम जी एम० ए० बार एटला प्रधान आर्षसमाज ने तिलक लगाकर आशीर्वाद दिया तथा विराल जल्लस निकाला गया। तत्परवान् आप भोगा, थोट कपुरा, फाजिल्का, मुक्तसर, अबोहर, मानसा मन्डी, जीद, मटिडा, रोहतक इत्यादि स्थानों पर प्रचार और धन संग्रह करते हुए देहली पहुँचे। दीवान हाज में जल्सा हुआ, फिर आपको ठा० अमरसिंह जी अपने नगर अननियों में ले गए, वहाँ आपका हाथी पर जल्लस निकाला गया और प्रीतिभोज हुआ एवं मानपत्र भेंट किया गया। वहाँ से सुरजा, सिकन्दराबाद, अलीगढ़ मथरा, आगरा प्रचार करते हुए १२ अप्रैल को लरकर (ग्वालियर) पधारे, यहाँ के स्वागत का वर्णन अकथनीय है। नगरनिवासियों ने पुष्पमाला मिठाइयों जलपान इतरपान से सैकड़ों जगह सत्कार किया एवं मानपत्र प्रदान किए। आपने २५ की थैली सुराहाल वीर सेना के जत्थे को तथा १५ की थैली मेहता सावनमल जी के जत्थे को और ५ के वज्र आदि महीपाल प्रचारक को भेंट दिये।

तत्परवान् भाँसी शिवपुरी आर्षसमाज की ओर से आपका बैरड बाजे के साथ जल्लस निकला और प्रचार हुआ।

बम्बई में चौपाटी पर विराल समा हुई और आपका फोटो लिया गया और आपकी जन्म भूमि गोंदवाल के निवासी मेसेज बाबा प्रदम्नसिंह एचड सन्स के प्रोप्राइटर बाबा गुरुमुखसिंह जी ने आपके जत्थे को प्रतिभोज दिया और जत्थे का फोटो लिया गया। २१ अप्रैल को आप शोलापुर पहुँचे, २२ अप्रैल को आप श्रीमान् राजगुठ धुरेन्द्र जी शास्त्री के साथ गुलबर्गा में गिरफ्तार हो गये। आपको दो साल की कड़ी कैद की सजा हुई, जेल अधिकारियों ने आपको अस्वस्थ कठिन कार्यों करने को दिये। जिनको सहन कर और जेल के नियमों का पालन करते हुए आप सत्याग्रहियों की देखभाल और सेवा सत्कार का कार्य भी करते रहे। भोजन ठीक न मिलने के कारण आपका शरीर दुर्बल होता गया। आपका २५ पौड वजन कम हो गया परन्तु आपने धीरज को न छोड़ा, जेल अधिकारियों ने यह जान कर कि आपका १५०००) पन्डह हजार का जिन्दगी बीमा हो रहा है आपसे विशेष व्यवहार का सम्बन्ध करना चाहा परन्तु आपने उसे स्वीकार न किया। २८ जून को मि० हालस गुलबर्गा जेल में पधारे वनसे आपकी मुलाकात हुई और आपने २५ पौड वजन कम होने का जिकर भी डायरेक्टर जनरल से किया। उस पर आपको ५ जौलाई की रात को डाक्टरी राय में नहाने में वजन कम हो जाने की वजह से ४० सत्याग्रहियों के साथ जेल से मुक्त कर दिया आपने शोलापुर पहुँच कर दुबारा सत्याग्रह करने का विचार प्रकट किया। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की आज्ञा न मिलने पर आप मनसाड होते हुए १५ जौलाई को लरकर (ग्वालियर) आगये। आपने आकर यह प्रण किया कि जब तक सत्याग्रह की पूर्ण विजय प्राप्त न होगी तब तक मैं घर पर भी जेल जीवन ठयतीतें ढुंङगा। आपने एक टाट, एक कम्बल, एक तसला रख छोड़ा था।



जमीन पर सोते थे और एक बल्क भोजन करते थे। आपके मकान पर आर्यो पुरुषों की भीड़ लगी रहती थी। हैदराबाद में आपके भाई ला० महतराम को जेल अधिकारियों ने बहुत कड़ी सजा दे रखी थी। उनको हंडा बेड़ी लगाकर गजी में डाल रखा था। आपने दुबारा हैदराबाद जाने का निरचय कर लिया था और उनसे मुलाकात करने की इजाजत के लिये सर अकबर हैदरी और जेल अधिकारियों को तार दिये और आपकी धर्मरत्नी ने भी १०० रुपये मासिक देने की प्रतिज्ञा की। अचानक सत्याग्रह रोक दिया गया और डाकटरी वजु पर सत्याग्रही लौटने शुरू हो गये और आपने और अरके परिवार ने जिस तरह हैदराबाद जाने वाले जरथों का स्वागत सत्कार किया था ऐसे ही वापस आने वाले सत्याग्रहियों का सत्कार भोजन आदि से करना आरम्भ कर दिया। सैकड़ों सत्याग्रही आपके मकान पर भोजन करते रहे। १४ अगस्त को श्रीयुक्त अजितसिंह जी सत्याग्रियों का स्टेशन गवालियर पर स्वागत किया और उनके सम्मान में टी पार्टी दी गई। २१ अगस्त को सातों विजयी डिक्टेरों का स्वागत स्टेशन पर किया गया और सबसे भेट हुई। २२ अगस्त को कुंवर मुखलाल व ठा० अमरसिंह जी और २३ अगस्त को लाला महन्तराम जी के जलूस निकाले गये और

प्रीतिभोज दिये गये और चांदी के कप और सुनहरी कञ्जे की तलवार और मानपत्र भेंट किये गये और आपके घर पर जो के चिरागों और विजयी के कुमकुमों की रोशनी की गई। २५ तारीख को आप अपने जथे के साथ पत्राव को रक्षाना हुए अरनियाँ और फीरोजपुर में आपका शाही स्वागत हुआ तथा गार्ड ऑफ आनर दिया गया। १०००० हजार की पुरुष एकत्रित हुए और फोटो लिये गये एवं मानपत्र दिये गये, विशाल प्रीतिभोज हुये। इसके अतिरिक्त अमृतसर, गोंदवाल, करतारपुर, मियानी, पठाना, जालन्धर, लुहारपरतापपुरा, कपूरथला, जहियालागुड इत्यादि नगरों में आपका स्वागत हुआ। आर्यसमाज गवालियर सिटी की ओर से प्रीतिभोज दिया गया परगना गोहद (गवालियर) में आर्यसमाज स्थापित किया और आपको मानपत्र और कृपाण भेंट हुए।

श्रीमान लाला गूजरमल जी और उनके परिवार के राजपाल, प्रकाशपाल, यशपाल, वंशपाल, रामपाल, सत्यपाल, ब्रह्मपाल व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विद्यावती, अमती पार्षदी, देवी आर्यसमाज के अनुपम रत्न हैं, भगवान् आपके परिवार को चिरायु रखें।

आपने इसमें ७ महीने का समय और २६४२ व्यक्तिगत स्वर्च किया।

वर चाहिए

श्री हिन्दू अनाथ आश्रम मुजफ्फरपुर (बिहार) के शैश्यों के लिये योग्य वरों को आवश्यकता है। शैश्यों प्रायः ऊंची जाति की हैं। देखने में सुन्दर एवं स्वस्थ हैं। सबकी उम्र १६ वर्ष २१ वर्ष के भीतर है। उम्मीदवारों को प्रार्थना-पत्र शीघ्र भेजना चाहिये। साथ ही आर्यसमाज कॅम्प्रेस कमिटी वा अन्य किसी विश्वासनीय संस्था के छपे फार्म पर प्रमाणपत्र आना आवश्यक है। उम्मीदवार यदि अपना फोटो भेज सकें तो उत्तम होगा। उत्तर के लिये एक आने का टिकट आवश्यक भेजना होगा।

सम्प्री

श्री हिन्दू अनाथ आश्रम मुजफ्फरपुर मोहस्ता—बन्धारा राम्प—(बिहार)

यू० पी० या हैदराबाद

कॉंग्रेस सरकार की उदारमति

का हरय हिन्दुओं के साथ अन्याय अन्याचार और विश्वासघात हैदराबादी शासन का नमूना है, मूल्य -)।।

२५ का १।।, पचास का २।।।, सौ का ५) डाक व्यय अलग।

अन्य पढ़ने योग्य पुस्तकें—

सूचीपत्र देखकर मंगाइये

प्रेम पुस्तकालय आगरा।

आर्य सत्याग्रह आन्दोलन में पंजाब का भाग

[ले०— श्री हितैषी अलावलपुरी सम्पादक "प्रकाश" लाहौर]



क वर्ष पूर्व की बात है, यही अवत-
 वर का महीना था जब सार्वदेशिक
 आर्य प्रतिनिधि सभा देहली निजाम
 सरकार से उन शिकायतों को दूर
 करवाने के लिये जो हैदराबाद
 के आर्यों को रियासत में पूजा, प्रचार
 तथा नये मन्त्रों को खोलने पर लगी पाष-
 न्दियों के विरुद्ध थीं पत्रव्यवहार कर रही थी और
 उधर हैदराबाद से आर्यों के एक के अनन्तर दूसरे
 के बहद के समाचार आरहे थे जिससे आर्य जनता में
 रोष बढ़ रहा था और वह दिसम्बर के अन्त में
 होने वाली आर्यन कांग्रेस और उसके निश्चयों की
 प्रतिज्ञा करने का भी तैयार न थी और उत्सुक थी
 कि श्रीग्रांथिशीघ्र सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया जाय ।
 आर्यसमाज लाहौर के उरसव की घोषणा हुई
 तो मैंने तजबीज की कि इस वर्ष एक "हैदराबाद
 कान्फ्रेंस" रखी जाय जिसमें भाग लेने के लिये
 पंजाब भर के आर्यों को आमन्त्रित किया जाय । मेरी
 इस तजबीज पर अमल किया गया और अनाकली
 तथा बच्छोवाली दोनों आर्यसमाजों ने अपने यहां के
 कार्य क्रम में हैदराबाद सत्याग्रह कान्फ्रेंस को
 विशेष स्थान दिया । और मेरी इन भौखों ने उस
 अवसर पर आर्यों के उरसाह और जोश के जो
 हरय देखे उन्हें देख कर उसी समय विश्वास हो
 गया कि यदि आर्य समाज को हैदराबाद में सत्याग्रह
 करना पड़ा तो उसकी अवश्य विजय होगी क्योंकि
 आन की आन में हजारों रुपयों के बाड़े तो हूये
 ही नकद भी हजारों ही प्राप्त हुये और कई सौ

बालबिटबर भी उसी समय भरती हो गये चुनावे
 समय ने हमारे विश्वास को सत्य कर दिखाया ।

(२)

जुंही युद्ध का विगुन बजा पंजाब का आर्य-
 जगत उठ बैठा । नेताओं ने उसे बता दिया कि
 पंजाब आर्यसमाज का गढ़ समझा जाता है अतः
 हैदराबाद के आर्यों की आंखें पंजाब पर, लगी हुई
 हैं । आर्य जगत ने यह चेतावनी सुनी और अपनी
 पुरानी रखायात को बरकरार रखने का विश्वास
 दिलाया । समय आने पर उसने दिखा दिया कि
 वह अपने दुःखी भाइयों के लिये क्या कुछ कर सकता
 है । सबसे पहले जत्थे में आर्य प्रतिनिधि सभा
 पंजाब की संस्था गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने
 भाग लेकर सिद्ध कर दिया कि पंजाब के आर्य हैद-
 राबाद के आर्यों के दुःख को अपना दुःख समझते
 हैं । इसके बाद पंजाब की सभी आर्य प्रमुख संस्थाओं
 विशेष कर गुरुकुलों, दयानन्द उपदेशक विद्यालय,
 दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, डी० ए० वी० कालेज
 और स्कूलों के विद्यार्थियों ने अपनी शिक्षा आदि की
 परवाह न करते हुये इस युद्ध में अपनी आहुति देना
 प्रथम कर्तव्य समझा । नतीजा यह हुआ कि कालेजों
 के प्रोफेसर, आचार्य, उपदेशक तथा अन्य कार्य-
 कर्ता भी जेल जाने का तैयार हो गये और बे गये ।
 इसी पर बस नहीं, आर्यजगत के प्रमुख व्यक्त
 ला० खुशहालचन्द और महाशय कुष्णजी भी बड़े-
 बड़े जत्थों के साथ हैदराबाद रियासत से टकर लेने
 गये ! पंजाब ने उन्हें जिस समारोह से मेजा वह
 समारोह शायद ही किसी अन्य अवसर पर देखने
 में आया हो । महाशय कुष्णजी ने अपने एक मास

शास्त्रक विधि द्वारा निमित्त जगत् प्रसिद्ध

शुद्ध हवन सामग्री

बोले से बचने के लिए आँचों को बिना
बी०पी० भेजी जाती है।

पहिले पत्र भेज कर 5- नमूना फ्री मंगाएँ
नमूना पसन्द कर आर्डर दें अगर नमूना वैसी
सामग्री हो तो मुख्य भेजवें अन्यथा कूड़े में
फेंक दें फिर मूल्य भेजने की आवश्यकता
नहीं। क्या ? इससे भी बढ़कर कोई सजाई
की कसौटी हो सकती है। मात्र 11) रु० ८०)
भर का सेर। थोक माहक की २५) प्रति
सैकड़। कमीशन। मार्ग-व्यय माहक के जिम्मे
हमारे यहाँ स्वामी दयानन्दजी कृत सत्यार्थ-
प्रकाश।) और संस्कारविधि (2) को मिलती है
परन्तु पुस्तकों का मुख्य मार्ग व्यय सहित
पेशगी भेज दें।

पता—रामेश्वरदयालु आर्य पो० अमौली
(फतेहपुर यू० पी०)

जाड़े के शुरू से ही वसन्त तक सेवन करें

चाय नहीं शिलाजीत

शुद्ध शिलाजीत शरीर में ही नहीं, नसों
में भी वह पोषक गर्मी पहुँचाती है, जो चाल स
वर्ष की अथवा से कम होने लगती है। ताकत
और मर्दानगी देती है तथा—

प्रमेह, प्रदर, गठिया, बवासीर और
कफ सम्बन्धी रोगों की एक मात्र कुदरती दवा
है। मूल्य ४) रु० छटौंका (३८-४५)

किशोरीदास बाजपेयी शास्त्री

कनखल (हगिहार)

फिर मिलनी मुशकिल

अब २॥) रु० से १॥) अजिन्द, सजिन्द १॥॥)

डाक } केवल ३ मास को { ॥॥-
व्यय } क्या ! वही }

भारतवर्ष तथा ब्रह्मा, अफ्रीका, फिजी आदि
देशों में प्रसिद्ध विद्योपयोगी सचित्र
नवीन प्रकाशित

१००० पृष्ठ का ग्रन्थ

नारायणी शिवा अर्थात् गृहस्थाश्रम

स्व० मुन्शी चिम्मनलाल कृत इस
अमूल्यग्रन्थ की थोड़ी प्रतियाँ रह गई हैं।
साहित्य प्रेमियों को शीघ्रता करना चाहिये।
युद्ध के कारण फिर इस भाव न मिलेगी पुस्तक
की उपयोगिता २० बीं बार छपने से ही
प्रकट है। अन्य पुस्तकें भी पौने मूल्य में।
पता यह लिखिये—

चिम्मनलाल भद्रगुप्त आर्य बुकसेलर

(४१-४६) मानक चौक अलीगढ़।

मुफ्त मुफ्त मुफ्त

आप हमें पाँच हिन्दी पढ़े लिये
पुस्तकों के पूरे पते लिखकर भेज दें
हम आपको एक अद्भुत असली
कोकशास्त्र मय चित्रों के मुफ्त भेज
देंगे केवल डाकखर्च के लिये दो



आने के टिकट आने जरूरी हैं।

प्रोफेसर एन० एल० बरमन जालन्धर शहर

(41)

(Jullundur City)

भारत सरकार से रजिस्टर्ड

* तिला मस्ताना *

आयुर्वेद ग्रन्थ समुद्र को भली भाँति मथकर, अनेकों वर्ष के अधिक परिश्रम के बाद न जाने कितनी छानबीन का शेर, साँड़े रीछ की बर्षी तथा सैंकड़ों जंगली जड़ी बूटियों के योग से रोगप्रस्त बन्धुओं के लाभार्थ "तिला मस्ताना" का आविष्कार किया है। हमारा दावा है कि पिछले बीस वर्षों से आज तक इसके जोड़ की गुणकारी औषधि और कोई नहीं ईजाद हुई।

जो लोग बाल्यावस्था के समय कुसंगत के कारण हस्त क्रिया आदि दुर्व्यसनों में फँस जाते हैं, अथवा युवावस्था में अधिक लोलुपता के कारण दिन रात को चिन्तन करते रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि गर्भाधान क्रिया उचित रूप से करने योग्य नहीं रहते। इतना ही नहीं इससे धनकी निरपराध स्त्रियाँ भी अनेकों रोगों में प्रसित हो जाती हैं। पुरुषों में ऐसे अनेक दोष हैं जो बिना लगाने वाली दवा के अच्छे नहीं होते। तिला मस्ताना के लगाने से बाल्यावस्था की कुटेव से इन्द्री कमजोर पड़ जाना, नसों को कमजोरी, सुस्ती, हस्तक्रिया से पैदा हुई खराबियाँ वा नसों का गर्भा-

धान क्रिया के योग्य न रहना आदि सारी शिकायतें एक दम दूर हो जाती हैं। इसके इस्तेमाल से एक ही हफ्ते के अन्दर नपुंसकता, शिथिलता एवं शीघ्र-पतन तमाम खराबियों के मन्तर हो जाती हैं। कद व बल को बढ़ा कर रग व पट्टो में विजली की भाँति ताकत भर जाती है। हर मौसम में समान रूप से फायदा पहुँचता है। आप भी आज ही एक शीशो मंगाकर सप्ताह का सुख लूटिये। विश्वास रखें आपका पत्र-व्यवहार एक दम गुप्त रखा जायगा। मूल्य की शीशी २॥), दो रूपया आठ आना दो शीशी ४॥), तीन शीशी ६) डाक खर्च माफ मनि-आर्डर फीस २) अगर धातु क्षीण प्रमेह की शिकायत है तो फिर हमारा २० साल आजमूदा "वीर्य संजीवन सत" (जसका मूल्य २॥) फी डिब्बा है मंगाकर लाभ उठाइये।

मिलने का पता:— वैद्यरत्न श्री सत्यदेवजी

रूपविलास कम्पनी नं० १४२ कंचौसी इटावा यू० पी० आगरा एजे ट—आर० बा० गार्ग एण्ड को० जोहरी बाजार आगरा।

फीरोजाबाद एजेन्ट—अप्रवाल ब्रादर्स फिरोजाबाद

लगभग शताब्दीसुं प्रचलित
डॉ. र्वून माफ करनमें मड़ाहर
वाष्मन थोपाल
का
आयोडाइज्ड
मासापरिला

वास्त्यायन कामधुत्र

अनुवाद सहित मूल्य ५)
मित्र के माहर्का से (रबा-
यता मूल्य १॥)

गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने और संसार के बालाचन के क्रिये, यह ग्रन्थ 'दृपंग' है।

मिलने का पता—

आर्चसाहित्य मयहल
लिमिटेड, अकमेर।

दौरे में जहाँ ७५ हजार रुपया धर्म युद्ध के लिये प्राप्त किया वहाँ उनका राजमो ठाठ के साथ स्थान स्थान पर स्वागत भी किया गया और ३-४ सी मान पत्र भेंट किये गये। उनके क्लेखों ने पंजाब भर में जो अग्नि प्रचण्ड की थी वह उनके दौरे से एक ज्वालाला का रूप धारण कर गई। और नगर नगर और ग्राम ग्राम में सत्याग्रह का ही चर्चा होने लगा। श्री बच्चे, बूढ़े और युवकों को दिन रात यदि कोई धुन थी तो धर्म युद्ध के लिये धन जमा करने की।

(३)

इसका परिणाम क्या हुआ ? आर्य जगत् ने पंजाब से जो आशा लगा रखी थी वह पूरी हुई। १ अक्टूबर ३६ को सावंदेशिक सभा के वार्षिक अधिवेशन में जब सत्याग्रह का हिसाब पेश हुआ तो ज्ञात हुआ कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के द्वारा आर्य सत्याग्रह समिति को १ लाख ४७ हजार रुपया भेजा गया। इसमें २८ हजार रुपया देहली समाज का शामिल है क्योंकि देहली की समाज आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बंधित है। इन्हीं तरह प्रादेशिक सभा लाहौर की भोर से १४ हजार

रुपया भेजा गया। गोया कुल १ लाख इकसठ हजार वह धन अलग रहा जो सीधा भेजा गया अथवा सत्याग्रहियों के स्वागत सत्कार, किराया और भोजन इत्यादि पर व्यय हुआ। वह धन कई लाख होगा। फिर सत्याग्रही देने में भी पंजाब सब सूबों से आगे हो रहा कुल सत्याग्रहियों में ३ सत्याग्रही पंजाब के थे। यदि हैदराबाद के वीर नकाल दिये जाय तो पंजाब के सत्याग्रही आधे से कम न थे।

अपने जीवन की आहुति भी इस यज्ञ में कई पंजाबी युवकों और वृद्धों ने दी। जिन्होंने युद्ध क्षेत्र में वीर गति प्राप्त की उनका बलिदान तो खून की स्थाही से हैदराबाद के इतिहास में लिखा जायगा इनके अतिरिक्त कई वीर जो बीमार होकर आये थे एक एक करके अपना सर्वस्व बलिदान कर हमसे विछुड़ रहे हैं।

सारांश यह कि आर्यमान की हैदराबाद सत्याग्रह विजय में पंजाब का सब प्रांतों से अधिक हाथ है उसने द्रव संग्राम में अपना जो भाग दिया है वह इम योग्य है कि उस पर : वें किया जा सके ! मैं पंजाब के आर्य जगत् को इसके लिये बधाई देता हूँ।

विज्ञापन दाताओं से निवेदन

आर्यमित्र के पूर्व अंकों से लगाकर अंक ४५-४६ यानी नवम्बर सन् १९३६ ई० तक विज्ञापन छपवाई की रकमें जिन जिन विज्ञापन दाताओं पर बाकी लेनो निकल रही है, उन सब विज्ञापन दाताओं से इस सूचना द्वारा नम्र निवेदन किया जाता है कि वे कृपया अपने विज्ञापन छपवाई की रकमें "दुर्गाप्रसाद सुपरवाइजिंग डाइरेक्टर, आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर C/o आर्यमित्र कार्यालय आगरा" के नाम से भेजें, जिससे प्रेषित रकम उनके हिसाब में वाकायदा जमा होजावे। कृपया इस सूचना को नोट करें।

६-११-३६

विनीत—

दुर्गाप्रसाद, सुपरवाइजिंग-डाइरेक्टर,
C/o आर्यमित्र कार्यालय राजामण्डी,
आगरा।

आर्य सत्याग्रह का परिणाम

[ले०—श्री प० भगवान् स्वरूप जी न्याय भूषण सयुक्त मन्त्री आर्य प्रतिनिधि राजस्थान व मालवा अजमेर]

दराबाद का आर्य सत्याग्रह समाप्त होने के बाद कई आर्य बन्धु तथा अन्य सज्जन प्रायः पूँछा करते हैं कि इतने धन व जन का बलिदान करके प्राप्ति क्या हुई है ? जो विज्ञप्ति निजाम गवर्नमेंट की ओर से प्रकाशित हुई है उससे वे जोग सन्तुष्ट नहीं, और सत्याग्रह के संचालकों पर आक्षेप करते हुए यह कह दिया करते हैं कि समय से पूर्व बन्द कर दिया गया, कोई परिणाम सन्तोषजनक नहीं निकला ।

मेरा ख्याल इसके विपरत है । मैं समझता हूँ कि जो धन या बलिदान हुआ और कष्ट उठाया गया उसका शुभ परिणाम हमें प्राप्त हो गया । आर्यसमाज चाटे में नहीं है । आर्य सत्याग्रह का जो उद्देश्य था वह पूरा हो गया, अतएव उसके संचालकों ने बड़ी बुद्धिमत्ता का कार्य किया । इतना ही नहीं आरम्भ से लेकर अन्त तक संवर्गजन इतनी उत्तमत्ता से होता रहा कि देखने वाले भी दंग रह गये, और मेरी तो यहाँ तक धारणा है कि हमारी सफलता का बहुत कुछ अर्थ, कौशलपूर्ण युद्ध संचालन नीति को है ।

हां तो मैं परिणाम के सम्बन्ध में लिखने चला था । मैं ता० १६ को मनमाड से करीमनगर अमान् शारदा जी को देखने के लिये रवाना हुआ । ता० १७ आगस्त को प्रातःकाल कामारैडी स्टेशन पर मोटर में बैठा । कामारैडी से ६५ मील की यात्रा मोटर द्वारा करनी थी । प्रातःकाल ७ बजे का समय, वर्षा हो रही थी और मैं स्टेशन से चलकर मोटर लारी में जा बैठा । गाड़ी खूब भरी हुई थी । वह ७। बजे के लगभग चली । बातां बातां में वर्षा के विषय में वर्षा चल

पड़ी । यात्रियों में से ही एक ने कहा—'आज आर्य जेल से छूट रहे हैं, और वर्षा शुरू होगई है । लगभग मास डेढ़ मास से वर्षा नहीं थी । जनता त्राहि त्राहि पुकारने लगी थी, उस व्यक्ति का यह कहना था कि प्रायः सभी कहने लगे 'हां, भाई बात तो ठीक है, आज उन लोगों के छूटने ही वर्षा होने लगी, अभी तक बूँद नहीं थी, कल तक कड़ाके की धूप थी, रात रात में क्या से क्या हो गया ।' इसे हिन्दू मुसलमान सबों ने स्वीकार किया ।

करीमनगर मैं १० बजे पहुंचा । ज्ञात हुआ कि शारदा जी अभी छूटकर मेदापल्ली स्टेशन गए हैं । वहां नगर में देखा तो बन्दनभारें लग रही हैं, दुकानें सजी हुई हैं । शारदा जी मोटर में जब बाजार से निकले, स्थान स्थान पर लोगों ने फूत मालाएं पहिनाईं और रसगत किया ।

वहां से जब मैं मोटर द्वारा मेदापल्ली स्टेशन पर पहुंचा जो करीमनगर से २५ मील पर है, तो वहां देखा कि नगर मेदापल्ली से कईपी आदमी स्टेशन पर भीमान् शारदा जी को बिदाई देने को उपस्थित हुए हैं । यद्यपि स्टेशन पर पुलिस-मौजूद थी इन्स्पेक्टर पुलिस लोगों को मना कर रहे थे कि ये लोग न आर्यें, परन्तु अपने नेता के दर्शनों को लोग, उमड़ रहे थे । अन्त में शारदा जी आगे बढ़े, सब लोगों से मिले और बिदा ली ।

इसी प्रकार हैदराबाद में आर्यसमाज मन्दिर् सुल्तान बाजार में केवल डेढ़ घण्टा पूर्व की सूचना होने पर लगभग डेढ़ हजार आर्य बन्धु एकत्रित हो गए, और वहां पर चञ्जरा रोहण, हवन और उवाच्यान हुए । स्टेशन पर हारों की सख्या में उपस्थित होकर लोगों ने बिदाई दी । जब जबकार की गगन

सयुक्त-प्रांत के कतिपय कार्यकर्ता



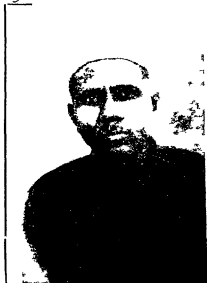
श्री डा० शूरवीरसिंह जी एडवोकेट बिजनौर



श्री बा० कालीचरण जी मन्त्री



आचार्य विरब्रह्म



श्री बा० रामाशंकर जी वकील



श्री चा० जयद्वसिंह जी एडवोकेट



श्री रामकृष्ण जी निगम एम ए एल एल बी



श्री प० शिवदयालु जी



श्री बा० विष्णुस्वरूप जी

प्रचार के लिए आधा दाम

पुरा दाम अष्टवर्ग आधा दाम
 ४० तो० ४) च्यवनप्राश ४० तो० २)
 १ सेर ६) ८० तो० ३)

वीर्य विकार, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन नपुंसकता, दमा, जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, फेंकड़े और जिगर के रोगों पर राम-बाण। असली अष्टवर्गयुक्त और सर्वोत्तम होने की पूरी गारंटी है।

सत्वशिलाजीत—५ तोले की शोशी ४॥) रु० डाक खर्च
 आधा दाम ५ तो० २) रु० १ नो० तक ॥)

पता—मैनेजर श्री बनोदधि डिपो० नं० ५ पो० कनखल यू० पी०।

आवश्यकता

एक शिक्षित, सुयोग्य और कमाऊ २३ वर्षीय गौड़ ब्राह्मण नवयुवक के लिये जो इन्जीनियर हैं। एक सुशील और गृह कार्य में दक्ष कन्या की आवश्यकता है। पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर करने को कृपा करें।

पारब्रह्म शर्मा परमार्थी

आर्योपदेशक

(४६-४७) सोजत रोड

B B & C I Ry

उप्रेति इंक

(भारत सरकार से रजिस्टर्ड)

फाउण्डेशनपैन और दूसरे व्यवहार के लिये सर्वश्रेष्ठ है व्यापारियों के लिये विशेष सुविधा व लाभ।

उप्रेति इंक एण्ट केमिकल वर्कर्स कंसल्टिंगाजा आगम।

आवश्यकता

१४ से २५ वर्ष की कुंवारी तथा बाल विधवाओं के लिये जो कि अच्छी जाति तथा खानदान से हो तथा ४ वर्ष की लक्ष्मी निहायत होनाहार तथा मूलसुरत और होनाहार है वरों की और गोद लेने वालों की आवश्यकता है। वर्षों की कोई शर्त नही। उत्तर के लिये 1) का टिकट या ना आवश्यक है।

बहिरें भी साफ साफ सुनने लगे

विज्ञानका एक नया आश्चर्यजनक ईजाद.

बधिरता—हरन (रजिस्टर्ड)



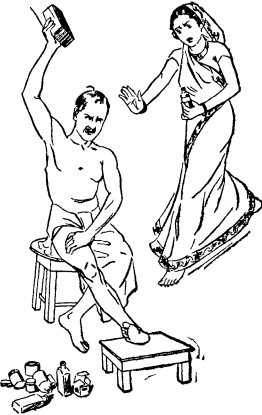
कान का बहना, जलन, भयानक दर्द, खुजली फोडा-फुन्ती, मवाद आना, नासूर, परदा खराब होना, कान में साय-साय, सी-सी, सीटी की तरह आवाजें आना, कम सुनना या एकदम न सुनना अथवा ज्वर के बाद या सर्दी से या कुमैन के दुर्ब्यवहार से पैदा हुवा कैसा ही नया पुराने से पुराना बहिरापन क्यों न हो चमत्कारी 'बधिरता-हरन'के इस्तेमालसे शक्तिया

हजैरो बहिरें इतसे ठीक २ और साफ २ सुनने लगे। आराम न हो तो दाम वापस की २)

1) मिलनेका पता:—भारोग्य सदन, दुर्गादेवी स्ट्रीट, बम्बई ५.

मैनेजर मैट्रीमोनियल ब्यूरियो
 मुजफ्फरपुर विहार।

दुर्घटना होते-होते बच गई !



रामसिंह गठिया से परेशान था। तमाम दवाओं से निराश हो चुका था। भीषण दर्द से घबरा कर घुटने पर ईंट मारना ही चाहत था कि उसकी पत्नी अपने पड़ोसी द्वारा बताया हरिदास कं० का 'वातगजकेसरी अर्क' और 'नारायण तेल' लेके पहुँच गई और दुर्घटना बचा ली। ८० वात रोगों की ये दोनों अचूक दवाये हैं।

वातगजकेसरी अर्क—२) बोतल।
नारायण तेल (मालिश के लिए)—१२) सेर।
गरीबा के लिए आधी कीमत। पैकिंग महसूल अलग।
'वातगजकेसरी' सिर्फ रेल से भेजा जाता है। अतः कम से कम ३ बोतल मँगाये। साथ में आध सेर 'नारायण तेल' भी मँगाये। मगाते समय तीन रुपया पेशगी भेजे।



कूपन पर रेलवे स्टेशन, दवा और तादाद लिखे।

मैनेजर—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

पारिवारिक कलह का कारण क्या ?



हमारे जन्मजात अधिकार

यौवन की कमी

दाम्पत्य सुख के लिये ३ अनमोल चीजें !

नवघातु रोगान्तक
भगवान की दुष्ठा से
भसर करता है। प्रमेह,
वीर्य विकार और नपुंसकता
के लिये रामबाण है ४० दिन
की दवा का मूल्य १२।।)
कुछ दिनों के लिए सिर्फ ६।)

तिला नम्बर १ (लेप)
नसों की खराबी और
जननेन्द्रिय की शिथिलता
को दूर करने की अमोघ
औषधि। मरी हुई नसों को
जिन्दा करके सख्ती लाती
है। मूल्य १५) कुछ दिनों
के लिए सिर्फ ७।)

काम सन्दीपन बटी
गयी हुई जबानी को
फिर प्राप्त करने की एक ही
दवा। धनी, भरीय सब के
लाभ के लिये ८० गोलीयों
की क्रीमव २०) के बदले
१०)। साथ ही विला नं० १
लगायें।

पता — हरिदास एण्ड क०, मथुरा ।

अपूर्व काया-पलट

(एक आश्चर्यजनक किन्तु सत्य घटना)

उस वृद्ध ग्वाले की तस्पर सेवा से प्रसन्न हो रत्नागिरी ने उसे अपने महाबू योग की केवल छः मात्रायेँ प्रसाद रूप में दे दीं। एक दम अपार शक्ति का अधिकारी बन जाने की प्रबल इच्छा ने उसे सभी मात्रायेँ एक साथ खा लेने को विवश किया। फल-स्वरूप स्वयं योगीराज को औषधि के प्रबल वेग को रोकने के लिये अत्यन्त हैरान होना पड़ा और फिर भी जीयेँ घुट्टावस्था में ग्वाले को तीन विवाह करने पड़े और जो दशा हुई उसका वर्थान करना सभ्यता का उल्लंघन करना है। यह समाचार राजा, महाराजा, रसिक, रईस आदि लोगों में बिजला की भाँति फैल गया और सबके सब इस गुप्त रसायन, महाबाजीकरण के जनाने की बिधि जानने के लिये उत्सुक हुए। नवाब बहालपुर के सयूर हाजी हयात मोहम्मद खॉ साहब ने अपनी लगन और सेवा से बाबा जी से यह योग जीत ही लिया। उन्होंने इसे लाहौर के प० ठाकुरदत्त शर्मा को बतलाया। शर्मा जी ने इसे दो अन्य योगों के साथ लिखकर इन तीनों से उत्तम बाजीकरण बतलाने वाले को १००० नरक इनाम देने की घोषणा की। आज २० साल के लगभग हो गये और यह पुरस्कार कोई प्राप्त नहीं कर सका है। फिर मथुरा के बाबू हरिदास ने इसे "चिकित्सा चन्द्रोदय" में छपवा दिया। हमने भी इस योग को स्वयं बनाकर सैकड़ों दुबलता, नपुंसकता बीर्बिकार प्रसव रोगियों पर बरता और तत्काल गुणकारी पावा अनेक पत्र पत्रिकाओं में छपवा दिया। पाठक भी बनाकर लाभ उठवें।

योग-शुद्ध बुधवार फौलाद २० तोला, शुद्ध श्वेत, मल्ल १ तोला शुद्ध कपूर १॥ माराशा को १ घण्टा देखकर घुंघुमारी में घोटकर मिट्टी के कूचे में मजबूत बन्द कर ५ सेर कण्डों में फूँके। दुबारा एक बोला हर-वाल बर्का शुद्ध १॥ माराशा कपूर-शुद्ध में, तीसरी

बार गन्धक आमलासार शुद्ध १ तोला, कपूर १॥ माराशा में, चौथी बार शुद्ध संस्कारित पारब १ तोला, कपूर १॥ माराशा को ऊपर की भाँति १६ आंच दे। फिर इस को कड़ाही में डालकर बराबर इन्द्रबधू डालवें और नीचे आग जलावें जब इन्द्रबधू जल कर राख हो जावें तो हवा देकर उड़ा दें। वस "अपूर्व शक्ति-वाताग्न योग तैयार है। बार बार चाबक सुबह साँप माखन या मलाई से खावें ऊपर मिमो मिला दूध पीवें।

इसी योग की प्रशसा में मथुरा के बाबू हरिदास जी लिखते हैं कि इसके सेवन से एक हफ्ते में एक आदमी का बजन ४ पौंड बढ़ गया, दूसरे का चेहरा लाल सुर्ख हो गया। भूपाल के वैद्यराज बालकृष्ण शर्मा ने ३५० रागियों पर बरता और से अधिक गुणकारी पाया। रत्नाकर के लम्हादक, श्री छोटेलाल जैन आर्युर्वेदाचार्य ने गृह चिकित्सा पथ प्रदर्शक में छापवा है कि इतना प्रचण्ड शीघ्र गुणकारी याग दूसरा नहीं देखा।

हमारा बाबा है केवल ७ दिन सेवन में शरीर में रक्त शैलता नजर आवेगा, २१ दिन में चेहरा लाल काश्मीरी सेव की तरह चमकने लगेगा, ४० दिन में नपुंसकता निर्वलता दूर हो जाती है। अियों के हर प्रकार का प्रदर दूर हो गर्भवारण-शक्ति आती है। जिगर व मैदे की शक्ति बढ़ाकर भूख दूनी करता है। पाचन क्रिया ठीक होती है। कफ, तिल्ली, का खराबी खॉली, नजला, जुकाम, बदन दुखना, खून का पतलापन, आँखों का पीलापन, कभी कभी चिनगारी से उड़ते शीखना, बार बार थूक गिरना, दमा तथा हर तरह की कमजोरी तुरन्त दूर कर, नवजीवन सञ्चार करता है। योग मलीभाँति समझकर लिखा है। फिर भी यदि आप न बना सकें, तो बनी बनाई १६ आंच दी हुई ४० दिन की ८० मात्रा चाकखर्च सहित धा॥) में हम भेज देंगे। यदि कोई बात समझ में न आवे जबाबी कार्डे डाल कर उत्तर मंगालें।

मंगाने का पता-वैद्यरत्न सत्यदेवजी रूपविलास कम्पनी न० १४२ कंचौसी इटावा यू० पी०

इस प्रकार कहनी चाहिये कि सब प्रतिनिधि सभाओं में यू० पी० प्रतिनिधि सभा प्रथम बंख्या में रही। इसकी व्याख्या इस प्रकार है।

यहाँ हम इस बात पर विचार करने नहीं बैठे कि सत्याग्रह के जितने केन्द्र थे उन सब पर यू० पी० के केन्द्राध्यक्ष न के बराबर थे तथा अन्य व्यवहार की बातों को भी उपेक्षा दृष्टि से यदि देख लें तब भी चार बातें छिप नहीं सकती।

१—संयुक्तप्रान्त के डिक्टेटर केवल एक राजगुरु जी बने और पंजाब के तीन डिक्टेटर हुए। क्योंकि पंजाब में दो विभाग हैं दोनों की प्रतिनिधि सभाएं पृथक् पृथक् हैं अतः वहाँ के दो डिक्टेटर लिए गए और तीसरे पर वुद्धदेव जी विद्यालंकार। यह सबको विदित है कि धन जन डिक्टेटरों के साथ अधिक गया यदि संयुक्त प्रान्त के द्वितीय डिक्टेटर बा० समाशकर जी भी दौरा करके जेल पहुँच गये होते तो पर्याप्त धन और जन उनके साथ गया होता।

२—राजगुरु जी चौथे डिक्टेटर थे। जिस दिन राजगुरु जी डिक्टेटर नियत हुए और जब जेल जाने का दिन था बहुत थाड़ा अन्तर था। इतने कम दिन किसी को न मिले होंगे। राजगुरु जी को यात्रा ही न कर मिली। हमें याद है कि राजगुरु जी जब बरेली आये तब उतरते ही स्टेशन पर उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारे नगर से एक सहस्र लेकर जाऊंगा मैंने कहा स्वीकार है, पर सायंकाल को आप व्याख्यान

दे'। किन्तु उनके पास बरेली के लिए चन्द घंटे थे कहने लगे अभी चला जाऊंगा, ऐसी स्थिति में भी पाच साँ से अधिक खड़े खड़े मिल गया। प्रायः राजगुरु जी की स्थिति वह रही जैसे नुमायरा की दुःख कि स्टेशन पर ही दर्शन दर्शन कर जाओ और भेंट चढ़ा जाओ इस अवस्था में भी राजगुरु जी ने डिक्टेटरों का रिकार्ड भीट किया।

३—पर वुद्धदेव जी विद्यालंकार संयुक्त प्रान्त के रहने वाले और पंजाब में बहुत दिन रहे इन्होंने दोनों प्रान्तों में दौरा किया और दोनों स्थानों से धन जन प्राप्त किया। पता नहीं टोटल लगाने में इनकी गणना कियर हुई थी ?

४—पर देवेन्द्रनाथ जो शास्त्री आचार्य गुरुकुल सिकन्दरबाद जो स्वर्गद्वार तक ही पहुँच पाये शुमार भी किये गए या नहीं ?

यह सब बातें ऐसी हैं जिन पर विचार न करके नम्बर दा में डालना उचित नहीं। प्रान्त के दृष्टि कोण से डिक्टेटर नियत नहीं हुए प्रत्युत प्रतिनिधि सभाओं के दृष्टिकोण से डिक्टेटर नियत हुए। प्रतिनिधि सभाओं के दृष्टिकोण से ही सांचना चाहिए कि किस प्रतिनिधि सभा ने क्या किया उसमें यू० पी० सभा ने प्रधान स्थान प्राप्त किया। और अन्त में एक शब्द यह भी कहना अनुचित नहीं कि राजगुरु जी से उनके सब सत्याग्रही प्रसन्न रहे।

कन्या की आवश्यकता

एक १६ वर्षीय अग्रवाल गोत्रीय सदाचारी स्वयं शिक्षित और कितनी ही दस्तकारी में निपुण नवयुवक जिसकी मासिक आय २०) २०) से अधिक है उसे एक गृहकार्य में कुशल सुशील अग्रवाल कन्या की आवश्यकता है। आर्थिक कन्या के लिए विशेष ध्यान दिया जायगा। विशेष ज्ञानकारी के लिए नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें।

प्रधान
आर्थासमाज आगरा।

खिजाब को छोड़ो

इस तेल से बाल का पकना रुक कर और बाल कासा पैदा होकर यदि ६० वर्ष तक कासा न रहे तो इना मूल्य वापिस की रात लिखा लें। एकाप बाल पका हो, तो २), इससे अधिक पका हो, तो ३।) या कुल पका हो, तो ५) का तेल मंगा लें।

पता - मृत्युञ्जय सुधा औषधालय नं० २

पो० कतरीसराय (गवा)

गुरुकुल महोत्सव और आर्यसमाजों का कर्तव्य

गुरुकुल वृन्दावन का महोत्सव इस वर्ष ता० २५ दिसम्बर से २८ दिसम्बर तक मनाया जायगा। दो तीन वर्षों से गुरुकुल के उत्सव के समय जो सहायता प्राप्त होनी चाहिये वह प्राप्त नहीं होती जिसके कारण गुरुकुल के कार्य कर्त्ताओं को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है इसलिये आर्य बन्धुओं का कर्तव्य है कि वह गुरुकुल के महोत्सव को सफल बनाने के लिये अभी से प्रयत्न प्रारम्भ कर दें और गुरुकुल को अपने नगर की ओर से एक अच्छी धन राशि भेंट करें। समाजों के अधिकारी तथा सभा सद्यों को इस दिशा में विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है कि वह अपने नगर में गुरुकुल सप्ताह मनावें और उसमें गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का प्रचार करें तथा गुरुकुल के लिये पुष्कल धनराशि एकत्रित कर गुरुकुल मिजवानों की कृपा करें। हैदराबाद आर्य

सत्याग्रह से आर्य जनता ने इस बात का भली भाँति अनुभव कर लिया है कि जो धन गुरुकुल प्रणाली के लिये जनता की ओर से व्यय किया जा रहा है वह सफल हुआ ऐसी अवस्था में प्रत्येक आर्यसमाज का कर्तव्य है कि वह अपने प्रिय गुरुकुल वृन्दावन को जिसने कि अपने सत्याग्रह कार्य से उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाया, पूर्ण आर्थिक सहायता दें और अपने नगर में गुरुकुल की सहायता के निमित्त स्थायी प्रवन्ध करने की योजना बना कर अविलम्ब कार्य में परिणत करने की कृपा करें। आशा है समस्त महानुभाव मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर गुरुकुल महोत्सव को हर प्रकार से सफल बनाने के लिये पूर्ण सहयोग देकर हमें अनुगृहीत करेंगे।

आपका विनीत कुल सेवक

चेतरामसिंह मुख्याधिष्ठाता

उत्सव-सूचनायें

—भा० स० धामपुर (बिजनौर) का वार्षिक उत्सव १४, १५ तथा १६ नवम्बर को होना निश्चित हुआ है। कुं० सुखलाल जी तथा पं० रामचन्द्र जी देखलवी के पधारने की पूर्ण आशा है।

—कान्तिचन्द्र प्रधाकर उपमंत्री

—भा० स० मनकापुर (गोंडा) का २५ वार्षिक उत्सव १६, १७ तथा १८ नवम्बर को होना निश्चित हुआ है। अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों को निमन्त्रित किया गया है। —मंत्री

—भा० स० गंगोह (सहारनपुर) का वार्षिकोत्सव १५, १६ तथा १७ नवम्बर को समारोह पूर्वक मनाया जायगा। १५ नवम्बर को नगरकीर्तन होगा। —मंत्री

—भा० स० बाँदीकुई का ११वाँ वार्षिक उत्सव ११, १२ तथा १३ नवम्बर को समारोह पूर्वक होगा।

—मंत्री

—भा० स० गोरखपुर का उत्सव २३, २४, २५ तथा २६ नवम्बर को अस्य-त धूमधाम के साथ मनाया जायगा। अनेक उपदेशक महातुभावों को आमन्त्रित किया गया है। —मंत्री

—भा० स० ज़रकर (बालियर) का वार्षिक उत्सव दीपावली की छुट्टियों में ११, १२, १३ तथा १४ नवम्बर को समारोह से मनाया जायगा। —मंत्री

—भा० स० जयपुर का वार्षिक उत्सव २५, २६, २७ तथा २८ नवम्बर को धूमधाम से होना निश्चित हुआ है। —मंत्री

आर्यसाहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर का भावी कार्य-क्रम



व से आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर ने स्वयं एक लिमिटेड संस्था होकर अपने को एक आर्यजगत् की सार्वजनिक संस्था का रूप दे दिया है तब से 'मण्डल' ने वैदिक आर्य सिद्धान्तों के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित

करके समाज की बड़ी सेवा की है, सत्यार्थप्रकाश, जैसी विशाल पुस्तक को (चार खाने) में कर दिया और लाखों प्रतियाँ जनता में फैला दीं। ऋषि दयानन्द के अन्य अनेक ग्रन्थ जैसे ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, व्यवहारभानु, पञ्चमहायज्ञविधि आदि ग्रन्थ भी पूर्व के मूल्यां से तिहाई, चौथाई दामों में प्रस्तुत कर दिये। सब से महत्वपूर्ण कार्य मरल हिन्दा में चारों वेदों के भाष्य पूर्ण करना था जो उसने अपने को लिमिटेड करने के ५ वर्षों के भीतर भीतर कर दिया, और पूर्व के कुछ खंडों के द्वितीय संस्करण हो गये और कुछ के द्वितीय संस्करण छप रहे हैं, इसके अतिरिक्त अनेक आर्यसमाजों के अधिकारी शुभ चन्तकों ने हमसे आप्रह किया है कि वेदा के सरल धारावाही हिन्दी में ऐसे अनुवाद कर दिये जावें जिन के पढ़ने में एक रस विषय का अध्ययन होसके, और वे चारों वेदों के भाष्य भी मूल्य में इतने सुविधा से मिल सकें कि सब ले सकें अर्थात् उनका दाम १०, १५) २० से अधिक न हो, परन्तु अभी मण्डल के सामने तो यह योजना मात्र प्रभुत है। मण्डल ने वेद भाष्य को अंग्रेजी भाषा में निकालने की घोषणा भी की थी। बहुत कुछ यत्न भी इस दिशा में होरहा है।

इधर अनेकों उत्तम सदभावना प्रो और उज्ज्वल लोक सेवा की कामना से प्रेरित होकर आर्य साहित्य

मण्डल लि० अजमेर ने 'आर्यमित्र' और भास्कर प्रेस' का ठेका भी लिया परन्तु इस कार्य में मण्डल को बहुत भारी घाटा लगा, इस कारण हमारे बहुत से चिन्तन अन्य उत्तम ध्येय भी होने से रुक गये। द्रव्य के अभाव में बहुत से कार्य न किये जासके। सत्यार्थ प्रकाश के नये संस्करण प्रकाशित करने में भी बिलंब हांगया। मोटे अक्षरों का सुन्दर विशाल संस्करण भी सामने है। हमें खेद से कहना पड़ता है कि अभी तक आर्य जनता ने आर्य साहित्य मण्डल जैसी सर्वोपयोगी संस्था को अपनाया ही नहीं। लिमिटेड होने के उपरान्त २लाख की स्थिर पूँजी में से अभी तक केवल ५००००) २० के ही हिस्से बिके जो सर्वथा सुरक्षित हैं, यदि ये शेष हिस्से भी आर्य जनता हाथों हाथ ले ली तो मण्डल के चिन्तन कार्य अभी तक कभी के होगये होते।

'मण्डल' ने भविष्य में यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वह अब अपनी समस्त शक्ति, धन और ध्यान वैदिक साहित्य के प्रकाशन में ही लगा देगा 'मित्र' और 'भास्कर प्रेस' का ठेके का कार्य इस मास में ही समाप्त हो जावेगा, अब आगे के वर्षों में उसको बहुत से ऐसे कार्य करने हैं जिनसे आर्य जनता का बहुत सा लाभ होना सम्भव है। जिन महत्वपूर्ण कार्यों पर हम आर्य जनता का ध्यान खींचना चाहते हैं। उनमें से कुछ यह हैं—

(१) ब्राह्मण ग्रन्थों का भाषा भाष्य—
वेदभाष्य पूर्ण करने के अनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों के ही सरल हिन्दी अनुवाद निकालने का कार्य हाथ में लेना था, परन्तु वह अभी अधूरा पड़ा है, वरीनग्रन्थ, स्वति ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद निकाले हैं, मनुस्मृति का अनुवाद हुआ पड़ा है, आपना रोच है, सबसे

मुख्य कार्य संस्कृत का एक उत्तम सर्वोपयोगी हिन्दी कोष तथा एक वैदिक हिन्दी कोष निकालना अत्यंत आवश्यक है, जिससे वेद का अनुशीलन करने वाले केवल कोष के आधार पर वेदमन्त्रों पर नित्य नये नये ढंगों से विचार कर सकें।

वैयक ग्रन्थों में चरक संहिता का मूल अनुवाद सहित तीन खण्डों में निकल चुका है सुश्रुत संहिता लिखी पढ़ी है, उसकी बड़ी भारी मांग है। इसका निकालना भी आवश्यक है।

श्रौत सूत्र—वैदिक कर्म काण्ड के भली प्रकार ज्ञान करने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, गृह्य सूत्रों में समस्त संस्कारों की पद्धतियां हैं, इनका अनुशीलन भी अति आवश्यक है, हमारे लक्ष्य में जो समस्त वैदिक साहित्य का हिन्दी भाषा में प्रकाश करना है, इसके अतिरिक्त आर्य वैदिक सिद्धान्तों पर उत्तमोत्तम पुस्तकों का प्रकाशन करना आवश्यक है, ऐसे सिद्धान्त विवेचक ग्रन्थों का अभी आर्य साहित्य

में सर्वथा अभाव है। ये सब कार्य बिना द्रव्य के होने असंभव हैं क्या आर्य जनता नहीं चाहती कि वैदिक अन्वेषणों सम्बन्धी उच्च काटिका मासिक पत्र हो। परन्तु द्रव्याभाव से उसका निकालना भी कठिन है,

परन्तु आर्य जनता यदि इधर अपना कुछ थोड़ा सा भी कर्तव्य अनुभव करे तो कुछ कठिन नहीं है, 'मण्डल' इस समय आर्य जगत् की सार्वजनिक संस्था है उसको चाहिये कि उसको सब प्रकार से अपनाए उसके लक्ष्यों की पूर्ति के लिये उसके सब हिस्से ले लें। १०। १० के हिस्से को धनी अल्प धनी सभी लेकर इस धर्म पुण्य कार्य में सहयोग देकर प्रत्येक आर्य अपना कर्त्तव्य पालन कर सकता है। हमें पूर्ण आशा है कि अब आर्य जनता सचेत होकर मण्डल का सब प्रकार से अपनावेगी। भवदीय निवेदक

मथुराप्रसाद शिवदरे मैनेजिंग डायरेक्टर

आ० सा० मण्डल लि० अजमेर।

कन्या गुरुकुल हाथरस

विशेष महोत्सव

प्रति वर्षों की भौति इस वर्ष भी कन्या गुरुकुल का वार्षिकोत्सव बड़े दिन की छुट्टियों में २३ दिसम्बर से २६ दिसम्बर १९३६ तक मनाया जाएगा। इस उत्सव की विशेष बात यह है कि इस वर्ष कन्या गुरुकुल से कन्यायें द्विमी लेकर स्नातिकायें बनेंगी।

जो सज्जन अपनी कन्याओं को प्रविष्ट कराना चाहें वे १० दिसम्बर तक कार्यालय से पत्र व्यवहार करके निश्चय कर लें। ताकि प्रवेश के समय सुविधा रहे। इस वर्ष २५ कन्यायें प्रविष्ट की जाएंगी।

—लक्ष्मीदेवी आचार्य।

हैदराबाद विजयांक

सम्मन

नमूना नम्बर १७०

[वदस्त अबाम फरोख्त के लि

फार्म इतिलानामा हस्ब दफा ११ ऐक्ट जायदाद हाय मकरूजा संयुक्त-प्रांत
हरगाह गनेशीलाल बलद घनश्यामदास कौम बारासेनी साकिन मडकावली परगना असदपुर जिला बदायूँ ।

ने एक दरखवास्त हस्ब दफा ४ ऐक्ट जायदाद हाय मकरूजा पेशा की है ।

लिहाजा इस तहरीर की रू से हस्ब दफा जिम्नी १ दफा ११ ऐक्ट मजकूर इतिला दी जाती है कि
उस जायदाद को जिसका व्योरा नरथी किये हुये जमीनों में दर्ज है दरखवास्त देने वाले ने हस्ब दफा ७ या
हकदारों ने हस्ब दफा १० मजकूर को जायदाद बताया है ।

अगर कोई शकस जायदाद मजकूर पर कोई दावा रखता हो तो बाद्इशाअत से जो इस इरिवहार
के संयुक्त प्रांत के गजट में छपने का तारीख है तीन मांस के भीतर अपने हकों के सम्बन्ध में उस हाकिम के
आगे अपनी अर्जा पेशा करे जिसके हस्ताक्षर नीचे दिये हुए हैं ।

जमीना (क)

कर्जदार के हक मालिकाना आराजी के मुताबिकक

नम्बर	सिलसिलेवार	क़िला	नाम जायदाद	मौजा मय नम्बर ज़रोबस्त व महाल	दर्खास्त देने वाले का मुस्तकिल व काबिल विरासत और काबिल इत्तकाल हकिमत का व्योरा	दर्खास्त देने वाले की हकिमत का विस्तार जो रजिस्टर दफ्तर साहब कलक्टर में दर्ज है	दर्खास्त देने वाले की हकिमत पर मौजूदा तशखीस मालगुजारी
१	२	३	४	५	६	७	

- १—बदायूँ हुलकावा परगना असदपुर पट्टी गनेशीलाल खाता खेबट न० ५ जमींदारी १ बिस्वा १२ कबवानसी १५ ननवानसी १३ तनवानसी मालगुजारी २०) ।
- २—बदायूँ दुबारी खुर्द परगना असदपुर मुहाल गनेशीलाल खाता खेबट न० १ जमींदारी १७ बिस्वा मिनजुमला २० बिस्वा ९६) रुपया ।
- ३—बदायूँ मडकावली परगना असदपुर मुहाल प्रामसुख खाता खेबट १ जमींदारी १० बिस्वा मिनजुमला २० बिस्वा ५) रुपया ।

जमीना (ख)

कर्जदार की जायदाद जो भूमि सम्बन्धी मालिकान हकों को छोड़कर हस्ब दफा ६० आध्दा दीबानी सन् १६०८ कुर्क और नीलाम हो सकती है ।

सिलसिले का नम्बर	जायदाद की किस्म	दर्खास्त देने वाले की हकिमत की बसअत (विस्तार)
१	२	३

- १—महान बाक़े मौजा मडकावली परगना असदपुर तहसील गुनीर पूरव रास्ता परिचम मोती-राम उत्तर रास्ता मल्ली दक्खिन गनेशीलाल ।
द: अमिजी मुस्तखि

करोड़ों आँखों ने फ़ायदा पाया

लाखों अंधी आँखें घृजती हो गईं



जर्मन जनरल कौन्सिल हारबिया (पीन) ने १५-१६ वर्ष के आँखों के ऐसे रोगियों को कि जिनको जरमनी के अस्पतालों ने असाध्य कह दिया था केवल नेत्र संजीवन अजयवहार कराके आँखों बाले कर दिया यदि आँखों में कुछ भी जान बाकी है और अठिन में कठिन जाला, फूला, नाखुता, रतौदा, रोहे खुजली दुखना, काली या कम सूखना अथवा ऐनक लगाने की वर्षों से आरत हो और इसके सिवा आँखों के सब रोगों का बगैर चौर फाड़ के अच्छा करना इसका मान्यो काम है मूल्य प्रत्येक शीशी ॥=) अने महसूल डाक व पैकिंग अलग ६ शीशी एक साथ लेने वालेको महसूल माफ़ करमा अफ्रीका अरि विदेशों से कीमत माल व महसूल डाक पहिले बसूल होने पर दवा भेती जाती है।

नोट—बोकेबाजों और नकल करने वालों से सावधान रहे जरूरत है पत्रेंटों की जिनको साधारण नियमों पर माल उबार और नकद दिया जायगा।

नेत्र संजीवन डिपो (६) इरिसकिन रोड

मिन्डीवाजार बम्बई ३ (इंडिया)

क्या आपने भी पढ़ी ? यानी

अरब में सात साल

जिसमें पं० हचिरामजी ने मिस्त्र, तुर्की, फिलिस्तीन, शाम और इस्ताम की मालूमि अरब में पैरल अमय और वैदिकधर्म प्रचार के सच्चे वृत्तान्त लिखे हैं। नई बीज है, मगाइये।

सवा रुपया। डा० व्यय माफ़, पता—सरल साहित्य सदन, नई दिल्ली।

आवश्यकता

मिर्जापुर अनाथालय के लिये एक सुयोग्य मिडिल पास, सिक्काई बूटा कसंदा तथा और दस्तकारी का काम अच्छी तरह जानने वाली अध्यापिका की, जिसकी आयु ४० के लगभग हो और अनाथ विधवाओं पर प्रेम भाव से पूर्ण रूप से शासन कर सके। भोजन तथा स्थान सुपत्त, वेतन योग्यता के अनुसार प्रमाण पत्र आवि सहित अर्जा भेजिये।

मन्त्र अनाथालय,
(४६-४७) मिर्जापुर

कृष्णमोदक १ माह का ४॥) रु०

इसके खाने से प्रदर, योनी रोग, रज के समय औटी में खोंचा मारता, कमर जोड़ जकर जाना, गर्भवात या गर्भशय में जालादि पड़ जाने से गर्भ न रहता हो तो इसके सेवन से गर्भ अवश्य रह जाता है। परीक्षा कर देखें। इस दवा में स्वर्ण भरम पक्का है इससे शरीर को सौ र्थ बढ़ाने में तथा शर में चक्कर के लिये पुरुषा ने विशेष रूप में मगा रहे हैं।

पुत्रदावटो १ मास का ६॥) रु०

इसको स्त्री पुरुष दोनों के सेवन से या सिर्फ स्त्री के ही सेवन से आयुर्वेद में पुत्र होना लिखा है। यह कहाँ तक सच है, परीक्षा कर देखिये।

पता—बालकृष्ण आर्य वैद्य भू०
पो० खुसरूपुर
(पटना)

शास्त्रोक्त ऋषि प्रणीत औषधियां

स्वस्वचारक न्यवनप्राश

धुरंधर डाक्टर भी इस बात को स्वीकार कर चुके हैं कि क्षय रोग की खाँसी तथा छाती की ऐसी ही बीमारियों के लिये न्यवनप्राश से बढ़कर दूसरी औषधि नहीं है। रसायनवेत्ता डाक्टरों ने यह बात स्वीकार की है कि आँवले में जोवनी शक्ति बढ़ाने की सामर्थ्य है। सर्दी, जुकाम, खाँसी, दमा, क्षयरोग की खाँसी आदि गंसे ही रोगों की निश्चित दवा है। कीमत २० तोले की शीशी १) रु.

स्वर्णमकरध्वज (चन्द्रालय)

वैद्यक शास्त्र में इससे बढ़कर दूसरी औषधि ही नहीं है। कोई रोग ऐसा नहीं है जिसपर यह अपना प्रभाव जुदे जुदे अनुपातों से न दिखाता हो, कीमत ४ रु० तोले।
संस्कृत पारद से बना मकरध्वज—६०) रु० तोला।
सिद्ध मकरध्वज—२४) रुपये तोला।
पङ्गुण बलिजारित मकरध्वज—८) रु० तोला।
सुवर्ण वसन्त मालिनी—जोषेज्वर, पुराने खाँसी और कमजोरी की दवा, कीमत १२) रु० तो-
मोली भस्म—३५) रुपये तोला।
स्वर्ण भस्म—दाम ५०) रुपये तोला।
स्वर्ण वज्र—दाम ३) रुपये तोला।
नोलम भस्म—१॥ माशा दाम १०) रुपये।
माणिक्य भस्म—१ तोला के दाम ५०) रुपये।
मंडूर भस्म—१ तोला के दाम १) रुपया।
जसद भस्म—१ तोला के दाम २) रुपये।
गोदन्ती हस्ताल भस्म—दमा, खाँसी और बुखार की प्रसिद्ध दवा दाम १) तोला।
कल्पतरु रस—यह स्त्रियों के प्रसूति रोग सर्दी का बुखार आदि को उत्तम दवा, कीमत १) रु० तो.

कंपनी
द्वारा
द्वारा

स्वस्वचारक द्राक्षासव

दवा
द्वारा

६५ पत्र-सम्पादकों द्वारा प्रसारित अगर आप चाहते हैं कि वदन में खून और मांस बढ़े, भूख बढ़े, दस्त साफ हो, चेहरे पर सुर्खी आये तो इसे अवश्य सेवन कीजिये, क्षयरोग की खाँसी और उसके कारण से हुई दुर्बलता की खास दवा है। बिना किसी रोग के भी पीने से शरीर में ताकत और पुरुषार्थ बढ़ाता है। पीने में खादिष्ट होने से सभी खुशी से पीते हैं, कब्ज, कफ, अनिद्रा अशुधा आदि की एकमात्र दवा है। कीमत छोटी बोतल १) रु०, बड़ी २) रु०

रुपरस (चाँदी की भस्म)—यह निवेलता की सर्वोत्तम औषधि है, नपुंसकता को जड़ से खोने वाली है। कीमत ४) रु०।
कान्तिसार (लोह भस्म)—खास, कास, रज रोग क्षयों को जड़ से खोकर शरीर को बलवान बनाता है। कीमत २) रुपये।
फौलद भस्म—महात्माजी का प्रभावशाली ६) रु०
वज्र भस्म—यह औषधि नपुंसकता को नष्ट करके फिर से जवान बनाती है, प्रमेह के लिये लाभकारी है। कीमत २) रु०।
अध्रक भस्म—ज्वर, खाँसी, दमा की प्रसिद्ध औषधि है, इसकी प्रशंसा क्या करे। कीमत शतपुटी ५) रु० तोला, निश्चन्द्र २) रु० तोला।
शङ्ख भस्म—खाँसी और हृदय की पीडा को दूर करके भूख बढ़ाती है, बदहजामी और दस्त की कब्जों को दूर करता है। कीमत ११) तो०
मूंगा की भस्म (प्रमेह की दवा)—कीमत २) तो०
आनन्द औरव रस—ज्वरासिसार की दवा। कीमत ११) आना तोला।
नागेश्वर (शीशे की भस्म)—खाँस और मन्दाग्नि की सर्वोत्तम औषधि है। दाम २) रु० तो०।
चन्द्रप्रभावटी—प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, रज सम्बन्धी रोगों की दवा। कीमत ४० गोली १) रु०।

मिलने का पता—सुख संचारक कम्पनी, मथुरा।

महर्षि और उनका आर्य समाज



“वास्तव में स्वामी दयानन्द सरस्वती उन शक्तिशाली व्यक्तियों में हैं, जिन्होंने अर्वाचीन भारत का निर्माण किया है, और उसके नैतिक तथा धार्मिक जीवन के जन्म दाता व अप्रमत्त हैं। उनका आर्यसमाज स्पष्ट-तया, निस्सन्देहरूप से, हिंदू भारत की सथाओं के सुधार और काया-कल्प में सबसे अधिक प्रबल प्रतिनिधि रहा है।

मेरी दृष्टि में वह धार्मिक और सामाजिक सुधारक और कर्मयोगी थे।

स्वामी दयानन्द का उद्देश्य हिंदू समाज और धर्म को अनु-प्राणित करना, और भारत की पूर्ण सांस्कृतिक और परम्परा के अनुरूप उसका पुनर्निर्माण करना था।

दूसरी ओर भारत में हमें प्रसिद्ध आर्यधमाजी अत्यन्त प्रभावशाली नेता भी मिलते हैं। लगन में, सगठित कार्य की क्षमता में, गहनता और दृढ़ता में अर्थात् समाज किसी से नीचे नहीं हैं। आर्यसमाज एक स्वदेशी और चेतनशील सृष्टि है।

ईश्वर करे आर्यसमाज, जिसकी स्थापना स्वामी दयानन्द ने की, उनका योग्य अनुगामी हो और हमारी प्यारी मातृभूमि भारत में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान का निमित्त हो।

नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बसु



मूल्य एक प्रति

भाठ आना ॥

संख्या १६६ - पं० धर्मपाल विद्यालङ्कार

सं० सम्पादक—गोपालदत्त बोशी विद्याभास्कर

* तोशम् *

आर्यमित्र

का

ऋष्यंक

वर्ष ५१ ।

दीपावली, ता० २८ अक्टूबर सं० २००५

अंक ४२-४३

* मंगल कामना *

जो न हटा सुख फेर, बड़ा जीवन भर आगे ।
जिसका साहस हे० विघ्न, भग, सकट भगे ।
सबल सत्य की हार, अनृत की जीत न हाँ ।
ऐसे प्रबल विचार सहित बिचाग जो योगी ।
उस दयानन्द मुनिराज का प्रकृत पाठ जनता पढ़े ।
प्रभु शङ्कर आर्यसमाज का, वैदिक बल गौरव बढे ।

नाथूराम "शङ्कर"

महर्षि दयानंद के प्रति कुछ प्रमुख नेताओं की श्रद्धांजलियाँ

मामा गांधी

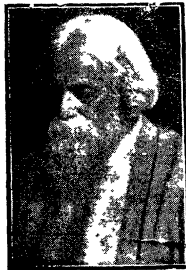


‘स्वामी दयानंद ने हमारे लिये जा अपने को बहुमूल्य वसीयत छोड़ी है। उनमें से असुर्यता के। बरद असन्दिग्ध घोषणा म एक है।’

श्री. अविन्द घोषः—

वह ईश्वर की सृष्टि का एक सेनानी, प्रकाश का एक अप्रतिमसैनिक मानव समाज और सस्थाओं का शिल्पकार, आत्मा के मार्ग में प्राकृतिक बाधाओं का साहसी और कर्कश विजेता था। आध्यात्मिक व्यावहारिकता का प्रधान चरित्र है जो मेरे समस्त चिन्तित होता है। इन दो शब्दों का समन्वय ही, जो अविचार हमारी कल्पना में इतने अधिक विलग हैं, मुझे दयानंद की परिभाषा ज्ञात होती है। यही वह व्यक्तित्व था, जिसकी आत्मा में ईश्वर का निवास था जिस दृष्टि में कल्पना थी और जिसके हाथों में उस कल्पना के अनुरूप मूर्त बनाने की शक्ति थी।

रवीन्द्रनथ ठाकुर—



‘मेरा नमस्कार है गुडर दयानंद को, जिनका अन्तर्दिनी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में एकता और सत्य का अन्वेषण किया, जिनके मस्तिष्क ने भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग को स्वच्छता से ग्रहण किया—भारत को जिनका आह्वान अविचेक और अविधा के प्रमाद से सत्य और पवित्रता के जीवन में आमत होने का आवाहन है।’

सर मेयद अहमद खाँ—

(अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के सस्थापक)

‘स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुगामी उन्हें देवता मानते हैं और वास्तव में वह इसके योग्य थे। उन्हें ने एक ही प्रणयमान, निराकार प्रभ की पूजा सिखाई और कल्प

किसी का नहीं। हम स्वर्गीय स्वा गीको के सुपरिचित थे और सदा ही उनका श्रवण सम्मान करते थे। वह इतने विद्वान् और उत्तम मनुष्य थे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के आदर के पात्र थे। समस्त हिन्दुस्तान में एक भी आदमी उनकी कोटि का इस समय नहीं मिल सकता। उनको मृत्यु पर धीक करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है क्योंकि वह एक अप्रतिम व्यक्ति थे।”

+++++

जुहूर बरखा—

श्रुति दयानन्द के देवी जीवन में ऐसे अनेक महान् गुण समान रूप से विकसित हुए हैं कि मैं अपरिहार्य रूप से उनकी श्र आकृष्ट हो गया हूँ। कभी २ लोग पुराण, कुरान और बाइबिल की समालोचना करने के कारण उनका निन्दा करते हैं और उन्हें बुरा कहते हैं, परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि उन्होंने दूरे धर्मों के प्रति घृणा कहां प्रदर्शित की है। कुछ धार्मिक विश्वास और रूढ़ियों का खडन उनके विचार और मत स्वातन्त्र्य के सुन्दर उदाहरण हैं। विचार स्वातन्त्र्य मध्यात होने का बन्धु नहीं, इसके द्वारा ही वास्तविक उन्नति होती है। दूसरों की समालोचना से शङ्कित होना कायरता है। यदि श्रुति दयानन्द ने स्वयं प्रकाश में कुछ धार्मिक विश्वासों का खडन किया तो उन्होंने उचित ही किया। दूसरे धर्म के अनुयायियों को इससे विचलित नहीं होना चाहिए। उन बातों पर निष्पक्ष रूप से विचार करना उनका कर्त्तव्य है और श्रुति को सदिच्छा से प्रेरित श्रालोचना के प्रकाश में उनको बुधार कर लेना चाहिए। मैं उनके लिए उद्योग होगा। श्रुति दयानन्द का विचार स्वातन्त्र्य प्रशसनीय है। उसे शंका का डपकार हो सकता है। क्या यह गुण सम्माननीय नहीं है श्रुति दयानन्द विश्वामित्र थे, उनका प्रेम सार्वभौम था। उनके उदार हृदय में सबके प्रति, चाहे वह आर्य, मुस्लिम, जैन, ईसाई, सनातनी कोई भी हों, समान प्रेम था। उनके विश्व प्रेम की परिधि से बाहर कोई नहीं था।

+++++

लाला लाजपतराय—

पंजाब केसरी ने इन शब्दों में अपनी भद्राबलि अर्पित की है—

“दिव्यबला शरर के उपरान्त प्रथम बार एक ऐसी उत्तम काटि के गुह का प्रादुर्भाव हुआ जो पैगम्बरी के आसन व योग्य था और जो अन्य गुहओं के मध्य इस प्रकार देशोपमान था जैसे चन्द्र और तारा-गण के मध्य सूर्य।

+ + +

मि० एच० ओ० ह्यम—

इंडियन नेशनल कांग्रेस के सस्थापक—

यह सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि स्वामी दयानन्द एक महान् और पुण्यत्मा व्यक्ति थे तथा हमारे प्रिय देशके कीर्ति स्तम्भ थे और सबको यह अनुभव होगा कि उनको खो कर भारत का एक महा शोचनीय हानि हुई।”

+++++

डा० एनी बेण्ट—

स्वामी दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने ‘भारत भारतीयों के लिए है’ की घोषणा की।”

+++++

रोमे गेलां—

पश्चिम फ्रांसीसी लेखक और दर्शनिक ने लिखा है—

“दयानन्द सरस्वती का व्यक्तित्व उन्नत काटि का था। इव प्रियमय व्यक्ति के विषय में योरोप का भारत पर विचार करते समय ध्यान रखना ही पड़ेगा। क्योंकि वह एक विरल सघात था नेतृत्व की प्रतिभा से समुक्त एक धर्मशील विचारक था दयानन्द ने भारत का सुत गायः दे० बो अपना रक्त, अपना प्र तेज, अपना निश्चय प्रदान किया। इन शब्द पराक्रम के बल से गूँज उठे। दयानन्द अष्टशयता के घृणित अन्याय को कदापि सहन नहीं कर सकते थे।

दयानन्द नारी जाति की शोचनीय स्थिति सुधारने में भी उन्हें ही उदार की माह ही थे। वह सन्यासी नेता, मानव समाज के उद्धारक थे। वास्तव में भारत के इस पुनर्जन्म और प्राणुि में उनकी ही सबसे अधिक प्रबल शक्त थी। राष्ट्रिय संगठन और पुनर्निर्माण के वह सबसे प्रचण्ड प्रबन्धा थे। मुझे प्रतीत होता है कि उन्होंने ही चौकशी की।

+++++

आर्य समाज !

(श्री हरिशङ्कर शर्मा)

—१—

शुद्धि दयानन्द ने तुम्हको जन्म दिया है
उ परम तपस्वी का बल पाय दिया है
तूने विश्वत वैदिक विभूत अपनाई
दे-दकर बल बलिदान प्रतिष्ठा पाई

—२—

तू वेदाभूत का पान किया करता है
गत रीति पर अभिमान किया करता है
कू सभा सब भी पुण्य लया करता है
जग को सुन्दर उपदेश दिया करता है

—२—

तूने अब तू अगणित अनाथ अपनाए
जान अकतन मरता क प्राण बचाए
तूने जन-जन में धर्मता-भाव प्रचारा
अबलाओं का बल दे; बिबेक विस्तारा

—४—

महिलाओं का सम्मान बढ़ाया तूने
अज्ञों को अक्षर-ज्ञान कराया तूने
पतिता को प्रेम-प्रसार उठाया तूने
'गुरुद्वय' का दुगम दुर्ग गि गया तूने

—५—

तूने सद्शिक्षा का महत्त्व समझाया
खाले गुरुकुल कालेज सदा यश पाया
पर अब तो तू कुछ देता शिथिल दिखाई
क्या ऐसा प्रगत-हीनता तुम्हरी आई

—६—

ठठ-ठठ, कर्त्तव्य कर्म में शक्ति लगादे
सोये समाज को जगकर स्वयम् जगदे
शिथिलों का कर्म-केशरी पुनः बनादे
मलबों को संनीवलि श्रुति—सुधा निलावे

—७—

बापू के तप ने देश स्वतन्त्र बनाया
फिर से स्वराज्य का दिव्य दिनेश दिवाया
बहु पराधीनता-पारा कट गया सारा
अब तो अपने पर है अधिकार हमारा

—८—

सामाजिक दोषों से यह देश भगा है
नैतिकता का अनुपम आदर्श गिरा है
सक्रावहीन सब लोग स्वाधे में रत हैं
फिर शान्ति कहाँ, सब आन्त और श्री हत हैं

—६—

आचार भ्रष्टता का भ्रम भूत लड़ा है
छल-छद्मवाद का अकलङ्क उत अड़ा है
निश्चल-रमणी हँस हँस बिलकार रही है
निद्र मित्रों का दे द्रव्य दुलार रही है

—१०—

सर्वात्र 'सिफारिश' की बोली तूती है
योग्यता इसी से जाती नित कूती है
अपनाये जाते बस विराद्वरी बाले
या मित्र, सौ-सम्बन्धीः जाते पाले

—११—

समता का मर्दन, मान किया जाता है
मादकता को सम्मान दिया जाता है
आपुत्र्य भाव का, भाव चढ़ा जाता है
दुष्कर्म धर्म के शीश मड़ा जाता है

—१२—

मत-पन्थों को ही धर्म समझने वाले
हैं सत्य मार्ग को भूले, भोले-भाले
तू समझाये, वैदिक विधि मानबता है
दुर्भाव, दुष्म, दुर्धर्म, दुर्दानबता है



ऋषि दयानन्द का दिग्विजय

(माननीय श्रीचन्द्रशेखर मणिहट्ट गुप्त, अध्यक्ष द्वारा सभा मध्यप्रान्त व बरार)



हमारी इस भारत भूमि ने समय-समय पर जिन महान् आत्माओं को जन्म दिया उनमें ऋषि दयानन्द का एक प्रमुख स्थान है। इतिहास बतावेगा कि ऋषि दयानन्द भारत के उद्धारकों में से एक प्रमुख हुए हैं जिनकी तुलना में बहुत थोड़ी विभूतियाँ उठेंगी। ऋषि दयानन्द का कार्य उस समय हुआ जब कि उनके बताए हुए मार्ग में चलना ही बुरा समझा जाता था। भारत की कुरीतियों को उन्होंने रगड़ रूप से उस जमाने में देखा जब कि सबकी आत्मा बन्द थी और जब हिंदू समाज उन दुर्गुणों को ही गुण्य समझता रहा। उन्होंने अपनी आवाज़ भी तब बुलन्द की जब कि कोई सुनने को भाँतै ही नहीं थे और जबकि ऋषि को उन बातों को अनर्भकता से बताने में बाह्वाही नहीं मिलती थी। आज हम देखते हैं जिन बातों का ऋषि ने अन्वय किया उनको भारतवर्ष प्रायः अन्वय मानने को तैयार है। इस प्रकार ऋषि का दिग्विजय सम्पूर्ण हो गया है, जैसा कि इनने थोड़े काल में और

किसी दूबरे का होना इतिहास कदाचित नहीं बताता। आर्यसमाज एक जीवी जागरी धार्मिक और सामाजिक संस्था है और संस्था के रूप में तत्कालीन राजनीतिक आंदोलनों में विशेष अवसरार्थों को छोड़ कर) उठने भाग नहीं लिया और लेना भी नहीं चाहिए। परन्तु इस सम्बन्ध में मैं अपने आयसमाजी (मंत्रों से अनुरोध कलंगा कि हमारे राष्ट्रीय राजनैतिक संस्था जो कांग्रेस है उसमें व्यक्तिगत रूप से आयसमाजियों को सम्मिलित होना चाहिये। अब दासता छूटने के बाद भारत के कई पंजुआ में निर्माण का समय आया है और उसमें ऋषि की शिक्षा और मनोवृत्ति का उचित प्रभाव और स्थान न हो यह भारत के लिये दुर्भाग्य का विषय होगा। इस लिए मेरा अनुरोध है कि हम सब अपनी एक मात्र राजनैतिक राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस में जावे और राष्ट्र की निस्वार्थ सेवा करें, जिस प्रकार हमने आर्यसमाज के जेंटलमैन से धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी सेवाएँ की हैं और कर रहे हैं।



—१३—

है आज हमारा राज्य, हमारा बल है यह बल नित बढ़ता रहे, सुदृढ़ सबल है आत्मा, मन और शरीर बलिष्ठ बनावे मानवता का सच्चा आदर्श सिखावे

—१४—

सब दोषों का सहार शीघ्र ही करदे मानवता में सुख, शान्ति, प्रेम, नय भरदे तू त्याग तपस्या को फिर से अपना ले अपनी लोह निधि एक बार पुनि पावे

—१५—

वठ समय यही है, फिर से ज्योति जगावे भारत में पुनि पहला सा ही युग लावे सर्वत्र अहिंसा सत्यधर्म की जय हो सब बनें धीर धर्मज्ञ पाप का ऋष्य हो



कतिपय गण्यमान्य नेताओं के सन्देश तथा श्रद्धांजलि

माननिब श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन
(अध्यक्ष प्रांतीय चारा सभा)



‘आर्य मित्र’ का जो विशेषांक दीपावली के अवसर पर निकलने वाला है उसके लिए मेरी हार्दिक शुभ कामना।

‘आर्य मित्र’ देश की और सभा के आवश्यकता के अनुरूप अपने को उपयोगी बनावे और समाज का तल ऊँचा करने में सहायक हो यह मेरी कामना है।

पुरुषोत्तमदास टण्डन
(अध्यक्ष प्रा० असम्बली)

माननीय श्री गोविन्द बल्लभ जी पन्त
(प्रधान मन्त्री, युक्त प्रान्त)



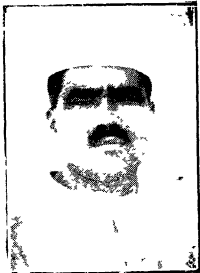
मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि “आर्य मित्र” स्वामी दयानन्द जी की जयन्ती के अवसर पर श्रुति अङ्क निकाल रहा है।

स्वामी दयानन्द जी ने देश व समाज की मानसिक व बौद्धिक उन्नति के लिये जो कुछ किश है उसके लिये हमारा देश सदा श्रुती रहेगा।

मुझे आशा है कि “आर्य मित्र” स्वामी जी के सिद्धान्तों के अनुसार आज की परिस्थिति में देश की समस्याओं को सुलभाने में सहायक होगा।

गोविन्द बल्लभ पन्त
(प्रधान मन्त्री)

माननीय श्री मोहनलाल सक्सेना
मन्त्री पुनर्वासि विभाग भारत सरकार



यह जानकर हर्ष हुआ कि ऋषि दयानन्द के निर्माणादिन के अवसर पर ऋषि अक निकलने का राहा है। मैं आशा करता हूँ की स्वामी जी ने जो माना जीवन और उच्च विचार का आदर्श हमारे सामने रखा है उसको हम अग्रण योगे। स्वामी जी ने जो देश में सामाजिक और धार्मिक जागृति पैदा की उसके लिये हम सग उनके ऋणी रहेंगे।

मोहनलाल सक्सेना

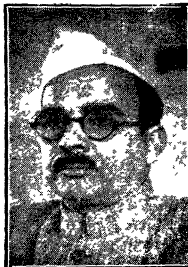
♦♦♦

मुझे हर्ष है कि आगामी दीपावली के अवसर पर आप "आर्या मित्र" का ऋषि अक निकाल रहे हैं।

महर्षि दयानन्द इस युग के उन महापुरुषों में से थे जो ससार में मनुष्य जाति को ऊँचा उठाने के लिए जन्म लेते हैं। महर्षि दयानन्द ने हमारे देशवासियों को निर्भय, उदार और सत्य के पथ पर चलाना सिखाया है। वे सत्य के सच्चे पुजारी थे। उनके आदर्शों को देश के कोने कोने में पहुँचाना हमारा प्रत्येक का कर्तव्य है।

जगनप्रसाद राबत
सभा सचिव।

माननीय श्री केशव वैव मालवीय
(विकास मन्त्री युक्त प्रान्त)



ऋषि दयानन्द हमारे देश की उन विभूतियों में से हैं जिन्होंने अपना जीवन समाज सेवा में ही बिता कर अपनी सेवा की स्मृति छोड़कर हमारे बीच नहीं रहे। उन्होंने समाज सेवा का एक आदर्श सामने रख कर देशो-नति में जाकर यो किया है देश के सभी लोग उससे परिचित हैं। उनके पण्य स्मृति में "आर्या मित्र" अपना एक विशेषांक दिवाली के अवसर पर निकालने का रहा है। मुझे प्रसन्नता है कि पत्र ऋषि के आदर्शों को समझ रखकर समाज की उन्नति में अग्रसर होगा। आशा है पत्र सामाजिक दुःखियों को दूर करने में सचेष्ट रहेगा।

केशव वैव मालवीय

♦♦♦♦

माननीय श्री आत्माराम गोविंद खेर
मन्त्री स्वायत्त शासन विभाग

—मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की पुण्य स्मृति में दीपावली के अवसर पर आर्यामित्र का ऋष्यक निकलने का रहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का

पदार्पण ऐसे युग में हुआ था जब भारतवर्ष अपनी महान् पतितावस्था को प्राप्त हो चुका था। राजनैतिक दासता के क्षय साथ, हमारा सामाजिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक पतन चरमवस्था को पहुँच चुका था। उ होने अपने बाल ब्रह्मचर्य कठिन तप, और प्रकांड पांडित्यप्रतिभा से देश को उठ गत से निकाला और आधुनिक युग में सर्वप्रथम स्वराज्य अथवा राजनैतिक स्वतन्त्रता का महत्त्व अपने सुविख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थेयकाश' में दर्शाया। देश में सभी राष्ट्रीयता का प्रसार, विद्या प्रचार, सामाजिक सुधार तथा चरित्र निर्माण, इन सबमें श्रुति दयानन्द का प्रमुख हाथ रहा है। उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने जो लोकप्रयोगी कार्य किये हैं वे सर्वथा सराहनीय हैं। आशा है अब स्वतन्त्रता के इस युग में, आर्य समाज भारतवर्ष को एक आदर्श राष्ट्र बनाने में प्रगतिशील होगा। जिससे हम पुन मानवता के कल्याण के लिये उसका पथप्रदर्शन कर सकें।

आत्माराम गोविन्द खेर

अभिनन्दन

[ले०—लक्ष्मण नाद द्विवेदी 'चन्द्र' विशारद]

दीपावलि का अभिनन्दन है।
जगी अर्बुद है, जगा गगर रहे,
जगा आज जन जन का मन है।
शुभागमन के पावन पथ पर,
जगमग नव झड़ी कन्दन है।
दीपावलि का अभिनन्दन है।
जगी ज्योत है, जगा पवन है,
जगा आज दीपक का तन है।
दीपित दिशि के नूतन पथ पर,
जगा सुभग कानन नन्दन है।
दीपावलि का अभिनन्दन है।
जगी प्रीति है, जगा मदन है,
जगा आज घर में कम्पन है।
नमित शीश से शोभित पथ पर,
आर्य देव का पद बन्दन है।
दीपावली का अभिनन्दन है।

माननीय श्री गिरधारी लाल जी
(मन्त्री प्रावकारी विभाग)



मुझे प्रसन्नता है कि श्री मित्र महोदय दयानन्द की पुण्य मृति में दीपावली पर्व के सुश्रवण पर अपना श्रुत्यर्थक प्रकाशित कर रहा है। स्वामी जाने भारतीय सभ्यता की रक्षा कर राष्ट्र की रक्षा की जिससे उम्होंने राष्ट्र को न केवल विनाश के गर्त से बचाया बल्कि लाखों गिरे हुएों को उबार। श्री दयानन्द जी जगन्निर्गम धर्म को केवल कर्मानुसार मानते थे, साक्षरों को आवश्यक समझते थे, और किस जाति को अच्छूत नहीं मानते थे। भारत उनके जीवन काल में गुलाम था परन्तु आज भारत स्वतन्त्र है। इसलिए हमें समस्त सामाजिक कुरातियों, बचनों तथा भेदभाव को त्याग कर महोदय दयानन्द के आदर्शों को जोवित रखने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। मेरे हृदय में दयानन्द जी के लिए अत्यधिक श्रद्धा है और मैं इस सुश्रवण पर उनके प्रति अपनी श्रद्धाबलि अर्पित करता हूँ।

गिरधारी लाल

ऋषि दयानन्द

(ले०—श्री अलगूराय शास्त्री एम. एल. ए.)



पारली का महान् पर्व आ गया ! वैदिक धर्म के अद्भुत प्रचारक महर्षि दयानन्द को इसी पर्व में निधन प्राप्त हुआ था। लोग अपने घरों में जगमगाते दीप जला रहे थे, उधर उनका शाश्वत प्रशाश लुप्त रहा था। पर वे तब इस भारी क्षति को अपने नन्हें उजाले में देख नहीं पा रहे थे।

अपने सत्यार्थ प्रकाश से दयानन्द ने जिस दिव्य ज्योति का निर्भीक प्रसार किया वह दिन-दिन अधिक चमकती जायेगी। नवोदित तारक प्रारम्भ में मन्द प्रकाश होता है, किन्तु धीरे-धीरे उसकी ज्योति टिकाऊ हो जाती है और कारी अँवियारी में वह सूर्योदयतक आकाश मण्डल को जगमग करवा रहता है।

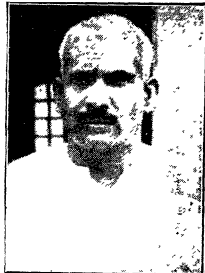
१८७४ से १८८२ तक कुल १० वर्ष के स्वल्प समय में उन्नीसवीं शताब्दी के उस अलौकिक वैदिक आचार्य ने जो महान् कार्य किये उनका सिंहलोकन कर कौन कृतज्ञता की भावना रखने वाला चकित न होगा।

आश्चर्य ! कि उन तरस्वी बोन रागी एवं दिव्य दृष्टि ने ऐसे विकट समय में नितान्त अकले इतना किया।

आज का भारत, हमारी आज की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक भावनाये निस्सन्देह दयानन्द की दैवो प्रेरणाओं का परिपाक हैं। जो यह भारत का स्वाधीन प्रासाद सहसा हमारे सामने उठ लड़ा हुआ है, उसकी दागबेल दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में डाली थी। Sitoplan कथा मानचित्र तय्यार कर दिया था। उसी चित्रके अनुरूप इस महान् राष्ट्र के प्राउर की नींव पड़ी थी। आज यह उस नींव पर ख़ातो

भर ऊपर उठी हुई दीवाल के ऊपर निर्मित प्रासाद हैं जिसमें भारतीय जन समाज गौरव के साथ स्वतंत्रता की सात ले रहा है।

(१) 'स्त्रियों को शिक्षा को उहें पुरुष के समकक्ष अधिकार मिलें यही नदी—'तन्मयो माता गीयसी; सातुदेवी भव पितृदेवो भव आचय देवो भव'



लेखक

के बचनों के अनुसार माता एवं पिता में माता की ही पदवी बड़ी है। उसी का स्थान बड़ा है। "आत्मा हि दाग सर्वेषां दारमंमहकारिणाम्" विवाहिन जोड़ी में स्त्री आत्मा है और पुरुष शरीर। ये आर्षे शिक्षाये महर्षि दयानन्द ने तब दी जब भारत में जिधे पाव की जूती समझी जाती थी। जिन्यों की शिक्षा के लिये कथा

गुरुकुलों का आरम्भ हुआ। उनके सम्बन्ध में क्रांतिकारी विचार मन्थन आरम्भ हुआ। दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में अपनी पौनी नुकीली लेखनी का जो चमत्कारी प्रयोग किया उससे स्त्रियों के सम्बन्ध में भारत यकायक चौक पड़ा और आज तो भारत ही है जिसके राजदूत, गवर्नर आदि महिला वर्ग में से दिखाई पड़ते हैं। जिन मरिचि ने यह सब किया था आज वह उसके रूप को देख तो नहीं र' है, किंतु क्या कृतज्ञ मानव यह कह न उठेगा कि "महिलाओं को गर्त से उठा कर महान् सम्मानित पदों पर खड़ा करने वाला ऋषि दयानन्द था?"

(२) अज्ञूत तो ये ही अज्ञूत—शूद्रों एव षूद्रों को "समानी प्रथा सह वोऽन्नमागः," "गच्छन्व स वदन्वम्" आदि के महा मंत्र सुना कर "सो शूद्रो नाभी याताम्" के कुविचार मिटा कर जिसने समाज में समान मानवाधिकार दिलाये वह कौन था ! वही दयानन्द ! वही दयानन्द जिसकी दिव्य दृष्टि ने निश्चिन्त रूप से सत्यो पर प्रकाश डाला है।

(१) स्वदेशी का प्रचार।

(४) देश में बला कौशल का विस्तार।

(५) अपने देश में अपना प्रजातन्त्रीय शासन।

(६) बालक बालिकाओं की शिक्षा का राजकीय प्रबन्ध—गुरुकुल वास, सब का समान रूप से लालन पालन एवं शिक्षण, यह सब बातें श्रुति दयानन्द की क्रांतिकारी राजनीतिक, सामाजिक दृष्टियों की शोक्त हैं।

श्यामजी कृष्णजी वर्मा को जर्मनी भेजा कि उपयोग धर्मों के याविक रूप का प्रचार भारत में भी हो—विदेशों

पर तयार माल के लिये भारत निर्भर न हो। शासन का रूप प्रजातन्त्रीय हो क्योंकि—“गृही विश घातुकः”—निरकुश राजा प्रजा का घातक होता है। शासन स्वदेशीय हो क्योंकि “माता जैसा विदेशी शासन भी स्वदेशी शासन की समता नहीं कर सकता।” यह दयानन्द की दी हुई दृष्टि है।

दयानन्द ने हमें अपना राज दिया, अपना समाज दिया, अपनी शिक्षा दी अपनी व्यवस्था दी परन्तु सब से बढ़कर उन्होंने हमें वैदिक श्रुतियों का अग्रमगता दोषक दिया कि सबन अघेरे में भी हम पथ-भ्रष्ट न हो पावें। अपने वषाव्याकृत्य बोध के लिये हम श्रुतियों के विधान आदेश-वधि निषेध को देखें—उनमें जो विहित है करे, वञ्चित है त्याग दें। ‘तस्मान्छु स्त्र प्रमाथ ते कार्या कार्य विचारथे’—क्या करे क्या नहीं, इस सम्बन्ध में जिस परमान्तत्व से ये शास्त्र विधि निषेध वाक्यपुत्र वैदिक श्रुतियों प्रकटी उस परमात्मा की आज्ञा में चलना भयस्कर है और इस कारण उन शास्त्रों को ही कार्य अकार्य के विवेक के लिये देखना चाहिये।

मन्थन के लिये श्रुक, यजु, साम, अथर्व के दीप-चतुष्टय हमारे मन मन्दिर में जला कर वह महर्षि दीपावली में इन पुण्यपर्व में हमें छोड़ चला था। यह पर्व हमारे मन मन्दिरों को वैदिक प्रदीपों से सदा प्रकाशित रखे, आज सत्यार्थ प्रकाश के प्रकोता अस्वार्थ दयानन्द की पुण्य स्मृति में नत मस्तक हों और उनकी प्रेरणाओं को कार्यन्वित करने का बात लें ताकि “कृषवन्तो विश्व-मार्थम्”—की चिरकृत प्रतिज्ञा पूरी कर गुरु श्रुत्य से उश्रुय हो पावें।



—जहा जितने मनुष्यदि के समुदाय अधिक होते हैं, वहा उतनाही दुर्गन्ध भी अधिक होता है। वह ईश्वर की दृष्टि से नहीं, बिधु मनुष्यदि प्राणियों के निमित्त से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि हस्ति आदि के समुदायों को मनुष्य अपने ही सुख के लिये दकट्टा करते हैं, इससे उन पशु में से भी जो अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होता है, सो

मनुष्यों के ही सुख की हच्छा से होता है। इससे क्या आया कि जब वायु और वृष्टि जल को बिगाड़ने वाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है जो उसका निवारण करना भी उनको योग्य है।

—श्रुति दयानन्द



महात्माजी का साहस



(ले०—श्री रामगुह धुरेन्द्र शास्त्री प्रधान सभा)

यह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सिद्धांत है कि सत्य, एष महाप का आश्रय लेने वाला सुगमता से प्राप्तव्य स्थान को पहुँच सकता है।

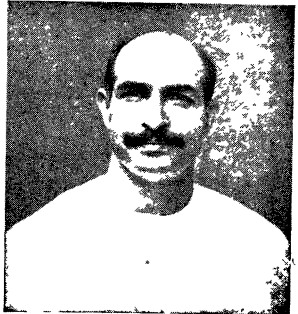
जो व्यक्ति शरीर रूपा नौका में सत्य एष साहस के चपू लगा लेगा, वह बसा-सागर को पार करने में नय सन्नद्ध हो जावेगा और देव दुलभ इह मे नय एव साहस क (पत्नी के नमान) पल द्वय लग लेगा, वह भीक्षत्य शिखरशिखरा राहण में सर्वथ -पन प्रया। नीर होगा। उद्योगी नत्याश्री एव साहसी व्यक्ति क दुश्मन क दुर्गो शास्य हो भवस्त हो जाता है। वह कप्र साध्य कथ का निरुद्ध करन में सदा सफल रहता है।

मार्षि शाही दयन द जा महााज की ज वनी के पद सभा ऐग हा प्रतात होना है कि उनका जावन इन उद् गुण। सी तात प्रभांनत था। इन गुणव्य से उनका जीवन सदा आत भोत था। व सत्य एष साहस क महार हा अयन समस्त कर्या को निर्वचन खानन्द सम्पन्न करन म लमथ हात थे।

यद्यपि '—नत्रवाम शरद. रतम्' यह वद का आदेश है परन्तु कभी कभी कवल वाग्गीरत्व मनुष्य समाज का दुःख क गहरे गत में पेशा गि। वेता है कि चिरकाल तक वससे निरुलना कष्ट साध्य हा जाता है कवल वाग्गीर नर सदा निराशा नर्क म हा पड़ा रहता है, अ पद ये उसे परेशान िक रहता है। और चाट लाये हुये सप की तरह वह व्याकुल रहता है।

सत्य एष साहस के सहारे से ही पुरुष विपन्न पक्ष प्रत्याख्यान, िकतव्यविमूढ कलक पकप्रसन्नान और निन्दनीया नास्तिकता को निरान्त निर्मूल करने योग्य बन सकता है।

कविरत्न प० प्रकाशचन्द्र जी के शब्दों में —
बिनय विवेक ब्रह्मचर्गी वेद विहता से,
विद्वद्गों में चाक अग्नी बजा गये।
सत्य और असत्य की परख करने के हेतु,
कर में कनौटी युद्ध तर्क को घना गये ॥
गुरुन्त महश प्रकाश नास्तिको क भा तो,
मन्तक "पशाश" म्भु पद में नमा गये।



लेखक

देव न्यान द मृत्यु मुक्त में समा गये कि,
मानवों के मन में, नयन में समा गये ॥

आज दीगली के दिन हम महर्षि का मृति दिवस मना रहे हैं, परन्तु अखण्ड शरीरों को मका शित करने वाले उप प्रकाशपुत्र से यदि हम कुछ प्रकाश लेकर अपने अन्तःकरण रूपी दीक को प्रकाशित कर पाये तो दिवाली के साथ हमारा

होंगे न उच्छ्रय कभी ऋषि-उपकार से ।

(श्रीरघुपतिह 'ददन' युवराज अनेठी राज्य)

दोहा

बन्द तिमिर में था हुआ, कमल बीच मकरन्द ।
ऋषि-रवि सत्य प्रकाश से, मुक्त हुआ सानन्द ॥ १ ॥

घन.चरी

राज्य हट करने को आंगल देसबाधी यहाँ
चाजे चातुष्य पूरा चलते रहे कन्द की ।
भारतीय, भाषा भाव शेष देश भूले निज
बने वे विदेश-भक्त बुद्धि ऐसी मन्द की ।
'भारत भा तीर्थों का' घोषणा हुई है तब
सब से प्रथम श्री मदरि दयानन्द की ।
आगे 'ददन' भा तीर्थ, आगे गौगङ्ग प्रभु
त्यागे यह वेरा, कृपा स्वामी सुख-द-द भी ॥ २ ॥
भारत स्वप्न हुआ, धूम चरा और मची,
उत्सव मनाये गए विविध प्रकार से ।
गूँज गया गगन, नगर और ग्राम गूँजे
गूँज गई मन्त्रियाँ भी जय जयकार से ।
धन्यवाद साधु जी अर्चि कर्मवीरों को है
स्वत्व मिल जिनके परिश्रम अपार से ।
किन्तु 'ददन' मुख्य श्रेय श्री दयानन्द को है
होंगे न उच्छ्रय कभी ऋषि उपकार से ॥ ३ ॥

जीवन भी सफल होगा। सतत न्यायपोषक, अन्याय
विरोधी दातृ भारतीय संस्कृति के पुनः प्रतिष्ठापक
सब श्रेष्ठ दयानन्द को हम इस पुण्य पर्व पर अपनी

श्रद्धाजति अर्पित करते हैं, प्रभु हमें उसके सार्ग
का अनुकरण करने की बुद्धि व शक्ति द ।

महर्षि दयानन्द का महत्वपूर्ण कार्य

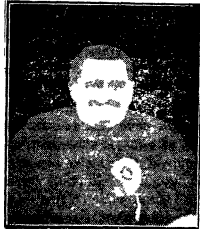
(लेखक—श्री मदनमोहन सेठ, रिट यर्ड चीफ जज)

आज से एक शताब्दी पूर्व की दुर्दं । को समझे बिना हम महर्षि दयानन्द के कार्य के महत्व को नहीं समझ सकते। किसी कार्यकर्ता के कार्य की आलोचना अथवा प्रशंसा करने में पूर्व उसकी आत्मा को हृदयगत कर लेना आवश्यक होता है। ब्राह्मसमाज के महान् नेता श्री० केशवचन्द्र सेन ने समकालीन भारत का चित्रण अचरित्र किया है अपनी आर देखो कि किस प्रकार तुम रुद्धियों से बंधे हो, तुम्हारी स्वतन्त्रता हर ली गई है, धृत पुजारियों ने किस प्रकार तुम्हें दास बना रखा है, परम्परा के अन्ध भार से किस प्रकार तुम्हारा अन्धी भावनाएँ और विचार दबा दिए गए हैं। अपने घरों की आर देखो, अपनी माँ, बहिन, पुत्री और पत्नी की आर देखो कि किस प्रकार वह जनाने की काल काठरी में बन्द कर दी गई है। जिनके स्वतन्त्रता के आचकार को कुचल दिया गया है। तुम्हारे सामाजिक संगठन किस प्रकार अमिथ्याप बन कर तुम्हें दुबल आर आचर भ्रष्ट बना रहे हैं। अपने दैनिक जीवन में देखा कि तुम्हें प्रत्येक पग पर अपना आत्मा के एककद कितना बलिदान करना पड़ता है, तुम चारों ओर ऐ-० रातिय से बंधे हो जिन्हें तुम पुण्या ही कर सकते हो और कोष ही सकते हो। क्या वह धार्मिक शासन जिसके तुम आर्चन हो अत्यन्त कष्टकारी तानाश ही नहीं है? क्या तुम ऐसी भयकर रातियों में नहीं बंधे हो, जिससे तुम्हें लाजा आती है और जो तुम्हें के लिए कल है, जिससे प्रायः पाने के लिए तुमने कितनी बार आर्हें भरी हैं!

हिन्दुओं की मनो वृत्ति दूसरे धर्मों के लिए क्या थी, और उस पर श्रुत प क काय का क्या प्रभाव हुआ, एक मुस्लिम लेखक खान अब्दुल नौलीबी जामुल्ला क शब्दों में सुनिए—

पहले हिन्दू यदि कल्पना पढ़ लेता था या वपतिष्म लेता था तो उसका हृदा के लिए चाति से महिष्कार कर

दिया जाता था, परन्तु आर्यसमाज ने उनकी शुद्धि आरम्भ कर दी। अनेकों ईसाइयों और ननमुस्लिमों की शुद्ध कर के अपने में मिला लिया। इस दुभित में आर्यसमाज के अनाथालयों ने घोषणा कर दी कि किमा हिन्दू बालक को दूसरे धर्म को न दिया जाय और ममात्र उनके पालन पोषण का भा होगा। इस प्रकार महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज ने हिन्दुओं क कलक को धो दिया।



लेखक

१९०४ में एक प्रोफेसर रामचन्द्र ने ईसाई मत इतलिये ग्रहण किया था कि हिन्दू धर्म ईश्वरीय नहीं हो सकता क्योंकि उस पर भारतवर्ष के हिन्दुओं का ही एकविकार है और अन्य धर्मावलम्बी उपमें नहीं आ सकते। आर्य समाज के इस वैदिक मार्केपीम धर्म का प्रतिगदन होने से अब प्रत्येक व्यक्ति उसमें श्वेष कर सकता है।”

इस से हम जान सकते हैं कि उस समय भारत की कैदी एकदमची दशा थी, ईसाई और मुस्लिम विवेता किस प्रकार श्रुतालक्ष्य हिन्दुवाति के श्व के बदारे के लिये

स्वतन्त्र भारत के लिये ऋषि दयानन्द का संदेश

(श्री इन्द्र विद्या वाचस्पति प्रचण्ड स्मार्क आ० प्र० सभा देहली)

परतन्त्र भारत के लिये ऋषि दयानन्द का संदेश यह था कि अच्छे से अच्छा विदेशी राजा भी तुरे से तुरे स्वदेशी राजा से अच्छा नहीं हो सकता। अन्न देश स्वतन्त्र हो गया है। ऋषि का संदेश आज भी देशवासियों के लिये विद्यमान है। ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है जो नियम राजा और जा क सुवकारक और धन युक्त समझ उन २ नियम को पूर्ण विद्वान भी राजसभा साधारण परन्तु इस बंधन र ध्यान रखे कि जहाँ तक बन सके वहाँ तक बाल्यवस्था में विद्या न करने दें। युवावस्था में भी विद्या प्रसन्नता के साथ ही न करना और न कराना देना, ब्रह्मचर्य का यथावत् सवर्ण करना, व्यभिचार और बहुविवाह को बंद करके जिससे शरीर और आत्मा में पूर्य बल सदा रहे क्योंकि जो बल आत्मा का व अर्थात् ज्ञान बढ़ाते जाएँ, और शरीर का बल बढ़ाये ता एक ही बलवान पुरुष ज्ञान और सैकड़ों विद्वानों को जीत सकता है। और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाय आत्मा का नहीं तो भी राज्यपालन की उत्तम व्यवस्था बिना विद्या का कम्ब नहीं हो सकता। विद्या व्यवस्था का सब आधार

ही में फूट विरोध लड़ाई भगड़ा करके नष्ट भ्रष्ट हो जाए। हमलिये सर्वो शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये जैसा बल और बुद्धि का गुरु व्यवहार व्याभार और व्यवसाय के लिये बना और काई है। विशेष लड़कियों को पढ़ाया और और बल युक्त ज्ञान चाहिये बनाया जाय वहा व्यवसायिक इंगे ता राजधर्म ही न टूट जायगा और इन पर ध्यान रखना चाहिये कि 'या राज तथा उजा' जैसा राजा होता है वेही उसका प्रजा होता है। सालय राज और राज पुरुषों को प्राप्त जाचते है। कभी दुष्टाचार न कर कतु मव दिन धर्म न्याय से बर्ते पर सबके सुधार क दुष्टान्न बने, सत्यार्थ प्रकाश पण्ड मुद्रण स।

ऋषि दयानन्द का यह संदेश स्वतन्त्र भारत शासक और जनता दोनों के लिये है। जनताओं के हाथ में इस समय देश का राज्य सभा आ ई है, उनको विशेष रूप से हमें या रखना चाहिये। एक सत्ताधारी क दुष्टाचार से जना में दुष्टाचार फैलाता है और जनता में दुष्टाचार आ जाता है, वह स्वतन्त्र नहीं हो सकती।



हर्षित हो रहे थे। ऐसे समय परम्पिता की असीम अनुकम्पा से, वेदवाणी के आदि निकेतन पुरेपभूमि भारत में भगवान् दयानन्द का आविर्भाव हुआ आज इस ऋषि वा, ब्रह्मा से जैमिनि पर्यन्त ऋषियों की प्रणाली के उद्धार कर्ता का, भारत की स्वाधीनता अन्दोलन के ब्रह्मा

का अतिक्रान्त भावों से हम अभिनन्दन करते हैं। आज हम अनुभव करते हैं कि इन पर ऋषिपुत्र और हृद्द हो गया है। किंतु प्रकार हम उनसे मुक्त हो सकेंगे यही समस्या है।



श्री भृगुदत्त जी तिवारी

अभिष्टाता आर्यमित्र



— ऋषि निर्वाण दिवस आर्यसमाज के लिये एक विशेष महत्त्व का दिन है। आर्य समाज के लिये यह आत्मनिरीक्षण का समय है। • हर्षि दयानन्द ने आर्य समाज को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया और अपनी दैवी सम्पत्ति का समस्त उत्तरदान उसी को दिया। आर्यसमाज के भूतकानिक क्रिया कलाप पर हर्षित होने मात्र से काम नहीं चलेगा आज हमें यह सोचना है कि भविष्य में स्वतंत्र भारत में, हमारा क्या स्थान है, क्या आवश्यकता है ? और उसकी पूर्ति के लिये हमारी गतिविधि क्या हो ?

जातीय जीवन के प्रत्येक पक्ष में आज सुरास्कृत लोगों की आवश्यकता है जिनका चरित्र आलाचना से ऊपर हो। चरित्र का मानःएड भयङ्कर रूप से गिर गया है। आज आर्य सङ्कृत से अनुगमिणत सहस्र २ नवयुवकी की आवश्यकता है जो आधार सम्भ बन कर राष्ट्र क इस नवीन भवन को अपने गुण स्कन्धों पर उठाए। जिनके निर्मल चरित्र की प्रशंसा शत्रु और मित्र मुक्त कठ से कर मने ।

— भृगुदत्त तिवारी



श्री सुरेन्द्र शर्मा जी

कोष.ध्यक्ष आ ५० जभा तथा ५० अभिष्टाता आर्यमित्र

सबसेर आते हैं और चले जाते हैं। प्रति वर्ष शरद ऋतु आता है और उसके साथ आती है कार्तिकी अमा वास्या। हिंदू जनता बड़े उत्साह से इस पवित्र पर्व पर पावस ऋतु का मलिनता को यह शोधन कर और सहस्र २ दीपमालाएँ जला कर दूर कर देती है। हिंदू जाति के जीवन पर एक सहस्र वर्ष से ऐसी बनबोर घटाएँ छाई हुई थी कि माग नहीं सूक्तता था। महर्षि दयानन्द ने आकर इस पुण्य भूमि का शासन किया और अपना जीवन दीप नौष्ठक ब्रह्मचर्य के स्नेह से प्रदीप्त कर तिमि-राच्छन्न देश को अलोकित कर दिया। ऋषि के शिष्यों को आज दीपमालिका फिर आबहान कर रही है कि वे आवें और अपने गुण के प्रकाश स्तम्भ से ज्योति लेकर देश के कोने २ में प्रकाश को फैला दें।



पंजाब के अतिरिक्त सम्पूर्ण देश हिन्दुओं के हथों में निकल चुका था। धरे धीरे पंजाब पर भी अंग्रेजों का शौर्य और पराक्रम चमकने लगा हिन्दू परत हिम्मान हो बैठे। वसन्त ऋतु प्रपञ्च दिखावा मिथ्या प्रवचन जाति-पांति छुआछूत घुस गये थे जो अन्दर हं अन्दर हिन्दू धर्म को खोलला बना रहे थे।

वेदों का पवित्र मन्देश सुा था। गिरी हुई जनता ने वेदों की अमर बाणी को समझा उन्हें अपनी कमजोरियों का अनुमन हुआ उन्हें मालूम हुआ कि वे बहुत कुछ खो बैठे हैं। धर्म का वास्तविक स्वरूप वे कुछ भी न समझ पाये हैं।

इस उम्र, तपस्वी, परमहन्सी महाप्रती दया नन्व ने प्राचीन भारत के दर्शन कराकर आर्य जाति

एक श्रद्धांजलि

ऋषि दयानन्द का महान् कार्य

(प्र० राम चरण महेन्द्र एम० ए०)

वह केवल धर्म ही नहीं, हिन्दुओं के जीवन मरण का प्रश्न था; हिन्दू समाज की कपतोरि, ई, मूर्ति पूजा, अंधविश्वास, पापाचार के कंटाणु हिन्दुओं को ह्रास कर रहे थे।

गुजरात प्रान्त के सौराष्ट्र राज्य में शिव गिरि के दिन सन् १८२४ में एक ब्राह्मण बालक के दिन और दिवस में यह सब कुछ दब कर एक हलचल उत्पन्न हुई।

उगने अपना अखण्ड ज्योति का नभार करने के लिये अपना परिवार त्यागा, घर छोड़, साधु संन्यासी बना। पवनों में भ्रमण कर आत्मा तत्व की खोज और गान्तापार किया। जिसे उनका यश और शौर्य सम्पूर्ण देश में फैल गया।

फिर, सन्वत् १८१२ में अपनी ध्वजा फहरा कर

में पुनः आर्य सम्मान पैदा किया।

सन्वत् १८३२ में बम्बई में पहिला आर्यगमाज थापित किया गया। उसी उपयोगिता जनता और समाज ने समझी फिर तो स्थान २ नगर ३ में आर्य समाज स्थापित हो गये और आज तो आर्य समाज ने सम्पूर्ण धर्म तथा समाज पर अपना आधिपत्य जमा लिया। उर, महान् आत्मा के प्रतप से ही आज हिन्दू धर्म ना हुआ है अन्यथा सुदृढ और अमोघी सभ्यत एँ हमें कभी का निगमन गई होती।

सन्वत् १८४० की अभावाम्या को देश के नेत्र खोलकर, प्राचीन ऋषियों की सभ्यता, ज्ञान, अन्तर्-वर्ति को जगाकर तथा उद्धार का रास्ता दिखा कर वह देव उद्योति अनन्त में किलीन हो गई।



स्वराज्य कैसा हो ?

(लेखक—पं० रामचैब वेदालकार, सी० ए० बी० आई स्कूल मरिया)

इस अवस्था के बाद हमारा भारत सर्व स्वतन्त्र हो गया है। इस स्वतन्त्रता देशी की आराधना के लिए हमारी नदी कठिण ल लो लो पुष्पों ने हाथ ही नहीं बढ़ाया बहिक लून की होकी लेनी और सर्वस्व का स्वाग किया। उस स्वतन्त्रता हमने प्राप्त किया परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के लय ही हमारे राष्ट्रपिता बापू को ही दिये। अच्युत यह एक पहेली है कि हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति तथा बापू के निधन में दोन अछ छ सूक्ष्म न है। जिस समय हम स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सर्व्व कर रहे थे उस समय भारतवासियों का एक ही नाता था कि अंग्रेजों। हिन्दुस्तान छोड़ दो। अंग्रेजों ने इस अवस्था में हिन्दुस्तान छोड़ देना और इस स्वतन्त्रता हो गए।

रामराज्य—स्वतन्त्रता-मिलनोपरांत लोकतन्त्र वा रामराज्य की अङ्गुष्मि कानो में सु आई देने ली। जो अङ्गुष्म वा रामराज्य का मतलब यह हुआ गया कि जिस शासन-सूत्र में भारतीय जनता अपना उनके प्रतिनिधियों का हाथ हो। इसी बात की अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा हीम लिंकन ने इस प्रकार कहा था।

The Government of the people for the people will not perish from the earth,

अर्थात् जनता का शासन, जनता के लिए शासन तथा जनता द्वारा चलाय शासन परल से नहीं चित्त मतलब। इसी

प्रकार की लोकतन्त्र व्यवस्था को महात्मा की रामराज्य का नाम दिया करते थे। शाधारण्य जनता है उनके रामराज्य का तात्पर्य यह होता था कि भारतवर्ष के रहने वाले निवासी सुखी समृद्ध एवं समुन्नत हों, अन्न वज्र, शिक्षा, औद्योगिक एवं वैयक्तिक विकास की समान सुविधाएँ सब को प्राप्त हों। कोई भारतीय अन्न के निना भूखा तड़प तड़प कर प्रायः वेतर्जन न करता हो। न कोई बल्ल को बर्ष के कारण नगा ही रहता हो और बर्षियों में शीत का शिकार होता हो। भारत के सभी लोग साक्षर हों, साक्षर ही नहीं अपितु विविध-विधाओं के विद्वान् तथा नाना-उत्सवों के आविष्कारक हों, बीमारी के समस्त भारतीय प्रजा के लिए सुव्यथित औषध का प्रबन्ध हो, कोई व्यक्ति दुःख के कारण बकाल में ही काल की गोद में न चला जाता हो। इन सब बातों के साथ ही सभी समाज में वैयक्तिक विकास की समान सुविधा हो, भारतीय समाज देगन न हो कि एक विशेष वर्ग को विशेष सुविधा हो और अन्य वर्गों का समाज में कोई स्थान ही नहीं। इस प्रकार ऊच-नीच का भेद समाज में न हो। रामराज्यमें भाव्य की स्वतन्त्रता हो, किसी को भी अपनी विचारधारा को प्रकट करने की दृढावृत्त या बाधा न हो। भाव्य की स्वतन्त्रता के साथ ही लेखन की स्वतन्त्रता हो अर्थात् देश में प्रेस एक्ट जैसे कठे कानून न हो जिससे कि लेखन की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ेगी।

ऊचे राज्य के नामकों में आत्म सम्मान की भावना हो, आत्मसम्मान के साथ ही उत्तरदायित्व की भी भावना मग्न हो। राष्ट्र के एकिकों को दैविक, दैविक तथा भौतिक ताप न लगाया हो, तुलसी दास के शब्दों में हमारा राज्य इस प्रकार हो—

दैविक दैविक भौतिक तथा रामराज्य कष्ट नहिं ब्यापा। अर्थात् रामराज्य में किसी को भी दैविक (सौभाग्य) दैविक (अनादृष्ट्यात्) भौतिक (सौख्यम्) ताप नहीं लगाया हो। अन्तर रज्य में प्रजा को दुःख होगा तो वह राज्य तथा राजा अक्षय ही स्वतन्त्र हो भावना देशी भावना रज्य में हो। तुलसीदास जी ने उही बात को निम्न रूप में कहा है—

जासु राम विष प्रजा दुःखी हो नुप अक्षय नरक अविहारी। अर्थात् जिस राज्य में स्वामी प्रजा दुःख पाती है वह राजा अक्षय ही नरक का अविहारी होता है।

जहाँ राजा प्रजा का अधिकार शक नहीं अपितु शेषक के रूप में कार्य करता हो सेवा कार्य की दृष्टि से जहाँ एक महत्त्व और वाचस्पत्य का पद बरकर हो, वही तो सच्चा स्वराज्य वा रामराज्य है। जहाँ प्रजा की इच्छा ही प्रधान हो प्रजा की बलवती इच्छा के लयने राजा की इच्छा का कोई महत्त्व न हो, जहाँ प्रजा का हित प्रधान हो, प्रजा के हित के सामने राजा का हित गौण हो, जहाँ राजा अपनी प्रजा के लिये अपनी धी से स्वामी बल्ल का भी परिश्रम कर सकता हो, अर्थात् भवभूति के शब्दों में—

स्नेहं द्यां च दीर्घं च यद्वा जानकी-मपि आराधनाय लोकस्य मुञ्चते नास्ति

प्रधान पत्नी को प्रथम रखने के लिये स्नेह, दया ऐसी और महारानी तक को परिवाराय करते हुये कोई दुःख नहीं होगा, कहने का मतलब यह है कि जहाँ राजा और प्रजा का सम्बन्ध रिता-पुत्र जैसा हो, काबिलवादी के रूपानुसार—प्रजाजान विनयाधानात् रक्षणात् भरणादपि स पिता पितरस्तासां केवल जन्म-हेतवः।

इच्छाकाम्यीय राजा दिव्यो, प्रजाको का निश्चय करने से उनकी रक्षा तब परिवारलाना से से, वास्तविक पिता नहीं था, उनके रिता तो किन्हीं कर्म से ही बाँधे हो थे। जिस राज्य में इस प्रकार का वातावरण हो, उन्ही को राम-राज्य कहा गया है। यह राज्य केवल होना यह पाठक ही कराना कर सकते हैं।

मेरे उपर्युक्त लेखन से मुझपर राज-तन्त्र के पक्षपाती तथा समर्थक होने का दोष आ सकता है, परन्तु गम्भीरता पूर्वक तत्प्राप्त्यवस से पता लगता है कि पुत्रासन राजतन्त्र की आकार-शिक्षा लोकतन्त्र ही थी, अतः मैं लोकतन्त्र का ही समर्थन कर रहा हूँ न कि राजतन्त्र का। पुत्रासन प्रय के अनुसार राजा भी निर्वाचित होता था ऐसे कालों में सहायक भारतीय इतिहास में उल्लिखित है। इसलिये जब इस हुआ तब उन्होंने गौर एवं जानपद समाजों की सहाय (निर्वाचन) के ही राम की अघिषेड करने का निश्चय किया था। दर, काठीयसहाय जावसवाक को के हिन्दू गीते टिप्पण नाम की पुस्तक को देखते के पता चलता है कि ई. पू. तथा ई. प. भी अनेकों सभ्यतन्त्र (कुल पू) लोकतन्त्र राज्य इस भारत में विद्यमान थे, जिन्होंने कि विद्वान्त्र को जगो बने से रोका था

अतः लोकतन्त्र यथाकी नहीं न समझकर पुत्री ही समझनी चाहिये और वाय ही यह भी समझना न चाहिये कि इस लोकतन्त्र प्रयागी का विकास यूरोपीय राष्ट्रों ने ही किया।

समाजवाद—साम एकरक विशेष यह मानता है कि हमारी सारी समस्याओं कि मूल मर्थ है, वे करने ही तरीके से आर्थिक समस्या को इस करना चाहते हैं, वे करते हैं कि नगर समान है वन का समान विद्यथ (Equal distribution of wealth) हो, तो समाज की कुत्रिम अकमानता वा नाश हो जायगा। समाजवादी वैयक्तिक उद्योग कर्मो (Private interprize) का समूह नाश चाहते हैं, वे करते हैं कि सभ्यति के उत्पदन व समस्त शायनों (कल कारखाने आदि) पर राष्ट्र का अधिकार होना चाहिये। समाजवादी कर्म एवं अर्थकरवादा के प्रति उदासीनता का भाव रखते हैं और भीतिव्यवह को प्रमानता देते हैं।

जहाँ तक समाजवाद के विद्वांत के शारय है वहाँ तक उसका विद्वांत रोड है, परन्तु जब तक उसका किवायक रूप सामने नहीं आता तब तक उस पर केके विम्वस किया जाय करक का उदाहरण देने के ही काम नहीं चलता हिन्दूत की दृष्टि के ही सार्वभौमिक उन्नत करने वाली ऐसी पद्धति आइए जो हमारी सभ्यति सभ्यता एवं संस्कृति को समुन्नत करे। महात्मा ईशान ने एक कथन कहा था—Man does not live upon bread alone. आर्वात् मनुष्य त्रिभू तोटी के ही चकारे नहीं नेता, उसके लोने का एक परलू चर्च संस्कृति एवं ईश्वर भी है। चर्च संस्कृति तथा ईश्वर को मानना ही आतिशयवाद है। वैदिक कर्ष्य व्यवस्था—भीतिव्यवह के

समर्थक आतिशयवाद की इस गहरी खाई को वैदिक कर्ष्य व्यवस्था से ही पाठ सकते हैं यह वैदिक कर्ष्य व्यवस्था सर्व प्रकार से परिपूर्ण है, इस वैदिक कर्ष्य व्यवस्था में जहाँ आचर्यवतानुसार सभ्यति के समान विद्यथ की वत कही गयी है वहीं साथ ही आचर्यवतानुसार समान भय विद्यथ की बात भी विद्यमान है। ब्राह्मण ज्ञान ज्ञान तथा तथा ज्ञान के अविद्यमान द्वारा, शूद्र कर्म एवं कार्य के द्वारा समज के जीवन शायन करने का अधिकारी है सम्बन्ध नहीं। ज्ञाने शुभ और कर्म के अनुसार सब को समान में प्रतिष्ठा एवं सुखव्यव जीवन विधान का एक है, कोई भी सम्मान ब्राह्मण वा अविद्यमान कर्मव्युत्पत् होने पर समान में सुखपूर्वक होने का अधिकारी नहीं, ब्राह्मण, ब्राह्मण के कार्य से ब्राह्मण है, अविद्यमान के जीवन के अविद्यमान है, वैश्य करने कापार करने से वैश्य है, शूद्र अपने सेवा करने से ही शूद्र है, अपने कर्म से हीन होने पर समान में वे प्रतिष्ठ प्राप्त करने तथा निष्कर्म जीवन स्यतीत करने के अधिकारी नहीं हैं। अतः मेरी दृष्टि में भीतिव्यवह एवं आतिशयवाद में सम्बन्धशायन वेदक कर्ष्य व्यवस्था द्वारा ही सम्भव है सम्बन्ध नहीं ररत्न भारत में कोई भी प्रयागी लागू होगी, यह भारत की आत्मा भारतीयता की उपेक्षा करने के पुण्यित एवं प्रकृष्टकृत नहीं हो सकती ऐसी, ये आशा ही नहीं आतिशय विद्यथ है।

→→→

विद्वान्त्र आणों का बही मुक्तक काम है कि उदाहरण वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने लक्ष्यात्मक कार्यव्यव सभ्यति का एक। परलू वे स्वयं अपनी शिवाहित कार्य कर स्वार्थ का प्रथम और शिवार्थ का अतिशय क के क्या मान्य में रहे।

आर्यसमाज का भविष्य

[ले० विद्याभास्कर श्रीमत्प्रकाश शास्त्री स्वतौली]

भारत को म गोँ मैं बट गया सन-
 स्त हिंदू ब यों क प्रवल आन्दोलन भी
 उठे न बचा सका और उसके टुकड़े हो
 गये । भारत के प्रमुख राजनैतिक नेता
 व उनकी क्रियाएँ भी उठे न बचा सकी ।
 जिस समय मैं आर्यसमाज के २२ वर्षों पर
 उपरोक्तों और विशेष कर भजनकों
 व कविओं को "लाक्षणिक न भन्ते वन
 भावै, नदी बनेगा पाकिस्तान" गाते
 सुनता था, तौ मैं जनता था कि वह सब
 हमारी आन्तरिक मनोभावना का सह
 लेकर केवल हवै कुछ समय के लिये
 प्रसन्न करने, बाह्यही लूटने या मनोरंजन
 के लिये ही तो रहा है । और पाकिस्तान
 को अब कोई शक्ति बनने से नहीं रोक
 सकती । प० जवाहरलाल, म० गांधी,
 सरदार पटेल जैसे राजनैतिक नेताओं
 के सहस्य विरोध करने और हमारे पक्षों
 के विरोधी प्रचार के होने पर भी पाक-
 स्थान बना, और हिन्दुओं के सबसे
 कथं सतहन "आर्यसमाज" को सबसे
 अधिक शक्ति ठानी पड़ी । उसकी शक्ति
 का ईश्वर और कार्य का मेक दयह
 भजन हो चुका है । ऐसी स्थिति में हम
 जोचना निरन्तर आश्चर्यक है, कि किस
 प्रकार पुनः आर्यसमाज शक्तिशाली बन
 सकता है । हवादि.....

विचार भी उनकी उषं कोरी अर्थश
 बाह की उठान का परिणाम है, जिससे
 उहनें अभी तक भारतीयों को बले
 रहना है । जिस समय जयलैंड का
 विनाशन हुआ और वह "आवर" और
 "प्रहस्टर" दो भागों में बंटा उस समय
 भी लोगों की यह चरखा थी कि वह
 क्या न आर्य भी है, पन्तु अनुभव ने
 बालबा, कि उनकी यह केवल "रक्षणा"
 ही थी । राजनीति ही एक ऐसा स्थान
 है, जहाँ प्रादर्य "जयहार" से पीछे
 फेक दिया जाता है । अ०: हमें "अप-
 वहार" को "अप्य" है, उसे नहीं भूलना
 चाहिए ।

"हिन्दुस्तान" व "पाकिस्तान" दो
 प्रकृष्ट देश हैं इन दोनों राष्ट्रों के
 पारस्परिक सम्बन्ध रक्षाओं गठे से
 तो भिन्नता पूर्ण होना चाहिये परंतु
 वह शून्यता पूर्ण भी हो सकती है ।
 प्रकृष्ट में सप्रति व्यवहार काई भिन्नता
 पूर्ण नजर आ नहीं आ रहा । पाकिस्तान
 में हमारा व्यवहार व प्रसार सर्वथा अस्मभव
 है । परन्तु यदि हम अपने देश हिन्दुस्तान
 में अपने को शक्तिशाली बना सों तो
 हमारा अधिक अस्तुदप शक्ति भी बन
 सकता है ।

वह समय कौन मूल सकता है कि
 जब सन् २४ में मधुा की शासकी बने
 समारोह व उखाह से मनाई जा रही
 थी । पारों और अजीब शोषा था ।
 विश्व में "धर जाने तो भावै, मेरा वैदिक
 सन्तंन जाये" के शान्ति से अक्षरित हो

रती थी । पुष्य भूमि मधुरा के प्राय
 पुनः जाने । अरबशासक ने नवजीवन
 का चक्र हुआ । वह पुनः भारत के
 कोने कोने में चक्रा और चक्रा हो गया
 था । उस समय ही के अन्तर्गत स्था०
 अद्वायद भी के नेतृत्व में जो एक दस
 श्रुद्ध, हिन्दू संगठन का कार्य प्रारम्भ
 हुआ । उसी सन् २२ से प्रारम्भ क्रिया
 के नेतृत्व को पीछे ढाल दिया—और
 एक बार पुनः चरे भारत में आर्यसमाज
 ही आर्यसमाज हुआ गया । वह आर्यसमाज
 की मान् विषय थी । 'शुद्धि आन्दोलन'
 जहाँ आर्यसमाज का एक पारमिक कार्य
 य । वहाँ वह मार्मिक के राजनैतिक
 विचारों या "बैद-रक्षणाव" के उद्देश्य-
 जन का मुख्य सदन भी था । इस बात
 को चाहे हमने न समझा हो । परंतु
 हमारे विरोधियों ने इसे अवश्य अनुभव
 किया था वह ह कारख था, कि स्था०
 अद्वायद भी का वष शीघ्र से हीम
 खातापरी के २ वर्ष बाद ही किया गया ।
 और इस प्रकार आर्यसमाज के उस स्वर्ण
 युा और महान् कार्य का पडाचो हो
 गया स्थाभी अद्वायद भी की हवा
 के बाद वास्तुतः आर्यसमाज नेतृत्व हीन
 हो गया ।

पूरी और सुसज्जमानों की प्रमुख
 लक्ष्य में अपने क' तबकी के कार्य
 में अवलोक लेल कर और देश की रा-
 नैतिक स्थिति को देखते हुए, अपने
 अधिकारों की रक्षा व नये अधिकारों
 का वचन मुस्लिम लोग द्वारा आरम्भ
 करी थी । उस समय आर्य समाज और
 उसकी समस्त संस्थाएँ उस और ध्यान
 न देकर क्रिया की सहायक बनी रहीं ।
 साथ ही क्रिया की अकारिण विचार
 धारा (नोकपयः कस के अर्थों पर
 अवलम्बन वल कर रही थी) आर्य
 नेताओं के मस्तिष्क में घट करती गई ।
 उन्होंने शून्य ह्यानन्द भी के राजनैतिक

३. अनेक महानुभाव अभी भी वह
 आशा लगा रहे हैं, कि दोनों देश
 (भारत और पाकिस्तान) एक न एक दिन
 पुनः एक होँ गये थे । परन्तु वह सब
 अशुभ संभव है । और उनका सब

विचारों के अनुसार अपनी प्रचार परिचायों को छोड़ दिया। राजनैतिक क्षेत्र में भी विचार दृष्टिकोण से पराभवी थे रहे उनका अपना कुछ न रहा न इस स्थिति में आर्यसमाज को इस नमन्य स्थिति में पहुँचा दिया कि उसका न आर्थिक क्षेत्र में प्रभाव रहा, और न राजनैतिक क्षेत्र में ही। महात्मा गांधी जी को एक वह विरोध पड़ा भी, कि उन्होंने एक राजनैतिक नेता होते हुए भी सामाजिक सुधार के कार्य को भी अपने विशिष्ट विद्वानों के अनुसर बनाया। वह आदर्शवादी का वाद भी, कि आर्यसमाज के परिदृश्यों में भी उनकी ही में ही मिले। इस प्रकार आर्यसमाज का प्रभाव राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में कम होता चला गया। आर्य समाज का वह पुत्र भी स्वरक्षीय है, जिसमें उसे एक राजनैतिक विरोधी समूह बनना जाता था। उसका प्रत्येक कार्य निरर्थक या उसकी दृष्टि में अर्थहीन की वस्तु थी। परन्तु वह पुत्र चिरस्थायी न रहे सका।

महाराज जी के निधन के बाद हमारी सरकार ने समय के सम्बन्ध में जो नीति स्वीकार की है। उस पर यदि हम बराबारी की से विचार करें, तो वह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि जिस तर्क शक्ति से हम आज तक सरकार के मतप्रमाणों के विद्वानों की परीक्षा व समीक्षा करते थे, उसे अब मजिब में रहने नहीं दिया जा सकेगा। वर्तमान सरकार ने चर्चों के समय में जिस नीति की घोषणा की है वह एक अर्थहीन या तो मजबूत सरकार ही रही जा सकती है, जो वह किसी भी प्रकार बड़ा गैर हिंदू लोगों के मनहरी सम्बन्ध का स्थापन रखेगी। यह वे हिंदू जी की आर्थिक भावनाओं की रक्षना भी नहीं कर पाएँगे। यह कि उनको नीति सम्बन्धनों को रखा पर मजबूत है।

इस स्थिति में आर्यसमाज का क्या होगा यह विचारयोग्य प्रश्न है।

→ →

सत्यार्थ प्रकाश के विषय में स्वामीजी के विचार

“यैरा ह्य ग्रन्थ के बनाने का मुझ प्रयोजन सर्व अर्थ का प्रकाश करना है प्रार्थी को सर्व है उसको सर्व और जो भिन्ना है उसको भिन्ना ही प्रतिपादन करना सर्व अर्थ का प्रकाश

समझा है। वह सर्व नहीं कहाता जो सर्व के स्वरूप में सर्व और सर्व के स्थान में सर्व का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो प्रार्थी भेदा है उसको सेवा ही करना, भिन्नता और मानना सर्व कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने अस्वभाव की भी सर्व और दूसरे विरोधी मत चाहे के सर्व को भी अस्वभाव सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिये वह सर्व मत को प्राप्त नहीं हो सकता।”

“उद्बोधन”

उठो ! वीर भारत सन्तानो।

पग-पग को अविदाम सुगति दो ;

जीवन को अति सूक्ष्म सुगति दो।

मानवता के पथ में जाकर ;

क्रिया शील बन कर उन्नति दो।

आरिषड, वैदिक बल अपनाकर, जगो वीर-भारत सन्तानों !

विद्या का उपहार दिया दो ;

बैभव का नव हार पिन्हा दो।

निज गौरव अभिमान जगा कर ;

आर्य संस्कृति—घार बहा दो।

आगत वाचाओं को दसकर, बढ़ो वीर भारत सन्तानों !

दानवता, अपकथे मिटा दो ;

युग युग का उत्कर्ष दिखा दो।

उन्नत राष्ट्र भवजा फहरा कर ;

भारत का आदर्श दिखा दो।

शौर्य-जनित विक्रम दिखताकर, उठो ! उठो !! भारत सन्तानों !

उठो ! वीर-भारत सन्तानों !

—सत्यार्थ प्रकाश—

दैनिक 'आर्यमित्र' कैसे हो

(ले० भी सुखदेव वैद्य)

देश को स्वतन्त्रत हब प्रवार से और ऐंटे उपल पुनल के समय में प्रत्य दुर्दै है अब कि उसे बहुत तब कोटि के अनुपवी एवं कर्मणिष्ठ विद्यान चिकित्शको (पय प्रदर्शको) को महती आचरणकता है; हब समय भारत देश कथा/मिठ ही अगिन है सुलता सा रहा है, निचर देखो उचर ही अन त अत्याचार पचम् भ्रष्ट - चार का बालवाला है अचिकारा वनत्रा की मनोवृत्ति हूँच हो चुकी है ।

← वर्तमान समय स्फुटि और ताहब से कार्य करने का है, कैवल जग्गी र योजना और प्रस्तावको से कार्य बिह्न नहीं होमा, यदि हब अवसर पर भी हमने छिपिकता रही तो मविष्य लर्था है लिए अन्धकार पूर्व ही आचना; अतः आर्य समाज की चिकित्शक को अब कर्षण पय पर अवसर होकर जाना पचार सधन बढ़ावा चाहिये । यह प्रचार का पुन है 'आर्य मित्र' को समय के अनुकूल बनाका वैदेक सन्देश पर २ में पहुँचाने है ।

अनुवागतः १॥ वर्ष के यह प्रवदन हो रही है कि 'मित्र' को अचिकित्शक दैनिक कर देने का अन हो रहा है इसके लिए समिति बन गई मिहकी (मित्री भी हो चुकी है किन्तु उपयुक्त बन प्राप्त न हो सकने के 'मित्र' दैनिक न हो सका ।

'सभा' के पास बन को वनी है ? बन के चाले निरव हो शिक्षा मरंगनी पकती है यह विदयी लक्षणा की बात है ।

मेरी सम्मति में तो भौंगने काको और देने वाले दोनों ही नयोन उत्पन्न किये जाने को कार्य जूँक हो; जो स्वेच्छा से बल से कोर के नके ...

का प्ररन ही न उठे; स्वेच्छा से वही देना को वनी होने के साथ ही वैदिक धर्म के लिये नयोन उत्साह रहता है । 'आर्य मित्र' के लिये २ लाख रु० की अवल भी है भित्ते १॥ वर्ष हो चला, अब तक २ लाख रु० न हो 'मित्र' दैनिक कैसे हो ?

अंततः कार्यवा कय में मेरा वही अविमोष है कि लेटे भी सम्भव हो सके हर्षे अरने प्रचार साधन में सुचार तय हूँक बननी है, मित्र' को समय की मरग के अनुकूल अचिकित्शक दैनिक कर देना चाहिये ताकि हमारी कर्श-२ की वसामो

कोर नेताको हारा देस बनान की कर्श-२ कता-२ सेना हो रही है इन सब हलचलों का आम जनता को निश्च यति शान होता रह सके, तभी तो जनता आर्य समाज को जीवित भाएत संस्था बनक कर उसका हृदय से स्वागत कर सकेगी ।

हम तो तब सुभ दिन की प्रतीक्षा में हैं जब कि हमारा समचार पय प्रेम और सभान के साथ प्रतिकर्षणवर्धनी पदत्र हुआ नकर अये, न कि केवल कुव पुने हुए आर्यसमाजियों तक ही सीमित रहा जाये ।

• • •

मन्त्र गीत

(प्रो० सुन्शीराम शर्मा, एम. ए.)

त्वद् विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वियन्ति वनिनो न वयाः ।
बुध्नी रथिर्बाजो वृत्रतूर्वे दिवो वृष्टिरील्यो रीतरियाम् । अ० ६-१३-१.

अथि सुन्दर, सुन्दरता-स्रोत !

तुमसे निकल निकल फैले हैं बल, वैभब, गरिमा के गोल ॥१॥
जैसे तब से फूट फूट कर चारों ओर गई शाखाएँ ।
धब में एक मूल रस व्यापक, गुप्त फूल फल-अभिलाषाएँ ॥
त्रिवने सेवन किना, मित्रा धन, दिव्य वृष्टि की सृष्टि निराली ।
शक्ति सामरिक, उद्योति प्रशसित, गति को भी गति देने वाली ॥
एक तुम्हारा आश्रय बनत' सब सागर में पावन पोत ॥२॥



भारतीय भी उच्च सम्पत्ता तक पहुँचे हैं। प्रकृति का आनन्द लेते और उस आनन्द से भाति का स्वास्थ्य बढ़ाने के लिये भारतीयों ने त्योहारों की परम्परा रखी है।

शरद पूर्णिमा चाँदनी का आनन्द लेने को रखी। इस उत्सव का नाम रक्षा "श्रीयुती महोत्सव" चाँदनी का आनन्द लेने के साथ ही अचरेरे का आनन्द क्यों न लिया जाय। १५ दिन परचात् ही अचरेरी का शोभा देखने के लिये यह महोत्सव रक्खा गया। यह कहना तो बिल कुल गलत है कि यह त्योहार भी रामचन्द्रजी की लका विजय के उपलक्ष्य में है या भी रामचन्द्रजी का आभार राजतिलक हुआ था।

भी रामचन्द्रजी का राजतिलक तो चैत्र में हुआ था और राम रावथा पुद्द हुआ था जादों में। भी रामचन्द्रजी लोट कर भी चैत्र में ही आये थे।

यह उत्सव तो प्राकृत श्रुतु परिवर्तन के हैं। नव सत्येष्टि—होली रबी की पसल के अनास से हवन करने के लिये है और दिवाली खरीफ की फसल के अनास का नव सत्येष्टि है। होली पर भीष्म का हवन किया जाता है और दिवाली पर धान का। यह करके लीलों बाटी कलती हैं। और यह चिह्न हैं कृषि प्रदर्शनी का। बिलके होले होला पर बढिया हुए उसको राख से परितोषिक मिला। बिसकी लीलों दिवाली पर बढिया हुई उसे दिवाली पर पुरस्कार मिलना चाहिये। इस प्रकार दोनों पसलों पर कृषकों को उत्साहित करने और भगवान् का धन्यवाद देने के लिये नव सत्येष्टि हैं। लक्ष्मी पूजन और बुझा—पुराणों में शिव पार्वती के बुझा खेलने की कथा भी है। बिसका इस समय पर कोई साम नहीं। लीधी धात तो यह है कि वर्ष भर में यह दिन पदस्त्री का आभ

व्यय लेख पत्र तैयार करने का है तथा विजुता आय व्यय जानने का भी। जो मनुष्य आय व्यय को नियमित रखेगा उस पर लक्ष्मी भी सदा कृपा रखेगी ही। लक्ष्मी की के बढ़ाने के साधन ही है—कृषि, वाणिज्य, शिल्प, कला कौशल। यह सब बिना स्वास्थ्य के हो नहीं सकते। इस लिये प्रबोधशी चतुर्दशी को उपयुक्त दो प्रदर्शनीयों और अभावस्य को कृषि प्रदर्शनी करके रात्रि में दीपकों की शोभा में देश में लक्ष्मी की के आने की प्रतीक्षा करना और उन्हें बुलाने और स्थिर रखने के लिये बुझा (वैलेंस) को ठोक रखना कितना सुन्दर कार्य क्रम है। प्रतियदा को गोबर्द्धन—गौश्री को बढ़ाना, देश के पशु धन की वृद्धि, यह भी देश की लक्ष्मी को बढ़ाने का साधन है। गौतों में रात्रि में खास आकर कुछ दोहे पढ़ते हैं जिते हेर लगाना कहते हैं। यह रिवाज दृष्टित करता है कि इस दिन चरवाहों और गोधन की सेवा कर उसे बढ़ाने वाली को कृषक आदि प्रभा धन तथा पशु बर्द्धक कृषकों को राख से पारितोषिक मिलता था। गोधन के खिलोने आदि बनाना यह बताते हैं कि गोधन सम्मान के योग्य है। हमारे खेतों को हरा भरा बना देने के लिये गोधन बहुत उपयोगी प्रदर्शनी है। गोधन विरक्षार के योग्य नहीं मानने के योग्य है।

द्वितीया के दिन श्राद्ध द्वितीया बहिन भाइयों में प्रेम दृढ़ता बनाये रखने के लिये है। यह पारिवारिक उत्सव है। भी चित्र गुप्त भी पुराणों में लेखन कला के देवता माने गये हैं अतः यह दिन लेखकों के उत्सव का है। चित्र गुप्त नाम अन्त करण का भी है क्योंकि हमारे आचार विचारों के संस्कार अन्त करण पर पड़ते हैं। धन संधार को निष्पन्न करने वाला ईश्वर इस

अन्त करण की हृत्पुनवार ही मनुष्य को दक्ष या पुरस्कार देते हैं। चित्र गुप्त भी की पूजा वा यम की पूजा यमुना स्नान से नहीं हो सकती जैसी कि आच कल बनता में विश्वास फैला हुआ है। चित्र गुप्त भी की पूजा वा यमराज को प्रसन्न करने का उपाय है अपने को धाय में रखना, मानसिक संस्कारों को शुद्ध बनाना। इस प्रकार यह ५ दिन का पर्व है—

१ धन तेरस वा शिल्प कला प्रदर्शनी।

२ चतुर्दशी—स्वास्थ्य आयुर्वेद प्रदर्शनी।

३ दीपावली—कृषि प्रदर्शनी वा आर्थिक पर्व।

४—गोबर्द्धन—गोधन बर्द्धन पशु प्रदर्शनी।

५—पारिवारिक प्रेमोत्सव लेखन कला प्रदर्शनी।

लेखक सम्मेलन आत्म विचार पर्व इन सब बातों को विचारते हुए यह पर्व राष्ट्रीय उत्सव उदरता है न कि साम्प्रदायिक वा मतवादीत्सव यह उत्सव श्रुतु परिवर्तन के साथ बुझा हुआ है। प्रायः प्रत्येक भारतीय को यह उत्सव मनाना चाहिये। हिन्दूश्री ने सब ही सम्प्रदाय वाले इस उत्सव को मनाते हैं। मगलाचरय या दैनिक कार्य वा ईश्वर श्रुति प्रत्येक अपने अपने दृष्ट के अनुसार करता है। वैष्णव, शैव, शाक्त, सिक्ख जैन, वैदिक, पौर्णिक और समाजी सनातनी सब अपने अपने ढंग पर पूजा पाठ हृत्पि करते हैं। मकानों की शुद्धि और उजाला सब लोग करते हैं। हाँ ईश्वर और सुखलभन दो सम्प्रदाय ऐसे हैं कि भारतीय श्रुतुपरिवर्तन के विरुद्ध आचरण करते हैं। सुखलभन ईश्वर अपने मकान पुतवाता है चारै धावन भादों में ही पर्वे। ईशाहवा



(लेखक—प्रो० सुन्शीराम शर्मा एम० ए०)

तू अखिल सृष्टि का अलंकार

इस रम्य मनोरम रूपा ने पावा तुझसे श्रृंगार प्यार ॥१॥

धौ पटते ही नव बाला भी आती ऊषा ले अरुण राग ।

भोली भाली निच भोली में विकसित सुमनों का ले पराग ॥

भरती नभ में आभा अपार ॥२॥

वनराशि विराहित हरी भरी, गिरि कानन अन्तर में पैली ।

बिडने अपनी गुब्ब गरिमा से ढँक दी, मों की भोली मैली ॥

दी अँखों को अनुपम बहार ॥३॥

पद्म श्रृंगारों का सौंदर्य कहीं, अम्बर डम्बर लालिमा वहीं ।

नव पल्लव पाटल पुष्प राशि, किसमें तेरी छुवि भरी नहीं ?

निकली तुझसे सौंदर्य चाँ ॥४॥

बह स्वर्ण कान्ति, यह रत्न रूप, यह भिलमिल—१ सा प्रकाश ।

तेरी शोभा की एक लहर, तेरी सुषमा का लज्जु विकारा ॥

पाता प्रकाश तुझसे प्रसार ॥५॥

विद्युत, वाडव, दावानल में बवालामुखियों में ज्वलित ज्वाला ।

पावक के मैत्र रौद्र रूप—सब में व्यापक तू महा काल ॥

तू मृदुल भयङ्कर क्यठ हार ॥६॥

तू हरी भरी हरियाली में मेरे हरि क्यों छिपता जाता ।

तू लाली में माली बनकर फिर क्यों लोहित कण बरसाता ॥

तू अविदित गति अज्ञात सार ॥७॥

तू मूल स्रोत, तू प्रथम रेख, तू चिचिब रूप जग की बननी ।

जीवन का जीवन एक तु ही, तू प्राण चेतना ज्ञान धनी ॥

तू एक सार हम सब असार ॥८॥

का बड़ा दिन तो निश्चित है परन्तु वह कुहरे पाले के दिनों में पड़ता है ये लोग भी उन्हीं दिनों में सफ़ाई करते हैं ।

यह दोनों मत भी यदि दीपावली मनावें, मागलिक उपासना अपने मतानुसार करलें तो क्या हानि हो ?

इतनी साम्प्रतिक शुद्धि तो इन दोनों सम्प्रदायों की हीनी ही चाहिए कुछ भाई यह कहते हैं कि यह उत्सव इन्हीं दिनों में क्यों होना चाहिए और दिन रख लिये जायें तो मुसलमान ईसाई भी सम्मिलित हो जायें परन्तु इस पर विचारना यह है कि क्या इससे अच्छी तिथियाँ

प्रकाश का आनन्द लूटने के लिये अमावस्या से अच्छी तिथि और शरद से अच्छी श्रृंगार कोई हो सकती है ? फिर ये दिन क्यों हटायें जायें । और लकीर्या साम्प्रदायिकों की सकीर्याता की रक्षा के लिये परम्परागत राष्ट्रीय त्योहार को क्यों विकृत किया जाय । बुद्धि संगत तो यही है कि मत का दुराग्रह छोड़ कर युक्ति युक्त बात को अपनाया जाय । विदेशी मतों को अपनाते समय उस विदेशी की सम्कृति, और सभ्यता को स्वीकार न किया जाय। अपनी राष्ट्रीय सम्कृति को त्याग कर विदेशी न बना जाय ।



पेंसठ वर्ष के बाद

(लेखक—श्री गङ्गाप्रसाद उपाध्याय)

यह कहना भूल है कि आ. स प्रभावहीन हो गया है। वह तो निरंतर आगे बढ़ रहा है और अपने उद्देश्य में अधिकाधिक सफलता प्राप्त करता रहा है” हम निराशा के दृष्टिकोण को बदलें फिर हम वास्तविकता को जान पायेंगे। ये ही विचार इस लेख में आपको मिलेंगे।

—सम्पादक



स दीर्घा लम्बा की रात्रि को बगत् का सूर्य श्रुषि दयानन्द हमारी आँसू से ओझल हो गया उसके पश्चात् चौसठ दीपमालिकाये आइ और चली गईं। अब वैठवीं आ रही है, इन पेंसठ

वर्षों में नूर मण्डल पर कितना परिवर्तन हो गया इनका अनुमान करना सुगम नहीं है। पृथ्वी तो लगभग वैसी ही बनी हुई है। सूर्य मण्डल तथा अथ तारागण्य भी वैसी ही हैं। भौगोलिक परिस्थितियों में कोई भेद नहीं पड़ा अबमेर के जिह आना सागर के तट पर श्रुषिवर की अस्थियों को समाधिस्थ किया गया वह भी उसी प्रकार से वह रहा है। परन्तु भारत की धार्मिक सामाजिक और नैतिक परिस्थितियों में बहुत बड़ा अन्तर हो गया है। अश्रेयों से शासित भारत के स्थान में आज स्वतन्त्र भारत है। हमारे गवर्नर जनरल हमारे मिनिस्टर, हमारी चारा समा हमारा अपना शासन। आज इंग्लैंड में हमारे महा मन्त्रों का उसी प्रकार स्वागत हो रहा है जैसे ६५ वर्ष पूर्व इंग्लैंड के महा मन्त्री का किसी अन्य देश में होता।

अधिक रुचि बढ़ गई है, आज चाहे स्वामी दयानन्द की भांति कोई वेदों को ईश्वरीय ज्ञान न मानें परन्तु उनको



लेखक

आज अश्रेयों भाषा बनी रही है। आर्यभाषा का प्रचार बढ़ रहा है। आज मटरा के स्थान पर हम मथुरा और कौनपुर के स्थान में कानपुर भिखने लग गये हैं पहले जो टोप का मान था वह अब सहर की नाँवो टोपी का हो गया है। संस्कृत अध्ययन की ओर

शहरियों के गीत मानने को तैयार नहीं। हमारी बड़ा वैदिक साहित्य की ओर बढ़ती जा रही है। यद्यपि आज भी अज्ञात विद्यमान है, परन्तु लोगों के मनो से वह उठ चुका है। सामाजिक सुधारों की ओर से उतनी उदासीनता नहीं है। विश्व युद्ध के कारण ५० वर्ष पूर्व

आर्य लोग कुओं पर नहीं चढ़ने पाते थे उसके अनुकूल बनारस के पंडित-वर्ग की व्यवस्था प्राप्त हो चुकी है। हमारी भारतीय सरकार का त्रातीय ऋंडा वैदिक अरुण्यता को प्राप्त नहीं हो सका तथापि २००० वर्ष पीछे इटकर अशोक के चक्र को धारण कर चुका है। इसका अर्थ यह है कि इन पैंसठ वर्षों में भारत कहीं से चला कर कहीं आ गया, और स्वामी दयानन्द और संसार के बीच में जो बहुत बड़ी खाई उपस्थित थी वह कहीं तक घट गई। इस खाई को पाटने में आर्य समाज का कितना हाथ है यह बताने की आवश्यकता नहीं। केवल जितनी वरुणा में सत्यार्थ प्रकाश अबतक छुप चुका है उसी की ओर दृष्टि डालिये और सत्यार्थ प्रकाश रूनी बढ़ी नहर से छोटी छूटी नालियाँ या बड़े बड़े नाले निकल कर दूरस्थ खेतों तक पहुँचेंगे है उन का भी थोड़ा सा अनुमान लगाइये। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपके हृदय के भीतर आर्य समाज के सस्थापक के लिए अधिक भ्रडा

उत्पन्न होगी। आपका मन नहीं आयाओं से परिपूरित होगा और आप नये उरगाह से काम कर सकेंगे। उस बड़ी खाई के तट पर खड़े होकर एक दृष्टि डालो और देखो कि रहले कितनी चौड़ी खाई थी और अब कितनी रह गई है। और अब यह खाई कैसे भर सकती है। जो लोग हमारे पिछले २५ वर्ष के काम को अर्भिचित समझ कर निराशा को बढ़ाने का काम कर रहे हैं वह इस खाई को और चौड़ा बना रहे हैं। जो भूत और वर्तमान में कस्तविक तुलना नहीं कर सकता वह भविष्य के लिए अक्शा पुरोगम तैयार नहीं कर सकता। मैं इस लेख में वर्तमान युग की नई समस्याओं का उल्लेख नहीं करना चाहता। मेरी भारणा है कि दृष्टिकोण के बदलने से भविष्य का मार्ग अधिक स्पष्ट हो जायगा। परिस्थिति का सामना करने और नये मार्ग का खोज निकालने के लिए उदारता और वीरता की आवश्यकता है।

“आर्यमित्र प्रकाशन लिमिटेड”

विशेष सूचना

आर्य भाइयों तथा कम्पनी के भागीदारों को यह जान कर हर्ष होगा कि—

(१) १५ अक्टूबर १९४८ को कम्पनी के वर्राक पत्र (प्रास्पेक्टस) की रजिस्ट्री हो गई है, जिसका सार अन्वयत्र दिया जाता है।

(२) ३ अक्टूबर १९४८ को कम्पनी के कार्यालय, ५, हिल्टन रोड लखनऊ में डाइरेक्टरी की बैठक हुई जिसमें भागीदारों को हिस्सों का विभाग (allotment) कर दिया गया। शीघ्र ही शेयर सर्टीफिकेट छप कर भागीदारों के पास पहुँचेंगे।

(३) डाइरेक्टरी की उपयुक्त मीटिंग में यह भी निरचय हुआ कि रजिस्ट्रार से कायें आरम्भ करने की आज्ञा शीघ्र प्राप्त की जाय और आरम्भ में साप्ताहिक आर्यमित्र अरुद्धा बनाया जाय, तथा पुस्तकों का प्रकाशन और जाँच बक भी किया जाय।

जब तक दैनिक पत्र निकालने के लिये प्रस्तावित १॥ लाख की धन राशि एकत्र होगी, उपयुक्त काम किये जावेंगे।

(४) लगभग १॥ लाख के हिस्से बिके हैं, ६०,०००) नकद जमा हो चुका है। यह आर्य प्रतिधि समाज के ३५,०००) के हिस्सों के अतिरिक्त है जिनके धन-रुपरूप धमा का भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेक्ष कम्पनी को मिलेगा।

मैनेजिंग डाइरेक्टर

ऋषि ऋण शोध

ले०—भी प० रामदत्तजी शुक्ल एम-ए० एडबोर्डेट

“ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योन्वानः स नो महान्” मनु.

ब्रह्मा से लेकर जैमिन पर्यन्त ऋषियों की पावन परम्परा को आर्ष परम्परा कहा जाता है, दूसरे अर्थ में इस पुणित परम्परा को ही वैदिक ऋकृति अथवा आर्ष संस्कृति कहा जाता है। परम्परागत इस ज्ञान निधि के प्रतिष्ठापक और गुरु ऋषि परम्परा से प्रवाहक तपोधन महा माओ को ऋषि, महर्षि और ज्ञाननिधिवा भी कहा जा सकता है। अपने आधिभाष काल में इस विश्वजनीन कल्याण साधक महान् ज्ञानराशि को देशकालिक धर्मवा विपरीत परिस्थिति के कुप्रभाव से त्रिलुप्तप्राय और विस्मृतप्राय देख कर ऋषयश्चक्रण शोध के निमित्त सम्पूर्ण आयु पर्यन्त अलौकिक अध्यवसाय करने वाले स्वनामधन्य महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बिरकाल के परभाव एक बार पुन आर्यजाति के उत्कर्ष, वैदिक धर्म की भेद्यता, आर्ष संस्कृति की महत्ता, भारतीय सभ्यता की व्यापकता, आर्यावर्ष की विश्वजनीन राष्ट्रीयता और वेदज्ञान की सार्व कालिक उपादेयता का अपनी असाधारण प्रतिभा के साथ प्रतिपादन किया। उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे चरणों में दुर्भाग्य से भारत राजनीतिक दासता में सर्वथा आवल्ल होने के कारण अपने स्वरूप, अपने धर्म, अपनी सभ्यता, अपनी परम्परा, अपनी रीतिनीति, अपने आचार व्यवहार, अपनी जातीयता, अपनी राष्ट्रीयता, अपने ऐतिहासिक उत्कर्ष और अपनी उत्कृष्ट भवनाओं को प्राय विस्मृत कर चुका था। ऐसे सूत्रोपेय अज्ञानान्धकार के दारुण काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अज्ञानान्ध बयोतिस्वप्न के

रूप में प्रकट होकर भारतीय आर्यों और उनके द्वारा समस्त मानव जाति से वेद का अमर सन्देश सुनाया। एक बार पुन दिग्मूढ़ विमुग्ध मानव को 'विश्ववारा वैदिक संस्कृति' की ओर आकृष्ट करने का देवदुर्लभ प्रयास किया। वेद महर्षियों के चिर सांचत ऋषिऋण के शोध करने का ऐसे युग में सफल प्रयत्न किया कि जब किसी प्रकार की सुविधा अथवा सौकर्य उपलब्ध होना सम्भव ही नहीं था, क्योंकि बिरकालिक कोढ़ की भांति राजनीतिक दासता के साथ विदेशियों के धर्म, सभ्यता संस्कृति, परम्परा, शिक्षा, साहित्य, इतिहास, भाषा और भाव सभी का असह्य भार भारतीयों के अज्ञान कर्णों पर लादा जा रहा था तो दूषण और पतदेशीय रूढ़ियों, अज्ञानपरम्पराओं मिथ्यावादों, कुपणों, परस्पर विरोधी सम्प्रदायों और विरोधी विनाशों के घातक कुप्रभावों से देश व्यापी दयनीय और सर्वथा दुर्निवार्य बाधाओं के नीचे पिसे जा रहे थे न कोई मांग दृष्टिगोचर होता था और न कहीं कोई पथ प्रदर्शक ही दिखाई पड़ता था। तथापि औभाग्य से महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हमको उस समय में भी सतर्क किया, सावधान किया और वैदिकधर्म के अमर उपदेश से पुन जीवित करने के लिये अनुपायित किया। हम जग गये और महर्षि प्रदर्शित वैदिक संस्कृति के विशाल राज पथ पर अग्रसर होने के लिए, अद्भुत साहस को प्रदर्शित करने के लिए प्रोत्साहित भी हुये। इतने ही में विचित्र विधि गति के एक ही एकमण्य में अर्ध १८८३ की

अभावस्था को अकस्मात् दिव्य दीप द्यानन्द ने हम सबको आर्ष प्राण से अनुप्राणित कर स्वयं कैवल्य का अनुसरण किया। जिस प्रकार दी-मासिका के कोटि र दीपक अपनी कोमल बत्ती और रिंग्म स्नेह से अमा के गाढ़ अक्षकार को अपनी पवित्र ज्योति से प्रकाशमान करते थे, करते हैं और करते रहेंगे, ठीक उसी प्रकार दिव्य दीप द्यानन्द रूपी ज्ञान ज्योतिस्तम्भ का प्रभाव भी सदा सर्वदा आर्ष प्राण मानवों के हृदयाकारा को दिव्य ज्योति से ज्योतिष्मान् करता रहेगा अस्तु—

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन को परिमित अनुभव करते हुये अपने जीवन कार्य की सुपूर्ति के लिये आर्ष प्रज्ञापूर्वक अपना सुसंगठित रूप से प्रतिनिधित्व कर सकने के लिये सन् १८७५ में विरविक्रमात आर्यसमाज को और अमर अन्देशों के अद्भुत संग्रह प्रमथ ब्रत्याधे-प्रकाश का निर्माण किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन के ५६ वर्षों में से लगभग ४० वर्ष उच्च महान् कार्य की तैयारी में अर्ध तपः साधना के धाय लगाये कि जिस को वह शेष १६ वर्ष तर्क यथाराध्य करने के प्रयास में संलग्न रहे। देशवालिक विपरीत परिस्थिति, समानधर्मा साथियों और सहायकों का नितान्त अभाव, चारों ओर विरोध और बाधाओं का बाहुल्य और जिनके कल्याण के लिये सतत तन्मयता से व्यस्त रहे वहा प्राण तक लेने के लिये लगातार सचेष्ट। ऐसी असाधारण भीषण परिस्थिति में भी महर्षि ने अध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, वैधानिक संगठनात्मक और शिक्षादि के विषय में जितना शक्य और व्यापक प्रभावोत्पादक कार्य किया है उतना एक पूरे जीवन में होना कठिन है। मानव जीवन का ऐसा कोई पार्श्व शेष नहीं रहा कि जिसे के सम्बन्ध में महर्षि ने अपनी विचक्षण प्रज्ञा द्वारा पथप्रदर्शन न किया हो। महर्षि के उत्तराधिकारियों ने आर्यसमाज के शरीर को निःसन्देह अविच्छादिक अपुष्मान् बनाने में कोई त्रुटि नहीं की, और अपने शरीर से आर्यसमाज न केवल भारत में ही अपितु

समस्त सभ्य संसार में सुविक्रमात हो गया। समाज सुधार, शिक्षा प्रचार, रूढ़िवाद निराकरण, अन्ध-परम्परा उन्मूलन, समाज संगठन और धर्मप्रचार आदि-आदि लोकोयोगी कार्यो में निःसन्देह आर्यसमाज ने लगभग ५० वर्ष तक श्रेष्ठ समस्त भारत का पथप्रदर्शन किया। समाज संगठन और आन्दोलनात्मक प्रचार की दृष्टि से आर्यसमाज क्यातिमान् बना, यह तौरव की बात है।

इवर राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय महासभा ने पिछले ३० वर्षों से त्रिसंयोज और उग्रता से सुसंगठित कार्य किया और भाग्यपुरुष महात्मा गांधी के नेतृत्व में शान्तिमय एवं सत्य और अहिंसात्मक आन्दोलन से, पशुबल से सुपविजित संसार के सबसे पुराने और सबसे अधिक शक्तिशाली साम्राज्यवादी ब्रिटेन की राजनीतिक दासता से भारत को चिरकाल के परचातु विमुक्त कर दिया। इस आश्चर्यजनक विजय के उपरान्त राष्ट्रीय महासभा की साख देश और विदेशों में इतनी अधिक बढ़ने लगी कि जिसके कारण देश की विभिन्न राजनीतिक संस्थाएँ या तो नाम शेष हो गईं, पथवा अपना र कायाकरूप करने के लिये परिस्थितिवश किन्तु अविच्छादपूर्वक विभवा हो गईं। इस प्रकार राजनीतिक माम नितान्त अवरुद्ध अनुभव करके सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में पदार्पण करने के लिये तेसे उपाक्रम इवर उबर होने पर आरम्भ हो गए किन्तु आर्यसमाज अपने जन्म से ही एक धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक एवं शिक्षाप्रदायक आयोजन रहा है इसलिए इस युगान्तर में भी आर्यसमाज को अपने उद्देश्य, प्रयोजन, विचारधारा, साधनोपाय, दृष्टिकोण और मनोवृत्ति में कि-नी प्रकार का मौ-लिक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं हुई। इतना ही नहीं आर्यसमाज के लिये तो ऐधी अनेक सुविधाएँ अपने देश में अपना राज होने से उत्पन्न हो गई हैं कि जिनके कारण देश के कोने-कोने और विदेशों में भी वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, वैदिक सभ्यता, वैदिक साहित्य और वैदिक आचार विचार प्रतिष्ठापित करने में विशेष सुविधा हो रही है। यह बात और है कि देशाकालिक प्रवृत्त और

समुपस्थित सुविधाओं के होते हुये भी आर्यसमाज अपनी अद्वैतशिक्षा, संकुचित भावना, विचारसंकीर्णता, प्रमाद और अकर्मब्यवस्था से अबसरोचित व्यव्यवसाय में न करे और आर्योचित उत्साह के साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्पष्ट निर्दिष्ट ऋषिश्रेष्ठ शोध कार्य में सलग्नता के अर्थ में लगे

देश के प्रत्येक अग्रणी नेता, विद्वान् वैज्ञानिक साहित्यिक, कवि, कलाकार, शासक, उद्योगपति और सार्वजनिक प्रमुख कार्यकर्तागण एक स्वर से लगातार भारतीय संस्कृति, भारतीय परम्परा, भारतीय दर्शन, भारतीय धर्म, साहित्य, भारतीय आध्यात्मिकता, सत्य और अहिंसादि के सार्वभौम और सार्वकालिक सिद्धान्तों को ध्वनित और पतिध्वनित कर रहे हैं। इस आन्दोलन से देश और विदेश के विचारशील प्रभावित भी हो रहे हैं, और आज उनकी उत्कट अभिलाषा भी हो रही है कि वह स्वयं उद्युक्त आदर्श सिद्धान्तों के विषय में साक्षात् परिचय प्राप्त करके आर्य जीवन के अनुरूप अपने न जीवन बनाने का प्रयास करें। परन्तु इसके लिए जिस लक्ष्यकोटि के निरिषित और विस्पष्ट ग्रन्थों की आवश्यकता है, उनके निर्माण का अभी भारत में कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। न केवल भारतीय भाषाओं में अपितु संसार की सभी ज्ञात भाषाओं के साहित्य में भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, शिक्षाप्रणाली, आचार व्यवहार और आध्यात्मिक आदर्श जीवन विषयक छोटी बड़ी प्रामाणिक पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है। माय ही मासिक पत्रिकाओं की भी उनी प्रकार आवश्यकता है कि जिसके द्वारा देश और विदेशों में वैदिक विचारधारा का प्रचार हो, और वर्तमान युग में आवश्यक प्रश्नों के समाधान करने के लिए हम अपने विचार प्रस्तुत कर सकें, और दूसरे के दृष्टिकोण को समझकर उनसे यथोचित सम्पर्क स्थापित कर सकें, क्योंकि विज्ञान के प्रभाव से अब देशकालिक दूरी लघोत्तर दूर ही होती जा रही है। प्रत्येक जाति और राष्ट्र के लोग परस्पर विचारों का आदान प्रदान ऐसे ही सुविधा के साथ कर रहे हैं कि जैसे एक देश के लोग किया करते थे। भारतवासियों को जो इन

सुविधाओं से और अधिकारिक लाभ उठाने की आवश्यकता है इन क्षेत्र में आर्यसमाज के प्रमुख विद्वान् अनन्य मनस्कता के साथ लग जवें तो अ पेक्षाकृत इनको अधिक संख्यता होना सम्भव है

ग्रन्थ निर्माण कार्य से भी अधिक महत्त्व का कार्य है हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज और उनका अभिलम्ब सुन्दर प्रकाशन, इस कार्य के लिए जहाँ प्रचुर धन की आवश्यकता है वहाँ उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उन तपोवन विद्वानों की भी आवश्यकता है कि जो आजन्म इस कार्य में अपना पूरा जीवन खपाने के लिए तैयार हों प्रतु संभान करके ऐसे व्यक्तियों को कार्य में लगाया जाय और आजीवन उनके जीवन निर्वाह का समुचित प्रबन्ध किया जाय धीमाय से आज भी सहस्रों हस्त लिखित ग्रन्थ देश के पुस्तकालयों में और व्यक्तियों के घरों में पड़े हुए हैं कि जिनको न कोई देखने वाला है और न उनको प्रकाशित करने का कोई प्रबन्ध हो सका है। इस महान् कार्य की पूर्ति के लिये केन्द्रीय सरकार, प्रांतीय सरकारें, विश्वविद्यालय, बड़ी र सभाएँ और विद्युत् प्र भीपति महासभा अपने न बन से राष्ट्र की श्रेष्ठि कर सकते हैं। आर्यसमाज इस कार्य में प्रमुख भाग ले सकता है। इसी कार्य से मिलता हुआ कार्य है उन वेदमूर्तियों का प्रबन्ध कि जो आजतक असहाय्यवस्था में रहते हुए भी पारम्परागत वेद की शाखा प्रशासकों को अपने कण्ठ में धारण करते आए हैं। आज उनकी जो अत्यन्त दयनीय दुर्दशा है, उसका समुचित बर्णन शब्दों द्वारा सम्भव नहीं है किन्तु जिस वेदनिधि को इन लोगों ने अमतक जीवित रखने का सफल प्रयास किया है, वह कार्य वस्तुतः असाधारण महत्त्व का है।

ऋषिश्रेष्ठ शोध कार्य के लिये जहाँ लक्ष्यकोटि के मौलिक ग्रन्थों की आवश्यकता है, वहाँ उससे कम महत्त्व उन जीवित ज्ञात तपोवन और गुरुवान् विद्वानों का नहीं है कि जो अपनी भोजपूर्ण वाणी के द्वारा देश और विदेशों में वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, वैदिक सभ्यता और वैदिक परम्परा का प्रभाव पूर्ण प्रचार कर सकते हों। अभी तक समस्त भारत में इस प्रकार के विचारक

प्रचारकों को आवश्यक शिक्षित और दीक्षित बनाने के लिए कोई प्रबन्ध सरकार या आर्बजनिक् संस्थाओं की ओर से नहीं है। इसका कटु परिणाम यही होता रहा है कि जब संसार के दूसरे लोग अपनी मिथ्या भावनाओं, अतथ्य विचारों, भ्रम पूर्ण भावनाओं और घातक विरवाओं का सुसंगठित रीति से लगातार प्रचारकों को भेज कर भारतीय संस्कृति, धर्म, सभ्यता और परम्पराओं के विरुद्ध प्रचार और आन्दोलन करते रहने हैं, तो हम अपने २ स्थानों पर बैठे हुए ही मनमोदकों से

अपनी रुमि करते रहते हैं। इस कार्य को भी सरकार और सार्वजनिक संस्थाये गमान रूप से कर सकती हैं। प्रायः समाज के लिये इम दिशा में भी बहुत कुछ कर्त्तव्य है।

देश में भी बौद्धिक तल के अनुगार साहित्य निर्माण का बड़ा कार्य अब तक नहीं के बराबर ही हो सका है। सांस्कृतिक और धार्मिक साहित्य निर्माण कार्य आर्यसमाज से अच्छा और शीघ्र कदाचित् अन्य संस्था न कर सके। क्या प्रायः समाज अपने ऋषि के ऋण का शोध करेगा !



तमसो मा ज्योतिर्गमय

[श्री शम्भूनाथ विह]

बुझी न दीप की शिखा अभीम में समा गयी !
अमन्द ज्योति प्राण-प्राण बीच जगमगा गयी !

अथाह प्रेम के प्रवाह में पली
अमर्त्य बर्तिका नहीं गयी छली
असंख्य दीप एक दीप बन गया
कि खिल उठी प्रकाश की कली कली ।

घनाम्बका जल गया स्वयं, नहीं हिली शिखा
प्रकाश-धार से तमस भरी धरा नहीं गयी !

अकम्प ज्योति-लम्ब वह पुरुष बना
कि जड़ प्रकृति बनी विकास-चेतना
न सत्य-बीज सृष्टिका छिपा प्रकी
इगी, नदी, फनी अरूप कल्पना ।

न बँध सका असत्-प्रमाद-पारा में प्रकाश-तन
बिमुक्त सत्-प्रभा दिगन्त बीच मुस्करा गयी ।



“स्वराज्य हो तो गया पर स्वसंस्कृति व स्वसभ्यता के बिना यह कितना सुखदायक होगा ? पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित शासक वर्ग से कहाँ तक आशा की जाय ? ऐसे समय में आर्य समाज किस मांग का अवलम्बन करके राष्ट्र निर्माण में सहायक हो सकता है ? अबवा अपनी स्थिति को सुरक्षित या समुन्नत बना सकता है । माय लेखक ने इसी विचार को लेकर कुछ बातें प्रस्तुत की हैं जो विचारणीय हैं ।

सम्पादक

अग्ररेख यहाँ आये और हम रे घर की पूट का फायदा उठाकर उन्होने यहा अपना साम्राज्य प्रस्थापित किया और लगभग दो सौ वर्ष हमारे सिर पर रहे, खूब रोव दोष से रहे और गये भी ऐसे कि सारा चकित है । पर बाते जाते भारत को ऐसा निबल कर गये, दूँधीभाव के कीटाणु इस प्रकार पैना गये कि कोई पुण्य ही रोप ये कि भारत बच गया, ईश्वर की कृपा ही थी कि अपने आप को गमाल सका । आज जिज्ञ प्रकार के राजे महाराजे एक सूत्र में ओन प्रोत होकर भारत शष में समिलित हैं कहीं दो सहस्र पूर्व इस प्रकार का सागठन रहता तो भारत की भी दासता का अनुभव न कर सकता । इसके भी दिन फिरने थे, फिर गये । अब इसके भी दिन आने ये आगये । भारत स्वतन्त्र हो गया, खुला श्वास प्रश्वास लेने लगा । यद्यपि आर्य समाज ने समष्टि रूप से स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भाग नहीं लिया तथापि आर्य समाज ने स्वतन्त्रता के युद्ध में सपर मैना का काम तो किया ही है, और सारा को यह बात माननी पड़ेगी । स्वतन्त्रता के युद्ध में व्यक्तिगत रूप में, सहजों की सख्या में सम्मिलित रूप में जो कार्य किया उसका भी अपना एक इतिहास है, जिसको कोई कभी लिखेगा ही ।

स्वतन्त्रता के मिलने से श्वा० दयानन्द की हादिक इच्छा सफल हुई । समझ लीजिए कि स्वामी जी का आशा मिशन सफल हो गया । अक्षय आये को पूरा करना आर्यों का काम है । वह यह कि उसको प्राचीन धर्म तथा प्राचीन संस्कृति पर बल देकर सब ध्यान इसी ओर देना पड़ेगा । उनका पिछला तप तो कई अशों में सफल हुआ । जो त्याग सप विपरीत मार्ग में लखा था

स्कूल कालेजों की, स्थापना अग्ररेखी शासन चक्र के कल पुर्जे तैयार करने में लगा था वह तो प्राय नष्ट हो चुका था । लक्षों करोड़ों रुपया इन स्कूल कालेजों पर खर्च हुआ था । अब अग्ररेखी का मोह दूर होना चाहिए । इस दिशा में एक पई भी खर्च नहीं होनी चाहिए । भारतसय नवीन पद्धति की शिक्षा दीक्षा को अपने दम



लेखक

पर समहालेगा, चलायेगा । उसको देशोपयोगी बनायेगा । आर्य समाज तो अपनी समस्त शक्ति प्राचीन आर्य संस्कृति के प्रचार तथा प्रसार में लगाये ।

इसलिए कि हमारी विधानपरिषद् ने इस राज्यपद्धति को कुछ अग्ररेखी प्रजातन्त्रपद्धति कुछ अमेरिकन

पद्धति पर चलाना स्वीकार किया है। इस पद्धति का किसी धर्म विशेष, भाति विशेष, समुदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं रहेगा। भारत राघ में ८६ पीछदी हिंदुओं आर्यों के होते हुए भी इसका आराध, हिन्दुराज्य नहीं रहेगा। सबका धम रहेगा अपने अपने घरों में और राज्य में रहेगा राष्ट्रधर्म। सबको अपने अपने धर्म पालन करने, मनाने में स्वतन्त्रता रहेगी। पर कोई धर्म दूसरे धर्म बाकों के साथ खुलमखुला छेड़ा खान न करसकेगा। खुले मैदान कोई किसी का खन्डन मन्डन न कर सकेगा। न खुला चैलेत्र देकर, लालकार कर शास्त्राथों का प्रखाड़ा ही चला सकेगा। भारतीय समाज न काल बध आयी हुई सुरीयों को तो धारा सभा की नवनिर्मित धाराएँ ही दूर कादेंगी इसलिए जिस नाम को भारत राघ नहीं कर सकेगा उसको आर्य समाज पूरा करेगा, पूरा करना होगा। यदि आर्य समाज यह नहीं कर सकता तो इतिहास के पजों म मे अपने नाम को मिटने हुये देखने के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि आर्य समाज यह न कर सकेगा त हम जिनको हिन्दू, सनातन धम कह कह कर हँसते हैं, उपहास उड़ते हैं वे आर्य समाज क मध्यम मार्ग पर आकर काम सम्हालेगे। आर्य समाज का पूर्व का त्याग तप समाप्त प्राय है। अब नये िन्दे से उल्टक त्याग तथा तप करना पड़ेगा। दुगुना त्याग तप करना पड़ेगा, तब आर्य सांस्कृति का उद्धार होगा और पूरा पूरा बल लगाया गया तो किसी समय भारत राघ ही आर्य सांस्कृति के परम मकों के हाथों में आसकता है।

अब तो भारत राघ ऐसों के हाथों में है और अभी दस पन्डह वष ऐसों के हाथों में रहेगा जिनको, अगरेजों के चले जाने पर भी, अगरेजी तथा अगरेजी पद्धतियों से मोह रहेगा। क्यों कि शासन चक्र ही ऐसा है। अगरेजों को भारत के अगरेजी शिक्षा में पालित पोषित लोगों ने ही निहाला। जैसे विष को विष से उतारते हैं, जैसे काँटे को, पास सुई न हुई तो काँटे से निकालते हैं सो वही बात हुई। अगरेज गुरुओं की सिखाई हुई विद्या उन्हीं को उलटी पड़ी और भारतीयों को पली। “विषस्य विषमोषधम्”

यहै, तथा

“कण्टकेनैव कण्टकम्”

एकि चरितार्थं दुई ।

विष से विष तो उतर गया पर अभी जो पहिले विष का अरर बचा हुआ है उसको उतारना आर्य समाज का काम है। उसके पास उपाय भी है पर यदि वह उसको काम में न लाये तो और बात है।

आर्य समाज अब स्कूलों और कालेजों पर व्यर्थ धन न खर्च करे, न परिश्रम करे। उसको तो सब ऐसे काम करने चाहिए जिन्से भारतीय जनता पारचात्य सभ्यता तथा सांस्कृति के पजे से बच कर “स्व” को राभ ले यही मैं इस समय कह सकता हूँ। स्वतन्त्रता के आते ही “स्वराज्य” हो गया पर स्वसभ्यता तथा स्वसांस्कृति के राफक से शून्य ‘स्वराज्य’ भी हमको यथार्थ सुल देसकगा, इसमें सन्देह है—

महर्षि की इच्छा

सर्व सत्य का प्रचार कर सबको ऐक्य मत में कर, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त कराकर सबसे सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभि प्राय है। सर्वशक्तिमहान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तबन्नों की सहायुक्ति से यह सिद्धांत सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिसमें सबलोग सहज से धर्म अर्थ काम भोद की विधि कर के सदा उजत आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

× × ×

वेद अध्यातु जो २ वेद में करने और छोड़ने की विधि है उस २ को हम यथावत करना और छुड़ाना मानते हैं। जिस लिये वेद हम को मान्य हैं इस लिए हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को, विशेष आर्यों की एकमत्य होना चाहिये।

आचार्य दयानन्द



नारी जाति पर ऋषि दयानन्द का ऋण

(भीमती विज्ञानशाला जौहरी, बी० ए०)

“भारत माता की जय” का नारा लगाने वाले अपनी कल्पना में मिट्टी और पत्थरों के डेर, पर्वत और उपत्यका, नदी और नालों की विजय की ही भावना करते रहे हैं। “भारत माता” शब्द का अन्तर्निहित भाव व्यक्त करते हुए भारत सभ के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने एक बार अपने भाषण में कहा था कि इस शब्द से हमारा तात्पर्य मिट्टी पत्थर से नहीं वरन् देशवासियों से है।

परन्तु इस देश को “भारत माता” के नाम से ही क्यों गौरवान्ति किया गया ? “भारत को” पश्चात्य देशों के समान पितृ-देश Fatherland क्यों नहीं पुकारा गया ? क्यों सदा मातृ भूमि की गुणगलियाँ गाई जाती हैं ?

आर्य सङ्कृति में माता को सर्वच्च महत्ता दी गई है। हिन्दू काल में नारी का स्थान उस गौरव के आसन से गिर कर शूद्र और गँवर के स्तर पर आ गया था। वैदिक काल में घोष हुआ—“मातृमान्, पितृमान्, आचार्यमान् पुरुषो वेद” और ? दूसरे युग ने कहा ‘स्त्री शूद्रो नाधीयताम्’। कितनी विषमता है दो सङ्कृतिओं में ?

आज जो लोग हिन्दू सङ्कृति और आर्य सङ्कृति का समन्वय करना चाहते हैं वह या तो आर्य वचन करते हैं अथवा ससुर को धोखा देते हैं। जब इस देश में इतना प्रभूत अविश्वाम्भकार छाया हुआ था कि हमारे बड़े २ महात्मा भी, टोल, गँवर, शूद्र, पशु नारी,” का आलाप करते थे, जब शताब्दियों की दासता से जकड़ी जाकर नारी जाति परदा और कुप्रथाओं में पिछी जाती थी, जब उसका एक मात्र क्षेत्र जेल के समान घर की चहार दीवारी तक दी परिमित रह गया था, तब प्रमात की स्वर्णिम ऊषा के समान सिन्धु उद्योति का प्रसार करते हुए भारत के गहन तमान्द्वन्द्वित्व पर महर्षि दयानन्द का आधिभवि हुआ।

ऋषि के जीवन चरित्र को जिन लोगों ने पढ़ा है वह जानते हैं कि किस प्रकार एक बार राजस्थान का परि भ्रमण करते हुए एक नग्न कन्या के सम्मुख आ जाने पर ऋषि ने अपना शिर अवनत कर लिया था। कारण पुरुष जाने पर उन्होंने उत्तर दिया था कि मातृ शक्ति के प्रति श्रद्धा से नत होकर उन्होंने ऐसा किया। ऋषि ! वह तैरी उदात्त भावना क्या कहीं और दिखाई देनी है ? समानाधिकार के इस युग में द्वेष से प्रेरित होकर हम यह भूल गये हैं कि नारी का स्थान हमारी सङ्कृति में पुरुष से उच्चतर है। मातृ जाति समानाधिकार की ही अधिकारिणी नहीं है वह समाज में विशेष सम्मान, विशेषाधिकार भी पात्र है।

ब्राह्म समाज का सती प्रथा को विनष्ट करने का प्रयत्न श्लाघ्य अवश्य था और वैसा ही है हमारी वर्तमान समाज व्यवस्था को समानाधिकार के सिद्धांत पर ढालने का प्रयत्न। पर तु वह उस स्थिति से कहीं निम्न कोटि का है जिसकी रूढ़ि रेखा आर्य सङ्कृति में परि लक्षित होती है। राजा दशरथ के द्वारा जनबास को अज्ञान कर महारानी कौशल्या भीराम को आदेश करती हैं कि पितृ के वचन से माता का वचन अधिक माननीय है अतः मैं आदेश करती हूँ कि न आओ, यह सब वाल्मीकि राम यज्ञ में मलेगा तुलसीकृति में नहीं।—

जिगने भी सुधार आर्य समाज में दृष्टि गोचर होते हैं उन सब के आदि प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ही थे। नारी जाति के प्रति उन्होंने क्या उपाकार नहीं किए; शिक्षा प्रसार, स्वतंत्रता प्रतिपादन, बाल विधवा का पुनः विवाह, पदों, बाल विवाह आदि का निषेध, कौन सा पक्ष ऐसा है जो उन्होंने छोड़ दिया। कदा जाता है कि आज समाज ने इन सब बातों को अपना लिया है परन्तु कितने संकुचित और विकृत रूप में। इन को व्यापक बनाने के लिए समाज का पुनर्निर्माण होना चाहिए।

न्यायिकाद से उदकर ऋषि दयानन्द ने संस्कृति

का आचार 'धैर' को घोषित किया, वह ईश्वरीय ज्ञान को स्वयं शब्दों में आदेश करता है—

“सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वशुरा भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अग्नि देवसु ॥

शु० १०।८५।४६

हे बंधू ! तू ससुर के लिए महाराणी हो, सास के लिए महाराणी (सम्मान का पात्र) हो ननदों के लिए महाराणी हो और देवों के लिए भीरा पक्षी हो। कौनसा


धर्म मंत्र है जो नारी को यह गरिमा देता है ?

आज टीवाली के दिन, ऋषि के निर्वाण दिवस पर वृत्तज्ञता के भावों से भर कर इस महान् आत्मा के प्रति स्त्री जाति के और से मैं भद्रावलि अर्पित करती हूँ, जिसने नारी जाति की युगो की दासता के बन्धन को काट ही नहीं दिया वरन् उसे माता के गौरवाचित आसन पर पुनः प्रतिष्ठित किया।

रक्तवर्धक स्फूर्तिदायक और सुस्वादु

डाबर प्राक्षासव

विशेष आचार्य के लेख है (१) रक्त विलासक
कारण हृदय होता है। (२) कर्तव्यता पर टीका
है। (३) कवि और पुरुष शक्ति है। (४) रक्त
का और शक्ति विलास है। (५) कविता
और कविताएँ ए टीका है। (६) कविता
कविता और कविताओं की कविताओं में पद्य
कविता होता है। (७) पद्य कविताएँ
कविता विलास है।



डाबर (डा०एस०के०बर्मन) लिमिटेड, कलकत्ता।

भारतीय संस्कृति की द्विविधा

(अनु. - भी राजेन्द्रकुमार जी पी० ए०)



भारतीय संस्कृति के अग्रदूत थे स्वामी दयानंद सरस्वती, आर्य समाज और उसके आदिपुत्र के नेता, बंगाल में राजा राममोहन राय, ब्राह्म-समाज और उसके नेता, बम्बई और महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज और उसके नेता, त्रिबोसोफिकल सोसायटी और उसके नेता, सर सैयद आहमद खॉं और अलीगढ़ आंदोलन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, व कमचंद्र चटर्जी और बंगला के उद्धार का आंदोलन, उर्दू हिंदी और भारत

दृष्टिकोण से, लिये हुए स्कूल और कॉलेज के इतिहासों आदि में भी इस विद्रोह के प्रति एक प्रखण्ड और गुप्त सहायुर्भूति झलकती है क्योंकि इसके द्वारा ही भारत में ब्रिटिश सत्ता का स्थापन हुआ। आश्चर्य है कि किसी ने भी आज तक इस विद्रोह को भारत की उन्नति का बाधक नहीं बताया। अब हम यह अनुभव करते हैं कि १८५७ का विद्रोह एक दुबारी तलवार थी जो विना-शात्मक ही नहीं थी वरन् रचनात्मक भी थी तो हमें परिस्थिति की विषमता स्पष्ट होती है। विदेशी सत्ता के

(भी) रघुनि सहाय की का मूल लेख "लोडर" के दृष्टांत अक में प्रकथित हुआ है। यह उसीका अनुवाद है। विद्वान् लेखक ने नवी योग्यतासे अर्वाचीन भारतीय संस्कृति के प्रवाह का दिग्दर्शन कराया है। यह विवेचना कहा तक समीचीन है, योग्य पाठक स्वयं ही निश्चय करें। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की उल्लेखन से भारत भी आज द्विविधा में है। ऐसी दशा में भारतीय आर्य त की भावी रूप रेखा क्या होगी यह लेखक का अपना दृष्टिकोण है।

—सम्पादक)

की मुख्य भाषाओं की लगभग समकालीन—पुनश्चेतना, राष्ट्र भाषा आंदोलन, भारतीय पत्रकार कला का उद्भव, विवेकानन्द, अर्यबन्द घोष, रामतीर्थ, इंडियन नेशनल कांग्रेस और उसके स.थाक, ऐतिहासिकों, विचारकों और कलाकारों का बङ्गाली सम्प्रदाय; कांग्रेस के प्रथम वामपक्षी नेता तिलक, बंगल आदि का क्रांतिकारी दल; महात्मा गांधी और भारतीय उद्योगों का उदय और श्रमिक वर्ग के आंदोलन।

१८५७ के बाद—

विदेशी राज्य की स्थापना से भारत के त्वा-मान वी गहरा घत पड़ चुका। १८५७ का विद्रोह उसकी अग्नि-व्यक्त मात्र था। भारतीय इतिहास के दाय में १८५७ का विप्लव एक अनिवार्य पक्ष था। उसका फल केवल साधुकारी और शूद्रात्मक ही नहीं हुआ। साम्राज्यवादी

संरक्षकों ने इसे मीन और गुप्त आशीर्वाद दिया क्योंकि इससे उनका शासन सगठित हुआ और वे भयभीत भी हुए क्योंकि यह विद्रोह उन शक्तियों की परिश्राम था जो उसकी असफलता पर प्रत्यक्ष हुई—अर्थात् भारतीय आर्यति की उपर्युक्त शक्तिशाली वाहिनियों।

जागरण का प्रारम्भ—

एक अर्धभरी शांति किन्तु एक निर्दय अपरिहार्यता के साथ भारतीय जागरण के चतुर्मुखी आंदोलन ने अपनी सृष्टि का कार्य नवीन सत्ताओं और विषमताओं के समन्वय नवनिषेध और आदेश द्वारा आरम्भ कर दिया। इस प्रकार साम्राज्यवाद की प्रत्येक वृद्धि विदेशी सत्ता का सगठन भी, भारतीय आर्यति के संघर्ष में पड़ कर उल्टा प्रभाव करने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि साम्राज्यवाद अपने ही बाल में फँस गया। आता के विपरीत ईसाई मिशन, नवी परिवर्तन, प्रचार, स्कूल, कॉलेज और

उपनिवेश कुछ काल के बाद राष्ट्रीयता को चरितार्थ करने लगे। पश्चिम के पौराणिक लेखकों, मैक्समूलर, मोनियर विलिअम्स आदि के भ्रामक और प्रशंसात्मक किन्तु आलोचनात्मक लेखों को भी वही दशा हुई। साम्राज्यवाद की प्रत्येक सस्था का यही हाल हुआ। साम्राज्यवाद के प्रत्येक अग्र-अग्रजों शिखा, यात्रा, रेलवे और अन्य यांत्रिक आविष्कार, विदेशी व्यवसाय, भारतीय विदेश गमन और बाधित भ्रम साम्राज्यवाद के ही विरुद्ध हो उठे और जायति भी उन्नति से सम्बद्ध हो कर भारतीय राष्ट्रीयता के बढ़ते हुए अकार को बढ़ाने लगे।

स्वयं इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना अग्रजों अविचारियों के सरक्षण के सन्दर्भ परन्तु इलाहावाद के चतुर्थ सम्मेलन से हो वह उनके लिये दुराशा सिद्ध होने लगी। विभाजन द्वारा शासन के सिद्धान्त पर आधारित साम्प्रदायिक सन्ध्याओं, अखिल भारतवर्षीय मुस्लिम लोग, ईसाई सम्मेलन आदि आंदोलनों में भाग प्रयत्नशील भटकती हुई किन्तु राजद्रोही राष्ट्रीयता ने अन्तः प्रभाव भ्रमाना आरम्भ कर दिया और उसका दोष शब्द एगलोज इंडियन समुदाय तथा बड़े योरोपियन व्यवसायियों में भी सुनाई पढ़ने लगा। भारतीय बाजार का वेग और गति चारों ओर से अघातित दिशाओं से साम्राज्यवाद के गढ़तक से बढ़ रहे थे। म्युनिशिपैलिटीयों, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रांतीय काउन्सिल, भारतीय सिविल सर्विस तक न विभिन्न अर्थों में नई भावना को पकड़ा, जो अग्रजों साम्राज्यवाद के पीछे विश्वास के समान लगी हुई थी। संगठित और कार्य कुशल नौकर शाही को बागरूक सारधानी और तीव्र उपायों पर भी वह छाया नहीं ही रही।

भारतीय जायति को देश के बाहर की घटनाओं से भी अवलम्ब मिला। रूस और जापान की लड़ाई, तुर्की, मित्र, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान आदि मुस्लिम देशों के राजनैतिक उलट फेर और परिणामतः "सर्व इस्लाम" आन्दोलन, चीन और एशिया के अन्य भागों को जायति नीमों और अन्य कृष्णवर्ण जातियों का प्रभु, इन सब का समिलित प्रभाव पड़ा भिन्नसे भारतीय जायति के विस्तार में अभिवाहक हुई। परन्तु जहाँ एक सर्व सायुक षय परिवर्तनकारी भारतय जायति की चेतन धारा में नितात विभिन्न अघातित, निराशाजनक विरोधी शक्तियों खिच आईं वहाँ इतमें से प्रत्येक को एक प्रकार के रक्षक, अवास्तविकता और परिणामो माया से युक्ति का

बोध हुआ और जिस प्रकार साम्राज्यवाद भारतीय जायति के प्रभाव में पड़ गया उसी प्रकार भारतीय जायति की धारणों भी साम्राज्यवाद के सर्वव्यापक रम घोटने वाले कण्ट युक्त चगुल में फँस गई।

आदिम उत्पाद शीघ्र भग हो गया। समस्त सांस्कृतिक शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कार्य तथा सस्थायों निराशा बनक, व्यर्थ और प्रवाहहीन प्रतीत होने लगी। इन सब पर साम्राज्यवाद की शोषक और मारक छाया घूमने लगी। वह दुःखदायी अनुभूति होने लगी कि विशुद्ध धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षणिक सुचार भी तब तक देश में नहीं पनप सकते जब तक कि उन्नति विरोधी शासनव्यवस्था कायन है।

नवीन प्रेरणा

भारत तथा ससार की स्थिति नवीन अग्रगति के लिए तैयार थी। नई प्रेरणा महायुद्ध रूपी ऐसे प्रलय के रूप में आई जिउने ससार का हिला दिया। ससार व्यापी उन्मत्त और उद्वेग सुधारों का प्रभाव भारत में गांधी जी और गांधीवाद के आगमन के रूप में हुआ। गांधी जी में और गांधी जी के साथ भारतीय जायति का प्रथम दीर्घयुग समाग्न होता है। गांधी जी और गांधीवाद भारतीय जायति की विद्रोही, भ्रामक परन्तु शक्य और शक्ति शाली प्रथम पक्ष को घटनायें हैं। भारतीय जायति, जिसका आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुआ, प्रथम बार गांधी जी द्वारा निश्चित कार्य में न सही परन्तु अतन्दिष्ट संदेश में समाप्त हुई। गांधीवाद के आदिम रूप में, भारतीय जायति का प्रथम रूप अधिक संगठित और अशब्द हो जाता है और, एक क्रान्तिकारी गति बारम्ब कर लेता है। वह धाराएँ, जो अब तक केवल भावना प्रधान, रहस्यमय और बौद्धिक थी जो निम्न रूप में 'सांस्कृतिक' हो गई थी, गांधी जी द्वारा किमारील हो गई और वास्तविकता के ठोस धरातल पर आ गई। भारतीय जायति में प्रथम बार एक सामाजिक चेतना का उदय हुआ और प्रथम बार भारतीय जायति के आन्दोलन में जनता में चेतना आई। इस नवीन चेतना प्रादुर्भाव में मौलिकवाद का आधार और वास्तविकता की प्रमूला स्पष्ट होती जाती है, कुछ गांधी जी के कारण और कुछ उनके प्रभाव से बिसंग भी। पहले के समान, भारतीय जायति

अपने रूप की परिधि से पुन बाहर आ जाती है । प्रथम बहुरंगी रूप के जो तीन चौथाई शताब्दी के परिवर्तनों में बचा रहा, गांधी जी के साथ समाप्त होने पर भारतीय जायति अन्ततः मार्ग वैमिन्य पर आ गई है । अन्त में विचारशील विषय स्पष्ट हो गये, भारतीय जायति के आचारभूत चक्र दृष्टिगोचर होने लगे ।

भारतीय जायति अपनी स्पष्टता के विषय में आशुभित हो गई है उसके पुरातन आवृष्ट परस्पर विरोधी और प्रतिकूल आदर्श अपने पर ही प्रत्यान्वित हो रहे हैं और आज भारत की अर्थ पूर्ण यथायत्ता है प्रत्येक व्यक्ति का हृदयान्वेषण । भारत आज अपने को एक कष्ट दायी वेदना मस्त पाता है, वह द्वेष के मध्य में है एक और विगत भूत है और दूसरी ओर अप्रयत्न भविष्य । समग्र प्राचीन मान—गत तीन चौथाई शताब्दी की सब धार्मिक और अत्यात्मिक, औद्योगिक शैक्षिक और राजनैतिक प्रवृत्तियाँ विशेषतया गांधी और गांधीवाद, तीव्र आलोचना के विषय हो रहे हैं । यथायत्ता पदार्थ पूजक नहीं होती और वास्तव शक्तियों के समस्त कल्पना शील आदर्शवाद और समझौते सम्भव नहीं है ।

आज ब्रिटीश महायुद्ध, ब्रिटिश शासन और महात्मा गांधी के परचात् भारतीय जायति की स्थिति क्या है और कहाँ है ? मैंने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि वह माग वैमिन्य पर है । वह क्या नया रूप, नया विषय नवीन विशिष्टता धारण कर रही है और किस प्रकार यह नवान शक्तियाँ एक चेतन शील, शक्ति शाली ऐक्य में सम्मिलित की जा सकती है ?

भविष्य

नवीन जायति की विशेषता होगी एक नई सरल और यथार्थ सृष्टि । विचार, भावना और ईच्छा की जाग्रत एकता ही उसकी विशेषता होगी, परिणामतः वह अपनी यथार्थ, स्पष्टता और सुखसाध्यता से परिखचित होगी जिसका उसके आदिम रूप में अभाव है । नई जायति, ऐसी राजनैतिक सांस्कृतिक भावनाओं, आदर्शों और समझौतों को जिनका आचार वक्त मा नभौतिक पतनो-मुक्त व्यवस्था के भावनाबशेष हैं, कोई स्थान नहीं देगी । जबकी सारी शक्ति और भविष्यत्वा, आशा और आदर्श

का केन्द्र उसका जीवन और प्रस्था ही जनत होगी । विशान, दर्शन कला, नीतिशास्त्र सस्कृति के समग्र अन्न नागरिक और राजनैतिक कार्यों की सब योजनाओं सब राष्ट्र वधक और रचनात्मक कार्यकर्ता क्रांतिकारी विचारों और सस्थाओं में शत्रु हृत्ति सामूहिक चेतना होगी वह उच्च वर्ग के पतन शील प्रभावों और एकाधिपत्य से मुक्त होगी । वह अत्यात्मवाद अथवा स्वार्थी धर्मों के चक्रव्यूह में पथभ्रष्ट न होगी, रहस्यवादी अथवा दार्शनिक और बौद्धिक भावनाओं में वह नहीं जायगी । वह अक्रिकाधिक पूणता प्राप्त करने का यथार्थ भौतिक आचार का, गुण और परिमाण के समन्वय का, प्रयत्न करगी । वह अपविश्वान, सामंतशाही और कोरे अत्यात्मवाद की शृङ्खलाओं को तोड़ पकेगी और विशेषाधिकार के रागडित गढ़ों से विरुद्ध वह अक्रिकाधिक उमड़ती जायगी । ऐसी समग्र शक्तिओं के प्रति वह स्पष्टतया विनाशकारी होगी और उनके विरुद्ध रागडित आक्रमण करेगी । वह सामूहिक प्रस्था से प्ररित होगी, और सामूहिक चेतना से ही चालित हागी । वह विस्तृत रूप से और वग पूर्वक क्रांतिकारी और मौलिक होगी । माकसों का कथन है युगों से दार्शनिक सत्कार की व्याख्या करना न लगे रहे हैं, अब बड़ा कार्य उस प्रवृत्ति को बदलना है ।

सर्वा भौम हता—

यह विरोध किया जा सकता है कि भारतीय जायति की नई स्थिति की रूपरेखा इस लक्ष्य पारचम का दाहवपुष्प अनुकृति ही प्रदर्शित कर रही है । यह विरोध नया नहीं है उस में माक्सवादियों और पुरातन सही सस्कृति के पञ्चातियों में भी साक्ष्य हुआ था । स्टालिन ने स्वभा वानुसार शब्दों में उत्तर दिया था कि नई सस्कृति आत्मा में समाज वादा और रूप में राष्ट्रवादी हागी । यह सस्कृतियों के समन्वय का युग है । भारतीय सस्कृति की नवान अपूर्वता तब दिखाई पड़ेगी जब भारतीय जीवन के भौतिक, आर्थिक, राजनैतिक तारतम्य दूर हो कर एक नये भवन का निर्माण होगा । नवीन जीवन और सस्कृति, आकार और रस्तुकला सत्कार और भारत के लिए, मुख्य रूप में सामान ही होंगे । आभावार्थी से ये सर्व भौम होंगे । भारतीय सस्कृति के पुन, पुष्पित होने का सही उपयुक्त समय होगा । भारत की नवान जायति बिना आ

कारी और रचनात्मक होगी। अपनी दृढ़ संचालक शक्ति द्वारा वह सांस्कृतिकों की परस्पर अन्योन्य-साभयता और भारतीय सभ्यता की विशेषता को प्रतिबिम्बित करेगी हमारे कलाकार, कवि, दार्शनिक चित्रकार वास्तुकार और रागीतज्ञ भारत की प्राचीन सांस्कृतिक तथा अन्य जातियों के शाश्वतत्वों को ग्रहण करके उनमें जीवन भर देंगे। भारत की आद्वैतीय प्रतिभा जीवन

के नये रूपों को एक युक्तिमान शान्ति प्रदान करेगी, एक समुलित चोला और गति, एक नई आध्यात्मिकता, एक लगन और समीत जो भारत की अपनी ही विशेषता है। आज हम उस समीत की दूर वर्ती क्षीण प्रतिध्वनि सुन पा रहे हैं और भारतीय जायति की कमबख्त बाहिनियों की दूरस्थ पगताल का शब्द चतुष्पथ पर सुन रहे हैं।

आम प्रणाली द्वारा वैदिक-रीत्यानुसार शास्त्रोक्त विधि से ताजी जड़ी नदियों एवं औषधियों द्वारा निर्मित

तृण सुगन्धित सामग्री

यह सुगन्धित हवन सामग्री देव पूजन के लिये पवित्र और बड़ी उपयोगी है। इसमें चायु शुद्ध लैक्रीन और दुग्धैत-रोगके-सीटाणु नष्ट होते हैं। उपयोग करने से सप्ताशुद्ध सुवासित हो जाता है। विवाहो, यज्ञो, धर्मो

सामाजिक उद्देश्यों में व्यवहार करने के लिये सर्वोत्तम है। नष्टा प्रुप्त-पेक्षाइये। एजेन्सी व नियमों के लिये आज ही लिखिये। विस्तृत योजनानुसार शास्त्रोक्त प्रमाणित हवनसामग्री तैयार करने का भारतवर्ष का सबसे बड़ा कारखाना

आनन्द हवन-विभाग स्थान-भोगांव

BHONGAONI (बनपुरी) यू. पी.

जुड़ी उतर के लिये

ताप उतार

ठंड देकर दैनिक आनेवाजा, पकातर निजारी चीरिया मनेरिया वगैरह उजर को मिगता है दस्त राफ लावा है, निगर और तल्लो यथाक्रम काम करने ल ते हैं और रक्त शुद्ध होकर शरीर मशक बनता है। १० डि १) एक मदन मंगरी फार्मसी जामनगर कलकत्ता जार - १७७ हरिसन रोड लखनऊ-माव बदल पसारी अमीनाबाद

आयुर्वेद को सर्वोत्तम कान की दवा ?

वर्ण रोग नाशक तैल

कान बहना, शब्द होना, कम सुनना दद होना, साब आना, साय साय होना, मवाद आना, कुलना आदि रोगों में चमत्कारी रजिस्टर्ड 'कर्ण रोग नाशक तैल' बड़ा अकधीर है आराम न हो तो पूरी कीमत वापिस देंगे। १ शीशी १।) खर्च (१=), तीन शी शियों पर खर्च को। पता—

मैनेजर 'कर्णरोग नाशक तैल'
[न. १४०] नबीबाबाद यू. पी.

महर्षि दयानन्द का उपकार

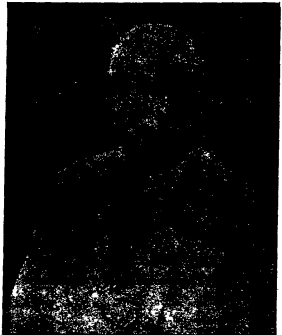
(ले० — श्रीरामजी मुख्य विष्ठाता गु० कु० विश्वविद्यालय, वृन्दावन.)

प्रति वर्ष दीपमालिका का पवित्र पर्व दिवस आता है और प्रत्येक समाज के प्रबन्धक महर्षि दयानन्द सरस्वती के, मायाखण्ड तथा मानव जाति के सम्मुख, किन्तु विशेषतया आर्य जनो के सम्मुख उन समस्त उपकारों को लघुकाय दीपमालिका के दीपको के व्याज से चित्रित कर उपस्थित करता है। महर्षि ने न केवल अपने जीवन भर ही वैदिक धर्म का अमर उपदेश अपने व्याख्यानों, प्रवचनों, शास्त्रार्थों एवं उपदेशों द्वारा अपने समय के नर नरियों तक पहुँचाया, अपितु अपने लेखनी द्वारा भी ऐसा साहित्य रचा कि जिस से आभी नर और नारी गण अपने-अपने को उन्नत और पवित्र बनाने में समर्थ हो सकेंगे। हमारे ऊपर महर्षि के जितने उपकार हुए हैं और उनका जो ऋण आर्यसमाजियों पर है, उसको चुकाना यदि सम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य प्रतीत होता है।

मेरी आयु ८० वर्ष से अधिक हो चुकी है। अपने जीवन में जो कुछ आर्य समाज की सेवा करके का अब्बल भिला है, उसके आचार पर दहा जा सकता है कि महर्षि ने आर्य जीवन निर्माण के लिये जो वैदिक धर्मानुष्ठान के कर्त्तव्य कार्यों का प्रतिपादन अपने उपदेशों और ग्रन्थों में किया है, उनको यदि साधारण कर्मव्य मनुष्य भी नियम पूर्वक करने का अभ्यास बना रहे तो चिरायु पर्यन्त कार्य करने की शक्ति बनी रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सद् उपदेशों से मैंने तो यही सीखा है कि समय के साथ नियम पूर्वक यदि व्यावहारिक जीवन कार्यों को किया जाय तो शारीरिक आत्मिक और सामाजिक तीनों प्रकार

की वृद्धि करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हो सकती है।

भगवान् दयानन्द ने ही ब्रह्मचर्यामय जीवन की मद्दिमा अपने उदाहरण से हमारे सम्मुख प्रस्तुत की है। सर्वप्रथम उन्होंने स्वयं ब्रह्मचर्य के प्रताप से शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक



लेखक

उन्नति के उस आदर्श को प्रस्तुत किया कि जिसकी रचना के लिये अन्य उदाहरण मिलना कठिन है। उसके उपरान्त अपने सट्टा पूर्ण ब्रह्मचारी, तेजस्वी, ऊर्ध्वशी और विचारशील पथप्रदर्शक विद्वान् वैद्यार करने के लिये महर्षि ने आचार्य कुल

अथवा गुरुकुल शिक्षाप्रणाली का सविस्तार प्रतिपादन किया। आचार्य की इस गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की उत्तमता और उपयोगिता को सभी लोग हृदय से सराहते हैं और अब तो स्वतन्त्र भारत राष्ट्र के लिये ब्रह्मबर्चस्वी ब्राह्मण, महारथी क्षत्रिय, पुरन्धी वैश्यां, सभेय युवा, यजमान के वीर पुत्र, कक्षा बौराल विशेषज्ञ वैश्य और कर्मण्य सेवक शूद्र गण सभी की यथोचित शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ शिक्षा केन्द्र यदि हो सकता है तो वह ब्रह्मचर्य आश्रम में जीवनमय गुरुकुल शिक्षाप्रणाली ही है।

महर्षि के वैदिक आदर्शों से प्रभावित हो कर स्वयं गुरुकुल शिक्षा का कुल भी अनुभव न रखते हुये और स्वयं इस प्रकार की संस्थाओं के तपोमय जीवन की कठोरता से सर्वथा अज्ञान रहते हुये भी आधुनिक शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त आर्यजनों ने श्रीमती शानाब्दी के आरम्भ में गुरुकुल शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। समुचित अनुकूल परिस्थित न होने तथा आवश्यकतानुसार साधन और सहायता न मिलने के कारण इन संस्थाओं से इस प्रकार के सब कोटि के विचारक और

कार्यकर्ता न तैयार हो सके कि जिन प्रकार सर्व-साधारण की आशा थी। किन्तु इसमें जो त्रुटि हुई उसका उत्तरदायित्व कि गि एक व्यक्ति या वर्ग पर नहीं है, सभी पर है। पूरा सहायता और पूरा सहयोग प्राप्त होने पर निस्सन्देह गुरुकुलों से बड़ी आशाये पूरी हो सकती हैं कि जिनसे न केवल भार्यवमाज को लगन के प्रचारक, अथक कार्यकर्ता ही उपलब्ध हो सके अपितु स्वतन्त्र भारत राष्ट्र के लिए ऐसे कर्मठ हृदय विचारक और बद्धम्य साहसी नागरिक भी प्राप्त हो सके कि जिनके क्षत्रिय बल से जातीय और राष्ट्रीय जीवन का प्रत्येक कार्य सराहनीय हो सके।

वर्षों में यद्यपि मुझको वृद्ध कहा जाता है किंतु मर्षि की दया से अब भी मेरी यही मनःकामना है कि अजनों के सक्रिय सहयोग से गुरुकुलों की उत्तरोत्तर वृद्धि विकास और विस्तार हो कि जिनसे जहां एक ओर हम आदर्श नागरिक जीवन संचार कर सकें, वहां महर्षि दयानन्द सास्वतीजी के उपकारों से यथा सम्भव उद्धार हो सके।



द्राकोमीन ३ दिन में

आँखों के नये पुराने समस्त रोगों की बिना आपरेशन अचूक दवा। मू० १) शीशी

एफीडाल

भयकर से भयकर दमा खासी को पहली मात्रा ही १५ मिनट में आराम करने में रामबाण। मूल्य ५० मात्रा ५॥), १०० खुराक १०), डाक व्यव अलग।

तीनों का मुँह काला

नपुंसकता कुष्ठ आतशक
१५॥) १॥) ७॥)

उपरोक्त तीनों रोगों को चाहे वे कितनेही पुराने हो ३ दिन में हमारी यह परीक्षित महौषधि लाभ दिलाती है, लाभ न होने पर दाम वापसों को गारंटी। आर्डर देते समय रोगका पूराहाल जवाबी पत्र के साथ लिखिये और एडवांस भेजिये।

ओंकार केमिकल वर्क्स हरदोई यू० पी०



कान्ति-कृत का हिमालय दर्शन

(ले०—कुँवर हरिचन्द्र देव वर्मा 'चातक' कविरत्न साहित्यालङ्कार)



देखा उसने 'चातक' चन्द्रिका में—
गंगा - का रूप :
रक्षत - वल्ल ओंठे—
सुन्दरता ही वह रही अनूप ।
किम्बा हूँ य हिमालय का यह-
पिप्ल बहा उस ओर—
कुलसे पड़े बिपर गेते हैं —
प्रेम पुण्य के मोर ?
या सशरीरी हो युग युग के—
श्रुतियों का वरदान—
द्रुत गति से चक्र पड़ा
विश्व का करने को कल्याण ?
नहीं ! नहीं ! यह फूट पड़ा है—
गिरिवर का आनन्द—
जिसमें पुल कर बहा ण रहा—
है आम्बर का चन्द !
तारे भी तारापति के सग—
बहते हैं चुपचाप —
राजा और मन्ना का कैसा —
है यह सुपद मिलाप !
या प्रशान्त निधि में यह—
आम्बर निज रत्नों के साथ—
पावन मातृभूमि के चरखों पर
रखता है माय ?
तुम्हें न पाई या स्वर्गज्ञा में—
कर के सुम्नान—
आया नीचे उतर—
बाइवी को सुन कर्ति महान ?
नहो ! नहीं ! निज चन्द्रवश का—
देख भयानक हास -
गंगा में मिल उनकी —
उन्नति वा करना आवाम ।
मानो यह सब ज्ञान हिमालयके —

उर का उल्लाह—
भयट बह चला भरनों के मिस
ले कर नवल प्रवाह ।
उसी एक की एक भाव से
करो सदा तुम याद—
मत डूँदो दूसरा, यही

उड़ो ! उड़ो ! पछी कहते हैं—
उस अनन्त की ओर—
वहाँ अचल उठा करती है—
महदानन्द - हिलोर ।
कैसे जान गये थे तक भी—
उस रहस्य का मेद ?



लेखक

निर्भर कहते साह्लाद ।
सदा सत्य के लिये उग्र—
रखो मानस में प्यास—
भागो चलो ! रको मत चूण भर
चल कर करो तलाश ॥

चीत्कार कर उठे अचानक—
भर मानस में खेद—
हाय ! अचल हम चक्र न सकेंगे—
उस अनन्त की ओर,
कोई हम तक भी पहुँचा दो—

उसकी कदवा कोर ”
 या मनब का दुःख यहाँ भी —
 लाई पवन — हिलोर —
 जितसे, डर कर वृद्ध —
 कर रहे चीत्कार यह घोर ?
 भाषा मय हो वृद्ध या कि —
 कइते निज मन की पीर !
 केवल कवि के कान —
 बिसे सुनने के लिये झधीर ।
 लोग देखते उड़ते पड़ो,
 उड़ते हुये विचार —
 नहीं देखते, केवल कवि ही —
 देख रहा हरबार ।
 लोग फूल चुनते, पर कोई —
 हृदय न चुनता हाय !
 केवल कवि ही हृदय-चमन का —
 करता है व्यवसाय ।
 स्वप्न-सृष्टि-से शुभ्र स्वच्छ —
 जग मे प्राप्त नग-राज —
 ओ तुम हिम भेरि ! श्वेत जटाओ —
 से शो-भत श्रु पराज ॥
 प्रति पल उ-भुव रहे अरे तुम !
 उस अनन्त का श्रोर —
 जहाँ प्रम का नया सूर्य —
 उगता कै नूतन भोर ।
 जहाँ नवीन सभ्र-वेला
 आधी से नूतन प्यार,
 जहाँ चाँदनी में करते —
 हिल मिल प्रिय सदा विहार ।
 बादल भी तब श्रु गो पर —
 आकर करते विश्राम —
 ऐसा लगता स्वग तु-हारे —
 ऊपर है आभाराम ।
 तुम्हें कुक्षाने आये कितने —
 माधव भ्रमभावत —
 तुम्हें कुक्षाने आये कितने —
 प्रलयङ्कर उरगत ।
 पर तुमतो अन्तर्दृष्टा थे —
 रहे उठाये शीघ्र —

हार मान कर विघ्न बने —
 तब पथ के प्रिय आशीष ।
 ऊपर से कठार पर भीतर से —
 हो तुम नवनीत —
 ताप-तपन जग देख दगो से —
 धार बहाते मीत ।
 प्रचुर पत्थरों मे शोभा का —
 बोंप एह भावर —
 मूर्तिमान तुम उस महान्
 कवि की कविता सुकुमार ।
 कथा हृदय शत शत छन्दों में —
 रहा तुम्हारा फूट —
 भरनों में भा व्याप्त तुम्हारा —
 है रागीत अटूट ।
 तुमने देखा है जीवन में —
 वह विकास का काल —
 भव न ताप त्रय मानव के —
 उर में करते थे शाल ।
 तुमने देखा अ-ने से भो —
 बड़ा विभव का कोप —
 तुमने देखा बड़े बड़े —
 सम्राटों का वह रोष ।
 पर अब तुम यह देख रहे हो —
 मानव का दुर्वेष —
 ठुकराया जाता पर आता —
 उसको तनिक न त्वेष ।
 मानव ईश्वर की प्रतिमा है
 पर वह कितना दोन ?
 उसका रक्त चूव कर होते —
 धनिक और भी पीन ।
 उन धनिकों ने ही ईश्वर का —
 विकृत कर दिया रूप —
 उन धनिकों ने ही छाया को —
 बना दिया कटु धूप ।
 फिर भी दलित 'द्विजों की —
 धुन कर यह आर्त पुकार —
 नहीं तुम्हारे गगन यमुना में —
 आता है ज्वार ?
 अनाचारियों की जो पल में —

हुवा - बहा वे दूर,
 या फिर कोई शृङ्खल टूट कर —
 कर दे चकनाचूर ?
 शृङ्खल न टूटा किन्तु हुआ यह —
 युक्तको पूर्ण प्रतीत —
 भाँक उठा उद्भीव हिमाक्षय —
 है वह कहाँ प्रतीत ?
 'एक स्वप्न - सा चला गया —
 तब रहे अरे ! तुम मौन ?
 देखें अब उसके लौटाने में —
 समर्थ है कौन ?
 गूँब उठा यह कौन ? कौन है ?
 माता का प्रिय लाल ?
 किसको ये (श्रीव) प्रय अजूर
 पाकर हुये निहाल ?
 कौन आज युग धर्म निमग्नय —
 को करके स्वीकार ?
 प्रकट करेगा पीड़ित
 मानवता पर दिल से प्यार ?
 कौन फूल को जगह —
 कटकी का हिनेगा ताज ?
 कौन बचायेगा अरुणी —
 माता वादनों की लाज ?
 कौन शृङ्खलाये ताडेगा
 करके नव निर्माण ?
 अरुम - दान कर कौन करेगा
 जन जन का कल्याण ?
 कौन कौन ? मे हा राहू गा —
 बाकर तड़ित - प्रवाह —
 अरुम न मुनाई कहीं पहेगी —
 आर्तियों को आह ।
 है गिरान्द्र ! मैं शयप तुम्हारी —
 बरता हूँ सब बार —
 मेरे प्रतिवचन में अरुम होगा —
 स्वदेश उडार ।
 हे मयङ्क ! पङ्कल पवित्रता —
 अरुम न बनेगा और !
 प्रेम पुष्प का चार चाँदनी
 छिटकेगा सब दौर ।

साक्षी गंगा यमुना स क्षी—
 रहना ओ रजनीश ?
 माँ के चरणों पर ही केवल—
 एक झुकेगा शीश ।
 धीरे - धीरे चारु चाँदनी—
 चली स्वर्ण की ओर—
 मानो यह सन्देश सुनाने को—
 हो प्रेम - विभोर ?
 प्राची प्राङ्गण में उधा—
 आई ले नवल हिलोर—
 रजनी के बालों के मोती -
 चुन चुन रही शठोर ?
 वृक्षों की चोटिया मजे ले—
 रहीं नरो में भूम—
 शीतल मन्द सुगन्ध समीरण—
 रहा चतुरदिक धूम ।
 दुनिया में प्रवृत्त होने की—
 खुरा लिये ये फूल—
 इस रूपाम मधुर वेला में—
 हैंसते सब कुछ भूल ।
 मानव मन की अभिलाषा - सी—
 किरणें चारों ओर—
 लगी फैलने, पक्षी गण भी—
 लगे मचाने शोर ।
 देख प्रकृति - सौन्दर्य—
 परस्पर मानो करते बात—

भोले शैशव—सा प्यारा—
 आया यह मधुर प्रभात ।
 भ्रमर पक्षि पीले पीले—
 फूलों पर करती नाच—
 मानो खोटा खरा, कसीटी
 सोना करती बाँच ?
 अथवा श्याम रंग फिर होगा—
 जगती का सरलाज—
 इसकी ही यह भ्रम सूचना—
 देता भ्रमर—समाज ?
 या कञ्चन से काग्त—
 कपोलो पर प्रिय अलक ललाम—
 लिलती—सी त्वचित्र लिपि में—
 कुछ आकर्षण उद्गाम ?
 अरुचि विम्ब का और जाहवी—
 का होता है मेन ;
 पानी में भी आग जल रही—
 कैसा अद्भुत खेल ?
 नीर परिधि में बन्दी होकर—
 विम्ब न फिर भी बन्द—
 काया की माया में पड़ चर्षा—
 जीव सदा स्वच्छन्द ।
 जगल में अनदेखे कितने—
 फूल उठे हैं फूल,
 हम सचके अनदेखे ही वे
 मिल जायेंगे धूल ।

ऐसे कितने ही आँसू—
 बह जाते हैं चुप चाप—
 बिगड़े न दुर्बल दृष्टि—
 मनुज की कभी, गिन सकी आप !
 जो न पकड़ में आता—
 उसका भी जग में है मूल ;
 कितने ही रहस्य अविदित हैं—
 समझे ! करो न भूल !!
 सारी सृष्टि उस महान के—
 आश्रयन में बद्ध,
 उसका चिन्तन मनन करेगा—
 सुख—सौभाग्य समृद्ध ।
 आयु समाप्त हुई रजनी की
 आशा नवल विद्यान,
 मर जाने ही मे जीवन का—
 मिलता है बरद न ।
 मरती तो है मृत्यु, किन्तु—
 जीवन है अमर अनन्त ,
 स्वादु गंध रुचि मे—
 जीवन का रहता सदा बसन्त ।
 ऐसा मरणा मरो जिधसे—
 जग को हो जीवन प्राप्त !
 ऐसा जीवन जियो कि जग की—
 होवे मृत्यु समाप्त !!

अपने आप को खुद सम्भालो

एक मामूली से रेलवे बिस्टो पैडिंग पोस्टेन आदि कर्से में १०० बॉब
 करने लखें करके हलाक की स ल पुस्तक समेत समस्त रोगों में सेन्ट पर सेन्ट
 फ यदा हिल्लाने व की १५० दवाइयों के १५ सेर के बक्तर हर पर में प्रत्य
 ममा कर अपना और पास वालों का स्वयं हलाक करके उाकार कीविधे ४)
 चार रुपये मनीअ र्द से मेनहर पाबके रवेयत समेत पता लिखेंगे ।

पता— आ० ई० बाबुबलि चर्मार्य
 औपचारिक लखितपुर (कासी) यू० पी०

अखण्ड ब्रह्मचारी

(ने०—भी प्रियव्रतजी वेद वाचस्पति आचार्य
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी)



हामरत युद्ध के आरम्भ में जब अर्जुन लड़ने के लिए उद्यत नहीं हो रहा था तो उसे संग्राम के लिए प्रोत्साहित करने के लिए श्री भगवान् कृष्णचन्द्र जी महाराज ने जहाँ उसे गीता का उपदेश दिया था वहाँ अपना विराट रूप भी दिखाया था ऐसा महाभारत में वर्णन आता है। श्री कृष्णचन्द्र जी के उस विराट रूप के सम्बन्ध में महाभारतकार ने सख्य के मुख से कहलबाया है—

द्विव सूर्य सहस्राय, भवेद्युगपदुत्थितः।

यदि माः ब्रह्मशा भासः भवेत्सस्य महात्मनः ॥

अर्थात्—“यदि आकाश में हजार सूर्य एक साथ इकट्ठे होकर चमकने लगे तो उनकी जितनी आभा और कान्ति होगी उतनी आभा और कान्ति अपना विराट रूप अर्जुन को दिखाते समय भगवान् कृष्णचन्द्र जी की थी।”

मैं जब कभी भगवान् दयानन्द के व्यक्तित्व का स्मरण करता हूँ तो मुझे सख्य का यह रसोक्त अनायास स्मरण हो आया करता है। संसार के इतिहास में जितने महापुरुष हो गये हैं वे सब अपने अपने क्षेत्र के सूर्य थे। अपने अपने क्षेत्र में उनकी अद्वितीय आभा और कान्ति थी। परन्तु जब मैं भगवान् दयानन्द के जीवन और कार्यों को देखता हूँ तो मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि जब इन सब महापुरुषों को एकत्र कर दिया जाए तब भगवान् दयानन्द की आभा और कान्ति बनती है। मैं अपने मस्ती बात कह रहा हूँ। मुझे तो भगवान् दयानन्द ऐसे ही—लगते हैं। अन्य महापुरुष एक एक सूर्य हैं। दयानन्द इन सहस्रों

सूर्यों की कान्ति के बाबर कान्ति वाले एक विराट सूर्य हैं।

राजा हरिश्चन्द्र का सत्य महात्मा बुद्ध, ईसा और गांधी जी आदि महापुरुषों की अहिंसा तथा दुःखिया और कष्टपन्न लोगों के लिए प्रेम, भगवान् शंकर का तर्क और दर्शन ज्ञान, महर्षि याज्ञवल्क्य और व्यास आदि का वेद ज्ञान, महाराजा जनक और अनेक ऋषि और महर्षियों का ब्रह्मज्ञान, गोखले तिलक आदि की राजनीतिकता, लक्ष्मण, हनुमान, भीष्म, शंकर आदि हापुरुषों का ब्रह्मचर्य और सत्य, भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का निष्काम कर्म ये सब महर्षि दयानन्द के चरम सीमा में विद्यमान थे, विभिन्न सूर्यों का तेज उस एक सूर्य में सन्निहित था।

सब क्षेत्रों में भगवान् दयानन्द की श्रीमति गाम्भीर्य स्थिति को विस्तार के साथ लिखने का अवसर और स्थान नहीं है। उनके प्रचलित ब्रह्मचर्य के विषय में आज उनकी पुण्य स्मृति के दिन कुछ पकियों लिखने का इच्छा होती है।

ब्रह्मचर्य का सिद्धांत उन कुछ थोड़े से सिद्धान्तों में से है जिनके अधार पर आर्य सभ्यता का भवन खड़ा हुआ है। भगवान् दयानन्द ने ब्रह्मचर्य की महिमा पर अपने ग्रन्थों और उपदेशों में जितना बल दिया है उतना अन्य बहुत कम बातों पर दिया है। दयानन्द ने स्वयं अपने जीवन में ब्रह्मचर्य का अनुभव किया था वे अस्वल्क्य ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य में अपना निराकार रस होता है। आजन्म और अस्वल्क्य ब्रह्मचर्य के रस के निराले पन का तो कहना ही क्या? दयानन्द ने इसी अस्वल्क्य ब्रह्मचर्य के रस का पान किया था। वे आर्य जाति के बच्चे-बच्चे को ब्रह्मचर्य का पाठ

पढ़ा कर उसके जीवन को सच्चे और सार्विक सुख से भरना चाहते थे। उन्होंने बख लिया था कि ब्रह्मचर्य के अभ्यास में शारीरिक शायं और रोगों का बर बन जाता है। ज्ञान शक्ति विलुप्त हो जाती है। वसाह उमग और हीसले का अभ्यास हो जाता है। कई भी सद्गुण पनप नहीं सकता। ब्रह्मचर्य हीन व्यक्ति शारीरिक मानसिक और आत्मिक प्रभी दृष्टियों से निःशक्त और तेज हीन हो जाता है। ऋषि दयानन्द ने वे। था कि आर्य जाति ब्रह्मचर्या की महिमा को भूल कर निःशक्त और तेजा हीन व्यक्तियों का प्रमुदाय बन कर सभी क्षेत्रों में परम अवनत अवस्था का प्राप्त हो रहा है। इस अशक्ति और तेजो हीनता के रोग की एक मात्र दान बाण औषध ब्रह्मचर्य का सबन है। ऋषि ने इन सत्य का अनुभव करके भारत के कान बनेने में ब्रह्मचर्य के मन्त्र का फूँकना आरम्भ किया।

दयानन्द ब्रह्मचर्या के अपने प्रवचनों का स्वयं ही उदाहरण बने। वे प्राञ्जल और अलखड ब्रह्मचारी रहे। और इस प्रकार के पराकष्टा के ब्रह्मचर्य का सेवन करके उन्होंने अपने भीतर शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की असौम्य शक्तियों का सम्बन्ध किया। उनके बिलक्षण पाण्डित्य और अद्वितीय तर्क शक्ति के सम्मुख कोई प्रतिपक्षी ठहर नहीं सकता था। उनके आत्मिक तेज के आगे भयंकर से भयकर विरोधी फाके पड़ जाते थे। उनका शारीरिक बल भी अद्वितीय था। चार चार घोड़ों की बरश को रोकना, बड़े बड़े पहलूनों को अपनी कांखों दबोच कर कूद जाना, मत्ताने भयंकरों को सींगों से पकड़ कर ढकल देना, जगला राखों को अपनी हुँकार से डरा देना, उनक लिए साधारण बात थी।

ऋषि का ब्रह्मचर्य कितना अलखड और पूर्ण था इस पर उनके जीवन की एक घटना से बहुत प्रकाश पड़ता है कलकत्ता नगरों में उपदेश करते हुये ऋषि ने एक दिन ब्रह्मचर्य पर प्रवचन किया। जनता ब्रह्मचर्य की महिमा सुनकर गद्गार हो गई। अगले दिन उनके डेरे पर एक युवक पहुँचा। यह युवक आगे चलकर बंगाल के प्रसिद्ध नेता अरिबन्दी

कुमार दत्त के नाम से प्रख्यात हुआ। युवक ने ऋषि से कहा—भगवन् मैं कौतूहलवत्त एक प्रश्न आप स पूछना चाहता हूँ। क्या आप मेरे प्रश्न का समाधान करेंगे? ऋषि ने उत्तर दिया युवक तुम प्रश्न पूछो, यदि हम उत्तर आता होगा तो हम अवश्य उत्तर देंगे। युवक ने कहा कि महागर्भ मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या कभी आप के मन में भी काम का विकार उत्पन्न नहीं होता? मैं ऐसा धर्म मता हूँ कि आप में भा और मनुष्यों की भान्ति कभी न कभी काम का विकार या विकार आ ही जाता होगा। भौः लोग ब्रह्मचर्या नहीं है इसलिए वे अपने विचार को दबा नहीं सकते आप ब्रह्मचारी हैं इस लिए आप अपने भनाविकार को दबा लेते होंगे। ऋषि ने कहा युवक? तुमने वेदव प्रश्न पूछा है। पर मैं तुम्हारे प्रश्न का सही सहा उत्तर देने के लिये समाविश्य होकर अपने अब तक के सारे जीवनपर दृष्टि पात करके उसका त्रिहवलोकन क ता हूँ। यह कह कर ऋषि कुछ देर के लिए समाविश्य हो गये और अपने सारे जीवन की जाच करने लगे। कुछ देर के बाद समावि भङ्ग करके कहने लगे युवक? हमें ता नहीं याद पड़ता कि कना हमारे मन में भी काम का विकार उत्पन्न हुआ हो। कितना निरभिमान उत्तर था।

युवक ने फिर पूछा कि महाराज आप ने यह ऊंची स्थिति किस साधना और किस उपाय से प्राप्त की है? ऋषि ने कहा कि इसका उपाय तो बड़ा सरल है। यह यह है कि मैं कभी अपने मन को खामोशी नहीं रहने देता। मैं हर समय किसी न किसी काम में लगा रहता हूँ। कभी वेद भाष्य, कभी वेदांग प्रकाश लिखना, कभी दशकी के प्रश्नों का समाधान, कभी न्यायदान, कभी शास्त्रार्थ, और कभी पत्रोत्तर लिखवाना, और जब कोई और काम नहीं होता तो ओकार का जाप कर रहा होता हूँ। या समाविश्य हो जाता हूँ। काम आता होगा तो मेरे मन की क्ययादा वो बन्द पाकर वह बापिस चला जाता होगा। ऋषि ने कैसा सरल और उत्तम उपाय बता दिया है। जो ब्रह्मचारी रहना चाहता है वह कभी अपने मन को खामोशी न रहने दे। वह किसी न

“स्वतन्त्रता का प्रथम पुजारी”

(लेखक: - डा० सूर्यदेवशर्मा साहित्यालकार भिद्वान्त शास्त्री,
एम. ए. एल. टी. डी लिट् अजमेर)

आज जो भारत में स्वतन्त्रता सूर्य का उदय हुआ, सारे देश में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक चेम्ना ने उत्तरोत्तर परिवर्तित होते हुये ओरु प्रदश किया है उसका शीगणेश किस महापुरुष ने किया था ? किसने ओरु रूप में इन सबको विशाल भारत निवासियों के हृदय प्रांगण में विखेरा ? यह इस लेख में पढ़िये ।

—सम्पादक



यँ समाज के प्रबलक ऋषि दयानन्द का पद सार के महान् सुधारकों में बहुत उँचा है। अब भारत स्वतंत्र हो चुका है लेकिन भारताय स्वतन्त्रता के लिये भूमि तैयार

करने में ऋषि दयानन्द क हाथ सबसे अधिक रहा। स्वतन्त्रता प्राप्त और देशोन्नति के जो र बाधन और सुधार ये उनका बीजवपन करने वाले ऋषि दयानन्द ही थे। हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों और पाखंड के खडन में जहाँ बह प्रप्रक्षर रहे वहाँ रचनात्मक कार्यों में भी बह अप्रगण्य थे। महात्मा गांधी के बहुसूत्र व्यापी सुधारों के लिये उन्होंने एक उच्चम भूमि निर्माण की। हिन्दू जाति में प्रचलित बाल विवाह बहु विवाह जाति पांति के भेद भाव पर उन्होंने प्रबल कुठारा घान किया। चङ्खुनोदाग आर्य भाषा प्रचार देव वाणी संस्कृत का पम्मान तथा प्राचीन भारतीय

संस्कृति का उद्वार उ-के मुख्य आदर्श तथा वहेश्य रहे हैं।

इन पम्सन सुधारों के अतिरिक्त स्वामी जी का नाम भारतीय स्वतंत्रता के आदि निर्माताओं में अप्दर के साथ लिखा जयग। जब भारत में स्वराज्य का कोई नाम भी नहीं जानता था और राष्ट्रीय कॉमम का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय सन् १८७५ में स्वामी जी ने अपने स्वार्थ प्रकाश में भारत बर्ष के लिये अखण्ड, स्वाधीन, स्वतन्त्र और निर्भय स्वराज्य का प्रतिपादन किया था और लिखा था कि विदेशा शासन काहे कितना भी अच्छा क्यों न हो अपने श सन से अच्छा नहीं हो सकता। इसलिये भारतीय स्वतन्त्रता के महान कर्णधार नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने स्वामी जी के सबध में अपने निचार प्रकट करते हुये लिखा था “स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महान् व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने न बीन भारत का निर्माण किया। इनी प्रकार कवि सञ्जाट

किसी काम में उसको मग्न लगाए रखे।

ऐसा संरम और ब्रह्मचर्य का चनी था हमारा आचार्य। जति के जीवन को सर्गीणरूप से सशक्त और तेजोमय बनाने के लिए ब्रह्मचर्य के शीषक की आज भी देखी ही आवश्यकता है जैमी ऋषि ने अनुभव की थी। प्रकृति प्रधान और हिन्दिय सुख परास्य परिचमी पन्थना से हमारे नभुषक और नभसुबतियां अनेक ऐसी बाँवें बीख रहे हैं जो

जीवन में से मयम को सर्वथा नष्ट कर देने वाली है। निनेमा इन गंयम विरोधी चीजों में शायद सबसे भयंकर है। गंयम हीनता की बाद को गोकने के लिए ऋषि दयानन्द के अनुगायियों को अपने आचार्य का अखण्ड ब्रह्मचर्य और मानव जाति के कन्याक के लिए दिया हुआ वखवा ब्रह्मचर्य का सदेश सदा स्मरण रखना होगा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने (जिनको कि महात्मा गांधी अपना गुरुदेव कहा करते थे) लिखा है 'आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर भारत को सत्य और पवित्र का जायति में लाने वाले गुरुवर दयादन्द को मेरा बारम्बार प्रणाम हो'। स्वराज्य के मूल मंत्र के साथ ही स्वामी जी ने स्वराज्य के साधनों अर्थात् एक भाषा एक देश, एक आराध्य परमेश्वर तथा पारस्परिक अवद्वेष और ब्रह्मचर्य के संदेश पर विशेष बल दिया और स्वयं एक आदित्र्य ब्रह्मचरी तथा सरल जीवन और सत्य के पुजारी के रूप में एक उच्च आदर्श भारतीय नवयुवकों के सम्मुख उपस्थित किया जिसकी सराहना विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी ने इन शब्दों में की थी:—

“महर्षि दयादन्द भारत के आधुनिक ऋषियों में सुधारकों में श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे, उनक ब्रह्मचर्य उनकी विचार स्वतन्त्रता, उनका सबके प्रति प्रेम, उनकी कार्य कुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते थे” स्वामी जी अत्यन्त ईश्वर विश्वासी, सत्य के पुजारी तथा सरल जीवन के प्रेमी थे और वह देशोत्थान में साम्प्रदायिकता को अत्यन्त अहितकर समझने थे। देश में राजनैतिक और धार्मिक एकता को उत्पन्न करने की दृष्टि से ही उन्होंने दिल्ली दरबार के समय भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के तत्कालीन नेता श्री केशव बग्नर सेन, सर सैयद अहमद खॉं तथा ईसाई पादरी आदि को आमन्त्रित किया था किंतु उस समय देश के दुर्भाग्य से इस कार्य में उनको सफलता न मिल सकी।

इन सबसे बढ़कर स्वामी जी का एक महान् विश्वस्थायी कार्य उनका सन् १८७५ ईस्वी में बनारस में आर्यसमाज का स्थापना करना था जिसकी शाखायें आज समस्त भात में तथा मलाया, ब्रह्मा, मारिशस, अफ्रीका फिनो तथा अमेरिका आदि तक विस्तृत हैं। साम्प्रदायिक भावना से दूर रह कर आर्यसमाज ने प्राचीन आर्ययुक्ति, हिन्दूजाति, हिन्दी भाषा, अज्ञोतोद्धार, जातभेद निवारण, विद्या भ्रार स्त्री जाति का उद्धार, स्वदेशी प्रचार तथा देशोद्धार के विभिन्न क्षेत्रों में जिस

त्याग तप, संलग्नता, साहस और सेवाभाव से महान् कार्य किया है वह किसी से छिपा नहीं आर्यसमाज ने अनेक ऐसे नवयुवक उत्पन्न किए जो देश की स्वतन्त्रता के लिये हँपते र अपने प्राणों का बलिदान कर गए औ उनमें से अनेक विद्वानों की साम्प्रदायिकता का शिकार बन गए। जहाँ एक ओर आर्य समाज ने हिंदूजाति और भारत देश में एक अद्भुत जागृति करने के लिये सैकड़ों डॉ. ए. बी. हाई स्कूल, कालेज, गुरुकुल, कन्या पाठशालायें आदि संस्थापित की, वहाँ दूसरी ओर स्वर्गीय स्वामी अज्ञानन्द, महात्मा हसराम तथा पञ्जाब केमरी ला० लाजपतराय जैसे महान् स्वामी नेता देश को दिये जिन्होंने अपने मक्त से भारतीय स्वतन्त्रता के पीछे को सींचा। श्री ला० लाजपतराय जी तो कहा करते थे 'स्वामी दयादन्द मेरे गुरु हैं मैंने संसार में केवल उन्हीं को एक मात्र अपना गुरु माना है, वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्य समाज मेरी धर्म की माता है।”

जिप्त आर्य समाज के कार्यचारों ने आर्यसंस्कृति की रक्षा और देश के उत्थान में इतना सक्रिय भाग लिया और ले रहे हैं उसके प्रबलक स्वामी दयादन्द वास्तव में आधुनिक युग के एक ऋषि थे। गुरु ब्रह्मणा चुकाने के लिये उन्होंने जो प्रत लिया था उसी को पूरा करने में उन्होंने अपना समस्त जीवन लगा दिया और अन्त में हँपते हलपते विषपान करके अपने जीवन को अर्पण कर दिया। सन् १९४० वीसवर्षी के सायंकाल को अजमेर नगरी में यह कहते हुये “ईश्वर तेरा इच्छा पूर्ण हो” बड़ स्वर्ग सिधार गये। दापाबली को हान और जागृति का वह सबसे बड़ा दीपक सदस्तों दीपकों को अपनी ज्योति से प्रकाशित कर सदा के लिये बुझ गया।

करें हम ऋषि की याद सद्दये,
दीपावली का यह शुभ पक्ष देश।
विश्व में हो वैदिक उत्कर्ष,
रहे स्वामीन हमारा देश ॥

स्वाधीन भारत में आर्य समाज

(श्री अबनीन्द्र कुमार विद्यालङ्कार)

(मान्य लेखक ने अपने रूप लेख में आर्यसमाज का आत्मशुद्धि और देश विदेश में विराटरूप धारण करने की प्रेरणा को है जिस प्रकार बौद्धों का भिक्तु वगैरे अथवा ईसाइयों का मिशन करता रहा है; परन्तु धर्मार्थ सभा बिना रातार्थ सभा कहीं तक सुयोजित हो सकता है यह पाठक गण स्वयं निर्णय करेंगे।

—सम्पादक



लखनन्दा की चोटों पर खड़े ऋषि दयानन्द आर्य भारत की करुण पुकार सुन कर वैयक्तिक मुक्ति का परिभ्यागर कर पीड़ित दलित और शोषित जन समाज की सेवा के लिए हिम शिखर से उतर आए। ऋषि की तपस्या का चमत्कार आर्य समाज के प्रसार के रा में दिखाई दिया। आर्य समाज बनारस के समान नहीं बल्कि विशुद्ध गति से फैला।

आर्य समाज धूसकेतु के समान आकाश में चमका। पर देश विभाजन के एक फटके ने आर्य समाज को बहों से समाप्त कर दिया जहाँ उसकी सर्व प्रथम त्रिविध स्थापना हुई थी और जो आर्य समाज का सबसे प्रबल दुर्ग समझा जाता था। देग के एक भाग से आर्य समाज का अन्त हो गया। आर्य समाज का ही नहीं उसकी किंजार धारा का भी अन्त हो गया। इसका कारण क्या है? क्या कभी इन पर हमने विचार किया?

कोई भी विचार आदर्श और धर्म दो ही प्रकार से फैल सकता है। चरित्र की भेद्यता और

फैलने में और जनता द्वारा आनाप जाने में कोई मन्त्रेह नहीं रहता। चरित्र और सेवा ऐसा आकर्षण है जो बिना किसी भी सुगंध और प्रशमक बना देता है। समाज ने शिक्षा प्रसार की अपनाना पर ये शिक्षा संस्थाएँ प्रचारक न बन कर बस पर भार हो गईं। आर्थिक कठिन दयों को दूर करने के लिये समाज को ऐसे मार्ग का अन्वेषण करना पड़ा जिससे इस के चरित्र की भेद्यता, उच्चरलता और तेज मन्द पड़ गए। आर्य समाज एक भट्टा था, जिसका कार्य मजबूत ईंटें बनाना था पर जब भट्टा बनाने वाले ही कमजोर और शिथिलता हो गए, वे मजबूत इंटें कैसे बनाते? आज हमारे समाज में जो भेद्यता नजर आती है, चोर बजार फैला हुआ दिखाई देता है मंदगी बढी हुई है सब के मूल में एक कारण है जिन पर ऋषि दयानन्द बराबर बल देते रहे। मार्ग का कटना था कि जब तक हमारा चरित्र शुद्ध न होगा हम अपनी नैतिक और मानसिक दुर्बलता दूर न कर सकेंगे और आर्थिक दृष्टि में बलवान न हो सकेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण हम स्वधीन हो गए, पर हमारी अवस्था पढ़ने के समान बनी हुई है।

गोचर नहीं होता। ऋषि ने जिस प्रकार के ज्ञानवान जन समाज की कल्पना की थी आज भी उसका कहीं पता नहीं है। आज भी हमारा समाज दूसरों की बुद्धि से मोचता है और दूसरे के लोभ से प्रकाश पाकर मार्ग ढूँढता है। मानसिक और बौद्धिक पराधीनता का अन्त नहीं हुआ। प्रश्न यह कि आर्य समाज इस कार्य को अब रूप परिवर्तित समय में कैसे करे ?

हरेक देश अपने सैनिकों का सम्मान करता है और उन पर गर्व करता है। परन्तु पहले उनकी आवश्यकता पूरी इतना है। पर हमारा क्या हाल है ? हम अपने शिक्षकों कार्यकर्ताओं और उपदेशकों से क्या वर्ताव करते हैं ? उनको भाड़े का दृष्ट समझ कर उनका पद निरास्र करने हैं और उनको माधारण पारिवारिक विन्ताओं से भी मुक्त रखने की चेष्टा नहीं करते। क्या आज के आर्य समाज में बसंदाी लखाराम का हाना सम्भव है ?

स्कूलों के सैनेजर अपने को डिक्टेटर से कम नहीं समझते। उनका शिक्षकों से व्यवहार तानाशाह के समान होता है। अर्थसमज को इस लिए महान् आश्चर्य की आवश्यकता है।

आर्य समाज में ठेकेदारों की कमी नहीं है पर क्या उन ठेकेदारों का वर्ताव अन्य ठेकेदारों से भिन्न होता है ? क्या वे अधिक महद्वयता से मजदूरों के साथ वर्तते हैं ? क्या वे मजदूर वर्ग को अपने जैसा ही आदमी समझते हैं ? यदि ऐसा नहीं है तो आर्य समाज कैसे आशा कर सकता है कि वह जन समाज में फैलेगा और जन समाज उसकी विचार धारा को स्वीकार करेगा ? प्रश्न यही आकर रुकता है कि वह नैतिक बन कहां है, और शुद्ध चरित्र कहां है ? त्रिभुजे जन समाज मुख हो कर आकृष्ट हो ?

इसलिए यह बात नहीं कि भारत के स्वाधीन हो जाने से आर्य समाज की आवश्यकता का अन्त हो गया, बल्कि वह पहले से दुगनी बढ़ गई है। उसको स्वाधीनता के रक्षक दृढ़ चरित्र के सैनिक तैयार करने हैं जो बड़ा से बड़ा प्रलोभन पाने पर भी देश को किसी भी खतरा में न डेरे और

राष्ट्र के साथ विश्वासघत न करें। आज भी देश में ९० प्रतिशत निरक्षर हैं और उनको ज्ञानवान बनाने की आवश्यकता है। आज ग्राम मूढ़ता और रोग के घर बने हुए हैं और इनको उनसे मुक्त करना है। लगभग १० लाख प्रवासी भारतीय दुनियाँ के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। उनके साथ मातृ भूमि का सम्पर्क बनाये रखने वाले शिक्षकों, प्रचारकों, मिशनरियों की जरूरत है। आज भी आर्य समाज के साहित्य का विस्तार ऋषि के प्रार्थों से आगे नहीं हुआ है जिसे वह दुनिया के समाने गर्व से रख सके और जिसको पढ़ने के लिए विश्व का विद्वन्ममाज लालायित हो। प्रश्न यह है कि यह सब कैसे हो ?

आर्य समाज में शिक्षार्यों की कमी नहीं है पर उनका मंचालन किसी विशिष्ट उद्देश्य से किया जाता है यह दिखाई नहीं देता। हिन्दी को ऋषि दयानन्द ने सर्व प्रथम अपनाया, पर आर्य समाज यह दावा नहीं कर सकता कि उसके गुरुकुलों की हिन्दी प्रमाणिक शिक्षा है और उसको ही सन्देह होवे पर प्रमाण मानना चाहिए, जैसे ऑक्मफोर्ड युनिवर्सिटी की अंग्रेजी प्रामाणिक मानी जाती है। गुरुकुल को खोज और अन्वेषण का केन्द्र बनाया जाय। दुनिया के किसी विद्वान को हिन्दी या संस्कृति के किसी ग्रन्थ के विषय में सन्देह हो तो वह उसकी विवृति के लिए गुरुकुल से परामर्श करना अनिवार्य माने। यह स्थिति हमको उत्पन्न कर देनी चाहिए। जन माधारण से संसर्ग बढ़ाने के लिए आर्य समाज को गाँवों की ओर मुँह मोड़ना चाहिए। सातवें दिन अंध्या और हृषण करने से ही उसको सन्तुष्ट न होगा चाहिए। गाँवों को सुन्दर और गेग मुक्त बनाने का यत्न करना चाहिए। जो वर्म, विचार और वादशी जनता को नीरोग, समर्थ और ज्ञानवान और प्रार्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनायेगा वही समाज जनता के हृदय में स्थान पा सकेगा।

आर्य समाज को आर्य संस्कृति के प्रचारकों का एक दल तैयार करना चाहिए जो अतिवादी तथा



व्य इल्पना से भी अद्भुत होता है। २५ वर्ष पूर्व की घटना है। वैशाल मास या रेगिस्तान की तेज गर्मी थी, बोधपुर में उस समय वाटर वर्क नहीं था। वहाँ एक बहुत बड़ा तालाब है जिसमें वर्षा ऋतु में पानी संचित किया जाता है और उसे वर्ष भर उपयोग में लाया जाता है। वहाँ पर एक सायकल की गमी से उत्तम होकर मैं भी पहुँच गया वहाँ एक ७० वर्ष के शुद्ध सज्जन को मैंने

हुआ, विचारार्थीन था। दरबारी गया दुबिषा में ये कि क्या उत्तर दे, क्योंकि उसका राजनैतिक प्रभाव रियासत की भावो स्थिति पर पड़ता था। अन्त में स्वामी जी के सुझाव के अनुसार उत्तर दिया गया। उस उत्तर से इंडिया हाउस (India House) में खलबली रूढ़ गई। भारत सरकार को आदेश आया कि बोधपुर महाराज से पत्रोत्तर देने वाले का नाम और सम्पूर्ण राज सभा का चित्र माँग कर भेजा जाय। ऐसा ही किया गया। ब्रिटिश राज सभा के चतुर निरीक्षकों ने चित्र पर नजर दौड़ाई

महर्षि दयानन्द को विष किसने दिया ?

(श्री देवीप्रसाद जोहरी)

सन्ध्या करते देखा। मुझे वह आर्य समाजी प्रतीत हुए अतः ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाएँ जानने की मैंने उत्सुकता प्रकट की, क्योंकि राजस्थान स्वामी जी का प्रधान कार्य क्षेत्र रहा था। उन्होंने कहा 'पहले वचन दो कि किसी से भी मेरा नाम नहीं लागे' विस्वास हो जाने पर फिर कहा— यूँ तो स्वामी जी के जीवन-चरित्र लखे हाँ गये हैं, परन्तु एक घटना का उल्लेख कहीं भी नहीं है और न उसे प्रकाशित करने का कोई साहस ही कर सकता है। एक बार ऋषि दयानन्द जोधपुर महाराज के दरबार में उपस्थित थे जब एक राजकाय पत्र ब्रिटिश सरकार की ओर स देही रियासतों के लिए आया

परन्तु वह कहीं न अटकती। जुड़ हो कर पार्लियामेंट का अ देश आया कि इन चित्र में वह व्यक्ति नहीं है जिसके मस्तिष्क से व उत्तर निकला है। महाराज से उस व्यक्ति का नाम और चित्र लेकर भेजा जाय। पुन स्वाम जी का नाम और चित्र भेजा गया अन्य रियासतों से भी उनके व्याख्यानों की रिपोर्टें सी० आई० डी० द्वारा पहुँच चुकी थीं। तुरन्त गवर्नर जेनरल की भतीनी मिली कि एक ऐस खतरनाक व्यक्ति स्वच्छन्द घूम रहा है जिससे ब्रिटिश सरकार को बड़ा खतरा है और तुम्हारा ध्यान उस पर नहीं गया, यदि शत्रु ही उसको गत विधि बन्द नहीं करते हो तो तुम एक अयोग्य शासक सिद्ध होंगे। और इसके बाद केवल कल्पना हाँ की जा सती है स्वामी जी को जगन्नाथ के द्वारा विष दिया जाना, परकारी डाक्टर की चिकित्सा और स्वामी जी के निर्वाण के बाद ब्रिटिश सरकार की आग्रह समझ पर बक्र टि इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी के लिए देख श्री महाराम मुन्शीराम (स्वामी भद्रानन्द) जी द्वारा लिखित पुस्तक Arya Samaj and its detractors।

प्रधानी भारतीयों का मातृभूमि के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध बनाये रखने में सहायता दे।

रवाजीन भारत में आर्य समाज पहले से भी अधिक महत्वपूर्ण और गौरवपूर्ण स्थिति में प्रस्तुत कर सकता है, यदि वह परिवर्तित स्थिति के अनुसार अपनी नया कार्य क्रम बनायेगा और सेवा का भीड़ मार्ग पकड़ेगा क्या हम ऋषि विद्यायोग्यता के इस पुण्य अवसर पर जन सेवकों, प्रचारकों, शिक्षकों, चिकित्सकों और मिशनरियों की एक विशाल सेना बनाने का संकल्प करेंगे ?

१५ अगस्त सन् ४० को जब आर्य समाज विविल लाइन्स लखनऊ में स्वीकृति दिवस मनाया गया तब मैंने प्रथम बार इस घटना को सुनाया। क्या कोई अन्वेषक इस सत्य पर प्रकाश डाल सके कि ऋषि का वास्तविक विष दाता कौन था ?

ऋषि उत्सव अत्यन्त हर्ष से मनाइये

(ले० देशभक्त कुँवर चाँदकरण शारदा, प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा

राजस्थान, मालवा, अजमेर)



ज दीपावली का पर्व है आज सारे भारत वर्ष में बड़े उत्साह से ऋषि उत्सव मनाया जा रहा है। हैदराबाद विजय से इस उत्सव की महत्ता और भी अधिक

हो रही है। और देवनागरी लिपि के प्रचार का सर्वत्र प्रबन्ध हो रहा है। विदेशी शासन के विरुद्ध मिटाये जा रहे हैं। निरंकुश शासन सब जगह से समाप्त हो रहे हैं।

स्वतन्त्र भारत में आर्य समाज का नवीन कार्य कम निमाय करने के लिए आर्यों की वृद्धि कार्य सम्मेलन की योजना बन रही है। हैदराबाद के बाद कारमीर और कारमीर के बाद पाकिस्तान पर आत्मसम्भूता की पत का लहराने के लिए आर्य पुन अखण्ड भारत के लिए आर्य वारों की वाजुएँ फड़क रही है हमें दुख है आज प्राचीन सभ्यता की हँसी करने वाले हमारे में ही बैठे हैं वे लोग अपनी नवागिरी इला में मानते हैं कि आर्यधर्म आर्य भारत संस्कृति का नान स्वतन्त्रता समाप्त में कहां न आजाय। वे लोग परिचिनियों की नकल करना और धर्मोन्मत्त मुलानों की खुरामद करना अपनी नेता गिरी का अङ्ग मानते हैं। आर्यसमाज व हिन्दू धर्म से घृणा करते हैं। पन्तु वे सफल नहीं हो पाते, अर्य समाज द्वारा प्रतिपादित सार्व भौम कार्य आर्य शासन भौम चक्रवर्ती राज्य ही शासन के तृतीय महायुद्ध को रोक सकता है। इसके लिए निरन्तर तेजस्वी प्रचार की आवश्यकत है। हमारे त्रिष्ठान्त सब समझदार व्यक्ति मान रहे हैं। निरचय ही आर्य समाज का उज्ज्वल भविष्य है। आर्य समाज जसा का पथ प्रदर्शक बनेगा और परमपवित्र वैदिक धर्म के ऊँचे के नीचे आकर दुखी असाह सुखी होगा। सधर्षि दयानन्द का यही सुख स्वप्न था जिसको पूरा करने के लिए हम दृढप्रती हैं। इसी लिये सभी प्रजाता के साथ दृढ संकल्प कर कर्म वीर बन कर आज हम ऋषि उत्सव तथा दीवाली उत्सव मना रहे हैं

हो गई है। हैदराबाद में विजय पर आर्य वीरो को स्थान २ से बध ई के सन्देश भजे गये हैं। आज उस मनस्वी महर्षि दयानन्द के गुणगान प्रत्येक आर्य कर रहा है क्योंकि उस तेज के पुत्र ने ही मानव जाति के लिये आज से ६२ वर्ष पूष प्राणों की अहुति दी थी। महर्षि के वैदिक सदरा ने आर्यों के हृदयों में स्वतन्त्रता की प्रबल वेदना उत्पन्न की, और सारे ससार में खबली मचा दी उस त्वाी तपस्वी ब्रह्मचारी धर्मवीर महर्षि दयानन्द सरस्वती ही अदृश्य आत्मा आज सर्वत्र काम कर रही है। इसका बाटिका के सचित्र कुसुमों का समग्र करके प्रत्येक नरनरी माला बनारहा है। स्वयं पहन रहा है, और दूसरों को पहना रहा है महर्षि दयानन्द चाहते थे कि सब को पेट भर अन्न मित्रे। रहने को मकान मिले। दवादाह का प्रबन्ध हों सुखी रहने के साधन सब का समान रूप से सम्पन्न हो। अध्येष्ठा सो अर्चिष्ठा का सिद्धान्त पालन किया जाकर सब भाई २ के समन है। भारत का विधान प्रजातन्त्र के आधार पर बन रहा है। यह आर्य समाज की भी जीत है।

देश के प्रांतों, राजसर्वों नगरों प्राणों के नाम बदल कर उनके स्थान पर पुन्वर प्राचीन नाम रखले जा रहे हैं। ताकि हमें हमारी प्राचीन संस्कृति पर अभिमान हो। राष्ट्रमाया दिदी कई प्रांतों में

T B.
टी० बी०

‘तपेदिक तथा पुराने ज्वर के रोगियो-ध्यान पूर्वक पढ़ो !

भारतीय ऋषियों की खोज का अद्भुत चमत्कार (JABRI) एक आश्चर्य जनक घटना जबरी

मेरी स्त्री अनेक दिनों से बीमार थी, आखिरी डाक्टरों ने ‘तपेदिक’ (टी० बी०) रोग बतलाया। ‘तपेदिक’ का नाम सुनते ही होश हवाशा उड़ गये। अन्त में डाक्टरों ने एकठरे करके दोनों फेफड़े खराब (गल्ल जाने की बात कह कर मुझे आदेश दिया कि रागी १०-१५ दिन का मेहमान है। इसको अस्पताल से ले जाओ और किसी अलग कमरे में रख दो। कई इसके पास न जावे थूक आदि से बचाव रखो। लाचार होकर उसको घर ले आया।

फिर क्या हुआ ? अखबार ‘मिलाप’ में आपकी दवा ‘जबरा’ का विज्ञान देखा। दिल ने कहा, वहाँ सैकड़ों रुपये हकीम, डाक्टरों की भेट चढ़ा चुका हूँ, यह भी खर्च करके देखलूँ। रोगी ने कहा कि जब डाक्टरों ने यह कह दिया है कि दोनों फेफड़े खराब हो चुके हैं और मैं १०-१५ दिन की मेहमान हूँ तो व्यर्थ क्यों खर्च करते हो, मुझे अब परमात्मा पर छोड़ दो। परन्तु दिल ने न माना और द्रुतत ‘जबरा’ न० १ का आर्डर दे डाला। पाचवे दिन पार्सल पहुँच गया और विधि के अनुसार औषधि शुरू करा दी गई।

फिर क्या हुआ ? वही आश्चर्य जनक चमत्कार। जिस रोगी के बारे में डाक्टरों ने मौत का फतवा दे दिया था और ६ मास बराबर इलाज करने पर भी सुधार न गया था, शक्तिशाली औषधि ‘जबरा’ ने दृष्ट दिखाने में ही अपना चमत्कार दिखा दिया, दुखार (बिल्कुल जावा रहा। शरीर में रक्त संचार होने लगा और दिल में पहेले की सी उमंग पैदा हो गई। दिल में पूषण से विश्वास हो गया कि जिस दवा ने इतनी जल्दी ऐसा चमत्कार दिखाया है क्यों न छी की एक बार वही ले जाकर पूर्ण रूप से परिचा कर कर आगे को इलाज का प्रबन्ध किया जाव। मेरा स्त्री को भी यही राय हुई।

फिर क्या हुआ ? जिस रोगी में चारपाई से उठने की शक्ति न था हज़ारों मील दूर की यात्रा करके ‘जगाचरी’ आ गई। यहाँ पूर्ण परीक्षा के बाद उत्तम रूप से औषधियों का प्रबन्ध हुआ, रोगी की तन्दु

पुता—रायसाहब के० एल० शर्मा एमड सन्स,

रस्ती दिन पर दिन बदलती गई और परमात्मा की कृपा से बिल्कुल ठीक हो गई है। यह ऋषियों के रक्त से सींचे हुए आयुर्वेद शास्त्र की पूर्ण सफलता का चमत्कार है। उपरोक्त घटना सरदार कर्तारसिंह इण्डियन मिलाटरी जनरल हस्पताल, कराची से घटी।

पाठक धुन्द ! यह एक नहीं और भी देखिये ?

(१) बाला काशप्रसाद वैश्य दारानगर (इलाहाबाद),
(२) बा० मुञ्जालाल स्टरकीपर सिम्बाब्वे शहर मिला पो० बक्सर (मेरठ), (३) बा० रामसिंह घर न० ६१ रीठा भखडी (देहरादून), (४) श्री तोमलकुसेन रईस मो० मुनेपुर पो० भरतकुण्ड जिला कैशवाबाद (५) श्री-विश्वर-प्रसाद तिवारी स्कूल नहुगावाँ पो० बालनगज (बिहार), (६) ठाकुरसिंह नैपाली मु० कटैया पो० हरलखी बिला दग्भगा, (७) श्री रामखलावनराम, भंखुराम पो बाजार गुनाई जिला आजमगढ़, (८) श्री लीलाधर कापरी, आर० सी० बाबू सेनातोरीयभ, मवाली जिला नैनीताल, (९) श्री गोविन्दराव चौधरी लायन रिथन कायन मार्केट नागपुर (सी० पो) आदि सैकड़ों सज्जनों का यही कहना है कि शक्तिशाली औषधि ‘जबरा’ दवा नहीं बल्कि यथाथी मे रोगी को काल के गाल से बचाने वाली ‘ईश्वरीय शक्ति’ है। सैकड़ों हकीम वैद्य, डाक्टर, अपने रोगियों पर व्यवहार करके नान पैदा कर रहे हैं। अनेक आदमी तार से आडर देते हैं। तार के लिए थोड़ा सा पता ‘जबरी’ (जगाचरी) (Jabri Jagadhi) लिख देना ही काफी है। मूल्य इस प्रकार है—‘जबरी’ स्पेशल न० १ अमरु के लिये जिसमें सय सय ताकत बढ़ाने के लिये सोना, मोत, अक्षरक आदि मूल्यवान भस्मों में पकती है मूल्य पूरा ४० दिन का कारी ७५) व नमूना दस दिन के लिये २०), ‘जबरी’ न० २ जिसमें कवल मूल्यवान लक्ष्मी पुटियाँ हैं पूरा कारी २०) व नमूना १० दिन ६) व० महसूल आदि अलग है आर्डर से अखबार का हवाला तथा न १ दो साफ लिख। द्रुतत आर्डर देकर रोगी को जान बचावें। १० दिन ही में अद्भुत चमत्कार दिखाई देगा। पार्सल जल्द प्राप्त करने के लिये मूल्य मनीआर्डर से भेजें, जिससे द्रुतत भेज दे।

रईस एमड बैंकस [२१] “जगाचरी” [पूर्वपत्र]

साहित्य शाला अर्थजनों की

सुविधा के लिये 'यजुर्वेद' सम्पूर्ण भाषानुवाद, सुतभ स ल और सुन्दर संस्करण के दानों भागों का क्रमशः मूल्य दो और दार्ढ्य रूपया मात्र हाठ वय्य पृथक् । इनके अतिरिक्त आर्य-साहित्य की खनस्त पुस्तकों के सुविधा सहित प्राप्त होने का एक मात्र केन्द्र स्थान ।
८० A.

अधिष्ठाता—प्रासीराम प्रकाशन विभाग
आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त, लखनऊ ।



स्वस्थ और
सक्रियता के लिए!

उरुकुल कांगड़ी फार्मसी का
च्यवनप्राश

एजेंट :
अवधके सोल एजेंट—एस० एस० मेहता, श्रीरामरोड लखनऊ

स्वाधित	१६०३
स्कूट वे दक साहित्य की पुस्तकें	
उपनिषद् प्रथम	५
सुमन-समग्र पं० विहारोत्तम साहू	१५
दृष्ट शो सागर पञ्चमना	१॥
अमृत वर्षा शा भाग ना. एव मीकृत	१५
शरद्वारापथ की कथा	॥
पाश्चात्य विधि	५
अज्ञीत (२) वक्र दृष्ट दृष्ट भाग	५
स्वामीदशानन्द का का जीवनचरित्र	१॥
ईश्वरार्थ का प्रथम ब्रह्म, प्रथमेश्वर	१५
ज्ञ सुवचना सन्निह	५
पम (२) का (३) प्रात और १ जो	१२
दुर्वाकर मन्नापज्ञी	१॥
इवन कुयल का १) ताव	५
ज्ञो भवननाला दो भाग	॥
पद्योप द १) अजी, कामप्र १) सर	
नासाकालो ॥५) पाठ विज्ञान	५
इशानो १॥) श्या प्रदाव	१॥
परेल्ल (१) का ॥) कथमव सर्वथ	१॥
नार.पम (१) का १)	१५
काव्यक नात ॥५) मर्तुहरि शतक १॥	
इशविद नल्लम, (३) ज्ञो उ.देव १)	
सर्वप्रथम १॥॥) सरकारविष ॥५	
तन-शतक १) तैव-ग वीनाल	५
मनुस्मृत (२००) तुलसाराजो)	५
सारे यहाँ प हर उकर की पुस्तकों के	
लिट सूचना सूफा मगादेव ।	
श्यामलाल ब.सुदेव भारतीय	
आर्य पुस्तकालय बरेली	

शरद्वेद कृष्ट की अद्भुत दवा
विष उखाने । जोरों की शक्ति में
अधिक प्रयुक्त करना नहीं चाहता । यदि
इसके १ दिन के लेप से सफेदी के शम
नक से आराम न हो तो पू-य बापस जा
पावे -) डिस्ट में १२ शर्त लिखा
ले । मूल्य २॥) २६ A
पता—अमृतशोधशाला वेल्लु।

स्वामीदशानन्द प्रभाकर अग्रवाल अल्मीगदकी
अमृत शक्ति

वालजिब

अमृत शक्ति

अमृत शक्ति की हार एक बीमारी को दूर करने की
कमजोर शक्तों को नाकाम कर खाना की
शरीर की शक्ति को बढ़ाने से बढ़ने वाली बीमारी
नहीं होगी हीन आत्मनी मेनिकल आयोग ।
— ५० शी-७) जून २॥॥) डा. अमृत शक्ति
अमृत शक्ति की हार एक बीमारी को दूर करने की
कमजोर शक्तों को नाकाम कर खाना की
शरीर की शक्ति को बढ़ाने से बढ़ने वाली बीमारी
नहीं होगी हीन आत्मनी मेनिकल आयोग ।
— ५० शी-७) जून २॥॥) डा. अमृत शक्ति

आय जगत् की सूचना
वर्षिक उत्सवों, विवाह आदि
द्वारा करी, पर्वों तथा भाषण
द्वारा कथा पत्रों के लिये भी
अगस्त का मूल्य (कवि) एवं उत्सव
सूचना तक ब.क. महान नं०
२१६ का (२६) (२६) की याद
द्वारा १९३३ H

श्रीमद्दयानन्द सप्ताह में प्रचारार्थ १ मास तक

१०) की पुस्तकों पर एक आना तथा इनसे अधिक पर दो आना रूपया कमीशन दिया जावेगा।

स्वा० दशानानन्द जी कृत—उपनिषद् प्रकाश ४) सांख्य दर्शन १॥, न्याय दर्शन २), वैशेषिक दर्शन २॥) श्री नारायण स्वामी कृत—अष्टौ वर्षा ३ रा भाग २) आत्म कथा २) प्रयागामत्रिभि १) साम्बवाद २)। आचार्य श्री रामानन्द शास्त्री त्रिहार कृत हिन्दुत्व की विजय २) वैदिक लोक व्यवहार १) भारतीय विचारधारा २) सत्यनारायण की प्राचीन पद्या ॥) वैदिक मत्संग १) हमारे नेता ॥२) मन संपद २) पञ्चा के अंगारे १॥) भारत आदर्शगन्तमाला ३॥) स्वाधीनता का बल्प वृक्ष ६ टा भाग १) इष्टधर्म १) दृष्टान्त सागर २॥) शिवाजी १॥) इरी विह नलुआ १) बर्डिल हिन्दी र्ण ५) प ६ विज्ञान ३) स्वास्थ्य शिक्षा २॥) मुमाफिर भजनावली १) नगमये मुमाफिर ॥) तेजसिंह शतक १) भास्कर १, गीतांजलि ॥२) महाभारत भाषा २), Daily Prayer of An Arya ॥) Hindu Mythology ३)।

इन पुस्तकों पर कमीशन नहीं है

स.यार्थप्रकाश १॥) गंधारविधि ॥॥) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका २॥) वेदमूल चारों (२) यजुर्वेद भाषा भाष्य ६) सामवेद भाष्य २) गीता रहस्य (तिलक) १) mon ४) Vedang Jotish ५) अर्य विवाह पद्धति १) आर्य पर्व पद्धति १) योग रहस्य १) त्रिगार्थी श्रीवत्सहस्य ॥) त्रियों का वदाध्य न १) वैदिक उलोतिव शास्त्र १॥) वैदिक सिद्धांत २॥) श्री सुयोगी ६) योग प्रदीप (स्वा० श्रीमानन्द जी) १२) कर्त्तव्य दर्पण १) पुरुषार्थ प्रकाश २) पातञ्जलि योग दर्शन ५) वेद भाष्य ऋग्वेद ३५) अथर्व वेद २)।

श्यामलाल मन्थदेव

वैदिक पुस्तकालय, नाला फतेहगंज लखनऊ

ग.नमैन्ट रजिस्टर्ड भी. पर च बोर्ड से— सार्टी फिकेट डिप्लोमा)

वेद्यधिकार ७) वेद्यभूषण ८) वेद्यहास्वी ९) वा वेद्यज्ञ की १०) ६० फीस में बकर पूरा पत्र विधान म गुक म प्र योग्यता पत्र काय जाद मी के दम्पत्यो भवेत् मे ७७ रा प्र सर्टीफिकेट मना ल विद्ये १७ विषयों की परीक्षा निषमावली भेस दो प्र ने का डिग्रे मे बकर मना लिन्वि ।

आल० ई० बी परीक्षा बोर्ड (राजि०)
कलकत्ता (कां०) ६० पी०

आवरण ता

पत्रमें से विक्रयनादृष्ट कर-प पठनाका रचना जि, ने गीताक के विद्ये व र्ण ले ड व हाई इल अथवा इस्टर सी, टी कथा पत्राओं की आव श्यकता है, वेतन सफा दू रा निर्धारित धार्मिक पत्र पूर्ण वि- व व सहित मन्त्री के गव याने चाहिये। २५९ B, १८-४१

ई की कन्या पाठशाला

भारतीय संस्कृति की तीन पवित्र शृङ्खलायें

(श्री २० वि० धुलेकर एम० एल० ए०)

वर्तमान भारत के उत्थान के प्रधान विधायक मेरी सम्मति से तीन महा पुरुष हैं। क्रमशः महर्षि दयानन्द, लोक मान्य लिंक और राष्ट्रिता महात्मा गांधी। इन तीनों वर्तमान भारत को अग्ने हाथों से बनाया। अन्य महान व्यक्तियों और महा पुरुषों का इन्होंने योगदान नहीं है अथवा उनकी महत्ता किसी प्रकार कम करने का मेरा उद्देश्य है ऐसा न समझा चाहिये। अणु अणु मैं उसी परमात्मा का पूर्ण प्रकाश है।

किन्तु अब हम लौकिक दृष्टि से विवेचना करते हैं तो हम किसी न किसी वस्तु अथवा व्यक्ति को अधिक महत्ता देने पर बाध्य हो जाते हैं। महर्षि दयानन्द का आगमन ऐसे समय हुआ जब भारत वर्ष अपनी संस्कृति, अपनी भाषा अपने साहित्य, अपनी जानीयता, अथवा यों कहिये कि अपने धर्म, अपनी आत्मा का अनेक, शताब्दियों के परधर्मिय दुष्ट राज्यों से रक्षा करते करते थक सा गया था। कारण बड़ा बिकट था। दक्षिण में श्री गुरु समर्थ रामदास और शिवाजी प्रभृत, उत्तर में श्री गुरु नानक और उनके शिष्य वर्ग तथा श्री तुजसोदास तथा उनके अनुयायियों के प्रयत्नों में मुसलमान परास्त हो रहा था कि अकस्मात् पश्चात्य जातियां स्पेन पुर्तगाल, फ्रांस तथा इंग्लैंड के निवासी, छद्म वैपचारी वाणिकों के रूप में आघमके। परिस्थित बही हुई जो स्पष्ट है कि यदि कोई पहिलवान जेद दो घंटे किसी दूसरे शक्तिशाली पहिलवान से लड़ते लड़ते उसे चित करने पर तैयार रहा हो और ऐसी भारी हुई दम के समय, एक नहीं आर चाहा और अन्य ताजे पहिलवान उस पर दूट पड़े। आश्चर्य यह नहीं है कि वह पहिलवान द्वारा क्यों? आश्चर्य तो यह है कि वह भीत ही रहा क्यों?

सारे जगत के इतिहास में ऐसा देश कोई नहीं है जिसके निवासी शताब्दियों तक पर राज्य में रहें और भीत रहें। क्या योरोप, क्या अफ्रीका, क्या एशिया,

भारत से बाहर किसी देश को, देखिए, आक्रमण हुआ कि या तो वहाँ के आदि निवासी उन्मूलित होकर नष्ट हो गये या अपनी संस्कृति खोकर दूसरे बन बैठे। किसी अन्य समय कहांने वाले देश में आदि निवासी न मिलते हैं और नउनकी संस्कृति ही मिलती है।

भारत में, जिसे लाखों वर्षों का तुफान देखा पड़ा है, उसके सिरके ऊपर से सहस्रों आरति रूपी बाटे आई और निबल गयीं किन्तु वह अभी तक वैसा ही खड़ा है। लोग कहते हैं कि भारतवासी बड़े भीमे चलते हैं, बली बदलने पर तैयार नहीं हैं, नई रोशनी लेने पर तैयार नहीं, पश्चात्य साइन्स और पश्चात्य रहन सहन लेने पर तैयार नहीं है, बड़े ही बट्टर पथ हैं—किन्तु तुलसी तब जो के बचनों में “जो आधिक चने भट न कहाई।” अथवा यों कहिये कि जली बली रंग गिरगिट ही बदल सकता है। जिस रंग में मौनिकता होती है वह बदलता नहीं। बाहरी स्पर्श से मैला हो सकता है किन्तु बदलता नहीं। मैल के छूटने से फिर वैसा का वैसा हो जाता है।

उपरोक्त विवेचन इस कारण किया गया कि यह स्पष्ट किया जा सके कि इन तीन महा पुरुषों ने क्या किया जिस से मैं उन्हें वर्तमान भारत का रचयिता समझता हूँ।

अप्रैजी राज्य की स्थापना के बाद महर्षि दयानन्द ही प्रथम महान व्यक्ति थे जिन्होंने भारतवर्ष का पुनर्निर्माण कार्य सर्वोत्तम अन्दोलन द्वारा प्रारम्भ किया। वर्तमान समय में जितनी प्रशंसा की हलचलें दिखाई देती हैं लगभग सबके अन्तर्गत महर्षि जी थे। महात्मा गांधी ने भारतीय उत्थान के लिये सत्य और अहिंसा के जो बीज मंत्र प्रचारित किये उनका मूल महर्षि ने वेदों के अध्ययन और मनन के रूप में प्रारम्भ किया था, वेद ही भारत को आत्मा हैं वे ही ईश्वरिय ज्ञान हैं और भारत की उत्थान के प्रधान तत्वों का जन्मदाता हैं।

क्या किसी शास्त्र पुराण अथवा मत या सम्प्रदाय के प्रथो में पायी जाती है उन सभी का बीज वेदों में पाया जाता है। जो भी मत या सम्प्रदाय भारत में जब कभी हुआ उसने अपने मत की पुष्टि में वेदों का ही सहारा लिया। अन्य मत से विरोध बताते हुये प्रत्येक ने यही प्रतिपादन किया कि उसका मत वेदानुकूल है अन्य का नहीं। अद्वैत केबलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, परमात्मा जीव और प्रकृति का अनादित्य, मूर्तिरूप अवतारवाद, यहा तक कि नातिस्कवाद तथा भक्तिवाद सभी का मूल सभी ने वेदों को ही बनाया है। श्री मद शंकराचार्य का मायावाद उसी पर अवलम्बित है। श्री रामानुजाचार्य और श्री रामानन्द जी तथा श्री तुलसीदास भी सभी वेदों का ही आश्रय लेते है। इस को महर्षि दयानन्द ने पहिचाना और अंग्रेजो राज्य के उखाटन तथा भारत को सुन आत्मा को जाग्रत करने का यही मार्ग ढूँढ निकाला। अन्य कोई भी मार्ग का अवलम्बन निष्फल होता। भारतीय समाज, - वास्तव में हिन्दू समाज, के एकीकरण के लिए वेद और वैदिक तत्व ही ऐसे मन्त्र थे जिन्होंने भारत की सुप्तात्मा को जगा दिया, अकेले हुए शरीर में शक्ति का संचार कर दिया और अंग्रेजो राज्य के दृढ़ मूल को हिलाने के कार्य का श्री गणेश कर दिया। वेदों के अध्ययन और वैदिक मार्ग के अवलम्बन के प्रचार के साथ २ भारतीय समाज की अनेक झुटियों को दूर करने का भी प्रचार महर्षि जी ने किया। मथपान निषेध, स्त्रियों में पर्दा प्रथा हटाना तथा उनमें शिक्षाप्रसार, बाल विवाहों का बन्द किया जना, दलित जातियों का उद्धार, मानवीय समानता शुद्धि अथवा अगत की समस्त पिछड़ी हुई जातियों को सम्य अर्थात् आर्य बनाना। महर्षि दयानन्द जी ने ही सर्वप्रथम आदि

प्रचारक होते हुए राजकारण में हाथ डाला और सत्यार्थ प्रकाश में प्रथित कर दिया कि विदेशी राज्य अर्थात् परराज्य से किसी प्रकार का देशी राज्य स्वराज्य भी अच्छा है। इस महामन्त्र से भारतीय स्वराज्य आन्दोलन को जितना बल मिला है उसको मात्रा को वर्तमान भारतीय नही जानते। वेदों में स्वराज्य की महिमा गाई गई है और मानुभूमि स्वर्ग से भी ऊपर तथा यितर है यह हमारे पूज्य महर्षि ने ही बताया और इस स्वराज्य मन्त्र ने प्रत्येक भारतवासी के हृदय में अनजाने घर कर लिया और जब लोकमान्य तिलक ने "स्वराज्य हमारा अन्त सिद्ध अधिकार है" रूपी सिंह गर्जना की और तत्पश्चात् महात्मा गांधी ने इसी स्वराज्य वाक्य के लिए सत्याग्रह सविनय अवज्ञा का आन्दोयन "रराज्य" (अंग्रेजी राज्य) के विरुद्ध जारी किया और आगे चलकर 'भारत छोड़ो' (Quit India) का शब्दानुस किया तो सारा भारतवर्ष इन तीनों व्यक्तियों से गुञ्जित होकर परतन्त्रता से मुक्त हो गया।

भारत की मुक्ति के इतिहास को इस शृङ्खला—महर्षि दयानन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी—को बनाना ही इस छोटे से लेख का उद्देश्य है। शृङ्खला की तीनों कड़ियों कितनी पवित्र कितनी दृढ़, और कितनी आत्मोय हैं यह तो स्पष्ट ही है।

दीपावली का उत्सव जिस प्रकार अन्धकार में प्रकाश उत्पन्न करता है महापुरुषों के जीवन को भी इस पवित्र दिन ने प्रकाशित कर दिया हम बड़ी नम्रता से उनके चरणों में अर्द्धाञ्जलि अर्पण करते हैं।

जो आज हम हैं वे उन्हीं के कारण हैं। इति शुभम्

विशेष सूचना

श्रीप्रता में 'आर्यमित्र का ऋष्यक प्रकाशित करने का निश्चय होने के कारण हमें पिछला अङ्क २१ अक्टूबर) का बन्द करना पड़ा था। अब यह ऋष्यक प्रकाशित हो चुका है जो आपके हाथों में है।

दीपावली के अवकाश के कारण अगला अङ्क (४ नवम्बर) बन्द रहेगा, और आर्यमित्र का अगला अङ्क ११ नवम्बर को प्रकाशित होगा। ग्राहक कृपया नोट करें।

- सम्पादक

माननीय भी निसार अहमद शेरवानी
मन्त्री कृषि विभाग युक्त प्राप्त ने निम्न सन्देश आर्यमित्र
के श्रुयक के लिये दिया है। माननीय कृषिमन्त्री
का यह सन्देश हम देर से प्राप्त कर पाये हैं,
अतः यथा दिया जा रहा है —

‘मुझे यह जानकर बड़ी खशी है कि आर्यमित्र महर्षि
स्व. • दयानन्द सरस्वतीजी महाराज की यादगार में पिछले
साल की भांति इस साल भी श्रुध्यङ्क निकाल रहा है।

दयानन्द जी महाराज हिन्दुस्तान के उन महापुरुषोंमें
से एक हुए हैं जिनपर हर समझदार इन्सान को फल है।
स्वामी जी महाराज ने एक परमेश्वर की पूजा फिर खिलाई।
सारी दुनिया के सब मनुष्यों को एक साथ प्रेम पूर्वक
मिलकर रहना बताया। मूर्ति पूजा, नशीली बस्तुओं
का सेवन, श्रुतछात धार्मिकता के बन्धन, बचपन की शारी
आदि ली रस्मों के खिलाफ अपनी जोरदार आवाज
उठाई और हिन्दुस्थान के निवासियों में सबसे पहिले
स्वराज्य स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न किये।

हिन्दू जाति पर ही नहीं बल्कि देश के सभी निवा
सियों पर उन उपदेशों का बहुत बड़ा असर पड़ा। इस
लिये हम सब उनके बहुत बड़े श्रेष्ठ हैं। ईश्वर से मेरी
प्रार्थना है कि हम सबको उनके बताए हुए मार्ग पर
चलने के लिये सद्बुद्धि दें। इस श्रुध्यङ्क की सफलता के
लिए इस शुभावसर पर मैं अपनी शुभकामना प्रकट
करता हूँ।

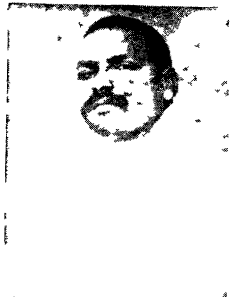
निसार अहमद शेरवानी

♦♦♦♦

श्री प चर्चपालजी विशालकार सम्पादक आर्यमित्र



श्री पण्डित रामदत्त शुक्ल एम ए एडवोकेट
मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा



♦♦♦♦ ♦♦♦♦

भीमती विज्ञान वाला जीहरी
जी. ए. विद्युपी



आपका लेख पृष्ठ ३४ में देखिये

सम्पदकीय—

महर्षि की स्मृति में

आदि सृष्टि से आज तक जितने भी महा पुरुष प्रत्येक युग में और प्रत्येक देश में अचनीय होते रहे हैं युग धर्म के अनुसार उनके कार्यों में वैभिन्न्य प्रतीत होता है परन्तु उन सब के मूल में एक समानता मिलती है और वह है सत्य की परकट शोच और भ्रमा। वेद के शब्दों में हम उसे मेवा और भ्रमा कहते हैं। चरित्र के इन दो अंगों का जिस मात्रा में किनी व्यक्ति में विकास होता है उसी से हम उसकी सापेक्ष महानता का अनुमान करते हैं।

इस मान दृष्ट को लेकर जब हम ऐतिहासिक विभूतियों को नापते हैं तो महर्षि दयानन्द की उषता पर हमारी दृष्टि सहजा नहीं ठहरती। योगी भरविन्द ने तो यह लिखा है कि ऋषि दयानन्द, अथ महा पुरुष रूपी पवत शृंगों के मध्य सर्वोच्च गौरीशरकर शृंग के समान है जिसके हिमालोक से दराक चकाचौंध में आ जाते हैं, परन्तु जिस हिमाली की वेगवता धारकों से ही यह धारा परिष्कृत हो रही है। यह सत्य है कि महर्षि दयानन्द ही महानता का समकालीन भारत और संसार पहचान नहीं सका है, परन्तु वह समय आयगा जब अन्य गिरि शृंगों को विजय कर इस महान शृंग पर पहुँचने का भी यात्री गण प्रयास करेगे। वह उसी विजय कर सकेंगे इसमें सन्देह है, क्योंकि उसका उद्गम स्थान भौतिक जगत् से ऊपर उग मानन्द लोक में स्थित है जिसकी धारा को, ऋषि ने रोग, शाक, दुखद्वै यपीकृत इस पृथ्वीतल पर बहाना बाहा था।

↑ ऋषि की सर्वोत्कृष्टी प्रतिभा किस प्रकार अपना आलोक विकीर्ण कर गई है यह अध्ययन की वस्तु है। जो लोग कविपत्र धृष्टों को ही उपाय धमक रहे हैं वह ऋषि की सृष्टि पर एक बिहंगम दृष्टि न बाख

गकेंगे, वह न समझ सकेंगे कि ऋषि की कामना क्या थी। यदि वह महर्षि का बिराट रूप देल लें तो अर्जुन के समान स्तम्भित हा जायें, यदि महर्षि का उत्तराधिकारा आर्यसमाज वा रूप का दर्शन कर लेता तो पार्थ के समान निरशय होकर कार्य क्षेत्र में पदापण करता। तब गुह कुन श्री कालेज पार्टी, विचबाभ्रम, अनाथालय आदि संस्थाओं के फेर में पड़ कर उर्ध्व समय नष्ट न करता, तब वह राष्ट्रवाद से सतुष्ट न होता वरन् सार्व भौम चरित्र के अधार पर अन्तर्राष्ट्रीय सगठन का वीजरोपण करता आर उसका नवाकुरित पीचा, आय परिवार, ग्राम, नगर, मडल, राष्ट्र का रूप यथा क्रम धारण कर एक विशाल बट वृक्ष का रूप धारण कर लेता जिसकी सुलदायिना छाया में इस मर्या लोक का प्रत्येक देश, पक्षी धम अपने कोटों का बिरबाध सहित निर्माण करता।

आज के युग में एकता पर बहा बल दिया जाता है। हिन्दू हिन्दू एक, हिन्दू मुस्लिम एक, एशिया की एकता, मुस्लिम देशों की एकता, एगला सैकून एकता न जान कितने एकता के रोग अलापे जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सघ तक बने हुये हैं परन्तु एकता का मूल मन्त्र क्या है इनक जान बिना एकता सम्भव नहीं है। ऋषि दयानन्द ने भारत हा नहा बापतु सकार की सब समस्याओं को सुलझाने का एक नाग बनाया था; नह था, ईश्वरय आदेश, मोनभ्रम हाता। जिसका भाव सार वेद है। इन 14यम में वेद कहा है "समानोमन्त्रः समिति. समाना, समान मनः सच्चित्तमेयाम्"। उन शारशत नियमों क ज्ञान के आ धार पर, जिनपर प्रकृति चल रही है, उनक अनुकूल अपने मन और बिच आदि का बना क ही नसा से युद्ध की काकी छाया का, अर्धक की कट्ट। क

दूर किया जा सकता है। इसके लिए यदि आदि में सचपै भी करना पड़े तो वह भी अन्त में सुख दायक ही होगा। ऋषि की इच्छा थी 'चक्रवर्ती साम्राज्य'। किसका ? सम्प्रदायो का, राष्ट्रों का हिन्दुस्तान का ? क्या यह सभी इम्पेरियलिज्म का प्रतिपादन है जिन्के पताक ब्रिटिश आदि साम्राज्य थे और जिनकी वट्टी स्मृतियों का दुस्वप्न के समान हम आज भी भूल नहीं है ? नहीं ! ऋषि का साम्राज्य था, वैदिक साम्राज्यवाद महात्मा गांधी के शब्दों में 'रामराज्य' हज़रत मुहम्मद के शब्दों में सुल्तान और महात्मा इमा के शब्दों में Kingdom of Heaven । हाँ, महापुरुषों की यह इच्छा अवश्य थी कि उस क प्रदूत एतद् शवाभा हो ही क्योंकि मनु के शब्दों में वह हमारी ही परम्परा है—

“एतद् शानसूतस्य एकशब्दप्रज्ञानम

एव एव चान्न शिष्यैरुपगत्या सव मानवा”

प्रश्न यह है कि ऋषि का उस इच्छा का पूर्ति कैसे होगा, ऋषि ऋषि का परिश्रम कैसे होगा ? आज हम आत्मनिर्वाण करे। जब देवा सामूज्य का स्थापन करे। है तो अथम अपने स ही आरम्भ करे। अपने दुःसात, दानव वृष को रमन करे। अपने परिचार, अपने माम, अपनी जात का कुलतया से, अष्टाचार से मुक्त करने का बाधा उठये। दूसरे का नश्वो का ताड़ करून से पहले अपने आत्मा का तिरु दख ले। महापुरुष न सत्याथ प्रकार से तारायुतया सब सम्प्रदायो का खण्डन किया पर तु विशुषतया क्रियात्मक पग दिदुष्टो के बिकर हो उठया। आज युग युगान्तर का कुर्ीतया की गचार। हल चुने है पर तु उन्हे धरासाया कर, नव निर्माथ क ना शीर है इतक बिना हम परस्पर क्रिया में भी अपने वि विश्वाव पैदा नहीं करकेगे। प्रथमसमाज क शुद्ध आदि आदालनों की निकरता का मूल कारण, राष्ट्र विभाजन का आचार, इवल यश इमा की कुकुचत मनोवृत्ति है। एक आर हम हिन्दु के मोह में बुला तरह जकड़े हुए हैं, दूसरा आर गरचात्य रकृति का आलाक हमें दिवाभ बनानये दे रहा है दीप माझाआ के आलाक में आन नगर जगमगा रहे हैं। विवला से मैदा को प्रकचारे कया की।

घनघोर तमिष्ठा को दूर कर मात्र के निविक्र अन्वषर को दिन के प्रकाश में बदल देने को सूर्य से स्वर्षा कर रही हैं। गगनचुम्बी अट्टालकार्ये सहस्रो दीपों से घु तिमन होकर गव स मस्तक उन्नत किए हुए अपने सौन्दर्य पर इठलाती हुई नक्षत्रलाक से प्रतियोगिता कर रही हैं। इन महलों के बाधी विविचित्र बन्नाभूषण धारण किए हुए वेब दुलभ वाहनो में इतस्तत घूमते हुए हास-भिलास करत हुए अभिनय गृहो में नाट्य आदि कलाओं का आस्वादन करत हुए आज इन्द्रपुरी को भी लाजत कर रहे हैं। परन्तु अन्त करणो में तथा नगरो की इस परिाथ के बाहर आज भी उतना ही घनघोर अन्धकार फैला हुआ है जितना उस अभावस्था का था जब ऋषि दयानन्द का जीवन दाप निवाया का प्राप्त हुआ था। प्रकृति आज भी वैधी हा स्वय है, जन यो में आज भा वैधी हा स्थित है। वहा अघकार, वही कुरातिया, वही राग शाक, दुख दन्य और दारिद्र्य लयडन नृत्य कर रहे हैं जिस दख कर महापुरुष दयानन्द का हृदय व्रथाभूत हो उठा था। जिस कण्य प्रकार, निहल चात्कार का सुत कर वह हिमालय की प्रसात कन्दराओं आर मखरस के अमृत का त्याग कर इब कठार का भूम पर अन्तर्गुण हुए थे।

दुःखों आर प्रातक्रियावाद का, साम्प्रदायिकता की, राष्ट्रवाद की क्रमबद्ध वाहानया ससार का आगन्कुण्ड म डाल देना चाहता है। कहा इ वह आन्वीर ने प्रातमा और आत्म विश्वाव करे, मेवा आर अदा से धृष्टि का नूतन निमाथ के।

कृतज्ञता प्रकाश

शीघ्रता में अन्विक्र प्रकाशित करने का अनरघय हान के कारण हम इस अन्विक्र को इतना सुन्दर रूप न दे सके जसा कि चाहते थे। फिर भी जा कुञ्ज बन पड़ा पाठको का सेवा में प्रस्तुत है। हम अपने उन सभा लेखको कवि यों तथा अन्य गहयोगियों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने कि अपना अमूल्य समय देकर हमें अनुगृहीत किया। जिन लेखको की रचनारों देर से आने, अथवा स्थानाभाव के कारण इस अन्विक्र में स्थान नहीं पा सकी उनसे हम लमा प्रार्थी हैं। अगले अन्विक्र में यथाकृण्ड स उन रचनारों को प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे।

महर्षि के जीवन से संबन्धित कुछ तिथियां

सम्बत् १८८० वि० (१८२४ ई०) को भी स्वामी जी महाराज का जन्म हुआ।

सम्बत् १८८४ वि० मघ वदी १० शिवरात्रि) (जन् १८२८ ई० को मूर्ति पूजा क प्रति अश्रद्धा हुई।

सम्बत् १८८६ वि में छोटा बहिन का देहान्त हुआ।

सम्बत् १८८६ वि में चचा की मृत्यु हुई।

सम्बत् १८९१ वि० में घर छोड़ा। सम्बत् १८९३ वि०

में अन्तिम बार घर छोड़ा। सान्यास ग्रहण करने 'दयानन्द' नाम धारण किया।

सम्बत् १८९७ वि० में भी स्वामी विरवानन्द जी की सेवा में मधुग पहुँचे।

सम्बत् १८९० वि० वैशख मास (अग्रैष सन् १८६३ ई०) से प्रचार काय आरम्भ किया।

सम्बत् १८९२ वि० फाल्गुन शुक्ल १ को हरिद्वार के कुम्भ मेल पर गुरुकु और १५२ 'पालख खण्डनी पताका' गाड़ी।

सम्बत् १८९६ वि० कार्तिक सुदी १२ मगल (६ नवम्बर सन् १८९६ ई०) का काशा का सुभासद खाखाय 'प्रतिमा पूजा विचार' पर हुआ।

सम्बत् १८९६ वि० पौष वदी २ (१६ दिसम्बर सन् १८७२ ई०) का कलकत्ता पहुँचे।

फाल्गुन वदी १० (२२ फरवरी सन् १८७३) के व्याख्यान का अनुवाद कलकत्ता में जनता सन्मुख अनुवादक ने अशुद्ध पत्र किया।

सम्बत् १८९० वि० चैत सुदी एकादशी (८ अग्रैष सन् १८७३ ई०) को पाण्डित ताराचरण जी के साथ दुगली में शास्त्रार्थ हुआ।

सम्बत् १८९३ वि० पौष कृष्ण ४ शनिवार (६ दिसम्बर सन् १८७३ ई०) को काशी में एक संस्कृत पाठशाला खोली गई थी।

सम्बत् १८९१ वि० के ज्येष्ठ (अर्थात् सन् १८७४ ई० में मई मास) को हन्दी में सबसे पहिला व्याख्यान काशी में दिया था।

सम्बत् १८७२ वि० चैत्र शुक्ल १ बुधवार (७ अग्रैष सन् १८७५ ई०) को बम्बई में आर्य समाज सबसे पहले स्थापित हुआ और आर्य समाज के नियम बने जो सख्या बर्धनपुर में दृष्ट से अदिक थे।

कार्तिक वदी ३० अर्थात् आम वस्या (३० अक्टूबर सन् १८७४ ई०) शनिवार को 'संस्कृत विधि' प्रथम उत्सव का निष्ठा न जा आरम्भ हुआ था।

भादों सुदी प्रतपदा (२० अगस्त सन् १८७६ ई०) रविवार का 'श्रुग्वेदादभाष्य भूमिका' का काय आरम्भ हुआ।

इस सम्बत् के अन्तिम अर्थात् सन् १८७७ ई० के प्रारम्भक काल में 'श्रुग्वेदादि भाष्य भूमिका' की छपाई आरम्भ हुई।

सम्बत् १८९४ वि० ज्येष्ठ (अर्धिक) शुक्ल १३ रविवार (४४ जून सन् १८७७ ई०) को लाहौर में आर्य-समाज की स्थापना हुई और आर्य समाज के प्रचलित दस नियम हवी अवसर पर बने।

भौमवार मार्गशुक्ल ६ सम्बत् १८९४ वि० (११ दिसम्बर सन् १८७७ ई०) को 'श्रुग्वेद भाष्य' का कार्य आरम्भ हुआ।

पौष सुदी १३ (१७ जनवरी सन् १८७८ ई०) गुरुवार को 'यजुर्वेद भाष्य' का काय आरम्भ हुआ।

सम्बत् १८७५ वि० में 'श्रुग्वेद व यजुर्वेद भाष्य' की का छपाई आरम्भ हुई।

सम्बत् १८३६ वि० माघ शुक्ल २ बृहस्पतिवार अर्थात् (१२ फरवरी सन् १८८० ई०) को काशी में वैदिक यज्ञाचार्य स्थापित हुआ था जो १६ मास को सन् १८८१ ई० में प्रयाग और १५ सन् १८९१ ई० में अजमेर में पहुँच बर्हि कि अव भां है।

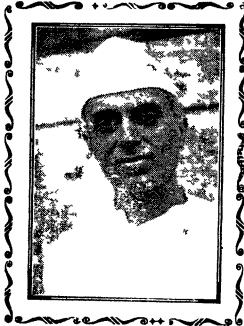
शनिवार अगहन सुदी १ (२६ नवम्बर सन् १८८१ ई०) को यजुर्वेद भाष्य का रचना समाप्त हुई।

सम्बत् १९३९ वि० फाल्गुन कृष्ण ५ मगलवार (२७ फरवरी सन् १८८३ ई०) का उदयपुर में स्वीकार पत्र लिखा गया अर्थात् 'रोपकारिणी सभा' की स्थापना हुई।

आश्विन वदी १३ (२९ सितम्बर सन् १८८३ ई०) को (अन्तिम बार) बोधपुर में रात के समय विष दिया गया।

दीपावली (कार्तिक की अमावस्या) मगलवार ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को ६ बजे के लगभग सायंकाल के समय अजमेर में स्वर्ग लोक को विचारें।

हिन्दू के प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू
आप लन्दन से पेरिस होते हुए
६ नवम्बर को भारत वापस आ जायेंगे।



“यह एक दिलचस्प ख्याल है कि हिन्दुस्तान में मूर्ति पूजा यूनान से आई। वैदिक धर्म सभी तरह की मूर्तिपूजा के खिलाफ था। देवनाओं के लिए कोई मन्दिर तक न थे। शुरु का चौद्व धम इसका कहर बिरोधी था, और बुद्ध की मूर्तियाँ और प्रतिमए तैयार करने की खास मनाही थी। लेकिन यूनानी कला का अरर अफगा निस्तान और सरहद के आर पास काफ़ी गहरा या और रफता रफता उर अरर ने काम किया। फिर भी शुरु में बुद्ध की कोई मूर्तियाँ न बनी, बि हैं कि समझा जाता है कि बुद्ध के पहले के अवतार हैं, अपोलो APOLLO जैसी मूर्तियाँ बनी। इसके बाद खुद बुद्ध की मूर्तियाँ बनने लगीं। इससे हिन्दू धर्म के कुछ रूपों में भी मूर्तिपूजा को प्रोत्साहन मिला। हाला कि वैदिक धर्म पर यह अरर न पड़ा और यह इससे बचा रहा। मूर्तियाँ प्रतिमा के लिए फारसी व हिन्दुस्तानी में अब त७ लफ़्ज़ हुत को हुद्ध से निकला है।”

—प० नेहरू

महर्षि दयानन्दजी रचित ग्रन्थ और उनका काल

- (१) सयार्थप्रकाश सं० १६३२ वि०
- (२) श्रुग्वेदा द्भाष्यभूमिका १६३३ वि०
- (३) हरिकार विधि—१६३२ वि०
- (४) वेदाङ्ग प्रकाश—१६३३ वि०
- (५) पंच मद्रायज्ञ विधि सं० १६३५ वि०
- (६) गोकुलणा निधि
- (७) आर्योद्देश्यरत्नमाला १६३५ वि०
- (८) भ्रमोच्छेदन और अनु प्रमोच्छेदन
- (९) अन्तिनिर्वाण्य ग० १६३४ वि०
- (१०) व्ययहार मानु—१६३६ वि०
- (११) आर्याभिविनय सं० १६३२ वि०
- (१२) वेद विरुद्ध मत खखन ग १६३१ वि०
- (१३) स्वामी नारायण मत खखन सं० १६३१ वि०
- (१४) वेदान्तिभान्त निर्धारण सं० १६३३ वि०
- (१५) मस्कृतवाक्यप्रबोध सं० १६३६ वि०
- (१६) पालखद खखन वि० १६३३
- (१७) यजुर्वेद भाष्य सं० १६३३ वि०
- (१८) श्रुग्वेद भाष्य प्रारम्भ—१६३५ वि०
- (१९) अद्वैत मत खखन वि १९२०
- (२०) छन्ध्या सं० १९२० वि०

हिन्दू कोड बिल

इस विषय में आर्य समाजों के राव विरुद्ध सं० ६ ता० ३ - १९४८ समा मन्त्री जी की ओर से मेजी गई। किन्तु अब ज्ञात हुआ है कि सार्वदे शक समा देहली ने इस विषय में धर्माध्य समा की सम्मति मागी है। अत सम्पत्त आर्य समाजों को इस सम्मन्ध व धर्माध्य समा की सम्मति प्राप्त होने पर ही अपने निरचय स्वीकार करने उचित होंगे।

निवेदक—

मदनमोहन सेठ

कार्यकर्ता प्रधान

आर्य प्रतिनिधि धर्मा युक्त प्राण्य

❀ विषय सूचा ❀

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१—मगल कामना (कविता) “शुकर”	१	२४—श्रुति श्रुतशोच (श्रीरामदत्त जी शुक्ल)	२८
२—प्रमुख नेताओं की भद्राबलिया	२१	२५—तमसो मा ज्योतिर्गमय (रामभू नाथ सिंह)	३१
३—आर्य समाज (कविता) श्री हारशकर शर्मा	४	२६—आर्य समाज क्या करें ? (श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ)	३२
४—श्रुति दयानन्द क द्विगवत्रय श्रा घनदयानन्दसिंह गुप्त	५	२७—नारी जाति पर श्रुति का श्रुण्य (श्रीमती विशान बाला चौहरी बी० ए०)	३२
५—नेताओं के संदेश	६	२८—भारतय सांस्कृति की द्विविधा (अयु श्री राजेन्द्रकुमार जोषी बी० ए०)	३६
६—अभिनन्दन (कविता) “चन्द्र” विशारद	६	२९—मर्णा का उपकार (म० अरामजी)	४०
७—श्रुति दयानन्द (अलगूराय शक्ती)	६	३०—क्रान्ति दूत का दिग्गज दर्शन (कावना) श्री हरिश्चन्द्र देव वर्मा ‘चातक’ कवचन	४२
८—रामजी की साहज (रजगु कुपुरेन्द्र शक्ती)	११	३—अल्पवय ब्रह्मचारा (श्री प्रियव्रताजी आचार्य)	४५
९—श्राप का उपकार (श्री रणजित सिंह)	१२	३२—स्वतन्त्रता का प्रथम पुत्रारी (डा० सूर्यदेव शर्मा)	४७
१०—श्रुति का महत्व पूण कार्य (श्री मदन मोहन सेठ)	१३	३३—स्वाधीन भारत में आर्यसमाज (श्री अचरणीन्द्र कुमार वियालङ्कर)	४९
११—श्रुति का सन्देश (प्रो इन्द्र)	१४	३४—श्रुति को विष किसने दिया (श्री देवी प्रसाद जौहरी)	५१
११—हमाा कर्तव्य श्रा श्रुत तिवारी)	१५	३५—श्रुति उत्सव इर्षे स मनाइये (श्री कुँ चाँदकराय शारदा)	५२
१३—दीगावनी का आह्वान (श्री सुरेन्द्र शर्मा)	१५	३६—भारतीय सांस्कृति की तीन श्रु खलाए (श्री र वि धुलेकर)	५६
१४—श्रु प का महान कार्य (प्रो० रामचन्द्र महेन्द्र एम ए०)	१६	३७—सन्देश (श्री नि अ शेरवानी)	५८
१५—ध्वराय कैसा हो (अ र मदेव वेणालकार)	१७	६८—सम्गादीय	५९
१६—आर्य समाज का भविष्य (श्री ओम्प्रकाश वियामास्कर)	१८	६९—श्रु प सम्बन्धी कुलु तिथियाँ	६१
१७—उदबोधन (कवता) लक्ष्मीचन्द्र विशारद	२०	७०—श्रुति प्रणीत मन्त्र	६२
१८—दैनिक आर्य मित्र—(सुखदेवजी वैद्य)	२१		
१९—मन्त्रगीत (कविता) प्रो० सुशीराम	२१		
२०—आदश गुरु शिष्य (चित्र)	२२		
२१—दीपावली गोवर्धन, भानु ब्रतोया (श्री विहारोलाल शास्त्री)	२३		
२२—“दू” (प्रो सुशीराम)	२५		
२३—पैंसठ वर्ष के बाद (श्री गंगा प्रसाद उपाध्याय)	२६		

“दाना” और पुरानी खौपी के रोगियों। नोट कर लो—

(अब चूक तो फिर मरना तक छूटना पड़ेगा)

हर साल की तरह मे इस साल भी हमारा जगत विरुद्ध “विचित्रकूट बूटी” महोत्सव ने दो हजार पैकट आश्रम में रोगियों को मुफ्त बाँटे जावेंगे, जो एक ही खुराक (जातक पूर्णनाशी) ता० १६ नवम्बर को खीर में खाने से सदा के लिये इस दुष्ट रोग से छुटकारा मिल जाता है। बाहर वाले रोगी जो समय पर यहाँ न आ सके (२०) २० विज्ञापन रजिस्ट्री आदि खर्च मनीश्रुडर से भेज कर तुरन्त मंगा लें, जिससे ठीक समय पर सेवन करके पूरा लाभ उठा सके। देर करने से फिर पारसाल की तरह सैकड़ों को निराश होना पड़ेगा। नोट करल कि बी० पी० किसी को भी नहीं भेजी जाती है। अमीर आदमी धर्मार्थ बाँटने के लिये कम से कम २५ आदमियों के १०० भेजे। यह अनिन्द्य सुवर्ण है।

[यह दर्शक-पत्र (प्रस्पेक्टस) रजिस्ट्रार ज्वाइस्ट स्टॉक कम्पनी यू०पी० के पास रजिस्ट्री हो चुका है।

आर्यवि प्रकाशन लिमिटेड (सम्बाध)

(३ जुलाई १९५७ को इन्डियन कम्पनीज ऐक्ट १९१३ के अधीन लखनऊ में परिमित दायित्व के साथ
संघटित)

अधिकृत पूंजी.....५,००,०००) रु०

२५) रु० प्रति भाग के २०,००० भागों में विभाजित

प्रार्थनापत्र - के साथ...१२॥) प्रतिभाग (प्रार्थनापत्र कम्पनी से मिलते हैं)

द्वितीय भाग पर.....१२॥) निदेशकों (डाइरेक्टरों) की इच्छानुसार

निर्देशक (डाइरेक्टर)

- | | |
|--------------------------------------|--|
| १ श्री राज धिराज श्रीमान् उमेदसिंहजी | शाहपुरा राज्य, (राजपूताना) |
| २ ,, राजगुरु प० धुरेन्द्रशास्त्री | साधुआश्रम अलीगढ़ |
| ३ ,, मदनमोहन सेठ एम० ए० एल एल० बी० | रिटायर्ड जज, २२, रेडीची रोड, लखनऊ |
| ४ ,, बा० उमाशंकरजी | बकील भूतपूर्व एम०एल० बी०, सु० सँजरहा फतेहपुर |
| ५ ,, प० लक्ष्मी दत्त दीक्षित | पुस्तकाध्याय भारत बैंक लि० दरिया गज, देहली |
| ६ ,, प० घमपाल बिद्यालकार | जमींदार टिकैतगज, बदायूँ |
| ७ ,, प० महेन्द्र देव शास्त्री | मुरारी फाइन पार्टी वर्क्स न० ४ दरियागज देहली |
| ८ ,, कर्णसिंह छाँकर | बाइस चेयर मैन म्युनिसिपल बोर्ड मथुरा |
| ९ ,, भृगुदत्त निवारी एम ए० एल एल बी० | बकील तथा म्युनिसिपल कमिश्नर
गणेश गज लखनऊ। |

श्रेष्ठी (बैंकर्स)

१ रोट्रल बैंक आफ इंडिया लिमिटेड

२. भारत बैंक लिमिटेड

लेखा—निरीक्षक (ऑडिटर)

श्री जगदीश प्रसाद पेड कम्पनी रजिस्टर्ड ऐकाउंटेन्ट्स, चाँदनी चौक देहली।

दर्शक—पत्र (प्रस्पेक्टस)

१. समबाध (कम्पनी) का उद्देश्य—आर्य समाज को, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा अध्यात्मिक, वेदानुकूल आदर्शों के प्रचार के लिए तथा नवजात स्वतंत्र भारत में भारतीय जीवन के पुनर्निर्माण के लिए एक शक्तिशाली मुद्रणालय (प्रेस) की आवश्यकता है।

आर्य प्रतिनिधि समाज युक्त पान्त की प्रेरणा से तथा उसके संरक्षण में 'आर्यभिन्न प्रकाशन लिमिटेड' समबाध का संगठन, आर्य समाज की उपर्युक्त आवश्यकता के पूर्वरथ विशेषतः हिंदी में दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक समाचार-पत्रों के संचालन के लिए और सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक और राजनैतिक साहित्य के प्रकाशन के लिए किया गया है।

२—प्रधान कार्यालय—कम्पनी का प्रधान कार्यालय लखनऊ में नारायण स्वामी (जभा) भवन, ५ हिल्टन रोड पर स्थित रहेगा। भारत के अन्य स्थानों पर शाखाएँ खो जी जा सकती हैं।

३—न्यूनतम प्रस्तुत पूंजी—४००० भागों का विक्रय न्यूनतम राशि है जिस पर निर्देशक गण विभाग करेगे।

४—निर्देशकों की योग्यता तथा पारिभूमिक—समवाय के नियमों (आर्टिकिलम) के आधीन निर्देशक पद की योग्यता के लिए अपनी ओर से अथवा जिस भव्यता का वह प्रतिनिधि है उसकी ओर से—जब तक वह निर्देशक पद पर रहे—कम्पनी के न्यूनतम (१०००) के भाग लेना आवश्यक होगा।

कम्पनी की बैठक में सम्मिलित होने के लिए निर्देशक को मार्ग व्यय तथा (१०) दैनिक भत्ता दिया जायगा।

५—निर्देशकों का विशेष लाभ—नार्गदार होने के अतिरिक्त डाइरेक्टरो का कोई भी विशेष लाभ नहीं है।

६—क्रीत सम्पत्ति अथवा प्रस्तावित क्रीत सम्पत्ति—जो कम्पनी द्वारा कर्तव्य प्रस्तावित अथवा क्रय की गई—के विक्रेता के नाम और पते तथा वह राशि (नगद, भाग, या प्रतिज्ञापत्र) जो प्रत्येक विक्रेता को दातव्य है—

आय प्रतिनिधि सभा, सोसाइटी, ५, हिल्टन रोड लखनऊ। भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस लखनऊ का मूल्य २५०००) रु० भागों के रूप में।

७—राशि पदत अथवा दातव्य—(नगद, भाग या प्रतिज्ञापत्र) किसी उद्युक्त प्रकार की सम्पत्ति के लिए, जिसमें साख के लिए प्रदत्त अथवा दातव्य राशि का भी उल्लेख होना चाहिए—साप्ताहिक आर्यामित्र की साख के लिए जो सभा द्वारा ५० वर्ष तथा अधिक से प्रकाशित हो रहा है (१०,०००) के मूल्य के ४०० भाग।

८—प्रारम्भिक व्यय—अनुमानतः प्रारम्भिक व्यय ५०००) से अधिक नहीं होगा।

९—पत्र - प्रमाण [दस्तावेज]—समवाय के अनुबोधक (मेमोरेण्डम) तथा नियमों (आर्टिकिलस) की प्रतियाँ कम्पनी के अतिकृत कार्यालय में साधारण कार्य समय के अन्तर्गत देखी जा सकती हैं।

१०—भाग-परिवर्तन—निर्देशकों को बिना कारण बताये भागों के परिवर्तन के पंजीकरण (रजिस्ट्री) न करने का पूरा अधिकार है।

११—पारिभूमिक (कर्म शन)—भागों के विक्रय पर कमीशन की दर—नगद ५) प्रतिशत, भागों के रूप में—६) प्रतिशत।

१२—व्यवस्था निर्देशक (मैनेजिंग डाइरेक्टर्स)—समवाय के नियमों के अनुसार श्री मदनमोहन सेठ और पं० धर्मपाल विशालकार २० वर्ष के लिए क्रमशः मुख्य व्यवस्था-निर्देशक तथा उप व्यवस्था निर्देशक नियुक्त किए गए हैं। मर्यादाएँ (शर्तें) एक रसीद-पत्र (इकरारनामे) में होंगी।

माननीय अध्यक्ष तथा श्री ए० रामचन्द्रजी देहवारी
सम्मेलन के अन्य कार्यकर्ताओं के साथ हैदराबाद में



श्री भृगुदत्तजी तिवारी एम० ए० एम० एल० जी
स्वागताध्यक्ष

माननीय श्री क० एम० मुन्शी



श्री ए० एम० मुन्शी को एम० एल० जी
अध्यक्षता का श्रेय

उठो परीक्षा काल उठो संघर्ष करो लक्ष्य सृष्टि बनाओ ।
अन्तिम विजय तुम्हारी होगी आगे कदम बढ़ाओ ॥

श्रीशम्



राष्ट्रगीत

आर्यं भुवन मन मोहनी
 निर्मल सूर्य करोज्वल धारिणि
 नीलसिन्धुजल धौन चरणतल
 अनिल विकम्पित प्रशमल अंचल
 अश्वर सुम्भित भाल हिमाचल
 शुभ तुषार किरीटिनी
 आर्यं भुवन मन मोहनी
 प्रथम प्रभात उदित तव गगने
 प्रथम सामर्य तव तपोवने
 प्रथम प्रचारित तव वन भुवने
 ज्ञान धर्म कथ काव्य काहिनी
 आर्यं भुवन मन मोहनी
 चिर कल्याणमयि तुमि धन्या
 देश विदेशे चितरित अन्ना
 ज्ञान्दधि यमुना विगलित करुणा
 पुण्य पियूष स्तन्य वाहिनी

आर्यं भुवन मन मोहनी

× × ×

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगौर

ॐ ओ३म् ॐ



लखनऊ ५-१२ मई १९४६

अन्य य यज्ञमप्यपर विश्वत परिभूरसि । स्व इहवेषु
गन्धुति । ऋग्वे १-१-३

हे तेजस्वरूप भगवन् ! जिस अखण्ड यज्ञ में आप सर्वा
व्यापक रहते हैं वही यज्ञ दिव्यता को प्राप्त होता है ।

नया अध्याय

सृष्टि क आदि स ही मानव जब २ जिस रूप में
भी रहा और जा भी सामयिक सुविधाये उस प्राप्त हाती रही
उ ही का लेकर वह सुख सुविधा के यत्न करता रहा ।
जिस को उसने अपने जीवन में उत्कृष्ट उद्देश्य समझा
उपी में अपनी अन्ततम शक्तिया का लगा दिया यह
बाल दूसरी है कि ससार के विकास के साथ २ उसके
उद्देश्य भी बदलते रहे हों परंतु एक जाति एसी भी है
जिसका उद्देश्य आज भी वही है जा सृष्टि के आदि
में था ।

इतने उतर चढ़ाव में अनेक जातिया इतिहास के
प्रश्नों पर आईं और अपना अभिनय सा करके अन्तगान
हो गईं । आज जिनकी जातिया हमारे सामने हैं यदि
प्रत्यक्ष परिश्रम करके भी उनका इतिहास क और का
पता लगाते हैं तो बहुत दूर नहीं जा पाते । और जहां
तक पहुंचते हैं वह समय इतिहास के लिये फाई बड़ा
समय नहीं कह जा सकता । पुरानी जातिया की श्रवणा
बहुत पहले ही टूट गईं और अधिक श जातिया को अपना
अभिनय भरती प्रतीत होती है उनका प्रतीक निरान्त
आधुनिक है वह दा हचार गर्भ सृष्टि के लम्बे इतिहास
में क्या महत्त्व रखते हैं ।

पर यदि मैं आपकी पहचान में भी पाए या फूट
जाय कि इतिहास को भी अमर बनाने वाली फाई जाति
आज जीवित है तो वह आर्य जाति है सृष्टि ने

प्रारम्भ में आपने खोलीं तब आर्य जाति थी, और उसके
पश्चात् अनेकों बार ऐतिहासिक अपकार को चीर कर
जब २ सृष्टि में सभ्यताओं का प्रकाश पैला तब २ आर्य
जाति गौरव स अपना सर उठाये ससार का शान्ति का
संदेश दती हुई दिखाई देती है । उसकी अदृष्ट परम्परा
आज तक अपनी विशेषताओं के साथ जीवित है और
हमारा विश्वास है कि अपने को सभ्य बहाने वाले परंतु
सूतप्राय वैज्ञानिक जगत् का फिर जीवन दान करने की
क्षमता भी उसी जाति व सभ्यता में है । और समय
आयगा जब इसकी सत्यता प्रमाणित हो जायगी ।

जिज्ञासा हाती है कि ससार परिवर्तन शाल है
वही उड़ी शक्तिशाली जातिया प्रकृति के थपेकों से
लब्धबद्धा कर गिर गईं ता इसी जाति व सभ्यता में क्या
विशेषता है जिससे यह अमिष्ट है ?

हम पहले कह चुके हैं कि आदि जाल स प्रायेक
जाति ने अपने अपने साधनों से तथा अपनी अपनी
पहुंच के उद्देश्यों के लिये अपनी शक्ति लगाई ।
परंतु उनके उद्देश्य प्राकृतिक (भौतिक) उपकरणों
की चरम उन्नति के अन्तर्गत ही थे जिसमें बदलती
हुई प्रकृति उन्हें भी अपनी लपेट में लेती चली गईं,
वे जातियाँ अपना ऐसा उद्देश्य न बना पाईं जो
प्रकृति की लपेट से बाहर हो ।

परंतु आर्य जाति ने वैदिक ऋषिया ने ही
आध्यात्मिक उन्नति करते हुये परमज्ञ की प्राप्ति का
अपना उद्देश्य बनाया " तेन त्यक्तेन मुञ्चिष्या " के
अमर गायको ने प्रकृति के अन्ततम उपकरणों का
उपयोग करते हुये भी अपना चरम लक्ष्य न छोड़ा,
भौतिक परिवर्तन देखते रह गये वह ता उनकी चोट
से बाहर था फिर जाति व सभ्यता मिटती कैसे ?

यदि एक मुसाफिर रेलगाड़ी में चलना हुआ किसी
बड़ स्टेशन पर कोई अज्ञेय वस्तु देखकर उतर पड़ और
गाड़ी छूट जाय तो फिर वह आगे कैसे जा सकता है ।
ससार की मिटने वाली जातियाँ भी सृष्टि की अनन्त
शक्ति से प्रकृति की छोटी छोटी वस्तुओं का आकर्षण
को ही सब कुछ समझ कर वहीं तक रह गईं और
पाने समय के लिये अपने को सर्वाधिक समझती रहीं

परन्तु दुःख है कि कुछ सदियों बाद उनको यह बताने के लिये भी कोई न रहा कि "अब यहाँ तुम्हें कोई नहीं जानता।" आर्य जाति ने गाड़ी में यात्रा की और जो सुन्दर वस्तु देखी उसको भी गाड़ी में रख लिया, सब की सुविधा के लिये।

इसी परम्परा और उद्देश्य को लेकर "तेन त्वत्केन युञ्जीथा मा यथ कस्य स्वित्दनम्," का गान करते हुये "ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः।" के मार्ग पर यह जाति सदा अग्रसर होती रही इसी के कारण संसार का इतिहास भी सुन्दर से सुन्दर तर और सुन्दरतम बनता गया।

आज लखनऊ में होने वाला प्रथम अखिल भारतीय उपदेशक महा सम्मेलन भी इसी परम्परा का एक प्रतीक है जाति में चेतना व जाग्रति उत्पन्न करने के लिये देश के कोने कोने में आर्य सस्कृति की अलख जगाने वाले कर्मठ उपदेशकों का यह प्रयत्न, विश्वास है कि जाति में नई स्फूर्ति लायेगा और वैदिक सभ्यता को आगे बढ़ाने के लिये विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत करेगा।

आज संसार के पीछले अध्याय और पीछे छूटते जा रहे हैं। नया संसार नई नई समस्याएँ लेकर सामने आ रहा है। ऐसे समय वैदिक संस्कृति के प्रचारकों को भी आवश्यक हो जाता है कि वे भी अपने विगत विशाल इतिहास के पृष्ठों में एक नये अध्याय का प्रारम्भ करें जो आ के संसार को उपयुक्त मार्ग दिखा सके, याथावय को उसके समस्त प्रस्तुत कर उसको भटकने से बचावे।

प्रभु करें यह प्रयत्न "कल्याण कृत्" हो और जग-लियता की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव हमके प्रकाश में अपनी मार्ग हूँ द मे।

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे मन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखः भाग्भवेत् ॥

मम्पादकोय टिप्पणियाँ

गाड़ीपुग चलिये !

सब वर्ष इन्हीं पक्तियों में हमने धामपुर चलने के लिये आर्य जनता को प्रेरणा की थी,

आज उसी कार्य के लिये, धामपुर के बनाने कार्यक्रम की पूर्णता या ऋपूर्णता पर विचार करने के लिये, यदि पूर्णता है तो आगे बढ़ने के लिये और यदि अपूर्णता है तो उस पर विचार करने तथा सावधान रहने के लिये हमें फिर कहीं न कहीं एकत्रित होना पड़ेगा, होना भी चाहिये, यदि हमने ऐसा न किया तो यह निश्चय है कि हममें संगठन से मिलने वाले शक्तिदायक विचारों की न्यूनता बढ़नी ही जायेगी। व्यक्तिगत कितनी ही उन्नति करते हुये भी, एकाकी, यत्न पूर्ण नहीं हो सकता। यह के लिये संगठन अणु एक है। विचारों के प्रवाह को यदि संगठन से बन न दिया जाय तो उनमें क्षीणता आना स्वाभाविक है, आपस की दूरी बढ़नी जायगी, एक दूसरे के प्रति आकर्षण कम होता जायगा, ऐसा होने से सामाजिक स्थिति कम होर हो सकती है, जिसका परिणाम क्या हो सकता है, यह किसी से छिपा नहीं है। इसलिये एक वर्ष बाद आने वाले इस आत्म निरीक्षण के समय को हम यूँ ही न जाने दें। कोई भी समस्या तभी तक जीवित है जब तक उसमें सम्बन्धित व्यक्ति जीवित है। जीवन का अभिप्राय, उनके पास अपने मौलिक विचार हैं? दूसरे को प्रभावित करने या स्वयं में स्थिर रहने की शक्ति है? अनायास जो रौ में नहीं वह जाने, गंगादास और जमुनादास बनकर जो अपनी स्थिति को हास्यजनक नहीं बनाने, उन्मार्गगामिनी बड़ी से बड़ी शक्ति के मार्ग में भी जो चट्टान बनकर खड़े होने का साहस रखते हैं, वे हैं जीविन। ऐसे व्यक्ति जिन संस्था में भी चले जाते हैं नहीं संस्था आर्द्र बन जाती है, सब साधारण उसके निर्देश पाने को उसुक रहता है। और इसके विपरीत यदि बड़ी से बड़ी संस्था से सम्बन्धित व्यक्तियों में साहस तथा आत्म विश्वास की न्यूनता, अस्थिरता तथा सिद्धांत हीनता आ जाता है

तो वही संस्था तेजहीन हो जाती है, जनता उससे किनारा करने लगती है।

विचारना है इन दोनों में हमें कौन सी स्थिति रुचिकर है ? क्या सत्सार अपनी पूर्णता पर पहुँच चुका है कि अब वैदिक सस्कृति के प्रचारकों को अपने हथियार बन्द करके रख देने चाहिये ? या जो अन्य २ स्थायें कार्य कर रही हैं वे ही हमारे उद्देश्य को पूर्ण करती हैं ? देखा जाय तो इन दोनों में से कुछ भी नहीं। न तो सत्सार पूर्णता का ही प्राप्त है न ये विशेष विशेष उद्देश्यों को लेकर चलने वाली संस्थाएँ ही हमारे उद्देश्य की ओर उन्मुख हैं आज आर्य समाज में अधिकाधिक जेनना नाकर उसको प्रगतिशील बनाने की आवश्यकता है।

वहाँ जाकर क्या होगा ? ऐसा कहने से काम न चलेगा। न जाने से जो कुछ हो रहा है या होगा उससे तो अधिक ही होगा, नहीं होगा तो करने का प्रयत्न करना चाहिये। बैठने से ही काम न चलेगा।

इसलिये हम प्राप्त के सभी आर्यजनों से कहेंगे कि जो प्रतिनिधि हैं वे अधिक से अधिक संख्या में ५-६ जून को गाजीपुर में होने वाले सभा के वार्षिक अधिवेशन में भाग लें। और नई नई समस्याओं के नये रूप में समाधान खोजें। आज सारा देश आप्यात्मिक व सांस्कृतिक नेतृत्व के लिये किसी की प्रतीक्षा कर रहा है, इस कार्य में आर्य समाज ही अधिक सफल हो सकता है, क्योंकि उसका विगत इतिहास तथा उद्देश्य दोनों ही सुन्दर हैं। यदि अब चूके तो भविष्य की राम जाने।

++

ह निंकारक, आकर्षक घोषणें क्यों ?

कुछ समय पूर्व, मुजफ्फरपुर में बिहार-पोलिटिकल कांफेन्स के उद्घाटन के अवसर पर नहरूजी ने घोषणा की थी कि अन्ततोगत्या

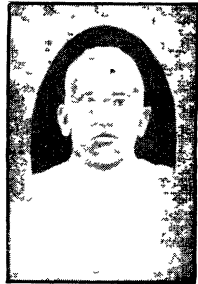
भारत में अवश्य ही समाजवादी राज्य को स्थापना करना ही होगा ! उन्होंने यह भी कहा कि 'जहाँ तक कम्युनिज्म के आधारभूत सिद्धांतों का प्रश्न है, उन्हें उनसे कोई विरोध नहीं। पं. नेहरू जी के यह विश्वास बहुत पुरातन हैं कि न केवल भारत वर्ष अपितु सत्सार की समस्याओं का एक मात्र हल 'समाजवाद' द्वारा ही हो सकता है। उन्होंने सन् १९३६ ई० में लखनऊ में अपने प्रसिद्ध भाषण में कहा था कि 'देश में अत्यन्त विस्तृत और क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता है, सत्सार में एक नवीन सभ्यता का उदय हुआ है जिसकी कुछ २ उज्वल प्रकाशमयी छटा 'रूस' में प्रस्फुटित हुई हैं और जो वर्तमान अव्यवस्था पर समय की एक आशाजनक प्रकाश रेखा है।'

यह कहना कठिन है कि अब भी पं. नेहरूजी के ऐसे ही विचार हैं या नहीं ? 'यदि भविष्य में कुछ आशा है तो वह मुख्यतः सोवियत रूस के कारण है' इस प्रकार का अब भी पं. नेहरूजी विश्वास रखते हैं, इसमें हमें बहुत सन्देह है। परन्तु पं. नेहरूजी के इस कथन का कि समाजवाद के उद्देश्य 'समाजवादी ढङ्ग की नवीन समाज व्यवस्था निर्माण' की पूर्ति में 'अब केवल समय व उपायों' का ही प्रश्न शेष रह गया है' यह वाक्य अत्यन्त अत्रिक महत्वपूर्ण है।

गवर्नमेंट के प्रवक्ताओं ने गत वर्षों में व्यवसायों में धन लगाने वालों में विश्वास उत्पन्न करने के लिये बहुत ही प्रयत्न किया है। भू-पू-अर्थमन्त्री श्री परमुखम् चेट्टी ने सन् १९५६ में भारत सरकार की ओर से बजट प्रस्तुत करते हुये बहस के अवसर पर वर्तमान सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था में बलपूर्वक एकाएक उथल पुथल करने से बचने की आवश्यकता पर अत्यन्त अधिक बल दिया था। इसी प्रकार भारत के उप प्रधान मन्त्री सरदार पटेल भी अनेक अवसरों पर शीघ्रता से राष्ट्रीय करण व समाजवादी ढाँचा लाने की हानियाँ की ओर देशका ध्यान आकर्षित



स्व. प्र. मा नागयग स्वामीजी महाराज



सामय मयकार स्व० प० तुनसोरामजी

कर चुके ह पन्तु दुर्भाग्य से इसके विरुद्ध अनेक प्रमुख नेताओं व उपरोक्त प्रकार के भाषण अनुस्वाह, आशका, व मय को और भी अधिक बढ़ाने का कारण हो रहे हैं। हमने देश के व्यवसायों में अस्थिरता, व अविश्वास बढ़ रहा है—उत्पादन घट रहा है।

यवसाय व व्यापारिक क्षेत्रों में उन्नति क लिय किली भी प्रकार के आग्रशपूर्ण शब्द व म की के सफल हाने की सम्मानना नहीं होती प्रयुत वास्तविक व्यावहारिक, दूर दृष्टता पूर्ण, समय क

बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य ही विश्वास व स्थिरता उत्पन्न कर सकने हैं। अत यदि हमारे देश के नेता पुराने आन्दोलनकारी स्वभाव को छोड़कर व्यावहारिक सम्मीरता का आश्रय लेकर नेतृत्व करेंगे तभी देश का बचपण होगा। अन्यथा अनिष्टकारक (कम्प्यूनिज्म) का झूठ मूठ 'भूत आया भूत आया' चिल्लाना, भी, कम्प्यूनिज्म क भूत को रोकने में समर्थ न होगा। हाँ यह सम्भव है कि इसका आश्रय लेकर अपने राजनैतिक विरोधियों को दवाया जा सक।

थके हुए कलाकार से

सृजन की थकन भूल जा देवता !

अभी तो पड़ी है धरा अधवनी ,

अभी आदमी की पलक में नहीं

बिल सकी है नए चाँद की चाँदनी !

अभी आदमी की मटकती हुई

आत्मा को नहीं मिल सकी रोशनी !

ध

में

अभी तो पड़ी है धरा अधवनी ,

अधूरी धरा पर नहीं है कही ,

अभी स्वर्ग की नींव का भी पता !

सृजन की थकन भूल जा देवता !

वी

रुका तू , गया रुक जगत का सृजन !

तिमिरमय नयन में डगर भूल कर

कहीं खो गई है सुनहरी किरन !

अलस बादलों में कहीं सो गया

है नई सृष्टि का सपतरंगी सपन !

र

रुका तू , गया रुक जगत का सृजन !

अधूरे सृजन से निराशा भला

किस लिये, जब अधूरी स्वयम् पूर्णता ?

सृजन की थकन भूल जा देवता !

भा

प्रलय में निराशा तुझे हो गई ?

असकती हुई सास की आलियों में

सबल प्राण की अर्चना खो गई !

थके बाहुओं में अधूरी प्रलय

और अधूरी सृजन योजना खो गई !

र

ती

प्रलय से निराशा तुझे हो गई ?

चिंतित पर नई शिन्दगी का हितारा ,

बड़ी आस से है तुझे देखता !

सृजन की थकन भूल जा देवता !

(संगम से)



उपदेशेन वर्तामि

[श्री वासुदेवशरण अग्रवाल]

उपदेशेन वर्तामि नातृसासुरीह कचन ।

मैं उपदेश से बरतता हूँ, किसी को आधा नहीं देता। अर्थात् मेरे जीवन के द्वारा मेरा उपदेश प्रकट होता है, वाणी के अतृशासन के द्वारा नहीं। भावार्थ यह हुआ कि कर्म के द्वारा दिया हुआ महत्वपूर्ण उपदेश ससार में सर्व श्रेष्ठ है, वाणी के द्वारा 'यह करो,—यह न करो' की रीति से कही हुई बात उतनी प्राद्य नहीं होती।

उपदेश की भाषा जीवन का व्यवहार और वाणी का तूष्णी भाव है। इस सृष्टि का निर्माता सृष्टि रचकर सृष्टि की एक-एक बात से तूष्णी उपदेश दे रहा है। मेघों की अत्यन्त ध्वनि द-द-द से, उपनिषद् का अष्टि उपदेश सुनता है—

दत्त— दमयत—दयध्वम दान दो, आम संयम करो और प्राणियों पर अतृकम्पा करो।

मेघ का सारा जीवनव्यवहार एक महान् उपदेश है। बिना वाणी से कहे कर्म से मिलने वाला उपदेश शतगुणित और सहस्रगुणित होता है। इस प्रकार सृष्टि व्यवहारों से मिलता हुआ अनादि अनन्त उपदेश प्रति क्षण हमारे पास आ रहा है—

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न विभीतो न रिप्यत ।

एवा मे प्राण मा विभेः ॥

जैसे सूर्य और चन्द्र न मन से डरते हैं, न शरीर से न्यून होते हैं, जैसे नियन्ता ने कर्म पथ में उन्हें ठहरा दिया है वैसे ही बरतते हैं—ऐसे ही मेरा प्राण भी उनसे अभय की शिवा ले।

जीवन उपदेश की तूष्णी भाषा है। अथवा यों कहे कि मौखिक उपदेश तो एक या दो भाषाओं में एक व्यक्ति से सकता है, किन्तु जीवन के उपदेश की भाषा सार्वभौम है। ससार के मानवों

की जितनी भाषाएं हैं वे सब जीवन की ही व्याख्या करती हैं। जीवन के द्वारा दिये गए उपदेश को वे सब शब्दों में बिना कहे पकड़ लेती हैं। किसी भाषा कविने कहा है—

कामा जोग कथनि के कथे ।

निकसे बिऊ न बिना दधि मये ॥

योग तो साधन की वस्तु है, उसका मुँह जयामी जमाखर्च किस काम का। बिना मये दही या दूध में से मक्खन नहीं निकलता। करनी और कथनी में बहुत अन्तर है। करनी का प्रभाव मन पर पड़ता है, कथनी का नहीं। जिस कथन के पीछे जीवन का स य नहीं है वह निस्तेज है, बुकी हुई अग्नि को तरह राख मात्र है। जीवन में उपदेश के अतृसार बरताव करने से ही उसमें चिनगारी पैदा होती है। नोआजाली के हिसा से भरे हुए वातावरण में उस दावानल का आश्रमन करने के लिये जब गांधी अकेले कूद पड़े तो किसी ने उनसे उपदेश मांगा और उन्होंने लिखकर दिया—

“आमार जीवनेह आमार वाणी”। मेरा जीवन ही मेरी वाणी है। स्वामी दयानन्द का महाखर्च व्रत, उनका तप. पूत जीवन, उनका ज्ञान प्रदीप्त अग्रित्व मानव के लिये तूष्णी भावेन जो उपदेश देता है वह सैकड़ों पोथों और व्याख्यानो से संभव नहीं। वह जीवन की अग्नि के प्रकाश से प्रकाशित है। उसमें प्राणों की हवि दो गई थी। सच्चा उपदेश इसी प्राण-हवि को चाहता है। उपदेशक कहता है—मैं स्वयं हवि हूँ [हविरस्मि नाम]

सौभाग्य से इस देश की महती आर्य परम्परा उपदेश की चिरन्ती संहिता है जिसकी बारहखड़ी के अक्षर देशवासियों की समझ

में तुरन्त आ जाते हैं। यहाँ की संस्कृति एक साँचा है जिसमें उदात्त जीवन को ढालने की अपूर्व क्षमता है। उस संस्कृति का संदेश जानने और समझने की वस्तु है। देश वासियों को उसमें गहरी रुचि है। किन्तु उस संस्कृति के अनुसार जीवन को ढालना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा संस्कृति को भाषा गूढ़ अनवृक्ष पहेली बनकर रह जाती है। जीवन ही संस्कृतिक आदर्शों की सच्ची व्याख्या प्रस्तुत कर सकता है। व्यक्ति

शतायु है किन्तु राष्ट्र तो सहस्रायु या अमर है। ज्ञान की गुहाएँ राष्ट्र में रहनी ही चाहिए। हर एक वस्तु के रखने का जो उचित पात्र है वह उसकी निधिपा गुहा है। ज्ञान की गुहा हमारा मानस है। राष्ट्र के व्यक्ति विशेषों के मानसों में ज्ञान की मणि परम्परा से सुरक्षित रहती हुई अमर बनी रहती है। इसमें से हर एक का यह आदर्श या उत्साह होना चाहिए कि राष्ट्र में ज्ञान की एक गुहा मेरा मन भी हो, मेरा जीवन राष्ट्रीय संस्कृति का निधिपा या रक्षक बने। यही सच्चा उपदेश है, यही जीवन के लिये उपयोगी है।

सत्य के लिये जीवन में एक दिन भी जब सच्चा प्रयत्न किया जाता है तो वह प्रभाव

शाली होता है। सत्य के परमाज्ञ तब स्वयं अपने अनुकूल तत्वों को समेटते हैं और उसी केन्द्र से नई शक्ति, नया उत्साह, नई स्फूर्ति और नया आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार सत्यपरायण जीवन को उपासना ही सच्चा यज्ञ है—

इन्द्रमहमनुतात्सयमुपैमि' प्रत्येक मानव को निरंतर जीवन व्यवहार में जीवन की छोटी-से-छोटी यातों में इस सत्य को पकड़ना है।

उसका मन इस स्थिति की प्राप्ति या अप्राप्ति का स्वयं साक्षी है। यदि सत्य की अग्नि की एक चिन्मारी भी जीवन की वेदि में नहीं डाली जा सके तो जीवन में स्थूल समिधाओं का चाहे जितना ऊँचा ढेर लगा हो, उसमें प्रकाश नहीं उत्पन्न हो सकता। जीवन के स्थूल उपकरणों की समिधाओं को सत्य की अग्नि से ज्योति में परिणत करना ही जीवन की सच्ची सफलता है। सत्य में नियुक्त जीवन सब को खींचता है। कोरा प्रकाशवाद बचिकर नहीं होता। कोरे उपदेश की गति तो ऐसी है जैसे—

ऊर्ध्व बाहुर्वैरीभ्यः न कश्चिच्छृणोति मे ऊँची बाँह उठाकर धर्म की पुकार कर रहा है, लेकिन कोई सुनता ही नहीं ॥

“मंगला प्रसाद पारितोषिक विजेता ३ आर्य विद्वान्”

१—श्री पं. पद्मसिंह जी शर्मा [महाविद्यालय-ज्वालापुर] आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं।

२—श्री मती चन्द्रावती लखनपाल एम० ए० [श्री पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार की धर्मपत्नी तथा कन्या गुरुकुल देहरादून की प्रिन्सपल]

३—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली

कसिपय प्राचीन उपदेशक तथा समालोचना मार्ग व अध्ययन क उपश—

श्री पद्मसिंह शर्मा

[श्री प० हरिदत्त शास्त्री एम० ए०, मुख्यता म० वि० ज्वालापुर]

“स्व० श्री प० पद्म सिंह शर्मा सच्च साहित्य सेवी थे, साहित्य सेवा, साहित्यसेवियों की सेवा, पर-लोकवासी साहित्य सेवियों का क निरक्षा और साहित्य की वेदी पर वे सब कुछ निष्ठावर करने के तैयार रहते थे।”

श्री प० अराम शर्मा स० मशाल भारत)



(ललक)

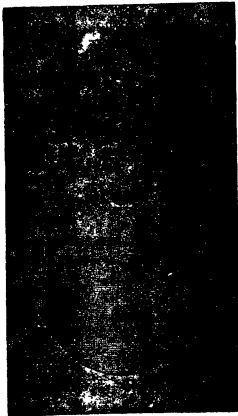
“पंडित पद्मसिंह जी शर्मा सुभाषितरत्नों के चलते फिरते भ्रमणकार थे। राजनीति के साहित्य में भीयुत सी. बाई चिन्तामणि का जो स्थान है हरण शक्ति के नाते साहित्य जगत् में सुभाषितों के विचार से प० जी का भी ही स्थान है।”

—प० ज्वालादत्त शर्मा (मुरा, ताद)

ऐसा कौन सा इत्यसेवी है जो आय समाज के सच्चे रत्न भी प० पद्मसिंह शर्मा की लेखनी से परिचित नहीं, हिन्दी जगत् में जब तुलनात्मक अध्ययन तथा लेखन को लोग जानते भी न थे तब

उ तौने अपना लखनौ इस विषय पर उठाई। कारण यह था क सम्पादक जी सम्कृत। इ दो उ आठ भाषा आ प्रकाशक बदलने थे। उनक अपन पुस्तकालय में एनी कोइ पुस्तक नहीं थी लान। अन्यानी जगान हो। श्लोभी का अर्थ व आत्मा व इतनी नरदा पकड़ते थे कि अच्छे अच्छे सहित्वाचर्य वह कार्य नहीं कर सकते। प० पद्मसिंह शर्मा सम्कृत समझते थे पर सम्कृत जिल्लना भी जानते थे। इस विषय म सम्भव है कि ही महानुभावों को सन्देश हो उसे दूर करने क लिए उनकी सहायत ‘प्रबन्ध मञ्जरी’ पाठकों की पढनी चाहिए। तथा महाविद्यालय ज्वालापुर के भारतोदय नामक मुखपत्र के ७म वर्ष का १० म् अङ्क म देखना चा। इए। उनका गुणवत्ताकृत तथा योग्य। स भुक्त शक्ति ही महाकवि शंकर जी न अपना ‘अनुराग रत्न’ उन्हें भेंट किया था तथा ५ इज्जार का रकम पर लात मार दी थी, सम्पादक जा क कारण ही अ प० मुकुन्द राम जा को जूबो सावित्री क साथ कविवर सत्यनारायण जी का सम्बन्ध हुआ था। सत्यनारायण जी शर्मा क विरल भा आय समाजी थे। आय समाज की कन्या स उनको शादा हुई थी। उनके कांठ महा विद्यालय को अमर बना गय और बनात रहेंगे। काररत्न सत्य नारायण जा के गुण की परख सबसे प्रथम प० पद्म सह शर्मा जा न हो का था। उन्होंने अनका हिन्दी व उद् के काव्यों का चरमरमणीय कर दिया पर अ प० अनारक्षी दास चतुर्वेदी। उ क जीवन ज्ञान ललकन का महाजा लेखर मान स्वा लिखते हैं न। इस का ललकन के लए देते हैं, हमें ता कुछ नहीं पर स्वर्गीय प० जी की आत्मा उ ह क्या कहे। य० जी सचल। उनके पत्रों का प्रकाशन म व हं पर ह ह। इसके कारण हिन्दी साहित्य आज पत्र लेखन कला स शूर्य जा ही है। पत्र लेखने का प्रकार एक कला है जो आ

प० पद्मसिंह शर्मा जी को मज़ी प्रकार ही आता था ओ प०
रुद्रदत्त जी सम्पादकाचार्य प्रसिद्ध पत्रकार थे वे आर्य
समाजी थे। “स्वर्ग में सन्नेकट कमेटी” उनकी ही
लिखी हुई एक हाम प्रधान रचना है। प० पद्मसिंह जी
के आशुतोष से ही उन्होंने अपने अन्तिम दिन महा
विद्यालय में न्यतीत किये थे। तथा कुछ दिन भार



कविव नाथूराम “जकर”

तोदय का सम्पादन भी किया था। इस प्रकार हिन्दी
भगत् के प्रति प० पद्मसिंह शर्मा १० रुद्रदत्त जी
सम्पादकाचार्य प० सत्यनारायण शर्मा, श्री प० नाथू
राम शर्मा का बड़ा भारी उपकार है, जिन पर
पुथक पुथक लेख लिखे जा सकते हैं। पर आज
हम इस उपदेशक का नाम से इतना ही कहकर चुप

होते हैं। आर्य प्रतिनिधि समा संघ के प्रसिद्ध उप-
देशक श्री प० दौलतराम जी का जौन नाम नहीं
जानता जो कि अन्त में ‘अच्युत गुज, नाम से प्रसिद्ध
हुए। तथा मेरिया ‘भृगुरीर्य’ अन्वय शहर में गमातट
पर क्यों रहते रहे। यह आर्य समाज की ही रूप
थी जो उनके हृदय में भगवद् मक्ति इतनी अधिक
उमड़ी कि उन्होंने उपदेशकी छोड़कर भगवत् चिन्तन
आरम्भ कर दिया। श्री प० गणपति शर्मा आर्य समाज
के ६वें उपदेशक थे। बिन्हों ने जान साहब को
कश्मीर में आकर अपने अकाल्य तर्क से निवृत्त कर
दिया था। उनके वियोग में भी महाकवि शङ्कर ने
गणपति विशेग विलाप नामक एक छोटी सी पुस्तक
रची थी यह छोटी होते हुए भी अमूर्ती है।

श्री स्वा० निगमानन्द जी तथा श्री स्वा०
विश्वेश्वरानन्द जी तथा श्री स्वा० सर्वदानन्द जी भी
एक महान् उपदेशक थे। बिन्होंने राबा महाराबा
श्री को उपदेश देकर अज्ञान शिष्य बनाया था। श्री
स्वा० दयानानन्द जी महाराज का तो जौन नहीं जानता।
बिन्होंने गुरुकुल को बन्द दिया। तथा अनेको गरीब
निस्सहाय छात्रों को मदद देकर पुस्तक आदि बँटकर
पढाया। इन सब महानुभावों का नाम स्मरण कर
भ्रद्धानाल देना आज उपदेशक सम्मेलन का परम
कृत्य है। इस प्रकार श्री प० रामदत्त जी शुद्ध
एम ए० एल० एल० बी० के पूज्य पितृ चरण्य श्री प०
नन्दकिशोर देव शर्मा जी तथा श्री प० भगवान दीन
जी को हम यदि इस समय स्मरण न करें तो फिर
कब करेंगे। उपदेशक सम्मेलन का इन सब
का जीवन चरित प्रकाशित कर एक अभिष
की पूर्ति, तथा कृतज्ञता प्रकाशित करनी चाहिए।
श्री प० बीवाराम जी ताणपुरी भी प्रसिद्ध
उपदेशक थे। इन सब के साथ साथ आज
भी उपदेशकों की एक विशिष्ट कोटि आर्य समाज
में है। यह ठीक है कि ये आर्यक नहीं हैं, यथा कथित
वे इस परम्परा को निभा रहे हैं। इन सबका परिचय
समग्र तथा चित्रों का होना आवश्यक है।



“युगों यह जान कर हृष हुआ कि वैदिक संस्कृति के सार्व-देशिक प्रचार के लिये लखनऊ में एक अखिल भारतीय सार्व-उपदेशिक महासम्मेलन होने जा रहा है। देश भी सांस्कृतिक एकता उतनी ही आश्चर्यक है जितनी कि उसकी राजनैतिक एकता। संस्कृति राष्ट्रीयता का एक अविनाशक अङ्ग है जिसके बिना राष्ट्र तो बन सकता है राष्ट्र नहीं, अतः उसे अछूट बनाये रखना प्रत्येक देश प्रेमी का कर्तव्य हो जाता है।

इससे भी अधिक सन्तोष का विषय है आर्यसमाज में नवीन रक्त का प्रवेश। यह नव चेतना नवयुवकों की प्रगति की ओर सकेत कर रही है और आर्यसमाज के क्षेत्र में जो योद्धा बहुत निराशा फेरी हुई है उसको निवृत्त कर देगा इसमें संदेह नहीं है।

आर्यसमाज की चलिवेदी पर स्वनामधन्य, ख्यातनामा अनेकों महात्माओं ने अपनी आहुति दी है जिनकी पावन परम्परा से ही आन भी बह गौरवान्वित है, परन्तु वह युग था जब आर्य जनता में सामूहिक चेतना थी, सब को एक ही धुन थी “कुरुबन्तो विश्वमार्यम्”।

उस परम्परा की रक्षा करना नवयुवक वर्ग का उत्तरदायित्व है, उन्हें आत ऋणों से उच्छ्रय होना है। यह कार्य गम्भीर आत्मनिरीक्षण का है। भय यह है कि बदली हुई पृथक कारण की प्रवृत्तियों इस अभाग्य विभक्त देश को आधिकाधिक ईर्ष्या द्वेष की उजालाओं के अर्पित न कर दें।

आशा है यह सम्मेलन उपदेशक वर्ग के लिये कार्य प्रणाली रचने के अतिरिक्त धर्मसाधारण आर्य जनता को भी अनुप्राणित करेगा और इस चेतना को पुनर्जीवित करेगा—

“सगच्छद्भव सर्वद्भव सं वो मनाधि जानताम्, देवा भाग यथा पूर्वं ज्ञानाना उपाप्ते।”

सदनमोहन सेठ

भ्रमण पत्रिका

आज कल भारतीय विधान परिषद् के सामने यह प्रश्न है कि इस देश का नाम इन्डिया रहे या भारतवर्ष। यह तो सब को विदित है कि भारत नाम में हमारी अत्यन्त प्राचीन संस्कृति का इतिहास सन्निहित है। और इन्डिया शब्द विदेशियों का दिया हुआ है जिस में दासता की दुर्गन्ध आती है। अतः आर्य समाजों को चाहिये कि अपने स्थानों में सार्वजनिक सभा कर के निम्न लिखित प्रस्ताव पास करें और उसकी काफी अत्यन्त विधान परिषद् नई दिशों, प्रधान मंत्री भारत सरकार और सार्वदेशिक सभा के पास भिजवा दें। यह काम अत्यन्त आवश्यक है इसे १६ मई से पूर्व पूर्ण कर देना चाहिये।

“.....की यह सार्वजनिक सभा यह निश्चय करती है कि हमारे देश का नाम भारतवर्ष ही होना चाहिये, न कि “इन्डियन डोमोनियन”। भारतवर्ष हमारे देश का अत्यन्त प्राचीन नाम है और इसमें हमारी संस्कृति का इतिहास सन्निहित है। इन्डिया नाम विदेशियों का दिया हुआ है। अतः हम नहीं चाहते कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हमारा देश, विदेशी नामसे सम्बोधित हो।

गंगा प्रसाद उपाध्याय एम० ए०, मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

संसार की आशा भारत

(आचार्य क्षितिमोहन सेन, शान्तिनिकेतन बोलपुर)

भारतवर्ष के साधक वर्ग में एक दन्तकथा प्रचलित है। यह कहानी कुछ मृगों के विषय में है और इस प्रकार है, पुराने जमाने में किसी राज्य में एक हिरनों का झुंड रहता था। इस राज्य का राजा बड़ा न्यायी और सच्चा था और हिरनों का झुंड भी उड़े मूख शान्ति से जीवन बिता रहा था। कभी-कभी कुछ आक्रमणकारी आकर शिकार खेलने का प्रयास करने तो राजा इनको भगा दिया करता था। परन्तु हिरनों को इससे भी सन्तोष न हुआ और उनके नेता ने राजा से शिकायत की कि इस प्रकार बाधा पड़ते रहने पर उनका बहा रहना कठिन होगा और राजा इन बाहर के लोगों के हमलों का निन्कु रोक दे। राजा ने उत्तर दिया कि प्यारे बच्चों! मैं तुम्हें जिला प्रकार का कष्ट नहीं देता। इस राज्य में अन्य भी कोई ऐसा नहीं है जो तुम्हें कष्ट दे पर मैं यह विश्वास कैसे दिला सकता हूँ कि बाहर से कभी भी कोई हानि न पहुँचायगा।' इस पर हिरनों ने उत्तर दिया कि यदि वह ऐसा आश्वासन देने में असमर्थ है तो वे दूसरे देश में जा सकेंगे। राजा ने कहा कि "यदि तुम यहाँ से कहीं अन्यत्र जाकर अधिक सुख से रह सकते हो तो मुझ इसमें कोई भी आपत्ति नहीं है।"

हिरनों का यह झुंड इस प्रकार अपनी कल्पना के स्वर्ण प्रदण की खोज में निकल पड़ा। एक स्थान पर उन्हें एक शिला लेख देखा जिस पर अंकित था "यहाँ शिकार खेलने की आशा नहीं है।" इन मन्त्रों को आसृष्ट होकर उन्हें ने पता लगाया कि वह शिलापन नशा था और वहाँ का राजा राजा के किन्हीं भी आक्रमणकारी को नहीं आने देता था। इस प्रकार वे सब नय दश में जा

बसे, सारे भ्रम और आशका से मुक्त होकर उनकी सख्या में बहुत वृद्धि हुई। परन्तु एक दिन अपने भृत्यों के शस्त्रास्त्र से मुस जून होकर राजा स्वयं शिकार खेलने आया। अ एक श हिरन मार डाले गये अथवा मारल हुए और सा प्रतीत होने लगा कि प्रायः आ गई है। हिरनों का नेता हताश होकर राजा के पास गया और कहा कि हम लोग आप के इस वचन पर आश्रय कर के, कि यहाँ पर किसी को शिकार खेलने की आशा नहीं है, यहाँ आँ बसे थे, परन्तु यह सब क्या हो रहा है? राजा ने उत्तर दिया कि "लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ो, यहाँ अन्य कोई शिकार खेलने नहीं आ सकता परन्तु मैं जब चाहूँ शिकार खेल सकता हूँ। हिरना के नेता ने दुखी होकर कहा कि हाय! अगर बाहर के लोग हमला करते तो हम में से कुछ फिर भी बच जाते परन्तु आपका विपुल शस्त्रा और अतृयायिया के सामने तो हम में से एक भी न बचगा, अब हम किससे रक्षा की याचना करें हमने अपने पुण्यात्म और प्यारे राजा को छोड़ दिया। विनाश के उस क्षण में इस प्रकार उस हिरन ने परिताप किया।

विश्वकर्मि शीघ्र ने इस घटना को महत्व को इस तरह वर्णन किया है— "इस युग में हम ही वह हिरना के झुंड हैं। अब तक हम धर्म की भवजा के नायक जिन रहे। यह सच है कि हर तरह से रक्षा के विषय पर रहने पर भी धर्म हमारी जाने बाहरी शत्रु हमलों से रक्षा न कर सका। तब शिकार (खाइल) के राजा ने घोषणा की कि मेरे राज्य में आशो, मैं तुम्हारे सब दुख दर्द दूर दूंगा।" हम उसका शब्द का जदू में फँस

आर्यसमाज का उपदेशक और उसका उत्तरदायित्व

[श्री प० विहारीलालजी शास्त्री]

मैला कुर्ता, नङ्गा सिर, जिबो धोती, बगल में बिस्तर, हाथ में ड्रड, जल्दी जल्दी रेल के प्लेट-फार्म पर चलता हुआ यह कौन है ? आर्यसमाज का उपदेशक ।

आज भारत के सब धर्मोपदेशको से कम वेतन और कठिन नियन्त्रण पर काम करने वाला सादा भोजन और रहन सहन में बच्चकोटि के विशाल-उदार विचार रखने वाला, देश की उन्नति में सदा

रत और परपीडा का अनुभव करने वाला सहृदय है, आर्यसमाज का उपदेशक ।

आर्यसमाज की उपदेशकी से तग आकर यदि आर्योंपदेशक दूसरे पेशों में चले गये तो मौज उडा रहे हैं ।

सम्मान से रहित, अनेक अपमान और कठिनाइयों को सहते हुए भी आर्योंपदेशक क्यों काम कर रहा है ? विचारों की महिमा, महर्षि क सिद्धांतों

गण और धर्म को झोड कर साइन्स को अपना गुरु और साथी बना लिया । उसने हमारी बहुत सी आवश्यकताओं को दूर भी कर दिया और मानव जाति खूब बढ़ी और सोचन लगा कि यह परिणत अन्वद्धा ही हुआ, परन्तु एक दिन हमारी आँखें नैराश्य के अन्वकार में खुलीं जब हमें यह पता लगा कि विज्ञान और उसका मारक शस्त्र मानव जाति को ही मिटा देंगे । अब अपनी प्राण रक्षा के लिए हम फिर उस पुराने धर्म, नैतिकता और मानवता की दुहाई देने लगे हैं जिसको कि हम स्वयं छोड आये थे ।

मनुष्य में स्वार्थ और परमार्थ दोनों की भावनाएँ काम करती हैं, वह समाज को बनाता भी है और बिगाडता भी है । इन दैवी और आसुरी प्रवृत्तियों में सतत संघर्ष रहता है । एक कहावत है कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया और ग्रेपान ने राज्य या राष्ट्र को बनाया । आज की राष्ट्रीय भावना हमारे मानवता की भावना को पादाक्रान्त कर देती है और उसका फल होता है अमन वेदना । योरोप में जहाँ अनेकों अच्छे प्रयोग हुए तहाँ इस राष्ट्रीयता को अति ने पृथ्वी पर नरक का द्वार खोल दिया है । भारत की मानवता और धार्मिकता में भी प्रगति नहीं है । दोनों और सतु-

लन का अभाव है ।

अपने स्वर्णिम अतीत में परमार्थी और आदर्शवादी भारत ने मानव के हृदय पर राज्य किया था । भारत सर्वदा से अपनी सार्वभौमिक अनुभूतियों और विशाल आत्मिक प्रणालियों के लिए प्रसिद्ध रहा है । जातीय और अन्तर्जातीय व्यवस्था स्थापित करने में कबल भारत को ही नेतृत्व करने का अधिकार है । आज भारत यदि अपने उत्तरदायित्व को उच्चतम शिखर पर नहीं पहुँचता तो शताब्दियों के लिये अन्वकार के गर्त में गिर जायगा । इस महान कार्य को हमें अति कठिन उत्तरदायित्व के रूप में लेना है, हमें अपनी सारी शक्तियाँ निष्काम भाव से लगा देनी हैं । फल के लिए अधीर न होकर हमें अपने कार्य के लिए ही जीना और मरना है ।

मैं अपने पूर्वजों से प्रार्थना करता हूँ कि भारत अपने निर्दिष्ट कार्य के योग्य बने । मैं सत्कार के समस्त ज्ञानी और सुसंस्कृत विद्वानों से प्रार्थना करता हूँ कि वह भारत के इस कार्य में सहायक हों क्योंकि यद्यपि परिश्रम भारत का होगा तथापि लाभ सब का ही होगा । कार्य को पूर्ण स्वयं ही उसका पुरस्कार होगी । केवल इसी प्रकार मानव अपने खोप हुए अधिकार को प्राप्त कर सकता है ।”

[अनु० डा० राजेन्द्र वर्मा]

का प्रेम, स्वामी दर्शनानन्द का त्याग। आर्य पथिक और स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान। यही हैं आर्योपदेशक को प्रेरणा देने वाले।

आर्यसमाज की वेदी से देश दशा पर, समाज की रीति नीति पर, धर्मों की तुलनाओं पर जैसा सूत्रम और दार्शनिक विचार दिया जाता है वह अम्यत्र नाम मात्र को भी नहीं मिलता। फिर भी



लेखक

सूत्रम विषयों को मनोरंजन बनाकर सरल भाषा में दिया जाता है।

आर्यसमाज के उपदेशको द्वारा लाखों मनुष्यों को प्रतिमास जो विचार थोड़ा सा व्यय करके मिलते हैं वह दूसरी संस्थाओं में कहीं?

परन्तु भारत के पत्रों ने शपथ खा रक्की है मूल से भी आर्यसमाज के उत्सवों का वृत्तान्त

प्रकाशित न करने को। आज कल के पत्रों में जब कि "लपूअन्ना" लीडरों के बयान और भाषण नित्य प्रकाशित होते हैं तब भी उच्च से उच्च कोटि के आर्य विद्वानों के भाषणों का समाचार तक प्रकाशित नहीं होता।

जिन्होंने ने कु० सुखलाल जी, पं० रामचन्द्र जी देहलवी पं० सूर्यदेव जी पं० प्रकाशवीरजी आदि आर्योपदेशकों के भाषण सुने हैं वह हमारे



(पं० रामचन्द्रजी देहलवी)

हस कथन की यथाथता को जान सकते हैं। श्री पं० अयोध्या प्रसाद जी के विद्वत्ता पूर्ण भाषण, श्री पं० ज्ञानेन्द्र जी सूक्ती के सम्पूर्ण व्याख्यान कैसे युक्ति युक्त होते हैं। श्री जोरावर-सिंह जी पं० प्रकाश चन्द्र जी अपनी कविताओं से मनोरंजन के साथ साथ कैसे सुन्दर शिक्षा देते हैं।

आर्य भजनोपदेशकों ने मनोरंजन के साथ साथ जो नैतिक शिक्षा ग्रामीण जनता को दी हैं वह देश पर कम झण नहीं है। समाज सुधार का काम हमारे भजनोंकों ने कंधे पर बाजा लाद कर जो किया है क्या मोदर

और जहाज में उड़ने वाले बड़े से बड़े नेता ने भी किया है ?

दयानन्द के दीवानों ने मौखिक भाषण, गायन और लेखन द्वारा देश को जागृति में जो काम किया है वह सब सस्थाओं से अधिक किया है। और सुपचाप किया है। साथ ही सही सही किया है। दृढ़ता पूर्ण किया है। क्यों कि आर्योंपदेशक क पास पुरातन काल की मर्जी मंजाई करोड़ों जनों से अनुभूत और अरबों मनुष्यों पर प्रयुक्त शिक्षा है। योगियों का दृष्टि ब्रह्म है। प्रभु प्रकृत वेद है। परन्तु आज कल आर्योंपदेशक कुछ मुरझाया हुआ सा दिखता है। कुछ खोया हुआ सा कुछ भूना हुआ सा। क्यों ? दुनिया को चमक दमक, लीडरीस्वागत, और मिथ्या प्रचारों ने उसे झोका दिया है। और कुछ यह भी कारण है कि आर्यसमाज की वेदी पर भी वह लोग अधिकार जमाते जा रहे हैं जो दयानन्द के कहे जाते हुए भी दयानन्द के नहीं हैं। उन श्रद्धा विश्वास हीन लोगों ने आर्योंपदेशक के मार्ग को घेर दिया है। कोई कहता है आर्य समाज अपनी नीति बदले। कोई कहता है स्वामी जी के ग्रन्थ और उपदेश श्रवण अनावश्यक है। कोई कहता है गांधी वाद में सब प्रोग्राम स्वामी जी का आ गया है। श्रवण आर्योंपदेशकों को विराम करना चाहिये। ऐसे शोर गुल से आर्योंपदेशक की मति डोल गयी है।

“मतिर्दोलायते तत धूर्तैर्बुद्धिमतामपि”

परन्तु आर्योंपदेशकों ! यह सब आधियों उतर जायेंगी। यह झोल उड़ जायेंगी। हिरण्यमय पात्रों को दूर कर सत्य का उद्घाटन करो। सत्य का प्रचार करो। भौतिकवाद अंधतम को प्राप्त कराने वाला है। तुम्हारा मार्ग सय है और सनातन धर्मतंत्र शास्त्रतंत्र। अपने पथ पर अग्रसर होओ और श्रुति के बनाये मार्ग पर जनता का आह्वान करते रहो। जो विचमयी सरिता में बह

गये हैं उन्हें जाने दो, जो प्रलोभन और सम्मान के शिकार हो गये हैं उनको छोड़ दो। इनके कल्याण के लिये प्रभु से प्रार्थना करो। कठिनाइयों के पर्वतों को लांघो, विघ्न बाधाओं की नदियों को तैरो। नास्तिकता और मिथ्यावादी की बाढ़ियों को पार करो, हाथ में वैदिक प्रकाश लेकर सत्बाध तुम्हारा पथ प्रदर्शक है। फलाकांक्षा विना किये पुरातन ब्राह्मणों के समान कार्य करो। स्वतंत्र भारत की स्वतंत्रता और संस्कृति को दृढ़ तुम्हें बनाना है। ये दूध के मज्जून, जरा जरा से बलिदानों का “मावज़ा” चाहने वाले ये मज़दूर, भारत का निर्माण नहीं कर सकते। आज स्वतंत्र भारत का भवन कोई मक्के के नक़्शे पर बनाना चाहता है कोई मास्को के तो कोई मिला जुला। तुम्हें भारत माता का मंदिर अयोध्या मथुरा और इन्द्रप्रस्थ के मानवियों पर बनाना है भारतीय संस्कृति रहेगा महाभारत और बाल्मोकि रामायण की संस्कृति, यहा का विधान रहेगा मनुका वैदिक विधान। जो कहते हैं “अतीत को और लौटना मूर्खता है, उनकी उपेक्षा करो। जिनका अतीत अंधकार मय था वह अतीत से प्रेम क्यों करें और किस आशापर करें, परन्तु जिनका अतीत समुज्ज्वल रहा है, गर्व योग्य रहा है उन्हें तो अतीत की ओर ही लौटना होया। जो यह कह कर प्रमाते हैं कि “अतीत की ओर लौटना असंभव है” उन्हें कह दो, जाड़े रहो ! हम अतीत को ही लौटा कर लाते हैं। कसे ? जैसे गुप्त सम्राटों ने लौटाया और जैसे शिवाजी ने। जैसा शंकराचार्य ने लौटाया और जैसे ऋषि दयानन्द ने। नये बाजों पर भी पुरानी वीणा के स्वर बजाओ। नयी भौतिकता में पुरानी आध्यात्मिकता जाग्रत करो, अतीत को वर्तमान से मिलाकर भविष्य का निर्माण करो। काम कठिन है। परन्तु है कल्याणमय। प्रभु विश्वास पर दृढ़ रहकर अग्रसर होओ।

“अग्ने नय सुपथा”

दो दिवङ्गत उपदेशक

[श्री प्रो० मुखर्जी विद्यावाचस्पति विश्व विद्यालय, काङ्गडो]

जिन दो दिवङ्गत उपदेशकों के विषय में मैं यहाँ चर्चा करने लगा हूँ उनसे आर्य जगत् अच्छी प्रकार परिचित है। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक विशेष महत्व होता है, उसकी स्थान पूर्ति किसी अन्य से नहीं हुआ करती। फिर भी सर्व साधारण की अपेक्षा असाधारण व्यक्तियों का अभाव विशेषतः खटकता है, क्यों कि जाते समय वे अपनी उन असाधारण शक्तियों का अपने साथ ले जाते हैं जिससे सारा समाज उपकृत होता है।

दिवङ्गत प० रामदेव जी एव आचार्य चमूपति जी इसी प्रकार के असाधारण शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों में से थे। लखनऊ में १५ से १७ मई तक होने वाले इस “ आर्य उपदेशक महा सम्मेलन ” अवसर पर तो इन दो दिवङ्गत उपदेशकों की स्मृति का होना स्वाभाविक ही है।

प० मुखर्जी विद्यार्थी की मृत्यु के पश्चात् उस समय के आर्य जगत् में यह समझा जाने लगा था कि हमारे परिवार से एक इस प्रकार का विद्वान् उठ गया जो स्वाध्यायील था और अथक प्रचारक था। प० मुखर्जी विद्यार्थी के सम्भार तुलनात्मक अध्ययन का ही यह परिणाम था कि हम अपनी वैदिक सृष्टि को नष्ट करने में दालकर विदेशी विद्वानों को भी उसका स्वास्वाह कर सकें। अतः उनका अभाव आर्य आर्य जगत् को बहुत खटका। परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् ही हमने यह देखा कि इस कार्य का करने वाले दो विद्वान् आर्य जगत् के अलावे म आ उतरे हैं। वे आचार्य रामदेव जी तथा आचार्य चमूपति जी थे। आचार्य रामदेव जी ने तो अपने विद्यार्थी जीवन में ही कुछ समय तक प० मुखर्जी विद्यार्थी के साथ रहकर अपने को प्रभावित किया था और एक प्रकार की दीक्षा ली थी। आचार्य चमूपति जी उनकी पुस्तकों से प्रभावित हुए थे और प्रायः कहा करते थे कि हम उनके कार्य को पूरा करेंगे।

मैं आर्य समाज के उपदेशकों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकता हूँ।

(१) प्रथम श्रेणी के उपदेशक वे हैं जो अच्छे विद्वान् स्वाध्यायील हैं और जिनकी लेखनी में शक्ति है। परन्तु उनमें भाषण शक्ति सँघा नहीं है। इस लिए वे उन व्यक्तियों के लिए जिन्हें लेखन भाषा की विशिष्ट शैली को समझने का अभ्यास नहीं है विशेष लाभ कर सिद्ध नहीं हो सकते।

(२) दूसरे प्रकार के उपदेशक वे हैं जो भाषण देने में सिद्ध हस्त हैं और अपने भाषण के समय श्रोताओं का जिगर चाहे उधर बढ़ाकर ले जा सकते हैं। परन्तु उन्हें स्वाध्याय का अवकाश ही नहीं मिलता। इस लिए वे कुछ लिख नहीं सकते व शिथिल जनता का अधिक उपकार नहीं कर सकते।

(३) तीसरे प्रकार के उपदेशक वे हैं जो उभयात्मक हैं। “उभयात्मकमत्र मनः कृष्णः कामान्द्रिय च साधर्म्यात्” मन उभयात्मक है। न तो उसमें केवल ज्ञानेन्द्रिय कहा जा सकता है और न केवल कर्मेन्द्रिय। उसमें दोनों प्रकार की इन्द्रिय एक साथ कहा जा सकता है। इसी में उसका महत्व और श्रेष्ठता है। ये तीसरी काटि के उपदेशक भी उभयात्मक हैं, इसी लिए श्रेष्ठ हैं।

ये अच्छे विद्वान् स्वाध्यायील और लेखक भी होते हैं तथा साथ ही अच्छे वक्ता भी होते हैं। इसी प्रकार उपदेशक ही बहुत शिक्षित एवं सर्व साधारण का उपकार कर सकते हैं। हमारे ये दानी दिवङ्गत आचार्य उपदेशक भी इस तीसरी प्रकार की श्रेणी में रख जा सकते हैं। यही इनकी श्रेष्ठता का सूचक चिह्न है। इन्होंने अपने वैदिक धर्म के विचारों को नवीन पद्धति का चोला पहिना कर उनकी मोहक सुगन्ध को केवल भारत में नहीं नहीं अपितु भारत से बाहर भी फैलाया। उपदेशकों के लिये इनका जीवन सदा अनुकरणीय है।

(शेष पृष्ठ पर है)

उपदेश्योपदेश्टृत्वात्तात्सिद्धिः (सांख्यः)

(ले०—विद्याभास्कर श्री प० रुद्रदेव शास्त्री घट्टवेदाचार्य सेनापति—आर्यवीर दल
बङ्गाल, आसाम, (कलकत्ता)

अखिल भारतीय प्रथम आर्य उपदेशक सम्मेलन का अखिवेशन आगामी १५, १६ तथा १७ मई १६.६ को युक्तप्रान्त की राजधानी लखनऊ में होने जा रहा है। यह आर्य उपदेशक महातुभागों के लिये अत्यन्त गौरव एवं हर्ष का विषय है। आज समस्त आर्य जगत् के



लेखक

कुशल कार्यकर्ताओं एवं विद्वान् नेताओं का किसी न किसी रूप में इस सम्मेलन के निमित्त सहयोग प्राप्त है।

राष्ट्र के किसी भी अग्रणी के लिये यह आवश्यक है कि वह मार की निष्कण्टक बना दे और सैनिकों में सहिष्णुता की भावनाओं

कूट कूट कर भर दे।

भारतीय स्वातन्त्र्य बलिवेदी के निर्माता राष्ट्रोद्धारक महापि स्वामी दयानन्द सरस्वती से देश का कौन सहृदय आज अपरिचित होगा। ७५ वर्ष पूर्व ऋषि ने बुरे से बुरे स्वदेशीय राज्य के उत्तम होने तथा अच्छे से अच्छे विदेशियों के राज्य के निकृष्ट होने की घोषणा की थी।

इस प्रकार ऋषि ने परतन्त्रता तथा कुरीतियों के पाश में आवद्ध राष्ट्र को मुक्त करने के निमित्त सर्व प्रथम अपने आप को सेनापति नियुक्त किया तथा बृहत् सेना के रूप में देश भर में आर्य समाज की स्थापना की। सुसङ्गठित आर्य सेना की संख्या तो यद्यपि न्यून थी फिर भी वह वीर सेनानी न केवल स्वराज्य अपितु सुराज्य प्राप्ति के निमित्त वेद एवं वैदिक सस्कृति रूपी शस्त्रास्त्रों का सहारा ले कर आजोचन नाना प्रकार की बिध्न बाधाओं से युद्ध करता रहा।

उस वीर सेनानी के उद्दिष्ट लक्ष्य को पूर्ण करने के निमित्त आर्य समाज रूपी वंश की सेना के सेनापति उपदेशक महातुभागों का प्रयत्न चलता रहा है और आज स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् भी यह प्रयत्न तब तक चलता रहेगा जब तक कि देश में भ्रष्टाचार मिटकर “सुराज्य” न हो जाय।

सदृशो वर्षों की दासता और विदेशी सत्ता ने तो राष्ट्र को कमर हो तोड़ दी है। पूर्व-कालीन समृद्ध भारत आज परमुलापेक्षी है। देश के करोड़ों निवासी निवास व प्रसन्न के

अभाव में क्लान्त हो रहे हैं खूद्र स्वार्थों के लिये राष्ट्र का अहित करने वालों की भी कमी नहीं है।

राष्ट्र की भीषण विशृङ्खलित अवस्था में भी ऋषि के अनुयायियों उपदेशक निःस्वार्थ भाव से मूक सेवा करते रहे। जनता के कानों तक राष्ट्र के नेताओं के आदेशों को पहुँचा कर उसके स्तर को प्रत्येक दृष्टि से उन्नत करने में इन आर्य समाज के उपदेशकों का जो हाथ रहा है इतिहास में अन्वेषण के पश्चात् भी वह स्थान दूसरों को अग्रणी है। क्योंकि उपदेशक सेनानी कर्मठ धीरों ने स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग में आने वाली अनैक्यता, वैदेशिक शिक्षा, असुश्रुयता, निरक्षरता, जन्मगत जाति विभेद बाल विवाह, वृद्ध विवाह, विधवाओं का भयङ्कर अग्निशाय स्त्री शूद्रों के पठन पाठन के अनधिकार, मिथ्या विश्वास, पब भ्रान्त धारणाएँ इत्यादि अनेक क्रूरतियों के मार्गकर्णियों को हटाकर स्वदेश, स्ववेश, स्वसभ्यता स्वशिक्षा स्वदीक्षा स्वभाषा, और स्वाभिमान रूपी सुन्दर निष्कण्टक मार्गों का निर्माण किया। परिणाम स्वरूप जनता ने करवट ली। अमर महर्षि के बोये हुए तया विश्वन्ध महात्मा गान्धी के द्वारा सींचे हुए वृक्ष में फल आये। और देश ने कृतज्ञता के साथ स्वतन्त्रता देवी के दर्शन किये।

परन्तु अभी राष्ट्र के आभ्यन्तरिक नैतिक पतन की उगमगती हुई दीवार को एक धक्का और देना है। अन्धकार के गोटे से लथ पथ यह दीवार। जिस दिन टूटेगी— ऋषि दयानन्द के वैदिक काण्ड के वे स्वप्न और महात्मा गान्धी के राम राज्य के मनोरथ सफल हो जायेंगे।

यह ठीक है कि देश व समाज की रग रग में धंसी धंसी हुई इन बुराईयों को निकालने में उपदेशकों को कमी कमी बड़ी विकट समस्या

का सामना करना पड़ता है। कमी कमी आर्थिक परिस्थिति भी विचलित करने का कारण बन जाती है। क्योंकि यह युग अर्थप्रधान है। अति गह्रेंत मार्ग से धन प्राप्त करने वाला निगुण धनी भी गुणवान निर्धन उपदेशक को हेय समझता है। परन्तु इन सब परिस्थितियों में भी हमने अपने मार्ग पर बढ़ना है।

लक्ष्मी और सरस्वती का यह संघर्ष शताब्दियों से चला आ रहा है। रंसी किम्ब-दन्ती है, न जाने कहाँ तक यह बात सत्य है। परन्तु स्मरण रहे लक्ष्मी की अनैतिकता पर सरस्वती की नैतिकता सर्वैव हो विजयी रही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिसने अपने लक्ष्य के उद्देश्य की पूर्ति के लिये आन्वी तूफान, धूप, वर्षा, गर्मी, सर्दी, मान, अपमान भूख, और प्यास, इन सब की भी तनिक भी चिन्ता न करते हुए आगे ही पग बढ़ाया है, बड़े बड़े पवनों ने भी उसको सिर चुका कर मार्ग दिया है। बोहड़ जंगलों ने भी शीतल धायु तथा दायु से उसकी सहायता की है।

इसी तरह देश के निर्माण में मूक माध से कार्य करने वाले, समय समय पर खतरों से सावधान रहने के लिये जनमत को जागृत करने वाले उपदेशकों के त्याग को भुलाया नहीं जा सता। आज के संक्रामित काल की अस्थिरता में भले ही ससार उसे न समझ पाये पर इतिहास के स्वच्छ हो जाने पर वातावरण में स्थिरता आ जाने पर सब उसके महत्व को समझेंगे। और अन्त से उसके समस्त अवगत होंगे।

प्रभु उपदेशकों को शक्ति दे कि वह राष्ट्र निर्माण तथा उसके नैतिक स्तर को उन्नत करने में प्रकाश रतम्भ बन सकें।

ऋषि ऋणा से उच्छ्रिता होने का यही अवसर है

[डा० अत्रणसिंह भजनोपदेशक, आ० प्र० सभा, यू० पी०]

आर्य समाज का स्थापित हुये लगभग ७५ वर्ष व्यतीत होने का रहे हैं । अब तक बिस स्थिति से इसका प्रचार प्रवचन तथा सस्थाओं का काम चलता रहा है, उसमें समयानुसार परि वर्तन की आवश्यकता है । इसी के लिये यह प्रथम भारतवर्षीय उपदेशक सम्मेलन सम्देश दे रहा है कि यदि आगे आने वाली भयकर आधी से अपनी स्वभाव्य शक्तिको ज्ञान की ज्ञान की ई तो इसका उत्तरदायित्व आप के ही ऊपर होगा । अब हमारे समझ केवल एक ही कार्य है जो बिना धर्म प्रचार के पूरा नहीं हो सकेगा । अब तक इस प्रचार यह में कितने ही सन्ध्या उपदेशक प्रचारक समय समय पर जीवन आहुति देते बसे आये हैं यह यश बलिदानों से ही पक्कता फूलता है । यद श्री प० लेखराम जी तथा श्री १०८ स्वामी अद्भानन्द जी महाराज अपने बलिदान से और श्री १०८ स्वामी दशानन्द जी महाराज अपने शास्त्रार्थ से तथा श्री १०८ स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज अपने उपदेशों से जनता को संदेश न देते तो यह पौधा इस प्रकार न फूलता पक्कता ।

अब भारत स्वतन्त्र हो गया है । बही आर्यों की रीति का समय है । मैं तो कहता हूँ कि महर्षि स्वामी दयानन्द के कार्यक्रम को पूर्ण करने का यही अनन्त अवसर है यदि इस युग में भी आर्यसमाज अपने पग पदि लक्षणज में ही ऐसा विद्यालय स्थापित किया जाय जहाँ पर प्रथम ऐतिहासिक उपदेशक सम्मेलन होने का रहा है ।

आशा है आर्य विद्वान और नेता इस अव अवक प्रस्ताव को कार्य रूप में परिष्कृत करने के लिये योजना बनायेंगे ।

दबी हुई नीति से क्षिप क्षिप कर रखता रहा तो इसका माग्य कटकाक्षीर्ण बन सकता है ।

माननीय नेताओं को अब समय सम्मेलन कर इसका पथ प्रदर्शन करना चाहिये । ऋषि का संदेश निर्भीक कार्यों से फलेगा । अब तक हम त्याग और

ध्वज-गीत

(ले० लक्ष्मी प्रसाद खिवेदी 'चन्द्र' विशारद)

ओ३म्-ध्वजे, फहरो ।

कम्पित अनिल में,

अम्बर, सलिल में,

नव-धार से—

छहरो ।

ओ३म्-ध्वजे, फहरो ।

अवनि सुपमा में,

गौरव गरिमा में,

नव भार से—

लहरो ।

ओ३म्-ध्वजे फहरो !

मानव सुनीति में,

वोधव भीति में,

नव तार से—

धहरो !

ओ३म्-ध्वजे फहरो !

* तप से अपनी सङ्घता न दिखलावेगे तब तक इसकी सफलता कठिन है । आओ ! इस दृढ़ यज्ञ के अवसर पर प्रतिज्ञा करें कि आगे जीवन में प्रचार की सुव्यवस्थानुसार कार्य करते हुये ऋषि ऋण से उच्छ्रिता होने का सौभाग्य प्राप्त करें ।

अमर धर्मवीर से प्रेरणा

[प० धर्मदय विद्यावाचस्पति स० मन्यो सार्वदेशिक सभा, देहली]

अमर धर्मवीर श्री पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज जैसे तपस्वी परोपकारी वीर सन्यासी का पुण्यस्मरण निम्न के हृदय में उत्साह और नवजीवन का संचार न कर देगा ? वे ईश्वर के सच्चे भक्त थे और निर्भयता तथा साहस की मूर्ति थे। उनका जीवन सरल और श्रद्धा से ओत प्रोत था उन्होंने सन् १९१६ में सन्यास आश्रम में प्रवेश के समय श्रद्धानन्द नाम ग्रहण किया था। चिरकाल से लुम गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पुनरुद्धार, आर्य भाषा प्रचार, शुद्धि दलितोद्धार, विधवाश्रमा का उद्धार, वैदिक धर्म और आर्य सङ्कृति का प्रचार आर्य (हिंदू) संगठन स्वराज-यन्त्रालन प्रत्येक विषय में उनका कार्य अत्यन्त अभिनन्दनीय और श्रद्धयुक्त था। वे ऐसे गुप्त और साहसी महापुरुष थे कि जिस भी क्षेत्र में जाते वहाँ चमक जाते और सफल नेतृत्व करते थे। गुरुकुल विश्वविद्यालय कागदी वे संस्थापक और आचार्य के रूप में उनका ब्रह्मचारियों से व्यवहार पिता माता से भी बढ कर था। जब १९१९ में उन्होंने महात्मा गान्धी जी के अखहयोगान्दोलन में कार्य किया तो उस निर्भयता और साहस का परिचय दिया जिस का जनता कभी भूल नहीं सकती और जो इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरा में लिखा जायगा। देहली फन्टापर के सामने ए.क. विशाल जलूस का नेतृत्व करते हुए जब उन पर नहीं साधारण जनता पर गुलों ने गोली चलाने की धमकी दी तो वे आगे बढ़े और छाती तान कर खड़े हो गये और कहा कि मैं खड़ा हूँ। मुझे मारो। ऐसी निर्भयता से ये शब्द कहे गये कि किसी को उन पर गोली चलाने का साहस न हुआ। उन दिनों उत्तेजित जनता को सभ में रखना और अमृतसर में स्वागताभ्युच्च के रूप में कांग्रेस का सफल अभिव्यक्त कराना श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का ही काम था। मलकाना राजपूतों तथा अन्य मुसलमानों की शुद्धि का आन्दोलन जिस सफलता

के साथ उन्होंने चलाया और २ लाख के लगभग ऐसे विडूढ़े हुए भाइयों को राजपूत वर्ग में पुन मिला दिया इस को कौन भूल सकता है ? यह सब कार्य वे सार्वभौम वैदिक धर्म और प्राचीन आर्य सन्यता के सच्चे प्रेम से प्रेरित हो कर करते थे द्वेष वश नहीं। हिन्दू मुस्लिम एकता को लाने के लिये जितना प्रयत्न उन्होंने किया था और जिस के परिणाम स्वरूप मुस्लिम इतिहास में वे अकेले आर्य (हिन्दू) थे जिनसे जामा मस्जिद की बेदी से भाषण देने की मुस्लिम नेताओं ने प्रार्थना की थी।

त्व हि न पिता त्व माता शतक्रतो बभूविथ अधाते सुमन्मीमहे। इस वेद मन्त्र के आधार पर मनुष्य मात्र के भ्रातृत्व और बन्धुभाव का जामामस्जिद में दिया उनका उपदेश इतिहास की वस्तु बन चुका है। ७०, ७१ वर्ष की बूढ़ावस्था में दक्षिण भारत की धर्मयात्रा करते हुए उन्होंने अस्पृश्यता निवारणार्थ प्रयत्न प्रेरणा वहाँ की रूढ़दासी जनता को कर के उस में नवजीवन का संचार कर दिया था। गहाँ कहीं अन्याय अत्याचार उन्होंने पाया वहाँ वीरता से उस का उन्होंने विरोध किया। इसी कारण सिक्कों के गुप्त का बाग आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर वे जेलवासी बने थे। उनका हृदय अत्यन्त सरल और दया पूर्ण था।

बदनं प्रसादसदन सद्य हृदयं सुधामुचो वाच ।

करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्या ॥

यह बन्दनीय महापुरुषों का लक्षण उन पर अक्षरशः चरितार्थ होता था। सन् १९१८ में गढ़वाल में जब अकाल पड़ा तो उस समय गुरुकुल के ब्रह्म चारियों को साथ ले कर वे दिन रात अकाल पीड़ितों की सहायता करने में तत्पर थे। २०, २२ मील तक कई वार वे पैदल यात्रा किया करते थे। आर्यों के प्रति

उनके अपने शब्दों में निम्नदिग्ग्य उदेश जो विशेष उल्लेखनीय है। इस म देश पर आचरण कर के ही हम सब उस अमर धर्मवीर का वास्तविक स्मरण कर सकते हैं और उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित कर सकते हैं। उन्होंने लिखा था “तुम यह मत भूलो कि वैदिक धर्म कोई सम्प्रदाय या पन्थ नहीं है। यह वह सत्य सनातन धर्म है जिस के बिना ससार की सामाजिक व्यवस्था एक पल के लिये भी नहीं रह सकती। प्राचीन काल में असंख्य आध्यात्मिक कोषों का खोलने वाली चाबी तुम्हारे ही हाथों में दी गई थी और अब भी अशान्त ससार को शान्ति देना तुम्हारा ही कार्य है। किंतु पहले तुमका अपनी सब अपवित्रताओं को गाना होगा। आज गम्भीर भाव से यह प्रतिज्ञा करो कि तुम दैनिक पंचयज्ञों के अनुष्ठान में प्रमाद न करोगे, तुम अस्वामाधिक जाति भेद के बन्धन ताड़ कर वशाश्रम व्यवस्था को अपने जीवन में परिणत करोगे, तुम अपनी मातृभूमि में से अस्पृश्यता के कलक का समूल नाश कर दोगे और तुम आर्य समाज के सर्वभौम मन्दिर का

द्वार मत, सम्प्रदाय जाति, रङ्ग आदि के भेद भाव का कुल्लु भी विचार न कर मनुष्य मात्र के लिये खोल दोगे। परमपुरुषपरमात्मा इस गम्भीर प्रतिज्ञा के पालने में तुम्हारे सहायक है।” पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन जैसा वीरता पूर्ण और शानदार था एक मताभ्युत्थलमान युवक की गोलियों द्वारा उनका २३ दिसम्बर १९२९ में बलिदान भी उसके अनुरूप ही हुआ। ऐसे धर्मवीर के चरणचिह्न पर चलने की भगवान् हम सब को शक्ति प्रदान करे यही प्रार्थना है। आत्म निरीक्षण करके अपनी निर्बलताओं को दूर करने का हम सब को दृढ़ संकल्प करना चाहिये और जात पात तथा अस्पृश्यता की दल दल से निकल कर आर्योचित उदारता का परिचय देना चाहिये। तभी अमर धर्मवीर द्वारा प्रवर्तित सगठन शुद्धि तथा दलितोद्धार के आन्दोलन सफल और सबल हो सकेगे अन्यथा नहीं।

प्रभु करे आज उस महान् उपदेशक से प्रेरणा प्राप्त कर के उपदेशक सम्मेलन आर्य जगत् का कोई नया संदेश दे सके।



सुधारस धार वहे

[राजबहादुर आर्य “सरस”]

अवनी तल के दुख भार घटे,
कटु कष्ट कटें शुभ साह लहे।
नम में फहराय ध्वजा नित ही,
अरि का अरमान विचार बहे।
जगदोश द्या करिये इतनी,
इस भारत में बहु प्यार रहे।
शुचि प्रेम पयोनिधि की फिर से,
वसुधा पै सुधा रस धार बहे।



T.B
टी.बी. "तपेदिक" और पुराने ज्वरों की मशहूर दवा 'जबरी' पर भारत के
कोने-कोने से प्रशंसा पत्रों की झड़ी ।



१ लाला काशीप्रसाद वैश्य वाराणस (इलाहाबाद) २. बाबू
मुजालाल स्टोर किपर सिमभावली शूगर मिल पो० बकसर जिना मेरठ ।
३. बाबू रामसिंह घर न० ६१ रोडा मण्डी, देहरादून । ४ श्री तोसलहुसेन
रईस, गुकाम मुसेपुर पोस्ट भत्तकुण्ड (फैजाबाद) । ५ डा० ठाकुरसिंह
नेपाली गुकाम कढ़ैया रोड हरलबी जिना दरभंगा । ६ श्री राम खेलावन
राम भीखुराम पो० बाजूर गुसाईं जिला आजमगढ़ । ७ श्री लीलाधर
कापरी आर० सी० वाई सेनाटोरियम भवाली (नैनीताल) ८ श्री
लीलाधर चौधरी लायबेरियन काटन मार्केट नागपुर । ९ ए० चन्द्रमणि
पाण्डे मुकाम कुरेहरा पोष्ट मेहनाजपुर (आजमगढ़) । १० श्री नथूरसिंह
सोलकी कम्पाउण्डर गवनमेंट हास्पिटल महेश्वर (इन्दौर) ।

आदि आदि सैकड़ों सज्जनों का कहना है कि यद्यार्थ में 'जबरी'
दवा नहीं बल्कि रोगी को काल के गाल से बचाने वाली ईश्वरीय शक्ति
है । ऊपर जिन सज्जनों के पूरे पत्रे दिये गये हैं आप जिससे भी चाहे
पूछ कर तसल्ली कर सकते हैं । फिर हमने तो परीक्षार्थ दस दिन का
नमूना भी रख दिया है जिसमें तसल्ली हो सके । यदि आप सब तरफ

निराश हो चुके हों तो भी परमात्मा का नाम लेकर एक बार 'जबरी' की परीक्षा अवश्य करें ।

T.B.
टी.बी. तपेदिक व पुराने ज्वर के हताश रोगियों

अब भी समझो अन्यथा फिर बड़ी कहावत होगी—अब पड़ताये होन है क्या, जब चिडिया खुग गई खेत'
व लिये तुरन्त आर्डर देकर रोगी की जान बचावे । सैकड़ों हकीम, डाक्टर, वैद्य अपने रोगियों पर न्याहार
रके नाम पैदा कर रहे हैं और तार द्वारा आर्डर देते हैं । तार आदि कलिये हमारा पता कबल "जबरा
गाबरी" JABRI Jagadhri लिख देना ही काफी है । तार से यदि आर्डर द तो अपना पूरा पता लिखे ।
हय इस प्रकार है—

'जबरी' स्पेशल न० १ अमीरों के लिये जिसमें साथ साथ ताकृत बढ़ाने के लिये सोना, भोती, अन्नम आदि
के मूल्यवान भस्मे भी पड़थी हैं । मूल्य पूरा ४० दिन का कोर्स ४५) रु०, नमूना १० दिन के लिये २०) रु० ।
'जबरी' न० २ जिसमें मूलवान जड़ी-बूटियाँ हैं, पूरा कोर्स २०) रु० नमूना १० दिन के लिये ६) रु० । महसू
वदि अलग । आर्डर में पत्र का हवाला तथा नम्बर पता साफ साफ लिखें । पार्सल जल्द प्राप्त करने के लिये
हय आर्डर के साथ भेजें । यदि पार्सल Air mail से मगाना हो तो २) रु० अधिक भेजें ।

रायसाहब के० एल० एन्ड सन्स रईय एन्ड बैंकर्स (२) जगाधरी, (E P)

‘प्रचारक प्रगति के अवतार हैं’

(—पं० शिवदयालुजी मेरठ)

—“देश की वर्तमान परिस्थिति में भारतीय संस्कृति से प्रभावित नेतृत्व की अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसा वातावरण लाने में उपदेशक वर्ग सफल हो।”—लेखक के ऐतिहासिक विचार तथा शुभकामना।

—सम्पादक

यह जानकर हर्ष हुआ कि आगामी मई मास में लखनऊ में प्रचलित भारतीय आर्य-उपदेशक महा सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। देश की वर्तमान परिस्थिति में आर्य समाज की डायाडोल स्थिति में भारतवर्ष के समस्त आर्य-प्रचारकों का एक स्थान पर एकत्रित होकर भावी कार्यक्रम एवं नीति निर्धारित करना नितान्त आवश्यक है।



लेखक

१५ अगस्त सन् १९४७ तक भारत की राजनीति कुल और भी। विदेशी साम्राज्य शाहों के विरुद्ध सभी

वर्ग, सम्प्रदाय एवं दलों का समिलित मोर्चा था। जिस प्रकार भी सम्भव हो। विदेशी शासन को उखाड़ फेंकना एक मात्र उद्देश्य था। ईश्वर की अपार अनुकम्पा से, भारत की हुतात्माओं के बलिदान से और अन्तर राष्ट्रीय परिस्थितियों के प्रभाव से प्रभावित होकर अग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा और शासन सूत्र अपने देश वासियों के हाथ में आ गया।

अग्रेज चला गया किन्तु अगरेजियत विद्यमान है और अग्रेजों की छत्र छाया में ननपने वाला यावनी प्रभाव भी व्यों का त्यों विद्यमान है। जिस समय तक ये दोनों प्रभाव नष्ट नहीं हो जाते और भारत में विशुद्ध भारतीय संस्कृति का साम्राज्य नहीं स्थापित हो जाता और अनादि काल से परंपरागत उपलब्ध आर्य ज्ञान का विस्तार समूचे भारत में नहीं होता तथा भारत के बाहर देश देशान्तर एवं द्वीप द्वीपान्तरो में उस अर्ध ज्ञान की ज्योति बगाने का पुष्य कार्य भली भांति नहीं हो जाता उस समय तक भारत को पूर्ण स्वतन्त्र कहना विवम्बना मात्र है।

वर्तमान सरकार इस लक्ष्य को अपनाएगी और उसकी और प्रगति करेगी यह आश नहीं कहा जा सकता। यह संभव है कि भविष्य में सरकार की नीति तदनु रूप हो जाय किन्तु उसके लिए भारतीय संस्कृति के उपासकों को और आर्य ज्ञान के प्रचारकों को भगीरथ प्रयत्न करना होगा।

आधुनिक स्वतन्त्रता की चमक दमक, आकर्षण

एव प्रलोभन में आकर स्वार्थ - साधना में रत होकर अथवा तप, त्याग के प्रशस्त मार्ग की उपासना के स्थान में भोग भागों के पथिक बनकर हम कदापि अपने भ्रैय को सिद्ध न कर सकेंगे। और न करणर तदनु रूप गति ही करेंगी।

इस क्रान्ति काल की बेला में उस महान् क्रान्त दर्शी आचार्य भगवान् दयानन्द के अनुयायी ही मार्ग-प्रदर्शन का कार्य करने में समर्थ हो सकते हैं। इस विन्द परिस्थिति में होने वाले इस सम्मेलन का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ। और मुझे विश्वास है कि आर्य सन्ध्या एव प्रचारक महानुभाव निश्चय्य बनता को सही मार्ग का प्रदर्शन कराएंगे। प्रचारक को राजा और प्रजा दोनों के बीच में से होकर गति करनी होगी। राजा की चापलुधी और बनता का मनोरंजन इन दोनों का उसे त्याग करना होगा। भ्रुव सत्य का क्लिष्टे द्वारा आर्य-जाति एवं भारत वर्ष का कल्याण होना है दृढ़ता के साथ प्रचार करना होगा। और न्याय के पक्ष वा प्रत्येक आश्रय में साथ देना होगा तथा अन्याय के पक्ष का किंभी भी आश्रय में समर्थन नहीं करना होगा। दूसरों

के पिछलग्गू बनना और ठुकर सुहाती बातें करना आर्यों का काम नहीं।

हमें निर्भीकता के साथ भर्तृहरि का यह दिव्य उपदेशः—

“ निन्दन्त नीति निपुष्या यदि वा स्तुवन्तु
रुच्यीः समाविशतु गन्धतु वा वषेष्टम् ।
अथैव वा मरणा मस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यास्यः प्रविचलन्ति पद न धीरा. ”

जिसका आचार्य दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ ‘सत्यार्थ प्रकाश’ में केवल उल्लेख ही नहीं किया है अरिष्ट अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में उसे चरिताथे किया है और इस भाति इस अमर उपदेश को मूर्त रूप प्रदान किया है, हमें भी आर्य होने के नाते अपने जीवन में इस उपदेश को घटाना होगा।

“ नायः पन्थाः विद्यतेऽयनाय ”

केवल सही एक मार्ग है जिस पर चल कर हम अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

—मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य का निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वाद विवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो २ अविष्ट फल हुये, होते हैं, और होंगे, उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा। तब तक अन्योंऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य विशेष

विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना, कराना चाहें, तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय्य है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोध जाल में फँसा रक्खा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फँस कर सब के प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो सभी एक मत हो जायें।

—महर्षि दयानन्द

एशिया का महान उपदेशक स्वा० दयानन्द

[श्री विश्वचन्द्र शास्त्री]



रितत कोटि कोटि आर्य जनों को (मानव परिवार को) अपने अतीत की चिरन्तन पुण्यस्मृति के पावन रजकणों को विकीर्ण करने के लिये गुर्जरभूमि के क्षितिज में एक ऐसे वैदिक नन्द का उदय हुआ जिसका प्रकाश रूपी सन्देश सौरभ एशिया के बाहर भी सुदूर देशों तक पहुँचा और आज भी अवनितल को आलोकित किये हुये है।

भारतीय राष्ट्र के इतिहास में वह दिन कितना परम नैमवशाली होगा जिस दिन महान् उपदेशक दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना के व्याज से पॉच सहस्त्र वर्षों से भूली हुई आर्य जाति के लिये एक ऐसे सांस्कृतिक नीड की नींव डाली जिसमें अखिल मानव परिवार आश्रय ले सके और अपने उज्वल भविष्य की ओर बढ़े। आर्य जाति की जीवन सन्ध्या में सुखदगीवन प्रभाव की कल्पनामयी भावना कितनी पुनीत थी जिसने महामानव दयानन्द को उपदेशक बनाया। अरुणोदय के समान सूर्योदयिनी वह वैदिक संस्कृति उससे भी महान् है जिसने दयानन्द को सांसारिक सुखों की सरिता से हाटाकर एक ऐस कन्ट्रैकाकीर्ण मार्ग पर चलने को विवश कर दिया जिस में पग पग पर कष्ट, घोर अपमान, प्रबल विरोध एवं सहस्रों वर्षों की अनार्यता से परिपूर्ण घने जंगलों के अतिरिक्त कुछ न था।

उस अज्ञानता के सघन वन में उपदेशक देव दयानन्द ने मानवता को खिसकते हुये देखा। साथ में आर्य धर्म (मानवधर्म) के विकृत स्वरूप की भी देखा।

ऐसी नितान्त विषम परिस्थितियों में सर्व विषमताओं का प्रतीकार करते हुये घनीमूल अन्धकार के समय में आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द ने वैदिक परम्परा के अनुसार एक बार फिर से आदि ऋषि मुनियों के परम पुनीत सत्य न्याय और अहिंसा की प्रतीक सूर्य प्रणवाङ्कित अक्षय आर्य ध्वज को ऊँचों उठाने का महान् प्रयास किया।

यद्यपि इस उपदेशक के ईश्वरीय कार्य में आसुरी सम्प्रदायों द्वारा अनेक बाधाएँ डाली गयीं, पर पवित्र जान्हवी के तट पर हरिद्वार में क्रोश्यावधि धर्म पिपासु पथभ्रष्ट आर्य जनता के समस्त आर्य केतु फहरा कर ऐतिहासिक कार्यक्रम का मूत्र पात किया, जहाँ से लोक कल्याण के लिये गंगा यमुना सखस्वती की भोंति धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक प्रगतियों की धाराएँ बही जिन्होंने तापत्रयी को शान्त किया। ऊँच नीच के भावों को धोकर दलितों को उठाया 'दीनता दासता कायरता के गढ़ों को पाटकर आर्यांचित स्वाभिमान स्वातन्त्र्य और निर्भयता से युक्त आर्य गौरव की रक्षा की। स्त्री जाति को बन्धन विमुक्त किया। आर्य भाषा को पतन के गाड़हे से उठाकर गौरव गिरि पर चढ़ाया।

उनका विश्वास था कि अखिलभुवनों का सर्जन करने वाली एक महाराक्षि है जो समस्त लोकों की स्थिति सधार और रक्षा की हेतु है। वही शक्ति त्रिकालावापित सत्य के रूप में लोक में बेदहान नाम से प्रचारित है जिसके सम्बन्ध में उनकी धारणा थी कि आज तक मनुष्य ने जो कुछ ज्ञान पाया है वह केवल बेदहनी महातल का एक क्षय मात्र होगा

आर्यसमाज का प्रचार कैसे हो ?

श्री वेनीप्रसाद जी जिज्ञासु

आर्य समाज में उतरोत्तर कम होते हुये आकर्षण को देखते हुये मान्य लेखक ने कर्मठ बनने के लिये अपने विचार व्यक्त किये हैं। लेख मनन करने योग्य है।

—सम्पादक



खनऊ में उपदेशक महा सम्मेलन हो रहा है। सम्मेलन का होना बुरा नहीं अगर वह अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करे। हम देख रहे हैं कि आर्य समाज के सम्मेलन प्रायः वाञ्छित सफलता प्राप्त नहीं कर रहे हैं। क्या यह आर्य समाज जैसी विचार शील संस्था के लिये उचित है ? अतः हम विचार करना चाहिये कि सम्मेलन के द्वारा हम क्या लाभ दायक कार्य करें।

इस समय आर्य समाज का जो उपदेश कार्य हो रहा

है वह सन्तोष प्रद नहीं कहा जा सकता। आर्य समाज की जनता के अन्दर वह जिज्ञासा रूपी अग्निप्रज्वलित नहीं हो रही है जिस अग्नि के द्वारा वेदों उपनिषदों के उन पवित्र उपदेशों का जीवन में कुछ चमत्कार दिखाई पड़े। वे तो चिकने घड़े पर पानी की बून्द की तरह ही जाते हैं। हम प्रेम का उपदेश सुनते हैं परन्तु हमारी चाल बेढंगी ही रहती है, प्रेम कोसो दूर है। कथन और कर्म में अन्तर हो रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है। इसका उत्तर तो शानी उपदेशक ही देंगे।

यज्ञ के लिये अग्नि को प्रज्वलित करना आवश्यक है। आज हमारे अधिक कर्म विना अग्नि में यज्ञ की

और हम सकते हैं कि महान्यग्रोषों के नीचे विरागमान हमारे पुराण पुरुष गितना जान पाये वे उससे कुछ भी अधिक भगीरथ प्रयत्नों के बाद भी आग का संसार नहीं जान सका है। इसीलिए उन्होंने प्रचलित विचार धारा का मुख विराट शान पुंज वेद की ओर मोड़ने का सफल महान् प्रयास किया। वेद के सम्बन्ध में अपनी समस्त तर्कमय शक्ति, बुद्धि, धैर्य युक्त परिश्रम और आविष्कृत वैज्ञानिक साधनों द्वारा निरन्तर अध्ययन के पश्चात् ऋषि दयानन्द ने स्वभावतः ही अन्तर निहित सरस्वती की अमृतमयी धारा को वहाते हुए कहा “वेद सव सत्य विद्याओं का पुस्तक है।” इस प्रकार महर्षि ने राष्ट्रोपान के उषा काल के साथ साथ

पुरुषोत्तम राम का आदर्श कृष्ण की राजनीति, दधीचि का त्याग अपने पूर्वज मनु की दिव्य मानवता, समता आस्तिकता, राष्ट्रीयता, आर्यत्व और विश्व की एकता का अमर उपदेश दिया।

यह सत्य है कि आग से बहुत दिनों पूर्व अपना शरीर आर्य सांस्कृतिक यज्ञ में होम करने वाला नव दधीचि दयानन्द का पंच भौतिक शरीर अन्तर्धान होकर प्रकृति माता की गोद में विलीन हो गया पर हमारे पुरातन राष्ट्र के लिए दिया गया उनका अमर उपदेश आज भी चिरन्तन आर्य धरा के कण कण में व्याप्त है। हमारा उपदेशक सम्मेलन उसी विराट उपदेशक परम्परा का प्रतीक है।

सह हो रहे हैं। हम बहुत आर्य भ्रातृओं को यह कहते सुनते हैं कि कांग्रेस ने आर्य समाज का बेदाग कर दिया है। यह तो ठीक है कि बहुत से आर्य समाजी कांग्रेस के कार्य में लग गए हैं और देशोन्नति का कार्य करने लगे हैं। पर क्या शेष आर्य समाज में सब निकम्मों का समुदाय है? यह बात ठीक नहीं। आर्य समाज श्रीरं कांग्रेस का कार्य अपना अपना पृथक पृथक है, उस पर चलने वाला अपना कार्य कर्त्ता है और आर्य समाज में रहने वाले को अपना कार्य करना चाहिये। हम यह कहकर नहीं बच सकते कि कांग्रेस में जाने वालों के कारण आर्य समाज का कार्य नहीं हो सका।

किसी समाज की उन्नति के लिये उस के सचालक, उपदेशक ही उसके उत्थान अधपतन के जिम्मेदार होते हैं। सौ उपदेशों से बढ़कर एक उपदेश को अपने जीवन में घटाकर दिखाना लाभदायक होता है, इसकी कमी है। जब इ जन में शक्ति न हो तो गांधी चले कैसे।

भगवान् दयानन्द से पूर्व भी विद्वान् उपदेशक वेदों के पंडित थे परन्तु ऋषि दयानन्द के तप त्याग मय जीवन ने काया पलट कर दी। सोते भारत को ही नहीं विश्व को जगा दिया।

“वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्या का परम धर्म है” इस को निभाने वाले हम में कितने हैं इसका उत्तर अपने हृदयों में टटोले। आर्य समाज के अतीत काल पर एक दृष्टि डालें उस समय उगलियों पर गिने जाने वाले आर्य समाजी थे। उनमें संस्कृत हिन्दी को जानने वालों की संख्या बहुत कम थी। वह अपने तप, लगन, साधना द्वारा जीवन के उत्थान में निमग्न थे। घर में, बाहर जा जो कष्ट आपत्तिया आती थीं उनको सहर्ष सहते थे और प्रचार कार्य में रत थे। उनका वह उपदेश जनता के हृदय पटलपर जम जाता था। विरोधी लोहा मानते थे। वह

परस मण्डी के समान थे जिनके ससंग से लोहा भी परस बन जाता था।

इस समय आर्य समाज का उपदेश कार्य जोरों पर है। जिस समय कोई मनुष्य आर्य समाज के उपदेशों सुनता है और नियमों को पढ़ता है उसका मन उछल पड़ता है। आर्य समाज में प्रवेश करता है, परन्तु जिस समय वह अपने से पूर्व के अधिकांश आर्य बन्धुओं से मिलता है, तो जो कुछ सुना व पढ़ा था उसके विपरीत ही देखता है आने वाले के हृदय पर चोट लगती है और सोचता है कि यह सब कुछ कहने लिखने के लिये होता है करने के लिये नहीं। नमक की कान में आकर वह भी नमक बन जाता है।

अगर उपदेशक सम्मेलन इस विगड़ी को बना ले तो अतीव उत्तम होगा।

आर्य जनता की ज्ञान वृद्धि तथा पवित्र जीवन बनाने के लिये कुछ स्थानों पर विशेष कार्य कर्त्ता प्रचारक नियत कीजिये। जिन का कार्य अपने हिस्से के आर्य नर नारियों को कर्म योगी बनाना हो। अग्रर थोड़े से हिस्से में भी आर्य जीवन व्यतीत करने वाले बनाए जा सकें तो उनकी देखा देखी दूसरे स्थानों में भी नवजीवन पैदा हो जावेगा।

अब केवल व्याख्यानों का युग बीत गया। कांग्रेस और दूसरी सस्थाओं में भी आर्य समाज से अच्छे व्याख्याता पैदा हो गये हैं। अब आर्य समाज को अपना पग आगे बढ़ाना होगा। और वह करके दिखाना होगा जिसकी आशा सत्सर उनसे रखता है। ऋषि दयानन्द के पवित्र कार्य को सत्सर के उपकार के लिये तप और त्याग से करना होगा? प्रभु कृपा करे जिससे उपदेशक महा सम्मेलन विगड़ी बना सके। बाल ब्रह्मचारी का पवित्र कार्य पूर्ण हो और सत्सर के काने काने में पवित्र आर्य जीवन बिताने वाले आर्य नर नारी पैदा हों।



उपदेष्टाओं की कार्यसीमा

[कविराज रत्नाकर शास्त्री, आर्यवेद शिरोमणि]

बनता के सारे कार्य राजशासन से सिद्ध नहीं होते । राज शासन के अतिरिक्त धर्म शासन की भी आवश्यकता रहती है । राजशासन राजा चलाते हैं किन्तु धर्म शासन गणाने वाले उपदेष्टक ही होते हैं । निस्वार्थ भाव से की जाने वाली यह सेवा राजशासन से महान् है । जहाँ राज्यशासन नहीं चल सकता उस दुर्गम मार्ग पर धर्मशासन चलता है । यहा तक कि राजा भी धर्म शासन के आधीन रहना है । प्राचीन इतिहास में धर्मशासक का गौरव प्रबान मन्त्री से कई गुना अधिक माना जाता था । रामायण में सुमन्त्र से आचिक वशिष्ठ को स्थान मिला है । और महाभारत में द्रोणाचार्य का स्थान विदुर से कम नहीं । इसका एक ही कारण है, राज शासन दयक बल से चलता है, किन्तु धर्म शासन चरित्र बल से । दयक बल से चरित्र बल कितना ऊँचा है यह सभी जानते हैं । उपदेष्टाओं का शासन चरित्र बल से ही चलता है । अपने चरित्र से पराङ्मुख होकर दूसरों का अनुशासन उपदेष्टा नहीं कर सकता, क्योंकि कि वह बलहीन है । स्वामी रामतीर्थ ने कहा था 'वह व्यक्ति जो अपने चरित्र को भुला कर दूसरे के चरित्र को सुधारने का प्रयास करता है, समाज का शत्रु है' ।

अपना सुचार और सुचरो हुई दशा को परीक्षा लेने में ही उपदेष्टा का जीवन समाप्त हो जाता है । समाज तो उस तेजस्वी का अनुकरण करता है । गीता में कहा है 'स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते' । वस्तुतः उपदेष्टा का काम दूसरे को सुधारना नहीं है, वह अपने सुचारे हुये चरित्र को दूसरों के सामने रखता है । लोग उस में कष्टग्रहण देखते हैं, अनुकरण करते हैं । उपदेष्टा देने से कोई किसी की स्यों माने ! जो काम राज दयक नहीं करा सका, उसे उपदेष्टा कैसे करा होगा ! चरित्र बल से ही वह शक्ति है जो करा सकता है ।

उपदेष्ट में शिक्षा और दीक्षा दोनों का मिश्रण है । कोरी वाक्चातुरी और क्रिया चातुरी नाटक है । इसलिये उपदेष्टा में वाणी और क्रिया दोनों समन्वित होने चाहिये । एक युग में उपदेष्टा का कार्य क्षेत्र तीन स्तरों में विभक्त किया गया था १ सम्पक ज्ञान २, सम्पक दर्शन ३, सम्पक चारित्र्य । पहिले पद्विये, जो पढा है उसे समझिये और और जो समझा है वह अमल में लाइये । वर यही उपदेष्टा की कार्य सीमा है, ।

आर्य समाज ने उपदेष्टाओं का जैसा संगठन बनाया है वह भारत के इतिहास में नयी वस्तु है, परन्तु अब उस में वह आकर्षण नहीं रहा । जिस में आकर्षण न रहे वही पुराना बड़ा जाता है । इस पुराने वन को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है ।

इसने अपने उपदेष्टाओं की कार्य सीमा पर बहुत कम ध्यान दिया है । मैंने ऊपर तीन स्तर दिये हैं, उन्हीं पर विचार करें :—

१. सम्पक ज्ञान :—

आर्य प्रति निधि सभा ने अपने प्रारम्भिक काल में उपदेष्टाओं के लिये कुछ आवश्यक पाठ्य क्रम रक्खा था, उसकी परीक्षाएँ भी नियत की गई थीं । यह इस अभिगम से किया गया होगा कि उपदेष्टा उस अध्ययन से यह सम्पक सके कि श्रुते कौन से मार्ग पर चलना है । परन्तु आज कल हमारे बहुतेरे उपदेष्टा एक सूत्र बोलते हैं परन्तु उसका अर्थ देला करते हैं जो उस सूत्र से सर्वथा भिन्न है । कभी ९ तो सिद्धान्त मेद भी हो जाता है । यह स्वाध्याय की कमी का परिणाम है । प्राचीन युग में गुरु लोग किसी को सिद्धान्त का सूत्र तब सुनाते थे जब उसकी पूर्ण परीक्षा हो लेते थे । आज भी ऐसा पाठ्य क्रम अनिवार्य होना चाहिये ।

सम्यक् दर्शन :—

जो कुछ जाना है उस के परिणाम की संस्यत पर भरोसा होना चाहिये। हम कहते हैं 'बच्चों को गुरुकुल में पढ़ाओ' सत्यार्थ प्रकाश निधि में पैसा दो, गुरुकुल निधि में जीवन दो, और बात पाल की सकीर्णता हटा दो परन्तु उस पथ से दूर रहते हैं। हमारे वचन और कार्य में महान् अन्तर है। "स्वयमेतन्वीयमनुष्ठान" होना परम आवश्यक है। आज हमारे पास ज्ञेय के उपयुक्त सामान नहीं। और जो सामान है उसके लिये ज्ञेय नहीं। भ्रष्टा विश्वास तो हम खो चुके हैं।

अर्थे समग्र ने आचार पर उपदेशकों को प्रचानता देना उनके सम्मान और उन्नत विचार शक्ति को रिरा देना है। इस अर्थे लिप्सा की पूर्ति के लिये उपदेष्टा अपने आत्मिक बल को बैठता है। यही कारण है कि स्वामी जी के निश्चन काल से लेकर जो काम आर्यसम्राज के बोधे से श्रवैतनिक उपदेष्टाओं ने किया उसकी तुलना में इधर अनेक वैतनिक उपदेष्टा नहीं कर सके।

यह दोष इतना उपदेष्टा का नहीं, जितना सचालन का है। जो साक्षा हमने बनाया है, उस में परिवर्तन कीजिये। सम्यक् दर्शन को महत्व दीजिये। उसी से जनता में विश्वास बढेगा। जो कहिये उसे करने को तत्पर रहिये।

सम्यक् चारित्र्य —

'हम जो कुछ कहेंगे उसे करके ही छोड़ेंगे' यह वृद्ध निश्चय रुकलता की कुर्बी है। आज हमारे पास दर्बनों उपदेष्टा हैं, फिर भी, हमारी सारी स्त्री में अशरुल। यह सब प्रकट करता है कि जनता का विश्वास हम में नहीं रहा। उसके लिये हम चरित्र बल बढ़ायें। प्रत्येक उपदेशक गुरुकुल का पढ़ा हो, प्रत्येक कार्यकर्ता के बालक गुरुकुलों में पढ़ते हों। अर्थसमग्र ही उपदेशकों की योग्यता न मानी जाय। सकीर्ण भावना हमारे व्यवहार में न हो, और देश काल के अनुकूल एक विचार का परिवार बना दें तो निश्चय है कि हमारा चारित्र्यबल प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजयी होगा, उपदेशक अपनी निष्ठा से प्रेरित हो, न कि वेतन से।

उपदेष्टा को बुलाने में हमारे अन्दर गुरु की भावना आये नीकर और नाटकी की भावना न हो। हमारे उपदेष्टा में भी जनता की भावना बुरासों पर विभव पाने के लिये उच्च टोट का चरित्र बल होना ही चाहिये।

★ ★ ★



अवध के चित्तरक—एच. एच. महता एण्ड को०, २०, ३६ श्रीरामरोड लखनऊ

दमा [अश]

(बवाखोर) का नमूना मुफ्त प्रकाश दमे के ३ रोगियों के पूरे पते भी लिखें शारदा सदन बिलाटी (मुद्रवाबाद)

बच्चे व मां के लिये अमृततुल्य मीठी पुष्टई

लाल-शर (Regd.)

(लाल शरबत)

डाबर (डा० एस० कै० बर्मन) लि०
कलकत्ता

उत्कृष्ट वैदिक साहित्य की पुस्तकें

वैदिक सप्तसि ६), गीता रहस्य ११), लक्षार्थ प्रकाश १।।।), सं० विधि ॥।। इष्टान्त वागर २।।), चर्म शिक्षा ॥), सत्यनारायण की कथा (वैदिक) ॥), मुक्तिकर भक्तनामाली (कु० मुक्तलाल) १।।), पाक विज्ञान ३), श्री सुबोधनी ३), मनुस्मृति (स्वामी तुलसीराम) ५), सुमन-	समर (पं० विहारीलाल शास्त्री) २) संगीतरत्न प्रकाश (बल भाग) ३), प्राञ्चाम विधी १), आर्य पुष्पावलि १।।), हवन कु० सोदा १।।), हवनकुचक वाचा ३), प्रमुक्त महिलाए १।।) राष्ट्राप्रताप १।।)
--	---

इसके अलावा हर प्रकार की समस्त पुस्तकों का बड़ा सुधीयन हमसे मुफ्त में गाकर देखिए। एक बार परीक्षा प्राचीनीय है। कृपया पता बहुत काफ लिखें।

श्यामलाल बहुदेव भारतीय आर्य पुस्तकालय, बरेली।

कैसे भी दाद व खुनली के लिये

दादमार

संसार की सर्वश्रेष्ठ मादरम

आर्यमित्र विज्ञापन

का

उत्तम साधन है ?

आर्यसमाज के उपदेशकों का भावी कार्यक्रम

[लेखक—स्वामी ब्रह्मसुमि परिजाजक]

आर्य समाज के उपदेशकों के भावी कार्यक्रम पर विचार करने की आवश्यकता क्यों हुई इसके तीन कारण हैं—

१—“स्थान स्थान पर एवं प्रत्येक व्यक्ति के मूल से यह सुनने में आता है कि आर्य समाज शिथिल हो गया, ढीला पड़ गया या समाप्त हो गया।”

२—“आज हमारा आर्यावर्त (भारत) देश स्वतन्त्र हो गया। परन्तु इस स्वतन्त्र देश की बागडोर जिनके हाथों में है उनकी आर्य संस्कृति एवं आर्यावर्तीय संस्कृति के प्रति भारी उधेचा है उपद्रव (धूस-रिखन) चोर बाजारी बट रही हैं, समाजवाद, साम्यवाद (कम्युनिस्ट) आदि दल बढ़ते जा रहे हैं इत्यादि” इन के प्रतीकार के के लिये भी भावी कार्यक्रम बनाना है।

३—वेद के अनुसार “कृपयन्तो विरवमार्यम्” संसार को आर्य (श्रेष्ठ) बनाने का कार्य आर्य समाज के उपदेशकों को करना शेष है, इस लिये तथा—

(ख) मनु के अनुसार “एतदेशप्रभृत्य सकाशाद भ्रजन्मन, स्वं स्व चरित्रं शिञ्चेत् पृथिव्या सर्वमानवा” “इस कार्य को करना भी आर्य समाज का ही काम है इस कारण और—

(ग) ऋषि दयानन्द के अनुसार “सर्वतन्त्र सिद्धान्त आर्यावर्त को साम्राज्य सार्वभौम धर्म (वेद धर्म—आर्य धर्म) है जिसको सब लोग सदा से मानते आए हैं मानने भी जिसका कोई भी विरोधी न हो वह ऐसा सना तन धर्म (वेद धर्म—आर्य धर्म) है, उस वेद धर्म—आर्य धर्म को विश्व का धर्म, सार्वभौम धर्म, साम्राज्य धर्म समस्त राष्ट्रों का धर्म, विश्वराष्ट्र धर्म बनाना है इस लिये भी आर्य समाज के उपदेशकों को भावी कार्यक्रम पर विचार करना है।

आर्य समाज के चतुर्विध उपदेशक हैं जिन में एक

नेता उपदेशक हैं जिनके हाथ में आर्य समाज की प्रति निधि समाजों और वही बड़ी सत्वाओं की बागडोर है दूसरे शास्त्रार्थी उपदेशक हैं जो आर्य धर्मों पर मत वालों से शास्त्रार्थ करते हैं। तीसरे व्याख्याता उपदेशक जो व्याख्यान दिया करते हैं चौथे जनसुदेशक जो भजनों द्वारा उपदेश देते हैं। इन चारों प्रकार के उपदेशकों के भावी कार्यक्रम में उपयुक्त तीनों कार्यों पर क्रमशः विवेचन करते हैं।

१—आर्य समाज शिथिल हो गया इसका उत्तरदायित्व यद्यपि चारों प्रकार के उपदेशकों पर है परन्तु इसके विशेष उत्तरदायी नेता उपदेशक हैं जिनके हाथ में आर्य समाज की बागडोर है। कारण कि आर्य समाज का ह्रास तीन प्रकार से दृष्टिगोचर होता है राष्ट्रीय दृष्टि से, समग्रता की दृष्टि से और जीवन की दृष्टि से।

राष्ट्रीय दृष्टि से आर्य समाज का ह्रास—

आर्यावर्त देश स्वतन्त्र हो गया परन्तु इसके शासन की बागडोर आर्य समाज के हाथ में नहीं आई। न इसका कोई व्यक्ति मन्त्री पद पर है, न विधान परिषद में। आर्य समाजियों होने के नाते यद्यपि आर्य समाज ने ही भारतीयों में सर्व प्रथम स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना को भरा। प्रारम्भ में आर्य समाज राजनैतिक सभ्यता समझी जाती थी। ब्रिटिश सर्वमैट इसे सन्देह की दृष्टि से देखती थी। उस समय आर्य समाज स्वतन्त्र विचारक व्यक्तियों के हाथ में थी। परन्तु जब से राजसत्ता से सम्बन्धित वकील वैरिस्टल उच्च आदि मद्रासभाष नेता बने तब से आर्य समाज का राष्ट्रीय दृष्टि से ह्रास होता चला गया, ऐसे नेताओं ने आर्य समाज को राष्ट्रीय क्षेत्र में इसलिये नहीं उठने दिया कि वास्तव में ये बेचारे राजसत्ता से सम्बन्धित थे। आज परिस्थिति भिन्न है। आर्य समाज की व्यक्ति भी राज्यशासन पर आरूढ़ हो परन्तु आर्य समाज द्वारा निर्वाचित। न कि क्रमसे से निर्वाचित

या भारत सरकार द्वारा लिए हुये। आर्यसमाजी वकील बैरिस्टर जन आदि रिटायर्ड होकर उक्त कार्य के लिये यत्नशील हों।

संगठन की दृष्टि से आर्य समाज का ह्रास—

भिन्न भिन्न दलों की समाएँ और संस्थाएँ बनजाने से तथा पदाधिकार एवं स्वत्वाधिकार के लिये संघर्ष रहने के कारण आर्य समाज का संगठन विगड़ गया। और कुछ आर्य समाज को छोड़ अन्य क्षेत्रों में चले गए।

जीवन की दृष्टि से आर्य समाज का ह्रास—

गिनके हाथ में आर्य समाज की बागडोर है वे नेता उपदेशक आदर्श की ओर न चल सके। अनेकों ने वान-प्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम की अवहेलना की। वानप्रस्थाश्रम आवश्यक नहीं समझा एक प्रतिनिधि समा के अधिकारी को तो मेने अनेक बार यह कहते देखा कि वेद मे संन्यास नहीं है, वृद्धावस्था मे धन और पुत्र पौत्र के मोह को न छोड़ ये नेता, उपदेशक न बन सके अपितु आर्य समाज में जीवन की उदासीनता के कारण बने। अब आवश्यकता है वे नेता संन्यासाश्रम में नहीं जा सकते हों तो वानप्रस्थी बने और अपना सारा समय और जीवन अर्य समाज को देकर आर्य समाज के कार्य को आगे बढ़ाए। स्वयं आदर्श बनकर आर्य समाज में जीवन का संचार करे।

२—स्वतन्त्र भारत की बागडोर सम्भालने वाले शासकों के अन्दर आर्य सस्कृति के प्रति उपेक्षा है, चोरबाजारी भी बढ रही है। इनके हटाने के लिये आर्य समाज के उपदेशकों को निर्देशमात्र यहाँ यही कहा जा सकता है कि उक्त अन्तर्राष्ट्रिय सम स्या है इसमें से चोरबाजारी उपद्रा श्रुति (धूस-रिखत क्षोरी) पददुरुपयोगिता, क्रम्युनिस्टिक विघातक प्रवृत्ति को दूर करने के लिये तो आर्य समाज के चारों प्रकार के उपदेशक सलगो सम्मेलनों और पृथक् पृथक् परि-वारो मे सदाचार सद्गृति सद्भावनाश्री का उपदेश दें। शासकों के अन्दर अर्य सस्कृति मे रुचि और तदनुसार शासन प्रणाली को प्रचारित कराने के लिये आर्य समाज के नेताओं और विद्वान् उपदेशको को उन शासकों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें आर्य धर्म एवं प्राचीन राज नीति की महिमा बतानी तथा

उनकी उचित रीति से समालोचना करनी चाहिए।

३—विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाने, संसार को चरित्र की शिक्षा देने, वेद धर्म या आर्य धर्म को सार्व-भौम या साम्राज्य धर्म बनाने या संसार के राष्ट्रों में वैदिक धर्म का साम्राज्य स्थापित करने का कार्य विशेषत पर राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध रखता है स्वराष्ट्र में भी हास्यरस प्रधान नहीं किन्तु चरित्र शिक्षण और सिद्धांत प्रधान आर्य धर्म का उपदेश इस ढंग से देना कि जनता अपनी ओर आकर्षित हो। शास्त्रार्थ सिद्धान्त या पराजित करने की भावना से न किए जाये किन्तु तुलनात्मक, विचार विमर्श अथवा शब्दा समाधान द्वारा शास्त्रविवेचन के रूप में मैत्रीपूर्ण हों। आर्य समाज के उपदेशकों को एक ऐसा विश्व प्रचारक मण्डल बनाना चाहिए जिसमे अंग्रेजी के उच्च विद्वान् और साथ ही संस्कृत एवं आर्य शास्त्रों के भी जानकार हों। उनको विदेशों में भेज आर्य धर्म के मौलिक सिद्धान्तों और सदाचार की शिक्षा का प्रचार कराया जावे एव वैदिक राजनीति आर्य राजनीति का महत्त्व समझाया जावे, आर्य धर्म और आर्यराजनीति का साहित्य भिन्न भिन्न विदेशी भाषाओं में तैयार कराया जावे। इस प्रकार कार्य करने से विदेशों में आर्य धर्म का साम्राज्य न हुआ तो वीज अवश्य बोया जावेगा कम से कम आर्य धर्म का प्रचार तो होगा।



श्री ब्रजबहादुरजी प्रचारक समा

जागृत राष्ट्र के पुरोहित

(श्री राममोहन आर्य, सम्पादक राष्ट्र सन्देश)

प्रति दिन कार्यक्रम में बुद्धि और योजना की अनि-
कार्यता स्पष्टतः सिद्ध है। बुद्धि हीन "प्रमत्त" एवं
कोणभा हीन 'अवगार' इन नामों से सम्बोधित होते
हुए दीख पड़ते हैं अतः मनुष्य को अपने जीवन में बुद्धि
पूर्वक सार्वक कार्यों की ओर अग्रसर रहना ही चाहिए।
सामाजिक जीवन भी इसी प्रकार के हृद्द नियमों पर ही,
आधारित है। जो समाज अपनी उन्नति के लिए विचार
पूर्वक योजना बनाने में अलसमर्थ है वह सदा पतित अवस्था
में ही पड़ा रह कर दूसरों की कृपा पर अवलम्बित
रहता है।

इस प्रकार हम एक निश्चय पर पहुँचते हैं कि
मनुष्य और समाज को सचेतन बनाए रखने के लिए
विचारक शक्ति की आवश्यकता सर्व प्रथम है। बुद्धि
और विचार शक्ति को कुपिठित न बनने देने के लिए योजना
(पूर्व निश्चित कार्यक्रम) और तदनुकूल चर्म यही एक मात्र
मार्ग है।

इतिहास साक्षी है, विश्व के अनेकानेक समाज
आज लुप्त प्रायः हो गए हैं, उनकी सन्ततियाँ
आज भीवित हैं परन्तु विचार शक्ति के अभाव के कारण
वे अपने पूर्वजों की सम्मता संस्कृति व इतिहास से
सर्वथा वृषक हो कर आत्म समर्पण का भाव प्रकट कर
चुभी हैं। एशिया को दहला देने वाली आतियाँ शक
और हुख आन कहा और किस अवस्था में अवस्थित हैं,
वह कहना दुष्कर है, सम्भवतः हृषिक्ये नाम से पराङ्गों में
बोका दोने वाले व्यक्ति ही उन पूर्वजों की सन्तान हैं।
किसी कवि ने लिखा है—

“यूनानो यिस्त्रो रोमां सव मिट गय ज्हां से,
आज तक मगर है काकी नामो निशां हमार,

अज आतियों के बंधावधियों से हम ही परिचाम
पर पहुँचते हैं कि आर्य भाति जो विचार शक्ति सुदृढ़

होने के कारण एवं अपनी अवगत दशा में भी इस शक्ति
का उपयोग करते रहने के कारण वह अपने को भीवित
रख सकी है।

भारतीय ऐतिहासिक परम्परा की यह विशेषता है कि
जब २ समाज में अग्रिमता या कुरीतियाँ आईं तब तब
महापुरुषों ने अवतरित होकर जनता में बुद्धि वाद का
प्रचार कर भाति को नष्ट न होने दिया। इस प्रकार
जनता में विचार शक्ति का आविर्भाव हुआ, उसने अपना
गत वैभव पुनः प्राप्त कर लिया। भारतीय इतिहास में
इन्हीं कारणों से व्यक्तिगत महापुरुषों के नाम पर भी
सुगों का नाम करण किया जा सकता है। राम, कृष्ण
बुद्ध शंकर और, दयानन्द ये सुगों के प्रतीक रूप में
आज हमारे सामने प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रहे हैं।

यह युग जिसे दवानन्द युग कहना ठीक होगा इसके
पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दोनों भागों का निरीक्षण कर यह
निस्सन्देह कहा जा सकता है कि समाज के पतन का
आधार समाज की विचारक शक्ति का जो घाना तथा
उसके उत्थान का कारण समाज में विचारकों का अभाव
रहना है।

हमारे सुदृढ़ मस्तिष्क वाले पूर्वजों द्वारा इस नियम
को लक्ष्यगत कर ही सामाजिक योजना बनाई गई थी।
मस्तिष्क के विस्तार को सर्वाधिक महत्ता देते हुये बुद्धि
और ब्राह्मण वर्ग का उल्लेख सर्व प्रथम किया गया है।
देश के शासकों एवं पारियों एवं अमियों को उचित मार्ग
का दर्शन कपने वाला वह वर्ग बुद्धि एग अनुभूति का
सञ्ज्ञात पुत्र था। ये ब्राह्मण जीवन पर्यन्त अपनी बुद्धि
को तीक्ष्ण बनाने में सदा चिन्तित रहते थे। सत्यादि
गुणों के कारण उनको बुद्धि की मलिनता पुत्र चुर्की की,
स्वार्थ द्वेष, अहंकार को छोड़ कर बुद्धि का परोक्ष
समाज को उन्नति के निमित्त हो रहा था। १९१४

एक वर्ग की कठोर सभ्यता के कारण देश में जीवन के लक्ष्य दृष्टि गोचर होते थे। इन्हीं के कारण रावर्षि मनु ने इन्हीं व्यक्तियों से "स्व स्व चरित्र शिञ्जेत्" कह कर इसकी पापबन्ध क्षीयणा की।

जब ये विचारकगण यश के तृष्णाबाल में पस गए तभी से पाण्ड्यद्वय और कूट आदि का प्रचार हुआ जनता आनन्दित होकर अपने संरक्षक के उपाय सोचने लगी। अनेक बाद उत्सव हो गये। पर-तु अशांत व्यक्तिों द्वारा शान्ति की ये योजनाएँ मनुष्य हित करने में असमर्थ ही रहेंगी। अधिकारी से कर्तव्य को नष्ट नहीं की जा सकती, कानूनों द्वारा सभ्य समाज का निर्माण असम्भव है।

वास्तविक शान्ति का प्रचार बुद्धिवादी शान्त स्वार्थ हीन प्रचारकों पर ही अवलम्बित है। यश के तृष्णाबाल में पसे हुए अथवा धन की लालसा में लिप्त व्यक्ति समाज के मस्तिष्क को दूषित ही बनाएंगे।

वैदिक मर्यादा के अनुसार विचारकों का वर्ग बनाना अशक्य है, जो बुद्धि को स्वाध्याय के साहचर्य से, विकसित करे तब व त्याग से उसकी शुद्धि करें, अपने सरल निष्काम मन द्वारा शान्ति योजनाओं को जनता में सक्रिय रूप से विस्तारित करें।

इन विचारकों को विचारना ही होगा कि वे देश के निर्माता हैं, नायक हैं, सुयोग्य क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों की उत्पत्ति उनके प्रयत्नों पर ही आचारित है। विश्व आबद्धिकतन्त्र विमूढ हो रहा है, इसलिए इस समय विशेष आवश्यकता की आवश्यकता है, कर्तव्य निष्ठ और निस्वार्थ व्यक्ति ही सामाजिक निर्माण में सफल हो सकते हैं चाहे उनका संख्या थोड़ी हो।

इसी पर वैदिक योजनाओं की सफलता अवलम्बित है। अतः यह आवश्यक है जब प्रत्येक आर्य को विचारक बन कर, राष्ट्र का पुरोहित बन कर कहे "राष्ट्रं वयम् आश्रयन्तः पुरोहिताः।"



आर्य समाजों के होने वाले उत्सव जो निम्न तिथियों में समारोहपूर्वक मनाये जायेंगे

- १—आ० स० कन्दूनमेष्ट सहर बाजार लखनऊ १८ से २१ मई तक
- २—आ स नैनीताल २८ से ३१ मई
- ३—आ स मम्म २५ से २८ मई
- ४—आ स पुरैनी १ से ८ जून
- ५—आ स टाडा अफजल २ से ५ जून
- ६—आ० स० लोको कार्टर जट्टपुर (गोरखपुर) का महोत्सव ता० १८ से २० मई सन् १९४६ ई० सन् १९४६ ई० तक मनाया जायगा।
- ७—आ० स० खोडा १८, १९, २० जून १९४६।

—"जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा सहारनपुर का वार्षिक चुनाव ता० २२ मई रविवार को दिन के २ बजे आर्य समाज मन्दिर सिविल लाइन कच्ची रोड सहारनपुर में सम्पन्न होगा और इस ही दिन प्रातः काल ८ बजे जिले की समाजों के प्रधान, मंत्री तथा आर्य कर्तव्यों का एक सम्मेलन होगा। जिले की सर्व आर्य समाजों के प्रतिनिधि तथा कार्यकर्तव्यों को इस में भाग लेना चाहिये।

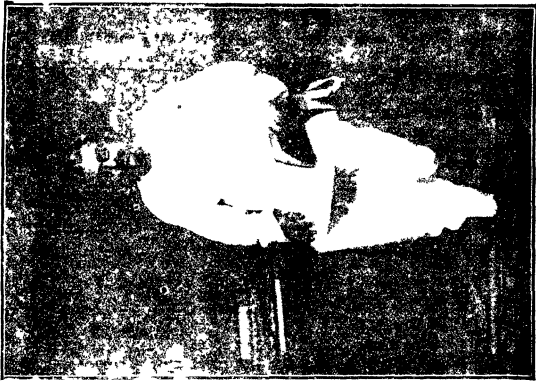
२८ अप्रैल के आर्य मित्र में २२ मई के स्थान पर २३ मई छप गया है। निर्वाचन २२ मई को ही होगा।

संशोधन

आर्य मित्र ता० २१ मार्च में पृष्ठ १२ कालम ३ पंक्ति ४० : (१००) आर्य समाज देहरादून का गु वृन्दावन की मास दिसम्बर की दोन सूची में छपा है, वास्तव में यह (१००) आर्य समाज मसूरी का है।

—कृपा धी स्वामी अमृतानन्द जी महाराज जहाँ कहीं भी हों वह ता० २४, २५, २६ मई को आर्य कुमार सभा किरतपुर के उत्सव पर पहुँच जायें स्वामी जी की अति कृपा होगी। उन्हें २२ मई को भोजपुर आ जाना चाहिये।

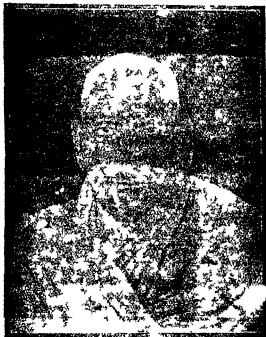
श्री. राजकुमार एड. ब्रह्मचारी जी (सयोक राष्ट्रभाषा सम्मेलन)



श्री. पं. सरदेव जी शास्त्री
(आष राष्ट्रभाषा सम्मेलन में उद्घाटन भाषण देते)



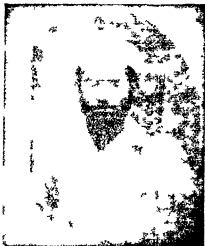
अमर शहीद स्वा. अखानन्दजी महाराज



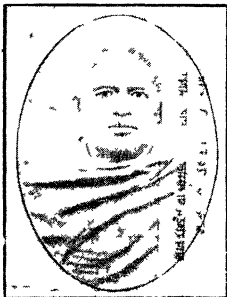
पश्चिमप्रवर स्वा. दर्शनानन्दजी सरस्वती



स्व. प. गुन्डाना एम. ए.



स्वर्गीय स्वा. नयानन्दजी



जाज गण का इन वीरों से है मिहासन खाली

स्वर्गीय—श्री प० बगीरथ जो पाठक



स्वर्गीय प० देवीदत्त जी नेम्पन्सरीकर

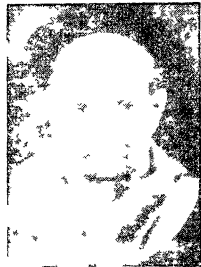


स्वर्गीय प० शिव० कर जी का-यतीर्थ

स्व० श्री म हा मा



हृदय रात्र जी

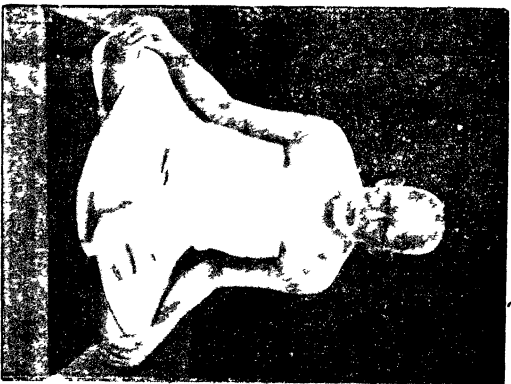


विन्तु नगावणी वस्त्रिवेदी पर इनको रक्तिम लाली ।

५ श्रीमद्भक्त योगी



श्रीमद्भक्त योगी



योग रही है निरुप शीश पर, काल रूप की ही जगमग । रह न सके ये भी भरती पर, जिसने अङ्गुल बरसाया ।

आर्य के प्रति ।

विश्व के जीवन प्रदाता !

(ले० कुमुमाकर)

एक दिन था जब प्रथम आकर डटे थे सिन्धु तीरे ।
 बढ़ गया साहस - सलिल प्रतिबन्धियों का वल कीरे ।
 लोक में आलोक फैला आदि कवि का गीत गाया ।
 साम - स्वर - लहरी सरस से मानसों में मोद छाया ।
 आत्म - विद्या का विशासी शीशु वर्षों में सुकाता ।
 ब्रह्म - रत - मुद्रा विपिन में सिंह शावक देखते थे ।
 शक्ति - सर में पुण्य - पंकज खिलखिलाते खेकते थे ।
 हो विनत वदना अहिंसा का मञ्जु आसव बद्गाप ।
 बैठ जाते सजग प्रहरी से विशुद्ध - वैभव बद्गाप ।

सत्य का सागर समुन्नत साधना का उबार लाता ।

यज्ञ का ध्रुव ध्येय मानव जाति का कल्याण होता ।
 वेद का बरदान अहुपम; प्राणियों का प्राण होता ।
 गन्धवाही शुचि समीरण नाश करती वासनाएँ ।
 पुष्प बरसाती गगन से बरुण - पथ में कामनाएँ ।

शुभ्य श्यामल मारु वसुधा का हृदय आमोद पाता ।
 धर्म के दृढ़ कोट पर निर्भीक तन - मन वारते थे ।
 रूप - यौवन - बालपन सर्वस्व अपना हारते थे ।
 प्राण जाना था सुलभ पर धर्म जाना था असम्भव ।
 स्वर्ग का सोपान था, अभिमान था, सम्मान, गौरव ।
 आज क्यों होकर अनाहत पतन के तू गीत गाता ।
 हृष्टि जिस पर थी जगत की आज वह अरुह बैठा ।
 भ्रम उन्नत था हिमालय सा बही निकुण्ट बैठा ।
 सभ्यता का स्रोत शुचि शीतल सुधा की धार लाता ।
 सरस्वती की धीरु में था कौन मृदु भंकार लाता ।
 मोक्ष की मंदाकिनी भृति - सार जब लेकर बहता ।

चौकड़ी भरते कुरीतों के कुक्कुम कर काले।
 छात्र भालों पर भयानक चल रहे हैं भेद भाले।
 जातियों के जाल में जकड़े हुए हैं आर्य नाथक।
 मिय भीषण भावणों में डान देते हैं विधायक।

पर भला उद्यान - पथ में क्यों नहीं पग दो बढ़ाता ?

आज हम उन धर्म धीरों के सभी बलिदान भूले।
 वीर यत्नवादी हकीकत के अमिट अरमान भूले।
 आ रही 'अज्ञा' शिथिल से यह प्रतिध्वनि मर्म भेदी।
 रक्त रजित धर्म के हित रख सकेगा कौन बेटी।

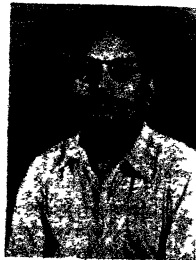
जो बना था आर्य 'सेल्फ' आज वह 'स्वामी' कहाता।

धर्म नष्ट है जो हमे अमरत्व का प्याला पिला दे।
 नीति - नद में कोकनद कष्टव्य के कोमल खिला दे।
 धर्म धह है जो परस्पर प्रेम को ज्वाला जग्य दे।
 दहम अत्याचार पापाचार में पाथक लगा दे।

व्यथ में आदर्श का अद्भुत छुटा किसका दिखाता।



स्व० प० क्षेमकरणदासजी त्रिवेदी



श्री श्री० पद्म० फल० जी
 श्री० पद्म० श्री० एल० वल० जी०

पुस्तक प्रेमी ध्यान दें !

आर्य साहित्य की पुस्तकों का	वाल प्रश्नोत्तरी ॥ १०	१०)	प्रणायाम तत्व १॥ १०	१०)
अधिक प्रकार क्यों नहीं होता ?	गीता महात्मा गांधी २॥ २॥	२॥	योग रहस्य १॥ १॥	१॥
इसलिये की उनका मूल्य अधिक	विवाह आनन्द १॥ १०	१०)	बडा इ गलिश टीचर १॥ १॥	१॥
होता है । प्रत्येक व्यक्ति मग नहीं	लाल पत्रा ३) २॥ २॥	२॥	भर्तृ हरी शतकम् १॥ १०	१०)
सकता । इसलिये हमने एक मास	धीर राज पूत १॥ १॥	१०)	कालीदास और कविता १॥ १॥	१॥
के लिये पुस्तकों का मूल्य काफी	प्राणों के खीलाड़ी १०) ॥ १०	॥ १०	हरमोनिय तबला १) ॥ १॥	॥ १॥
घटा दिया है । जिससे प्रत्येक व्यक्ति	अमृत धर्म १॥ १॥	१॥	हरमोनिय म्यूजिक गार्ड १॥ १०	१०)
मगाकर लाभ उठा सके ।	स्वप्न हरीसिंह मलवा १॥ १)	१)	व्योपार का कजाना १॥ १)	१)
नाम पुस्तक	कांग्रेस लोग हिंदू म्यूजिकमा ३) २)	२)	विदुर नीति १॥ १०	१०)
नारायण उपदेश ३) १॥ १॥	स्वास्थ्य और व्यायाम २) १॥ १॥	१॥	गीता रहस्य १०) ६॥ १॥	६॥
भारत में १८५७ २॥ ३)	गीता जली १॥ १)	१)	वैदिक सम्प्रति १०) ६)	६)
वेदान्त रहस्य १॥ १॥	राजा महेन्द्र प्रताप १॥ १०	१०)	सकल ४॥ ३)	३)
वैदिक गीता ३) २॥ २॥	हरमोनियम तबला शिक्षा ३) १॥	१॥	महर्षि दयानन्द २॥ २०	२०)
भारत में अग्रजी अन्वचार १) ४॥ ४॥	भारत में मनी मिशन १॥ ॥ ६॥	॥ ६॥	राष्ट्रीय वादी दयानन्द १॥ १०	१०)
धर्म शिक्षा बड़ी ३) २॥ २)	वर्तमान भारत २॥ ३)	३)	पाक प्रवेशिका १॥ १०	१०)
गीता केवल भाषा २॥ ३)	मनुष्य जीवन की उपयोगिता १॥ १)	१)	चित्रमय स्वामी दयानन्द २॥ ३)	३)
आर्य पर्व पद्धति १॥ १॥	देश के दुर्गिन ॥ १० ॥ १०	१०)	वैदिक शिष्टाचार १) ६)	६)
अर्चना काव्य ३) १॥ १॥	फल उनक गुण तथा उपयोग १॥ १)	१)	जयहिन्द काव्य ॥ १) ॥ १)	१)
सूत्र्य और परलोक ३) १॥ १॥	ग्रीस का इतिहास १॥ १)	१)	आजादी के गीत ॥ १) ॥ १)	१)
साक्ष्य दर्शनम् १॥ १॥	ससार के आश्चर्य १॥ १)	१)	परकान्त वास १) ॥ १)	१)
वैदिक युद्धवाद १) ॥ १॥	अन्वकार और प्रकाश १॥ ॥ १०	१०)	महाराणा प्रताप १॥ १॥	१॥
आस्तिक वाद ३) २॥ १०	योरूप में आजाद हिन्द ३) १॥ १॥	१॥	लाठी तथा शस्त्र शि० १॥ १०	१०)
सम्प्रदाय व इन्द्रहर १॥ १॥	शरीर बीबी १॥ १॥	१॥	शुद्धापा विमारी से बचने व उपाय १॥ १०	१०)
हमारे बच्चे १॥ १॥	प्रतिहिंसा १॥ १०	१०)	विद्यार्थी जीवन रहस्य ॥ १० ॥ १०	१०)
नियुवास ॥ १० ॥ १०	नरनामा १) १०	१०)	श्रीमती मजरी ॥ १० ॥ १०	१०)
स्वास्थ्य और जल चिकित्सा ३) १॥ १॥	अभागनी समाजिक कहानी २॥ ३)	३)	इब्राहिम लिंकन १) ॥ १)	१)
सर्वमो वार्ह १) ॥ १)	नयन तारा " ३) १॥ १॥	१॥	खुराक और आबादी की समस्यायें ३) १॥ १॥	१॥
रूपया कमानी की मशीन १) ॥ १॥	अवलानीय की चन्द्र रति १॥ ॥ १०	१०)	संनानी नेता जी १) ॥ १)	१)
धीर दुर्गादास रा० १) ॥ १॥	सोमीया " ॥ १० ॥ १०	१०)	आर्षी महिला ॥ १० ॥ १०	१०)
वैदिक दर्शनम् १॥ १॥	महात्मा के अद्भुत १) ॥ १॥	१॥	सच्चिद्र योगासन १) ॥ १)	१)
समुद्रक शास्त्र ४) ३)	हम सौ वर्ष कैसे जीयें ३) १॥ १०	१०)	सुहाग रात १) ॥ १)	१)
पाकोंविद्या १) २॥ २॥	लोगों को अपना बनाने की कला १) ॥ १)	१)		
खिलाई कर्तव्य शि० २॥ २)				

पता:— बनरयाजकृत बुकसेलर पीपल मन्डी आगरा

समय का ध्यान रखिये !

रोगों का समूह भयङ्कर रूप धारण कर वायुमण्डल के साथ-साथ फैल रहा है। गृहस्थ जीवन रक्षार्थ

और

उनसे बचने के लिये आयुर्वेदीय औषधियों को

प्रयोग में लाइये !

(१) हमारे आरोग्यसिन्धु दवा के सेवन से कालरा, है, वस्त, हैजा, आँव, लोह, ज्वर, जुष्माय, पेट दर्द, डी मचली, प्लास, जलन, अफरा, शूल, बेचैनी, बुख को धड़कन दूर करता है। मूल्य फी शीशी ॥॥ बारह आना। डा० अ० पूयक।

(२) नवजीवन घुन्डी सालसा के सेवन से रक विकार, काक, खुजली, बालस, गरमी, विल की कमजोरी, धातु विकार दूर होता है। पौष्टिक बल-वर्धक है। फी० फी० बो० ३॥॥ दो रु० बारह आना। डाक अर्च अलग।

(३) गोपाल सुधातैल के लगाने से सूखा चिन्ह मिन्हाँ ज्वर, तपन, जलन, बच्चों के शरीर की दुर्बलता को दूर करके आरोग्य बनाता है। मूल्य फी शीशी १) एक रु०। डाक अर्च अलग।

(४) गोपाल घुन्डी के पिलाने से दुबले कमजोर बालक को हठ पुष्ट, ताकतवर, कुर्तीला बनाता है। मूल्य फी शीशी १) एक रु० डा० अ० अलग।

(५) हिम राजेश्वर तैल के लगाने से सिर पोड़ा, चक्कर आना, नाक से बौली व खून जाना, आधाशीशी, सम्बल वायु के लिये अक्सीर है। मू० फी शी० १) एक रु०। डा० व्यय अलग।

नोट—हमारे कार्यालय में असली कद्रवन्ती बूट, गोरखमुण्डी, शङ्ख-पुष्पी, जल पीपरी सूखा संहार बटी, पटविन्दु, लाक्षादि, विषगरम सतावरी क्वरगादि तैल, दशमूल अर्क, शुद्ध छोटी हर्ष हत्यादि सुलभ मूल्य पर मिलती हैं। बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाकर देखो।

मिलने का पता—डा० रमन्यारेलाल वैद्यभास्कर,
वी आरोग्यसिन्धु कम्पनी, बो० जागा, प्रान्त फतेहपुर यू० पी०

आरोग्य-बचक

२० साल से जुनिया भर में मशहूर

मदनमंजरी

गोलियाँ

कमिस्त दूर करके पाचनशक्ति बढ़ाती है, विल, विभाग को ताकत देती है औ नया रक्त व शुद्ध शीर्ष पैदा करके बल, डाक आया बढ़ाती है। (डि० व० १॥)

गर्भाशुत पूर्ण

प्रवर श्वसरोष, गर्भाशुत को स्वस्थ, प्रसूति तैम बन्धन व कमजोरी दूर करके शरीर को सम्पूर्ण तन्त्रुबलस नाता है। मू० रु० २॥)

मधुमन्जरी फार्मसी आरामनगर, कलकत्ता नॉच-१०० हरिजन रोड, द० लखनऊ माताबदल पंवार, अमी

शोभू

रोट राट "हिस्टीरिया, उम्माव एवं मूत्री" नायक जड़ी बूड़ी—घर बैठे सेवन कर सदैव के लिये निरोग हो जायें। लोग कहते हैं ये बीमारि-बाँ दम के साथ जाती हैं—दम कहते हैं ये बीमारियाँ दवा के साथ जाती हैं। डाक व्यय, विद्यापन शुल्क एवं कार्यालय अर्च ३॥) भेज कर बूटी मगलें। ईश सहाय करेंगे आराम आवश्यक होगा।

रोग राट "मधुमेह (Lalictes) नायक जड़ी-बूड़ी बूटी-घर बैठे सेवन कर सदैव के लिये निरोग हो जायें। लोग कहते हैं यह बीमारी दम के साथ जाती है—दम कहते हैं यह बीमारी दवा के साथ जाती है। डाक व्यय, विद्यापन शुल्क एवं कार्यालय अर्च ३॥) भेजकर बूटो मगलें। ईश सहाय करेंगे, आराम आवश्यक होगा।

पं० शिवसागर शर्मा भिषक-जिज्ञासु, महर्षि प्रयोगशाला, श्री हनुमंत विद्यालय शिवरामपुर (बाँदा) यू० पी०

महर्षि द्वारा घोषित —

कतिपय शाश्वत सत्य सिद्धांत

वदादि सय शास्त्र— ब्रह्मा से लकर जेर्मनि मुनि पर्यन्तों क माने हुय इवशरदि पदार्थ है जिनको में मानता हूँ मे अथवा मननय उसा का मानता हूँ कि जो तीन काल म सबको एकसा मानन योग्य है जो सय है उसको मानना मनव ना और जो अथय ह उसको छोटना और छुडवाना मुभको असोष्ट है

*

*

ईश्वर— जिसक ब्रह्म परमात्मादि नाम ह जा सच्चिदानन्ददि लक्षणयुक्त सब जीवा को कर्मानुसार सय न्याय से फल दाना आदि लक्षणयुक्त हे उन्ही को परमेश्वर मानता हूँ । ,

*

*

वद — वदों का निम्नान्त स्वयं प्रमाण मानता हूँ ।

धर्म अथर्म—

जा पक्षपात रहित, न्यायाचारण सय न्यायान्दि युक्त ईश्वरराजा पदा से अतिरुद्ध ह उसका धर्म और जा पक्षपात सहित अन्यायाचारण मिथ्याभावपूर्ण, श्वराभंग वद विरुद्ध हे उनका 'अथर्म' म नता हूँ ।

*

*

*

अथ—

वह हे जो कि अर्थ ही से प्राप्त किया जाता ह, और जो अधर्म से सिद्ध होता ह उसको अथय कहत ह ।

*

*

*

*

दण्डाथर्म—

गुण कर्मा नी योग्यता से मानता हूँ ।

*

*

*

*

राजा—

उसा को कहत ह जा शुभ गुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान पक्षपात रहित न्यायधर्म से सग प्रजाआरा म पितृवत वर्ते और उनको पुणवन् मान क उनका उन्नति और सुखवहाने म सदा यत्न किया करे ।

*

*

*

आय—

जा प्रष्ट स्वभाव धर्मा मा परोपकारी सय विद्यादि गुणयुक्त और आयवत दशम मध दिन से रहन वाल ह उनका प्रय कहते ह

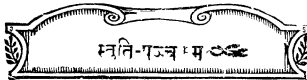


आर्यमित्र

वर्ष ५१

दीपावली, ता० १० अक्टूबर १९४६ ई०

अङ्क ८०



अविद्या-धकारे पथभ्रष्टमेतत्,
जगत् सर्वमासीद् यदा मोहमभ्यन।
तदा मार्गं मुक्तापथं तस्मात् स्वीभासा,
दयान्दमानं दत्तं सस्वरागम् ॥ १ ॥
त्रिलोकात् समलोक्य विजानाशां,
समुदितां नोऽप्येव वेदान्।
समुद्धारं कर्तारं मायमयीनम्, ॥
दयान्दमानं दत्तं सस्वरागम् ॥ २ ॥
अनेक्यादयामि शोनां धराया-
मिमं भानोय विपन्ना भवात्।
अनो नेत्रमूलं समुगाटयन्त,
दयान्दमानं दत्तं सस्वरागम् ॥ ३ ॥
अनास्थावतः शोय धर्मं मनुष्यान्,
पुनर्धर्मं तत्र पदेशं ददान्।
मनस्यो च शक्तिमुद्धेदयन्तम्,
दयान्दमानं दत्तं सस्वरागम् ॥ ४ ॥
अतत्यामुदङ्गरे सत्यं सूर्य-
समाच्छादितं, तर्कं भक्ता प्रवहे।
निरस्यामुदान् सत्यमाभ्यस्यन्त,
दयान्दमानं दत्तं सस्वरागम् ॥ ५ ॥

ले०—विद्याभाकर शिवकुमार मिश्र एम० ए० साहित्याचार्य

निर्वाणोत्सव पर

हमारा कर्तव्य

[ले — भी इन्द्र विद्यावाचस्पति प्रबान सार्वेष्टिक आ० प्र० सभा, देहली]

महार्य का निर्वाणोत्सव आर्यपुरुषों को उनके कर्तव्य का स्मरण कराने के लिये आता है। प्रति वर्ष हम एकत्र होकर वतमान परिस्थितियों पर विचार करें, और अपने कर्तव्यों को याद करके उनकी पूर्ति का नया सकल्प कर तो समझना चाहिए कि हमारा निर्वाणोत्सव मनाना सफल हुआ अथवा उसका नाम के सैकड़ों प्रचलित नाटक की तरह वह भी एक नाटक की रह जायगा। भारतवर्ष को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने से भारत के आर्यजनो का कर्तव्य बहुत बढ़ गया है। मेरा मन है कि परतन्त्र भारत को आर्यसमाज और आर्य धर्म की जितनी आवश्यकता थी, स्वतन्त्र भारत को उससे भी अधिक आवश्यकता है। देश को इस समय न केवल एक उन्नतिशील सुधारों के पक्षगती धर्म की आवश्यकता है, अपितु शासन चलाने के लिये दृढ़ चरित्र वाले सब नागरिका की भी आवश्यकता है। ये दोनों आवश्यकताएँ आर्यसमाज ही पूर्ण कर सकता है। आर्यसमाज के प्रचारकों, कार्यकर्त्ताओं और सभाओं के लिये सेवा का यह अनन्य अवसर

आया है। यदि इस अवसर से लाभ उठाकर आर्य धर्म के सन्देश को प्रचार और निज्ज जीवन के दृष्टान्त द्वारा देश भर में फैलाने का



लेखक

प्रयत्न करें, तो उन्हें आगामीत सफलता प्राप्त हो सकता है।

हम अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिये अधिक कटिबद्ध हैं, यहाँ हमारे लिये वीपाचली का संदेश है।



वैदिक मानु दयानन्द

(भी रणजयसिंह 'ददन')

नाना भौति विश्व में फैले मत मतांतर जो एकता करेगे ऐसी भावना भी भ्रान्त है, माने वा न माने कोई मानना है एक दिन वैदिक-सुधर्म के प्रसार से ही शान्ति है। यही सद्गुरुदेव दे श्यामी दयानन्द जी ने सर्व जन हितार्थ मचाई महा क्रांति है 'ददन' प्रकाश सब उसी मध्य मानु का है चंद्र और तारा में भी उसी की ता कान्ति है ॥१॥

❀ इस युग का चमत्कार ❀

[ले०—राजगुरु प० धुरेन्द्रजी शास्त्री प्रपान, ज्ञा० प्र० सभा, सयुक्तप्रान्त]

शुद्धि दयानन्द ने अपने प्रसिद्ध 'चमत्कार पूर्ण' ग्रन्थ, 'सत्यार्थप्रकाश', के ११ अध्याय में चमत्कारों का अत्यन्त तीव्र भाषा में खलवण किया है। प्रतिष्ठा व स्वाथ के उद्देश्य से प्रपचादि की रचना करना तथा जनता की बर्बिया, व अज्ञान से लाभ उठा कर 'चमत्कार' प्रसिद्ध करने की अन्ध परम्परा से स्वाथ ध्यान के निरकरण का जैसा अपूर्व कार्य शुद्धि दयानन्द ने किया है। वह स्वयं ही एक इस प्रकार का 'चमत्कार' विद्वद्दुष्प्रा बिसका आचार अज्ञान अथवा स्वाथ नहीं था।

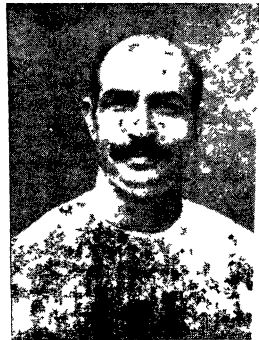
शुद्धि दयानन्द का दूसरा चमत्कार यह हुआ है कि उन्होंने 'मनुष्य पूजा' के स्थान में 'विद्वान्त पूजा' को प्रतिष्ठापित किया। इस विद्वान्त पूजा का आचार परमात्मा का मत्त्वज्ञान 'वेद' था, परन्तु मैं वहाँ एक अन्य 'चमत्कार' का बात आर्यजनों के सम्मुख रखना चाहता हूँ।

शुद्धि दयानन्द का प्रतीक जीवन जब १० वें बर्ष में प्रविष्ट हुआ तब उन्होंने 'मनुष्यों के हितार्थ' आर्यसमाज की आवश्यकता को अनुभव कर १८५५ ई० में आर्यसमाज की स्थापन की थी और प्रारम्भ में २६ नियम निर्माण किये थे। वही नियम आर्यसमाज के संगठन का मूल आधार है जो २ बर्ष बाद अधिक परिष्कृत और विरल जनीन संगठन के रूप में 'संसार का उपकार कर्ता' जैसे महान उद्देश्य से प्रसिद्ध हुये।

शुद्धि दयानन्द के पन २ आर्यप्रधान ने अपने आचार्य के बतलये हुये मार्ग पर चलकर भारत की शिक्षा, सहाचार, चमत्कार न्य व अन्ध स्वतन्त्रता आदि के सभी क्षेत्रों में जो अनेक चम

त्कार पूर्ण कार्य किये देश के सभी क्षेत्रों में उनका अमिट छाप है।

यह सब चमत्कार आर्यसमाज केवल इसलिये नहीं कर सका कि उसके उद्देश्य निर्मात्त और उच्छेद्य अथवा इन चमत्कार पूर्ण कार्यों का प



सकले

प्रमुख कारण स्वयं उपका अपना हट सग उनके काबुर्ताओं का निर्मल चरित्र, अनुशा तथा व्यवस्था पूर्ण कार्य करने की क्षमता। 'नेह' 'जमान की कगमात' का सर्वोच्च हृण आर्यवर्ग ने 'स्तुत किया।

अब, कारण बाहे जो कुछ भी हो, स्थिति

विश्व विद्यालय गुरुकुल वृन्दावन की प्रगति कैसे हो

[ललक—त न ह]

सन् १८८२ ई० से ही वैदिक-शिक्षणाय प्रारम्भ हो चुका था, परन्तु १८८८ से गुरुकुलों की स्थायी योजना आर्य-गुरुवा के सम्मुख हा चुकी थी और सिकन्दराबाद में जिन गुरुकुलों की स्थापना हो चुकी थी उन्में सुनाई सन् १९०५ में समा में रूपने प्रबन्ध में लेना स्वीकार किया। दिसम्बर १९०७ से वर्तमान गुरुकुल वृन्दावन सिकन्दराबाद से उठकर फरुखाबाद में आ गया। फरुखाबाद में गुरुकुल में अपना स्थान न होने के कारण राता मन्देश्वरताप जो द्वारा वृन्दावन में भूमि देने पर दिसम्बर १९११ में फरुखाबाद से स्थानान्तरित होकर गुरुकुल वृन्दावन में आ गया। आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध नेता महात्मा नारायण स्वामी जो की कुशलता और तपस्या से

लगाया अर्थशास्त्री से सम्बालित आर्यसमाज की यह पिय सस्था दिन वनी रात चौगुनी उन्नति करना हुई फतता फुनता गई। गुरुकुलों के निकले हुए स्नातकों का आर्यसमाज की प्रतिष्ठा को ऊंचा करने में बहुत बडा हाथ है।

इन सन्धय देश में उपस्थित आर्थिक सकट का दुष्प्रभाव गुरुकुल वृन्दावन पर भी गहरा पडा है। गुरुकुल के अकारो एक और तो शिक्षा की उन्नत तथा गुरुकुल की प्रगति की नवान १ योज नयें निर्माण करते हैं दूसरी ओर धन की चिन्ता न दश भर में मारे २ फलते हैं परिणाम यह होता है कि उनकी योज १ सफल नहीं हो पायी है। क्या आर्य समाज इतरे ध्यान देकर अपना कतव्य पूरा करेगा ?

परिवर्तन हो गया प्रतीत होता है। आर्य समाज के सगठन में शिथिलता आ रही प्रतीत होती है। आर्यसमाज के उद्देश्यों की महत्ता पर इतरे बुद्ध प्रधान युग में शंभेह करने का किमी को साहा नहीं है। कि यह शिथिलता क्यों ?

मैं सम्पूर्ण देश में भ्रमण करता हू। स्वभाव से सतत वैदिक धर्म प्रचारक उपदेशक हू। प्रबन्ध व व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी आवित होकर स्वीकार करता हू परन्तु अनुभव यह है कि आर्यसमाज में अनुशासन की यूनता तथा व्यवस्थित व केन्द्रीय ढंग पर काय करने की क्षमता में कमी हो रही है।

समय रहते माबरन हो जाने और पारम निरीक्षण का न केवल आवश्यकता हो है, अनि

बांता भी है। प-यथा बाद में पड़ताने से फिर कुछ हाथ न आयेगा। आर्यसमाज की सभी सस्थाओं गुरुकुल, प्रेस तथा अन्य काय केवल इच्छिने सफल रूप से प्रगति नहीं कर रही हैं कि उनके 'सगठन का मपील' भाव रहित हो रही है। सम्भवत आर्य जनता मा सगठन के महारा का सत्रिक अनुभव नहों कर रही है और सब सक्ति के प्रभव का इम 'कन-युग' में पूरा २ नहीं आँक रही। प्राय-गुरुवा प निवदन है कि इप पर्व पर अपने २ सन्दिर्गों में दयानन्द का स्मृति में पत्र होकर सम्पूर्ण विधि पर सम्भारता से विचार कर और अपने कतव्य को प हचने।

कार्य का यही उचित अवसर है

(श्री मदनमोहन मालवीय, का • प्रधान आर्य समाज युक्त-प्रान्त)

आज से लगभग दो शताब्दी पूर्व श्री ध्यानानन्द का देहान्त हुआ था, ससार दीवाली जैसे आनन्द भय पूर्व के मनाने में मग्न था। दीवाली की अन्धकार 'मयी रजनी' के छोटे छोटे दीपकों को शुद्ध आलोक से प्रकाशित करने वाली एक बड़ी ज्योति के समान वैदिक धर्म की प्रतिष्ठाता प्रकाश ज्योति बुझ रही थी 'अन्धकार' और 'प्रकाश' का यह दृश्य श्री मेल अत्यन्त अद्भुत और अपूर्व था।

श्री ध्यानानन्द की मृत्यु के अनन्तर आर्य पुरुषों के हृदयों में उसी प्रकार का प्रगाढ़ अन्धकार छा गया जैसे सूर्य के विलीन हो जाने पर सर्वत्र छा जाता है परन्तु वे हतोत्साह नहीं हुये। उन्होंने शीघ्र ही अपने उत्तरदायित्व को अनुभव किया। 'श्री सन्देश' को संसार में प्रचार करने का बीड़ा उठाया। प्रचार के समा उपायों द्वारा देश के मानसिक अज्ञान में क्रांति उत्पन्न कर दी। इसमें श्रेष्ठ मात्र भी अत्युक्ति नहीं कि आर्यसमाज सभी क्षेत्रों में देश का बहुत समय तक नेतृत्व करता रहा।

आर्यसमाज के कार्यकाल में भारत में मोहनी क्षणिक उत्तेजना न थी। ब्रिजनी भी प्रगतियों और परिवर्तन होते थे वे शान्तिपूर्वक ढंग से स्थायी तथा संतुलित होते थे। आर्यसमाज सभी प्रगतियों का प्रतीक था। क्या बुद्धिवादी और क्या भाषुक दोनों प्रकार की जनता का आर्यसमाज नेतृत्व कर रहा था। सवाचार, शिक्षा सामाजिक सुधार, वैदिक धर्म व आर्य संस्कृति की प्राचीन भव्यता व कल्याणकारी भावना के साथ आधुनिकता तथा नवीनता के आकर्षण का अद्भुत सम्बन्ध हो रहा था।

ऐसे समय एकाएक गत ४० वर्षों में स्वतन्त्रता के आन्दोलन का आरंभ के रूप में विस्फोट हुआ।

आर्य पुरुष स्वतन्त्रता युद्ध में अधिकाधिक सम्मिलित होगये। स्वराज्य में आर्य पुरुष विजयी हुये। देश में स्वदेशवासियों का राज्य स्थापित हो गया। अब देश का प्रजातन्त्रिक राज्य नवीन २ योजनायें बना रहा है यतः स्वदेशी राज्य देश की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति का उत्तरदायी है अतः प्रश्न किया जाने लगा है कि अब आर्यसमाज की आवश्यकता क्या है ?



लेखक

आर्यसमाज में भी शिथिलता के कुछ लक्षण दिखाई देने लगे। यही समय सार्वभौम होने का है। संघर्ष का रूप बदन गया है, दिशा भी बदल गई है। विदेशी भावना रूरी शत्रु स्वदेशी वेध धारण कर आर्यावर्त देख में घुम आया है। उसका रूप अत्यन्त मोदक, वषणार्थ अत्यन्त आकर्षक है। देश में आराजकता फैल रही है, (शेष पृष्ठ ३ पर)

दे व द या न न्द

का

दुर्गम

पथ

[ले—प० श्री रामदत्त जी शुक्ल, एम० ए० बंकाकेट—मन्त्री सभा]

“दुःस्थ धारा निश्चिता दुःखया दुर्गम पथस्तत्कवया वदन्ति” कठ०

महा से.लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त प्रवाहित वैदिक परम्परा अत्यन्त एकित होकर मन्थपरतम गति के साथ बह रही थी। उस सवथा विकृत और विपर्यासित धारा को अवलोकन कर किसी को भास तक नहीं होता था कि यह धरा कभी चिरकाल पर्यन्त पवित्रतम और असाधारण प्रगति के साथ प्रवाहित हो रही थी। जिन प्रधान गण के सम्पर्कलेख ने सहस्रां मानवों, मुनियों, यनियों योगियों साधकों, सिद्धों, ध्यानियों, धारों, श्रद्धेयों और महर्षियों ने अपने अपने अनुकरणीय जीवना से कोटि कोटि जनो को पूर्ण पुण्यवत् का प्रसाद वितरित किया, उसका कालकालान्तर दोषा से गत्यवरोध हो जाने से प्रभाव नशान्त क्षीण हो चुका था, विशुद्ध वैदिक आर्य मर्यादाओं, आर्य विचार धाराओं और पावन धार्मिक (वैदिक) आभाव सा प्रतीत हो रहा था। निदान अनेक प्रकार के मिथ्याचार, कट्टिवाद, संकुचित सम्प्रदाय अनाचार, अज्ञपरम्परा, और कलुषित भागनाओं का भरत में प्रचलन भ्रष्टाचार प्रथम वेग के साथ चल रहा था, ऐसे राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक और दार्शनिक ढाल के अज्ञानतमिस्राप्रस्त युग में मूलशक्ति का अवतरण हुआ।

अलौकिक प्रतिभा और ससार सम्पत् का समुच्चय होते ही बालक मूलशक्ति के वैराग्य भावापन्न होकर समस्त ऐहिक वस्तुओं और सम्बन्धों को त्यागकर व्रतव्यावस्था में ही सन्यासाश्रम में

दीक्षित होकर स्वामी दयानन्द सरस्वती के रूप में प्रकट हुए। बाह्य विश्व की समस्त मोहक वस्तुओं की ममता माया से सर्वथा परामुक्त होकर चिरकाल पर्यन्त धार तप का अतुष्टान किया, आध्यात्मिकता का स्वयं आस्वादन किया, किन्तु यौगिक भागना को भी वैयक्तिक मोक्ष सुख का हेतु साधन न बनाने के अतीतिक प्रयोग से लोकसंग्रह कर्त्तव्यानुष्ठा की ही अपने जीवन का एकमात्र अमाष्ट प्रयोजन अतुष्टान कर तदनुसार अतुष्टान में प्राण प्रण मे अग्रसर हुये। विश्वसाक्षी भगवान् की ही एक मात्र साक्षी और सखा मानकर मानवजाति, नहा २ प्राणमात्र के कल्याण का पावन व्रत धारण कर 'वशाखला धर्म मूल' भगवान् महर्षे इत्यनुशासन और 'न वेद बाह्या धर्म' आचार्य चाणक्य के इस पावन मन्त्र को अपने कार्यक्रम

का सुदृढ़तम आधार बनाकर नाना प्रकार के मिथ्या भक्तों, भ्रष्टात्मक विचारों, कुलत परम्पराओं, अज्ञानमूलक (तद्वन्ता) और कट्टिवादों का निराकरण तथा विशुद्ध वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, वैदिक दर्शन, वैदिक आचार व्यवहार और सत्य सनातन धर्म मर्यादाओं की प्रतिष्ठा करने के लिये अपने जीवन के अन्तिम श्वास पर्यन्त देव दुर्लभ पुण्यार्थ किया। अन्त में अपने दिव्य और अतुष्टानेय जीवन के अग्रतम आलोक से ससार को आलोकित करते हुये देव दयानन्द ने दिव्य शीघ्र शक्ती के भीतर प्रकाश में एकान्तता विभव

शरीर को बाधकर भूमा के मध्य भवन में प्रवेश किया अथवा औपनिषदिक भूति, "उजापते सभा वैश्वम प्रपद्य यशो ह भवाम को अक्षरश चर ताप्य किया यह जीवन यात्रा ५६ वर्ष में समाप्त हुई बाह्यकाल गृह याग, विद्योभ्यास, तप त्यागन पयटन प्रचार उददेश, विचार चमश शास्त्राऽऽ मन्थनिर्माण और आर्यसामाज्य स्थापना तथा स आलन सब कुछ हुआ ।

"ईश्वर तेरो इच्छापूर्ण हो इस अन्तिम वाक्य को कहकर महाप ने अपने शरीर का यागा अथ से इति पर्यन्त देव द्यानन्द क जीवन का सिंहा बलोकन करने वाले सब का को उनक अन्तिम वाक्य को आर्य को हृदयगत करने में कठिनाई हो नहीं सकती है किन्तु जो स्थूल दृष्टि से इस अलौकिक जीवन की महिमा और महत्व को मापना चाहते हैं, उनका समुचित बां प होना सम्भव नहीं है ईश्वर की इच्छा क्या है कि जिसकी आर उ द्यान-इने सकत क्या । इस महत्वपूर्णमहावाक्य को मलाभात समझने में न केवल भारतीय विद्वाना और अविदेशीय विद्वानों ने ही बड़ा भूल की अपितु आर्यसामाज्य व प्रमुख विचारकों और नेताओं ने भी असाधारण भूल की है कि जिनक हाथों में विश्वास पूर्वक महाप ने अपने गुरुवर कार्यका सुलसंचालनभार निहित किया था । क्योंकि आर्यसामाज्य क जन्मकाल १८७६ से लेकर आज तक के कार्यों का तुल्य-मान करने से स्पष्ट पतान होगा कि जिस प्रकार मूलशुकर बालक ने दिव्य ह्यूर्ति, देवप्रसाद तपप्रभाव और अलौकिक अध्य वसाय का अतुल्यरूप करते हुये अपने निश्चिन ध्येय के परिपातन में तन्मयता क साथ त परता प्रदर्शित की उसकी तुलना में किसी व्यक्ति या समष्टि ने त सम पुरुषार्थ प्रदर्शन नहीं कर पाया । ऐसा न कर सकने क कारण ता अनेक हो सकते हैं, किन्तु वास्तविकता पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है उदाहरणार्थ 'आर्यों का परम म

वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनना" इसका समुचित क्या आंशिक पालन भी आर्यों क बहुमत ने आवश्यक अनुभव नहीं किया । सत्कार को उपकार करना आर्यसामाज्य का मुख्य उद्देश्य है, आर्यों शारीरिक आ मक और सामाजिक उन्न त करना, इन दिशा में भी अनेकांकन कई ऐसी प्रतियोगिताएँ नहीं दिख गईं जा सकी कि जिसका आचरणार्थी प्रभाव अनेको पर पड़ना सम्भव होता । वस्तुत देव द्यानन्द के द्वारा प्रदर्शित विशाल वेदपथ पर सफरताक साथ चरने के अन्य तर पूर होकर ऋ पव को अपने जीवन म प्रतर्जित करने क लिये आभ्यासिकता की जिस मात्रा में आवश्यकता है और साथ ही वेदविद्योभ्यास के द्वारा जिन विद्वता की अज्ञेता है, उसक स्थान में अन्य किसी लौ कक, घाबिक या सासारिक पदचूर्ण आहम्बर प्रदर्शन प्रस्तुत करने से न ता देव द्या नन्द के लक्ष्य को हा पूर्ण हो सकता है और न आर्य-सामाज्य का ही यग भी उपर्युक्त होना सम्भव है क्योंकि ७० वर्ष पूर भारत या अन्य देों में शिक्षा का नव अयन निम्न था प्राय लोग अज्ञात हा थे इसागत उस युग में इस बात क कहने का कि 'वेद समस्त विद्याओं का भण्डार है जो प्रभाव पड़ना सम्भव था ठक उसी प्रकार का प्रभाव वर्तमानकाल में शिक्षा का तल विस्तृत हा जान से पड़ना कठन है उस काल म मेघदूत और शकुन्तला के सम कारा से ही अनेक विद्वगीय विद्वन् भोजकत हो जाते थे किन्तु अब तो सस्कृत साहित्य क गूढ़तम महन् प्रयोग क मानाडन मयन और अतुलीनन में सकड़ों विद्वान अनेक २ पूर अशुभ्य का लगा रहे हैं । अनेक प्रकार क प्रयोग का प्रकाशन कर रहे हैं, इतर भारत में भी वैदिक पाठिय क अनेक दृष्टि कार्णों से देखकर उनक विषय में अनेक विचार प्रकाशत हो रहे हैं ऐसी अवस्था में आर्यसामाज्य के प्रमुख विद्वानों का कार्य यही हो जाता है कि

उन समस्त प्रतिष्ठा वाक्यों को सर्वथा सिद्ध करने को पूरा प्रयास कर कि जो देव द्यानन्द ने वेद, वैदिक धर्म, वेदक सस्कृति वैदिक दर्शन और वैदिक दर्शन वेदक भाषाचार व्यवहार क सम्बन्ध में समय २ पर कहे और स्थान २ पर अपने ग्रंथों में लिखे हैं। क्योंकि मद्रास द्यानन्द सरस्वती के जीवन और कार्यों का कथामात्र २ उनक द्वारा दर्शाये उच्छुष्ट आदर्शों की प्राप्ति सम्भव नहीं है। शरीर में जो स्थान प्राण का है, आर्यजीवन के लिये वही स्थान सस्कृत है और आर्य समाज के लिये वही स्थान २ का है, यह तोना प्रतिष्ठायें व्यावहारिक रूप प्राप्त कर सकें, तभी यह भी सम्भव हो सकता है कि हम ठीक प्रकार जानें

कि वस्तुतः ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त वैदिक परम्परा का क्या स्वरूप है और उसको भलीभाँति समझकर उनको व्यावहारिक रूप में मानव जीवन को उच्छुष्ट बनाने के लिये उपादेय बनाने में समर्थ हो सकें। देव द्यानन्द को दिव्य दीपावली प्रति वर्ष उपस्थित होकर आर्यों को सचेत और सावधान करती हुई वेद विज्ञान के दुर्गम गथ का देव प्रसाद और तपप्रभाव अनुभव करने के लिये अपूर्व प्रणाम प्रदान करती है। “यदर्थं आर्यां सूते तस्य कालोयमागतः” के अनुसार वेद के दिव्य आलोक की आभा से आर्य प्राण आर्य अनुप्राणित हों।

[पृष्ठ पांच का शेष]

नैतिकता व सदाचार का लोप हो रहा है। स्वरोप्य प्राप्ति स्पर्धामुद्रित होती प्रतीत होती है। सर्वत्र शराजकता की आशंका अनुभव की जा रही है। ‘समाजवाद’ ‘आम वाद’ आदि अनेक भ्रामक विदेशी मनों से देश प्रभावित हो रहा है। सञ्चित ‘राजनैतिक सम्प्रदायों’ को वृद्धि हो रही है।

अत आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य कौन सी ऐसी संस्था है जो देशवासियों के सम्मुख ‘सदाचार’ व ‘सत्य’ का ठीक ठीक स्वरूप व मर्यादाओं को प्रस्तुत कर सके जिनका जो आर्यों के अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन निर्भय

राज्य की कक्षा को स्वर्ण से वास्तविक रूप में परिवर्तन करने की भूमि तैयार कर सके।

देश के सम्मुख इस समय सबसे बड़ी समस्या यह है कि राष्ट्र में नैतिकता व शिष्टाचार २ इतना अधिक अभावा हो गया है, जैसा कि सरदार पटेल ने सकेत किया है, कि भ्रष्टाचार के कारण शासन यन्त्र ही नष्ट भ्रष्ट होने जा रहा है - ‘आर्य सदाचार’ का प्रतिष्ठापन ही इस देश को प्राप्ति ‘स्वराज्य’ की रक्षा कर सकता है। यह क्या कुछ कम काम है? सबसे कठिन और सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। आर्यसमाज के अतिरिक्त इसे अन्य कोई संस्था नहीं कर सकता है। प्रवाह में मत बहिये कर्तव्य के लिए कमर कस लीजिए।

—आर्यसमाज का ‘दिव्याली शून्यङ्क’ पाठको के सामने प्रस्तुत हो रहा है। ‘दार्शनिक’ आर्यसमाज की ५२ वर्ष से जो सेवा कर रहा है उनका बहुत कुछ श्रेय आर्यसमाज के विद्वान् लेखकों को ही है।

शून्यङ्क में प्रकाशित होने के लिये अनेक लेखकों के लेख व कविचारों प्राप्त हुईं उन सबको यदि प्रकाशित किया जा सकेता तो, में अत्यन्त प्रसन्नता होती, परन्तु स्थानाभाव के कारण तथा पत्र-प्रकाशन के उचित अवसर पर प्राप्त न हो सकने में उन सबको शून्यङ्क में स्थान देना किनी प्रकार सम्भव न हो सका। इसक लिये क्षमा याचना करते हुए लेखक तथा पाठकों की सहायता के लिये हम कृतज्ञता प्रकाशन करते हैं।

—सम्पादक

शिव संकल्प

[ले०— डा० वासुदेवशरण अग्रवाल]

शिव संकल्प क्या है? दृढ़ निर्माणात्मक विचारों की सहायता शिव संकल्प है। जो विचार दृढ़ नहीं है एवं जो रचनात्मक शक्ति से रहित है वह शिव संकल्प नहीं है।

पहला मन्त्र—

यजामतो व सुदैति दूर तदुत्पन्न यन्मै गति ।

दूरगम उद्योगिता उद्योगिक तन्मे मन शिव संकल्प मस्तु ॥१॥

अर्थ—जो जागते, सोने, चुपन्तू रसाभाव वाचा है, कभी स्थिर नहीं रहता एवं दूर दूर के चक्रकार जाता है, जो उद्योगिता में उद्योगिता है वह गम दृढ़ निर्माणात्मक प कर्मात्मे युक्त हो

द्वितीयो—दूर केन्द्र से चार । उद्योगियों की

उद्योगिता, इन्द्रियों की सहायता अथवा उद्योगिता, मन उनकी उद्योगिता है उनको उजाला देने वाला है। मन का साथ न रहे तो इन्द्रियों शून्य या अन्वकार मय हो जाते हैं। जैसे बच्चे बनी छोटी साखा बर्तियों को पका देना है वैसे ही मन इन्द्रिय रूमी उद्योगिताओं की उद्योगिता है।

द्वितीय मन्त्र—

येन कर्माव्ययवमो मनीषिणो यज्ञे कृत्स्वन्ति विद्येषुषोः ।

यदपूर्वं यत्प्रमत्त प्रजाना तन्मे मन शिव संकल्प मस्तु ॥२॥

अर्थ—मनोषो यज्ञो में जिनसे उत्कृष्ट कर्म करते हैं धीर लोग विद्यया विद्या मन्त्रों में जिसकी सहायता से कर्म करने हैं, जो प्रजाओं के भीतर व पदमे जेगा यत्त है, वह मन दृढ़ निर्माणात्मक प कर्मात्मे युक्त हो

द्वितीयो—मन व तरह के कर्म करने का साधन है। कर्म दो प्रकार के हैं। यक्षीय कर्म जो आचार और हृदय की सधना पवन हैं एवं विद्यया विद्या मन्त्रों की सहायता। स मार में जितने आचार के चमत्कार और विद्या के मानव हैं वे मन से हो हुए हैं और मार से ही होंगे।

मन की दृष्टि शक्ति वाले मनीषी हैं जो आचार प्रधान जीवन के अनुयायी हैं। बुद्धि के धृति प्रधान मार्ग से ज्ञान का अभ्यास करने वाले धीर लोग हैं जो अनेक प्रकार के विद्यया उच्चज्ञान प्रयोग करने करते हैं। दोनों में मन की एकतापन्निता ही कारण है।

अपूर्व यत्त—धृति जड़ वदार्थों के डेर में से उत्पन्न वह मन एक अपूर्व शक्ति है। यह यत्त है जिनमें कामों को निपटाने की अपूर्व शक्ति है। कर्मात्मे अविद्यया यत्त जैसे ज्ञान मात्र में सब काम पूरा कर देता था वैसी ही विलक्षण क्षमता मन की यत्त में है। ज्ञानों के अथात् सब प्राणियों के अन्तःकरण में वैसा हुआ यह यत्त उनक निर्देशातुना काम कर रहा है।

तीसरा मन्त्र—

यस्मिन्मनुचेनो धृतिश्च पञ्चोत्तरन्तरमृत प्रजासु । यस्मान्न च्छते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मन शिव संकल्प मस्तु ॥३॥

अर्थ—जो प्रज्ञान है, जो चेतन है, धृति है, जो प्राणियों के भीतर न चुकने वाला अमर उद्योगिता है, जिसके बिना कोई कर्म नहीं होता, वह मन दृढ़ निर्माणात्मक संकल्प से युक्त हो।

द्वितीयो—

प्रज्ञान—Intention

चेतन—Intelligence

धृति—Will

प्रज्ञा बुद्धि और इच्छा शक्ति मन की ही शक्ति हैं। ऊँची प्रतिज्ञा या प्रज्ञा मन का ही गुण है। वह सबसे उत्कृष्ट ज्ञान का साधन है। प्रज्ञा से सय का संज्ञान दशन होता है। चेतन या चेतना बुद्धि है जिनके व्यापार से तर्कबितर्क होते हैं। धृति वह शक्ति है जिससे दृढ़ संकल्प या इच्छा प्रकट होती है नो कल्प रूप में समने आती है। मन ही अमृत उद्योगिता है। मार-मार

बुझने वाले सकल्प विकल्प या जीवन व्यापारों में मन हो है जो पुनः पुनः नया होकर जीवन में नई भाषा, नये व्रत नये प्रकल्पों को आचान करता है। जिससे अब कर्म क्रिये जाने हैं, दूसरा मन्त्र) और जिसके बिना कोई कर्म नहीं होना (वीरता मन्त्र) ये एक ही शक्ति के घन और श्रेण द्विविध रूप हैं।
चौथा मन्त्र—

येनेद भूत भुवन भविष्यत्परिगृहीतमसृतेन सवप । येन यज्ञतायते सप्तशोता त मेमर तिव स बल मस्तु ॥४॥

अर्थ—जो हुआ, जो है जो होने वाला है, सब जिस असृत मन से पकड़ा हुआ है, जिससे मात बाहु १या वाचा यज्ञ चल रहा है, वह मन दृढ तमोपात्मक र हल युक्त हो।

टिप्पणी—भूत भविष्यत् परित्यक्त मन्त्र को भिन्नाने व को असृत वाग्या अमर सूत्रात्मा मन है। शरीर मत्स्य है जब वह दृष्ट जाता है पहले पाछे के सम्बन्ध अन्त व्यस्त हो जाते हैं। परन्तु भूत भो वतमान जीवन से और वर्तमान जीवन को भविष्य में आने वाले जीवन से मिलाने वाला, उनमें एक सूत्रता आने वाजा मन है मन को इन्द्रिय अमृत या देवी बश कदा गया है। मन्त्र होता यज्ञ—शोकन, दो अर्थ, दो नाक के छिद्र, एक मुह—ये सात आहुतियों बराबर पड़ना रहता है जितसे शरीर का यह सप्त होता यज्ञ चलता रहता है। मन इस यज्ञ का जरी रञ्जता है। इन्त को सात प्राण और मात श्रुति भा कहा गया है। उन धूप है, प्राण उषको छाया है। “छाया तमो धूप छाँह की तरह मन और प्राण का सम्बन्ध है।

पंचम मन्त्र—

यस्मिन्नुच सामयजूषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रचनाभ विचारः । यजि चित्तं तन्वमोत अजा । तन्मे मन शिव सकल्पमस्तु ॥५॥

अर्थ—श्रुक्—शाम—यजुः जितमन में ऐसे नये हैं जैसे रथ की नजि में अरे जिसमें अब प्राणियों का चित्त रूरी ताना बुना हुआ है, वह मन दृढ निर्माणात्मक सकल्पों से युक्त हो।

टिप्पणी—श्रुक्—शाम—यजुः ज्ञान—उपा सना—कर्म,

विवा परशित जो जीवन है वह मनमें ऐसे प्रियो) दुःख है जैसे रथचक्र का नाह में पहिये के अरे युक्त रहते हैं।

शरीर य है। मन्त्र रथचक्र की नाह है। जितना त्रिगुण जीवन जीवन है वह उन अकार तरह है जो पहिये की नह में प्रियो रहते हैं। नाह के बल पर ही अरे टिके रहते हैं। मन की शक्ति से ही त्रिगुणात्मक जीवन उठरता है। मन के अराध में श्रुक् वा यजु का त्रिगुणात्मक र परि कुञ्ज नहीं है।

चित्त का ताना बाना उपा मन में बजा है। चित्त विकल्पा का स्थान है। चित्त से फैलने वाले जितने सकल विकल्पा के बागो हैं वे मन में हा बुने हैं। मन के गाने से चित्त के बागो खुलते हैं नता प्रकार के जज्ञात इन्द्रिय त्रिगुणात्मक जगत् में मन की शक्ति से ही चित्त के सकल्प विकल्पों द्वारा उत्पन्न होते हैं। उन सबको दृढ निर्माणात्मक स्थिति में प्रान कराने बला मन ही है।

छठ मन्त्र—

सुष रश्मिररा तब यन्मनुष्यन्नेनीयतेऽ भाशु निरा ज इव । इत् तल्ल परश्मिर जविष्ठ तन्मे मन शिव सकल्प मस्तु ॥६॥

अर्थ—सुषुप्ति राय जैसे ताम से घोड़ों को लो जाता है वैसे ही जो इन्द्रिय रूपा घोड़ों का अपनी बागो से राह पर ले चलता है,

जो इन्द्रिय में पचराथा हुआ है अर्थात् अबसे विशिष्ट पद पर बैठता है जो वेगशान्नी है, तो सबसे फुर्तीला है वह मेरा मन दृढ और निर्माणात्मक सकल्पों से युक्त है।

टिप्पणी—सुषारश्मि—चतुर् सारथि जो चक्कर घोड़ों को बरा में रखने की योग्यता रखता है और जो राय को दृढ़ता से थाम कर उन्हें ठीक मार्ग पर चलता है ऐसी योग्यता मन का होना चाहिए। ठाक तरह से साध हुआ मन इन्द्रिय रूपा घोड़ों को बग में रखकर चलने में सखे दुये सारथि की गह होत है।

एक सौ पन्द्रह वर्ष के ब द

(ले०—भी गयाप्रसाद उपाध्याय)

१८३३ ई० में लाइपे मैकाले साहब भारतवर्ष में इंग्लैण्ड की ओर से ला मेम्बर (धर्म सचिव) होकर आये और महाराजा राममोहनराय की सहायता से अंगरेजी शिक्षा का प्रस्ताव स्वीकृत करवाया। उस समय ब्रिटिश सरकार के समक्ष यह प्रस्ताव प्रस्तुत था कि भारतीय युवकों की शिक्षा भारतीय भाषाओं द्वारा हो या अंगरेजी भाषा द्वारा दोनों पक्ष प्रबल थे और समान थे। मैकाले प्रधान था उसके अपने अतिरिक्त मत से अंगरेजी का पक्ष स्वीकार हो गया यदि राजा राममोहनराय अपना मत अंगरेजी के विरुद्ध देते तो अतिरिक्त मत की आवश्यकता ही न पड़ती। अतः अंग्रेजी के लिये राजा राममोहनराय का भी उतना ही उत्तरदायित्व है। परिणाम हुआ भारतीय भाषा, भारतीय भाव और भारतीय संस्कृति का ह्रास और पाश्चात्य घायुमण्डन का विस्तार। इस बीच में भारतवर्ष में बड़े बड़े विद्वान्, बड़े बड़े देश हितैषी और बड़े बड़े प्रभावशाली पुरुष हुये, परन्तु वे सब थे अंग्रेजी वातावरण के पले हुये। यहाँ तक कि मैकाले आदि ने पूर्ण की पवित्र पुस्तकें आदि जो साहित्य निर्माण किया वह भी अंग्रेजी रंग में रंगा था, ऋषि दयानन्द पहले पुरुष थे जिन्होंने इस विषय की बेल को पहचाना और इसके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में चार बातें बतवाईं:—

(१) यह सरासर गलत है—कि भारतीय संस्कृत साहित्य दोष युक्त और अधूरा है और इसमें देश तथा जात का आवश्यकता का सामना नहीं है।

(२) आर्य भाषा (हिन्दी) ऐसी भाषा नहीं है जिसमें नवान आविष्कारों को सांनहित करने की योग्यता न हो।

(३) अंग्रेजी के प्रचार से दासत्व की बंधियाँ कड़ी हो सकनी हैं देग उन्नति नहीं कर सकता।

(४) भारतीयों को प्रान्तीयता की बलबन्दी छोड़कर हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा बनाना चाहिये।

ऋषि के समय में ऋषि की आवाज को लोगों ने सुना तो सही, परन्तु उस पर श्रद्धा न की। वह समय अंग्रेजी के प्रावलय का था। सभी अंग्रेजी के पीछे पागल थे जब १८८५ ई० में काँग्रेस बनी तो वहाँ भी अंग्रेजी का ही मान हुआ। इंग्लैण्डन नेशनल काँग्रेस नाम में तीनों ही शब्द अंग्रेजी है। ऋषि दयानन्द की शिक्षा का मूलतत्त्व यदि



लेखक

समझा तो महामा अंग्रेजी ने। उन्होंने ऋषि दयानन्द का पढ़ती बात पर नो अधिक बत नहीं दिया, परन्तु जेब ताना बार्ता को जोर से आगे बढ़ाया। ऋषि दयानन्द क खमान वे भी गुजरानो थे, परन्तु देशहित के लिये उन्होंने प्रान्तीयता के

शुद्ध भाव को तिलाञ्जलि दे दी थी। जिस सूत्र को ऋषि दयानन्द छोड़ गये थे उसका महात्माजाने विस्तार किया और दक्षिण में हिन्दी प्रचार का अधिकतर श्रेय महात्मा गाँधी को है।

१४ सितम्बर १९४६ ई० या क्वार बंदी सप्तमी २००६ वि० (बुधवार) का दिन भारत क इतिहास में पुण्यतम दिवस समझा जायगा जिस दिन भारत राज को धारासभा में मैकाले के लगाये हुये विष के पौघे की जड़ काट दी गई और यह निश्चित हो गया कि भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी हो। यह ऐला निरवय है जिसमें न केवल ऋषि दयानन्द के आदेश को प्रतिष्ठित है, न केवल महात्मा गाँधी की शिक्षा का पानन है अपितु भारतीय प्राचोनतम संस्कृति के उद्धार का मूलमन्त्र निहित है। आज से उलटा गंगा के बहाव को रोक कर साँचा कर दिया गया। १९१४ वर्ष से चली आती हुई गलती आज दूर हुई। यह हृष और अभिमान और गौरव की बात है।

इस निश्चय के चार परिणाम हुये—

(१) जो लोग भारतीयता के मार्ग में रोड़े अटकते थे वह असरून हुये और वे दिल में नाराज हैं।

(२) जो लोग स्वभाव से अंग्रेजी के रंग में रंग गये थे और जो अंग्रेजी के साथ इतने दिनों से हुवे 'अनुचिन सम्बन्ध' की छोड़ने की शक्ति नहीं रखते थे वे भीतर से लाभ को समझते हुये भी तृणिक उपभोग क छूट जाने से खिन्न हैं।

(३) भारत देश क बलवान देश भक्त जो भारतीयता में ही देश का कल्याण समझते हैं अपनी विजय पर फूलें नहीं समाते। उनके हृदय अ नन्द से भरपूर ह।

(४) जो इस प्रसन्न में प्राचोन वैदिक संस्कृति के पुनरुत्थान का हृत्ता देख रहे हैं और "कृषवन्तो विश्वमार्यम" के महान उद्देश्य की पून क विचार कर रहे हैं उनके आनन्द का तो सा पाना हो कठिन है। यह ह ऋषि दयानन्द के भक्त आर्यसमाजी में भा उनसे अपने को एक गिनता ह।

परन्तु मुझे आनन्द भी है और चिन्ता भी। निर्धन सन्तान हीन अछेड़ पुरुष के घर में यदि पुत्र-जन्म हो तो उसे आनन्द होगा, परन्तु उसे चिन्ता भी होगी कि इसका पात्रन - पोषण कैसे हो। कवल वारासभाक प्रस्तावसे तो हिन्दी राष्ट्रभाष होने से रहो। इसके वृष्टियों को दूर करना, इसका सब देगन प्रचार करना, इसके साहित्य को परिपूरित करना इसके लिये तो जो ताड़ककामकरना होगा।

और आर्यसमाज को तो साधारण भारतवासी की अपेक्षा कई गुना अधिक काव्य करना है। उसे हिन्दी-भाषा क सात को इस प्रकार बहाना है कि उसमें वेदक संस्कृति का अधिक-से-अधिक पुट हो। साधारण काग्रसे डार्शन या कालं मार्क्स की पुस्तकों को हिन्दी भाषा में पढ़कर अपने उद्देश्य को पूर्ण समझ सकता है क्योंकि हिन्दी भाषा उसके लिये एक साध्य है। देशहित के इसी अंश की पूर्ति से सन्तुष्ट है, परन्तु आर्यसमाजी तो हिन्दी भाषा और नागरीलिपि दोनों को साधन मात्र समझता है उसका ध्येय तो कायो आगे है। यह तो ध्येय को पहली सीढ़ी है। ध्येय बहुत ऊँचा है। अतः आर्यसमाजी आनन्द मना सकता है, परन्तु चिन्ता-शून्य नहीं हो सकता। आज से आर्यसमाज को आर्य-साहित्य के निर्माण और प्रचार में जुट जाना चाहिए।

गत ७१ वर्ष में आर्यसमाज ने बड़े-बड़े प्रमा-पशाली काम किये हैं परन्तु उसने साहित्य उत्पादन नहीं किया यह एक ऐसी वृष्टि है जो अज्ञानव्य है। यदि आर्यसमाज के विशाल भवन आदि न होते और केवल साहित्य निर्माण की ओर ही ध्यान देता, तो आज आर्यसमाज का सिर बहुत ऊँचा होता, परन्तु हमने जड़का छोड़कर पत्तों का साँचा। साहित्य निर्माण का चिन्ता नहीं की साहित्यकारों का मान नहीं किया। उसो का फल भोग रहे हैं। क्या ऋषि दयानन्द के ब्यासठवें निर्वाण वर्ष पर हम अपने भावी प्रोग्राम को निश्चय करेंगे ?

आर्यसमाज के लिये अपूर्व अवसर

[ले०—श्री पं० हरिशङ्काजी मर्वा]

आर्यसमाज को वैदिक धर्म प्रचार के लिये स्वतन्त्र भारत में अपूर्व अवसर है। पर हम देखते हैं कि वह इस स्वर्ण अवसर से कुछ भी लाभ नहीं उठा रहा। उसे अपने चुनावों में जितना मोह है, उतना अन्य कार्यों में उत्साह नहीं। आर्य समाज को क्या करना चाहिए, इस विषय पर नीचे कुछ प्रकाश डाला जाता है। आशा है आर्य जनता इन सुझावों पर विचार करेगी।

(१) प्रत्येक आर्य को अपने विचार और आचार में आध्यात्मिक आधार को दृढ़ करना चाहिए। अर्थात् वह जो कुछ सोचे, कहे या करे उसमें सत्य न्याय और प्रेम का पूरा पुट हो। समाज सशोधक के साथ साथ वह धार्मिक भी बनने की पूरी चेष्टा करे।

(२) इसी भावना का सुकियुक्त प्रचार करने के लिये लेखनी आदि बाणी की शक्ति को सुदृढ़ बनाया जाय अर्थात् सत्संग की कथा, व्याख्यान, उपदेश और प्रवचन की प्रत्येक पुर नगर में और घर घर में व्यवस्था हो। (ब) मानिक सामाहिक और और दैनिक पत्रों का प्रकाशन किया जाय। उपयोगी ग्रन्थों तथा पुस्तकों का प्रकाशन हो।

(३) दयानन्द-सेवा-सदन की स्थापना जिसमें निवाहार्थ वृत्ति लेकर निष्काम कर करने वाले विद्वान् सद्स्य सम्मिलित किये जाय।

(४) समस्त गुरुकुलों के लिये एक गुरुकुल विश्व विद्यालय का स्थापना हो जिसके द्वारा पाठ-विधि और शिक्षण-शैली में समानता हो। गुरुकुल प्रणाली समर्थोपयोगी तथा आकर्षक बनाई जाय।

(५) डी० ए० बी० हार्ड स्कूलों और कालिजों में धार्मिक शिक्षा का महत्व तथा प्राथमिकता देने की व्यवस्था की जाय। उनमें सहयोग या एक सूत्रता स्थापित हो।

(६) आर्यसमाजों के उत्सवों को गम्भीरता का रूप दिया जाय। सम्भव हो तो प्रत्येक समाज अलग अलग अपना उत्सव न करके जिले के उत्सव में सम्मिलित हो। और यह जिला आर्य समाज उत्सव, जिले में नवीन नवीन स्थानों में मनाया जाय।

(७) स्वाध्याय और सत्संग की पथा का प्रसार किया जाय और यथा सम्भव प्रत्येक समाज में प्रातः काल दैनिक सत्संग हो।

(८) बिरादरीवाद और असुर्यता निवारण के लिये क्रियात्मक प्रयत्न हो, नशा निवारण के लिये पूरा प्रयत्न किया जाय।

(९) वैतनिक और अवैतनिक कार्य कर्त्तव्यों के मध्य के विषम भेद-भाव का अन्त कर समता का व्यवहार किया जाय और उन्हें सामाजिक अधिकारों की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय।

(१०) सचटन सम्बन्धी नियमों को अधिक महत्ता न देकर जानापुरी अथवा महकमा परस्ती को शिथिल या गौण समझ कर धार्मिक सिद्धांतों को मुख्य तथा प्रधान माना जाय।

(११) द्रव्य संग्रह का उत्सृष्टियुक्त उपदेशकों पर न डाल अधिकारियों के कर्त्तव्य पर रखा जाय।

(१२) सत्संगों और अधिवेशनों तथा उत्सवों को गम्भीर एवं आकर्षक बनाया जाय। उनमें आर्य समाज से बाहर के लोगों को भी बुलाने का पूर्ण प्रयत्न हो।

(१३) नगर कीर्तन यानों रंक प्रदर्शन (Poor Show) का अन्त हो।

(१४) परिवारों और महल्लों में धर्मप्रचार। ग्रामों की जनता में सरल शुद्ध और सरस भजनों द्वारा प्रचार, तथा ज्ञान बद्ध क व्याख्यानो की व्यवस्था।

(१५) विशेषरूप प्रथा प्रचलन-अर्थान् एक-एक विषय के जनकार उसके प्रचार के लिये तैयार किये जाय।

(१६) गुरुकुलों और डी. ए. बो. कॉलेजों में वक्ता, लेक्चर, सम्पादक, प्रचारक, पार्टिड मैकेटरी, संगठन कर्ता, संस्था सञ्चालक आदि तैयार करने के लिये विशेष श्रेणियों की स्थापना।

(१७) महानायकों, नवयुवक विद्यार्थियों, शिक्षित जनता आदि के लिये विशेषरूप प्रचारकों और विद्वान् व्याख्याताओं की नियुक्ति।

(१८) नैतिकता प्रचार और भ्रष्टाचार नाश के लिये निर्भयता पूर्वक प्रचार करना

(१९) साहित्य-होनता और सगोत शूद्रगता का विशेष ध्यान करने के लिये उच्च व्यवस्था।

(२०) रागियों की परिचर्या सेवा शुद्ध और चिकित्सा के लिये निःशुक्र आयोजन

(२१) अनाथाश्रम, कन्या पाठशाला, विधवा श्रम, आदि संस्थाओं का प्रांतीय सचयन के अन्तर्गत प्रबन्ध और नियन्त्रण।

(२२) प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तर्गत सभा में केवल कर्मण्य सदस्य रखे जाय। नाम मात्र के लिये कोई न रहे।

(२३) आर्य समाजों और सभा के शिथिल संघटन को सुदृढ़ और सबल बनाने का पूरा प्रयत्न किया जाय।

(२४) सभा का अधिवेशन गुरुकुल वृन्दावन के महोत्सव पर हुआ करे, उसका केंद्र पश्चात्।

(२५) गुरुकुल महोत्सव को अधिक प्रभावशाली और आकर्षक बनाया जाय।

(२६) आश्रमधर्म को क्रियात्मक रूप देने की चेष्टा की जाय, अर्थात् धानरक्षाश्रम और सन्यासाश्रम का जीर्णोद्धार।

(२७) प्रांत में आर्यसमाजों द्वारा कोई संस्था, बिना पानाय आर्य प्रति निधि सभा की स्वीकृति के स्थापित न की जाय।

(२८) सभा के अन्तरगत-सदस्यों में से आठ सदस्यों की एक कार्य-समिति बनाई जाय जिसे काफी अधिकार हों।

(२९) शिक्षा केन्द्रों के लिये विद्वान् व्याख्याताओं की नियुक्ति हों।

(३०) वर्ष भर में १५ दिन के लिये किसी ठोके स्थान में शिक्षण शिविर हों जिसमें उपदेशक, अध्यापक विचारक, वकील सरकारी कर्मचारी जो भी सम्मिलित होना चाहे अपने व्यव से सम्मिलित हो और आर्यसमाज का आगामी कार्यक्रम निश्चित करे। विचार विनिमय हो।

(३१) प्रांत के चुने हुए पञ्चन आर्यव्यक्तियों का एक समिति दिसम्बर से पूर्व चुनाई जाय ता आर्यसमाज का भावी कार्य क्रम निश्चित करे ये पञ्चन व्यक्ति अपने अपने विषय के विशेषरूप हों आर्य समाज से बाहर के लोग भी इन में शामिल किये जाय जो आर्य समाज से दूर रहने तथा उसका उन्नत चाहते हैं। इन पर यदि कुछ ध्यान करना पड़े तो वह भी किया जाय।

मैंने ऊपर कुछ क्रियात्मक बातों की ओर संकेत किया है निश्चय हो इस सारे आबोजन के लिये धन की बड़ी आवश्यकता होगी। परन्तु मेरा विश्वास है कि जिस जनता ने आर्य समाज के कार्यों के लिए अब तक करोड़ों रुपये दिये हैं, वही अब भी देगी। कुछ लोग निश्चित और क्रियात्मक कार्यक्रम लेकर स्वार्थयाग पूर्वक सबके हृदय से कार्य देखेंगे अवतरित तो हों।



ऋषि दयानन्द की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था

[ले० महोपदेशक प० विहारोलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ उक्तियानी (रथ यू)]

भी स्वामी जी का वैदिक धर्म पर अटल विश्वास था वह वेदादि शास्त्रों की योजना को ही जगत् के लिये कल्याणकारिणी मानते थे। इसलिये वह “वर्णाभिम व्यवस्था” वाला समाज ही पसन्द करते थे। सम्पूर्ण मानवसमाज चार प्रकार का स्वभाव लेकर जगत् में आता है — सात्विक, राजस, तमस और इनसे मिला जुला। मनुष्य ही नहीं सारा जन्म चेतन जगत् ही चार विभागों में बँटा हुआ है। शास्त्रकारों ने पशु पक्षी वृक्ष लतादि तक का वर्णों में बाँटा है।

वस स्वभाव के अनुसार ही मनुष्य गुणों को ग्रहण करेगा और यही उसके विकास के लिए ठीक भा हो। और स्वभावानुसार ही कर्म मिलने से कर्म में रूचि भी होगी जिससे कि काम भी ठीक रहेगा। स्वभाव के विदे जन्मदाताओं के स्वभाव आने की अनिवार्यता नहीं है। माता पिता का स्वभाव आता भी है और नहीं भी आता है। तम त स्वभाव में परिवर्तन भी हो जाता है है। चारों ही वर्णों का ऐसा बाँटा गया है कि पृथक् रहते हुए भी मिलकर एक विराट् समाज के रूप में रहे। एक वर्ण दूसरे पर अवलम्बित रहे। पृथक् पृथक् काम होने हुए भी चारा मनुष्य समाज “विरट् भगवन्” । एक शरीर ही है। ऐसे समाज की कल्पना प्लेटो ने भी की थी परन्तु वह सफल न हो सका। उसकी असफलता का कारण यही था कि उसके पास त्याग और तप के संस्कार डालने वाला आध्यात्मिक शास्त्र वेद उपनिषद आदि नहीं थे। भौतिक शरीर की आत्मा भी भौतिकता ही हो वह जन्म पुरुष स्वतन्त्र नहीं काम कर सकता। यहाँ के ब्राह्मणादि वर्णों की आत्मा ‘वर्म’ है, भद्रा है, ब्रह्म विद्या है। वर्णों के अतिरिक्त समाज में वश परम्परागत कार्य आने से कार्य का विकास अच्छा होगा और कत्तव्य को स्वधर्म मान लेने से कार्य में रुचि होगी। और शक्तियों का भी बाँटवारा ठीक रहेगा। पूँजावाद का विषय भी इससे समन होता रहेगा। ब्राह्मण के पास ज्ञान की

शक्ति, क्षत्रिय के पास शस्त्र की शक्ति और वैश्य के पास धन की शक्ति तथा शूद्र के पास भ्रम की शक्ति। किसी एक वर्ण के पास चारों शक्तिय न रहने से शक्ति सकर जैसा कि आज कल है नहीं हो सकता। और सर्वोपरि शक्ति ज्ञान ही है ही इसलिये उसका मन रक्खा गया। मनुष्य मान को बड़ा समझता है। आज कल धन का मान हो ग है। इसी लिये सब धन की तपक दोड़ते हैं।



लेखक

शास्त्रों ने यह मान ज्ञान के आधीन कर दिया इसलिये त्याग की ओर संसार बढगा यही वर्ण व्यवस्था का विशेष गुण है। मनुष्य के जीवन के भी चार भाग रहते हैं

पहले जगत् में ज्ञान का प्राप्ति करना यह सब के लिए समान है। इसमें जो विदेय रहे वह ब्राह्मण, फिर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहित शूद्र। दूसरे भाग में भौतिकता का आनन्द लेना है तथा मरार के काम करने हैं। इसमें भी ब्राह्मण भौतिकता को छूता ही हुआ ब्रह्म जायगा, उससे चिपकेगा नहीं। तीसरे भाग में तीनों ही वर्णों

भौतिकता को त्याग ध्यान की उपासना में लगेंगे। चौथे भाग में ब्राह्मण अपने ज्ञान विज्ञान प्रभुत्व से जगत् को लाभ पहुँचायेगा। इस प्रकार वर्णाश्रम विधान में त्याग ही प्रधान है। जगद् में रहते हुये भी जगत् को माया से अज्ञित रहने का श्रम्यत्व किया जाता है। सारा भगवाड़ा जगद् के भौतिक पदार्थों के ही लिये है। तर्थाश्रम व्यवस्था में त्याग को ही मान प्रतिष्ठा मिलती है, मान तो इच्छा वाला त्यागी बने इस प्रकार एक बड़ा आठ = ही समाज संभरी रहता है शेष अपरिग्रही, फिर सर्वथे केता ? आज कल कुछ लोग "एक वर्ग" सब को एक ही देश का घोष करते रहते हैं। सुनने में तो यह घोष बड़े मीठे लगते हैं। सब निर्धन सधन, सब रोगी स्वस्थ, सब बूढ़ युवा, सब मूर्ख पवित्र हो जायेंगे। इन घोषकर्ताओं के विचार सबको जल में बर बर करने का विचार नहीं, अन्ननि म बराबर लाना है। प्राकृतिक रूप में सबको बुद्धि, सबका पुरुषार्थ, सबकी मनोवृत्ति एक ही नहीं। यदि इन लोगों के कथनानुसार परिस्थिति को ही मनुष्य के भले बुरे होनेका कारण माना जाय तब भी तो भेद होगा ही। क्यों कि परिस्थितियाँ देशकाल को एक ही नहीं रहती इसलिये वहाँ बार बड़े बड़े समतावादो चार्वाक बुद्ध आदि ने चल किये थे पर मनुष्य समान ही भिन्नता ज्यों की त्यों रही। सघने उग्र समतावादो इस्लाम है पर वह भी भाँ. कर रह गया और समता न कर सका। भौतिकता में जैसी विषमता सुखमानों में है वैसी और कहीं न मिलेगी इसलिये श्रुतिवों ने वैवाहिक और भौतिक साधनों की भिन्नता रखते हुए आध्यात्मिक साम्यता का प्रतिपादन किया। आर्यधर्म भिन्न वको मानता हुआ भी समन्वय करी है। नानाधर्म में एकत्व दर्शन यही वेद का परम ज्ञान वेदान्त है। श्रुति दवानन्द ने ब्राह्मण्यदि के बालको का वर्ण परिवर्तन हो जाने पर उन्हें दूसरे अपनी योग्यता वाले विधानों का दे देने का विधान किया है। ताकि अयोग्य युव योग्य पिता के यश सम्पत्ति आदि का अनुचित लाभ न उठा सके। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के ही फल को मोगे, यही इस नियम का प्रयोजन है। जानून म भाषुकता भरी बातें नहीं चला करती।

आर्थिक वितरण में भी स्वामी जी यही विषयता रखते हैं। अर्थ क्या है ? जोरनो (रोगी) बलुर् अन्न, बल श्रोत्र, बान (सवारी) विलास सामग्री आदि अर्थ हैं। इनके उत्पादन के साधन भूमि यन्त्र वि है। उत्पादन के साधन यदि मूर्खों प्रमादियों पर ही तो वे उषने कोई लाभ नहीं उठा सकते। उत्पादित अर्थ पर बुद्धिमान व्यवसाय निपुण, व्यवहार कुशल वैश्य का अधिकार रहना चाहिए। समझी मनोवृत्ति वाला ही अर्थ को सुचारु रूप से संग्रह रख सकता है। स्वामी जी की योजना में यह काम वैश्य अपना कर्तव्य समझकर हो स्वतः कर देता है। दान द्वारा पदार्थ ले लेंगे और बलुर् जीवने में यद् मेरु-ई कि एक म चिच में उच्च वृत्ति आते हैं वृत्ते में मन में ईर्ष्या द्वेष और ज्ञीम का उदय होता है। वैदिकधर्म में पूँजी का स्वामित्व हानिकर नहीं, पूँजी का प्रयोग हानिकर वा लाभ कर है। धनी आते मान की खर्चाय अमी संरक्षि को समाज के लिये देता था। इसलिये धनिक पूँजी के स्वामित्व सुख को प्राप्त करके दान के मान को भी प्राप्त कर लेता था। आज जो धन का संघर्ष है वह इसलिये है कि भौतिक आचर्यकर्तायें और वनासिता बढ़ गई हैं। पर वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था में जब है मान केवल योग ज्ञेय मात्र सम्पत्ति ले तो सच्य हो ही नहीं सका। एक भावना ही की तो बात है। मेरा बलुर् मान कर फिर मेरी शीकृति से अपने काम में लाइये तो मेरा गौरव बढ़ेगा, मुझे सन्तोष होगा। मुझे मेरी योग्यताके फल को छीन सको तो मेरा उन्माह गिरेगा उन्मादमें अज्ञानस्यवदेगा, योग्यलोग प्रयत्न नहीं करेंगे और करेंगे भी तो केवल राजदण्ड द्वारा। और दण्ड तथा केवल कानून से हुआ काम मानवीवृत्ति को गिरावेगा। इसलिये जन्म से ही संस्कारों और शिक्षा के द्वारा त्याग सेवा परोपकार का अभ्यास कराकर पूँजी का विष (स्वार्थीय उपयोग) दूर किया जाना ही ठीक है। स्वामी जी को ये पंक्तिनी प्यान देने योग्य है:—

"जब तक एकमत, एक हानिलाम एक सुख दुःख परस्पर न माने तब तक उन्नति होना कठिन है।" स. प्र. पूरे राष्ट्र का हानि नाम सुख दुःख एक होना क्या यह भाव "धर्म वाद"से ऊँचा नहीं है ? यह केवल बड़ा और उच्चकोटि की आध्यात्मिक भावना को जाग्रत करने से ही होगा अिनका उपयोग वेद में है।

लुप्त वैदिक कर्मकाण्ड

[लेखक—श्री हरिदत्त शास्त्री एम० ए० मुख्याधिष्ठाता—महाविद्यालय जवाहरपुर]

कुछ समय हुआ मैंने 'कर्मकांड कन्दन' शीर्षक एक नोट "आर्यमित्र" के एप्रिल मास सन् १९४८ के अङ्क में लिखा था। उसके विषय में आर्यसमाज बीसलपुर के मन्त्री श्री पूर्णानन्द जी ने ता० १ मई १९४८ के "आर्यमित्र" में लिखा था कि—'उक्त सज्जन यदि पाक यह' आदि के विषय में कुछ लिखने की कृपा करें तो अन्युत्तम हो इत्यादि, पर मैं समयाभाव से कुछ न लिख सका। आज पुनः उस ही विषय को उठा रहा हूँ—अस्तु सुविष्ट आर्यसमाज ने जो वर्तमान कर्मकांड समंस्क रक्खा है वह यह है कि स्वस्तिवाचन शान्ति प्रकरण का पाठ किया और हवन कर दिया हवन में भी कतिपय महातुभाव यही समझते हैं कि यदि श्री स्वामी जी ने जो लिखा है व जितना लिखा है उससे न कम करो न ज्यादा। मैं यह नहीं मानता, श्री स्वामी जी ने तो केवल हमारी आंखें खोला है—उन्होंने एक ज्ञानदीपक हमें सौंपा है—यह नहीं कि हम उस ज्ञानदीपक पर काली चिमनी चढाकर उसका प्रकाश विस्तृत न करें तथा अंग गतुकरण या गुरुडम या कट्टर पथ जिसका खडन ही स्वामी जी के जीवन का प्रथम उद्देश्य था उसमें ही पड़े रहें, न यही होना चाहिये। मूल मार्ग जिसे महापं मूलशुद्ध ने बतलाया है उसे छोड़ ही दें। अतः उस उतने भाग को लेते हुए यदि हम कुछ तदनुकूल मन्त्रों को हवन या यज्ञों में और भी समाविष्ट कर सकते हैं तो कोई हानि नहीं। तब भी हम श्री स्वामी जी के अनातुयायी या श्राधि भक्त ही रहेंगे श्राधि-द्रोहो नहीं। इसकी पूर्तें हमें वेदों से ही करना होगी। तथा भले ही उन यज्ञा क नाम आप आने चलकर

परिवर्तित करने पर सम्प्रति तो उन्हे ही लेकर चलना उचित होगा।

आर्य जगत् जानता है कि सत्यनारायण की कथा को Replace करने के लिए आर्यसमाज में दो सत्यनारायण की कथाएँ प्रचलित हैं एक तो मैंने श्री सुहृद्दर प० विश्वश्रवा जी की देखी है। दूसरी किन्ही बिहारो पण्डित की बनाई हुई



लेखक

है। इसी प्रकार हमारे मान्य सुहृद्दर प० गंगा-प्रसाद जी उपाध्याय ने 'वेद सत्ताह' के लिये एक 'वेद कथा' लिखी है—जो कुछ और बढ़ा दी जाय तो 'भागवत सत्ताह' का स्थान ले सकती है। यदि आप किसी को पयजामा पहनने से हटाना चाहते हैं तो उसके लिये आप को धोती देनी होगी, जो कि 'आर्यवेप' है आप धोती पहनने को दें नहीं तथा पयजामा छुडाना चाहें तो यह कैसे हो सकता है। वह व्यक्ति नगा कैसे रहना पसन्द

करेगा। फल यह होगा कि वह पुराना अन्वयवेप पारयामन करगा अतः हम वैयनामा लु।ने क लिय घेतियौ मिलौ म तैयग कराना ही हागा, स यनारायण की 'आय कथा' अधिक प्रचार नहा पा सकी उसका कारण यह है कि उसमें रोचकता और सरलता नहीं है, जैसी जनता है वैसी ही आपका उसकी यन्वयतानुरूप पदार्थ प्रस्तुत करना होगा। हम री न यनारायण कथा में घटा, घडियाल, पजोरा कले को फनो, दक्षिणा भो नहीं मिलती, न लालावती, कलावती ही अती है फिर कथा रोचक कस हा, अतः 'गुडजिह्वा न्याय' तथा 'यन्वयतानुरूप बलि-न्याय' से इन कमियों का भी दूर कर दे ता वइ प्रचलित हो जायगो वह पूर्ण आशा है।

पाक यज्ञ

मीमांसा शास्त्र में पाक यज्ञ क सातभेद विधे हे। 'पाक यज्ञ' उसे कहते है जिस यज्ञ में अग्नि पकस्थाली पाबाद का उपयोग किया जाय। घर्तमान पजोरी या हलुआ आदि एक पाक यज्ञ का ही स्वरूप है। शास्त्राक्त पाकयज्ञो क सात भेद निम्नलिखित ह—

१—औषामन होम, २—वैश्वदेव, ३—पावण्य, ४—कृष्णका, ५—मासनाद, ६—पैवलि और ७—ईश नबलि। इसी प्रकार १४ प्रकार के औतयज्ञ होते हे—

जो कि दो विभागो में विभक्त हैं—हरियंज्ञ, और सोमयज्ञ। प्रत्येक ७-७ सात सात प्रकार का है—१—आमनाधान, २—अग्निहोत्र, ३—दर्श पूर्वमाप, ४—आप्रहायण, ५—चातुर्मास्य, ६—निरूट पशुबन्ध, ७—सौत्रामणि। यह माता यज्ञ शुभन चरु पानी पुगोडाश, या पास्द्वारा सम्पन्न होत है अतः "हविष्यज्ञ" कहाते हैं। सोमयज्ञ के ७ मात भेद निम्नलिखित हैं—

१—अग्निहोम, २—मत्पानिहोम, ३—उकथ्य, कुल वष मिलाकर ४२ संस्कार करने उचित है।

४—वोहागा, ५—वाजपेय, ३—अतिरात्र, और ७—अ तोयाम। इन पातो मे सोम-होती सम्पादित यज्ञ का उपयोग विशेष रूप से होता है अतः यह "सोमयाम" नाम से पुकारे जाते हैं। यहाँ यह भी जान लेना चाहिये कि हम यही समझते हैं कि हवन केवल घृत या काममा से ही होता है पर ऐसा नहीं, केवल समिधाओ तथा केवल जल से भी हवन हो सकता है। जैसा कि—“तदनन्तर अतिरक्तो रदति सम्परिष्कृत प्रश्ननिरूपणायाम्” इद वेदाक्त सूत्र में न्याय जन में एव मनुभृति में ब्रह्मचारा को यदि चीन मिले तथा अरण्य म बाध करता हो तब नैतिक होम कैसे करे—इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करते हुए लिखा है। इन षोडह औतयज्ञ क विवरण अश्वनायन, लान्धनायन द्राह्ययण आदि औतसूत्रों में मिलता है। इसो प्रकर ५ महारज्ञ अर्थात्—वैश्वयज्ञ, भूतयज्ञ, रिठ्ययज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, जिनका विशेष विवरण पंच महायज्ञ विधि में श्री एशवो जी ने किया है—भा ज नने ग्य हैं। उक्त १४ औतयज्ञ ७ पाकयज्ञ, ५ महायज्ञ तथा १६ संस्कार इन सबको मिलाकर कुल ४२ कम मनुष्य को कने चाहिये। १६ संस्कार कान २ से हैं १ में मा वि द हे—कुष्ट ७ बलि— १—गमाधान, २—गुपवन, ३—आम तोष्यन् अर्थात् गमन्तो का कशा संस्कार, ४—जात कर्म, ३—नाम करण, ६—रिठ मण, ७—अन्न प्रशन, ८—चूडाकरण, ९—उपनयन, १०—वेदाध्ययन के समय महा नामनात्रन, ११—महाव्रत, १२—उप निषद् व्रत, १३—गोदान व्रत, १४—पमावर्तन, १५—बिबाह, १६—अन्वेष्टि। भोलह संस्कारों को मानते है। पर इटावा वाले पं० भीमसेन जी ने उक्त १० में ११ वे १२ व का जगह कर्णवेच, वेदारम्भ औ बावधप्रभाषान यह तीन माने हैं। तथा अन्वेष्टि की जगह औताधान को मानकर १६ सोलहसंस्कार की पूर्ति क है। इस प्रकार

गौतम मुनि निष्कमण और अन्वेष्टि हो न मान कर केवल ४० संस्कार ही मानते हैं। इन भक्तियों के द्वारा हमें अपम शरीर ब्राह्मण शरीर बनाना है जैसा कि "त्यथ प्रकृता" में—

स्वाध्यायेन त्रैहेमैत्रैर्विध्येनेत्यथा सुतैः।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते ततुः ॥

इस श्लोक की व्याख्या करते हुये ऋषि ने लिखा है कि—“यज्ञ भग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञानदि—यज्ञों के सेवन से इय शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधार रूप ब्राह्मण का शरीर किया जाता है। इतने साधनों के बिना ब्राह्मण शरीर नहीं बन सकता।” इसका भाव यह है कि यहाँ ऋषि ने हमें एक और दृष्टि दी है यह कि होम का अर्थ केवल हवन अर्थात् घी ताम्रों का अग्नि में प्रक्षेप ही नहीं किन्तु सत्य का महण और अमत्य का त्याग भी एक होम है। यज्ञ, यज्ञ नाम शिल्पविद्या का

भी है—क्योंकि बिना अग्नि के लोहे का उपयोग नहीं होता अतः अग्निष्टोम का अर्थ अग्नि का शिल्पविद्या में सदुपयोग है इतना ही नहीं किन्तु वर्तमान विज्ञानोन्नति भी अग्निष्टोम ही है। जब यह सब वस्तुएँ एकत्रित हो जायँगी—तब वह व्यक्ति सच्चा परमेश्वर का भक्त कहाने योग्य हो सकता अगली बार हम इन ४२ प्रकार के यज्ञों में जो विशेष प्रचलित व परिज्ञान नहीं है उनकी क्रम से एक एक की व्याख्या करेंगे। प्राशा है पाठक वृन्द यज्ञों की ओर और भा अधिक प्रवृत्त होंगे। हमने “उपदेशक सम्मेलन” लखनऊ पर ‘वैश्वानर याग’ रचना था। पर उसकी पद्धति प्रकाशित नहीं हो सकी, उस पर भी पुनः प्रकाश डालेंगे।



आदर्श वैदिक विवाह

१२ अक्टूबर को लखनऊ में भी केशराम जी नारङ्ग की आयुष्मती कन्या कुमारी स्मृणलता का विवाह पंजाब आ० प्र० सभा के सुप्रसिद्ध उपप्रधान स्वर्गीय रायसाहब अमृतराय जी के प्रपौत्र तथा रविबर्मा स्टीलवर्कर्स के मालिक अजुनदेव विद्यालंकार के पुत्र भी विनयकुमार बी० ए० के साथ वैदिकरीति से सम्पन्न हुआ। विवाह संस्कार आर्यभगत के सुप्रसिद्ध नेता श्री पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री ने कराया। आ० प्र० सभा के कार्यकर्त्ता प्रधान श्री मदनमोहन जी सेठ जज, पं० रमदत्त शुक्ल मन्त्री, पं० धर्मपाल विद्यालंकार स० मन्त्री, पं० भृगुदत्त जी तिवारी इस समारोह में सम्मिलित हुए। पं० पुराण जी शास्त्री की वैदिक गृहणा के आदर्श की सामाजिक व्याख्या अत्यन्त सुन्दर और प्रभाव जनक थी। कन्या पद् तथा वररत्न दोनों की आर से ५००, ५०० दान दिया गया जिसमें (५०) आ० प्र० सभा को प्राप्त हुआ। दोनों परिवार आर्य परिवार हैं, वर कथु चिरायू हों।

ऋषिक्रमण उतारिये

धर्मार्थ आर्य उद्योगशाला
(जिसकी आय धर्मार्थ व्यय होती है)
द्वारा प्रस्तुत

‘ऋषि छाप’

उत्तम हवन-सापथ्री ही संगार्यें
भावन— ल गनमात्र -५५ मन, १-१) सेर
पता— धर्मार्थ आर्य उद्योगशाला
६७२, धर्मपुरा, देहली।

ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्य की स्थिति

[लेखक—भो पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, अन्नमतगढ़ पैलेस बनारस,]

आज हम आर्य समाज के लिये एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्र का प्रकाशन कर रहे हैं। इस पत्र से ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्य की वास्तविक स्थिति का पूरा पूरा ज्ञान होता है। वैदिक यज्ञशाला में छपे ऋग्वेद भाष्य की ९ खण्डों (अर्थात्) सब भागों के मूल कृष्ट (टाईटल) पर सभी संस्करणों में बराबर (प्रत्येक भाग पर) निम्न प्रकार छवता चला आ रहा है।

“इस भाष्य की भाषा का पढ़ितों ने बनाई, और संस्कृत की भी उन्होंने शोभा है” ॥

इन शब्दों से भी स्थिति स्पष्ट नहीं होती तथा कई प्रकार की आशंकाएँ उठती हैं।

यह पत्र ऋषि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के शिष्य ब्रह्मचारी रामानन्द जी (जा पोछे) सन्यास आश्रम में आकर रामानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए) के हाथ का लिखा हुआ है। यह रामानन्द ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द के साथ लेखक के रूप में कई वर्षों तक रहे। मृत्यु के अन्तिम समय में भी यह श्री महाराज की उपचर्चा में थे। इन का लेख बहुत अच्छा था। यह अलीगढ़ जिले में अतरोली के पास के रहने वाले थे। ऋषि भक्त महाशय्य मामराज जी के द्वारा हमें अवली पत्र प्राप्त हुआ है। जो आर्य समाज खतोनी जिला मुजफ्फर नगर (पू० गी०) के समाप्त है। जिन्होंने अनेक वर्षों पार परश्रम और कष्ट उठा कर भारत के भिन्न भिन्न नगरों और स्थानों से ऋषि के पत्र और विज्ञापनादि सङ्गठित किये थे और जो लाहौर में रामनल कपूर ट्रस्ट के द्वारा प्रसिद्ध त्रिद्वन्द्व भी प्रेषित भगवतदत्त जी रिजर्व स्कूलर द्वारा सम्पादित ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन नामक पुस्तक में छपा हुआ है। यत पत्र

के कोटों (क्लाक) का इस समय प्रयोज्य होना कठिन है, अतः हम उस पत्र का ही छाप रहे हैं।

यह पत्र ऋषि दयानन्द के निचन के लगभग दो मास पीछे का लिखा हुआ है जो भाँ पड़ित में इन लाल विष्णु लाल परबड़ा मन्त्री परापरिणी सभा के नाम उनके पुछने पर लिखा गया था। पत्र निम्न प्रकार है:—

श्री युत माननीया ज्ञेया शुभ गुणान्कृत ब्रह्म कर्म समर्थ श्री मरगिष्ठतवर्ष्य मोहनलाल परबड़ा उभियेचितो रामानन्द ब्रह्मचारियो ज्ञेया प्रणतः समुल्लसन्तु राम इति।

भगवन् आप ने जो मुझे भी युत परमहंस परिव्राज का उचार्यवर्ष्य श्री १०८ श्री महयानन्द सरस्वती जी कृत ऋग्वेदादि भाष्य के निषर्षों की परीक्षा करके भी मती परापरिणी सभा में निवेदन करने के लिये (एक साराय) बनाने को प्रेरणा की थी, सो आप की आज्ञा-नुसार उसको बना कर आप की सेवा में समर्पित करता हूँ, अवलोकन कीजियेगा।

इत्यलं प्रशंसते, य बुद्धिमद्वय्ये

मिति पौषकृष्ण ३ रवि सन्मत १९४०

ऋग्वेद भाष्य

श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्ष्य श्री १०८ श्री महयानन्द सरस्वती जी कृत ऋग्वेद भाष्य की नववस्था निम्नलिखित परिमाणों जानना चाहिये

अर्थात्

ऋग्वेद का भाष्य १ मण्डल के आरम्भ से ७ मंडल के ६२ वें सूक्त के २ मंत्र तक रचा गया।

१ मंडल के ६६ सूक्त के ५ मंत्र तक मुद्रित हो चुका अर्थात् ५० + ५१ अंक तक।

१ मंडल के ८२ सूक्त के ३ मंत्र ६१ सूक्त ३ मंत्र तक की श्रुद्ध प्रति छानने में शेष ग्रन्थी समर्थदान जी के पास वैदिक ग्रन्थालय प्रभाग में है। प्रथम मंडल के ६१ सूक्त के ४ मंत्र से १ मंडल के ११४ वें सूक्त के ५ वें मंत्र तक की श्रुद्ध प्रति लिखी हुई छानने योग्य है।

१ मंडल के ११४ सूक्त के ६ मंत्र से १ प्रथम मंडल के १२४ सूक्त के १२ मंत्र तक की भाषा बनी हुई है।

१ मंडलके मंत्र से १ मंडल के ... ऋक्त की समाप्ति पर्यन्त की भाषा पंडित ज्वालादत्त इस भाषा बनाने के लिये वैदिक ग्रन्थालय प्रभाग में है।

१ मंडल के १४४ वें सूक्त से ७ मंडल के ६२ वें सूक्त के २ मंत्र तक का भाष्य अश्रुद्ध संस्कृत में बना हुआ है।

१ मंडल के ६१ वें सूक्त ५ वें मंत्र से १ मंडल के ११४ वें सूक्त के ५ वें मंत्र के श्रुद्धेद भाष्य के रद्दी पत्रे हैं। अर्थात् श्रुद्ध प्रति हो गई है।

यजुर्वेद भाष्य

यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण हो गया अर्थात् ४० वे अध्याय की समाप्ति पर्यन्त रचा। १५ वे अध्याय के ११ वे मंत्र तक का भाष्य मुद्रित हो चुका अर्थात् ५० और ५१ अंक तक।

१५ वें अध्याय के १२ वें मंत्र से लेकर २१ वें मन्त्र तक की श्रुद्ध प्रति छानने में शेष ग्रन्थी समर्थदान जी के पास वैदिक ग्रन्थालय प्रभाग में है। १५ वें अध्याय के २२ वे मन्त्र से २३ वे अध्याय के ४८ मन्त्र तक छानने योग्य श्रुद्ध प्रति लिखी हुई है।

२३ वें अध्याय के ५० वें मंत्र की भाषा बनी हुई श्रुद्ध प्रति में लिखने योग्य है।

१३ वें अध्याय के ५१ वें मंत्र से ६५ मंत्र तक अर्थात् अध्याय की समाप्ति पर्यन्त की भाषा नहीं बनी।

२४ वे अध्याय..... से अध्याय ... तक भाष्य भाषा बनाने के लिये पंडित ज्वालादत्त जी के पास वैदिक ग्रन्थालय प्रभाग में है।

२७ वें अध्याय के आरम्भ से ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त का अश्रुद्ध संस्कृत भाष्य बना हुआ है।

अर्थात् बिना शोधी संस्कृत है।

१३ वें अध्याय के २१ वें मन्त्र से २१ वें अध्याय के ४८ वें मन्त्र तक के रद्दी पत्रे हैं अर्थात् श्रुद्ध प्रति हो गई।

इस पत्र से स्पष्ट विदित हो जाता है कि:—

(१) श्रुद्धेद भाष्यके प्रथम मण्डल के ११४ वें सूक्त से लेकर सातवें मण्डलके ६२ वें सूक्तके २ मन्त्र तक (जहाँ तक कि श्रुद्धेद भाष्य महर्षि द्वारा संस्कृत में बना) की भाषा श्रुद्ध को मृत्यु के पीछे बनाई गई। दूसरे शब्दों में ४७ सूक्त प्रथम मण्डल के तथा दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा ये पाँच मण्डल पूरे और सातवें मण्डल के ६७ सूक्त २ मन्त्र तक अर्थात् लगभग ६ मण्डल की भाषा श्रुद्धि को मृत्यु के पीछे परिष्कृत की बनाई।

(२) इन उपर्युक्त ६ मण्डल की संस्कृत भी उस समय तक श्रुद्ध नहीं हो पाई थी, इसे भी परिष्कृत ज्वाला दत्तजी आदि परिष्कृतों ने ही श्रुद्ध किया।

(३) यजुर्वेद भाष्य में भी २३ वें अध्याय के १५ मन्त्र तथा अध्याय २४ से ४० तक पूरे १७ अध्याय की भाषा भी श्रुद्धि को मृत्यु के परचात् परिष्कृतों द्वारा ही बनाई गई।

(४) इन उपर्युक्त १७ अध्याय तथा १५ मन्त्रों की संस्कृत को भी परिष्कृतों ने शोधा है। अर्थात् बिना शोधी संस्कृत थी।

(५) सम्पूर्ण यजुर्वेद तथा श्रुद्धेद के सातवें मण्डल के ६७ वें सूक्त के २ मन्त्र तक का भाष्य बन चुका था।

(६) भाषा भी परिष्कृत ज्वालादत्त जी ने बनाई, संस्कृत के शोधने में उनका मुख्य हाथ रहा।

उपर्युक्त सारे लेख से स्पष्ट है कि वेद-भाष्य की वह स्थिति नहीं हो सकती, जो स्वर्ण प्रकाश श्रुद्धेदादि भाष्य भूमिकादि की है। क्योंकि श्रुद्धि दयानन्द के जीवन काल में ही स्वर्ण प्रकाश श्रुद्धेदादि भाष्य भूमिका आदि लगभग सभी ग्रन्थ छप चुके थे, यहाँ तक कि कई एक के तो द्वितीय संज्ञित संस्करणकाश्चित भी हो चुके थे, पर अर्थात् श्रुद्धि के दुर्भाग्य से वेद-भाष्य की वह स्थिति नहीं हो पाई। इसकी क्या स्थिति है। यह स्वामी

(शेष पृष्ठ २६ पर)

✽ आर्य राष्ट्र ? ✽

[ले० भी डा० स्वर्णदेव शर्मा सि० शास्त्री, एम० ए० एल० टी० डी० लिट, अजमेर]

वर्तमान काल में यह प्रश्न विशेष रूप से महत्व पूर्ण हो गया है कि आर्यसमाज का देश की प्रवृत्ति राजनीति से क्या सम्बन्ध होना चाहिये। भारत के स्वाधीनता प्राप्त करने से पूर्व इस प्रश्न का उत्तर बहुत सरल था कि आर्यसमाज राजनीति में भाग ले परन्तु अब स्थिति कुछ और हो गई है। देश स्वाधीनता को प्राप्त कर चुका है, परंतु अब नी हम क्या बढ़ कढ़ सकते हैं कि आर्यसमाज का राजनीति में भाग लेना चाहिये ? अब देश के हर एक आदमी को कई अधिकार मिल गये हैं, इसी प्रकार आर्यसमाजों भी उन अधिकारों को अपने पास रखकर यदि सोचें तो वे भी कहेंगे कि आर्यसमाज राजनीति में भाग लेने का उचित और हितकर है।

आज आर्यसमाज के विद्वान, उपदेशक, लेखक, वक्ता और अधिकार नवयुवक कार्यकर्ता इस पक्ष में हैं कि आर्यसमाज को पूरे देश के साथ राजनीति में भाग लेना चाहिये। क्योंकि व समझते हैं कि 'राजनीति ही आर्य-राष्ट्र के लिये आवश्यक है' है बिना "आर्य राष्ट्र" बने आर्यसमाज अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता।

आर्यसमाज एक "धार्मिक सस्था" है, यदि इस विचार में धर्म का अर्थ "मजहब" समझा जाय, तो यह किसी भी विद्वान विचारशाला व्यक्ति द्वारा स्वीकृत नहीं हो सकता। "स्मार्त तथा दार्शनिक" साहित्य में यह शब्द विस्तृत अर्थ रखता है। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के इतिहास में "राज्य" शब्द के धार्मिक रूप में सम्पूर्ण राजनीति तथा के आचरण रूप का समावेश हो जाता है। जिस तरह से अलग २ धर्मों को अलग २ राजनीतिक पुस्तकें हैं, वैसे क्रयूनेल्डा की "यूबी" और नाजी लोगों की "थेरा युद्ध" जिसको हिटलर ने भी

अपना राजनैतिक ग्रन्थ माना था। इसी प्रकार "सत्यार्थ प्रकाश" आर्यसमाजिक नेतृत्व की पुस्तक है।

आर्यसमाज और वैदिक धर्म एक वस्तु नहीं, इनमें पाषाण और पोष्य का सम्बन्ध है। आर्यसमाज कोई मजहब या मत नहीं, यह तो स्पष्ट रूप से श्रद्धा दयानन्दी ने सत्यार्थ प्रकाश में इसको "आर्य राष्ट्र" कहा है। अग्नेवी अनुवाद करते हुए इसे (Aryan State) के अर्थों में हम समझ सकते हैं। इस आर्य-राष्ट्र के "आचार सूत्र विज्ञान" के रूप में आर्यसमाज के इस नियम हैं। हमारे राष्ट्र के तीन प्रबन्धक विभाग हैं, जो स्वामोक्षी ने छुट्टे समुल्लास में दर्शाये हैं कि आर्य-राष्ट्र में तीन प्रकार की समाज हों। (१) विद्यार्थ-सभा, (२) धर्मार्थ सभा, (३) राजार्थ-सभा। इस तरहसे विद्यार्थ सभा, धर्मार्थ सभा और राजार्थ सभा, इन तीन तत्वों के समुच्चय से नियंत्रित राष्ट्र आर्यसमाज और 'आर्य राष्ट्र' बन सकता है। वर्तमान समय का आर्यसमाज, आर्य राष्ट्र के लिये बीज रूप में है अथवा उस राष्ट्र के लिये मूल स्थान है।

श्रद्धा ने आर्यसमाज को सत्यार्थ प्रकाश में मजहबी रूप नहीं दिया क्योंकि मजहबी सस्था कभी भी विचारायु नहीं रह सकती और न राजनीति में भाग ले सकती है। यदि लेती है तो वह कुछ समय तक टिके रहेगी, उदाहरणार्थ पाकिस्तान और जैन, बौद्ध साम्राज्य हमारे स्थानिक आर्यसमाज न गुरुकुलों, स्कूलों, पाठशालाओं और कानिती आदि शब्दा सस्थाओं को चलाते हैं, तो ये आर्य राष्ट्र के विद्यार्थ सभा के कार्यों का करते।

आर्यसमाज धर्म के रूप में समन्वयपत्रक रूप है। यह धर्म के अन्दर शास्त्रार्थ ही करता है, शास्त्रार्थ नहीं। यह कोई साम्प्रदायिक सस्था नहीं, जिससे दूसरे धर्म बाधे

धर्म को निगाह म रलकर इससे जलें। हमारे वेद राजनीति के मन्त्रों से भरे पड़े हैं। स्थान २ पर राष्ट्रीय चिन्तन क्रिये गये हैं। राम और कृष्ण आर्य राजनीति के प्रतीक हैं। स्मृति ग्रन्थों के अध्यायों पर अध्याय राजनीति के लिये अर्पित हैं। रामनैतिक ग्रन्थों में शुक्ल नीति, विदुर नीति, मह भारत शान्ति पर्व और कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि हैं जिनकी साद्वी सत्यार्थ प्रकाश का छुटा समुच्चय दे रहा है। धर्म राजनीति और साद्विप राजनीति सब मिले पड़े हैं। इतने सब पर भी 'विश्वशास्त्रिक मजहबों' को ही जानने वाले भारतीय 'आचरणशास्त्रिक आर्य धर्म' की अत्मा को न पहचान कर हमारे कुछ आर्यसमाजी भाई कहते हैं कि आर्यसमाज राजनीति म भाग न ले, अथवाय नहीं तो क्या है ?

आर्यसमाज आर्य-राष्ट्र की स्थापना करने वाला है। जिसके द्वारा प्रथम भारत आर्य राष्ट्र रूप म विकसित हो।

फिर वही चक्रवर्ती है। सार म धर्मसाम्राज्य को उत्पन्न करे जिसका अधिपति मह न तत्क "नियम" हा। अथर्व वेद के पृथगे वक्त के प्रथम मन्त्र "उत्पन्न बृहदतस्य दीवा तपो ब्रह्म ब्रह्म पृथिवी धारयन्ति" का निर्देश भी इधर ही है।

इसलिये मेरा तो विचार है कि सबको आर्यसमाज के वास्तविक स्वरूप का ही प्रचार करना चाहिये। यह कोई मजहब नहीं, परन्तु आर्य राष्ट्र के रूप म "आन्दोलन" है। हम ब्रह्म और चक्र को भा मिलकर भारत म आर्य राष्ट्र को उत्पन्न के लिये "पुण्य भूमि" पैदा करना चाहिये। देश के आर्यसमाजियों का मिलकर तन, मन धन से आर्य मस्कृति तथा आर्य राष्ट्र के उद्धार के लिये आन्दोलन तथा प्रयत्न करना च है।



(पृष्ठ २२ का शेष)

रामानन्द जी के उपर्युक्त पत्र से स्पष्ट विदित हो जाता है।

सारभूत यह है कि ऋग्वेद भाष्य के ६ भागों में से ७ भागों को भाषा भी ऋषि की मृत्यु के पश्चात् ही पण्डितों ने बन है और इन ७ भागों को संस्कृत को भी पीछे ज्वालादत्तना आदि पण्डितों ने ही ऋषि के जीवन काल के पीछे शोध है।

इस प्रकार यजुर्वेद भाष्य के ५ भागों में से आधा २। भाग की भाषा भी ऋषि के जीवन काल से पीछे पण्डितों द्वारा बनी, और संस्कृत को भी ज्वालादत्त जी आदि पण्डितों ने ही शोध है।

वेदभाष्य के पहिले भागों की भाषा भी पण्डितों ने बनाई, और संस्कृत को भी पण्डित ने शोध है। जेवा कि ऋग्वेद भाष्य के सब भागों पर सदा से छुपता चला आ रहा है।

यह भी ध्यान रहे कि इन्हीं पण्डित ज्वालादत्त जी परोपकारिणी समा को स्वामी जी के ग्रन्थों में

गड़बड़ डालने के कारण ही ५०) का दखल दिशा गया था।

विश्व पाठक! ऋषि दयानन्द का मध्य पदने समय उन उपर्युक्त सरो परिस्थिति जानकर ही पढ़े पढाये ने, तभी उन्हें यह थंज्ञान हो सकता है। जो इस बात पर ध्यान नहीं देंगे, उन्हें भाष्य में कहीं २ सन्देह वा कठिनाइयों का सामना करना होगा, और निश्चय ही यथार्थ बोध न होगा।

हमारा यह लेख ऋषि भाष्य के यथार्थ स्थिति का आर्य जनता के लिये अज्ञात कराने में लक्ष्य है। यह हमें पूर्ण विश्वास है। आशा है विश्व महानुभाव इससे अवश्य लाभ उठावेंगे।



मान । हित प्राण दिये तुम ने !

प्रियमाण अति का प्राण किया,
जन जनता का कल्याण किया ।
नबराष्ट्र देश निर्माण किया ॥

युग युग के गीत सुनाये तुम ने ।
मानव हित प्राण दिये तुम ने ॥

कोटावकोटि की शक्ति लिये,
अगणित हृदयों की भक्ति लिये ।
असहायों की अतुरक्ति लिये ॥

हस हस विष घूट पिये तुम ने ।
मानव हित प्राण दिये तुम ने ॥

तुम शक्ति क्रान्ति अघतार हुये,
अरिदल को प्रवन पहार हुये ।
नय, विनय, स्नेह साकार हुये ॥

जग को बरदान दिये तुम ने ।
मानव हेतु प्राण दिये तुम ने ॥

स्वातन्त्र सूर्य अब उदय हुआ,
भारत का पुन अभ्युदय हुआ ।
शुभ सत्य धर्म का विजय हुआ ॥

पग पग पर पुण्य लिये तुम ने ।
मानव हित प्राण दिये तुम ने ॥



—हरिप्रकाश शर्मा

‘राष्ट्र-पितामह दयानन्द’

[लेखक - प्रो० किशोरीनाथ गुप्त एम-ए. साहित्य पाठ्यपत्र, विद्वान्तराजी, काव्यतीर्थ]

अब से पचास वर्ष पूर्व की बात है। महारानी विक्टोरिया का राज था। गद्दर को समाप्त हुए लगभग बालीस वर्ष व्यतीत हो चुके थे। उस समय जो गर्दन ऊँची उठी थी, सबकी सब नीची दबोची जा चुकी थी। ब्रिटिश-शासन का सूर्य्य भारत्य आकाश में अपनी मस्ताना चान ने आरोहण कर रहा था। ईश्वर गोरा-शाही का आतङ्क ज़ाया हुआ था। किसकी मजाल जो उफू करता? हिन्दू और मुसलमान अपने-जो शासन के गुण-गान में बाजो लगाते थे। हमारे मोले सनातनी पण्डित तो विक्टोरिया को राषण की पनोह सुलोचना का साहाय्य अक्षतार बताते थे, और कहते थे कि भगवान राम ने उसके पति व्रत धम से प्रसन्न होकर उसे भारत में शासन करने का बरदान दिया था। जब स्वयं भगवान ही उसके शासन की अटल कीली गाड़ चुके, तब फिर कौन नास्तिक होगा जो उनके देव-कृत कार्य को अकून करने की स्वप्न में भी साच ?

मुसलमानों की वास्तविक दशा बड़ी दयनीय थी। वे अत्यन्त विलासी हो चुके थे। उनमें जो थोड़े बहुत नवाबों रङ्ग डङ्ग के थे, वे अपने हाथ से जूते तक पहने में अपनी शान में बट्टा लगना समझते थे। बैठक में तर्किया लगे कुलीन पर बैठे-बैठे यदि धूकने की आवश्यकता होती, तो बाहर उठकर कौन जाय ? वही पीक-दान चाहिये, और उसे उठाने के लिये दो-एक बरक-न्दाज ! तराब मुसलमानों का वर्णन करना इस लेख का विषय नहीं। बस इतना ही कहा जा सकता है कि उनमें अनगिनत अयगुण घर कर गये थे। अज्ञान का तो उनके अन्दर बार अन्ध-कार ज़ाया हुआ था। ज्वारी, शराबी, कबारी,

वेश्या गामो, तीतर-बाज़, कबूतर-बाज़, और न जान क्या क्या बाज़ वे बन चुके थे। फिर भी अकड़ उनमें नषाय आसिफू हौला के चचा की सी थी। हिन्दुओं को वे अपना शिकार समझने थे। और हिन्दू भी शताब्दियों की दासना के मारे इतने मोह बन चुके थे कि उनके सामने कनपुटी लुप्ताने तक का साहस न कर सकते थे।

ऐसी दयनीय दशा में अंग्रेज़ी ज़ौह-शानन के अन्दर यह आवाज़ बुलन्द कली कि “अच्छे-से अच्छे विदेशी शासन ने बुरे से बुरा देश शासन कही अच्छा है।” किसी नुसिद, किसी शेर-नर, का ही काम हो सकता था। उस निर्भय, निरौद, निशङ्क, अदम्य आदर्श-महा-पुरुष ने अपनी दिव्य दृष्टि देश में चहुँओर फलाई। उसे भारत मां के शरीर में दासी होने के अतिरिक्त एक नही असंख्य फोड़े दृष्टि गत हुए। किस-किस की मरहम पट्टी करता ? न जाने कितने विप्ले मवाद शरीर में पक्ष हो चुके थे। मूल कारणों की खिंसा किये बिना इतने भयङ्कर सञ्जात का शमन प्रसम्भव था। वैदिक धर्म, वैदिक आगर, वैदिक संस्कृति का ज़ुल्लाय देना अनि. वार्य्य प्रतीत हुआ। ज़ुल्लाय को द्वाप्य भी बड़ो कडवी थीं। पुरान, कुरानो, किरानी आदि सभी बन्धुओं को इकट्ठा करने, और निष्पक्षतापूर्व सद्भावनामा से प्ररित हो सत्य-धर्म का निर्बंध कर एक मत हो जाने का भागीरथ प्रयत्न किया। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक अनयक ध्रमण किया, सहस्रो व्याख्यान दिये, न जाने कितने शास्वार्थ किये; पुस्तकें लिखी, वेद-भाष्य में जुटे, किन्तु कृतपनो को कृण्वता-प्रकाशन से क्या मतलब ? पत्थर बर्षाये; काले नाग हार।

प्राणान्त करना सोचा गया पान में विष खिला कर प्राणान्त करने का प्रयत्न किया गया। तबवार के घाट उतारने के पड़यन्त्र रच गये और अन्त में वही दशा हुई जो राष्ट्र पिता महात्मा गांधी की।

गांधी जी का कोई आन्दोलन—स्वदेशी, अन्न तोहदार, एकता सम्पादन, अदक द्रव्य निवारण, कुरीति निवारण आदि में से एक भी ऐसामही जिसके लिये महात्मा ने प्राणान्त का प्रयत्न न किया हो। और महर्षि के स्वर्गारोहण के पश्चात् भी जो दुर्गम मार्ग आर्यसमाज ने साफ किया उससे देश का कौन अतपन इन्कार करेगा? यदि सच्चे पृथ्वी तो यह कहने में भासकोच नहीं कर सकता, कि औसत कनिहाज से किसी भाग्य समाज या संस्थान के स्थापक बनने में इतना त्याग इतना धनदान और इतनी तरस्या नहीं की, जितनी आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने की। महात्मा गांधी और उनको कांग्रेस को मार्ग में इतना भौंडाड भ्रूंडाड, आर इतनी दुर्गम घाटिया पार नडा करना पड़ा जितनी महात्मा और उनका अनुयायी को आर्यसमाज ने सर्वदा निराहमर में देखा था। उनका स्वराज्य में उच्च पद पाने का फलालानसा नहीं की, और न आज ही उनके नियमवहला। धित है। ब्रह्मविशुद्धमार्ग ने गणतन्त्रात्मक पावन कयंत्र बाहर से ही शासका के नाथकन्ध से कन्ध मिलाकर कर्तव्य साधन करना चाहता है। दाचार इते गिने आर्य यन्त्रु घुगाल्तर न्वाय से शम्भन में पहुँच गये हैं उन्होंने उच्च चरित्र से आर्यत्व को छाप लगाई है, इसे निष्पन्न आनाचक चाहे मुख से न कहे इदंश से अवश्य अनुभव करते हैं

माता कि येन केन प्रकारेण 'स्वराज' प्राप्त हो गया है किन्तु "सुराज" अभी कौसा दूर है। ऐसा जान पड़ता है कि महात्माजी के 'रामराज' का सुख स्वप्न कोटा स्वप्न मात्र ही रह गया है। उसे सखा कर दिखाना अभी शेष है। नेहरू गवर्नमेंट जो राष्ट्र पिता पदचन्हो पर चलने का दावा करती है—नष्टाचार हरी महामारी को जो देश भर में व्याप्त हो गये है—गणमूल शान्त नहीं कर सकती। स्वयं राष्ट्र पिता की भोली में भी इसका शमन की कोई अद्भूत औषधि नहीं। इसके लिये पूरा पितामह की शरण लेनी होगी। उसके पास रामबाण अच्युत महोपधि विद्यमान है। वह है उसका स्वभाव प्रकाश और संस्कार-विशिष्ट। भ्रष्टाचार मिटाने के संस्कार गर्भाधान से प्रारम्भ होंगे। जिन योग ने मक्कारी, धोखबाजी असत्य विचार असत्य भाषण और असत्य क्रिया के विपरीत रस्स को माता को घुट्टी के गायारथा है वे जहाँ भी होंगे, और तब भी अवसर पायेंगे, अपना 'असली' रङ्ग लाय विगन रहेंगे। संस्कारात् प्रला जान" जब तक मता पता और आचार्य, और साथ ही उच्च गणक शासक स्वराज्यो, तपस्वी कर्मठ और निगमान्त न बनेंगे, सुधार के सारे बाहरी प्रयत्न ऊपर व वात्रक सदृश सिद्ध होंगे। महात्मा के तुलना आज के तुल्य नही वे सदृश लाखा और करांडा क्या क अनुभूत और आजभूदा तुल्य है। व साम्प्रदायिक नहीं, सार्वभौम और सावकालीन है। पत्र पात छोड़ कर उनका सेवन करने से समस्त राष्ट्र रोगों के शांतता शमन होगा, इति ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।

— ० —

— एकत' का स्वरूप —

जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न माने तब तक उच्चत हाना बहुत कठिन है परंतु केवल खाना पीना ही ए. ए. हानि से सुधर नहीं हो सकता। ॥ त्वाथ प्रकाश १० समु० ॥

दो विचार धारयें

[लेखक— प्रो० सुशीरामजी शर्मा एम. ए.]

इस समय देश में दो विचार धारयें चल रही हैं। दोनों का बलाघ्न भी अन्यन्त सतुलित अवस्था में है। इनमें से एक विचार धारा हमें परम्परा से प्राप्त हुई है जिसके साथ कोटि-कोटि हिन्दुओं के बलिदान सम्बद्ध हैं और दूसरी विचार धारा परकीयों के भारत प्रवेश के साथ उत्पन्न हुई है। जिसमें अनेक सन्तों की साधना सन्निह्न है। मैं आर्य हूँ, साथ ही साहित्यिक, अतः मेरा मम व इन दोनों विचार धाराओं के साथ जुड़ा हुआ है। एक ओर मेरा हृदय अपने परम्परा से प्राप्त स्मृतियों को सामने लाते ही उमड़ पड़ता है तो दूसरी ओर सन्तों के अपूर्व कार्य का अनुभव करके भी वह अज्ञा से उनके सामने झुक जाता है मुझे दोनों ओर अच्छाइयों दिखाई देती हैं।

प्रथम विचार धारा का सम्बन्ध हमारी महती परम्परा से है। जिस दिन से पुनीत उद्गीथ गान इस बसुन्धरा के निवासियों के कानों में पड़ा है, उस दिन से इस पर-परा का प्रवर्तन हुआ है। और यह आज तक अनेक हास विकास, जय-पराजय, उत्कर्ष-अपकर्ष, आदि के सघर्षों को पार करती हुई चली आई है। प्राचीनता में सम्भवतः कोई भी अन्य जाति इसकी समता नहीं कर सकती। उत्थान और पतन के मोक्षण दृश्यों में भा यह अनुपम है और अपनी जीवनी शक्ति में तो यह एकदम अद्वितीय है। इस विचार धारा के केन्द्र बिन्दु में तो नहीं, पर उसकी शाखाओं में समय के अनुकूल अनेक परिवर्तन हुए हैं और उन परिवर्तनों से हम ने लाभ भी उठाया है। वेद और उसका आधार पर जिस मानवता विद्यमिनी संस्कृति का विकास हुआ

वही इसके केन्द्र बिन्दु का मूल है। स्मृति, पुराण आदि इसकी शाखायें हैं। इस मूल और इन शाखाओं की रक्षा में आर्य जाति ने अद्वितीय एवं अद्भुत प्रयत्न किया है और अपने प्राणों की भी बाजी लगा दी है। इस मूल की मोहिनी ने ब्रह्मा से लेकर दयानन्द तक एक अनुपम शृंखला में बद्ध अध्यात्म प्रदान महा प्राण मनीषियों को प्रभावित किया है जिनके मानस का बिन्दु हिन्दु और शरीर का कण कण इन परम्परा का पोषक रहा रहा है और बचती चाणी द्वारा उसका व्याख्यान करता रहा है। 'सन्तन शीत मनीषी ही नहीं, अनेक उद्भट क्षत्रिय शूरवीर अपने रक्त द्वारा, अनेक वैश्य अपना धन शक्ति द्वारा और अनेक शिल्पो, कर्मकार तथा श्रम जीवी अपनी बिचिध कलाओं' एवं धर्म साध्य कार्य कलापो द्वारा इसका सिंचन, परिष्करण एवं रक्षण करते आये हैं। जब जब विदेशी आक्रान्ताओं ने हमारी इस परम्परा पर आघात किया है, तब तब समूची आर्य जाति ने बिना किसी भेदभाव के, अपने सखल हस्तों में शस्त्र प्रदण करके उनका सामना किया है। विदेशियों ने यहाँ आकर हमारे इस मौल्य की जानीय एकता को काफी धक्का पहुँचाया है। इन विदेशियों में अग्नेयों की विपैली कूटनीति अथिक् कारणर हुई। आज हम क्या धीन हैं, अग्रज की भेदभरी, विपाक छत्र छाया हमारे शिर से दूर हो चुकी है, क्या इस प्रभु प्रदत्त पावन वेना में हम जातीय एकता के महा मंत्र का जाप करेगे? क्या हम अपनी उस महती परम्परा का सरक्षण करेगे? क्या हम संस्कृति के निमन सौरभ सम्पन्न कमल को अपने अपने मानस में विकसित एवं प्रफुल्लित करेंगे?

हमारी इस पुनीत परम्परा ने जिन मानवोपयोगी विधियों, सस्कारों, पर्वों, प्रथाओं और उत्सवों को आयोजना विकसित की वे अपने प्रभाव में इतनी व्यापक और आकर्षक थीं कि विदेशी आक्रान्ता भी उन से प्रभावित हुए बिना न रह सके। कुछ तो हमारे अन्दर ही भग्न हो गये जो न हुए वे हमारे होकर रहने लगे। कुछ तो हमारे ही हाड़, मांस थे, हमारे ही रक्त बिन्दु थे— विरोध कर बातों में रहा, पर व्यवहार में सब एक थे, और अगर एक तीसरी शक्ति न भा गई होती, तो हम सब एक होकर ही रहते— इसी तीसरी शक्ति ने हमें पृथक पृथक किया, उर्दू की अरबी प्रवृत्ति और पृथक सांस्कृतिक दृष्टिकोण उत्पन्न कर के इन्हें मुसलमानों को एक पृथक जाति घोषित किया और पाकिस्तान बनाकर न जाने कब तक के लिये हमारे ही अंग को हमसे दूर कर दिया। हमारी भावी जन परम्परा पर यह अत्यन्त गहरो घाटा था।

मानों में आने वाली इन प्रबल बाधाओं को सहते हुए, कुचलते हुए, हम अभी तक अपनी संस्कृति भी इस पावन परम्परा को अक्षुण्ण रखे हुए हैं। हम जब एक संस्कृति और एक भाषा का नारा लगाते हैं तो हमारे दृश्य में छिपी जातीय एकता की भावना ही प्रस्फुटित हो उठती है। यह देश एक है, इसकी संस्कृति एक है और उस संस्कृति के मानने वाले, उसमें पालित पोषित हुए, हम सब भी एक हैं। जो हमें देा में बांटना चाहना है, उसकी प्रवृत्ति के टुकड़े हमें कटने ही पड़ेंगे, जो हमारी संस्कृत बाह्य भाषा को स्वीकार करने में आनाकानी करता है, वह हम सब का दुश्मन है, देश और जाति का दुश्मन है, उसके साथ हम एकता का अनुभव कैसे कर सकते हैं? वह हमारी एकता की लता पर कुठाराघात कर रहा है।

स्वाधीनता के लिये हमारा युद्ध लगभग एक सहस्राब्द से चल रहा है। इस दीर्घ काल में हमने एक मिनट के लिये भी परकीयों की अधी-

नता स्वीकार नहीं की। हम बराबर उनसे लोहा लेते रहे। परम दुर्घर्ष महान और महान वैभव सम्पन्न मुगल हमारी स्वातन्त्र्य भावना के आखेट बने। हमारी ही बलशाली भुजाओं ने उन्हें नतमस्तक ही नहीं विश्वस्त भी किया और किया आर्य आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिये, गो ब्राह्मण की प्रतिपालना के लिये, आर्य संस्कृति की रक्षा के लिये। हमें अपने इस अतीत पर अभिमान है। हम कालिकारियों की पंक्ति में खड़े होकर तथा विश्व की बन्दनीय विभूति महात्मा गाँधी के सेनापतित्व में कांग्रेस के सैनिक बनकर जो अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ते रहे, वह भी इसी महान लक्ष्य को लक्ष्मण रखकर। कोई एक व्यक्ति, फिर वह चाहे इस समय किसी भी पद पर समासीन क्यों न हो, यह धमएड नहीं कर सकता कि वही अकेला इस युद्ध का सर्वोत्तम सहायक है। न जाने कतनी श्वात पव अज्ञात आधुनिकता के इस समर-भुज में पड़ी है, तब आज की यह सोभाग्य वेला देखने को मिली है।

यदि हम अतीत के साथ इस बलिदान श्रृंखला को जोड़ते हैं, जैसा प्रत्येक इतिहासकार करेगा, तो हमें इस प्रथम विचार धारा को मान्यता देनी ही पड़ेगी फिर चाहे कोई भले ही इससे मुँह सिकोड़े या बुरा माने। एक एक हिन्दू के हृदय में, स्वार्थी तथा पद-भ्रमन्त मानव पशुओं को छोड़कर, यह विचार धारा घर किये हुये है।

दूसरी विचार धारा, जैसा पहले ही लिखा जा चुका है, सन्तों की लोक प्रिय सौधना से सम्बन्ध रखती है। मुहम्मद गौरी से पहले जितने विदेशी आक्रान्ता इस सेना की बिड़िया को लूटने आये, उनकी कृतियों का प्रभाव लूण स्थायी रहा। पर गौरी के पश्चात् विदेशियों ने यहाँ बस कर राज्य भी करना चाहा और किया भी। स्वाधीनता प्रिय आर्य जात के लिये उनका विरोध करना स्वाभाविक था। अस्व समर्पण करना तो हमने जाना ही नहीं ' युद्ध हम करते रहे; पर परकीयों के

हाथ में धर्म परिवर्तन का एक विशेष अस्त्र आ गया और हमारा एक दूषित अश्रु उसका आखेट बन गया। हमने इसकी भी चिन्ता न की। युद्ध की यदि एक लकड़ी शत्रु की कुल्हाड़ी का बंट बनती है तो बने।

ये युद्ध चरु ही रहे थे कि कुछ सन्त लोकां रोवन, जनहित साधन, की भावना लेकर उठ खड़े हुये। इन्होंने परकीय मनोवृत्ति वालों के भी झिडका और रुढ़ि प्रेमो स्वधियों को भी। कबीर और नानक इन सन्तों के अग्रगन्ता बने और इनके उपदेशों के कारण साधारण जन पारस्परिक प्रेम का पाठ पढ़ने लगे। कबीर की शिष्य परम्परा में अन्य कोई भी धर्मात् ऐसा कर्मठ नानकता जो लोक मानस को प्रभावित करता, पर गुरु नानक के शिष्यों में बलिदानों एवं प्रमविष्णु, अनेक महापुरुष उपरुप हुए जिन्होंने पञ्जाब के हिन्दुओं में जीवन की ज्योति जागृत रखी। कबीर और नानक के पश्चात् मुसलमानों में कुछ सूफी फकीर जतता के व्यावहारिक पक्ष को लेकर दाहे चौपाहियों द्वारा हिन्दू मुसलिम एकता का प्रचार करने लगे। इन सब सन्तों के प्रभाव से सामान्य जनता राम एवं रहोम, कृष्ण एवं करोम, ईश्वर और खुदा में एकता का अनुभव करने लगी। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होने लगे। ऊपर के वर्ग में युद्ध बराबर चलता रहा; पर धमजोषी, कृषक और व्यापारी वर्ग आपस में हिल मिलकर रहते थे।

जो व्यक्ति हिन्दू से मुसलमान बने थे, वे अपने रीति रिवाज, चाल ढाल, रहन सहन सभी बातों में मुसलमान होते हुये भी हिन्दुओं जैसे ही थे। हालाँकि और दिवाली मनाते थे; निकाह के साथ पंडितों से विवाह वे पढ़ाते थे; वेदी रखते थे और नाम भी हिन्दुओं के जैसे ही। भाषा भी उनकी वही होती थी जिसे उनके प्रदेश वाले हिन्दु बोलते थे। जो कट्टर मुसलमान थे, वे भी हिन्दुओं

के रीति रिवाजों से प्रभावित हो चुके थे। हिन्दू भी मुसलमानों का अलिफ़ लैला पढ़ने लगे थे। काश्मीरी ब्राह्मण और कायस्थ तो फारसी तथा अरबी में मुसलमानों के भी कान काटने वाले बन गये थे। यह परस्पर का अन्योन्य आदान प्रदान दोनों के लिये हितकर सिद्ध हुआ। रणजीतसिंह की सेना में अनेक मुसलमान सरदार थे जो बराबर प्रतिपक्षी मुसलमानों के साथ डटकर मोर्चा लेते रहे। हिन्दुओं ने भी मुसलमानों का सर्वथा साथ दिया और उनका विश्वास किया। दुर्गादास राठौर ने कासिम अली के हाथ औरङ्गजेब के कोपभावन राजकुमार अजीतसिंह को 'सौपना भेषकर समझा। कर्णवती का दुर्गायू का राबी भेजना और दुर्गायू का उसकी रक्षा के लिये उलटे पैर दौड़ पड़ना इतिहास की प्रसिद्ध घटना है। मुसलमान उन दिनों हिन्दुओं के साथ इतना हिलमिल कर रहने लगे थे कि उनमें कोई विशेष अन्तर दिखलाई नहीं पड़ता था। तभी तो हाली को नीचे लिखा पद्य कहनेके लिये बाध्य होना पड़ा—

दीने हज्जाजी का बेचाक बेड़ा

न जेहूमें उलझा, न कुलज़ाममें खटका।

किये जिसने तै चल के सातों शमन्दर,

वो दूबा दहाने में गंगा के आकर ॥

मिलाप का परिणाम यह हुआ कि सन् १६५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में, हिन्दू और मुसलमान दोनों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर, अंग्रेज़ों से युद्ध किया। प्रसिद्ध पठान वशी अलकाकुल्ला कॉ और विख्यात आर्य समाजी पं० रामप्रसाद चिस्मिल की मित्रता की बात भी हम सब को ज्ञात है। हिन्दू मुस्लिम एकता न कभी असम्भव थी और न अब है, केवल दोनों की मनोवृत्तियों

में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। सन्तों ने मुसलिम राज्य काल में यह परिवर्तन करके दिखा दिया गया था। अब स्वाधीन भारत के उन्मुक्त आताडरण में यह परिवर्तन पुनः सिद्ध किया जा सकता है।

विश्व वन्द्य महात्मा गाँधी इन्हीं सन्तों की परम्परा में थे। हिन्दू मुसलिम एकता के लिये उन्होंने जीवन भर अथक प्रयत्न किया। वे इसमें सफल न हुए क्योंकि उनका विश्व अत्यन्त प्रबल शक्तियों काबू कर रही थी।

हिन्दू स्वभावतः उदार है। उसके विशाल हृदय में सबके लिये स्थान है। मुसलमान तो उसके साथ शताब्दियों से रहते आये हैं। अतः उनके प्रति वह अनुदार हो हो कैसे सकता है? पर इस उदारता का अनुचित लाभ किसी को भी न उठाना चाहिये। प्रत्येक देशकी, परम्परा द्वारा प्राप्त, अपनी गति विधि होती है। मुसलमानों का अधिकार समुदाय तो इसी देश का वाला है। उसे इस देश की परम्परा का, संस्कृति का भाग का सम्मान करना ही चाहिये। मत का परिवर्तन पूर्वजों की पीढ़ियों को परिवर्तित नहीं कर सकता। उनके और हिन्दुओं के पूर्वज एक हैं, तो दोनों के एक होने में, इस समय क्यों बाधा पड़नी चाहिये।

भारत समुन्धरा मानवता का पालना है। इसका निवासी हिन्दू मानवता का पुजारी है। इस युग का सर्व श्रेष्ठ हिन्दू, महात्मा गाँधी, हिन्दू मुसलिम एकता का प्रचारक और पोषक था। अपनी प्रार्थना में वह कहा करता था :—

“ईश्वर अल्ला तेरो नाम
सबको सम्मति दे भगवान्”
हिन्दुओं ने सका अनुगमन किया, पर,
हायरे मुसलमान तेरो सम्मति न जाने कहाँ कूँच
कर गई? क्यातू अब भी सोचंगा और समझेगा?
तेरे अन्दर डर भर दिया गया था कि काँप्रस
वाले हिन्दू राज्य की स्थापना करेंगे। पर क्या
इतिहास के किसी भी पन्ने से तू यह सिद्ध कर
सकता है कि किसी हिन्दू राजा ने आज तक
किसा मलाजद को तोड़ा जोड़ा हो, किसी भी
मुसलमान के साथ अमानुषिक व्यवहार किया
हो और उनकी रूजा, अर्चना में हस्तक्षेप किया
हो? हिन्दू राज्य तो सदैव असाभ्यप्रदायिक रहा
है। जो व्यक्ति, चाहे वह इतना ही पुर्जा ही
क्यों न हो, यदि इनक विश्व कहना है, तो वह
अपने इतिहास को धोखा देता है और निस्सवेह
किसी निकृष्ट स्वार्थ साधना में निरत है।

अतः जो अपनी परम्परा में प्रेम करता है,
वह मेरो अद्भुत का भाजन है, क्योंकि मेरो दृष्टि
में वह सच्चा देश सेवक है, भारत माता का सच्चा
पुत्र है। परन्तु जो सन्त प्रणाली पर चल कर देश
के समस्त वर्तमान श्रेणों में एकता स्थापित करने
का यत्न करता है, वह भी मेरे लिये आदरणीय
है, क्योंकि वह मानवता के हित में अपने एक
अत्यन्त पुनीत कर्तव्य का पालन कर रहा है। पर
जो पार्टीवन्दी के दल दल में पड़कर न तो देश
सेवा रखता है और न मानवता का हित, वह
मेरी पृष्टि में सकीर्ण मनोवृत्ति रखता है, साभ्य-
दायिक है और स्वार्थी है। ऐसे स्वार्थी व्यक्तियों
के लिये मेरे हृदय के किसी भी कोने में स्थान
नहीं है।

— ०:० —

— जो मूलों का नाम सन्त होता है, वे विचारे बेदों की महिमा कभी नहीं जान सड़ते
अविद्वानों में यह चाल है कि मेरे पीछे उनको सिद्ध बना लेते हैं परन्तु नबुत सा महात्म्य करके
ईश्वर के समान मान लेते हैं [स्वार्थप्रकाश ११ समुल्लास]

आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम

[लेखक—श्री प्रीतमलाल जी एडवोकेट, अलीगढ़ [आर्यगढ़]

महर्षि दयानन्द सरस्वती की इस निर्वाण तिथि पर जब उनका एक शिष्य ऋषि के जीवन श्रौरी कार्य पर दृष्टिगत करता है, तो उसके हृदय में सहसा यह विचार दृढ़ होता है कि महर्षि का यह स्वप्न कि सत्तार में वैदिक धर्म प्रचार से ही सुख और शान्ति प्राप्त होगे, आ विश्व का आर्य बनाना हमारा पवित्र धर्म है।

महर्षि ने अपने कार्य की पूर्णता का काम आर्यसमाज को सौंपा—और आदेश दिया कि ब्रह्मचर्य और वेद का प्रचार करके सत्तार का स्थापण करो। आर्यसमाज ने गुच्छुलों की स्थापना की—गुच्छुल प्रणाली की प्रत्येक विद्वान ने भूरि २ प्रशंसा की—अपने सीमित साधन और विशाल कार्यक्रम को दृष्टि में रखते हुए, प्रत्येक निष्पक्ष मनुष्य स्वीकार करता है कि विद्याप्रचार, अत्रुतादर, शुद्धि, देश प्रेम, सामाजिक सुधार आदि काया में आर्य आर्यसमाज ने प्रशंसनीय कार्य किया—देश की स्वतंत्रता प्राप्ति में महर्षि दयानन्द के विद्वान्तों का हुत बड़ा श्रेय है। अब जब देश स्वतंत्र हो गया है तो आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम क्या हो इस पर इन पक्तियों में विचार प्रकट किये जाते हैं।

आर्यसमाज की शक्ति सीमित है अतः उसको अपने शक्ति ऐसे मूल्यपूर्ण कार्य में लगाना चाहिये जिस में अन्य सत्ताओं की रुचि कम है अथवा जो वैदिकधर्म प्रचार के मुख्य महत्वपूर्ण साधन हैं। प्रचार के साधन दो प्रकार के हैं। १ लिखित २ मौखिक। लिखित साधनों में आर्यसमाज की शीघ्र अति शान्ति एक दैनिक समाचार पत्र और एक मासिक पत्र, अपनी भाषा में प्रकाशित करना चाहिये—साथ ही विद्वत् मण्डलों नियत करके और धन एकत्रित करके कम से कम ५ निम्न-लिखित पुस्तकें एक वर्ष में (अप्रैल में तथा आर्य भाषा में) प्रकाशित करना चाहिये। पुस्तकें इस प्रकार हों—

१. श्री पुरुष पं. गंगाप्रसाद जी लिखित—

Fontain head of Religion अर्थात् धर्म का

आदि स्रोत (उद्धृत तथा सम्पादित)

२ Social Organisation अर्थात् वर्णाश्रम धर्म, जिम साशलजम, क्यूनिज्म आदि की तुलनात्मक दृष्टि से आलोचना हो

३ Sa is rit the motie of al l angu-
uages of th- world सत्तार की समस्त भाषाओं की माता संस्कृत है और संस्कृत प्रथम ज्ञान का भण्डार है।
4 World Peace and how to establish it विश्व में सुख और शान्ति वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर ही प्राप्त हो सकते हैं।

५. In l in Civilization and its contri-
bution to the wor d प्राचीन भारतवर्ष की सम्पदा और उसका भिन्न प्रदेशों में प्रभाव तथा जातियों को देन। यह तथा इस प्रकार की पुस्तकें आर्य विद्वान रत्ने और प्रकाशित करें।

मौखिक प्रचार में हमारे आर्य साधु, सन्तों, तथा गृहस्थी उद्देशक और प्रचारक त्याग के साथ काम कर रहे हैं, मैं उनकी हृदय से प्रशंसा करता हूँ परन्तु मैं यह अनुभव करता हूँ कि अब वह स्थिति है जब इस प्रश्न को हम श्राल से ओझल नहीं कर सकते हैं। हम का देश और कान की परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुये अपने उद्देशकों के भरण पोषण, सम्मान, स्वाध्याय आदि की व्यवस्था समुचितरूप से करनी पवगी—पेक्षा की वृत्ति से काम में हानि हो रही है और उन्नति की आशा नहीं है—आर्यसमाज के उद्देशक देश देशान्तर में जाने चाहिये—उनको योग्य और सम्पन्न बनाने के साधन उपस्थित करना आर्यसमाज का आवश्यक काम है।

इस कार्य के अतिरिक्त भारत देश के भीतर ऐसे कार्य करने हैं जिनको और अभी तक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरण के रूप में, हमारे वह भाई जिनको हम जगलो अथवा आदिनिवासी आदि के नाम से पुकारते हैं, उनमें आर्य समाज को विद्याप्रचार,

अन जागरण का वह देवदूत —

आज ऋषि की आवश्यकता

[प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए०]



स ५,५६ की भारतीय क्रांति के पश्चात् हिन्दुस्तान में कई सामाजिक धारायें प्रचलन से प्रवाहित होने लगी। उनमें से प्रमुख दो हैं—ब्रह्मसमाज तथा आर्यसमाज। जनता पर जिस सन्स्था का सबसे अधिक प्रभाव उन्नी-

सवी सदी के उत्तरार्द्ध में पड़ा वह है आर्यसमाज। सन् १८०५ में स्वामी दयानन्दजी ने बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। यह वर्ष बड़े महत्व का है। स्वामी दयानन्दजी का कार्य बड़ा विस्तृत और व्यापक था। उनके सामने एक निरन्तर धोजना एवं दृढय में दृढता थी। उनके द्वारा सामाजिक सुधार और शिक्षा प्रसार का महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। वे धर्म को बड़े विस्तृत दृष्टिकोण से देखते थे, जिसमें हिन्दुओं के धर्म में आदि से संकुचितता और कट्टरता को उन्होंने दूर किया। पाश्चात्य संस्कृति के विरुद्ध स्वामीजी ने जो मोर्चा कायम किया था, उसका स्वरूप विरोधात्मक ही रहा। उन्होंने भारत को पाश्चात्य सभ्यता की आंधी से बचाया।

स्वामी दयानन्दजी का कार्यक्षेत्र बहुमुखी था। यद्यपि उनका प्रभाव भारत के कोने-कोने तक पहुँचा किन्तु उनके प्रभाव से भारतीय शिक्षा, राजनीति, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति अछूती न बच सकी। जन्मगत वर्ण भेद का त्याग, जो शिक्षा, विधवा विवाह का प्रचलन और बाल विवाह का उन्मूलन इनका मुख्य ध्येय थे। स्वामीजी की दृष्टि बड़ी व्यापक और उदार थी। वे हिन्दू को,

सामाजिक सुधार, तथा धर्म प्रचार कर देना में निरलस्यो का प्रश्न, देहेज आदि हानिकारक रस्में, घूस-कोरी, कोत्साकारी आदि के सुवार में आर्यों को अभिमान लेना है। चरित्र और आत्मिक बल के बिना इन कुप्र-

मथ्य काल में उत्पन्न हो गईं सब प्रकार की फली हुई कुरीतियों से मुक्त देलना चाहते थे। वे समता, स्वदेश प्रेम, हिन्दू क्रांति के उद्धार के पक्षपाती थे। धर्म, समाज, शिक्षा, सस्कृति, राजनीति, आर्य नीति इनके वैदिक आदेश के स्वरूप का प्रतिष्ठापन महान् ध्येय था और इसी की पूर्ति में वे सदैव लगे रहे।

आर्यसमाज के ध्येय महान् थे। उसके द्वारा स्वामीजी सर्व प्रथम हिन्दुस्तान में विगड़ी हुई सामाजिक शृङ्खलाएँ तोड़ना चाहते थे। कृशाकृत को हटाने में उन्होंने दिल-चस्पी ली। जन्मगत जाति पौति के भेदभाव से हिन्दू पतित हो रहा था। उसे हटाना तथा मनुष्य मनुष्य के मध्य उचित न्याय, स्त्री पुरुष को समानता के अधिकार प्रदान करना, जन्मजात अधिकार के स्थान पर कर्म और योग्यता की कसौटी, अपनी उन्नति के लिए सबको समान अवसर प्रदान करना स्वामीजी के उद्देश्य ऐसे थे, जो उन्नीसवीं सदी में सर्वथा क्रान्तिकारी थे।

उन्होंने दूसरे धर्मों से हिन्दू धर्म की रक्षा की। इस्लाम नीची श्रेणी के हिन्दुओं को खींच कर अपने में मिला रहा था; पढ़े लिखे लोग भी ईसाइयत की ओर आकर्षित हो रहे थे; भारत की धार्मिक आत्मा दुर्बल पड़ रही थी, विज्ञान के वातावरण में हम वर्णवाद में फसे हुए थे। स्वामी जी ने हमें इस स्थिति से मुक्त कर हमारा महान् उपकार किया। आज हमें उन जैसे कौतिकारी व्यक्तियों की परम आवश्यकता है।

याओं का अन्त नहीं हो सकता है और आर्य जन ही अपने त्याग और तप से इन दोषों को दूर कर सकते हैं। आशा है आर्यबन्धु इस पर विचार करेंगे।

राष्ट्र गीत

[एक भारत-पुत्र]

शश्व श्यामला भात माता ।

निखिल विश्व की सस्कृतियों की सर्व प्रथम निर्माता ।

शश्व श्यामला भारत माता ।

उत्तर स्वर्ग छू रहा ले नगराज तुषार-विमण्डित,
दक्षिण ले गभीर सागर करता युग-पद-प्रक्षालित
ले केहर कुंकुम कर में करता पश्चिम आराधन,
वंगभूमि करती पूरव में नव विभूति से अर्चन ।
रवि प्रतिदिन त्रकाश, शशि रक्षनी में अमृत बरसा ।

शश्व श्यामला भारत माता ।

विकसित - सरल - कुसुम ले आता मधु श्रुतु हर्षे बढाता,
ले प्रमोद पावस आता प्रेमाम्बु-प्रवाह बहाता ।
आती शारदीय सुषमार्य सब-धन ले हरिबाली,
आ-आकर श्रुतुएँ क्रम से भर जाती जीवन-प्याली ।
सुरमित - सुस्मित उषा हमारी नव जागरण प्रदाता ।

शश्व श्यामला भारत माता ।

भर देता नव प्राण सपीरथ दग्ध - तत डर-उर में,
विलसा रहा नूनन यौवन इस भू के पुर-पुर में ।
जीवन का उल्लास विह्वलता इस के संकेतों पर,
न्योछावर शत - शत अलका छुबि गङ्गा की रेतों पर ।

इसी पुरण - वसुधा से जन - जन चरम लक्ष्य निज पाता
शस्य श्यामला भारत माता ।

आदिकाल में बिर निजा से जब सगर बगा था,
नव विक्राण, नव जीवन पाकर बच्चे उन्माद पगा था ।
इसी भूमि ने उस अतीत में आत्मनिमन्त्रण पाया,
कर के आत्मत्याग जगती को समयशील बनाया ।
रहा आन भी विश्व इही से जीवन - ज्योति जगाता
शस्य श्यामला भारत माता ।

थी जब प्रथम उषा की अक्षयिण रश्मि विश्व ने पाई,
ली जब वन - वधुओं ने खुल की सर्व प्रथम अँगड़ाई ।
जब द्रुमावलि स्निग्ध, मंदिर, सुरभित मल यज्ञ से बोली,
पहली बार वनस्पल की छाया में कोयल बेली ।
थी यह उस आदिम प्रजात में निखिल तत्व की ज्ञाता
शस्य श्यामला भारत माता ।

राम, कृष्ण ने इसी भूमि में आकर जन्म लिया था
भीष्म, बुद्ध, शङ्कर, विक्रम ने निज आदर्श दिया था ।
त्याग, पराक्रम, शान्ति हमारा एकमात्र सम्बल है,
अन्न, तप, सर्वत्र हमारा सत्य, न्याय ही बल है !
जिये, मरे हम इसी हेतु, — इतिहास इसे बतलाता —

शस्य श्यामला भारत माता ।

सोता, गार्गी, सती पद्मिनी इस भूपर आसीं थीं,
दर्शन, धर्म, चरित्र आदि में ख्याति अचिक पई थीं ।
अब भी दयानन्द, गान्धी से देव यहाँ पर आये,
बिनसे युग सन्देश शान्ति का चिर भविष्य तक पाये ।
हम स्वतंत्र, स्वाधीन देश, हम भारत भाग्य विधाता
शस्य श्यामला भारत माता ।

आर्यसमाज का

शुरुआत

और

कृष्णपक्ष

[लेखक—आचार्य नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ]

जिस स्वामी जी का जन्म हुआ था तब भारत
 वष कृष्णपक्ष में था। जब स्वामी कार्य क्षेत्र में
 आये तब भारत वर्ष के शुक्रपक्ष का प्रारम्भ
 हुआ। जब स्वामी जी का निवास हुआ तब घोर
अन्धविश्वास की स्वामी जी स्वयं विन्व्य शक्ति की
 खोज में न जाने कहाँ गये पर भारतवर्ष की जनता
 को दीपावली की शुभ चौदनी में छोड़ गये।
 आर्य समाज का प्रारम्भिक प्रवर्धन प्रथम काल
 शुक्लपक्ष था। आर्य समाज का संस्थाकाल न १
 (की ए० बी० कॉलेज की स्थापना आदि कृष्णपक्ष
 था क्योंकि आर्य समाज की शक्तों में विभक्त हो
 गया। फिर दो दशकों की बीच काल तक परस्पर प्रति
 स्पर्धा के पश्चात् शुक्लपक्ष की चौदनी छिटकी।
 आर्य समाज का संस्थाकाल न० २ (गुरुकुलों की
 स्थापना) शुक्लपक्ष की पूर्णिमा थी क्योंकि स्वामि
 स्वामिन्द् प्रवर्धित शिक्षा काल का प्रारम्भ हुआ
 और इस विषय में पूण रूप से न सही हमको
 आशिक अफ़जता तो मिली ही। और संसार पर
 आर्य समाज की शक्ति बँट गई। आर्य समाज का
 सम्बन्ध बँक संस्थाकाल पर लग गया इसलिए प्रचार
 काल होता पड़ गया यह बीच का कृष्णपक्ष था
 इस प्रकार शुक्रपक्ष और कृष्णपक्ष का चक्र चलता
 ही आ रहा है। बीच में भाग्यनगर हैदराबाद का
 आर्य संस्थाग्रह आर्य समाज की पूर्णिमा रही।
 अमेरिका के जाते जाते देश का बटवारा आर्यसमज ज
 के द्विध अन्धविश्वास थी। प्रजाज जो कि आर्य

जगत् का प्रवर्धन गढ़ था, अभेद्य दुर्ग था, द्विध-
 भिन्न हो गया। आर्य समाज की शक्ति समाजो
 संस्थाओं अतुल संपत्ति तथा भवटन का विनाश
 हुआ, यह हानि अमहनीय रही।



लेखक

नगर में कौन सा देना व्यक्ति समाज सुमुदाय
 देश, राष्ट्र है जिसके जीवन में पर्याय से शुक्लपक्ष
 और कृष्णपक्ष न आये हों, शुक्लपक्ष से आस्थावित
 न हुर हों और कृष्णपक्ष में ठोंकरे न लायी हों।
 ईश्वर ने क्या ही अच्छा क्रम रक्खा है। शुक्रपक्ष
 के पश्चात् कृष्णपक्ष, कृष्णपक्ष के पक्ष के पश्चात
 शुक्रपक्ष। शुक्लपक्ष में एक पूर्णिमा का ही दिन होना

है जिसमें अन्वेषे का नाम नहीं और कृष्णपत्र में एक अमावस्या का दिन ही ऐसा रहता है जिस दिन प्रकाश का नाम नहीं। जैसे शुक्लपत्र में अन्धकार और कृष्णपत्र में भी प्रकाश रहता ही है। स्टडिजि के आदि से लेकर ऐसा कभी नहीं हुआ कि एक बार पूर्णिमा आकर बराबर पूर्यिमा ही चली आयी हो अथवा एक बार अमावस्या आकर बराबर अमावस्या ही चली आयी हो।

अंगरेजी राज्य गया, अंगरेज भी गया किन्तु उसकी छाया और माया अब तक बराबर चल रहा है वह आर्यसमाज के लिए कृष्णपत्र है, कर्पा कि उसको इस कृष्णपत्र के अन्धकार में यथार्थ मार्ग नहीं सूझ रहा है। देश का बटवारा होकर पंजाब, बिन्ध, बल्लविस्थान फ़्लिटियर में सैकड़ों सहस्रों स्कूलों कॉलेजों के महा नाश के पश्चात् भी आर्यसमाज का ध्यान फिर स्कूलों और कॉलेजों की संख्या बढ़ाने की ओर है जिससे आर्यसमाज का कभी भला नहीं होने वाला है। इसका प्रभाव गुरुकुलों पर भी पड़ा जो कि प्राचीन शिक्षा-दीक्षा की ओर झुके थे जो कि आर्यसमाज का अन्धका काम था, जिसमें सफलता मिलने से आर्यसमाज को अपने उद्देश्य की पूर्ति में बल मिलता और आर्यसमाज सत्कार के उपकार के कार्य में दृढ़ता पूर्वक संलग्न रहता। ये सभ्यता भी अब वर्तमान शासन की शिक्षा-दीक्षा के प्रमाणपत्र की आकांक्षा करने लगी है। हिन्दी के राजभाषा होने के लक्षणों के दोखते ही ऐसा कुछ बातवबरण हो चला है कि आर्यसमाज के छात्रों में संस्कृत की ओर उपेक्षा प्रकट होने लगी है। आर्यसमाज में दान का एक रुपैया वेदशास्त्र, प्राचीन शिक्षा दीक्षा के प्रचार प्रसार में जना चाहिए। उतका पैसा स्कूल कलेजों की स्थापना और संचालन में नहीं लगाना चाहिए। अब तो यद्यपि अपना राज्य है, यद्यपि विदेशों नहीं तथापि पद्धत तो विदेशी है हा। वर्तमान सरकार स्वयं शिक्षा दीक्षा का प्रवर्ध करेगी। स्कूल कलेजों की, विश्व-विद्यालयों की संख्या बढ़ायेगी। आर्यसमाज इस

विषय में अपना समय धन, बल, पुरुषार्थ का अल्पव्यय नहीं करे। स्मरण रहे आर्यसमाज तभी तक जीवित रहेगा जब तक वेदशास्त्र, वेदिक धर्म वैदिक शिक्षा दीक्षा को हाथ में रखेगा। आर्य संस्कृति का प्रचार तथा प्रचार करता रहेगा। आर्य समाज का वेदशास्त्र उल्लंघन पढ़ा कि आर्य समाज गया समझिए आर्यसमाज के सामने एक बड़ा कार्य है। वह यह नवीन पश्चात्य ढंग का विदेशी पद्धति के शासन पर भी अपना प्रभाव डालकर उसके दोषों को हटाकर उसके स्वधर्म तथा स्वसंस्कृति का पोषक बनाना है। इस कार्य का हमें इतना प्रबल-प्रचार तथा प्रसार करना पड़ेगा कि उस प्रचार तथा प्रसार का इन शासन पर भी अमिष्ट प्रभाव पड़े। इस पद्धति की जिन बातों का प्रभाव हमारे धर्म तथा संस्कृति पर प्रतिकूल पड़ेगा उनका हमको प्रयत्न तथा स्पष्ट रूप में विरोध करना पड़ेगा और मार्ग में कुछ आर्य तो उनको लहना भी पड़ेगा,—अब यह कहकर काम न चलेगा कि आर्यसमाज का वर्तमान राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं। अंगरेजों के शासनकाल में हम प्रच्छन्न रूप में स्वदेश की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए प्रयत्नवान रहे, किन्तु अब वह नीति विद्या उक्त रहेगी। यदि उन समय में भी हम प्रकट रूप में सामयिक गति-विधि में भाग लेते तो आज हमारी स्थिति और ही रहती। मेरी समझ में यह उदात्तता का काल आर्यसमाज के लिए अमावस्या ही रही। पंजाब में २०, २२ लाख सिक्खों ने प्रत्यक्ष रूप में वह अडगो दिये हैं कि सरकार भी परेशान हैं। हम चालीम लाख कुल अपने ढंग का काम करते हुए बल पकड़ते तो हम भी अपनी संस्कृति के अत्रुक्त बो-चार बातें मनवाते ही। राज्य-शासनप्रणाली पर कुछ प्रभाव डालते ही—

वर्तमान सरकार अपना होते हुए भी शासन पद्धति सर्वथा विदेशी है। शासनचक्र इस प्रकार की स्तम्भान पद्धति पर निर्भर है कि किसी दिन अनाजवादी भी शासन बन सकता है तो अर्यसमाज का वैदिक समाजवाद और पश्चात्य ढंग का समाजवाद (जिसकी अनाजवादी जाना चाहते हैं) टकरायेगा कि नहीं, कि हमको राजनीति से

कुछ भी पतलव नहीं है यह कहकर अपने संकुचित मयहज में (इनमें ही अपनी निर्विघ्नता से संकुचित कर रक्खा है) घुटते रहिएगा। भूमक लीजिये कि भारतीय नेताओं द्वारा तैयार भिया हुआ विधान आर्य-धर्म तथा आर्य संस्कृति का पोषक न होकर अर्य-भंगकृति के लिए घातक बैठता है। तब क्या समष्टि में सुबन खलियेगा। तब तो आर्यसमाज का कृष्णवद लम्बा ही-लम्बा होता जयगा।

आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि प्रत्यक्ष रूप में, स्पष्टरूप में बलपूर्वक परामर्श बातों का प्रवर्तन विरोध करता रहे जो भारतीय धर्म तथा संस्कृति को पोषक और शरत्कृत हो।

आर्यसमाज की पूर्णतया तब सक्रिय कि इस विदेशी प्रजातन्त्र तथा जनतन्त्र पद्धति के समय में भी साम्यवाद, वर्गवाद तथा समाजवादी सुधारों का अर्थवा उन्मूलन होकर वर्तमान शासन-पद्धति भी वैदिक साम्यवाद और वैदिक समाजवाद से मानकर चलने के लिये दिवशा हो।—

आर्यसमाज, मानवो दिन समाज में एकत्रित होकर शैबल अर्थ-तोषा करना का स्थान न रहे। अब तो आर्यसमाज को प्रत्यक्षरूप में वैदिक शासनपद्धति का प्रचार तथा प्रसार लक्ष्य, निःशङ्क होकर करना चाहिए—और भारत तथा द्वारा स्वीकृत विधान में भारतीय धर्म तथा संस्कृति के अनुसरण परिवर्तन करने का बल प्रयत्न करना चाहिए।

संसार के देश तथा राष्ट्र संकुचित राष्ट्रियता के कारण संसार को नरक बना रहे हैं। यदि आर्यसमाज इनको सर्व-भूतकत्व की भावना आ पाठ नहीं पढ़ा सकता, यदि आर्य मान संसार को सच्चे विरववन्तुल तथा दिखजाएँ ननी-द्रोहेण भूतानामल्प द्रोहेण 'रा पु.' राष्ट्रियता में यह परस्पर अनभिद्रोह यथा अत्यन्त की भवना जायत नहीं कर सकता। यदि आर्य न न—

“आत्मनः प्रतिकूलानि
परेषां न समाचरेत्”

जो अपने को प्रतिकूल लगे वैसा बर्ताव दूसरे के साथ भी नहीं करना चाहिए इत्यादि उच्च सावेभोम राष्ट्रियता का प्रचार न करके तो समाज लेना चाहिए कि आर्यसमाज शुक्लपत्र में भी समाजवादी की तरह अन्वयार में पढ़ा हुआ है। उसको भूमक लेना चाहिए कि उसके सामने ऐसी साम्य है कि इस समाजवादी के प्रचार कोई भी शुक्लपत्र नहीं आनेवाला है।—आर्यसमाज की अन्वयार का क्या है यदि उसके होते हुए पश्चात्त्य देश के वर्गवाद, साम्यवाद, कोरा बुद्धिवाद, समाजवाद इत्यादि बाद भारतभूमि में आकर पैर जमा बैठे और वैदिक समाजवाद को जिसमें अथवा संसार को सुख-साम्भित धाम बनाने की शक्ति है पनपने न दे। आर्यसमाज की आवश्यकता ही क्या है यदि पश्चात्त्य जनतन्त्र वैदिक जनतन्त्र की ओर न झुकना जाय।

सावधान !

दुर्गा नदीः, शिथिलबन्धविलम्बिनी नौः ।

अभ्युन्नता जलधराः, विषमः समीरा ॥

आरूढवान्निजकुटुम्बपुतो ऽवनीनः ।

तत्कर्णधारः ? कुरु, यत्सदृशं कुलस्य ॥

नदी में भयङ्कर तूफान है और कील पुलें ढाले होने के कारण नाव डीली चल रही है; सुभाषित कुटुम्ब सहित नौ सर चढ़ा हुआ है ऐसी दशा में हे नाविक ? ऐसे बैंग का परिचय है जो कि तरे अनुसरण हो —

इस तूफान से बाहर हुए कि आर्यसमाज की पूर्णतया प्रार्थना प्रतिक्रिया, ईश्वर करे ऐसा ही हो— तथापु, परमन्तु आकाशवाणी कहती है “अच्छा, अच्छा” प्रतिक्रिया आ रही है “अच्छा अच्छा”

◎ * * * * * ◎

शुद्धि कृत वेदभाष्य से सम्बन्धित दो टीकानें—

* "वेदार्थ यत्न और प्रकृतार्थ बाहिनी" *

[लेखक—आचार्य विश्वभवा: वेद मन्दिर, बरेली]

◎ * * * * * ◎

◎ * * * * * ◎

◎ * * * * * ◎

शुद्धि स्वामी दवानन्द स्वस्वती जो ने अपने वेद भाष्य में तीन प्रकार के भाष्यों का खण्डन किया है—

- १—सामयार्थि कृत पौराणिक संस्कृत भाष्य
- २—आनन्दर विलसन आदि कृत पारश्चाथ आगलभाष्य
- ३—वेदार्थ यत्न

शुद्धि दवानन्द ने शुद्धवेद भाष्य के प्रारम्भ के ही अन्वये में इस प्रकार लिखा है कि—

क. एकमन्वयार्थः अथवा चार्थार्थिदिश्विभयोक्तः ।
तद्वचः...

ख. तद्वचोरोप खण्डस्यैरकृतमिगलख माभावात् ।

ग. वेदार्थकलापिषु च अर्थान्तरानामयमज्जगत् ।

घ. अर्थान्तरानामिदं ज्ञानं च विज्ञानानामय वेदार्थं
यत्नार्थिनामयि खण्डनमागतमिति विज्ञेयम् ।

इस प्रकार स्थान स्थान पर तीन प्रकार के भाष्यों का नाम शुद्धि के वेदभाष्य में आता है। इनमें से तार्थार्थ चार्थ चार्थि के भाष्यों की और आनन्दर विलसन आदि के कृते अंग्रेजी अनुवादों को सब जानते हैं और आनन्दर मुद्रित प्राप्त भी हैं। परन्तु वेदार्थयत्न नहीं है इसका ज्ञान आनन्दर विद्वानों को भी नहीं। जिसका वर्णन मैं आगे करूंगा

(वेदार्थयत्न)

शुद्धि दवानन्द के अन्ते वेदभाष्य में इनका खण्डन संकेतमात्र ही किया है। विस्तार भय से स्पष्ट खण्डन विशेष नहीं है। मैंने जब शुद्धि दवानन्द के वेदभाष्य की विल्वत टीका लिखनी प्रारम्भ की तो मेरे लिये यह आव-हक हो गया कि इन सब का संग्रह करूँ साथ ही और विलसन प्राप्त थे पर वेदार्थयत्न टीका का पता नहीं चलता था। ऐसी स्थिति में मैंने आनन्दर के सब विद्वानों की पत्र लिखे कि यह वेदार्थयत्न क्या है। इस वर्ष मई मास

में लखनऊ में उपवेद्य महासम्मेलन में भी बहुत से विद्वान् पचारे वहाँ बातचीत करने पर भी वेदार्थयत्न का पता न चला प्रत्युत यह जानकर दुःख हुआ कि अन्त में विद्वानों में शुद्धि के वेदभाष्य का पठन पाठन हो नहीं है। किलो ने वेदार्थयत्न का नाम ही नहीं सुना था। मैं देहली गया वहाँ रहने वालों से पूछा वहाँ भी वेदार्थयत्न अनसुनी चीज थी।

बनारस गवर्नमेंट किंग कॉलेज के सरस्वती भवन पुस्तकालय में वेदार्थयत्न को ढूँढने बैठा। वहाँ पुस्तकी की कोई व्यवस्था नहीं है प्रयो पूरा खूबी पत्र ही नही बना है। उत्र दिन १० बोरेशर शास्त्री भी मेरे साथ थे। १० बोरेशर शास्त्री जो को भी मैंने वेदार्थयत्न के सम्बन्ध में सारा विवरण बताया कि इसको ढूँढने की आवश्यकता है। हम दोनों ही अन्वयों को लौट पीठ कर रहे थे कि कहीं वेदार्थयत्न छन्द जिला मिले। अचानक शास्त्री जो की दृष्टि एक स्थान पर पड़ी और उन्होंने वे पक्षों मेरे सामने रखी। मैं हर्षसे उज्ज्वल पक। कि हे प्रभो कुछ पता तो चला। वहा से जो विवरण प्राप्त हुआ वह यह है कि—

बम्बई नगर में अनेकों विद्वानों ने सामूहिक यत्न कर के शुद्धवेद को एक सम्मिलित टीका लिखी थी उसका नाम वेदार्थयत्न है। इसी टीका का खण्डन शुद्धि ने अपने वेदभाष्य में किया है। अब बम्बई के पुस्तकालयों को मैंने पत्र लिखे हैं और वहाँ जाकर मैं उसे कहीं न कहीं से प्राप्त करने का यत्न करूँगा। अब निश्चय हो हो गया कि वेदाय यत्न क्या है। अन्यथा कुछ विद्वानों ने तो मुझे यहो लिख दिया कि वेदार्थयत्न कोई टीका नहीं है जो-जो भी वेद के बारे में भ्रम है उन्हें तार्थय शुद्धि दवानन्द का वेदार्थयत्न खण्ड से है। कुछ विद्वान् विश्वास पूर्वक यह लिखते थे कि विश्वक की टीका का नाम ही

वेदार्थबल है। पर यह सब कर्ते का प्रमाण है। श्री पूज्य स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी तथा भी पं० भगवदत्त जी ने मुझे बताया कि उनके साथ वेदार्थ का मत बन कर वह पाकिस्तान में नष्ट हो गया।

(प्रकृतार्थ वाहिनी)

प्रकृतार्थ वाहिनी नाम की टीका ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के खण्डन में लिखी गई है इसके कर्ता है उमेश चन्द्र जी। यह टीका मुद्रित है। आर्यभट्ट की बात है कि ऋषि के वेदभाष्य को टीका तो मिली ने न मिली पर खण्डन लिखा गया। अकृतार्थ वाहिनी टीका की कुछ शक्तियां पाठकों के ज्ञानार्थ मैं यहाँ देता हूँ -

वेदेषु अग्नि शब्देन आग्निमानवः संसृजितः। जडानि चक्षुस्त्वया नरानिश्चानवोपिथ इति। “ ब्रह्म अग्निः ” इति यत् शतपथे अस्ति तत् लोकपितामह ब्रह्माण्डेव बोधयितुं प्रयुक्तं न पुनः परमेश्वरमिति। विद्यावसा परमेश्वरस्य न, परन्तु ब्रह्मण्येवमस्ति। ईश्वरो विद्वान्मन्त्र गणितवित् इत्यं प्रयोगो न स्यात् न्यवहार विद्वत्त्वात् वस्तुतस्तु वेदे कुत्रापि अग्निशब्दः परमेश्वरार्थे प्रयुक्तो नाभूत् आन्तिवेषा विद्युषो दशानवस्यस्य।

‘एकं सत् विषा बहुधा वदन्ति’ एष मन्त्रस्तु द्वापर युगे पौराणिक भ्रान्त्या केनचिद् अर्वाचीनेन ऋषिणा प्रणीतः। (प्रकृतार्थ-वाहिनी)

ऋषि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में शतपथ ब्राह्मण आदि के मन्त्रों के ऊपर अपने भाष्य को पुष्टि की है। परन्तु इस प्रकृतार्थ वाहिनी टीका में यह बताया है कि शतपथ ब्राह्मण आदि मन्त्रों में उन प्रमाणों के वे अर्थ नहीं है जो स्वामी दयानन्द जी ने समझे हैं। इत्यादि अर्थ से ऋषि के वेदभाष्य के खण्डन में यह टीका लिखी गई है। जिसका उक्त आर्यभट्ट की ओर से नहीं दिया गया। वस्तुतः यदि कुछ दिन और अध्ययन की जाती तो यह मालूम करना ही कठिन हो जाता कि वेदार्थ बल क्या है और प्रकृतार्थ वाहिनी को कोई टीका भी भी या नहीं।

मेरा यह लेख बम्बई आदि के रहने वाले अन्य मन्त्रों और उनको कहीं भी वेदार्थ बल टीकाका ग्रन्थ मिले तो वे मुझे ध्वित कर दें। यदि अन्य के ऊपर भी यह ग्रन्थ कोई

बने को तैयार न हो तो मैं उस नगर में जाकर उसकी प्रति लिखि करूँगा। प्रकृतार्थ वाहिनी टीका को भी यदि कोई मूल्य लेकर बे दे तो मैं उसको हर भाव लेने को तैयार हूँ। क्योंकि ऋषि के वेदभाष्य की टीका जो मैं लिख रहा हूँ उस के लिये इन दोनों की आवश्यकता है।

(ऋषि के वेदभाष्य की विस्तृत चार टीकायें)

वेदान्त आदि ग्रन्थों पर जब शं, र, रामानुज आदि ने भाष्य रचे तब उनके शिष्यों ने अपने अपने भाष्यों के भाष्यों की विस्तृत टीकायें लिखी जिनसे उनका प्रचार और प्रकाश हुआ। ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य पर ऐसा प्रयत्न किसी ने नहीं किया है कि जिनसे स्वामी जी का वेदभाष्य खण्डनवा मुमुक्षुओं तथा अन्य विरह विद्यालयों में पाठ्यग्रन्थ का स्थान न पा सके और भक्त आर्यभट्टों भी वैदिक विनय आदि पदकों ही कृतकृत्य हो जाते हैं और ऋषि के वेदभाष्य को जैसे ही प्रणाम कर छोड़ते हैं जैसे पौराणिक अपनी मूर्तियों को। ऐसी स्थिति में ऋषि के वेदभाष्य की चार टीकायें लिखने का मेरा विचार है।

१—एक टीका वह है जिसमें यह समझाया गया है कि ऋषि ने मन्त्र का खण्डन क्या अर्थ किया है। मन्त्र का सरल विस्तृत और परस्पर मंगति भी। मैं यह यत्न कर रहा हूँ कि इसी अपनी वेदभाष्य टीका में सायण और डाक्टर विलसन के अनुवादों को भी छुड़ाकर तीनों को सामने रखकर फिर तीनों की मीमांसा भी रखूँ अतः, स टीका का क्रम इस समर्थ इस प्रकार है—

१—ऋषि के वेदभाष्य की विस्तृत संस्कृत टीका। उसके आगे—

२—सायण का भाष्य। उसके आगे—

३—विलसन का अर्थेगो अनुवाद। उसके आगे—

४—तीनों भाष्यों की मीमांसा तुलना। उसके आगे—

५—ऋषि के वेदभाष्य टीका की सरल हिन्दी में भाषणा। उसके आगे—

क्या स्वर्ग धरा पर लाई हो ?

[रचयिता.—रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' बी० ए० साहित्यरत्न]

सोए वीणा के तारों में, फिर नया राग नूतन सन्धन,
दीपावलि ! भरने आई हो ?
फिर अमा निशा के अञ्जल पर, धरती के जगमग दीपों से,
भर अन्तरिक्ष का घनापन, ज्योतिर्मयि ! जीवन के सपने,
क्या शाश्वत करने आई हो ?
पत्तकों में रश्मिल अङ्कें भर, सो गद्या निमिर दी ज्योति लहर !
नन्दन-कानन का स्वर्ण हाव, भर कर दीपों के प्राणों म,
क्या स्वर्ग धरा पर लाई हो ?
ज्योतिर्मुषि ! कवि की अभिलाषा, आशा की चल-परिभाषा-सी,
फिलमिल भाषा म बोल रही, "भर स्नेह चपलता नयनों में,
क्या मधु मयि ! भरने, आई हो ?"



६—सायण भाष्य का हिन्दी अनुवाद । उसके आगे -

७—विनयन के अग्नेयी अनुवाद की हिंदी में टीका ।

उसके आगे—

८—तीनों भाष्यों की भीमांश और तुलना हिन्दी भाषा में । उसके आगे—

९—ऋषि के वेदभाष्य का अग्नेयी में अनुवाद । उसके आगे—

१० क्रिटिकल समालचना अग्नेजै भाषा में ।

इतना विस्तृत वर्णन प्रत्येक मंत्र पर रहेगा । यह एक टीका है । अन्य तान टीकाएँ हजसे भिन्न हैं । त्रिनका वर्णन किसी अन्य लेख में करूँगा । भगवान् का आशीर्वाद ऋषि दयानन्द में अदा, अरुं विद्वानों की कृपादृष्टि, और ऋषिमकों के सहयोग से इसमें सफलता अवश्य होगी । ऐसा विश्वास है ।

भातीय स्वराज्य के आदिप सूत्रपर एव सिद्ध प्रेम और विश्वासिता के सर्वप्रथम सन्देशवाचक महर्षि दयानन्द स्वराज्यतो महाराज का वनिज व्याकृत्य न विनिज दक्षिणोद्य से कवीटी पर परत्वा है। श्री एण्ड्रू कश्यप केबिस ने उन्हें "एक सार्वभौम अग्नि" के रूप में दखा। "ओ अग्नि सारे भूमद्वल के राख्यो साम्राज्यो तथा राख कीय तुराह्यो को जलाकर भस्मसान कर देने वाली है"। भीमती एनीवीसेम्ट ने—

स्वामी दयानन्द को "भारत भारतीयों के लिये" प्रथम व्यवधोप लगाने वाला स्वकार किया। श्री ब्लान्ट ने—

"दयानन्द केवल धार्मिक सुभा कह न ये वह बहुत बड़े देश भक्त भी थे। यह कहना उचित होगा कि धार्मिक

"इये पि-नत्व" यजुर्वेद १८।१४ मन्त्र से प्रार्थना करते हुए लिखा है कि—

"अब देशवासी राजा हमारे देश में न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों" "अदीना स्वामि शरदः शतम" की वृत्त्या में महर्षि ने लिखा है कि—

"हम भी वर्ष की आशु में कभी पराधीन न हों" सतत प्रयत्नों के उपरान्त भारत आब स्वराज्य प्राप्त कर चुका है और लगभग दो वर्ष से शासन को वागडोर देष के प्रतिनिधियों के हाथ में है।

अपि ने 'एकता' के लिखा है—

"भ्रं २ भया, पुषक पुषक शिखा तथा अलग २ न्यवहार का विन छूटना अति दुःकर है बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध न

स्वराज्य का सूत्रधार दयानन्द

(लेखक—विश्वमित्र शर्मा आचर्य गुडकुल मञ्जर पूर्वीपजाब)

सुधारों को उन्होंने राष्ट्रीय सुधार के साधनरूप में ही अपनाया था", के रूप में दखा उन्होंने भारत की पराधीनता को अभिघान समझा और पराधीन भारत में सर्वप्रथम स्वराज्य के नाद को उठाया। वह भी उस समय जब कि देश का मस्तिष्क गुजामी की लोइसारमयी शृङ्खलाओं से अन्धो तरह बका जा रहा था। ऐसे समय सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य की कल्पना तो दूर रही माण्डलिक अर्थात् औपनिवेशिक राज्य की भाग भी कल्पनातीत थी। स्वराज्य शब्द ही मानो उस समय सभार के कोषों से निकल गया था। वतमान राष्ट्रिय महासभा (इण्डियन नेशनल कांग्रेस) का जन्म भी उस समय न हो पाया था।

उस समय महर्षि ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में इशाज्य सन्देश दिया। आर्याभिविनय में—

होगा'।

राजा का लक्ष्य महर्षि ने अपने मन्त्रम्य प्रकाश में निम्न प्रकार किया है "राजा उसी को कहते हैं जो शुभ गुण्य कर्म स्वभाव से प्रकाशमान पञ्चात रहित न्याय-धर्म का सेवक प्रजाप्राप्ति में नितृवृत्त और उनकी पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा प्रयत्न किया करें।

प्रजा उसको कहते हैं जो पवित्र गुण्य कर्म स्वभाव को धारण करके पञ्चात राहत न्याय-धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहतो हुई विद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वतें।

इसलिये महर्षि ने अपने मन्त्रम्यप्रकाश में "जो पञ्चात रहित न्यायाचरक, सत्यप्राथ्यादि, ईश्वराज्ञा, वेदों से अभिबद्ध, उसको धर्म और जो पञ्चात रहित,

मिथ्याभाववादिक, ईश्वरवादा भङ्गना वेद विरुद्ध है उन्को अर्चनी मानना हूँ"। धर्म अर्चनी की व्याख्या करते हुए लिखा है।

प्रश्न यह है कि धर्म का राजनीति से क्या सम्बन्ध है ?

शासन के उत्तम सन्वाजन के लिये उन्कोने विचार्य समा, धर्मार्थसमा, राजार्थ समा तीन समाओं का निर्देश किया है और राज्य व्यवस्था का स्वरूप निम्न शब्दों में वर्णन किया है।

"राज्य का अधिकार एक को नहीं देना चाहिए, किन्तु राजा को सभापति तदाधीनसभा और सभाधीन राजा, राजा औरसभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे"।

"प्रजा की साधारण सम्पत्ति के विरुद्ध राजा व राज पुरुष कभी न चले" यह जिल्लकर राजा को सचेत किया है, इतना ही नहीं "विशेष सहाय के बिना सुगम को कर्म है वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है। जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म कैसे हो सकता है इधरनिये एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कर्म का निर्भर करना बहुत ही बुरा काम है" ऐसा जिल्लकर मरिचि ने प्रजातन्त्र का आदर्श उदास्यत किया है। शृङ्खला में भाष्यभूमि में मरिचि ने लिखा कि "राज्य के लिये एक को राजा कभी न मानना चाहिये क्योंकि वहाँ एक को मानने है वहाँ सब प्रजा दुम्बी और उसके उत्प पदार्थों का अभाव हो जाता है, इसी से किसी की उन्नति नहीं होती"।

प्रसिद्ध देशमत्त १३० रामप्रसाद, विस्मल ने भी अपने जीवन के अनुभव से प सो के तखने पर भूगने से पूर्व यही कहा था कि वास्तविक क्रान्ति के लिये आचार दृढ़ता, सामाजिक सुचार और शिक्षा की आवश्यकता है बिना इसके क्रान्ति सफल नहीं हो सकती।

चक्रवर्ती राज्य

चक्रवर्ती राज्य के विषय में मरिचि ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा कि "शृङ्खला के सत्त्व नरों ने पूर्ण समय पर्यन्त आर्यों का सर्वोत्तम चक्रवर्ती आर्षान् रूप में सर्वोत्तम राज्य का, अथ देश में माहदलिक आर्षान् छो-

राजा थे"। आर्याभिनियम में भी परमेस्वर ने प्राचीन को है कि "महाराजाधिराज परब्रह्म अक्षरवद चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, वैद्य नीति, विद्वय, पसकम और वनादि उत्तमगुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर।

शिक्षा क्षेत्र में मरिचि ने उपल-पुषल मन्वादी। वहाँ देश अर्धभी शिक्षा के पीछे पड़ था वहाँ आर्य अर्धभी शिक्षा देश के लिये घातक है यह आभाव चारों ओर से आ रही है, और हिन्दी को शिक्षा का मायम बनाने की स्कीमें सोची जा रही है, अनिवार्य शिक्षा आर्य उपाध्य समझी जाने लगी है। मरिचिने अपने अमर प्रथ सत्या प्रकाश में उस समय लिखा है—

"राजनियम और नातिनियम होना चाहिये कि पाचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अरने लड़के और लड़कियों को घर में न रखें। पाठशाला मा अथव भेज ड।"

विदेशीय राजनीति कला कौशल नवीन विज्ञान को समझने के लिये भारतीय विद्यार्थियों को विदेश भेजने की मरिचिने आशयना की। स्व० श्याम भी कृष्ण वर्माको इसलिये इङ्ग्लैण्ड भेजा था। प्राचीन समाजियों तथा ब्रह्मसमाजियों को वेचल इसीलिये बुरा बतलाया कि—

"उनमें स्वदेशी भक्त न्यून है वह विदेशियों की प्रशंसा करते हैं भारतीय महापुरुषों की नहीं। ब्रह्मा से लोहर पीछे २ आर्यावर्त में बहुत से बिद्वन् हो गये हैं उनकी प्रशंसा न करके योरोपियन ही ही स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के बिना क्या कहा जाय"।

इसी प्रकार "ओग को विया का चिन्ह यज्ञोपवीत और शिक्षा को छोड़कर सुपलमान और इहाँयों सद्वर्धन बैठना नर्य है जब पतलून पहरते हो तमनों की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ पढ़ा भार हो गया था"। अष्ट्यना और देशमत्त से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी ऐसी बात नहीं जिस पर मरिचि ने प्रकाश न डाला हो। इतना ही नहीं मरिचि ने कलपूर्वक अनुसोध किया है कि—

“जो उन्नति चाहे तो आर्यसमाज के साथ क्रियमय उसके उद्देशानुसार आचरण करना स्वकार की ब्ये नहीं तो कुछ हाथ नहीं योगा क्योंकि हम और आर्यको उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना और अब भी पालन होना है अगे भो होगा उसको उन्नति तन मन धन से सब बने मिनकर प्रीति से करें। इसलिये आर्यसमाज जैसा आर्यावर्त देश की उन्नति का करण वैसा दूसरा नहीं हो सकता”। यह लिखकर उ होने देश के नाम आर्यल की है, कि आर्यसमाज देश वा हित चिन्तक है। यह दूसरी बात है कि आर्यसमाज ने सामूहिक रूप से राजनीति वा हक नहीं बचाया, परन्तु हकसे इनकार नहीं किया जा सकता कि न्यक्तिगत रूप से कोई भी समाजो ऐसा न होगा जिसे स्वतन्त्रता साम्राज्य के

किमी न किमी पक्ष की गठायना न पहुँचो हो। आर्य समाज के आर्य समाज को देखते हुए ‘इंडिया अनरेस्ट’ के यद्यपि लेखक श्री बल्लेन्टाइन शिगेल ने आर्यसमाज की राखने तक प्रवृत्तियों को देखते हुए लिखा है कि “जहाँ २ आर्यसमाज का शोर है वहाँ २ पर राजविद्रोह प्रबल है”। हिन्दू राष्ट्रपति स्वतन्त्र्य के पुजारी भी साधारण के शब्दों में आर्यसमाज का प्रेम का बननी है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक है कि वह आर्य के पुण्य स्मृति के अवसर पर उनके आदेशों का पालनकर देशोन्नति में लग जाव।

—:—:—

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर

की

नई पुस्तकें

ऋषि दयानन्द विरचित ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का बुक साइज में नया संस्करण छपकर तैयार हो गया है। यह संस्करण २० × ३० = २४ पौड के सफेद बढ़िया कागज पर छपा है। इस पर भी मूल्य बहुत कम रक्खा है। अजिल्द २) रु० और सजिल्द २॥)।

निम्न पुस्तकें छप रही हैं-

१—सन्मार्गदर्शन—श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज कृत।

२—सत्याथ प्रकाश, छोटा साइज।

३—सत्यार्थ प्रकाश का इतिहास।

प्रबन्ध कर्ता—आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर

अमर राही दयानन्द !

घन घोर निशा, बीहड़ जंगल, कांटों से लथपथ पथ सारा ।

था हिंसक पशुओं का विहार, नम बीच न था कोई तारा ॥

सब भटक गए पगदंडी से टोकर खा गिर गिर जाते थे ।

रोते थे भोले भाले जन, रजनीबर खुशी मनाते थे ॥

पर एक पथिक घन तिमिर खोर अपने पर कुछ परिहास लिए ।

जा रहा राह में अविचल, चल उग्रवज्र धुधली सो आस लिए ॥

कितनी जाई उसने टाकर, कितने आघात सटे उसने ।

कितने कांटों से विंग देह, निज्ज । उपवास किये कितने ॥

बड़ी जानता है इन सबको जिनको अपनत्व सताता है ।

जिनकी छाती में धड़कन है, जिनका उससे कुछ नाता है ॥

वह आगे बढ़ता जाता, उसे था भूख प्यास से मतलब ?

वह काटे चुगने आया था उसको पराग से क्या मतलब ?

उसने देखा तम-साम्राज्य, जुट गया दिवाकर लाने को ।

वह मचल पड़ा, बढ़ गया कि फिर यह सोता देश जगाने औ ॥

आया वृन्दा को गोदी में, ब्रज मिला, और दयानन्द मिला ।

मिल गया सभी कुछ उसे वहाँ मानों कविता का छन्द मिला ॥

हो गई पिपासा शान्त, न रह पाया व्याकुल कोई काना ।

कुछ ही दिन में बन गया पथिक, अवदात कसौटी का सौना

फिर निकल पड़ा लेकर गुरु का वह मनोनीत पावन सुराग ।

आवाज लगाई बार बार ओ ! सोने वाले जाग जाग ॥

अंगड़ाई लेकर बड़ा देश अस्तित्व सभी ने पहिचाना ।

राहो की राह खले सब ही जग ने उसका लोहा माना ॥

पर हाय ! भरत के आ भारत ! तूने अपना कर ही डाली ।

उसके उपहारों के बदले दी पिला उस त्रिपकी प्याली ॥

[रचयिता—देवप्रकुमार स्नेहो]

सन् १९०० में आर्य समाज ने शिक्षा क्षेत्र में एक युगान्तर प्रस्तुत किया था। वह ५१ गुरुकुलों की स्थापना। उस युग में आज से प्रायः पचास वर्ष पूर्व वह आन्दोलन नया था, उसके विश्व रूप को रचना तत्कालीन युगनायकों ने की थी वह बड़ी मनोहर, आकर्षक और उपयोगी थी। उस युग के साथ गुरुकुल के उस रूप का समुचित समन्वय होता था। जनता को वह कितना मनोहारी लगा था। इसकी कल्पना भी वे ही कर सकते हैं जिन्होंने उस युग को, और संस्था के उस रूप को देखा था।

वर्तमान के उद्यम में जो सफल मनुष्य को मेलने पड़ते हैं उनमें धराकर वह मर जाय यदि भूत के मयुर स्वन और भविष्य की सुन्दर कल्पनायें उसे सांगना न दें। गुरुकुल खूबने के समय भारत में अग्नेजो सत्ता पैर जमाकर बैठी थी। भारतीय भाषा, वेध, और भावों का विनाश करने के सारे प्रयत्न अग्नेज प्रचारक और राज कर्मचारी कर रहे थे। जिनके हृदय में भारतीयता का

गुरुकुल से कुछ नवीन अनुसन्धान, और शैलियाँ परीक्षित रूप से प्रकट हो जानी चाहिये थीं। ऐसा कुछ नहीं हो सका। संस्कृत न्याकरण कठिन है। युग्य बनाने के लिये कोई परीक्षण नहीं। संस्कृत भाषा की और जनता की दृष्टि कैसे बढ़े इसके लिये कोई साहित्य सरोज नहीं। आयुर्वेद के सन्दिग्ध द्रव्य गुण असन्दिग्ध रूप में जनता के सामने आये, इसके लिये कोई अनुसन्धान शाला नहीं। शल्य, शालाक्य, भूत विद्या, अगददन्त्र, रसायन, और ब जोकरण के क्षेत्रों में कोई विकास नहीं। आखिर ५० वर्षों से इन गुरुकुल की प्रयोगशालाओं में हो क्या रहा है? इस स्वराज्य के दिन के लिये आन्दोलन कर रहे थे, स्वराज्य लिलने पर हमारी संस्था को प्रमुख स्थान मिलने की कोई सूरत नहीं दिखाई देती।

आज देश को कलाकारों की आवश्यकता है। इंजीनियरों, शल्य शास्त्रियों, अर्थ शास्त्रियों, नौविद्या, विमान-विद्या, संगीतज्ञ, राजनीतिक, चित्रकार आदि सभी

❀ युग बदला, आप बदलें ❀

(लेखक—कविराज रत्नाकर शास्त्री, आयुर्वेद शिरोमणि)

प्रेम जाग्रत था, उन्होंने गुरुकुल इसलिये खोले कि भारतीय भाव, भाषा और वेध की रक्षा का बड़ी साधन हो सकता था। निस्सन्देह भारत की भाव, भाषा, और वेध की रक्षा गुरुकुलों से हुई। परन्तु आज से ५० वर्ष पूर्व भारत के भाव भाषा और वेध जिस मूर्च्छित दशा में थे वे अभी तक उसी दशा में गुरुकुलों में सुदृष्टित रज हुए हैं। अध्ययन, अध्यापन के बड़ी दग, रदन-उदहन के बड़ी दर्र, और शिक्षा दीक्षा के बड़ी काल निरु और मौलिक तरीके ही अभी गुरुकुलों की विशेषताएँ बनी हुई हैं। पचास वर्ष पहिले की बीमारी तो अब नहीं रही, परन्तु नुस्खा बदलने की कोशिश नहीं हुई। इसीलिये वह नुस्खा अब मरीज को प्रिय नहीं लगता।

की आवश्यकता है। गुरुकुलों ने इन में से क्या तैयार किया है, और क्या तैयार कर रहे हैं? अभी तक की स्थिति यह है कि गुरुकुलों ने जो स्नातक तैयार किये उनके लिये सारे आर्यसमाज के कारखाने में कहीं स्थान नहीं है और सरकारी क्षेत्र में भी उनकी कोई बकरत नहीं। आखिर ये किस मशीन के पुरले हैं? क्यों फिट होंगे?

पचास-चात्तीस वर्ष पहिले शिक्षा क्षेत्र में कुछ अधिक प्रतिक्रिया नहीं थी। आज तो वह पदे पदे है। आज राष्ट्र निर्माण को बात पहिले, पीछे और कुछ। गुरुकुल का स्नातक सारी परलोक की बातें सुनावा करे तो उसके इस राष्ट्र का क्या भला होगा? अब तो कुछ न कुछ इस

लोक का निर्माण होने की बात भी मोचनी चाहिये। वेद शास्त्रों में इहलोक सभी कुछ है, हम दोनों में विकास की योजना बनायें, तभी हमारे लौकिक और पारलौकिक व्याख्यान सार्थक होंगे। यही लोक परलोक का निर्माण करता है।

आर्य समाज ने कई वर्ष पहिले घोषणा की थी कि हमारा कार्य धार्मिक आन्दोलन है। अर्थात् हम पुरोहितों और पुजारियों के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे। परन्तु श्रद्धि दवानन्द का अभिप्रायः तो राष्ट्रीय दासता और जीवन की प्रत्येक दुर्बलता के विरुद्ध आन्दोलन करते ही रहने के लिये था। हमें गुरुकुल की शिक्षा क इतने ऊचे स्तर तक ले जाने की आवश्यकता है कि उसके स्नातक राष्ट्र की सारी संस्थाओं की प्रतियोगिता में प्रथम रहें। हम शिक्षा में पहिले कदम बढ़ाते जायें हैं। आगे भी प्रथम ही रहना चाहिये।

इसके लिये हमें अपनी विसंगठित शक्ति को संगठित करने की आवश्यकता है। छोटे छोटे तमाम गुरुकुल और सारे के सारे विश्व विद्यालय अपने मुँह मियाँमिडू वाली बात है। मेरी राम में सार्वदेशिक समा इन कास्प-निक विश्व विद्यालयों को एकत्र केन्द्रित करके एक आर्य समाज विश्वविद्यालय का स्थापना करे। निश्चित भविष्यों तक पढ़ने के बाद केन्द्रीय विद्यालय में ही विद्यार्थी पढ़ते जायें और अन्तिम उपाधि एक ही स्थान से मिला

करे। इस प्रकार हम कई गुनी अधिक शक्ति के साथ कई गुना अधिक कार्य कर सकेंगे।

शिक्षा शैली में बड़े परिवर्तन की आवश्यकता है। धारी शिक्षा कियामक अवश्य होनी चाहिए। विकसित शैलियों को प्राचीन शैली के सममर्थ द्वारा आत्मसात् करने की नितान्त आवश्यकता है। बाद रलिये प्रत्येक प्रतिष्ठित पद पर अपने ही स्नातक को सम्मान देने की और हमारा ध्यान अब भी न गमा तो कितना भी बड़ा विश्व विद्यालय असफल होकर रहेगा। यदि लोगों को यह शिक्षा-यत हो कि पद के लिये जो योग्यता चाहिये वह आप के स्नातक में नहीं तो आप ने ऐसे स्नातक की रचना क्यों की है? स्नातक योग्य ही बनाइये और उसका सम्मान कीजिये। सम्मानित स्नातक ही आप की संस्था का सम्मान है। यदि हम अपने स्नातक का सम्मान नहीं करते तो विश्व से हमें और हमारी संस्था को सम्मान नहीं मिल सकता। यदि अब तक के पुरखों में कमी रही है तो आगे मत रहने दीजिये। युग बदला है आप बदलें।



महान् श्रद्धि दवानन्द

स्वामी हयानन्द निस्सन्देह एक श्रद्धि था, सब परिदृश्यों ने उस पर पत्थर फेंके। उसने अपने में महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह आधा तुम्हारे कारागार तोड़ने के लिये, तुम्हारी आत्माओं को बन्धन से छुड़ाने के लिये। वह तुम्हारे समाधि-स्थानों को कोलने आया। वह तुम्हारे राष्ट्र को पुनर्जीवन देने आया।

—श्री पालरिच्चाई (प्रसिद्ध प्रौढ-लेखक)।

श्रद्धा बोधोत्सव के उपलक्ष्य में १५ नवम्बर १९४६ तक

विशेष रियायत ! चार आना प्रति रूपया विशेष रियायत !!

25% SPECIAL
CONCESSION

जाड़े के मौसम में निर्वृत्त और निश्चेतन शरीर में नई शक्ति भरपूर करने के लिये शीतकाल उपयोगी ५ बल-बर्धक उपहार में से किसी एक या दो का आज-से ही प्रयोग शुरू कर नवजीवन (New Life) पूर्ण स्वास्थ्य, और आरोग्यता प्राप्त करें ।

(१) गुरुकुल सिद्ध मकरध्वज (स्वर्णमिश्रित)

शरीर के प्रत्येक अंग, नस, नाडो, पडे को नई शक्ति नवजीवन और चैतन्यदायक सर्वोत्तम रसायन । इन्जेक्शन से श्रद्धिक और टिकाऊ प्रभावशाली कफ वायु नाशक महीषव ।
मूल्य ४० मात्रा ८) रु. रियायती ६)

(२) गुरुकुल बसन्त कुसुमाकर

(स्वर्ण मीठो कस्तुरी युक्त)

शारीरिक, मानसिक तथा वीर्य सम्बन्धी सब प्रकार की खराबी, कमजोरी, मूत्ररोग, मधुमेह (Diabetes) और पुरुष सम्बन्धी (Sexual) रोगों को अचूक औषध ।
मूल्य २४ गोली ६) रु० रियायती ४) रु०

(३) असली सत शिलाजीत

हिमालय पर्वत से प्राप्त शिलाजीत पत्थर मे से विशेष सावधानी तथा वैज्ञानिक ढंग से शुद्ध करने के बाद स्वर्ण-तापी विधि द्वारा तैयार की जाती है ।

मूल्य १ तोना १) रु०

रियायती ॥)

मूल्य १ पीण्ड २॥) रियायती १॥) रु०

(४) च्यवन प्राश

अनुसार तैयार हाता है । इस मे कैल्शियम के अत्यन्त सुपाच्य और पोषक तत्वों के तमावेश से अय च्यवनप्राश की अपेक्षा कहीं अधिक गुणकारी तथा पुरानी खोसी-नजवा एव कमजोरी के लिये अचूक सिद्ध हो चुका है ।

मूल्य एक पाव १॥) । रियायती १।) ।

एक सेर ६॥) रियायती ४॥) रु०

दैनिक प्रयोग के योग्य शुद्ध वस्तुयें

गुरुकुल भीमसेनी सुरमा

आँसुओं की बगैरि को बढ़ाने और ठण्डा करनेवाला सर्व नेत्र रोग नाशक ।

मूल्य ३ मात्रा १) रियायती ॥) रु० । नमूना रियायती ॥)

भास्कर दन्तमजन

दौंतों में पानी लगाना-पीष व खून आना को फौरन रोक करता तथा मुँह की दुर्गन्ध को दूर करता है ।

मूल्य ॥) रियायती ॥) रु०

नोट:—दो रुपये से कम मूल्य के आर्डर पर रियायत नहीं मिलेगी । आर्डर के साथ आधा मूल्य पेयों अवश्य भेजें । एजेन्सी नियम) का डिफिट भेज कर मुफ्त भेगायें ।

गुरुकुल महा विद्यालय फार्मेसी

गुरुकुल ब्राह्मी तेल

शिरो रोग नाशक यह सुवासित तेल दिमागी यकान और बाल कंठ नई होने देता ।

मूल्य १॥) शोशी, रियायती १) रु०

गुरुकुल देशी चाय

सर्दी, रेखा खोसी अर नुकाम से बचानेवाली स्वास्थ्य बर्धक चाय

मूल्य ॥) छुँक रियायती ॥)

पो० ज्वालापुर (हरिद्वार)

पावन-पर्व

कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हारा
उर में हृष-हिलोरें उठतीं पर दग में जल धारा

(१)

भङ्गांजलि लेकर बढ़ता जब
करने को अभिनन्दन
तभी नयन के अश्रु सिंगो
देते] है मेरा बन्दन

रुक जाती बन्दना, वेदना बन जाती है कारा
कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हारा

(३)

होता है विश्वास नहीं
अब भी तुम यहाँ नहीं हो
होता है विश्वास नहीं
अब भी तुम कहाँ नहीं हो

कण-कण रहा पुकार प्यारो हे जीवन ध्रुवतारा
कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हारा

(२)

तुमने तो युग ३ तप करके
कण्ठा ; चल लहराया
हमने एक पल में करवी]
भस्म तुम्हारी काया

युग युगान्त तक बहकेगा अतृताप बना अगारा
कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हारा

(४)

आँसू बनकर अडिग भक्ति
तुम क्षणी के कण - कण में
आओ बनकर अचल शक्ति
तुम जननी के तन मन में

यह विश्व बन जाय तुम्हारी जयका नूतन नारा
कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हारा
—श्री सोहनलाल त्रिवेदी

यदि आज कृषि दयानन्द होते ?

लेख धी धर्मदेव शास्त्री, दर्शन केशरी (देहरादून)

मेरा विश्वास है कि श्रृषि दयानन्द वर्तमान युग को प्रभावित करने वाले महापुरुषों में प्रमुख थे। स्वतन्त्र भारत का जन्म प्रायः केवल श्रृषि दयानन्द का और महात्मा गांधी की ही सहायता से ही संभव था। स्वराज्य और सुरक्षित जीवन के लिए श्रृषि दयानन्द ने कड़ी मेहनत की। हम भारतीय श्रृषि दयानन्द से बहुत कुछ सीख सकते हैं। श्रृषि स्वराज्य प्राप्ति के बाद समाज के नियम प्रवर्धन करना है जिसका अर्थ है समाजिक और आर्थिक क्रांति। प्रायः लोग श्रृषि दयानन्द को सांप्रदायिक और धार्मिक नेता ही मानते हैं। मेरे विचार से श्रृषि दयानन्द का श्रृषि दर्शन है श्रृषि ने वर्ण व्यवस्था को रणनीति श्रृषि चालू करने पर जोर देकर नया नैतिक कार्यक्रम जगत् के समक्ष रखा है, वेदमध्यम मंत्रों का व्यवहार श्रृषि ने अग्नि वायु आदि देवों के नाम करके वैज्ञानिक आधार पर समाज के विकास का विचार किया है, गोरक्ष विचार दृष्टिकोण शुद्ध अधिक है।

वास्तव में हमारा देश राजनीतिक दृष्टि से ही स्वतन्त्र हुआ है सांस्कृतिक गुणों की श्रृषि हमारी शिक्षा में शेष है। जिसदिन हमारा शिक्षित समाज मस्तिष्क स्वतन्त्र होगा

तब श्रृषि दयानन्द के द्वारा प्रतिपादित राष्ट्र निर्माण योजना के प्रति श्रृषि आकर्षित होगा।

१५ अगस्त को एक प्रतिष्ठित आर्य भाई ने मुझ से अर्शन किया कि यदि आज दयानन्द होते तो क्या करते ? मैंने उत्तर दिया

१ शिक्षा संस्थाओं में वेद का पढ़ना अनिवार्य कर देने अर्थात् वेद को योकी बहुत शिक्षा सभी लें इसका प्रचार करते, बल देते।

२ प्रत्येक शिक्षालय के साथ छात्रावास खोलने पर और उसमें सदाचार की शिक्षा पर बल देते।

३ शासन तंत्र को बहुत सस्ता करने पर और शिक्षा का बिना व्यय के चलाने पर जोर देने उद्योग की शिक्षा आनवश्यक करने पर बल देते।

४ चित्र निर्माण और आत्म निर्माण के साथ भारत, नदी नदी विश्व में वेद का प्रचार करने की प्रेरणा करते।

—मुष्य जन्म का होना सयासय का निर्णय करने कराने के नियम हैं, न कि वाद-विवाद विरोध करने कराने का नियम। इना जन्मानन्द ३ विवाद से जगत् में जोर श्रृषि नष्ट फटा हुए होने ही होकर हाने उतहा पलात र हव यज्ञजन ज्ञान लकने हैं। जब तक इन मुष्य जन्म पर श्रृषि मिथ्या मननानन्द के अर्थ वाद न हूँ तब तक श्रृषि का ध्यानन्द न होगा। यदि हम सब

मुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्रव्य छोड़ सयासय का निर्णय करके सय का ग्रहण और श्रृषि का योग करना करना चाहें तो हमारे नियम यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों का विरोध ही ने सबको विरोध जाल में फना रकना है यदि ये लोग अपने प्रयो जन का लिह ररना चाहें तो अभी ऐक्यमन हो जायें।

—दयानन्द



यज्ञ भावना



[लेखक - श्री पूर्णचन्द्र एडवोकेट आगरा]

यज्ञ भावना व यज्ञ कर्म वैदिक धर्म क क्रियात्मक रूप और आगर है। यज्ञ भावना उस सभ्यता को परिचायक है जिसका बिना 17 सारे जगत् म घोर अशान्ति प्रचलित है आतमार धाड़ खचातानी, लूट खसोट आपा धापो छीना भण्डा, र धूरा और व्यक्तियों में सत्रय, पूँजी पति और गराशो को लडाई, जमींदार और किसानों में सत्रय कवन यज्ञ भावना व अभाव क परिणाम के कारण है। युद्ध कलह और भिन्न भिन्न प्रकार के वाद का प्रचलित होना यज्ञ भावना क न होने क कारण है। इस यज्ञ भावना क अभाव ने हमारा दृष्टि कोण उलटा कर दिया है, हम सुख के साधन और दुःख के कार को बाहर देखते हैं और इस बाह्य दृष्टिकोण से हमारी आन्तरिक भाषनाओं का अन्त हो गया है। यज्ञ उस सभ्यता का नाम है जिसका आधार पर हर व्यक्त, और व्यक्तियों क हर प्रकार का समूह केवल अपनी भलाई लक्ष्य में रख कर नहीं करना परन्तु वह सब की भलाई को लक्ष्य रखता है। यज्ञसभ्यता हमें कवन अपनी भलाई का इच्छु वन ही है। सब अपनी भलाई चाहते हैं दूसरा का भलाई का ध्यान नहीं है और धारणाम यह होता कि कसी की भी भलाई नहीं होता नर लान से दूसरे को को हानि और दूसर व लान से मुक्त हो जाती है। परिणाम हानि ही है। यज्ञ भावना का व्याव-

हारिक सभ्यता का अग्र बनाने के लिये ऋषि द्यानन्द ने आर्य समाज का दमवा नियम निर्धारित किया है। आर्य समाज के दस नियम आर्य समाज को एक विशाल यज्ञ को हमारे सामने रखते हैं। यज्ञ के तीन रूप हैं देव पूजा सगति करण और दान। पहले चार नियम देव पूजा सम्बन्धी हैं पंच से नौ तक सगति करण क और दसवा दान के रूप में हैं। यह आर्य समाज रूपी विशाल यज्ञ सारे विश्व को यज्ञ मय बनाने के लिये रचा गया है। यज्ञ भावना क बिना सगति करण एक भयानक और हानिकारक रूप धारण कर लेना है। सगति करण जीवन और उसका अभाव रोग या मृत्यु है। सगति करण का आधार देव पूजा और उसका व्यवहारिक रूप दान है। तप-त्याग और बनिदान सब दान के अन्तर्गत हैं केवल सगति करण की पुकार ने आज सारे ससार को एक युद्ध क्षेत्र का रूप दे दिया है। राष्ट्र निर्माण राजनातिक दृष्टि से सगति करण क प्रचलित रूप है, परन्तु राष्ट्र क निर्माणो में देव पूजा अर्थात् व्यवहारिक आस्तकता क अभाव से राष्ट्र स्वाथसि क गुट्ट हा गय है और इस गुट्ट को मन बुनि ने हानि और धारा की राजना का अन्त कर दिया है आज सारा ससार बावनक लगभग राष्ट्रा में विभाजित है। सब राष्ट्र अपने को सगति डित बनाना चाहते हैं, अपनी सीमा को सुरक्षित

और अपनी प्रजा को सुखी देखना चाहते हैं। प्रचलित विज्ञान ने सीमाओं को परिभाषा बिल्कुल परिवर्तन कर दी है। देश और काम का अन्तर दूर हो गया है। नये श्रृणुकारों ने और तेज बाहनों ने भौगोलिक और प्राकृतिक आधार पर राष्ट्रों की सीमा को तोड़ फाँड़ कर चकनाचूर कर दिया है। सागर पहाड़ और वन सब अब सीमा का रूप धारण नहीं कर सकते। विज्ञान ने सबको मिला देने के उपाय प्रस्तुत कर दिये हैं। जब बाह्य सीमाएँ मट रही हैं इन्द्रिय जगत में स्वार्थ रूपों सीमा बढ़ जाता जा रहा है और इन्द्रिय जगत की सीमाओं का विराल प्रारम्भ मर्यादित केवल यज्ञ भावना ही कर सकती है। विशाल रात्रनैतिक और विशाल अर्थशास्त्र को विशाल धर्म ही मर्यादित कर सकता है और धर्म का विशाल रूप ही यज्ञ भावना है। यज्ञ किसी एक क्रिया विशेष का ही नाम नहीं है। अग्निहोत्र या हवन उसका एक रूप है। देवयज्ञ भी केवल घृत और सामग्री डाल कर जलाने का नाम नहीं है। देवयज्ञ सारी दैविक शक्तियों से समन्वय उत्पन्न करने के लिये रचा गया है। यज्ञ की विधि में ईश्वर प्रार्थना आचमन अग्न्याधान, समिधाधान इत्यादि सब विधियाँ तप और याग का वातावरण उत्पन्न करने के लिये हैं। वेदी के मध्य में जब हम अग्नि प्रज्वलित करते हैं उस समय हमारा लक्ष्य विशाल पृथ्वी और अज्वल दिव्य लोक है।

अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं को उत्पन्न करने के लिये अग्न्याधान करते समय जो भावना उत्पन्न होती है वह महान लाभदायक है। यज्ञ करने वाले के अन्दर प्रकाश और पृथ्वी दोनों होते हैं और कोई देश विशेष, जाति विशेष या समुदाय विशेष नहीं होते। वही में यज्ञवदा को पृथ्वी का कन्द्र माना है। यज्ञ भावना जा यज्ञ द्वारा उत्पन्न होती है वह भावना सारे ससार को एक सूत्र में बाँध देती है। इसीलिये तो महर्षि ने

आर्यसाम्राज्य के छोटे नियम में ससार के उपकार करने को आर्यसाम्राज्य का मुख्य उद्देश्य बताया है। जब तक भारतवर्ष में वर्तमान रणार्थों में राष्ट्र निर्माण को भी कल्पना नहीं थी महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र निर्माण की सारी रूपरेखा सार्वार्थ प्रकाश के छोटे सम्मुल्लास में निरूपित कर दी है उनके ससार निर्माण का विधि में एक ग्राम से प्रारम्भ होकर सार्वत्रिय प्रकृतिक रूप में बढ़ जाता है। सब स्वयं न रहने हुए भाग्य के द्वारा क सहायक और पुष्ट कर जाता है। और इस ससार की निर्माण की विधि का आशा और अन्तर् यज्ञ भावना है। लक्ष्मी नाम ही नहीं, देना देना सोचना आवश्यक है। देने की भावना से मिलना स्वभाविक और अनिवार्य होता है। देने की भावना से जो मिलता है वह तोयप्रद और अभिमान रहित है। लक्ष्मी की भावना से जो मिलता है वह असतोय प्रदा करने वाला और अमान पूर्ण है। मिलता देना महर्षि परम्परा से मिल मिलकर लाख का घर खाना में हो जाता है और देने की भावना सभ्यता में आना निकल आता है। खाक स्वर्ण का रूप धारण करती है। आन्न कल की लक्ष्मी की भावना ने मारो की सभ्यता को प्रचलित किया है। देने की भावना प्रेम की भावना को विस्तृत करती है। अन्न कल के दुखी और अशान्त ससार को महापद दयानन्द की यज्ञ भावना सम्पन्नोत्सव को घर में पहुँचा देना है। इस संदेश का पहुँचा देने के लिये दानक पत्र एक अन्नूक साधन है, श्रृणुपत्र मध्यम उपलक्ष्य में आर्य मंत्र के पठक आर्य मंत्र को दैनिक रूप देने के लिये कटिबद्ध हो जायें, तो श्रृणुपत्र का प्रचलित किया हुआ यज्ञ बनता है।



प्याख्या करके सुन्दर तथा सयस्कर जनता के सामने रखा। आदिध्यानकार पौरुषयुक्ता तथा विनियोगविधि की खनन प्रथम वटाप्रो में छपा हुआ वेद-भाण्ड उस सरस्वती के वर पुत्र पीर व्यानन्द को कृपा से सङ्ग्रहण की भास्ति

प्रती के प्राङ्गण में फिर एक बार उदय हुआ। एक बार फिर संसार ही वेदों की श्रौर लौट चलने के लिये उर्क ठठ कर दिया। यही ऋषि दानन्द की महानता है।

रक्तवधक सुन्दर सुन्दर सुन्दर

डा. आर्यभित्र

किस प्रकार के प्रश्न हैं (1) किस विभाग में
किस प्रकार हैं। (2) किस प्रकार हैं। (3) किस
हैं। (4) किस और किस हैं। (5) किस, कौन
का और किस हैं। (6) किस, कौन
और किस हैं। (7) किस हैं। (8) किस
किस और किस हैं। (9) किस हैं। (10) किस
किस हैं।

डा. आर्यभित्र (डा. आर्यभित्र) लिमिटेड, कलकत्ता।

ऋषि दयानन्द तथा याज्ञिक प्रक्रिया

[लेखिका - भ मनी सुशीला देवी विद्यालयात, साहित्य रत्न]

याज्ञिक प्रक्रिया आर्य संस्कृति में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। इसका उद्भव व उत्थान भारतीयों की आध्यात्मिक भावनाओं का प्राबल्य से हुआ प्रत्येक साक्षात्क जीव कर्मों का बन्धन में उलझा हुआ है। वेद कश्चां म मत्तुष्य ऊपर नीचे तथा मध्य में वरुण क पाशा स यन्धा है। योगदर्शन कर पतञ्जलि क शब्दा -

फलेशमूल कर्माशय दृष्टाद्य ज म वेदनीय ।
कर्माशय-कर्मों का जाल फलशमूलक है। इन वरुण के पाशों तथा कर्मों के बन्धन से मुक्त होने के लिये मत्तुष्य ने यज्ञ का ही आशय बनाया। यो राज कृष्ण ने भी 'यज्ञार्थात् कर्मणोऽयत्र लोकोऽय कर्म बन्धन कह कर यज्ञार्थ किय गय कर्मा क सिवाय अन्य कर्म बन्धक होते हैं यही सिद्ध त स्थापित किया है। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर अग्निहोत्र को ऋषियों ने प्रतीक क रूप में सामने रखा हम पापों को जलावें। पापों को जलाने के लिये अग्नि की अक्षयकता है। उसी अग्नि की प्रतीक यह बाह्यअग्नि है प्रात साय मत्तुष्य अपने पापों का दाह को नष्ट करे। अग्निहोत्र में 'अयन्त इधम आमा जातवेद स्तेनध्यस्व वर्षस्व चैद वर्षे चान्मान प्रजाया पशु न ब्रह्म यक्षसेनाज्जाय न समेधय' यह मंत्र पढ़कर इद मनय इदधमम्' यह पाप मरा नहीं। यह वक्र कर मेरा नहीं अग्नि का है ऐसा एक बार नहीं पांच बार पाठ किया जाता है। अग्निहोत्र क अन्त में भी:-

'पूर्वमद पूर्णमिदम्' का उच्चारण करते हैं।

'अद पूर्णम्' वह मत्तुष्य है। 'इद पूर्णम्' यह प्रकृति भी पूर्ण है। इन दोनों के मध्य में मैं ही अपने वक्र कर्मों का कारण अपूर्ण हूँ। यज्ञ द्वारा मेरे कर्मों का वक्र व नष्ट हो जायगा तो तो अत्र सप्त वै पूर्ण स्वाहा।

सभी पूर्ण हो गय वाह वाह !

प्राचीन आर्य ज्योति के उपासक थे।

प्रात साय अग्नि होत्र में -

ओ सूर्यो ज्योति ज्योति सूर्य स्वाहा।

ओ अग्नि ज्योति ज्योतिरग्नि स्वाहा।

का पाठ है ज्योति सूर्य है, सूर्य ज्योति है। जब मैं भी अपना अज्ञान धकार दूर कर ज्योति स्वरूप बन जाऊगा तब मैं भी सूर्य आदि य' कहलाने का अग्रहारी हो जाऊगा। अग्नि ज्योति है ज्योति अग्नि है मैं भी अग्नि क समान प्रकाशमय बन पाऊ ज्योति स्वरूप मत्तुष्य पूर्ण है, ज्योति स्वरूप बन कर मैं भी पूर्ण बन जाऊंगा।

आर्यों का प्रत्येक कार्य यज्ञमय था। यज्ञ मंत्र पूवक होने से प्रत्येक कार्य मंत्र पूर्ण करना आवश्यक किया जाता है। मत्तुष्य से वैव बननेके इच्छुक गीर्वाण वाणी ग्रथवा वैदिक भाषा का प्रयोग करते थे। वेद की रक्षा का भी उन्होंने यही उपाय उपयुक्त समझा। इस तरह याज्ञिक प्रक्रिया तथा विभिन्न योम विधि का सूत्र पात हुआ। आर्यों की कर्माशय की फांसी से उन्मुक्त होने का भावना ही याज्ञिक प्रक्रिया का प्राण है।

याज्ञिक प्रक्रिया कुल उदात्त भावनाओं की प्रतीक मात्र है। विनियोग विधि से वैदिक कर्म कार्ड को प्रधान मानकर या वेद मंत्र केवल विधि परक अथवा मंत्रों के अर्थ को ही विधि समझने से मंत्रों का महत्व व रचना आत्मिक लौन्धर्य नष्ट हो गया। बाह्य कलेवर ही सबकुल समझा जाने लगा। ऐसे समय में ऋषिपते जनताके सामने बल्लके असली स्वरूप को रखा। विनियोग विधि के रहस्य को स्पष्ट किया। उदाहरणार्थ 'मनोरश्वासि' का प्रर्थ सायण ने किया है विनियोग विधि के अतुसार 'मत्तुराजा की घोड़ी', अपौरुषेय वेदों में मत्तुराजा तथा उसकी घोड़ी कहाँ से आ टपके ? ऋषिपते इसका निरुक्त शंली के अतुसार अर्थ दिया " हे खो ! तू मनः अश्वासि ! मेरे मन में व्यात है इस लिये " नाध्नाभ्रस्पाहि " दुराचारिणी स्त्रियाँ से मेरी रक्षा कर।

निर्वचन से अश्वा का अर्थ हुआ व्यात होने वाली। इसी प्रकार यह शाला में विनियोग होने के कारण पुत्रपत्नी का अर्थ पृथ्वी भी किया जाता है। पत्नी के लिये पृथ्वी शब्द का प्रयोग उसके युधतीपन को सिद्ध करता है। विवाह सस्कार में पति 'द्यौरह पृथ्वी त्वं' मंत्र पढ़ता है यहां भी पत्नी के लिये पृथ्वी शब्द का प्रयोग होता है। 'क्षेत्र भूता स्मृता नारी' कह कर इस बात की पुष्टि की है। इस प्रकार इस 'अनर्थ' का ऋषि ने प्रतीकार किया।

संपूर्ण वेद मंत्रों को सायण, महीधर प्रमृति ने वेदों को यह प्रधान मान याज्ञिक प्रक्रिया में भी घटाया है। जहाँ कभी भी 'मर्त्य' शब्द आया वहाँ सायण महाशय मर्त्यः का अर्थ मरण धर्मा करते हुये भी आगे यजमानः अर्थ कर देते हैं।

मर्त्यः मरणधर्मा यजमानः । ६ । २ । ४

क्रिष्वे जनासः, विश्वे सर्वे जनासः ऋषेवतः

४ । २३ । ३

जनानां-यजमानानां पुत्रादीनाम् ६ । १ । ५

इसी प्रकार विमः, विशः, जन्तुः, दाष्टप, मत्तुष्यः, कविः, मधुमन्, अयंमणः, मरुत् पिष्ट, सृष्टिः, कृष्टिः, धीरः मनीषी, मुमुक्षु इन शब्दों को भी जिनके अर्थ सरल तथा स्पष्ट हैं सायण ने यजमान या ऋषिजों के पक्ष में घटाया है। रत्न शब्द का अर्थ रत्न-रमणीय हविः १ । १५-१-२० । रमणीय हवन सामग्री किया है। ऋषि ने आकर वेदों का सच्चा स्वरूप सामने रखा। याज्ञिक प्रक्रिया को रहस्य समझाया। वेदार्थ सम्बन्धी अज्ञान को दूर कर लभ्यार्थ का प्रकाश किया। जर्मनो का प्रसिद्ध वेद भाष्य कार 'रुडोल्फरोय' सायण को दफनादो कहने लगे, वेदों को गडरियों के गीत तथा बच्चों की विलविनाहट बताने वाले 'मेकाले' की सन्तति भी अपने विचार बदलने के लिये वाधित हो उठी। मैक्स-मूलर के मुह से भी बरबस निकल पड़ा 'वेदों के अन्दर के दार्शनिक विचर हमें चकरा देते हैं। किसी भाषा के ग्रन्थ ने जो काम नहीं किया वह वेदों ने कर दिखाया है, जिन्हें अपने व अपने पूर्वजों का अभिमान है, बौद्धिक विकास को इच्छा है उन सब को वेदों का अभ्यास करना नितान्त आवश्यक है।'

ऋषि के भाष्य के द्वारा ही वेदों को पवित्र शिक्षाओं पर सुग्रह होकर प्राकृति विकासवाद के स्युक्त प्रवर्तक 'डाक्टर अलफ्रेड' लिखते हैं—
"सूक्तों का आश्चर्यजनक संग्रह जो वेद के नाम से प्रसिद्ध है पवित्र और उदात्त शिक्षाओं से भरा हुआ है। इसी प्रकार अमेरिकन योगी 'योरियो' तथा 'रेबरेन्ड फिनिक्स' आदि ने भी वेदों को एक दिव्य प्रकाश-स्नग्म, सार्वभौम, ईश्वर तथा जगत् विषयक अत्युत्तम शिक्षाओं के प्रतिपादक मानकर सामाजिक विकासवाद का खण्डन किया है।

तापर्यं यह कि ऋषिपते याज्ञिक प्रक्रिया में बुरी तरह उलझे हुये वेदों को, आर्यशंली के द्वारा

ऋषिराज

[ले० श्री० चहोरी लाल शर्मा उपाध्याय किकर]

ऋषि तू जीवन का अलंकार ।

तेरी पावन श्रुति या तो का व्यापकता है कैसी अगर ।

तू जीवन तरल तरङ्ग का शुद्धि सुन्न का शोभामयना ।

माया की विकृत कुटुम्बों का, तू विद्वान् स्वताज बना ॥

तेरी सवाये प्रकाश का मूल है, आत्मक जगत् सारा है ।

विशु की उस सर्वमयी सत्ता का, दर्शक तुही पिथारा है ॥

तू मानव में मानवता का करन धारा है सु अंसार ॥१॥

ऋषि तू जीवन का अलंकार ॥

तू विश्व विजेता शूर वाग, तू एक निराला धर्मवीर ।

स्वच्छन्द राष्ट्र का निर्माता, तू धोन्धार और धर्मवीर ॥

आ ? युवक आश्रय पर चल तू जीवन नैयाम्यक दुतरे ।

धन्वन्तरदुव का अलंकार कह आदि व्यापक मालि हरे ॥

“किकर” का चोरी नी है तू निर्भाव हाकर निनकर विहार ॥२॥

ऋषि तू जीवन का अलंकार ॥



जग उठी आज रजनी काली ।

विशु ने रनातकक तम की, अर्पण की यह भीतम थाली ।

यह पुण्य स्मृति का विराय एक, यह एक निन्तु जीवन अनेक ।

मानवता का सन्देश एक, ऋषि एक कस्तु दानव अनेक ॥

उस व्यात आत्मा की ध्वनि ले है धमिल मानवी खु जहाली ॥१॥

जग उठी आज रजनी काली ॥

हे ! आर्य-वीर तुव भाव एक, हे ध्यय एक औ ज्ञेय एक ।

ऋषि की बाणी का भार एक ऋषि जीवन का आधार एक ।

शुचि 'सत्यमेव जयो' तुदेक 'कहर' का जग रजवाती ॥

जग उठा आज रजनी काली ॥

बरेली में महर्षि दयानन्द

ले० श्री चन्द्रनारायण

एम० ए एल० एल० बी०

★

महर्षि बरेली में दो बार पधारे। ऐसा उनके जीवन चरित्र में लिखा है। ये बरेली के प्रसिद्ध रईस श्री लक्ष्मी नारायण कर्जौषी की विख्यात कर्मोरी कोठी में ठहरें थे। यह कोठी बरेली नगर से तीन मील है। सन् १८६३ ई० में बनी थी फारसो का एक शंकर कोठी के ऊपर अङ्कित है। महर्षि प्रथम बार सन् १८७६ में पधारे, द्वितीय बार १४ अगस्त सन् १८७६ को आये। आज से ७० वर्ष पूर्व की बात है।

कोठी अथ बुरी दशा में है। निकटवर्ती ग्राम के एक व्यक्ति ने मुझे वह कमरा दिखाया जिसमें स्वामी जी ठहरें थे। थोड़े दिनों पूर्व तक वह यह शाला विद्यमान थी जहाँ स्वामी जी यह किया करते थे। अब वह भी प्रायः नष्ट हो गई है। स्वामी जी नियत रात से पहर भर रात रहे और भी ताल पर जाय करते थे। शोच आदि से मार्ग में निवृत्त होकर ताल में स्नान करते थे। तत्पश्चात् संध्या व योगाभ्यास करते थे और निवास स्थान पर लौट आते थे। उन दिनों स्वामी जी वेद भाष्य कर रहे थे उनको सेठ लक्ष्मीनारायण जी ने २००) भाष्य के हेतु दिये थे।

बरेली में स्वामी जी का आगमन बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। निम्न सायंकाल को 'टाउन हॉल' में व्याख्यान होने : ये जिनमें नगर के प्रतिष्ठित जनों के इतिहासिक शासक जन भी पधारे थे। पादरी स्काट स्वामी जी के व्याख्यानों को

बड़ी तत्परता से सुनते थे और नित्य ही आते थे। रविवार होने के कारण एक दिन वह न आ सके। पूजा 'आज भक्त स्काट नहीं दिखाई दिये' लोगों ने कहा महाराज आज इतवार है। गिरजे में उपदेश दे रहे हैं। कहा "बल्लो - भक्त स्काट का गिरजा देख आवे।" लगभग दो सौ व्यक्तियों का समूह साथ हो लिया। गिरजा निकट हो था। वहाँ पहुँचने पर जब भक्त स्काट को स्वामी के अकस्मात् पधारने की सूचना हुई तो पुनःपिट से उत्तर आये और महाराज का अति शिष्टाचार पूर्वक स्वागत करके धर्मोपदेश की प्रार्थना की। महा राज ने पुलपिट पर ऊड़े होकर २० मिनट तक उपदेश किया कि मनुष्य की पूजा मत करो नि ईश्वर निराकार है, एक है उसी की उपासना करनी योग्य है। उपस्थित ईसाइयों ने बड़े प्रेम से महाराज के उपदेश को सुना और सत्कार पूर्वक विदा किया।

इन्हीं पादरी स्काट से १४, १५, २१ अगस्त को स्वामी जी से टाउन हाल में शास्त्रार्थ हुआ। उभय पक्ष की सम्मति से सेठ लक्ष्मी नारायण ही मध्यस्थ निर्वाचित हुये। ईश्वर जीव और मुक्ति विषय पर विचार हुआ। जिसका संक्षिप्त वर्णन जीवन चरित्र में दिया हुआ है।

स्वामी जी समय पालने में रक्ष रहते थे एक दिन व्याख्यान में नियत समय के पश्चात् पहुँचे, मन में कोढ़ था। व्याख्यान में कहा कि देर में आ

में मेरा अपराध नहीं, यह बच्चों के बच्चों का दोष है। यान यह थो कि मेठ जी की गाड़ी प्रति दिन स्वामी जी को लेने जाया करती थी। उस दिन गाड़ी देर में पहुँचा किन्तु स्वामी जी निश्चित समय पर ही पैदल चल पड़े थे।

मूर्ते पूजा का खण्डन सनातन धर्मावलम्बियों को प्रसह्य था, वे ई न अपरिचित थे। पुराणों को ही सब कुछ समझे बैठे थे। अर्वाला निवासी श्री पंडित अमर शास्त्री को शास्त्रार्थ हेतु बुलाया गया शास्त्री जी एकद भी थे और वाक्पटु भी किन्तु महात्मा से शास्त्रार्थ करने में हचकिचाने थे। डीगे मरते थे। शोभा बघारते थे किन्तु सम्मुख जाने से कतरते थे। एक दिन एक कोनाहन कारी सन्तुह को लेकर पहुँचे और काठो के बाहर खड़े हाकर कोलाहल भी मचाया और स्वामी जी को अपराध भी कहे। चाल यह थी कि इसी प्रकार महाशय की सभा में ब्राकर कोनाहल मचा कर धापित कर दें कि दयानन्द हार गया। सेठ जी का इसका पहले से ज्ञान हो गया था। इन सब को काठो में आने से रोक दिया। यह लोग वने हा क वाहन करते हुये चले गए। शास्त्री जी क सुपुत्र प० दुर्गादत्त भार के ब्राक में स्टेनन मास्टर थे। प्रायः समाज से सहायुभूत रखने थे किन्तु अपने पिता की विजय का गव स वर्णन करते थे।

स्थानीय गवर्नमेंट हार् स्कूल क सस्कृतध्यापक श्री लवनश शास्त्री भी शास्त्रार्थ करते प्राय। सस्कृत सम्भाषण प्रारम्भ हुआ। स्वामी जी ने शास्त्री जी को सस्कृत की अशुद्धियाँ बतवाई इस पर शास्त्री जी निस्तेज हो गए। स्वामी जी ने मूर्ते पूजा का वेद से प्रमाण मांगा। तो शास्त्री जी ने कहा कि वेद कहाँ है ? वेद को तो शंखापुर पाताल में ले गया। तब स्वामी जी ने वेद की पुस्तक दिखाकर कहा कि, हम ने तुम्हारे प्रमाद रूपी असुर को मार कर वेद जर्मनी से मंगाये है दिखानाओ इसमें मूर्ते पूजा का बिधान कह, है ? इस पर शास्त्री जी चुप हो गए।

बरेतो में स्वामी जी के व्याख्यानो को बड़ी धूम थी। यहल्लो नर नारो व्याख्यान सुनने जाने थे। प्रारम्भ में 'अभिर्भू' का सस्वर नाद करने फिर व्याख्यान प्रारम्भ करते एक दिन व्याख्यान में श्री रीड कामरनर, श्री भलेत्तएडर कलेक्टर आदि भी विराजमा थे। स्वामी जी ने पुराणिया का खण्डन किया कि यह डो गरी के पांच पान बताते भी नहीं लजाने और नार उभे कन्या कहते भी सकोच नहीं करते। इन पर सब लोग बहुत हँस। अत्रज शानक भी हने। स्वामी जी ताउ गव, और प्रसंग बदनकर किरानिया पर आत्प काया कि यह निराकार प्रभु पर भी दोष लगात म नहा हचकिचाने जा कारी मरियम क पेट से ईसा की उपात बताते हैं। इन पर अत्रज नाग मनने कुपित हुये। दूसरे दिन कनकटर ने सेठ जी का बुनाकर कहा अपने पंडन से कह दो सक्ता स काम न लें हम किरातो तो शान्त स्वभाव कह किन्तु यवन आदि उग्र होते है" आदि आदि।

कनकटर को यह डाट सुनकर सेठ जी के पेट में पानी हो गया। तुलन स्वामी जा न पास गय बोले "स्वामी जी"—महारज ! कनकटर साहब प्रागे कहने का स इन न हुना। युक्त मुशायान ने सेठ जी को प्राराहट देखकर यस्तविक बात कहना चहो स्वामी जी ने बोच में हा राक कर कहा कि साहब ने यही ना कहा है कि—"स्वामी क व्याख्यान में मता का खण्डन बहुत नहीं होना चाहिये" एक पौराणिक यह सुनकर बोवा-स्वामी जी तो अन्नर्यामा है और पलजना न नावने लगा मुशी राम ने कहा कि "हाँ महाराज, बात तो ऐसी ही है। इस पर स्वामी जी ने हँसकर कहा कि यह बात पहले ही क्यो न कह दी, व्यर्थ समय क्यो नष्ट किया ? उस दिन के व्याख्यान में स्वामी जी के बदन पर विशेष तेज था बाणी में विश्व गान ग कवा "लोग कहने हैं कि मन्त्रो बात मत कर न कटर कुल हो जायेगा क मन्त्र नारागट न डान देंगे, गवर्नर देश निकाला कर देगा। अरे!

खकरोती राजा भी क्यों न हाँ दयानन्द उद्योग करेगा जो सत्य है। सत्य को सत्य कहने में न्यमात नहीं होना चाहिए, इच्छाओं वह कौन व्यक्ति है जो मेरे आत्मा को मार सकता है आत्मा अमर है। कमिश्नर और काक्टर सब ने यह शब्द सुने, गर्दन मुक गई, सभा में चारों ओर सन्नता था, अन्ध्या मगान् ने जडबद्ध पर विजय पाई।

स्वामी जी का बरेली पधारना एक दैवा घटना थी। विधाता की आर से प्रेरणा थी कि वे बरेली पधार कर एक नास्तिक को अपना सच्चा अनुयायी बना डालें। मूर्तिपूजक पिता नगर कोतवाल श्री नानकचन्द ने अपने नास्तिक पुत्र मुशीराम को कहा—“मुशीराम यहाँ एक स्वामी आया है उसका व्याख्यान सुन आ सम्भव है कि वह तेरी शहाओ का निवारण करे। पिता का यह उलहना सुनकर मुशीराम व्याख्यान सुनने गए। महाराज की प्रबल युक्तियों का हृदय पर प्रभाव पडा। एक दिन निवेदन किया—“महाराज आपकी धान तो समझ में आती है, किन्तु हृदय को विश्वास नहीं होता”। उत्तर मिला—“इश्वर तर्क से नहीं, विश्वास से ही मितता है जब उसको कृपा होगी तब वह तुम्हारे हृदय में भी विश्वास अकुरित कर देगा”। साचत थे कि यह अग्रजी से अनभिज्ञ बृहद कमण्डलुकारी स्वामी पैली धान की बातें कैसे जानता है? कुतूहलवश स्वामीजी की सेवा में नित्य जात रहे। बरेली में प्रसिद्ध है कि एक दिन महाराज चारों तरफ ताज के समीप बैठे योगाभ्यास कर रहे थे। भूमि से बालिशत नर रूपर उठ गए। यह चमत्कार देखकर नास्तिक मुशीराम ने चरण मस्तिर मुका तथा गुरु ने मूकवाणी से हृदय आशुवाद दिया। शिष्य ने अपने जीवन में गुरु क अजीबों की मार्ग कर दिखाया। उसी मार्ग से (बलदान मार्ग) से संसार का परत्याग किया जिस मार्ग से गुरुदेव ने किय था। ईश्वर पर ऐसा विश्वास हुआ कि धर्मियों के आगे सीना आँसूकर बड़े हो गये।
कल्प युव ! कल्प शिष्य !!

महाराज जिस समय बरेली में थे—तो अनाथों और विधवाओं के दुःख से दुखी थे। बरेली में हिन्दू बच्चों को आठ आठ आने में ईसाइयों के हाथ बिकते देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा। बरेली के नागरिकों को अनाथालय और विधवा आश्रम खोलने का आदेश दिया। तत्कालीन हिन्दू कार्यकर्त्ताओं ने महाराज की प्रेरणा पर बरेली में अनाथालय स्थापित किया। उत्तरी भारत में यह दूसरा अनाथालय था जो स्वामी जी के आग्रह से खुला।

प्रसिद्ध है सेठ लक्ष्मी नारायण के पास वैश्या थी। स्वामी जी के धर्मोपदेश से सेठजी ने उसका परित्याग कर दिया।

गुरुकुल कांगड़ी और उसके प्रवर्तक महात्मा मुशीराम का बरेली के शिष्यों पर विशेष प्रभाव पडा। इनमें से मुख्य श्री बाबू प्रमनारायण तथा डा० श्यामस्वरूप ये बाबूजी ने गोशाला, सरस्वती विद्यालय और अकृत पाठशाला स्थापित की डाक्टर जो ने श्री सुधार महाविद्यालय और कल्याणी पाठशालायें स्थापित की। श्री पंडित इन्द्र विद्याचक्रपात, प० बुद्धदेव विद्यालकार, प० मङ्गलच विद्यालकार ने साहित्याचार्य प० शालप्राम शर्मा और श्री रामलोचन शास्त्री से शास्त्रार्थ किये। प० रामचन्द्र देहलवा व प० काली चरण ने मुत्तलमान मौलवियों से मन्तजेर किये।

आज भी बरेली में सरस्वती इन्टर कालेज, डी-ए-सी स्कूल, श्री-सुधार महाविद्यालय, आर्य कन्या पाठशाला हाई स्कूल भूक, आर्य-कन्या पाठशाला जयशम, २३ कल्याणी पाठशालायें कार्य कर रही हैं।

माहूर कुरान मु० बल्लभमसाद मौनवों फाजल आचार्य (श्वभवा, प० विधासागर वदा लकार जैसे योग्य व्याक डा० सत्यव्रत की छत्र छाया में ह। पाच सदस्य से अधिक आर्यसमाजा है—किन्तु बिकरे हुये। ईश्वर ही दया करे!

भारत अब पराधीन था अब आर्यसमाज का कार्य देश को स्वाधीन होने योग्य बनाना था। आर्यसमाज ने इस महान कार्य को अपनी शक्ति से अधिक किया। परन्तु आर्यसमाज के कार्य की इसके साथ 'दृति भी' नहीं हो गई। आर्यसमाज का काम समाप्त नहीं हुआ है, वह और बढ़ गया है। अब आर्यसमाज के सामने सबसे बड़ा कार्य यह है कि वह देश को इस योग्य बनाये कि वह अर्थात् स्वाधीनता की रक्षा कर सके। प्रश्न यह है क्या आर्यसमाज परिवर्तन के कारण बदले हुए कर्तव्य के महत्त्व को समझा है और उसके लिये अपने को योग्य बनाया है।

आज स्थिति क्या है? अर्थात् दयानन्द स्वराज्य के लिये जिस उच्च उदात्त और निष्कलक चरित्र को आवश्यकता बताते थे, उसका जनता में ही नहीं जननायक में भी अभाव पाया गया। फलतः भ्रष्टाचार और उसके कारण अज्ञान मद्धगी के कारण आज बारी और बाहि प्राहि मनो हुई है। प्रश्न यह है इस स्थिति से देश की रक्षा कौन करेगा ?

आर्यसमाज को ईंटों का भंडा बनाया जाता था जिसको ईंटें जिस गिरी इमारत में लगती थी वह इमारत मजबूत और मजबूत होती थी १९२५ म मयुरा म अर्थात् दयानन्द की जन्म शताब्दी मनाई गई थी। पाँच लाख से अधिक व्यक्ति उस अनुभव और दिव्य उमाराह म सम्मिलित हुए थे। पर उसका कुल व्यव कितना था? इसके मुकाबिले में जयपुर कांग्रेस के अधिवेशन की रत्निर ५० लाख ६० से अधिक खर्च हुआ। निस्संदेह भीष भाङ्ग प्यदा थी, मुद्रास्फीति का भी अर्थ था। पर आर्यसमाज की मितव्ययिता और समाज के कार्यकर्त्ताओं की ईमानदारी को इस प्रसंग में न भूलना चाहिये। जयपुर कांग्रेस के अधिवेशन के बाद स्वामीर समित के प्रतिारिवा पर ना दावापारम्य क्रिय गये बाद उनका ध्यान म रखा जाय, ता धार्मिक जीवन और सगठन में विमुक्त चरित्र का महत्त्व और अधिक स्पष्ट हो जयगा। आवश्यकता इस बात का है कि चारित्रिक विमुक्तता की अपनी इस विशेषता और अपने इस उरुह युग का अमान प्याक सेव म प्रचार और प्रसार करे।

आर्यसमाज का जो कोई व्यक्ति जिस किसी सभा में जाय, वहाँ समाज की इस विशेषता को प्रकट हुये बगैर न रहने दे।

यथा भारतकार ने एक बगह लिखा है —

स्वा
धी
न
भा
र
त
और
आ
र्य
स
मा
ज

“जानामि धर्म न च मे प्रवृत्ति ।

जानाम्यधर्म न च मे निवृत्ति ॥”

भारतीय जनता की आज - ही अवस्था है। अर्थात् हम यह न सुनते कि तीन अरब बनाया इन्कमटेक्स देने वाले सरकार को नजरो से बचा ले गये और उन्होंने बकार भी नहीं ली। हमारा देश कृषि प्रधान देश कहा जाता है, पर आज शुद्ध धी और दूध के इस देश में दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। न्यूयार्क और लन्दन म छ आना सर शुद्ध दूध मुलम है, पर दिल्ली में १ ६० सेर का शुद्ध दूध दुर्लभ है। आत्मा की चिन्ता में भिरत भारत आज 'टका धर्म' का इतना कहर अनुभायी हो गया है नगद नारायण का पूजा के सिवाय और किसी की पूजा में उसका विश्वास ही नहीं रहा। आज यदि इस देश म भगवान साक्षात् अवतार लें — यदि यह सम्भव हो—और कहें कि धम का यह पव है, तो देश प्रतिष्ठ लोग भी उसपर चलेंगे यह सदिष है। उनको भी भगवान वास के समान वाष् हाकर बहा करना पड़ेगा —

“ऊर्ध्वबाहु विरोधेभ्यः,
न हि कश्चित् श्रुयति मे ॥”

भारत की युव आत्मा के जगाने का महान् कार्य आज इसलिये आर्य समाज के सामने है। धर्म भावना पुन भारतीयों के हृदय में प्रतिष्ठित हो, सच्चे धर्म का राज्य भारत में पुनः स्थापित हो, और अणु युग के मुकाबिले म रत म धर्म युग को प्रतिष्ठा हो, यह आर्य समाज हो कर सकता है। सेवा जिनकी कृति न हो, पर सेवामय ही भिन्ना जीवन हा, और त्याग जिनके जीवन का उल्लेख न ही, बल्कि अत हो, ऐसे आर्यसमा के कार्यकर्त्ता ही अर्थात् दयानन्द की सिद्धा ही कि-रुष मिशनको सफल बना सकते है और दुनियाको अपने आपन, प्रभुहृर

से बता सकते हैं कि इस अणु युग में भी गुरु श्रुति बशिष्ठ का यह बचन श्रुत रूप है।

“यिक् बलं क्षत्रिय बलं ।

ब्रह्म तेजो बलं बलम् ॥”

कुम्भ के अवसर पर गंगा के पवित्र तट पर श्रुति दयानन्द ने ‘पालखद खरिबनी पताका’ फहराई थी। दरबार में कुम्भ पुनः आ रहा है। देखना है, श्रुति द्वारा फहराई ‘प्रथम पताका’ झुंकने न पड़े! हम देखें श्रुति द्वारा फहराई पताका को उठाने की शक्ति हमारे बाहुओं में है या नहीं। हमें सोचना है, जिस पालख का अन्त करने का बीड़ा श्रुति ने उठाया था, क्या उसका अन्त हो गया? जिस आचारा अज्ञानान्धकार को दूर करने का महा प्रयत्न श्रुति ने किया था, क्या वह पूर्ण हो गया? आज भी क्या हमारा शिष्टित समाज हरिजनों से दूषा नहीं करता, और उनका अपनी बराबरी में बैठने देने का नाम तो दूर रहा, उसको घर के बरामदे तक में आने देने के लिए उद्यत नहीं। मानवता का यह अपमान क्या—

“यथेमां वाचं कल्पयिषी मानवानी जनेभ्यः ॥”

के उद्धोषक मानवमात्र के समानाधिकार के प्रबल समर्थक श्रुति दयानन्द के अनुयायी रहन करेंगे? आज भी मानवता पीडित दलित, और शोषित हैं। उसकी रक्षा का भार आर्य समाज के विचार्य उठाने वाला कौन है?

ब्रिटिश शासन ने इस देश में सुन्दर न्याय पद्धति की स्थापना की। पर उसके कारण श्रुतिवादी और अज्ञान का अन्त नहीं हुआ। मद्रास जैसे शहर के पास के गांव में दिम्ब-परीक्षा का लिया जाना, और एक स्वामी का भूत्यों पर चोरी का संदेह होने के कारण उनको उबनते तेल में अंगुली डालने के लिये कहना अन्धविश्वास और रुढ़ि पूजा का परिणाम नहीं तो क्या है? भूत-प्रेतों पर आज भी विश्वास जनता का बना हुआ है। आज भी लोग इस निधि के लिये देवी-देवताओं को मानता मना रहे हैं। आज भी अपनी सन्तान को सुखी देखने, अपने को रोम निहत्त करने के लिये मुद्रस्ते और गयी

म खेलने दूसरे बच्चों को गरम लांछे से दागने से नहीं चुकती, उच्च शिक्षित भी दहेज लेने के लोभ का संयम करने में असमर्थ है, और ऐसे आर्यसमाजियों की कमी नहीं, जो आज भी चानीस साल शुद्ध हुये आर्योपदेशक को अपने घर पत्तल में ही भोजन देते हैं। इसलिए यह सोचना कि श्रुति दयानन्द ने पालखद खरिबनी पताका जिस उद्देश्य से फहराई थी वह पूरी हो गई है, अनभाव है। आर्य समाज के लिये आज पहले से भी अधिक काम है। आर्य समाज की परीक्षा का समय वस्तुतः अब आया है। नवीन भारतीय समाज की नींव में देने के लिये वस्तुतः उसके पास कुछ और सामग्री हैं, इसका परिचय अब विश्व को मिलेगा। नूतन भारतीय समाज का आचार क्या हो, इसका निर्णय मात्र यदि आर्य समाज प्रदान कर सका, तो वह भारत की हो नहीं, अग्नि विश्व की भी अनुपम सेवा करेगा और एक ऐस सावन की सृष्टि करेगा, जो उसके आदर्शों के अनुकूल होगा।

आर्य समाज एक देगीय नहीं है। श्रुति का संदेश भी एकदेशीय नहीं है। आर्य समाज का विषय उन ऋषिपुत्रों तक भी सीमित नहीं है जिनमें भारतीय बसे हुये हैं। प्रस्तुत वह सर्वदेशीय है, और उषका मिशन भी सार्वजनीन है। अणु युग में द्रते द्रते पैर बढ़ा रहा संसार विनाश से, और सहार से भाग चाहता है। विश्व की दो महान शक्तियों की प्रतिस्पर्धा के कारण भावी महायुद्ध के कारण होने वाले महा विनाश से मानव की रक्षा कौन करेगा? क्या आर्य समाज मानव समाज की इस समय रक्षा के लिये आगे नहीं बढ़ेगा? अलखनन्दा की चोटी पर खड़े हुए जिसके संस्थापक ने विश्व को मुक्ति में अपनी मुक्ति मानी, उसके अनुयायी क्या आज कर्तव्य से विमुक्त होंगे? आज से पचीस साल पहले (१९२५ में) श्रुति की अन्त्येष्टिताम्ही पर मरुत की गलियों को जिन लोगों ने अपने इस संकल्प से युजा दिया था:—

“यदा बहेनी फिर प्रेम गंगा
 ओ संसार की ताप माला हरेगी”।

आज वही लोग क्या भिन्नाश और बच-रचन की ओर विवशता के साथ बढ़ने रहे मानव समाज की रक्षा । पुण्य-सन्तान न होंगे ? अगुण्यता का प्रयोग मानव समाज का सर्वनाश कर देगा । आज आरम्भिक और आध्यात्मिक श्रमोक्ति को प्रवर्धित करने से ही मानव-समाज की सर्वनाश से रक्षा सम्भव है । आर्यसमाज आर्थिक और कोई स्थाय इस महान कार्य को करने के लिए उद्युक्त नहीं है । दीपमाला के दिग्गज प्रकाश के

साग श्रमि ने आर्याय ज्योति को इस दिन मिला दिया था । आज पुन लौकिक और अलौकिक को मिलाने, की आवश्यकता है । क्या आर्य समाज श्रमि के श्रम से उद्युक्त होने के लिए मानव समाज की श्रम-बर्मा के प्रहार से रक्षा करने लिए आगे नहीं बढ़ेगा ? श्रमोक्ति उससे आस्तिकता को चुनौती दे रहा है । क्या इस चैलेंज को स्वीकार करने से आर्यसमाज इन्कार करेगा ।



विश्रुतियों को

हायता मिल रही है !

आरम्भ में आर्याभ्यास करने और लक्ष्य करने वाले जा विद्यार्थी आर्यानों का पोषण व्यवहार में लाने से है, यह और कपड़े कान हा जाने यदि की अनेक कठिनाइयाँ का अनु करते थे । अब 'सहायक' पट्टी लेप केतनों का सर्वोयोगी काला पानिथ) व्यवहार से समस्त कठिनाइयाँ और विश्रुतियों दूर हो गईं । सबको लाभ देने का अवसर है । मूल्य केवल दो । प्रयोगविधि सरल है । आर्यापत्रों (विक्रान्ता) को सुविधा में है । विशेष रण्य और नन्ना आज ही मंगाइये ।
 त्त—आर्यस्य सहायक - सदन,
 अमरोहा (सुरदावायद)

१०० रु० इनाम

एक मित्र महात्मा की बताई श्वेत दुग्ध की अद्भुत जड़ी जिसके चन्द रोज़ के ही लगाने से सफेद केश जड़ से आराम । अगर आप हजारों डाक्टर वैद्य कविराज की दवा से निराश हो चुके हैं तो भी इसे एक बार सेवन कर इस महान् दुग्ध रोग से छुटकारा पावें । अगर विश्रुत न हो तो -) का टिकट भेज करके शर्त लिखा लें । गुण हीन होने पर (१००) इनाम । मूल्य लगाने की दवा २), खाने की ३।) ५०
 पेशी मेजने से आधा दाम माफ ।
 पता—वैद्यराज सूर्यनारायण सिन्हा
 हन्नीपुर पो० परकमतराय (पटना)

आवश्यकता

भमती परीणकारिणी समा के आधीन दधानन्द वैदिक पुस्तकालय के लिये एक मैनेजर की आवश्यकता है । वेतन योग्यता अनुसार १५० रुपये तक दिया जावेगा । हिन्दी शिक्षा में योग्य होना चाहिये । अर्जियाँ दो: बा: भी हरबिलास जी सारदा, हरनिवास, सिविल लाइन्स, अजमेर के पते पर भेजें ।

विज्ञापन व्यापार का साधन है ।

उत्कृष्ट पुस्तकें

- १. वेदक सम्पत्ति (सजिवद) ६)
- २. गीता-रहस्य (तिलक) १॥॥) ४.११)
- ३. कर्वाण प्रकाश १॥॥) उर् ३)
- ४. इष्टान्त सागर सजिवद २॥॥)
- ५. लक्ष्मी देवियाँ सजिवद १)
- ६. बयान-द चरित्र २॥॥)
- ७. बाल्यव्य नीति ॥॥)
- ८. सुमन सम्राट् (प विहारी लाल) २)
- ९. स्वयं नारायण की कथा ॥)
- १०. धर्मशास्त्रा (॥) प्रति १२) सेकडा
- ११. आर्य ससम ॥)
- १२. पाक विज्ञान सजिवद ३)
- १३. नारी धर्म विचार १॥)
- १४. धरेलू विज्ञान सजिवद २॥॥)
- १५. संगीत स्त प्रकाश सेट ३॥॥)
- १६. भास्व वर्ष का इतिहास सजिव ॥)
- १७. मुसात्रि भजन वकी ११)

हवन बुध लोह १), तापा ३), हवन-सामग्री १) सेर, जवेऊ १) बोकी
हसक अलावा हर प्रकार की पुस्तकों के लिए बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाकर देलिये। पता बहुत साफ सफ लिखिये।

श्याम लाल बसुदेव भोवसीय
आर्य पुस्तकालय-बरेली

“जमींदार” निरश न हों

क्या आप इनलिये निराश हैं कि आर्यकी जमींदारी समत हो रही है जिसके परिणाम नरून आर्यको आपका भविष्य अ-वक्र-रमय प्रतीत हो रहा है? यदि हा, तो आर्यको यह जानकर उपन्नता होगी कि हमारे पास आर्यकी विन्ता दूर करने के उत्तम मायन हैं। आर्य श्रौचमिक एव व्यापारिक काय की ओर आरण, हमारे पास आर्यके लिये बहुत सी याजनाएँ हैं जिनसे आर्यको उत्तम आवाक-लाभहागा। कृपा पत्र लिखें या प्रतिनिधि भेजकर इन योजनाओं की समझ लें - भवदय -

स. च. व. आर्य

प्रो: आर्यन इन्ड इस्टियल एन्ड कान्शियल कारपोरेशन
'साकेत भवन', इण्टी क-रबाव, पो ब. ३३३, कानपुर
(तरता पता - 'अर्यनोक', कानपुर)

गुरुकुल वृन्दावन आयुर्वेदिक
प्रयोग शाखा

द्वयवनाश

बल वीर्य
बुद्धि मूर्च्छा वायक रक्त
शोथक शक्ति वर्धक है तैपैविक क्षय
पुरानी स्त्रीसी रोग हृदय धडकन
कफ रोग नाशक है। मू. ७) सेर

परगण

स्वप्न दोष की हर्षिका

अशक्ति नपुमकाय, प्रमेह, धीर्य कि
आदि पर लग्न वायक है। मू. ६) से
कम मूर्च्छा मुक्त

देई। शाखा-नई। इंडल सानकर ३ १५५ ॥ ॥ ५१०॥

विलकुल मुफ्त

जातीय जीवन के गुण प्रशनों का मेद समझकर एतारिण ७ मासिक शक्ति प्राप्त करने का सरल मार्ग बतातेवाली **दमार्ति-वैकी**। पुस्तक बिना डाक-पत्रें भुपत भेजी जाती है। अ नी प्रति आबही मंगावये **मदनमंजरी फार्मसी ताप्रनगर**

“शुद्ध मधु”

आज कल बाजारों में नकली 'शुद्ध' बहुत बिक रहा है इसके रूधन से अनेक रोग की वृद्ध होती है। हमारे यहाँ इमान्य का शुद्ध 'शुद्ध' सदा नयाय रहत है। एक बार इवश्य ही प्रयोग करें।

थोक और फुटकर भार के लिये हमें लिखिये।

पता—गुरुकुल फौजदी फार्मसी (हरिद्वार)

ऑकार कैमिकल वर्क्स हरदोई यू० पी०

की कुछ परीक्षित चमत्कारी रामवाण औषधियाँ

ट्राकेमीन

श्राल के नये, पुाने रोरे (कुकर), ाला, माड मुन्व, तिमिर, कुना, परागन, मालियाधि द, नान्वा, आँसु दुखना, नागन, दलका, नेत्रो को म्गति कम हो जाना, कश्मे की आदन इत्यादि नेत्रो के समस्त रोगो को दिना आपरेशन दूर करके नेत्रो को रोगान गलने में परीक्षित महीषधि है। मूद्र १) रु०, १२ शंशी लेने पर एक शीशी इनाम।

एफ़ीडल

कठिन से कठिन धीम दमा व खाँसी को २० मिनट में आराम और एक सप्ताह में दायरो आराम करता है। पहली मात्रा हो महा पौर दमाके सकट को औरन शांति कर देती है। मूद्र ५० खुराक ५॥ १०० खुराक १०) कर।

तीन दिन में तीनों का मुँह काला

कृन्	नुसकता	कुष्ठ	आतशक
कर्म	१२॥)	१०॥)	७॥)

उपराक तीनों रागों को चाहे वे कितने ही भयकर

नये या पुराने क्वी न हों, हमारी यह अचूक दवाएँ शंतिवा ३ दिन में ही लाभ दिवाती है। यदि लाभ न हा, तो दाम वापसी की गारटो।

गलित कुछ या श्वेत कुछ, गम, उपदरा, नपुंसकता का कोई भी कारण हो, परन्तु बनाबट न कमी न हा। दवा मंगाते समय रोग का पूरा हाल लिखए। मर्चाई की परीक्षा ही ए० वसीटी है। उचर के लिए जवाबी पत्र और आर्डर के साथ एडवांस आना लाजिमी है।



पता:—राजवैद्य डाक्टर जोहरी ओङ्कार कैमिकल वर्क्स हरदोई यू० पी०

गलत है कि वे श्रोत्राद् वाले श्रोत्राद् वाले नहीं हो सकते।

हर खी माँ बन सकती है

६ दिन में शंतिया गर्भ महा योग

जिन माता बहनों को अज तक कोई सन्तान नहीं हुई है जिन्हें सवार बनया (बाक) कहती है। २। जिनके एफ सन्तान होकर फिर बन्द हो गया जो काकवन्द्या कही जाती है। ३। जिनके मन्तान हो हो कर बराबर मरती गई है जो मृतवत्या कहाती है। ४। जिनके गर्भ उदरता नहीं या बार २ गिर जाया करता है। ऐसे समस्त दोष निवारण के लिए इनारी परिक्षित औषधिया रामबाण हैं। इनारी खाली भोई भर चुकी है आप भी एक ार अवश्य परीक्षा करके अपनी खाली भोई सन्तान जैसे अन्ध पशु से भरने। यदि लाभ न हा तो दाम वापस को गारटो।

वन्ध्या - बाकत दोष निवारक दवा-१ रिा में शांतिया गम स्थापित हो जाता है, मूल्य १५०, कुन कोर्स।

काकवन्ध्या-१ सन्तान होकर फिर न होना मूल्य १०॥)

मृतवन्ध्या-मन्तान हो होकर मरती जाना मू० ११॥) गम रक्तक व पोषक-गर्भ वात कदापि न होना मन्त. १२४ पुष्ट, और पूरे दिन है होगी। १ मास को दवा का मूल्य १०॥ पूरा कोर्स ७०) औषधि दो मास के गर्भ से हो सेवन करानो होगी।

दवा मगात समय अपना पूरा हाल व उचर के लिए जवाबी पत्र आना चाहिए। एडवांस कम से कम २) अवश्य भेने।



दैनिक

डेढ़ लाख के लगभग
हिस्से प्राप्त

आर्य मित्र प्रकाशन
लिमिटेड द्वारा दैनिक गाय
मित्र क प्रकाशन का प्रबन्ध
भिया जा रहा है। मैशीनें
मगवाने की आद्योजना हो
रही है। उच्चन जन की व्य
वस्था होते ही पत्र का
प्रकाशन आरम्भ हो जायगा
डेढ़ लाख हिस्सों का
धन प्राप्त हो गया है। एक
भाग २५) का है।

आ

य

मि

त्र

लाभ रूपा और

आर्य पुरुष का कर्तव्य

वर्तमान परिस्थिति में

आर्य समाज को अपने

विचार व्यक्त करने क लिय

एक दैनिक पत्र की आवश्यकता

को सभी आर्य पुरुष

अनुभव तो करते ह परन्तु

विशेष ध्यान नहीं देने यह

कार्य छोड़े प्रयत्न से ही

सम्पन्न हो सकता है य द

आर्यपुरुष अपने उत्तरदायि

का पूर्ण करने का पण

कर ल।

❀ आर्यमित्र प्रकाशन लिमिटेड ❀

५ हिल्टन रोड, लखनऊ

आशामित्र

ज्ञानानि समिभते

❁ क्रान्ति के अग्रदूत ❁



❁ महर्षि दयानन्द सरस्वती ❁

साम

ऋष्यद्व

जयन्त



अमर ज्योति की



शाश्वत किरणें

जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रति-पादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहावा जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए। किंतु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना जिज्ञाना और मानना सत्य कहावा है।

सत्यार्थ प्रकाश (भूमिका)

वैसे परमेश्वर के सत्य न्याय दया सर्व सामर्थ्य और सर्वज्ञ-रक्षादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीव के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है उसके गुण कर्म स्वभाव भी सत्य होते हैं इसलिए मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही को स्तुति, मार्थना और उपासना करें उतने भिन्न को कभी न करे। (स० प० १ समुद्रलाव)

वह कुल धर्म्य ! वह सन्तान बढ़ी भाग्यवान् । जिनके माता और पिता धार्मिक विद्वान् ही को गर्वभाव से लेकर जब तक पूरी विद्या न होना तक सुप्रोचना का उद्देश्य करें। (स० प० २ समुद्रलाव)

जो कोई रवियों के योग से (कर्म से) वर्ष उपस्था माने और युग कर्म के योग से न माने तो उ जसे पूजना चारिण कि जो कोई खरने वर्षों का छोड़ नीच अन्वय अथवा कुरकीन सुवर्तमान हा गया हो उतका भी ब्राह्मण करो नह। मानते । तब वही कहोगे कि उतने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिने धरजिए वह ब्राह्मण नहीं है, इससे यह भा सिद्ध हावा है कि जो ब्राह्मणवादि उत्तम कर्म करते हो, वे हो ब्राह्मणवादि और जो नीच भी उत्तम वर्षों के गुण कर्म शाश्वत वावा होने ता उतको भी उत्तम वर्षों में, और उत्तम वर्षों य ही के नीच काय करे तो उतको नीच वर्षों में गिनना अवश्य चाहिये। (स० प० ४ समुद्रलाव)

जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मत मतान्तर का विषद्वन् वादन लूकेगए तब तक अशोभ्य को आनन्द न होवा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईश्वरों के प छोड़ सत्यावरण का निर्धाय करके सत्य का ग्रहण और अज्ञाय का त्याग करना करना चाहे तो हमारे किये वह बात अवश्य नहीं है।

(अनुभूमिका ११ स०)





वार्षिक मूल्य ६।
एक मति =)

श्राय्यमित्र

इस अङ्क का
12) छ डाला

वर्ष ५२

दीपवली, ता० ६ नवम्बर १९५० ई०

३६५२

जीवन - धन

गिरि, गह्वर, नदी, ताल, सागर
नारे, कछोर, गृह, ग्राम, नगर,
मन्दिर, मठ, मस्जिद, गिरजाघर,
मैं फिरी खोजती धन - उपवन,
तुम मिले न मेरे जीवन - धन।
व्रत, वद्यान, उपास किये,
तप साधे तीर्थ - प्रवाल किये,
निश्च - जालर सकट - जाल दिधे—
हो गया खूब कर काँटा तन,
तुम मिले न मेरे जीवन - धन।
भूनी, भटकी, बड़काई मैं,
रोई, घुट - घुट धनराई मैं,
प्रियतम का पता न पाई मैं,
आगई करा, बाना योवन,
तुम मिले न मेरे जीवन धन।
तम मिटा दिव्य दर्शन पाये,
मखु - मखु मैं देव दृष्ट आये,
भर भङ्ग स्नेह से अपनाये,
हो गई मूक, अर उपर्ये कथन,
तुम मिले न मेरे जीवन - धन।



रचयिता—श्री प० हरशंकर शर्मा 'कविरत्न'





दयालु दयानन्द (लेखक - श्री प० राजशुक्र चुरेन्द्रजी शास्त्री)



जमेर में आना सागर का बड़ा ही सुन्दर, चित्ताकर्षक एवं मन मोहक दृश्य है इसी लिए अनेक नर नारी वहाँ जाते हैं। विवेकानन्द श्री भूतमिय नाम के दो विद्यार्थी भी यहा उस दृश्य को देखने के लिये गये। सीढ़ियों पर पैर लटका कर आना सागर की विस्तार तरंगों को देख कर अग्नि मन को प्रमुदित करने लगे। अकस्मात् भूतमिय की दृष्टि उधर गई जहा अनेक नर नारी विरक्त व्यापार होकर शान स्वभाव से बैठे थे। उसने विवेकानन्द से पूछा भाई विवेक ? यह अप्रार जन समूह वहा क्यों है ? क्या तो रहा है ?

विवेकानन्द—प्रदे भूत ! यह स्वामी का वाग है प्रथोत्त बहा ही महर्षि दयानन्द जी महाराज की श्रुति है हुद थी। आज 'दयाली का दिन है। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सन्वत् १९३० में के ही दिन देह शीपक को लुकाया था और के नाम में ज' विज्ञाने थे। उन्ही की जीवन पट प्रों को सुनकर आनन्द की अज्ञ तरङ्ग गगन में गोते लगाने के लिए ये सब समुत्थित हैं। भूतमिय, भाई विवेक ! यदि आप कुछ न नते दो ता मुझे भी सुना दो ?

विवेकानन्द, अच्छा भाई भूत ध्यान से सुने मे सुनाना हूँ।

जैसा इनका नाम है वैसे ही ये थे, अर्थात् इन के नाम में दया है इसलिए ये बड़े ही दयालु थे। बीच में ही भूतमिय पूछ बैठे कि इन की दयलुता क्या थी ? कोई घटना सुना दो।

तुम बच की घटना क्यों सुनना चाहते हो मैं प्रारम्भ से ही सुनाता हूँ ऐसा विवेकानन्द ने कहा परन्तु नहीं नहीं मुझे प्रारम्भ की घटना नहीं सुननी है अर्थात् दयालुता की घटना ही सुनाओ। भूतमिय ने अप्रार्थ किया।

विवेकानन्द—अच्छा सुने, बच की

घटना ही सुनलो: -

जिला बुलंदशहर में दर्शवांस एक ग्राम है गया के किनारे पर है, वहाँ एक दिन ठाकुर कर्णसिंह ने तबबार से और उसके साथी ने लाठी से स्वामी जी महाराज पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण को स्वामी जी ने रोक दिया। अन्ध अनेक भक्तों के अप्रार्थ करनेपर भी पुलिस में इसकी सूचना न की। जीवन जी गोसाईं ने बचदेवसिंह के द्वारा स्वामी जी को विप दिवाने का उपक्रम किया था, इसके निरन्तर भी स्वामी जी महाराज ने कोई कार्यवाही न की।

अनूपशहर में एक व्यक्ति ने पान में विष दे दिया। स्वामी जी महाराज ने उस विष को योगिक क्रिया से निकाल दिया परन्तु उस व्यक्ति को कुछ नहीं कहा। जब स्वामी जी महाराज को यह शत हुआ कि वहाँ के तहसीलदार सैयद मुहम्मद ने उनको हवालात में बन्द करा दिया तो स्वामी जी ने यह कहकर उस व्यक्ति को हवालात से निकलवा दिया कि मैं किसी व्यक्ति को बन्द कराने के लिये नहीं आया हूँ प्रत्युत कैद से छुटाने के लिये ही आया हूँ। इसी प्रकार की अन्य अनेक घटनाएँ उनके जीवन की हैं। इसलिये उनका नाम दयलु दयानन्द था। भूतमिय—क्या अप्राराची को दयलु दिवाना दयालुता है ?

विवेक नद—नहीं नहीं, अपराधी को दण्ड दिलाना तो दयालुता नहीं है परन्तु स्वामी जी महाराज का व्यवहार ऐसा था कि उनके व्यक्तिव पर कोई आक्रमण करे अथवा उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति का अपहरण करे तब तो दया का दरिया बहा देते थे जब कोई सार्वजनिक जीवन के सुन्दर सिद्धांतों को समाप्त करने की कुचिन्ता करे अथवा सार्वजनिक संघर्ष को स्वाधिकार से करने का प्रयत्न प्रयत्न करे तो दयलु देने अथवा दिलाने का प्रयत्न प्रयास करते थे। उदाहरणार्थ एक घटना प्रस्तुत करता हूँ। ध्यान से सुनो।





भा० श्री चौ० गिरधारी लाल जी मंत्री एक्सहाइज तथा जेल विभाग का संदेश

“भेरा विश्वास है कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने अचक प्रयासों से वैदिक उरुहति के पुनर्जागरण तथा उसकी ग्वावहारिकता की वृद्धि के लिये जो कुछ किया, उतना किसी एक व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं है। जगतक आर्यमित्र प्राप्त स्मरणीय स्वामी जी के कार्य सम्पादन के लिये अग्रणी शक्ति बना रहेसा, तबतक मेरी तथा मेरे जैसे सभी लोगों की सद्भावना इसके साथ रहेगी। मुझे प्रसन्नता है कि आर्यमित्र का दीपावली अङ्क निकल रहा है। मुझे हृदय में तनिक भी शदेह नहीं है कि यह अङ्क हमारे सामाजिक जीवन को आलोकित करेगा। इसकी सफलता के लिये अपनी सद्भावना मेरने में मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है।

गिरधारीलाल

पुंशी बलतावरविह ने कुछ कपये प्रेष के गवन किये थे इसलिये स्वामी जी महाराज ने सेठ कालीचरण रामचरण को पत्र लिखा कि “बलतावरविह ने टाहप, कागजात, प्रेष की वस्तुओं और बाहर की छुपाई में से हजारों रुपयों का गवन किया है। जो भद्र पुरुष ठकके कागजात को देखता है, दानों नीचे अगुनी दवा योक्त से कहता है कि उसने ऐसा क्यों किया,” जब उसकी चोरी सिद्ध हो गई तो हमने नालिय करने से पहले चाहा कि उससे दिशाब समक लेना अवश्य उचिन है। ‘इसी पत्र में आगे लिखा है कि’ यदि वह यहाँ आगवा और पंचायत करके हिसाब का फौसला कर दिया तो अच्छा है नहीं तो यह मामला अदालत में अवश्य जाया। ‘आगे फिर हमको कोई दोष न देना क्योंकि हमने केवल परकार्य और श्वदेशोपति के कारण अपने समाधि और मरदानंद का छोड़कर यह काय प्रहस किया है। पुनः इसी पत्र में आगे लिखा है कि “जो यह केवल हमारा ही धन होता तो कुछ पनाह न थी परंतु यह सब संसार का धन है।”

पुनः एक पत्र सेठ निर्भयराम जो को लिखा कि “प्रथम तो पंचायत निपट जाये तो बहुत ही अच्छा है। दूसरे नहीं तो उस पर दिशाब वहमा को नालिय और जो जब भी न माने तो पीजदारी वा दीवानो में दावा किया जाये”

इसी पत्र में आगे पुनः लिखा है कि “और जो तुम इसका प्रबन्ध कुछ न करोगे तो ऐसी लूटमार से हमारे पास के पुस्तकालय भी

कोई लूट लेगा। वेद भण्ड्य आदि सब काम छोड़ देंगे। केवल एक लगेटी लबाके अन्द में विचरेंगे”

भुतप्रिय - दण्ड दिलाने के लिये ‘यहाँ तो स्वामी जी महाराज बड़े समुद्रुक प्रतीत होते हैं। दण्ड दिलाने पर दय लुता क्यों रही ?

विवेकानन्द - अरे भुतप्रिय : तुम बड़े ही भोले व्यक्ति हो। दण्ड दिलाना ही तो बड़ी दयालुता है। यदि दण्ड न दिलाया जावे तो वह व्यक्ति अन्य अन्य उग्र अच करने पर उतावू हो जायगा उन अन्य अनेक उग्र पापों का फल दुःख जन्म जन्मान्तर में भोगना पड़ेगा। दण्ड मिलने से अपराध न बरेगा अपराध होने से जन्म जन्मान्तर से बच जावेगा। दण्ड में कैसी सुन्दर दयालुता है। इसलिये महर्षि दयानन्द जी महाराज का नाम “दयालु दयानन्द” सार्थक हो है।

ऐसा सुनकर भुतप्रिय ने दोनों हाव ठोड़ी के नीचे रख कर कुछ सोच कर कहा कि भाई विवेक ! दण्ड और दयालुता को मैं अब समझा हू। अब तो यहाँ चलो और महर्षि दयानन्द जी महाराज के जीवन की कृति को अवश्य कर अपने जीवन को उस सुन्दर सिद्धांत के सत्य में परिणत करने का मञ्चु प्रयास करे। दोनों ही चल शिये और वहाँ जाकर उन्होंने क्या सुना यह पाठक भविष्य में “आर्य मित्र” में ही पद सकेंगे।





प्रचार योजना और उसकी सफलता

दुः ख है कि आर्य समाज ने अपने सबसे बड़े काम को सुझा दिया। समय जबकि वैदिक धर्म के प्रचार को अधिक आवश्यकता थी, हम लोग उस काम को छोड़कर साधारण निर्वाचन तथा रोटिन वर्क में लग गये। पहिना का जोय और सत्परता जाती रही। अनेक सस्थाओं को छोड़कर अपनी शक्ति को उधर छोड़ दिया। उन सस्थाओं को स्थिर रखने के लिये दिन रात बन जमा करने में लग गये देश में जो कुतिया फैली हुई है उनकी खडना का फालोचना बन्द कर दी।

मेरी ४०, ५५ वर्ष की समाज सेवा में ऐसा गम्भार समय कभी नहीं आया जैसा यह है। अब भी यदि हम लोग अपने और अपने कर्तव्य को समझे तो अनाथन वैदिक धर्म का प्रचार कर सकते हैं और ऋषि ऋण को थोड़ा बहुत चुका सकते हैं।

वैदिक धर्म के प्रचार के दो ही प्रकार हैं एक मौखिक तथा दूसरा लेख द्वारा। हम इन दोनों की सजावट रूप से नहीं कर रहे हैं। हमारे देश में स्कूलों और रास्तों की कमो होते हुये भी बहुत से लम्बे चौड़े और कच्छे मार्ग हैं जो उत्तर प्रदेश के एक छिदे से दूसरे छिदे तक पहुँचते हैं और आजकल के मोटर और बस क युग में यदि हम प्रयत्न करते तो कच्छे दो बार उपरेशक और भ्रमनीक भी प्रत्य में बहुत बड़े भाग में वैदिक धर्म का प्रचार कर सकते हैं।

मेरे एक सुभाव है जो उत्तर प्रदेशीय आर्य जगत् के सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ। मुझे आशा है कि आरी भई पहिन इष पर गम्भरता पूर्वक विचार करेंगे और उसे सफल बनाने का प्रयत्न भी करेंगे।

सुभाव यह है कि एक विशेष प्रचार यात्रा बान तैयार कराया जाय उसमें ४५ उपरेशक और भजन मंडली के यात्रा करने, रात्रि को सोने आदि की व्यवस्था की जाय। एक छोटा सा शामयाना और डेरा भी रखा जाय। प्राइकोफोन तथा लाउडस्पीकर भी लगाये जाय। प्रान्त के एक छिदे तक प्रचार कराया जाय। नगरों के अतिरिक्त बहुत से, प्रान्तों में भी इत



लेखक

प्रकार प्रचार हो जाय। पहिले से ही प्रोग्राम तैयार करने से नगर और ग्राम समाजों के आर्थिक उत्सव भी बहुत थोड़े व्यय में हो सकेंगे। यात्रा में व्यय भी कम होगा। और देल यात्रा में जो कठनाइयाँ होती हैं वह भी न होंगी।

ऐसा बान बनाने और उपरोक्त बस्तुओं में सुसज्जत करने में १०,२५ हजार रुपये से अधिक व्यय न होगा। अनेक समाजों २५ अथवा ५० वर्षीय जयन्ती (जुबली) समारोह पूर्वक मनाती हैं जैसे कि अभा हाल में प्रयाग की कटरा आर्य समाज मनाने जा रही हैं। ऐसे उत्सवों के लिये बहुत आचन इकट्ठा किया जाता है। यदि कोई समाज ऐसे बान बनाने के लिये उस एकत्रित धन में से पर्याप्त राशि व्यव कर दे तो उस बान का नाम उस समाज पर रखकर



श्री मदनमोहनजी सेठ रि० जज कार्यकर्ता प्रवान आ० प्र० समा उत्तर प्रदेश





कर्त्तव्य की पुकार

[श्री आनन्द स्वामी सरस्वती]



भी १ मीठी ब्रेड से भाद्र पद तक गंगोत्री, गोमुख आदि के भ्रमण पर गये थे वहाँ आप ५ दिन तक उस गुफा में भी रहे जिसमें महर्षि ने तपस्वा की थी। आपने बताया कि वह गुफा लगभग १८ फुट लम्बी तथा ६ फुट चौड़ी है। आप गङ्गोत्री के सम्परण भी लिख रहे हैं। —समाप्त।

श्री विद्यानन्द के जीवन की कुछ घटनायें अभी ऐसी हैं जिनका पता जनता को नहीं मिल सका परन्तु अब धीरे २ उन घटनाओं का परिचय होने लगा है। थोड़े दिन द्ये मुझे यह पता लगा कि भारत को स्वतन्त्र बनाने के लिये सबसे प्रथम उद्योग जो सन् ५७ में हुआ और जिसे अंग्रेजी सरकार विप्लव के नाम से पुकारती रही उसमें श्री विद्यानन्द ने तातिया टापी के साथ मिलकर कार्य किया। लगभग २ वर्ष आसों में इसी उद्देश्य के लिये उन्होंने निवास किया और मित्र २ राजाओं को स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने के लिये वह प्रेरणा करत रहे।

सन् ५७ के इस विप्लव में श्री विद्यानन्द ने भली भाँति देख लिया कि भारत में ऊँच नीच, मतभेद, परस्पर के वैमनस्य इतने बढ़े हुए हैं कि जब तक इन्हे दूर न किया जायगा तब तक वास्तविक रूप में भारत को स्वतन्त्र होना कठिन है, इसके साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि कोरी राजनीति और केवल मायावाद भारत को अपने लक्ष्य की ओर न ले जा सकता और जब स्वतन्त्रता का यह युद्ध असफल रह गया तब उन्होंने उत्तराखण्ड के पर्वतों की कन्दारों की ओर पग बढ़ाया। मैंने वह कन्दारों देखी हैं और उस गुफा में भी ५ दिन निवास कर आया हूँ जिसमें श्री विद्यानन्द ने आत्मदर्शन उसको जयन्ती को स्मृति बहुत समय तक स्थिर रखी जा सकेगी। चलनाडु इषय और उपदेशकों का मन्थन आर्य प्रतिनिधि समा द्वारा किया जा सकता है। क्या मैं आशा करूँ कि श्री विद्यानन्द के इस पुण्य दिन की स्मृति में कोई एक वा एक से अधिक समाज भिन्नकर इस कार्य को करने का भार अपने ऊपर लेगी।

किया। यह गुफा गङ्गोत्री ज्ञाने हुए गंगोत्री से १२ मील नीचे गंगा के किनारे पर्वत के अन्दर अब तक विद्यमान है। निम्नतर कई वर्ष तपश्चर्या में व्यतीत करने के परन्तु श्री विद्यानन्द ने जब आत्म दर्शन पा लिये तब वह फिर नीचे



लेखक

उतरे और कार्य क्षेत्र में कूद पड़े। हर प्रकार के पूरे अनुभव के परन्तु उन्होंने जो कार्य किया वसक अन्दर से यहाँ ध्वनि उठती हुई प्रतीत होनी है कि जब तक आपस की मतभेद ऊँच नीच की भावना भावा भेद की भिन्नता और कोरा मायावाद दूर नहीं होता उस समय तक न तो भारत का और ना ही ससार के अन्य देशों का सुधार हो सकता है। और आज दीवाला की इस रात्रि में एकान्त में बैठकर विचार कीजिये कि श्री विद्यानन्द ने जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये माता पिता के लाड प्यार का त्याग किया और इससे भी बढ़कर मोक्ष आनन्द का त्याग किया क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं कि हम उस तपस्वी त्यागी और श्री विद्यानन्द के वताये मार्ग पर चलने की आज प्रतिष्ठा करें ?





तम का विनाशक पर्व

दीपावली आरंभ है, इसके प्रकाश में हमारा जातीय जीवन कृतान्दितो रह चुका है और रहेगा, वह कौन ही खोज भी जो प्रतिवर्ष होये जला २ उसके टिमटिमाते प्रकाश से हमारी जाति और हमारा राष्ट्र पूरा करना चाहता था, क्या बात थी, कि हमने प्रतिवर्ष दिये जलाये और अब तक खलाते आरंभ हैं। हमारी आपेक्षा अतृप्त बनी है और हम अपनी वह खोज पूरी न कर पाये जो इस प्रकाश में हमें करती थी। आइये हम आज सम्भ्रमिता के साथ इस प्रकाश में आत्म विशेष्य करें आत्म निरीक्षण करें और आत्म परीक्षण करें।

हमारे राष्ट्रीय जीवन में ऐसा अनेक विभूतियों आई जिन्होंने जाति को आत्म दर्शन, चरित्र निर्माण और शक्ति राशय के लिये अर्पित दी, उन अर्पितों से देखने के लिए अपने अमृत उपदेश के प्रकाश दाखिनी रश्मिय हमें उनसे मिली हैं, अपनी मौलिक विशेषताओं, प्राकृतिक सौन्दर्य और ऐश्वर्य की विद्यालाओं और आकर्षण के कारण यह भारत भूमि सदा बाहर के आक्रमणों का आलाका रही है, मधुमक्खी परिभ्रम करके अन्न मधु प्य (लुप्ता) बनाती है, अहेरी उसे तोड़कर मसल देता है, और मसल देता है उसके साथ मधुमक्खी के अडे और बच्चे। हाय ! इस बरातल के, निवासियों के पूर्वजों ने अपना ज्ञान भवहार विविध प्रकार के साहित्य के रूप में निर्मित किया। जिन महापावलों और अट्टालिकाओं का निर्माण करके जिसे गौरवाम्बिन किया, जो रत्नादि शक्ति वन राशि लुटाई और और हरे भरे लेटों को लहराया उसे लुटेरों ने मनमाना लुटा और विध्वंस किया। अनाचार कैले, कुबिचार बढ़ाये गये, राजनीतिक पराधीनता के पाठ में पढ़कर मानविक दाता का दुर्दिन देखना पड़ा, ऐसा एक बार नहीं अनेक बार हुआ, और एक बार नहीं किन्तु अनेक बार इसी जाति ने महा-

पुरुष उरजे जिन्होंने परिशोध किया, भय नाताय जीवन को फिर बोझा, मांगों दूटे कूटे स्वर्ण पात्रों को गला पचाकर फिा से नये-ये आभूषण गण्वादि तैयार किये गये, धिबा, प्रत.प, गुड गोविन्द, शंकर, मखन मिश्र आदि महानुभाव उन्ही विभूतियों में से थे जिन्हें परिशस्त और पराक्रमत भारतीय



जातीयता को फिर से उठाकर बैठाना पड़ा, ईश्वर का अतृप्त होता कि हम आज इन दीरावलि के प्रकाश में उन विभूतियों की दिव्य प्रतिमा की एक भ्रंशों से पाते, और देखते कि उनके दिव्यालोक में हमारे जातीय और राष्ट्रीय जीवन ने क्या २ अद्भुत निधियों प्राप्त की है, और तब कुलहता में हम उनकी स्मृति में नत मस्तक होते।

ईश्वर की यह महती कृपा होती यदि आज हमारे देश वाणी उस दिव्य विभूति को दीपावलि के इस सुन्दर प्रकाश में देख पाते और ठीक २ पहचान पाते जिसकी दया से इस राष्ट्र को सर्वोच्चोच्च उन्नतियों

(श्री अलगूराय शास्त्रीजी एम. एल. ए. प्रधान मन्त्री उत्तर-पदेशीय कामिष्ठ)





और विद्वानों का ज्ञान दाय्य हुआ है, महर्षि दयानन्द युवगत में जन्मे प्रत्यक्ष तद्व्यवस्था का पालन करके भृतियों के स्वध्याय से मन, बुद्धि को चिन्तन बना, बीनराग सम्बन्धों होकर देह को वह देगये हैं जो अद्वितीय और अचरणीय हैं कि जिसका श्रेष्ठ मां सख्तों वर्षों में भी यह भाति उतार न सकेगी ।

भारत राबनीतिक दस्ताके पाठ में या दयानन्द ने कहा माता बैधा प्यारा विदेही शासक भी स्वराज्य की तुलना कर नहीं सखता, स्वराज्य का महत्त्व बनाकर मार्षि दयानन्द ने देश को पराधीन । को बेदियों को तोड़ने के लिये ने प्रेरणा दी वह युवा ही नहीं जा सखती ।

दश दासता के कारण आत्म विमृत या न उभमें धर्मनी चामिक भावनाओं के लिए अदर या न धर्म विस्थाप और न धर्म धर्म का मेद उसे ख्यात रह गया था, पत्तर पूजा से लेकर भूत प्रेत पिशाच पूजा, वर झोलिा वन परेशी, ओझ, गोला, भूज, डार, फूक और वैशो देरल, डीह पायर इनके सामने माया सुधाना हमारे जानीय भोवन में धर्म बन गला । दयानन्द ने वैदिक धर्म के मूल तत्त्वों को इस प्रकार उपरिपत किया कि मतवादी के गढ़ टूट गये, कसोब कलनाओं के भाड़े फूट गये ।

“अर्थ आया तब जानिये, धम अन्ध लूटे ।

बागू भ्रष्टा मर्ग का दिन चौके फूटे ॥”

अन्वय प्रकाश का उदय हुआ, अन्व विस्थाप के अन्वकार का विनाश हुआ ।

चारों वेद कहानी “नेगुणविवशो वेदा.” “त्रयो वेदस्य कर्तारः धूर्तः, भाव्य निश्चरः ।” इत्यादि अमस्मक वतें वेदों के प्रति प्रचलित हो गई थी चिन्तने विहित ज्ञान के आचार पर हमारे समस्त वाक्यमय का निर्माय हुआ ।

कौई कहता था वेद साम्यगीत हैं विन्हे मध्य पृथिया के बड़े चामे वाके चरवाड़े माया करते ये कौई कहता था यह ज्ञादिग काल को कुछ कविताये हैं और इन कविताओं में से किछी

२ के भीतर कुछ स्मोभर भाव भी पाये जाते हैं इत्यादि २ ! अनेक अनर्थक और पतयात्मक वाते कहीं जा रही थी । दयानन्द ने आने अग्नेदादि भवन मूमिक नामक ग्रन्थ रत्न के निर्माण से इन मिथ्या विचारों के कूड़े को फूंक दिया, और वह चारणा फिर से जीवित हुई जिनसे हम यह दख नकै कि ‘आग्नायस्य स्वतः प्र मायन्म्’ वेद खन. पम था ई जैसे स्वर्ष प्रकाश के लिए किछो का पिलरो नहीं प्युतुन सब उषी के प्रकाश के छापित है । ईश्वर करे आज हम दीवा-बत्ति के इस प्रकाश में और अपने बातीय मोरव को देव बके । उसरी रखा में आना धर्मव्य मिटाने की क्षमता उत्पन्न कर सके ।

अपने सन्कृति के प्रति हममें अभिमान हो अपनी भाषा आने भेष और अपने भोजन को हम एक राष्ट्रीय कर द सके, विदेद्योयता के कुपभाष से बच सके । मानव मान के मनि उदारता और शिष्टाचार का वावुर करे, किछी प्रकार के भी आक्रमण को सहन न करे, उसका तत्र प्रतिवाद करे, नागी-समान, वचनों का प्रतिपादन, राष्ट्र को समृद्ध और समुन्नत बनाने में हम सदा तत्पर रहें अन्तर्राष्ट्रीय बगत में अरानो पुंशल वेदशिक नीति के काव्य हमारा सम्मान हो, न हम कहीं झुके और न किछी को झुकावे आर्थिक राबनीतिक जीवन ऐसा हो जिसमें क्वकि बद की अपेडा समजबाद का अचिक मत्त्व हो और हमारी शासन स्वध्या ऐसी हो जिसमें प्रत्येक नागरिक को अपने आत्म विकास का सुवर्ग अवसर मिल सके । रत्न, शिवा का का समको समान अवसर हो । यदि अपने में छोटे २ कर्तव्य हमें साक २ स्पष्ट इस दीपावलि के प्रकाश में दिखाई पद सके और हम इनके पालन करने में सक्रम उन से लग गये हो हमारा दया बलाना चरितार्थ होना, ईश्वर करे ऐसा हो ।





ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो !

(लेखक - श्री प० रामदत्त जी शुक्ल पब्लिशेड)



दृष्टाणु ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने मौलिक जीवन क अव सप्तक में "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो," यह विचित्र किन्तु सारगर्भित शब्द कहे थे।

सम्वत् १९४० वि० श्री कालिक

अभावस्या कि जिस दिन समस्त भारतीय आर्य हिन्दूजन द्वापराजी से भौतिक अग्रकार को दूर करने में सतत थे, अमा क उस तिमिर में अपने यश शरीर की दाप को प्रदोषकर तपोधन ऋषि समस्त मानव जाति के हृदया, मस्तिष्का और आमाशा की वेद ज्ञानज्योति से मासमान करने के लिये अपने पापों का बर्णकर सर्वमेघ सत्र की पूर्णाहुति प्रदान करने में ध्यानमग्न हो रहे थे। ब्रह्म निश्चित वेद की प्रतिष्ठा हो ऋषि ने जीवन का परम ध्येय रदा। किन्तु उसका पूर्ण सुचारु रूप से अपने जीवनमें करने में वह समर्थ न हो सके। इसी की ओर विशेष रूपसे ध्यान आकृष्ट करते हुए अपने अनुमानों को इन शब्दों द्वारा सम्बोधित सा किया प्रतीत होता है —

“वदा सर्वविद्यामि पूर्णं सति नैव किंचित्तु मित्याद्यमस्ति। उदेतच्च सर्वं मनुष्यास्तद उर्यन्ति। यदा चतुर्णां वेदाना निमित्तमाष्य यत्रित च भूत्वा सर्वबुद्धमता ज्ञानगोचर भविष्यति। एव जाते खलु नैव परमेश्वरकृपया वेदविद्यामनुस्था द्वितीया विद्या अस्तीति सर्वं विश्वासन्तीति बाध्यम्।” (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका) अर्थात् वेद सब विद्याओं से पूर्ण हैं। उनमें कुछ भी मित्योपन नहीं है। इसको सब मनुष्य उस समय जानेंगे कि जब आर्यों वेदों को निमित्त भाष्य मुद्रितहोकर समस्त बुद्धिमानों के लिये ज्ञानगोचर होगा।

ऐसा होने पर ही परमेश्वरकृत विद्या के तुल्य अन्य कोई भी दूसरी विद्या नहीं है,

ऐसा सब लोग जानेंगे, यह सम्झना चाहिये। ऋषिदयानन्द सरस्वती क यह अमर वाक्य ही उनक जीवनकाय के सुदृष्ट प्रतीक हैं। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति क लिए ऋषि ने स्वयं स्वल्पसाधनों क होते हुए भी जिस परिस्थिति बाधाबहुल वातावरण में वेदभाष्य जैसी कार्य आरम्भ किया था, उसका अतुल्य भी साधारणतया नहीं किया जा सकता है। तथापि अपने अथन की सध्याकाल में भी अनेक कार्यों में सतत सलग्न रहते हुए पूरा यजुर्वेद और लगभग आधा ऋग्वेदभाष्य निमित्त एव जे तैने प्रकाशित हो सका। इत प्रकार आर्य वेदों का यथाभिलषित सकल्प और प्रतिष्ठा के अतुल्य ऐसा भाष्य न निमित्त हो हो सका और न न मुद्रित होने का ही अवसर प्राप्त हुआ। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अधूरा हो रह गया। इनका ही नहीं जो कुछ वेदभाष्य निमित्त और मुद्रित होकर प्रकाशित भी हुआ, उसका आकार प्रकार ऐसा नहीं बनया जा सका कि जिससे ससार के प्रमुख वेदज्ञों और उच्चाटि के गम्भीर विचारक विद्वानों के समस्त सर्व प्रस्तुत किया जा सकता। परन्तु सग्राह्य, मुद्रण, प्रकाशन, आदि र सम्बद्ध बलात्मक ढट्टि से प्रस्तुत वेदभाष्य सस्करण में अनेक सुगार और सस्कार अपेक्षित हैं।

ऋषि दयानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारों एव सखाओं का यह एक उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह अपने इस औचित्य के महत्व को अनुभव करते हुए अविश्वम्ब इस श्रुतता को पूर्ण करने में लगे। जयतक ऋषि दयानन्द सरस्वती प्रदक्षित प्रतिष्ठा के अतुल्य आर्य वेदों का भाष्य निमित्त और मुद्रित और प्रकाशित न हो जायगा, तबतक "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।" ऋषि की यह अंतिम अभिप्राय भी अपूर्ण ही रह जायगी।





अपना पृष्ठ

दीपावली पर्व

दीपावली भारतवर्ष आर्य सिन्धु से आ एक प्रमुख पर्व दिवस है इस पर्व के दिन भारत में प्रत्येक स्थान में लक्ष्मी पूजन और दीपावली समारोह के साथ मनाये जाते हैं। विरकालीन परम्परा व अनुसर दीपावली के पश्चात् गोबर्धन और यमद्वितीया के पर्वों को भी मनाने की प्रथा है। राजनीतिक दृष्टि से आर्यभट्ट भारतीय नर-नारियों के लिए करने पर्व दिनों को उल्लास पूर्वक मनाने में अनेक बाधाओं की किन्तु यह समस्त व दूरग गणायों भारत के स्वतन्त्र राष्ट्र हो जाने पर प्रायः दूर हो चुकी है किन्तु राजनीतिक दृष्टि के विरकालीन अविश्राव कथित दोषों का प्रभाव अ गतक भारत को प्रभावित कर रहा है क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से इतना हो जाने पर भी भारत को अ भिक दृष्टि अती तक सर्वथा दयनीय हो है, इनपर दृष्टिगत अ व अष्टिदा दोनों के समन्वित प्र कोष से पूर्व-दिन मनाने में भी सर्वथा वारण्य के दृष्टि में कठिनाई में उरशाह उत्पन्न होता है, अर्थात् पूजा और गोबर्धन से गरीब पशु वस्तु को समृद्ध के अ योचन कष्ट सप्त हो अनुभव हो सकते हैं। अतः अनेक प्रकार के अभावों से उरगीकृत भारतीय, इन पर्वों के उत्कृष्ट आदर्शनुसार समस्त माई बहनों में अ भिन्न स्नेह सम्बन्ध स्थापित करने में सौकर्य एवं अ समर्थता अनुमान करते हैं।

आर्यसमाज के प्रवर्तक श्रुति दयानन्दने प्रायः नव्य से आर्य भाषा को पुनः अपने विमृत गौरवार्थ आदर्श के अनुसार प्रवृत्त होने के निमित्त प्रेरणा और शक्ति प्रदान की है। वे एक संस्कृति के उत्तीक अथवा प्रदीपक दिव्य दयानन्द द्वारा आकोषित व्यतिथन वनातन वैदिक प्राय पथ पर स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक दृढ़ता के साथ अग्रसर होने में अपने जीवन को खल्लगत क सके यही हमारी आर्दिक कामना है। सगलमय भगवान् हत क मा का पूजा करें।

सर्वे भद्रान्मु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पर्यन्त मा कश्चिदुःखभाग्भवेत्,

इन सन्दर्भों के साथ युग युग से करने नग्ये नग्ये स्नेह भरे दीपकों से अमा को प्रकाशित करने वाले पवित्र पर्व सर हम अपने पठकों के प्रति मङ्गलमय भविष्य की आशा से शुभ कामना करते हैं। प्रभु बरे आज यह लक्ष्मी विहीन भारत लक्ष्मी पूजन करके अपने गौरव पर पुनः प्रतिष्ठित हो। दीप-पत्तिकाएँ हमें मार्ग दिखाएँ।

प्रत्येक व्यक्ति के लिये—
प्रत्येक समाज के लिये—
प्रत्येक राष्ट्र के लिये—
समस्त विश्व के लिये—

यह पर्व शुभ हो !



महर्षि द्वारा रचे गये यज्ञ के कतिपय होतागण :



धीतराग श्री स्वा० दर्शनानन्दजी



अमर शहीद श्री स्वा० अखिलानन्दजी



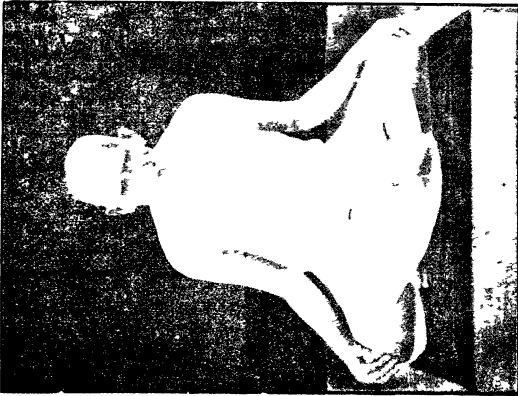
धी प० वागुगति वर्मा



धी प० शिवशङ्कर जी काव्यनीधि



श्री म० नारायण स्वामी जी महाराज



श्री स्व० सर्वदानन्द जी महाराज



आर्य समाज की अग्नि-परिक्षा

(लेखक— श्री पं. वासुदेव शर्मा जी प्रधान मंत्री, आर्यप्रतिनिधि समाज विहार)

भारत की मध्य भूमि में विदेशियों के आक्रमण, परेशरिक वृद्धय, प्रमाद तथा वर्तन्य युवा से इसका सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक तथा धार्मिक हाल नजरना से होने लगा । राजा राममोहन राय ऐसे महापुरुष ने भी आक्रमी भाषा सम्बन्धन और सम्मान दिया नाशतकता ने अपना भाषा गलत चारों ओर फैला दिया । भारत अपनी प्राचीन विभक्तता से दूर होकर भौतिकवादी विचार धारा से प्यार मिटाने के लिए तंत्रालय से बटने लगा ।

ईसवी वर्ष की पराधीनता के अग्निघाट से भारत का धार्मिक तथा सामाजिक स्वरूप अत्यंत ही विकृत तथा दर्शनीय हो गया था । इस आताशरूप से धर्म तथा वेद से अविश्रवाह होना भारतीय युवकों में स्वाभाविक ही था ।

महाविद्यालय में अध्ययन काल समाप्त करने के पश्चात् आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारी रह कर राष्ट्र सेवा तथा धर्मोद्धार का परम पावन व्रत लिखा पञ्चदशवर्ष के पनाका लोकर वे चलपड़े । अनेक स्थानों पर उन्हें शस्त्रार्थ करना पड़ा । और विर निधियों के आक्षेपों का उत्तर देना पड़ा ।

अपने विशेष रूप में श्यामी आर्य साहित्य की रचना की ' धर्म के वास्तविक स्वरूप को शहर के सामने रख वेद की मर्मदा तथा गौरव को उसकी शिरो धन को द्वारा स्थापित किया । भारत में गण्य भावना अपनी राष्ट्र भाषा हिंदी तथा अपनी वेद भूषा की पुनर्जाति करने के सर्व प्रथम अंग्रेजों को ही दिया जा सकता है ।

महाविधि द्वारा स्थापित आर्य समाज ने धर्म के क्षेत्र में तथा स्वतंत्रता के सामान में तर्बदा आगे रह कर कार्य किया । उसके प्रारम्भिक युग के सदस्यों का जीवन कितना अनुकरणीय आदर्श, पवित्र, सल, स्वाध्यायपूर्ण मर्मत तथा सधर्मो होता था ।

लोगों को दृष्ट अथ भी समाज की ओर सभी दुर्ई है कि वह आगे बढ़ कर देव का

नेतृत्व तथा नव-समाज का सुन्दर निर्माह करेगा । आज भारतीय समाज में अनेकता, ईर्ष्या, द्वेष, अष्टाचार, चौरावाचारी तथा विषमता का बाजार मग है ।

अतः इस समय के आर्यों सदस्यों का परम कर्तव्य हो जाता है कि अपने उत्तर साहित्य तथा समाजकी मर्मदा को ध्यान में रख कर श्रुति निर्माह के अत्यपूर्व पुनीत वर्ष पर आर्य समाज को 'क्रिवाशील' गुरभित तथा लोक प्रिय बनाने का व्रत मार्य कर । फलस्वरूप, उदासीनता तथा निराशा का विचार छोड़ कर आत्म निरीक्षण करते हुए अपनी शक्ति का सदुपयोग कर प्रति सदस्य को का प्रति दिन सम्बन्ध हाथ स्वध्याय तथा स्वधर्म्य धार्मिक सेवा को दिन चर्चा का अवरुधक अंग बनाया होगा सप्ताहिक सत्रों पूर्व, वेद-कथा तथा उत्सवों में उपविहार सम्मिलित होने का संकल्प करना होगा । परिवार में तथा समय सत्का को करने का आभास बालना होगा । आनन्द युक्ति के त्रिप मन नियम को जीव्य । में उतारने का प्रयत्न करना होगा ।

प्राहृकी को सूचना
हम निम्नांकित संख्यावाले अपने प्राहृकों से इस सूचना के द्वारा निवेदन करते हैं कि उनका वार्षिक मूल्य नवम्बर मास में समाप्त हो रहा है, अतः २० तारीख तक यदि उनका क्रीयाशील वर्ष का मूल्य मनीआर्जर से प्राप्त हो सके तो सुविधा होगी । यद्यपि न होने पर २२ नवम्बर का अग्र उन्हें भी पी० द्वारा भेजा जायगा । कृपया नोट कर लें —
प्राहृक सं.— २३४८ से २३५४
७०५८ से ७१११
२५०२ से २५११
८५५७ से ८५८८
९४७६ से ९५६८
९८६ से ९९५०
१०२३८ से १०२९६





गुण-कर्माजुमारवर्णव्याख्या ही उन्नति कांप्रेरणा दे सकती है

किन-किन गुणों से ब्रह्मण्य, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र माने जाते हैं? गुण कर्मों के बदलने कर्मों के बदलने से क्यों स्वतः बदल जाते हैं? इस विषय में मनु क्या कहते हैं?

ब्राह्मण कौन है ?

अध्यापनमभयनं यज्ञनं याजन तथा । दान प्रति ब्रह्मवेव ब्राह्मणानोमकल्पयत् ॥१॥८८
शमा दमस्तपः शौच क्षान्तिराजोऽभेदच । ज्ञान विज्ञानमाहितस्य ब्रह्म कर्म स्वभावजमम् ॥२॥४३
अर्थात्—ब्राह्मण के, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना ये छ. कर्म हैं (पर "प्रतिब्रह्म प्रत्यवा." मनु । अर्थात् लेना नीच कर्म हैं) ॥१॥ धन, दम, तप, पवित्रता, पढ़न सीलना, नम्रता, ज्ञान विज्ञान, आस्तिक्य ये ब्रह्मण्य के स्वाभाविक कर्म हैं ।

क्षत्रिय कौन हैं ?

प्रजाना रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । विषयेष्वपलात्किश्च क्षत्रियस्य समासतः । १ । ८९
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्य युद्धं काप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्र कर्म कृशाक्षजम् ॥ ८५३
अर्थात्—स्वयं से प्रजा का रक्षा, युद्ध में दान, यज्ञ करना कराना, वेदादि धार्मिकों का पढ़न और पढ़वाना, विषयों में अनासाक ॥१॥ शौर्य, तेज, धैर्य, चालुय, युद्ध से न भागना (विषयो होना), दान, शस्त्र प्रतिक तथा तथा यथो योग्य व्यवहार ये क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं ।

वैश्य कौन हैं ?

पशुता रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च
वाण्यपथ कुसीद च वैश्यस्य कृपिमेव च ॥१॥९०
अर्थात्—पशुओं का पालन और बर्दन, उत्कर्म में धन व्यय करना, अग्नि होत्रादि यज्ञों का करना, वेदादि धार्मिकों का पढ़ना, व्यापार करना, कुष्ठद (एक लैङ्गे में चाप, छः आठ, बारह, सोलह या बीस छानों से अधिक ग्याज और मूत्र से दना अर्थात् एक करवा दिया हो तो चौवर्ष में भी दो वर्षों से एकदिक नाना न ले । और देना), लेना करना ये वैश्य के गुण-कर्म हैं ।

शूद्र कौन हैं ?

एवमेव तु शूद्रस्य पशुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयथा ॥१॥९१
अर्थात्—निम्न, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़कर ब्राह्मण क्षत्रिय, और वैश्यों की सेवा बधावत करना ही शूद्र का कार्य है ।

वर्ण-परिवर्तन

"वर्मवर्षया जयन्तो वर्णं पूर्वं पूर्वं वर्णानापयने जाति परिहृत्सो" १॥
"अवमचर्याया पूर्वा वर्णो जयन्त्य जन्म्य जन्मानुप्रते जाते परिहृत्सो ।" आर्यस्यैव गृह्यसूत्र ॥
अर्थात्—वर्णवर्षण से निरुद्ध वर्णों अने से उत्तम २ वर्णों को प्राप्त होता है और वह उच्च वर्णों में गिना जावे जिसके योग्य हो, वैसे ही अवर्णों वर्ण से पूर्व २ वर्णों उत्तम २ वर्णों वाला मनुष्य अपने धे न के वाले वर्णों को प्राप्त होता है और उच्च वर्णों में गिना जावे । (४०, प्र० ४ वसुहताव)





• वन्देमातरम् •

वाङ्मय्य तु पञ्चमे मातर महीमदिति नाम पञ्चसा करामहे ।
यस्या इव विश्व भुवनमाविशेण, तस्या नो देवः सञ्चिता धर्मं सावित्रम् । यत्तु

पृथ्वी को माता मान कर उसको आराधना करना एक स्वाभाविक रीति है। राष्ट्रीय जीवन यह प्रमुख आधार है। परन्तु आज कल प्रत्येक राष्ट्र की प्रत्येक भावना सारे ससार को एक सूत्र में बांधने के लिए बायक सी प्रतीन होने लगी है। वर्तमान शत व्दी में ऋषि दयानन्द ब्रह्म पहिले सुधारक हे जिन्होंने सार सचार को लक्ष्य में रख कर देशभक्ति और राष्ट्र निर्माण को आधार शिला रखी। इसो लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में अन्तर्राष्ट्रीय विधान की पूर्ण रूपरेखा शब्दों के आधार पर अर्पित की। यत्तुर्वेद क ऊपर विषये हुये मत्र में सम्पूर्ण भूमि को माता दर्शाया है, वह वन्दना सारे ससार के लिये है। इस मत्रमें भूमि माता की भक्ति का बहू श्व भी बडा सुन्दर बताया हे। हर प्रकार के बल की प्राप्ति अर्थात् अन्न, बल, और ज्ञान आदि की प्राप्ति क लिये मातृभूमि की भक्ति आवश्यक है। मातृभूमि क अन्तगत सारा विश्व इस मत्र द्वारा सकलित समझना चाहिए और अदिति शब्द भी बडा शिक्षापद है। अदिति से अभिप्राय अखण्डित का है। इस मत्र में शिक्षा ही क सारी पृथ्वी को खण्डों में विभाजित नहीं समझना चाहिए। पृथ्वी माता के खण्ड नहीं हो सकते। कवल भारत माता के मुसलमानो के अतुञ्चित आग्रह पर दो खण्ड बन जाने से कितनी मयकर हानि हुई। यदि सारे विश्व को अदिति रूप से समुक्त रखा जावे तो विभाजन की अतुञ्चित भावना उत्पन्न नहीं हो सकती। इस मत्र के अन्त में कहा हे मातृभूमि की भक्ति हमारे लिये सदा धर्म कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा करे। इस

मत्र ने कर्त्तव्य पालन पर बल दिया है अधिकार प्राप्ति पर नहीं। कर्त्तव्य पालन करने से जो अधिकार प्राप्त होते हैं वह स्वार्थ हैं और लाभ दायक हैं। चीना भण्टी से व्यर्थ क पुकार से अतुञ्चित आदोलन से जो अधिकार प्राप्त हो जाते हैं वह अधिकार प्राप्त् करने वालो का भी सुखकारी नहीं होते। हमारे राष्ट्र के निर्माता खरखे से पीछे हट कर अशोक के तक तक पहुँचे हे परन्तु वन्दे वैदिक सूर्य तक पहुँचना हे



सूर्य के चित्र वाली शक्ति ससार के लिये शिक्षापद और उत्साह जनक है। इसके अन्तगत प्रकाश प्रगति अन्वकार का नाश और हर प्रकार के बल की प्राप्ति देती है। ऋषि निर्माण क अवसर पर हम सबको प्रतिष्ठा करनी चाहिये कि मनुष्य निर्माण, राष्ट्र निर्माण और समाज निर्माण के उच्चतम सिद्धांत ससार के सम्मुख रखें जिससे सार्वजनिक धर्म, उदारता की भावना का संचार हो।





‘आर्यसमाज क्या करे ?

ती न वर्षों की स्वार्थीनता ने ऋषि ध्यानद की इस बात का सत्यासन्न कर दिया है कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए शुद्धाचरण और उच्च चरित्र की आवश्यकता है। आत्मिक जीवन और मिलो मिलो मानसिक वृत्त की आवश्यकता है। प्रायः आर्यसमाज द्वारा दिए गए मानवप्र का उत्तर दत्ते हुए राजपति टण्डन ने आर्यसमाज से अनुरोध किया है, कि वह कॉलेज का शुद्ध कर और शुद्धि के कार्य का जरी रखे। नरसिंहदेह यह कार्य महान है आर्यसमाज के लिए नया भी नहीं है। परन्तु प्रश्न ता यह है, कि इसका कैसे किया जाय ?

आचार्य और शिष्य —
कवल बातों से तो सफलता मिलना असम्भव है इसके लिये नेत्र का दृढ़ करना होगा। बचपन से बालक बालिकाओं में सदाचार और सदा जीवन पर उच्च जीवन की शिक्षा देने का अथवा प्रेरणा देने वाला गुरु और शिष्य के बीच नद और निरुद्ध का सम्बन्ध स्थापित होने पर ही यह सम्भव है गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का यह ही आधार है। तपस्वी जीवन वितान की शिक्षा देने के साथ साथ गुरुकुल में सच्चे और योग्य नागरिक उत्पन्न करना अपना ध्येय बनाया। गुरुकुल सख्या में बहुत बने। परन्तु उनमें शिक्षा पाने वाले समस्त छात्रों की सख्या दस सहस्र से अधिक नहीं पहुँची। ऐसा क्या हुआ ? जहाँ अनेक कारण थे, वहाँ विश्वास था कि गुरुकुलों में छात्रों का सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। भारत जैसे देश में, जहाँ उद्योग धर्मों का अभाव हो, जो वकील और वृत्त का सुन्दर और सुविधापूर्ण सामान्य प्रकार सरकारी

नौकरी हो, यह शिकायत उपेक्षा योग्य नहीं की जा सकती ‘वाविद्या या विमुक्तये’ जहाँ विद्या न ना चाहये, वहाँ वह ‘अर्थकरी’ म होनी चाहिये।

कथोक — ‘उनात् उर्म तत सुखम्’
गुरुकुलों की शिक्षा आज भी अर्थकरी नहीं है। १० पत्रिका जिस देश में निरक्षर है, उन देश में एक बच्चे का नाम गुरुकुल में शिक्षित बनाता है वह एक महापुण्य का काम करता है। अर्थ समाज ने लक्षों को खया में सुरक्षा का शिक्षित बनाया है, और इनका वह उचित गर्व कर सकता है। परन्तु गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को यदि वस्तुतः सफल बना है, तो यह आवश्यक है, कि समस्त गुरुकुल आर्य साधक देशिक समाज द्वारा संचालित हो। यह विचार पहले भी सामने आ चुका है। परन्तु उसका महत्व आज भी पहले के समान बराबर है। गुरुकुलों पर सार्वदेशिक समाज का सर्वाधिक नियंत्रण स्थापित होने पर सब में एक जैसा अनुशासन, पठ्यक्रम, प्रवेश आदि की व्यवस्था की जा सकती। इससे गुरुकुलों द्वारा दी गई शिक्षा का महत्व भी बढ़ जायगा इस कठिन रक गुरुकुल विश्वविद्यालय की जाटडे विश्वविद्यालय बनाना चाहिये। और विभिन्न राज्यों में विश्वविद्यालय से सम्बन्धित महाविद्यालय स्थापित करने का अधिकार मान्य कर लिया जाय। यद्यपि किया गया तो सभी गुरुकुल, विश्वविद्यालय से सम्बन्धित होने पर अपना सामान्य समझेंगे।

लेख का काम बंद न होना चाहिए—पर्मेश्वर प० लेखराम अन्वित समय ६-दश के गये थे—आर्य समाज से लेख का काम बंद न होना चाहिए। इनके सन्देश का अवश्य पालन हुआ। आर्य सार्वत्रिक निकाय,।

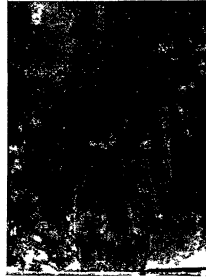


[लेखक—श्री अश्वनीभद्रकुमार विद्यालकार]





श्री प० धर्मपाल जी विद्यालङ्कार
सम्पादक 'आर्यमित्र' तथा उप मन्त्रो समा



श्री प० सुरेन्द्र शर्मा जी कोषाध्यक्ष समा

परन्तु प्रश्न तो यह है, क्या विश्व साहित्य को 'द्वैत्या' र्य प्रकाश, और ऋषि के अन्वय प्रयोगों के अतिरिक्त हमारे पास और कुछ भी है? परन्तु इसका उपाय क्या है? गुणकूल विश्व विद्य नय के द्रष्टा श्व तबोत्तर शिक्षा की यदि व्यवस्था की जाय और अनुसन्धान विभाग स्थापित किया जाय तो विश्वास किया जा सकता है कि आर्यसमाज विश्व को देने योग्य कुछ अनमोल साहित्य की रचना करने में समर्थ है। परन्तु अभी उसका प्रश्न ही कहा? यदि समस्त आर्यसमाजो ही शक्ति इसपर केन्द्रित हो तो यह अवश्य नही। ऋषि की वशी की यदि हम जगत के कोने कोने में पहुँचाना है, तो हमें इसके लिए उपयुक्त साहित्य उत्पन्न करना होगा, विद्वानों के मन को जीतना होगा और उनकी धारणा को बदलना होगा।

यदि हिन्दी संस्कृत साहित्य, वैदिक साहित्य और प्राचीन भारतीय इतिहास आदि विषयों में किसी विशिष्ट विद्वान को अग्रगण्य करना है, तो उसके उपयुक्त साहित्य भी हो।

साधारण जनता में पंचार के ज्ञार भी साधारण प्रकाशित किया जाना चाहिए। वेदों के सुलभ और सरल अनुवाद अंकित होने चाहिए। भारत का केन्द्र हिन्दू आदि इतिहास के समान एड प्रामाण्य इतिहास भी निकले। एवं आचार्य रामदेव जी ने इस दृष्टा में प्रयत्न किया था इसको नए दृष्टा से परिष्कृत और परिष्कृत रूप से करने की आवश्यकता है।

आर्यसमाज ने इस दिशा में जो कार्य किए हैं, हिन्दी सागर ने उलका समान किया है। आर्य विद्वानों का अंगुल उलाह पुरस्कृत प्राप्त। इसका प्रमाण है। परन्तु ये सब प्रयत्न वैयक्तिक है। आवश्यकता है, संगठित रूप से प्रयत्न करने की इसके लिए विश्व विद्यालय के तपोवन मय वातावरण से उपयुक्त स्थान दूसरा रचाना नहीं हो सकता। ऐसा करने से ऋषि का सम्बन्ध विश्व के कोने-कोने में पहुँच सकता है। क्या ऋषि के पवित्र जीवन से आसक्ति इस समाज निष्ठा में इस वायु का दर्शन करने और इसके अनुसर कार्य करने में हम समर्थ होंगे?





हे अपरिवर्तनीय ?

[रचयिता—श्री कुंभर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा “चातक” कविरत्न, माहिपालझार]

दूर्ध्दल ने सोचा मुझको पशु निज प्रास बनाते ।
 तीक्ष्ण ताप देकर के गविवर नित्य जलाने आते ।
 अर्थां निज माङ्गलिक रूप हित मोव नोच ले जाते ।
 असमय में मेरे कुटुम्ब को कठिन शोच दे जाते ।
 करते हैं पद दलित समी, बटुने पर काटी जाती ।
 भ्रँकानिल के विषम भङ्गारों से हूँ ढँटी जाती ।
 मैं होऊँगी फूल डाल पर नाचूगी भूलूँगी—
 रसवन्ती कोयल की तानों में सब दुख भूलूँगी ।

वधुधा के अञ्चल से थोड़े अन्तर पर मैं रहता ।
 मुँह खले पर व्यथा न अपनी हाय ! किसी से कहता ।
 जो आता वह हाथ बढ़ाकर मुझे तोड़ लेता है—
 मैं जोड़ूँ सम्बन्ध न, पर वह निडुर जोड़ लेता है ।
 धुनी से कर छेद सून से करता प्रीवा बनन—
 मुझ से ही होता प्रेमोपासन, पयङ्क-प्रसाधन ।
 मैं न रहूँगा फूल, दीप बन दान उगेय का दूगा ।
 इस पृथ्वी का अँवहार सब पन मर में हर लूँगा ।

नाम मात्र का स्नेह प्राप्त कर नित्य जला करता हूँ—
 पापी हूँ प्रेमी शलभों की सृष्टि दना करता हूँ ।
 मूर हृदय मेरे प्रकाश में कृत्य कर रहे काले—
 ललनाओं की लज्जा के भी पड़े हुये हैं लाले ।
 विवश शीघ्र धुनता हूँ मेरा वश न कहीं कुछ चलता ।
 हा ! मेरी ही छाया में वह अँवहार है पलता ।
 मैं न रहूँगा दीप, एक बह परिवर्तन का बर बी ।
 परिवर्तन से रहित, आप अपने सा मुझको कर दो ।

बह झूठा निर्वाण और यह प्रलिन का यो—जनना ।
 कुट रुदा को जाये मुझसे भव की भीषण छनना ॥





—: सिद्धान्त और सङ्गठन :—

[ले०—श्री गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]



की सस्था को सफलतापूर्वक चलाने के लिये दो चीजों की आवश्यकता है एक तो उ के सिद्धान्तों का निश्चित होना तथा उनका सर्वेसाधारण में प्रचार, दूसरा इनके सदस्यों का एक सूत्र में पिरोया जाना। यदि सिद्धान्त सत्य पर आश्रित नहीं हैं और सदस्यों में अच्छा संगठन है तो वह उभ्र माला क समान है जिसमें सूत्र नो है बहुमूल्य रत्न का परन्तु दाने का टुकड़ा और यदि सिद्धान्त सर्वा ठूण्ड, यन्तु तथा उज्ज्वल है और सदस्यों में संगठन नहीं तो वह सस्था उस माला क समान है जिसमें बच्चे धागेन अमूल्य मोती पिरोय हो, दाने, अवस्थाओं में मला ठक नहीं है।

आर्यसमाज की सस्था पर भी ऊपर का नियम लागू होता है आरम्भ में समाज में दोनो बातें थी और पुष्कल मात्रा में थी, सनातन धर्म या हिन्दूसमाज के न तो सिद्धान्त निश्चित थे और न हिन्दुओंमें संगठन था अतः हिन्दुसमाज का मुरब्बाया जिसमें नोस्त्रिक, आस्तिक, वेदिक, वेदविन्दक सभी शामिल थे। हिन्दुओं का आनमान था कि वह एक उदारमण्डल है जिसकी सीमा कोई नहीं। संगठन का यह हाल था कि अठ कनो जया नो चूल्हे, इसलिय हिन्दुओं को हास अश्व्य मना था आर्यसमाज हिन्दु मत क सदया। वरुद्ध था इसलिय उसके जीवन की अधिक आशा थी अतः प्रयानन्द ने वेद ईश र जाय, प्रकृति, भग्य, पुरुषार्थ, लोक, परलोक सभी क विषय में निश्चित विचार उपस्थित किये अतः हिन्दुसमाज, अमन्य लियकर सिद्धान्तों का पूर्णरूप में निश्चित बना दिया। आर्यसमाज का संगठन भी अतः

ने यथाशक्ति पूर्ण बनाया। इसकी आधारशिला यनी जनतन्त्रवाद। प्रत्येक सदस्यारी का मन का अधिकार दिया गया। समाज को साधार्थ्य कता के विषय से अलग रहन के लिये अतः ने सब कुछ दूरदृष्टिता की जो किसी मानव



लेखक

मस्तिष्क के लिये समवधी। अतः ने तो अने उर्ध्व में समाज ने मुखिया बने और न अपनी मनु के पश्चात् किसी का गद्दी पर चढाया।

परन्तु आर्यसमाज का सस्थापक तो अतः अश्व्य था, उसके सदस्य अतः अतः क साधारण मनुष्य थे उन्हेन आर्यसमाज को अपनी भावनाओं के अनुकूल बनाता आरम्भ किया। उन्हेने नैयतिक आधार को सर्वथा भुलाकर सामाजिक, शक्त सम्बन्धी तथा राजनैतिक कार्यक्रम को प्रमुख उद्देश्य और लोगों में ऐसी प्रवृत्ति हो गई कि समाज के टाक होने या उन्नतता प्राप्त होन पर





व्यक्ति तो स्वच्छ स्वयं हो ही जायगे ।

इसलिये सिखान्तों का पठन पाठन बन्द हुआ । उपनिषद्वा और वेदों की जगह समाचार पत्रा ने लो, सन्ध्या और हवन की जगह जयबोप पर्याप्त समझ गय । सिखान्तों का ज्ञान हमारे नेताओं का भी नहीं के बराबर है । भला हो मुस्लिमलोग का जिसने कुछ दिनों पहले शेर मच्चाकर सयार्थप्रकाश क नाम का जीवित रक्ज। परन्तु सयार्थप्रकाश के पढनेवाले तो बहुत ही कम है हा कभी कभी उसके नाम की दुहाई दे करे जन्मी है ।

अब थोडा सा सगठन की और दृष्ट पात कीजिये । हमने कालेप किया कि हिन्दू सगठित नहीं है, हमन हिदू सगठन का विगुन बजाया । परन्तु आर्यसमाज क्या एक माला है या कई मालायें । जरा साचिये, आर्य समाज का सन्धिधान (कास्टीयेशन) तो ठीक है परन्तु विचारा काजज क्या करे । अर्यसमाज में अब बीसवा सस्थाये समानान्तर रूप से कार्य कर रही है, एक छोटैसे खेत में बीसिया पोपल बरगद की तरह यह सब सस्थाये अखिल भारतवर्षीय है । कोई कियो क आधीन नहीं । लाञ्छणतया स्थानिक समाज, प्रान्तीय समा और सार्धदेशिक ।मलकर एक बडा वृक्ष है । परन्तु कई अन्य भी तो अखिल भारतवर्षीय

सस्थाये हैं, जो स्वतन्त्ररूपसे चल रही हैं । यह सब ऊपर से तो आर्यसमाज को सुदृढ करने के लिये हैं परन्तु इसका वास्तविक परिणाम है सगठन का तोडना, प्रत्येक सदस्य या कई समाओं का अलग अलग दृष्टकोण हो तो सगठन कैसा ? जिसके मुह म तेज ब्रवान हुई वही आर्य समाजिया को जेव टटोल लेना है उन सब की एक ध्वन होतो है कि 'समा कुछ नहीं करतो, अत हमने अलग से काम करना शुक क्रिया है, हमका चन्द्रा दा ।' अब मैं यू पी. समा का प्रयान था तो एक समाज में पहुँचा । वहाँ क प्रधान ने मुझन कहा, 'अमुक पंडित जो आर्य थे । मैंन उनसे पूछा क्या आर समा क उप दृशक है ? विगडकर गेले, समा क्या होतो है ? समा म कुछ काम नहीं होतो । सब बोगल है । हम स्वतन्त्रता स काम करते ह ।' अर्ध इस प्रकार क स्वतन्त्र व्याक हो बहा सगठन कैसे रहे ? इस विषय पर बिस्तारपूर्वक लिखा जा सकता है, परन्तु सकेत मात्र इतना ही पर्याप्त होगा । याद आर्य समाज में सगठन क महव पर विश्वास नहीं रहगा तो आर्य-समाज का भविष्य आर त्त म प्रसित समझना चा हय । अलमिति विस्तरेण ।

♦♦

परीक्षा पास करने की कला

विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त लाभ दायक पुस्तक। परीक्षा पास करने के लिए रटना और बोटा लगाना जरूरी नहीं। परीक्षा पास करने के छपने गुर हैं। दुवों के अनुभव से लाभ उठाइये। आज ही अठ आने मे ६ कर मगइये। पता—हा इत्य मन्दिर बनवेल ।

वायु

बच्चों की हर एक बीमारी को दूर करने के लिये कम्पोजर बच्चों को लाकित कर धनानी जगती देनाना बडा देनेसे बच्चे कमी होफा नहीं होगे दीन जगती से निकल आवेगे ।

— १०० —

पता: आर्य जीवन वायोन्स अर्योग्य ग





आज भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता का अर्थ



न जागरण के मङ्गल प्रसंग में आज प्रत्येक भारत सतान हुआरों कहेँ, सुखीबतों, भूकम्पों, जलविप्लवों, बेकारी और दरिद्रता में रहते हुये भी मस्तक ऊँचा करके अभिमान से अपने घर में दीपावली की ज्योति जगा कर कह रही है कि आज के पवित्र दिन मयादा पुरुषोत्तम भगवान राम लङ्का पर बिजय प्राप्त करके दुष्ट रावण को मारकर सीता माता के साथ अयोध्या में प्यारे थे, वही खुशी में हम दीपक जला रहे हैं। तब से अब तक इस प्राचीन गौरव को हमारे पूर्वज स्थायी रखने के लिये बराबर दीपावली का त्योहार मनाते चले आ रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने इस त्योहार पर अपने बलिदान से चार बाँट लगा दिये और देश में ईश्वर विश्वासी बनकर आज के दिन क्राणवर्म की जागृत कर गये। परन्तु 'आर्यसंस्कृति के विरोधी विदेशी और विदेशी सभ्यता में चले हुए लोग आज हमारी प्राचीन संस्कृति और गौरव को मिटाने के लिये हमारे विरुद्ध नाना प्रकार के पद्धयन्त्र रच रहे हैं।

विदेशी राष्ट्र जो स्वयं युद्ध के हर प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो चुके हैं निःशस्त्रीकरण की योजनायें बतला रहे हैं। भारत में एक दल भारतवासियों का निरन्तर व्याख्यान देकर युद्ध के भयङ्कर परिणाम बताकर खून और लडाईं से डरा रहा है। कायर मानव कर्तव्य च्युत होकर शांति की झमिलावा से ममता और स्वार्थ में फँसकर युद्ध से भाग रहा है और अपनी कायरता छिपाने के लिए अहिंसा का हिरण्यमय पात्र अपने सिर पर ढोप रदी है परन्तु १ अरब २० करोड़ २९ लाख ३२ हजार

वर्ष पुरानी भारतीय आर्य संस्कृति की रक्षा करनेवाले कदापि इन विरोधियों के पडयन्त्रों में नहीं फँसेंगे। हम तो अपने अतीत के गौरव को सामने रखकर दोसता की श्रद्धावाशों में जकड़े हुए मानव का महर्षि दयानन्द के भक्त होने के नाते आत्म गौरव को पाठ पढ़ाते ही रहेंगे। वास्तव में आज भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता सात धर्म है। अरसे



शैलक

अहिंसा के हथियार से स्वतन्त्रता स्थिर नहीं रह सकती है। सत्कार की राजनैतिक शक्तियाँ और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ हमें यह बतला रही हैं। अव्यवहारिक और कायरतापूर्ण नीति से अब काम नहीं चलेगा। हमारा वैदिक धर्म हमको यथायोग्य बताने और आयाचारी के नाश तथा निर्मूलों की सेवा का आदेश देता है। आज दीपावली के दिन जिस प्रकार भगवान राम माता सीता को रावण के बँडे से लुडाकर अयोध्या लाये उसी प्रकार हमको हमारा हुआरों माँ बहिनों का सतीत्व पाकि



ले०—देशमन्त्र कु वर वादकरण शारदा, प्रधान आ००० सभा राजस्थान, मालवा,





शुद्धि दयानन्द मनुष्य के

लेखक—श्री धर्मदेव शास्त्री, दर्शन केजरी, अशोक अ भम कानगी, देहरादून

धर्म और सभ्रद्वय तथा मत मतान्तर में भेद है यह बात जगद्गुरु आचार्य दयानन्द ने बहुत निम्नयना के साथ कही है। जिस समय दयानन्द ने पाखण्ड खण्डन पताका नडाई उस समय मतवाद और मठा धोशों के विकरुद कहना बहुत खतरा में चलना था। दयानन्द ईश्वर के अतिरिक्त किसी को डरते नहीं थे। गुरुवय दयानन्द स्वयुक्तव्य थे। मत मतान्तरा का खण्डन करते हुए आचार्य दयानन्द ने कुछ भी मत द शरीर में नहीं रक्खे। दया, ईसाएव तागा श। स्वा विरुद्ध रूप भ पीडा हुई, उसन अपन नविय धरनवाला मत को ही विष पिला। दया दयानन्द की सह प्युता का और दया का उदाहरण विश्व में नहीं मिलेगा विष देनेवाल का भी दयानन्द ने बचा लिया।

मैंन ससार के अन्य महा रूपों का दर्शन खरत्र पडा है सब का मत हृदय में आदर है। महा मा ईसा का खुली उठा कर ल जन का स्तानियो के हाथ से बचाने के लिये क दयकर होना पड़ेगा। नवयुवकों का इसकाल तयार होना चाहिये। ससार में सबसे बडी अनैतिकता बुल रहना है क्या कि हमर उर निषदा में कहा है —

‘नायमाना बलहीन लभ’

अर्थात् बलहीन मनुष्य कभी परमा मा का प्राप्त नहीं कर सकता। मैं नवयुवकों से कना है कि बुद्ध हृदय दौबल्य खलातिष्ठ पर तप” अर्थात् हृदय की दुर्बलता छोड़कर उठो और ससार से अन्याय, अपाचार मिथो दो तथा स्वतन्त्र भारत के गौरव का पुन स्थापित करो।

दृश्य महा मा बुद्ध का बोधिवृत्त के नीचे अटल अ खन महा मा गात्री का हरिजर्म और दुर्जिया का संग्रह लर उपवास करके मर जानेका सक टप यह सब दृश्य भुलाय नहीं जा सकते परन्तु मुझ स्वीकार करना चाहिरकि शिव के दर्शन के लिर गोमुख स आगे गल जोने का लृणिक कल्प जिस धय और हिम्मत के साथ दयानन्द ने मगाये हैं वह अन्य महापुरुष में मुझ नहीं मिलता। दिन भर शास्त्रार्थ करके मन्थरावि म योग करन ल मेरा आचार्य सच्चा मनुष्य था, य द दयानन्द मानव न होता तो मैं कभी उे आचार्य न मानता, दयानन्द न सर्वे धर्म की प्रतष्ठा की है बस न डोंग और व्यक्तिपूजा ही देय बनाया है। दयानन्द ने हमें खुली आँख से देखने और मार्गसक बल पर विश्वास करने का अभ्यास कराना चाहा, हमें सब से प्रथम अपनी आँख खोलनेवाले को खुली आँख से देखना चा हय।

दयानन्द ने भारत की परतन्त्रता का मूल कारण खोज लिया था उनक विचार भारत की परतन्त्रता का कारण विदेशी आक्रमण नहीं था इसका कारण हमारा धार्मिक और सांस्कृतिक अथ पतन ही था। मेरा राजनैतिक स्वतन्त्रता का मूल्य धर्म नहीं आँकता, परन्तु धार्मिक और सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनी अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। करोडा दक्षवासिया के दिमागो पर आक्रमण पाखण्ड सकाणता और गुरुडम क ताले लगे हैं धर्म क नाम पर आज भी हमारे देश में धर्म और अज्ञान का प्रभय मिल रह है, इसे कान दूर करगा? यह काम दयानन्द के शिष्यों का है। मानव दयानन्द हम मनुष्यों का सच्चा आदर्श है।





त्री-शिक्षा-लेखिका—सुश्री उषा गांधी



य देशो की तुलना में भारत की शिक्षा बहुत ही कम है। यूरोप अमेरिका इत्यादि देशों में जहाँ एक निरक्षर दूढ़े नहीं मिलता यने सों में से सौ पढ़े लिखे रहते हैं वहाँ भारत में छ प्रतिशत मनुष्य पढ़े लिखे हैं। और उसमें भी स्त्रिया तो प्रत शत २ ही पढ़ी लिखी है। यह देखकर समझदार मनुष्य जरूर सोच विचार में पड़ जावेगा। भारत के उन्नत न होने के कई कारण हैं। उसमें स्त्री शिक्षा का अभाव मुख्य कारण है। ऋषि मुनियों के काल में स्त्रिया का उच्च शिक्षा दी जाती थी। उसके बाद मध्य काल में मुस

कामन तथा शरीर सुसंगठित नहीं हो सकेता है माता की अज्ञानता के कारण ही कई बच्चे बाटयावस्था में मर जाते हैं। प्रसूति काल में स्त्रिया की मृत्यु सक्या यहाँ अधिक है यह भी उनकी अज्ञानता का ही कारण है। स्वच्छता तथा अन्य व्यावहारिक सद्गुण मता पिता द्वारा बच्चों को मिलते हैं दस बारह साल की आयु तक के लस्कार आयु पय त नहीं मिलते। यह अथु बालक अधिकतर अपनी माता के साथ ही बचता है। यदि माता पढी लिखी, विदुषी और चतुर हो तो बच्चों का खेल में ही बहुत ज्ञान मिल सकता है।

इसमें भी विप्रवा स्त्रिया की हालत बहुत भी ही बुरी है उसक लिए तो समाज में कहा सुख

सुश्री उषा गांधी महात्मा गांधी जी के सुपुत्र श्रीरामदस गांधी की योग्य पुत्री हैं। सुकुञ्ज शिक्षा प्रणाली ही स्त्री शिक्षा का उत्तम प्रकार है वह बत योग्यत के साथ कुमरो उषा गांधी ने लेख म स्पष्ट की है। —सम्पादक

लामानी शासन में अनेक अयाचार के डर से स्त्रियों की शादी जल्दी होने लगी। साथ ही साथ उन्हें चर दिवारी के बोच में रहने के लिये बाधित किया गया। इस तरह स्त्रिया की शिक्षा में पूरी तरह रुकावट आ गई। उले कई पुरुष ऐसा समझने लगे कि यद् स्त्रिया पढ़ेगी तो वे बाहर घूमेंगी और इस तरह अपने शील के न समाल सकेंगी। इस पर स्त्री शिक्षा के प्रति अपेक्षा बढ़ने लगी। इसका बुरा परिणाम कवल स्त्रिया पर ही नहीं पुरुषों पर भी हुआ क्योंकि पुरुषों में भी शिक्षा दिन पर दिन कम होने लगी। परन्तु अब वह समय नहीं है। भारत के मायाकाश में शिक्षा रुगी सू की लालिमा देखने लगी है। इस सुभव सर का हमें लाभ उठाना चाहिए।

शिक्षित माताओं के अभाव से बच्चों

नहीं है यह अपने को अमांगी तथा निकम्मी समझना है परन्तु यदि वह अच्छी पढी लिखी होंगी तो ऐसा न मानेगी और जो दु ख ईश्वर ने डाला है उसको धैर्य पूर्वक सहन करके उसमें से कोई अच्छा रास्ता निकाल लेगी। शिक्षित विप्रवा, समाज सेवा इत्यादि काम करके अपने जीवन को सफल बना सकता है। और इस तरह काय करके समाज के लिये उपयोगी हो सकती है। इस प्रकार समाज में जो सकुचित भाव दु ख और निराशा इत्यादि दिखाई देते हैं उनका कारण स्त्री शिक्षा की कमी ही है।

स्त्रियों के कार्य क्षम का विचार करके उनकी शिक्षा पद्धति निश्चित करनी चाहिए। कालेज की शिक्षा तो समाज के लिए इसकी उपयोगी नहीं हुई है। यह आजकल के कई लोग मानने लगे हैं। परन्तु कालेज





ऋषि दयानन्दके अप्रकाशित हस्तलेख

म ऋषि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का सब सामान, खड़ाऊँ, यह के पात्र, बैखाना, डायरी आदि तथा ऋषि के सब हस्तलेख जिन से वर्तमान ग्रन्थ छपे हैं सबको मैंने अजमेर जाकर वहाँ दयानन्द आश्रम में रह कर देखा।

यह राधा सामान गोडरेज की अलमारी में बन्द पृथिवीके अन्दर गाढ़ दिया गया था, अब वह निकाल लिया गया है। एक अलमारी पर्याप्त थी कुछ हस्त लेख बाहर थे। अतः वा० हरबिलासजी सारदा ने दो अन्य अलमारियाँ गोडरेज की लेकर सब हस्त लेख सुरक्षित रख दिये हैं। ऋषि के समय में बहुत से ग्रन्थ छपे ही नहीं थे। उन प्राचीनकाल के ऋषियों के ग्रन्थों तथा सम्प्रदायों के ग्रन्थों के बहुत से हस्त लेख ऋषि के अपने संग्रह में हैं जो आर्यसमाज की अमूल्य सम्पत्ति हैं। ऋषि ने उन्हीं हस्त लिखित ग्रन्थों से काम लिया है जिनके प्रमाण अपने ग्रन्थों में दिए हैं। कुछ लोग आज कल के कठिकल रेडिशन कहाने वाले ग्रन्थों के आधार पर ऋषि के ग्रन्थों में दिये प्रमाणों की समालोचना करने हैं, परन्तु ऋषि ने अपने काल में अपने पास रखे जिस हस्त लिखित ग्रन्थ से प्रमाण दिया है उस ऋषि के संग्रह वाले हस्त लेख का वे अजमेर जाकर देखें। परिवर्तन करने से घट बात ही नष्ट हो जायगी कि ऋषि के काल में की शिक्षा ठीक न होने से शिक्षा का बवनाम करना ठाक नहीं है। गुरुकुलों में जो शिक्षा दी जाती है वह भारत की संस्कृति की दृष्ट से अधिक अच्छी मालूम होता है। जैसे जैसे हमको अनुभव मिलता है वैसे वैसे हमें सखी शिक्षा का स्वरूप दिखाई देगा।

कोन सा हस्तलेख था जिससे प्रमाण दिया है।

परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि ऋषि के हस्त लेखों के संग्रह में से अद्भुत चौरियाँ हुई हैं। लकड़ी के तख्तों के बीच में हस्तलेख हैं। ऊपर से बस्ता बधा हुआ है। कई बस्तों को खोल कर देखा तो अन्दर लकड़ी के तखते ने। है पर उनके अन्दर का हस्त लेख नाश है। ऊपर से बस्ता बधा हुआ है। कुछ पड़े हस्त लेख बिना तख्तों



लेखक

के केवल बस्तों में बंधे हैं उनमें से बस्तों के कपड़े पड़े हैं हस्त लेख नहीं हैं। ऋषि ने बस्तों के ऊपर हस्त लेख का नाम लिख कर ढग से हस्तलेखों को रखा था। जो हस्तलेख नाश हैं उन बस्तों पर लिखे हस्त लेखों के नामों का बिगाड़ने का यत्न किया गया है फिर भी अभी पढ़ने में आते हैं।

ऋषि दयानन्द के सब ग्रन्थों के प्रथम संस्करण के मुखपृष्ठ बहुमुद्रित हैं। उन, पर बहुत सी यातें ऋषिबन्धु छाप दिया



(लेखक—आचार्य विश्वभवाः वेदमन्दिर बरेली)



❀ जग को जगा दिया ❀

(युवराज रणजयसिंह एक्स एम. एल ए. केन्द्रीय, अमेठी राज्य)



अग्नि, वायु आदित्य, अगिरा चार ऋषियों ने,
 ईश्वरीय जनालोक आदि सृष्टि में किया।
 ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद
 जिन्हे पदा भित्ति भी, ज्ञानानृत है पिया।
 किन्तु ज्ञान कर्म बिना, कर्म बिना ज्ञान हुआ,
 ऋषि दयानन्द ने या मर्म पूरा पा लिया।
 तभी तो रणजयसिंह सत्यार्थ का प्रकाश कर,
 सीते हुए जग को फिर से जगा दिया ॥१॥



लेखक

करते थे। किसी ने मुखपृष्ठों को फाड़कर पुस्तकें
 वहीं छोड़ दी है और मुखपृष्ठों को ले गया।
 ऋषिदयानन्द के वेदभाष्य क प्रथम संस्करण की
 सब जिल्दें एक सन्तुक में बन्द थी किसी ने
 कुछ जिल्दें प्रथम संस्करण की निकाल कर
 उनके स्थान पर नवीन संस्करण की जिल्दें
 रख कर संख्या पूरा कर दी है। एक फायल
 सत्यार्थप्रकाश की है। उसका अन्तर्ग क सब
 कागज़ कोई निकाल कर ले गया और फायल
 बही पड़ी है।

(ऋषि का किया हुआ वेद भाष्य) ऋषि
 दयानन्द का वेद भाष्य यजुर्वेद कासम्पूर्ण और
 ऋग्वेद का अपूर्ण छप, है वेदभाष्य का
 नमूना भी विस्तृत भाष्य वाला पृथक्
 छपा मिलता है वर्तमान ऋषि क छपे वेद
 भाष्य से कहीं अधिक विस्तृत है। ऐसा बहुत
 सा वेदभाष्य हस्तलिखित बिना छपा लिखा
 पड़ा है। इसके अतिरिक्त चारों के
 मण्डल आदि क्रम से विषय लिखे पड़े

हैं जो शेष वेद भाष्य के लिये आर्य दर्शन हैं।
 परोपकारिणी सभा में फोटो की मशीन कई
 हजार रुपये की ला हुई रखी है पर वह
 बिगड़ी पड़ी है।

ऋषि की डायरी ऋषि के वैखाने आदि
 सब वस्तुएं जिन्हे स्वामीजी ने अपने हाथ
 से लिखा है सुरक्षित रखने योग्य है उनके
 अन्दर भी कई समस्याएं हल हुई धरी है।





धर्म-राज्य

ले०—श्री डा०) सूर्यदेव सर्वा सिद्धान्त शास्त्री, साहित्यालङ्कार, एम ए एन डी , डी लिट, अजमेर

कब धर्म-राज्य होगा, इस देश में हमारा ?
कब जगद् गुरु बनेगा, भारत पुनीत प्यारा ?

(१)

क्या हुआ जगत् में, अज्ञान का अँधेरा ।
जगद्वाद के तमब ने, अध्यात्म चोद देरा ॥
मानव हृदय पटल पर, है स्वार्थ का बसेरा ।
इस मोह राशि का क्या, होगा नहीं सवेरा ?
कब विश्व फिर बलेगा, ले वेद का सहारा ?
कब धर्म-राज्य होगा, इस देश में हमारा ?

(२)

काली कुटिल कुलिश सम कट्ट कूट नीति काई ।
सोबन्य के सुजल पर है कूट्य रूप छाई ॥
सर्वत्र ही कलह की ज्वाला जले, जलाई ।
दे देश में दर्शो दिशि दुर्भानना दिखाई ।
इस वेद भाव ने बस, वातावरण बिगारा ।
कब धर्म राज्य होगा, इस देश में हमारा ॥

(३)

बहु देश धर्म-पथ का प्रेमी पथिक रहा है ।
नित वेद-ज्ञान मन्त्रा को धार में बहा है ॥
बदि विपति बस्र छाया उठकी सदा सदा है ।
पर 'कब शिव सुन्दर' का ध्येय हो गया है ॥
मिचने अज्ञान तारा, क्या फिर उगेन तारा ?
कब धर्म-राज्य होगा, इस देश में हमारा ?

(७)

अब सत्य धर्म ही का जग में प्रचार होगा ।
अन्यास युद्ध पीड़न का बहिष्कार होगा ।
भुक्ति "सूर्य" से विलास अब सब हान्यकार होगा ।
गौबी व ब्यानद का तब जन्म तार होगा ॥
चमके सभी जगत् में इस देश का सितारा ।
तब धर्म-राज्य होगा, इस देश में हमारा ॥

(४)

बहु ब्रह्म ज्ञान दर्शन, बहु वेद की श्रुचायें ।
कर बस ब्रह्मचारी, बन गुरुकुलस्थ गाथें ॥
प्राचीन सभ्यता की, पावन परम्परायें ।
इस राष्ट्र की रमों में, सम्पूर्णत समायें ॥
जब वेद भारती का हो भारतीय नारा ।
तब धर्म-राज्य होगा इस देश में हमारा ॥

(५)

मानव मनोह सर में, भुक्ति जलज जब विल्लेगे ।
मों की पुकार पर अब, सबके हृदय हिलेगे ॥
भारत अखण्ड होगी विलुडे हुये मिलेगे ।
जो फट लुके हूँ हैं, वे प्रेम से वननेगे ॥
फिर से वही बहेगी, जब पुरय प्रेम धारा ।
तब धर्म राज्य होगा, इस देश में हमारा ॥

(६)

फल फूल अन्न बल से, भरपूर जब महो हो ।
धन्य धान्य साधनों को, डुल्ल भी कमी नहीं हो ॥
जब बाह्य और भीतर, स्व और शांति ही हो ।
जब राष्ट्र की पशना, सब और हो री हो ॥
हो विश्व का शिरोमणि, भावत समृद्ध सारा ।
तब धर्म राज्य होगा इस देश में हमारा ॥





आर्यसमाज एक उच्चकोटि का :—

धार्मिक ट्रेनिंग कॉलेज है



निग कॉलेज ? हाँ ट्रेनिंग कॉलेज है । जहाँ धर्म विषयक सब प्रकार की शिक्षा मिलती है । आप चाहे सब कुछ जानें बरें, आप वैश्व समाज के साप्ताहिक सत्रसभों में नियमित रूप से जाया कीजिए, आप अनायास ही, बिना कुछ पुस्तक देखे ही बिना कुछ रटे रटाये ही धर्म, सदाचार, प्राचीन रीत, नीति, पद्धति, प्राचीन शिक्षा दर्शन, धर्म कर्म आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेंगे ।

यही बात है कि साधारण से साधारण आर्य भी बाद विवाद में किसी से भी निडर जायगा । निश्चय ही, रतर्क-वितर्क चलायेगा, निर्भीक होकर विचारेगा क्योंकि आर्यसामाजिक साप्ताहिक सत्रसभों में धर्म विषय पर भिन्न भिन्न दृष्टि से इतने व्याख्यान होते हैं कि उनको सुनने के पश्चात् किसी की भी बुद्धि प्रसृत नहीं रह सकती ।

स्वामी दयानन्द ने समाज के हाथों में ऐसा तर्क की शिखर दिया है कि आर्यसमाज एक सद्स्य, सहायक प्रतिष्ठित सद्स्य इन विषय में इतने प्रवीण हो गये कि उन्होंने और इनके उपदेशकों और महापुरुषों ने प्रायः सभी मतान्तराचार्यों का मुँह बन्द कर डाला है । उनका हृदय अपनी स्मरण नहीं खोच सके है यह और बात है । अब तो आर्यसमाज से कोई टकराता ही नहीं । आर्यसमाज का दरार भी बदल गया है । यह तो हुआ इस ट्रेनिंग कॉलेज का सन्निवृत्त भवन, इस शिक्षणालय के निरम उपनिषद्, सगठन बड़े ढंग में चलत है समाज, समाजों से मिल कर प्रान्त प्रान्त की प्रतिपक्ष साधों फिर प्रतनिधि समाजों से निमित्त साधों वैश्विक



लेखक—
आचार्य नरदेव शास्त्री,
वेदतीर्थ

सभा, अच्छी खासी प्रजातन्त्र की प्रतीक है । इनसगठन में लगभग २००० समाज हैं । आर्यविचार के लोग होंगे कोई पचास साठ लाख । इस ट्रेनिंग कॉलेज ने आज तक भारत को सहस्रों लक्षों देश भक्त दिये, इस ट्रेनिंग कॉलेज में शिक्षा प्राप्त किये हुए लोग, किसी



भी कार्यक्षेत्र में आर्य किसी से पीछे नहीं रहेंगे । धर्म क्षेत्र, शिक्षा क्षेत्र, समाज सुधार क्षेत्र, राजनैतिक क्षेत्र इन क्षेत्रों में जितने आर्यसमाजी गये उतने किसी भी अन्य सोसायटी के लोग नहीं गये ।

आर्यसमाज अपनी शिक्षा दीक्षा देकर लोगों का स्वतन्त्र छोड़ देता है । ऐसे आर्यसमाज समष्टि रूप में राजनीति में नहीं पड़ा । इससे अचूता सा रहा पर व्यक्तिगत रूप में इसने किसी को राजनैतिक आन्दोलन में जाने से नहीं रोका । यदि वहीं वह समाज विद्या सभा, धर्म सभा के साथ साथ राजसभा भी बना कर समष्टिरूप में राजनीति में भाग





लेता तो समस्त भारत वर्ष दहकेपीछे हो लेता' और फिर कदाचित् कॉंग्रेस की आवश्यकता ही नहीं रहती। स्वामी दयानन्द की एक एक बात देश और धर्म के प्रश्न पर इतना बल देती रही है कि आज तक किसी नेता ने भी इन दो बातों पर इतना बल नहीं दिया। कांग्रेस ने धर्म की बात को घिस्कुल छोड़ दिया। स्वामीजी स्वराज्य और स्वतन्त्रता के पूर्ण पक्षपाती थे, पर वे स्वधर्म की बात को छोड़ना नहीं चाहते थे। अर्थात् वे स्व 'म' शुभ्य स्वराज्य नहीं चाहते थे। जब तक वैसा स्वराज्य न होगा भारतवर्ष का सच्चा सुख नहीं मिलेगा। कांग्रेस का धर्म शुभ्य स्वराज्य पारम्पर्य पद्धति का अनुकरण मात्र है। स्वदेशानुकरण 'राज्यव्यवस्था' को लाने के लिये आर्यसमाज की मये सिर से उग्र तप करना होगा। तब आकर भारतवर्ष प्राचीन स्थिति पर आ सके तो आ सके।

इसमें एक दोष आ गया है कि इसका उग्र तर्क वितर्क स्वयं इसको लाने लगा है। आर्यसमाज यदि पुनः शक्तिशाली, धनाढी आहता है तो उसको भ्रष्टा भक्ति का आबाहन करना पड़ेगा, नहीं तो तो यह शक्तिशाली आर्य समाज भी भक्ति शुभ्यता का कारण नाम शेष रह जायगा। आर्यसमाज को शक मो होना चाहिए और भक्त भी।

आर्यसमाज ने अपने जन्म दिन से इतना बोला है, इतना बोला है कि और कोई क्या बोलेंगा। जितना बोला है उसका शताश्रु भी तो काम नहीं कर सका। इसकी युक्ति शक्ति भक्ति साथ साथ चलती रहतीं ता बड़ा कार्य होता।

संसार का उपकार करना कोई बड़ा का क्षेत्र छोड़े ही है? आर्यसमाज अब तक अपनी स्थिति से भारत का तो उपकार कर सका वह भी अशुभतः पर संसार भर के उपकार की बात तो अभी दूर है।

वह किनारा कहाँ है जहाँ से कि आर्यसमाज की नौका चली थी?

"वह बहुत दूर पीछे रह गया"
और वह किनारा कहाँ है जहाँ कि नाव को आकर लगना है?

"वह अभी बहुत दूर है"

आकाशवाणी कहती है कि—

"अभी इस दिशा में हुआ ही क्या है"

इस दू निग कल्लिज में "हन्" से जितने भी अर्थ निकलते हैं अथवा निकन सकते हैं उन सबकी शिक्षा देने का मयत्न किया जा रहा है। हमें तो आर्यसमाज से एक ही बड़ा लाभ हुआ है वह यह कि हम नास्तिक होने से बच गये। पहले आङ्गल शिक्षा में लालित-पालित पोषित होने का कारण और उभर के समगं से हम नास्तिक हो चले थे, कैद बचे यह कभी शान्त पूर्वक बैठ कर लिखने की बात है।

आर्यसमाज का सामने विस्तृत कार्यक्षेत्र है और यदि अग्रगण्यो स्फिस्टि क लो दो सां विद्वान् उपदेशक मिले और देश विदेश में विचरें तो बड़ा काम हो सकता है। ईश्वर करे इस समाज में पुनराप पाण प्रतिष्ठा होकर, यह भारत तथा उत्तर का उपकार कर सके।

आर्यसमाज कल क वगैरह में ईश्वरवाद का नहीं मानता। आर्यसमाज का पास भारतीय उच्च क्रांति का वैदिक साम्यवाद है। इसका अपना अनेका समाजवाद है जो कि वर्गव्यवस्था पर निर्भर है। आज कल का संसार अनेक उन्नतता में फला हुआ है। उन उन्नत उलभने का सुलभाने की आवश्यकता है। आर्यसमाज और कुङ्गन कट सके तो पारम्पर्य वर्गवाद, पारम्पर्य समाजवाद का कुञ्जलुङ्क के तो भी यह एक बड़ा कार्य कर जायगा।

आर्यसमाज भक्ति से शक्ति का संसार

द्वन्द्व करे और उस शक्ति का युक्ति से यथास्थान प्रयोग करे।





गद्य गीतः—

!

दीपावली की रातः



सबेरे की सुहावनी सयः समीर ने लुपके से कहा—आज विभावरी राग द्वेष भूल आलोक को अपनी गोद में खिलायेंगी।

सन्मुख हुआ भी ऐसा ही। तमिस्रा जगमगा उठी। श्यामल अंकल पर पीत दीपावलिनां ! अहा ! अमाँ निशा का वलुपित मुख ज्योतिर्मय हो गया।

दीपावलि ने धरती पर स्वर्ग बिजरा दिया। नयनों में स्नेह अपलता भर कर सब लोग एकटक उसी को ओ. निहार रहे थे। दीपावली की राग धरा पर मज्जु बरसा रही था।

कालिक को अमावास्या मधुर मज्जु यामिनी हो गई। आश्चर्य ! आकिर यह बही निशा तो है जो साधन भादों में नागिन की तरह उसने आती थी।

निशा ने राग द्वेष भूल कर आलोक को अपनी गोद में उठा लिया शायद तभी यह इतनी सुन्दर हो उठी सबकी प्रीति-पात्र हो गई।

यह जग जीवन दुःख का सागर माना जाता है और इससे मुक्ति पाना ही मानव जीवन का हेतु कहा जाता है। यदि यह राग द्वेष भुला कर, स्वनिर्मित पाप शैल को चूर कर दे, तो क्या जीवन दीपावलि की रात की भांति मधुर न होगा।

काश ! ऐसा होता। तो कितना सुन्दर होता। इस भूतल पर स्वर्ग निछावर होता। फिर इससे मुक्ति पाने की कोई इच्छा भी न बरता मुक कण्ठ से सभी यह कहते—

सुन्दर, सुन्दर रे जग जीवन
सुन्दर जीवन का कम रे।

और—और दीप जिला हँस-हँस कर सोये शीषा के तारों में नया राग और नया स्पन्दन भर देती।

—रानी कान्वा





क्या कोई है ? (भी विद्यान्न्द विवेक)

“आर्षाभिषिन्धय” में अनेक स्थलों पर महर्षि दयानन्द ने प्रार्थना की है “प्रभो! इस समस्त भू-व्यापक हर हम आर्यों का चक्रवर्ती सार्वभौम आर्य साम्राज्य हो।” सत्यार्थप्रकाश तथा सत्यार्थविभाष्य भूमिका में स्थान स्थान पर ऋषि ने वेद को विश्वधर्म बनाने को उरफट प्रेरणा की है। प्रत्यक्षतः विश्व में वेदप्रचार के स्थापित्व के लिये संस्कृत को विश्वभाषा बनाना भी परम आवश्यक है। (१) सार्वभौम आर्य समाज की स्थापना करना (२) वेद को विश्वधर्म बनाना (३) संस्कृत को विश्वभाषा बनाना—दिव्यत्वान्द्रष्टा देव दयानन्द के ये ही तीन उदात्त स्वप्न थे। इस सार की सिद्धि के लिये ऐसे तप-

स्वियों की आवश्यकता है, जो आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करके अपने व्यक्तित्व का निर्माण करें और अपने सुनिष्पन्न जीवनों को इन स्वप्नों की साधना में खपा दें। इस साध की सिद्धि के लिय आवश्यकता है ऐसे दम्पतियों की, जो गृहस्थ के सुख भोगों और विषय विलासों पर लातमारकर इदृता के साथ श्रुति-पथ पर आरुढ़ हो जायें और पग पीछे न हटा दें।

“अप्रतीतो जयति स बनानि”

‘पग पीछे न हटानेवाले ही दिव्य साधों की सिद्धि करते हैं।’

क्या कोई है, जो अपने आपको इन साध की सिद्धि के लिये समर्पित करेंगे !!

—आर्य समाज के क्षेत्र में नवीन प्रकाशन—
श्री साहित्याचार्य पं० ब्रह्मदत्त तिवारी “नागर” की० ए०
(आन्ध्र), एम० ए०, साहित्यरत्न द्वारा विरचित —

१—शिवरात्रि व्रत—खण्ड काव्य २—निर्वाण—खण्ड काव्य
सर्व साहित्यिक छन्दों में महर्षि विद्या की दुलदायी बेला आर्य जगत में समिद्धा का आगमन—इसी पटना का हृदय हिला देनेवाली भाषा में सुन्दर वर्णन। साहित्यिक छन्द बोधगम्य एवं प्राञ्जल खण्ड काव्य। मूल्य वेद रूपया।

१० नवम्बर १० तक आर्डर भेजने वालों को केवल दो रुपये में दोनों पुस्तकें। डाक म्य व दृषक, सभी आर्यसमाजों को एक एक प्रति अवश्य भेजनी चाहिये।
पता—संचा लक, साकेत प्रकाशनमंडल, गुरुद्वारा रोड, लखनऊ

पूज्य विरजानन्द

वन्दे

श्री बहोरीलाला शर्मा उगाध्याय

शुभ सृष्टि के विनायक,
आर्य कैवल्य चन्द वन्दे।
भूति, निकुञ्जों के विहारी,
शाश्वतीयानन्द वन्दे।

विमल कविता मञ्जरी के,
मधुमय मकरन्द वन्दे।
श्रुति दयानन्द के प्रेक्षता,
“पूज्य विरजानन्द वन्दे” ॥





“राजधर्म”

‘श्री श्यामासुन्दर विद्याभास्कर’

“प्रजाओं पालनं धर्मो राज्ञां राजीवलोचन”

महाभारत से

प्रजाधीन राज्य या राजाधीन राज्य, या प्रजा तन्त्र अथवा राजतन्त्र, शब्दों से मेरा अर्थ है, पर प्रजा का अनुसरण, परिपालन, संरक्षण तथा सर्व-धर्म राजा का कर्तव्य है। राजा का प्रतिनिधि आज कल प्रेसीडेन्ट रकला जाता है। प्राचीन राज्यतन्त्र



बौद्धक

प्रणाली भी सुयोग्य, सम्भोग, धीर, सुविज्ञ कुलीन मन्त्रियों के परामर्शों से ही सफल होती थी।

यहाँ राजा के लिए, धर्म, शान, वैराग्य, और ऐश्वर्य की आवश्यकता है। वहाँ मन्त्रियों को भी वृहस्पति, विश्वामित्र, मर्यादा, बलिष्ठ की पदवी प्राप्त करने की जरूरत है।

आज राजर्षि जनक, तेजस्वी बाजिमैत्र स्वामि-मानो भरत जैसे राजा कहीं। तपःवृत्त शालबल्यम्, महर्षि व्यास, ऋषि पराशर,

गौतम ऋषि महात्मा होते हुए भी शासकों के मार्ग दर्शक महाभारती कहीं ?

प्रजा का पुत्रवत् पालन, विधवा हीन राज्य का शासन, यथा समय शालवपर्ष, अवसर पर कर्मों का दर्शन, सुमित्र का पलायन, अश्व हत्या का हनन, नीरो गता का निदर्शन आदि राजा के राज्य के लक्षणक थे।

जिस राज्य में स्वयं श्यामला भूमि, आधुनिकी प्रजा सब शासन से सम्पन्न हो, धर्मरता तथा सन्तुष्ट, स्वस्थ निर्वास हो सत्यवती नर नारिषों हो जिसमें नित्य पुष्पफलों से भरे भरे वृक्ष, तथा प्रचुर मात्रा में दुग्धवती गायें रहेगी, वही राज्य रामराज्य की तरह चिर जीवित रह सकेगा। प्रकृति और पुरुष की तरह राजा और प्रजा भी अन्वयोन्वाभय हैं। बिना प्रजा राजा पाण्डु है, बिना राजा प्रजा भी अराजकता से भरी है।

राज की राज्य प्रणाली भी ठीकी पद निम्नों पर चलकर सफल होगी। कोई भी शासन प्रणाली, प्रजा को उपेक्षा नहीं कर सकती। यदि राजसत्ता (शासन पद्धति) के रहते प्रजा दरिद्र है पावरता है, कीड़त हैं, नर नारिषों का हाहाकार सुनती है तो निश्चय ही वह राज्य पद्धति अल्पजीवी तथा अस्थिर अस्थिराभिमुखी होगी।

जिस राज्य पद्धति में अन्वयो का अभाव, वस्त्रों की दरिद्रता, हरेक व्यवसाय पर प्रतिबन्ध, प्रजा की अस्वस्थता, करों की बहुलता विज्ञ स्वर्ण का व्यव बद्ध रहा हो, वह शासन व्यवस्था एक ही झोके से आगे पानी में मिल जायगी।

वही राज्य के प्रतिनिधि भेष्ट कहे जायेंगे —

“यस्य वृत्ता नमस्त्यजित, स्वर्गेश्वर्यापि । नानाः

वीर जानपदाभात्वा स राजा राजसत्तम ॥

न राज, प २१। १६

जिसके व्यवहार तथा आचरणों के सामने स्वर्ग के देवता भी खिर झुका दें। पुरवाही और नगर निवासी प्रजा जनो का तो कदना ही क्या ?



उत्कृष्ट पुस्तकें

१. उपनिषद् प्रकाश, २॥)
 २. परेल्ल विज्ञान सभिव्द २॥)
 ३. इहागत सामर सभिव्द २॥)
 ४. छागदीय उपनिषद् (१)
 ५. वायव्य नीति ॥॥)
 ६. सत्य नारायण की कथा ॥॥)
 ७. आर्य सभिव्द ॥॥)
 ८. प्राणाश्राम विधि ॥)
 ९. धर्म शिक्षा ॥)
 १०. राष्ट्रीय तराने ॥॥)
 ११. भगत सिंह सन् ३० में जन्त २
 १२. गीता (तिलक) छोटा २॥)
 १३. मनुस्मृति (स्व. तुलसी) स० ५॥)
 १४. पाक विज्ञान सभिव्द ३॥)
 १५. स्वास्थ्य और योगसन २॥)
 १६. मुसाफिर भोजनावली २॥)
 १७. दयानन्द चरित्र २॥) तथा ॥॥)
 १८. जनेऊ १॥) (२०) सामग्री १॥) सेर
 १९. हवनकुण्ड लोहा १) ताबा ३)

इसके अलावा १२ प्र० २

पुस्तकों के लिये बहुरा ५० पत्र
 मंगाइये। कनिश्चन काकी डि नाता
 है पता डाकखाना साक लिखिएगा
 रशमलाल बसुदेव भारतीय
 आर्य पुस्तकालय-बरेली

डाबर आंवला केश तैल



★ मनीरम गन्धयुक्त श्रेष्ठ
केश उपादान

डाबर (ड० ए० के० चर्मरोगिनी)



पारोकिल

**प्योरिया और दन्तों की दुखी बिमारियों
की अचूक दवा है**

गुरुकुल कागड़ी फार्मसी

गुरुकुल

रवेतकृष्ट की अद्भुत जड़ी
 पिय सज्जनों! औरों की भांति
 कृषिक प्रशंसा करना नहीं चाहते, यदि
 उनके ३ दिन के सेवन से सफेदी के दाग
 दूरा आराम बड़ से न हो तो मूल्य वापस
 हो चाहें—)॥ का टिकट मेथकर शक
 लिखा लें। मूल्य लगाने की २॥), जाने
 पत्रग २॥)

पता—वैद्यराज दर्शन सिन्हा
 हम्बीपुर पो० एकगवाय, पटना

अवतर के वितरक—एस० एन० मेहता को० एच०, २०, ९ श्रीरामरोड ललनक

सबसे भयंकर
और दुष्ट रोग

T.B.

टी० बी०

तपेदिक

राजकृष्ण



भारत के कोने २ में इस दुष्ट रोग ने जो तबाही ः ली है, वह किसी से छिपी नहीं है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार लगभग १० लाख व्यक्ति, प्रति वर्ष काल के भयंकर गाल में चले जाते हैं। इसी प्रकार को विदेशी औषधिवा द' इंजेक्शन आदि इस रोग को नष्ट करने के लिये लाभ्ये, चौड़े दावों के साथ निकाल जाती हैं। परन्तु—होता है क्या ? (मर्ज बढ़ता गया—जूं जूं दवा को) वालों कहाकर रही है। पहले "स्ट्रेप्टो माईसीन" (एक अमेरिकी दवा) की बड़ी लम्बी चोरी प्रशंसा की गई थी, जिसको देखो, इसी के गुण गाता था। विदेशी शिवा में रगे हुए हमारे देशी माई भी, अरु ेही इलाज पर विश्वास न करके, हजारों रुपये विदेशी हलाज पर नष्ट ३.६ जब फकीर हो जाते हैं। फिर पक्कता कर इधर उधर दौड़ते हैं। परन्तु, े तो बही कहावत होती है कि—(अन्न पकताए क्या होत है जब चिड़ियां चुग गईं, सेत) अन्न इस "स्ट्रेप्टो माईसीन" जिसे इस रोग के लिये अचूक "ईश्वरी देन" समझा जाता था, उसका हाल हो देखलें। हमारी तरफ से नहीं बल्कि सरकारी रिपोर्ट के अनुसार। स्वास्थ्य विभाग को एक विशिष्ट है कि—"स्ट्रेप्टो-माईसीन" का प्रयोग वास्तव है। (देखो विख्यात दैनिक पत्र "विश्वविपण"

कानपुर ता० १६ जून)

विदेशी औषधियों पर हजारों रुपये छुटाने वालों—नोट करो !

T. B. तपेदिक के रोगियों—फिर क्यों विदेशी हलाज में अपने धन और जीवन को नष्ट कर रहे हो ? क्या अभी तक आपने भारत विख्यात महोषधि "जबरी" का नाम नहीं सुना, जो इस दुष्ट और भयंकर रोग से तथ्य रहे हैं। भारत के कोने २ से बलों प्रशंसा पत्र आप प्रतिदिन समाचार पत्रों में देखते ही होंगे। हजारों रोगियों का कहना है कि "जबरी" दवा नहीं है बल्कि रोगी के काल के भयंकर गाल से बचाने वाली "ईश्वरीय शक्ति है जबरी" भारत के लंगोट बन्ध पूर्व अर्थियों की अद्युत खोज और आयुर्वेदिक विद्या का एक अनोखा चमत्कार है। यदि आर सच तरफ से नाउत्प्रेत हो चुके हों, देखने (Xray) आदि के बाद डाक्टर, हसीनों ने भी अज्ञान दे दिया हो तो भी एक बार परमारमा का नाम लेकर "जबरी" की परीक्षा बदर करें। परीक्षा हो १० दिन का नमूना रखा गया है, जिससे तपस्वी हो सके।

T. B. टी० बी० "तपेदिक" व पुराने ज्वर के हताश रोगियों ?

अब भी समझो अन्धबा फिर बही कहावत होगी "अन्न पकताये क्या होत है जब चिड़ियां चुग गईं" सेत" इसलिये दुरन्त आर्डर देकर रोगी की जान बचाओं। सेकड़ों हकीम, डाक्टर, गैय अनेक रोगियों पर व्यवहार करके नाम पैदा कर रहे हैं और तार द्वारा आर्डर देते हैं। तार आदि के लिये हम रा पता केवल "जबरी जगाधरी" JABRI Jagadhri लिख देना ही काफी है। तार से यदि आर्डर दे तो अपना पूरा पता मिले मूख इस प्रकार है— "जबरी" स्पेशल नं० १ अमरीठी के लिये जिसमें साथ साथ ताकत बढ़ाने के लिये सोना, मोती, अन्नक आदि की मूखवान भरमें की पकड़ी है। मूख पूरा ४० दिन का कोर्स ७५) रु. नमूना १० दिन के लिये २०) रु०। "जबरी" नं. २ जिसमें मूखवान जकी वृद्धियां हैं, पूरा कोर्स २०) रु० नमूना १० दिन के लिये ६) रु०। महदल आदि अन्नग। आर्डर में पत्र का हवाला तथा नम्बर "जबरी" साफ साफ लिखें। पार्लस जल्द प्राप्त करने के लिये मूख आर्डर के साथ भेजें। यदि AIRMAIL से भगाना हो तो ३) रु० डाक खर्च अधिक भेजें।

पत्रा—राजकृष्ण के. एल० घमा प्रबन्ध सन्ध रहस्य एरन्ड बैंक (२१) "जगाधरी" (E. P.)



महर्षि बाक्य ही मनुष्यक अर्थव्यवस्था हैं

ले०—पीतमलाल जी एडवाकेट मन्त्री आर्य प्रतिनिधि समा उत्तर प्रदेश

ह
१९३३

मारा प्यारा भारत देश गत ३ वर्ष से स्वतन्त्र हो गया है, यह परमात्मा की महती दया है। देय निया-सिया की आशा थी कि स्वतन्त्रता से देश में राम राज्य की स्थापना होगी, परन्तु जय अतु-भव से एक २ देश निवासी को अपनी आवश्यक वस्तुओं को पश्चिम में कठिनाई, वा महंगाई, व्यवहार में मिथ्याकरण, चोरबाजार, रिश्वत-खोरी आदि दृष्टिगोचर होते हैं तो यह सहसा प्रश्न करना है कि क्या यह ही राम राज्य के लक्षण हैं? यदि नहीं, तो इन दोषों ने जाति और देश का बचान वी क्या औप्ये है?

महर्षि द्वावानन्द जी ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' को भूमिका में लिखा है:—

“इस हानि ने, जो स्वार्थी मनुष्यों का पिय है, सब मनुष्यों वा दुःख सागर में डुबा दिया है। इनमें से जो कोई सुसंस्कृत ब्रह्मिणिकहित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु कल्पमेव जयते नाशुतम्। सन्नेन पन्था निततो देवऽयानः ॥ अर्थात् सवद् सत्य वा विश्वय और असत्य का पराजय, और सत्य ही विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है— इस दृष्टिनिश्चय के अखलम्बन से आपन लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी स्वार्थी प्रकाश करने से नहीं हटते। यह बड़ा दृढ़ विश्वय है कि:—

यत् तदमे विभक्तिं परिणामेऽप्युच्यते मन्म
अर्थात् जो २ विद्या और धर्मप्राप्ति के क्रम हैं वे प्रथम करने में विषय के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं।”

निश्चय निकला कि स्वतन्त्रता देश और जाति के लिये सुखकर है और अधिक सुखकारी होगी, परन्तु स्वार्थी मनुष्य

इसमें विघ्न डाल रहे हैं जिससे हानि होरही है इन स्वार्थी भाणिकर मनुष्यों का कैसे बशी भूत किया जावे? इसका समाधान श्रुति इस प्रकार करते है.—

जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशो श्यापयितु प्रजाः

॥ मनुः अ० ७, ४० ॥

अर्थात् जितन्द्रिय ही प्रजा को अपने वश में करने में समर्थ होता है।

महर्षि द्वावानन्द सरस्वती आप्त विद्वान थे— आप्त विद्वानों का यही मुख्य काम होता है

श्री वा पीतमलाल जी एडवाकेट एक कमठ आर्य हैं, आप आज़कल आर्य प्रतिनिधि समा उत्तर प्रदेश के मन्त्री हैं, प्राक्त में समाजों की उन्नति के लिए तथा आपों को बर्तव्य निर्देश कराने के लिये आपने इससे पूर्व भी अनेक योजनार्थ तथा सुभाषी प्रस्तुत किये हैं। इस लेख में आपने श्रुति निर्दिष्ट मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा की है।—स.

कि यह ससार के सोमने सत्यासत्य का वास्तविक स्वकार दिलावे— महर्षि ने अपना जीवन परोपकार में ही बितया और अन्त में प्राण तक निष्ठावर किये— आर्य पुरुषा को आदेश किया कि सुख, शान्ति के जीवन के लिये तपस्वी, त्यागी, सवम का जीवन आवश्यक है। अर्थ समाज के नियम “ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नत करना” तथा “अत्येक वा अग्नी हो उन्नति न सन्तुष्ट न रहना चाहिय किन्तु सब की उन्नत में अपना उन्नत समझनी चाहिये।— स्वर्ण अक्षरों में लिख जा। योग्य और





निर्भीक क्रांतिकारी दयानन्द

श्री विराज (साहित्य मन्दिर कनखल)



व नार सन् १९५० में हरद्वार में दुआ कुम्भ मीने देला । जो कुछ देला उसे देल कर बिगम, चोम और बुल से मन कइवा हो उठा । नार नार मन में बही बात आतो थी कि आज ७२ या ८४ साल बाद जब यह

हालत है तो उस समय क्या दशा रही होगी जब श्रुति से दयानन्द ने वहाँ अपना पाखण्डबिनी पताका झाड़ी थी । इन चौरासी सालों में शिबू का प्रचार कुछ न कुछ हुआ ही है । बहुत से कारखों से ग्रन्थ विश्वातो में भी कुछ कमी आये है । परन्तु आज भी इतना बड़ा पाखण्ड, इतने गर्हित प्रदर्शन इतनी विशाल जनता के साजने किये जा सकते हैं तो उस समय क्या

सर्वमान्यनिष्ठम हैं । इनके पालन से देश में स्वार्थ परायणता घटेगी । महर्षि दयानन्द ने आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व भारत देश के लिये अपनी अच्छूक ओषधि का तुलसी अपने अमर प्रभु सत्यार्थप्रकाश में इस शब्दों में लिखा:—

“इस लिये जो उन्नति करना चाहे तो अर्थ नमाव के साथ मिलकर उसके उद्देशानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्यों कि हम और आप को अति उन्नत है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, अब भी होगा, उसको उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर पालन करें ।

राजराज्य की स्थापना में जो योग आज उर्गा धन हैं उनकी अच्छूक ओषधि महर्षि दयानन्द ने बहुत पूर्व बताया है । हमारा कर्त्तव्य है कि इसका उपयोग करें, आजकाल में प्रविष्ट होकर वैदिक विज्ञानों का प्रचार करें जिससे देश, अति और संसार में सुख-शान्ति का राज्य हो ।

दशा रही होगी । रह रह कर मन झूठ उठता था । कि इसे बदाने को एक नहीं, कम से कम ही दयानन्द चाहिये थे ।

साधु सन्यासियों के बलाने कुम्भ से एक महाना पर पहले ही झा झा कर अपनी छात्रनिधियों में भवेश करने लगे थे ; जो भी बस्तुयें भौतिक, सुलभ से सन्तो हैं, वे इनके अभिन्न अंग थे । ग्रन्थों से अज्ञान और मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी प्रश्न कर सकता है कि विरक्त सन्यासियों को इस सबसे क्या प्रयोजन है ? पर प्रश्न करता कोई नहीं क्यों कि प्रश्न करने के लिये साहस चाहिये ।

नामों के प्रदर्शन को मैं विशेष महत्व और विता की दृष्टि से देलता हूँ । यह बात मुझे अत्यन्त अर्थही है कि नमन रह कर आपना करना शरीर और मन दोनों की दृष्टि से हिनकारी हो सकता है परन्तु उबका कर्म-वद हो कर इस प्रकार प्रदर्शन करना बर्ष बा उबका से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखता । इसका उद्देश्य केवल वेदका आकर्षण उर च करके लोगों को खीचना और पूर्व बनाना है । वे लोग निकृष्ट चरित्र के मर्भों से भी गये कीते हैं । अह व अह लोग भी इनका अश्लोक वातावरण बना करते होगे । फिर एक बार नहीं जब जब भी मैं गया तभी उनको उली प्रकम् की बात भीत और हरकते काते करते पाया ।

वे हिन्दवी विशेष कर उद्विग्नो के पास से गुजरने पर अधिकाधिक आभय नभ्य प्रदर्शन करने का प्रयत्न करते थे । जीवन का सुखसे अधिक मोह साधु कहाने वाले इन प्राणियों को ही होता है, किसी भी प्रकार का सुख से काँग सबसे कम उठा सकते हैं । जहाँ वास्तविक सुख ही नहीं हो जे कहते नहीं । देश की स्वाधिनता की लड़ाई इस बात का आत्म श्यमान प्रभाव है ।

ऐसे लोगों को, जो किसी मनु उद्देश के लिये तो कोई लवरा उठाने को पैसा





न हो और वैसे बात बात पर लड़ने पर को उत्तारू रहें, क्या नाम दिया जाय सोचना कठिन नहीं है। कम से कम यदि ऐसे लोग समूह बँध कर देश की तकली भौं बहनों के सामने नगे निकलें तो यह सभी सक्ष हो सकता है ? जब कि समाज नपुंसक हो गया हो पास कर सब जब कि सवा कपड़े पहनने वाले लोग के बजा ठस बोड़े से समथ के लिये नगे हो कर कुम्भ में शामिल हो जाय ।

ये लोग प्रभूत भाषा में गाणे का सेवन करते हैं, गिर भी ऐसे नग्न प्रदर्शन बलते हैं इसका कारण है। कुम्भ का सबसे बड़ा आकर्षण ये ही हैं। यदि ये हो जाय तो शावक कुम्भ आधा भी न भरे। एंही भी अनेक सस्थाए हैं जिनमें कुम्भ में गरी भाव होती है। वे ही अपनी अपनी आय को नमाने के लिए इन प्रदर्शनों को जारी रखती हैं। सरकार इन प्रदर्शनों को रोक सकती है पर वह इन धर्म के ठेकेदारों से विरोध माल नहीं लेना चाहती। जो भी इसका विरोध करेगा उसे अवश्य ही बहुत बड़े सफ़ट का सामना करना पड़ेगा। सामाजिक सस्थाए और राजनीति दल भी इस मामले को हाथ में लेते दिखायते हैं। आज के उन्नतयुग में भी गोरगलिस्ट और कम्युनिस्ट बड़े जाने वाले लोगों ने भी यह प्रश्न सामने आने पर एंही उपेक्षा का भाव दिखाया जो 'नजके साहस को तली सफ स्पष्ट दिखा देने बल्ला था।

प्रथम सब बातों को देखते और सोचते हुए मेरे मन में एक कलम बहुत बनी बन कर सब और व्याप्य हो जाती है। आज से छर बा दस साल पहले जिस आदमी ने अकेले निर्भय हो कर पालइलखनी पताका फहरा थी, वही, उसकी छांती कितनी चौकी रही होगी। उसका कलेबा कितना बड़ा रहा होगा। इतनी सान आद-

मियों की भीक में एक मी तो आदमी ऐसा नहीं था, जिससे वह सहायता की कुछ भी आशा कर सकता। बहा शरीरिक बल काम नहीं आता, यहां तो मनोबल की आवश्यकता है, जिसके द्वारा अकेला सिंह हजारों भेड़ों बकरियों पर हावी हो जाता है।

सांख्य आदमी एक के पीछे एक चलें जा रहे हैं सब अछिं भींचे। कोई किसी से पूछता नहीं 'यह सब क्या है ? यह सब क्यों है / विरोध सहने का धैर्य किसी में नहीं है। अज्ञान को पराकाष्ठा है और साथ ही ज्ञान के प्रकाश का आने का मार्ग भी सब ओर से बलपूर्वक अवकट है।

उस महान अश्वविश्वास की, प्रचंड काली शक्ति के विनेद सहा कक्ष से अकेली सिंह भर्जना की ही आवाज गूँज उठती है, " यह सब घोखा है। यह सब पातल है। यह सब अपने लाभ के लिए रचा हुआ प्रपच है। अज्ञान और अश्वविश्वास प्रथम शक्तशाली हैं तो यह आवाज भी उतनी ही शक्ति शाली है, क्योंकि यह उस दिन से लेकर आ- आज बवाई नहीं जा सकी।

इस रूप में श्रद्धि दयानन्द एक निर्भोक क्रांति कारी के रूप में प्रगट होते हैं। यह कति बचापि सामाजिक थी पर इसका प्रहल्व उन दो एंतिद विक क्रांतियों से किली प्रकार कम नहीं है, जो क्रॉस में रुकी और रूस में कार्ल मार्क्स की प्रतिमा के परिणामावरूप हुई थी। रीवेसियर और लनिन की तरह श्रद्धि दयानन्द को कोई तेजस्वी अनुयायी मिला नहीं तो देश में आज अज्ञान और अश्वविश्वास की दू डे न मिचते और घर घर में उनका दिखाया हुआ प्रकाश जगमगा रहा हाता।





छन्द किसको ?

[लेखक—श्री वृन्दालाललाल वर्मा]



ह खुप बैठा था।
 परन्तु अब और कान उ के सतर्क थे।
 भद्रावती के राजतंत्रको चुनाव होना था। पाँच वर्ष पहले हेमैन्द्र को चुना गया था। उस वक्त समय में कृष, गोधन, शासन व्यवस्था, यह इत्यादि धर्म कार्य कोई भी समुझत न हो सके हेमैन्द्र विषादेश को बढ़ाने की प्रणाली दे सक्ता था। इनके शासन करक जनपद के

हेमैन्द्र अपने पक्ष में छन्द बढ़ाने के निमित्त भद्रावती नगरी और भद्रो क जनपद के प्रमुखों का पीछा सभा मण्डप में भी नहीं छोड़ रहा था। कोई कोई छन्ददाता उसको क्षमदान का वचन दे रहे थे, कोई मुश्करा कर रह जाते थे और के इ कोई तिगड़ो आँखें करके मुँह फेर लेते थे, परन्तु हेमैन्द्रका मयल हठ और सतत था। भद्रावती नगरी क साधारण जन बड़ो देर से चुनाव की क्रिया और उसका परिष्कार देखने के लिये कुन्दहल वश मण्डप से बाहर

सामयक प्रणाली तथा उचित निर्देश देना साहित्यिक का पवित्र कर्तव्य है। हिंदी के गौरव श्री वर्मा जी ने जो सवर्षभय वर्तमानमें कत-क उदात्तप्रेरणा देने के लिये यह कहानी प्रस्तुत की है। स

विकास माग का स्वच्छ करने की प्रथमा उतमें न थी।

अबकी बार वह फिर राजस्य खुने जाने के लिये दौड़ धूप कर रहा था। घोर जान पद क मण्डप में बड़ी चहल पहल थी। वितान सजा हुआ था। तोरण, बन्दनवार, केले क खम्बे घट फलय सब यथा स्थान, मनो कोई यह होने जा रहा था।

आसन पक्षापक ने छन्ददाताओं को आसनें दी। बाच में ऊंचे मञ्च पर घोर जानपद समा का प्रान्त बन्दन चरित और श्वेत परिधान से भूषित बैठा था। उसके लम्बे रंग विरगी शूनाकाओं क व्यवस्थित डेर लगे हुए थ। शलाका समग्रक प्रधान के पास ही मञ्च पर बैठा था।

मण्डप में देवदत्त एक ओर खुपखोप परन्तु कतक बैठा था।

हजर उतर घूम रहे थे। पाच वर्ष उपरान्त यह घड़ी आई थी। पाँच वर्ष उपरात फिर आवेनी। नगर इन उलुकता और थकावट के बीच में झूठ से रहे थे। राजस्य पद के कुन्दो भिलायी दी थे। एक हेमैन्द्र, दूसरा खुपां देवदत्त।

[२]

मण्डप में आसन एक छन्ददाता ने ऊंचे होकर कहा 'मेग खतुराच है कि अबकी बार आर्य हेमैन्द्र को फिर राजस्य पद से खुशुभित किया जाय। अबकी खो फिर राजस्य मनेलीत किया जाय।'

दूसरें कड़े होकर बोला, 'मैं समर्थन करता हूँ।' प्रधान ने अपने लम्बे श्मश्रु पर हाथ फेरते हुये खनकते हुये स्वर में कहा, 'आर्य हेमैन्द्र का कोई विराध करना चाहता है ? यदि करना चाहता है तो उसके पक्ष का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाय।'

- उस युग में षोडश को छन्ददाता और षोडश को छन्द कहते थे।
- शलाकाएँ आज कल के बैनर का काम करती थी। ये काठ की होती थी।





तुरन्त एक ने देवदत्त का प्रस्ताव किया और दूसरे ने समर्थन।

प्रधान ने बतलाया, ये दो नाम हमारे शास्त्रों के नियमों के अनुसार आये हैं। और कोई नाम ? किसी अन्य के लिये प्रस्ताव ?”

मण्डप में सज़ाटा छा गया। मण्डप के बाहर लड़के हुए भद्रावती के जन गर्दने उचका कर लखित हथर वधर देखा उठे। प्रधान को को विधान के अनुसार कुछ लण चुपचाप प्रतीक्षा करना थी।

उसी समय उपस्थित जनता में किसी के गिरने की शब्द हुआ। दस बारह वर्ष का एक बच्चा सा बालक, थकापट के मारे हो या 'वास के मारे हो, मर पड़ा। जनता चञ्चल हो गई। मण्डप में आसन्न छन्ददाता भी उठ कर बाहर आने को थे कि जन समूह में से सुनाई पड़ा,—कई बात नहीं, कोई बात नहीं, हम उपचार कर रहे हैं; आप आना काम करिये।

छन्ददाता आने-अपने स्थान पर आ बैठे। देवदत्त अपना आसन छोड़ कर जनता को भीड़ में चला गया। जब कोई तोसरा नाम प्रधान के सामने नहीं लिया गया, तब प्रधान ने छन्दशलाकाओं पर आँखें खुमते हुए शलाका संग्रह को सकेत किया। शलाका संग्रहक ने हरे रंग की गिनी हुई कुछ शलाकाएँ ली और उतनी ही लाल रंग की। वह जानता था कि मण्डप में कुल कितने छन्ददाता बैठे हैं।

शलाका संग्रहक और छन्ददाताओं ने देखा कि देवदत्त मण्डप में नहीं हैं, उस बालक की परिबर्था के लिये भीड़ में चला गया है जिसका उपचार जनता के कुछ लोग कर रहे थे।

उन सबने हेमेट्र की उत्सुक मुद्रा को भी देखा जिससे रात्र्य पदपापिकी लालसा दपकी पड़रही थी। उसकी आँसों में छन्द-

द ताओं के प्रति बड़ा अनुनय था, बड़ी भीज — छन्द मुझका देना; इन पाँच वर्षों में यदि जनपद के लिये उतना नहीं कर सका, तो आगे अग्रथ्य करूँगा।

प्रत्येक छन्ददाता के हाथ में दो-दो शलाकाएँ—एक हरे रंग की एक लाल रंग की—शलाका संग्रहक को देनी थी। वह देता जाता था सब शलाकाओं का वितरण हो गया, तब प्रधान ने उच्च स्वर में कहा, 'जिसको आर्य हेमेट्र के पत्र में छन्ददान करना हो वह हरी शलाका संग्रहक को लौटा दे, और जिसको अपना छन्द आर्य देवदत्त के पत्र में देना हो वह लाल शलाका संग्रहक को दे दे दूसरी शलाका अपने पास रखले रहे। जब परिणाम की घोषणा, शलाकाओं की गणना के उपरान्त, हो जावे, तब शेष शलाकाएँ मञ्च पर रख दी जावें।'

देवदत्त अब भी मञ्च में न आ सका। हेमेट्र की आँसों में अब भी वही भीज थी।

शलाका संग्रहक ने शलाकाएँ पकव की। प्रधान ने उनको गिना। देवदत्त को पंचानवे छन्द मिले, हेमेट्र का पाँच। शलाकाओं का यही अनुपात रहा। हरी शलाकाओं का छोटा सा ढेर प्रधान के सामने।

प्रधान ने ऊँचे होकर तीन बार घोषणा की, 'आर्य देवदत्त भद्रावती जनपद के राजस्य पाँच वर्ष के लिये मनोनीत हुए'।

देवदत्त उस समय भी बालक का उपचार कर रहा था। हेमेट्र नीचा मुँह किये हरी शलाकाओं के उस ढोटे से ढेर पर आँख गड़ा कर रह गया था।





“सत्यार्थ - प्रकाश” का प्रकाश

(लेखक—श्री वीरसेनजी आर्य, मन्त्री नगर आर्यसमाज लखनऊ)

हर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों में सत्यार्थ प्रकाश सबसे अधिक लोकप्रिय है और आधुनिक, वैदिक, साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। इस ग्रन्थ ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का आचार भी वैदिक धर्म है। वैदिक धर्म में धर्म नीति, समाज नीति और राजनीति इति सभी का समावेश है। इसलिये इस ग्रन्थ में भी व्यक्तित्व और सामाजिक उत्थिति के प्रत्येक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। धार्मिक दृष्टि से प्रायः लोग इसे आर्य समाज का बाइबिल अथवा कुरान समझते हैं। राजनतिक दृष्टि से इसमें स्वराज्य और अक्षय्य जनवर्ती साम्राज्य का प्रतिपादन देख कर कुछ लोग इसकी तुलना हर हिटलर की “मीन कैम्प” से करते हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो इसके अन्तिम चार समुल्लासों को पढ़कर इसे केवल लखनऊ-मक ग्रन्थ समझते हैं। किन्तु वास्तव में सर्वतोमुखी क्रान्ति के अमर सन्देश से ओतप्रोत यह महान ग्रन्थ एक प्रकारा स्तम्भ है जिसका निर्माण श्रुति दयानन्द ने समस्त मानव जाति की उत्थिति के लिये किया है। इसीलिये आर्य समाज जिसका मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है अपने जन्म काल से इस महान ग्रन्थ का प्रचार करता रहा है।

देश की धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्थिति में इस ग्रन्थ ने अपूर्व क्रान्ति की है परन्तु प्रकाश से भय बाने वालों की भी इस संसार में कमी नहीं है। हठ, दुराम्भ, स्वार्थ और अज्ञान के चक्षुभूत होकर जब मनुष्य अपनी भलाई को भी नहीं समझ सकता, तब वह विरोध पर उतर आता है और अंधेरे में अपने पथप्रदर्शक दीपक को भी बुझाने लगता है। यही कारण है कि कतिपय

सकुचित धार्मिक, साम्प्रदायिक और राजनीतिक जाने वाले क्षेत्रों से सत्यार्थ प्रकाश के विषय समय २ पर आवाज़ उठायी जाती रही है लेकिन, योगी दयानन्द ने जिस दिव्य ज्योति का प्रसार किया था वह दिन दिन अधिक चमक रही है।

सत्यार्थ प्रकाश का अब तक जितना प्रचार हुआ है वह सन्तोष-जनक होते हुए भी पर्याप्त



लेखक

कहे नहीं है। विरोध के दिनों में आर्य समाजों का क्या इस आर्य अधिक हो जाता है किन्तु उसके परचात् उदासोन्मा आ जाती है। हमें सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार का सदा यत्न करते रहना चाहिये, क्यों कि वेदों का द्वार होने से इस ग्रन्थ का प्रचार वेद प्रचार में बहुत सहायक है। दयानन्द निर्वाणोत्सव मनाते समय हमें इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम स्वयं सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय करेंगे और दूसरों को भी इसके प्रकाश से लाभ पशुंचाने के लिये प्रयत्नशील होंगे।





महर्षि दयानन्द और रचनात्मक कार्यक्रम



महर्षि दयानन्द के प्रथो एंड उनके जीवन-चरित्र के अनुशीलन से सात होता है कि उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम को अपने जीवन का सबसे प्रमुख कय माना था। इसी का परिणाम यह है कि महर्षि दयानन्द का दृष्टिकोण संस्कृति एव सौमित्र न होकर अन्तर्राष्ट्रीय और सार्वजनिक है। इसी के आधार पर उन्होंने 'कृषवन्तो विरामायम्' का उद्देश्य ध्वनि करके सब धर्मों में एकता स्थापित करने का परिश्रम किया। विश्व की वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के लिए उन्होंने भौतिकवाद के स्थान पर अध्यात्मवाद को अधिक उपयुक्त हल निर्धारित किया है, भारतीय संस्कृति और सभ्यता को उन्होंने इतना विशेष ध्यान का स्थान प्रदान किया है। क्योंकि उसमें जीवन को सादगी, सरलता, उच्च लक्ष्यता और विश्व सन्तुल की शिक्षा दी गई है। प्रत्येक धर्मों के जन्मदाता तथा प्रत्येक धर्मों में भारतीय संस्कृति और शिक्षा को क्षुण्ण स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। इसीलिए आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द ने ही आर्य समाज अपने जन्मकाल से ही आकाशवादी और प्रगतिशील रहा है। निराशा के विषाक्त वातावरण उसके जीवन में विविधता न ला सके। यह प्रसंख्य विषम परिस्थितियों में भी निर्भीक भाव से अपने-पथ पर अग्रसर रहा।

आर्य समाज ने धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एव सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में कार्य किया है बल्कि इस दिशा में सब भी अधिक कार्य करना शेष है। स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करना, गो-धन एवं आर्य उपयोगी पशुओं का बच संरक्षण निषिद्ध करना, भारतीय आर्थिक उन्नति का एक मास साधन है। सांस्कृतिक दृष्टि से आर्यसमाज को ही यह भेव प्राप्त है, जिसने इस युग में पाश्चिमी संस्कृति को शुद्ध रूप में विरुद्ध के समुल रखा है। नास्तिकता के बरते

हुए विषाक्त वातावरण से युक्तों और युवतियों को बचाने में आर्य समाज का विशेष हाथ रहा है। शिक्षा प्रसार राश; मध हिंदो पत्रांग, स्त्रियों को उचित अधिकार, दिलाना अन साधारण के धार्मिक अधिकारों की रक्षा आदि के लिए आर्य समाज ने विशेष कार्य किया है।

मावी रचनात्मक कार्य

यद्यपि आर्य समाज का अनीत गौरवन्वित है, परंतु अतीत पर ही निर्भर होकर अग्रसर हो जाना उचित एव शोभाजनक नहीं है। जो कार्य विशेषतया करने शेष है, उनमें से कुछ कार्य निम्नलिखित हैं, जिन पर आर्य विद्वानों का ध्यान आकृष्ट में करना अत्यावश्यक समझता हूँ।

(१) महर्षि दयानन्द ने जिन प्रथो को प्रामाणिक माना है, उनका प्रामाणिक और सुसमाहित संस्करण निकालना।

(२) उच्च कोटि के आर्य विद्वानों द्वारा प्रामाणिक ग्रंथों का सरल, साधारणजनोपयोगी हिंदी भाषानुवाद निकलवाना और अल्प मूल्य में विक्रम कराना।

(३) वैदिक सिद्धांतों को पुष्टि के लिए उच्च साहित्य का प्रकाशन।

(४) छोटे-छोटे टुकड़ों का वितरण बहुत अधिक मात्रा में हो।

(५) वैदिक सिद्धांतों पर यूरोपीय एवं भारतीय तथा अन्य धर्मोपदेशी विद्वानों ने जो आक्षेप किए हैं उनके प्रामाणिक, उत्तर रूप में ग्रंथ लिखे जाए।

आशा है आर्य समाज के कर्णधार उक्त बातों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे यदि इस दिशा में प्रसर किया जवा तो सफलता भी अवश्य प्राप्त होगी।
'किवाचिकः सत्ये भवति महता नोपकरणे'

(श्री विद्याभास्कर डा० कपिलदेव द्विवेदी व्याचार्थ एम० ए० डी० लिट्)





दीपावली कैसे मनाएँ ?

[कैलक—भी हरिदत्त शास्त्री एम० ए०, ए० ए० ए० महाविद्यालय ब्वालापुर]

“कार्य संस्कृति के उपासक को आज यह पता चलाना मुश्किल है कि दिवाली ने श्रुति दयानन्द को जन्म दिया या श्रुति दयानन्द ने दिवाली को। दिवाली पर भगवान् बुद्ध, माहवीर, सिद्ध मुनि स्यां रामलीला आदि अनेक महान् आत्माओं का पर ज्योति से ज्ञान ज्योति का फैल कर देना बगद्विब्रत है। श्रुति दयानन्द ने भी अपना पाठ्यभौतिक देह आज के ही दिन परिष्कार करके जगत् को अपना दहकती चिता की लपटों से प्रकाशित कर दिया। या और कहा या कि भारतीय बीरो ? कायरता न दिखाओ ! रक्षाह्वय में बड़े बलों, विपत्ति के पर्वत भी यदि सामने आये तो न डरो। अतएव श्रुति ने अपना लक्ष्य बनाया था —

“न्यायवात् पयः प्रविचलन्ति पद न धीराः।”

अर्थात् धबरोही है जो विपत्तियों के आने पर भी न्याय (उचित) मार्ग से एक पैर भी पीछे न हटे। यही नीति के शब्दों स्थित यः कहलाता है। दिवाली प्रति वर्ष आती है अपना उद्देश्य देती है और चली जाती है। पर उसके सम्येय को मुनने वाले ही कम है, अतः श्रुति मकों का परम कर्तव्य है कि वे किली न किली रु में “श्रुति श्रुत” उतारने का प्रयत्न करें। यही दिवाली मनाने का सर्वोत्तम प्रकार होगा। दिके बला कर “दीपावली” मनाना पर्वत लक्ष्मी के लिए विशेष महत्त्व नही रखता। अज्ञों की दृष्टी बात है। कार्य जाति का कर्तव्य है कि वह श्रुतिज्ञान को प्रत्येक आर्थात् पूरे १ सैट से कर रहें विद्यार्थे उनका प्रचार हो। दृष्टी बात है उनके अर्थों का सामाजिक सुलभ। श्रुति के प्रत्येक भाग काये शो कृतियों तथा भाषा की उलट फेरों से भरे पड़े हैं। कहीं १ कुल का कुल हो गया है। उलटव से लिए हमने व्यवहार मानु के सुल पुष्ट भी कृतियों एक वर्ष पूर्व दिवाली है, आज वेद सम्प्रदाय भूलें दिखलाते हैं—यजुर्वेद २ ४

अध्याय का १० वें मन्त्र है “यं परिधि पर्यायता आ । देव पृथिवि गुह्यमानः । तत्र एत मनु मन्त्रेण मे स्वद् अत्रयेतवाना अग्नेः पियं पाथोऽनेतम् ॥ यहाँ पर एव वेद मातृपुत्रों ने “स्वद् को जगह ‘ने स्वद्’ पर पाठ प्रथिन मना है। अथ श्रुति ने ‘मैत्र्य दं’ क्यो लिखा यह मननीय बात है। ‘उक्त्याय’ शब्द की विधि करते हुए श्रुति दयानन्द लिखते हैं कि अथ गे उन्दे इत्येवन्द च यै क विधानमिति कर्मैविक कः ।” यैवाश्रयो की दृष्टि से ‘क’ प्रत्यय करने पर उक्त्याय शब्द भी विधि होना कठिन है। यही बात भी ए० बृहस्पति की विधि से भी अज्ञों द्वारा श्रुति की विधि में लिखी है। यह पद यजुर्वेद के लुटे अध्यायके १ य मन्त्र में आया है। हवी प्रकार यजुर्वेद १२ वे अध्यायके ४० वे मन्त्र में ‘सहस्रियम्’ पाठ है पर श्रुति ‘उहस्रियम्’ पाठ मानकर ‘सह मात्ता भार्याम्’ यह अर्थ भावार्थ में व न्यत्र में किया है। अथ यहाँ भी एक श्रुति भक्त उन्दे में पद सकता है कि वह क्या करे। १२ वे अध्याय के १८ वें मन्त्र को न्य उखा करते हुए जो श्रुति के नाम से प्रसिद्ध होल है वह तो अज्ञों १ विज्ञानों को चकर में डाल देता है। उक्त सखा में भावार्थ लिखते हुए श्रुति दयानन्द लिखते हैं. ‘ये भोवा । भवतो यदा शरर स्थजत । तदैतद् मग्नीभूतवत् पुत्रिन्यादिनासह संतुनक्तु । सूयमात्ताभ्यश्च शरीरु गर्भास्यं प्रविश्य पुनः सघरोराः सगो विद्यमाना भवन्तु ।” यहाँ मन्त्र, सूय, संतुनक्तु, भवन्तु इत्यादि क्रियापदों का कर्ता किते बनाया जाय, यह एक गर्भरता के साथ विचारणीय प्रश्न है। इनवालों का यदि कुछ उत्तर हो सकता है तो सिर्फ एक यह कि दिवाली के दिन सब मिलकर श्रुति का अक्षरी भाव—अर्थात् जितने श्रुति के वेदभाष्य विपत्तियों की भी भडा बनी रहे वह कार्य—करें। वह कार्य यही है कि परीपकारियों





श्रद्धा के फूल

स्वामी सत्यदेव श्री परित्राजक

म हर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की कही हुई छोटी सी जीवनी मैंने बचपन में पढ़ी थी। स्वामी मेरे वास्तव्य पर गहरा छाप डाल दी। मैंने उसे पढ़कर अपने उस परम अद्वैतीय गुरुदेव के पद बिहो पर बखान का निरचय कर लिया।

जब मेरे विवाह का समय आया तो उस समय मरी आयु छोलह वर्ष की थी। मैंने पिता जी से एक कह दिया कि मैं विवाह नहीं करूंगा। ऐ। इन्कार करने पर घर में कुछकुछ खटा हा गया। श्री स्वामी जी की जीवनी के आभाव ने मेरे जीवन में क्रांति कर दी और मैंने घर से निकलने की योजना बना ली।

यह उसी योजना का परिणाम है कि मैं आज अपनी इस बहुरंग बर्ण की आयु में अपनी युवा में वैठा हुआ अपने देश की स्वायत्तता का रूप बख रहा हूँ और अपने पिछले जीवन का

मिहावलो कन कर रहा हूँ। मुझे जो कुछ मिला है, वह महर्षि जी की कृपा का फल है, जिन्के कारण मैंने पृथ्वी प्रदक्षिणा कर नवीन अनुभव प्राप्त किये। कैसा स्वामी मुझे बचने जीवन में करना। पढ़ा है और स्वामी जी के आदर्शों पर चलने के लिये कैसे कैसे भीषण युद्ध करने पड़े हैं। आज उनका स्मरण कर बकी भला से स्वामी जी की बन्दना करता हूँ।



लेखक

महायुद्धों की जीवत्रिया हमारे लिये प्रकाश-रत्न का काम देती हैं, जो हमें अंधकार से निकालकर उजाले में ले जाती हैं और हमारी कठिनाइयों को आसान कर देती हैं। निराशा के भवनों से निकालकर आशा के सूर्य की ओर ले जात हैं और हममें साहस भरकर सत्य सैनिक बना देता है। मैंने तो स्वामी जी की जीवनी से ही आशाओं के साथ लड़ना सीखा है, इसलिये मैं महर्षि जी के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

आज इस दीपावली के अक्षय्य पर उस महान आत्मा की पुण्य भूमि में अपनी बहू भद्राञ्जलि अर्पित करता हूँ और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वे सर्व शक्तिमान ईश्वर मुझ तक हों कि मैं अपने जीवन को आर्ष संस्क्रित प्रचार में लक्ष्य कर दूँ और श्री स्वामी जी के श्रेष्ठ की शिवा करूँ।

स्वामी से अनुरोध करे कि वह सारे श्रेष्ठ प्रथीन श्रेष्ठों का प्रामाणिक सस्करण निकल-बाये। तथा योग्य एक दो परिश्रमों को रखकर तथा कतिपय विद्वानों को बुलाकर-बर्षे में एक बार कम से कम-संदिग्ध स्थलों पर उद्धारोक्त का वाच-तथा फिर वह अर्थ शुद्ध पाठसहित प्रकाशित हो चहे वह शुद्ध पाठ टिप्पणों में हो हीन दिया गया हो। ऐव करने से श्रेष्ठ का 'अर्थ' भी बस्तविक ही अकेगा, तथा कुछ लाभ हीना श्रेष्ठ-श्रेष्ठ 'श्रेष्ठ सृष्ट' उत्तमतर बढ़ता जा रहा है। परंप-आरथों समा से मनी तथा तबिनन। बदन है नि वर दप भाषों को शत्रु मरम्भ कराये ती दिवाल ठो प्रकर से मनाई जा सकेगी—इय। जम दिव को पर पर की एक ही तो है वेवे ही 'अज्ञान' की भी सदाई हानो ही आह्वय याद दीपावली ही के दिन 'श्रेष्ठ विधि' कोने का जोता जनता सन्देश है जो वे मरते दम भी दे गये हैं, पर यह हो केरे ? वही प्रश्न फिर सामने आता है।





आर्यधर्म और आर्य संस्कृति के देवदूत ऋषि दयानन्द

दयानन्द अपने समाज, अपने राष्ट्र और सत्सार का कायाकल्प करना चाहते थे। इस उद्देश्य से उन्होंने आर्यसमाज रूपी मंडी में एक भौवण आग जलाई, ताकि विश्व भर की सामाजिक सङ्कीर्णता, सारी बुराया और धार्मिक अन्ध विश्वास जलकर राख हो जायें सत्सार के लोग सुख का सास लें, ऋषि को गजना बड़ी मनाकर थी। अन्तर्जाला बड़ी प्रगल्भ थी, हठ वेदना बड़ी तीव्र थी। वह सत्सार में विशुद्ध धर्म और विशुद्ध संस्कृति का राज्य चाहते थे अतः महान् क्रान्त का विगुल फूला।

मतवादीयों ने अपने मते के ग्रन्थों के नये आर्य करने शुरू किये ताकि क्रान्त के बग से बच सकें। ऋषि का आदेश था सत्सार का उपकार तथा शान्त और सुख का स्थापना, विश्व कल्याण के लिये शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नत का आवश्यकता बहुत है इन्हींके इसका आरम्भ भारत से किया। और यह घोषित किया कि इस देश का नाम आर्यावत है और हमें बलवानों के सब आर्य हैं, आर्या का अर्थ यह है हमारा आदेश कि सब सत्य विद्या का आदर्श देवदेव परमेश्वर है और सब सत्य विद्या का पुस्तक वेद है, जो बात वेद विकृत है वह मानने योग्य नहीं। सब काम धर्माहुंसार आर्यात्व सत्य और असत्य का विचार कर करना, हमें हर काम से सत्सार का उपकार हो, सब से प्रतिपक्षक धर्माहुंसार यथा योग्य बर्ताव, और अपनी बर्ताव से सन्तुष्ट होकर सब

को उन्नत में अपनी उन्नति समझना, स्वतन्त्र होकर परिहित में हानि न करना, अपने समस्त जीवन का परीपकार में लगा देना, प्रत्येक आत्मा में ईश्वर का प्रकाश दिखना यह है वह क्रान्ति जो ऋषि दयानन्द सत्सार में लाना चाहते थे।

शारीरिक उन्नति के लिये ब्रह्मचर्य का पालन तथा बालविवाह, युद्धविवाह और बहु बवाह का परित्याग बताया।

द्विषया का समाज में उचित स्थान दिये गये। दलित जातियों को उन्नत करने और बुद्धिमानों को मिटाने का यत्न किया, बुद्धिमानों के विषय में ऋषि ने लिखा— 'इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते हैं विरोध करते कराने, सब स्वतन्त्र, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा कर हाथ हाथ पर घरे बैठे हैं' देश काल और पात्र का देख कर दान का निर्देश किया कथा कि तीर्थ, मन्दिर और मठ बलासता के बन्द होने हुए हैं। अनरुना का छान कर एक समुद्र परमेश्वर का उदास्य बताया।

आत्मिक उन्नत के लिये उन्होंने पंचमह बताया, और सम्पूर्ण यामिक साध्य का जो श्रावण द्वारा प्रदान था धार्मिक दर्शन निकाल बाहर किया, और आर्य धर्म, आर्य संस्कृति का आधार वेद और वेदिक अनुकूल प्रथा का उद्घाटन, वेदग्रन्थ पुनः लिये अस्मत् अस्त्य का आशोस तक नहीं था, उनका आर्य ग्रंथ कहा। यह उस देवदूत का पन्थ है इस पर चलने से सबका कल्याण होगा।

[श्री भो गाराम चर्क विभिल, दयानन्द हाई स्कूल करनाल]



महर्षि की पुण्य स्मृति में रूपये में चार आने रियायत

25% SPECIAL CONCESSION

जीवन का सच्चा आनन्द और सुख उपभोग के लिए नौजवानी में धन और शक्ति, बुढ़ापे में शक्ति और भक्ति का संचय करना अकलमन्दी है। इस शक्ति की रक्षा, नौजवानी की बरकदार और बुढ़ापे को काफूर करने के लिये हमारे पूर्णज जाड़े में शक्तिवर्धक पदार्थ सेवन करते थे। अपने दिल की मुरादें पूर्ण और गृहस्थ जीवन का अपूर्व आनन्द प्राप्त करने के लिए आप बुजुर्गों के अग्रभव से लाभ उठायें, अन्यथा वर्ष भर पकृताना पड़ेगा।

हिमालय के सुप्रसिद्ध तपस्वी महर्षियों की अपूर्व देन

च्यवनप्राश रसायन

सिद्ध मकरध्वज बटी

[अष्टवर्ग तथा हार्दों कैलिययम युक्त]

[सोना, मोती, कस्तूरी, ब्रम्भुक युक्त]

त्रिसे हर वैद्य ठीक ढग से नहीं बना सकता। हमारे यहां हिमालय के असली अष्टवर्ग, ताजा जड़ी बूटी और बढियों आमली से पूर्ण शास्त्रीय विधि से तैयार होता है। यह अत्यन्त वैद्यिक बल, वीर्य, बुद्धि तथा स्वास्थ्य वर्धक दिव्य रसायन पुरानी खांसी, दमा, तपेदिक, जुकाम, सिर दर्द में विशेष गुणकारी है। इस जीवनीय रसायन के प्रयोग से दिल, दिमाग, फेफड़े और ज़गर की कमजोरी व बराबा की दूर कर शरीर को कुन्दन के समान उज्वल बनाने में अद्वितीय है। मूल्य ७) प्रति सेर (रियायती ५।)

यह सर्व भेष्ट पुरुषत्व शक्ति बढ़ाने और धातु, पुष्टि की बेजोड़ रसायन तथा वाजीकरण गोलियां हैं। इसके सेवन से सब प्रकार की शारीरिक, मानसिक तथा वीर्य सम्बन्धी खराबी दूर होकर नई शक्ति, बल, वीर्य और जोर का खजाना भरपूर हो जाता है। कमजोर नस नाड़ी, पट्टे और अङ्गों में नई स्फूर्ति, नया खून जोश भरने लगता है। नौजवानी की उमरों बत्साह और खोई हुई ताकत सर्वोपरि फिर से प्राप्त हो अद्भुत शक्ति प्रदान होती है। मूल्य ४० गोली ८) ४० रियायती ६) ४०।

नोट—अधिक लाभ के लिए दोनों रसायन एक साथ सेवन करें।

खन्दोदय सिद्ध मकरध्वज (स्वर्ण बटि १) ७२) तोला स्वर्ण भस्म २०) माषा, सत शिलाजीत १) तो०, सुवारी पाक २।।) प्यब।

नवीन यौगनाद—(१) यह सुविचार्यै केवल प्रधान कार्यालय में प्राप्त आईनों पर ही मिल सकेंगे। (२) रियायत के दिनों में रूपया जमा करने पर धन समाप्त तक यही रियायत मिलेगी। (३) आईर क्रमशः सप्लाई होंगे। (४) पेशमी जेजने वालों को मनोआईर कार्थ मुजरा दिया जायेगा और अन्य आईरों की अपेक्षा प्रथम जेजे जायेंगे। (५) पैकिंग खर्च प्रत्येक होगा। (६) असली केसर कमजोरी ६।।) ४० तोला। सर्वोत्तम कस्तूरी ४८) तोला। बख्शी बूटी २) ४० सेर। इत पर केवल एक खाना रूपया कमीशन मिलेगा।

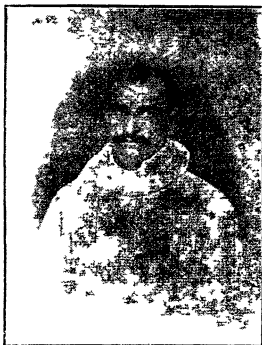
मुख्य बितरक—गुरुकुल आश्रम फार्मसी, पो० ज्वालापुर हरिद्वार यू० पी०



हमारी सामाजिक प्रगतियों के सूत्रधार



श्री प० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय
मन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली



रा०गुरु भी धुरे द्र शास्त्री प्रधान सार्वदेशिक सभा देहली तथा आ०प्र० सभा उत्तर प्रदेश ।

उत्तरप्रदेश



श्री श्रृगुदत्त तिवारी एम ए० श्री मदनमोहनजी सेठ रि० बज्र वा० पीतमलाल जी एडवोकेट
उपमन्त्री, आदि० आर्यभित्त, प्रेस क्लब प्रधान मन्त्री





हमारी उन्कट इच्छा थी कि दीवावलि विधैवाङ्क में प्रांतीय प्रतिनिधि समाजों के सभी प्रधान तथा मंत्रियों के विधो के साथ उनका अविच्छिन्न परिचय भी है, क्योंकि इच्छातरह हमारे पाठकों का कार्य के प्रमुख स्मृतियों से परिचय बढ़ता और हम जान पाते कि कहीं १ कौन १ व्यक्ति कार्य संभालन कर रहे हैं, परन्तु प्रथम तो हमसे ही इस कार्य में कुछ विलम्ब हो गया फिर दूसरे समाजों से भी स्लाक और इच्छित परिचयवाण न हो सका, समय कम होने से कठिन भी था। जिसना सम्भव हो सका वह पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

—सम्पादक

भी प० रामदत्तभी शुक्ल, अविहाता घा० प्र० विभाग,
तथा भूतपूर्व मंत्री अ० प्र० समा उत्तर प्रदेश



हैदराबाद दलित—

भी बिनाबकरावजी वॉर पेट ला



भी प० मनोहरलालजी रात्री



भूतपूर्व प्रधान आर्यमितिधि समा तथा
वर्तमान स था मन्त्री हैदराबाद सरकार



भी नरेन्द्रभी प्रधान





बङ्गाल आसाम—



श्री युत मिहिरचन्द्र श्री पीमान प्रधान



श्री बट्ट कृष्ण चर्मन, मन्त्री

राजस्थान



श्री बर चौदरस श्री खारसा प्रधान



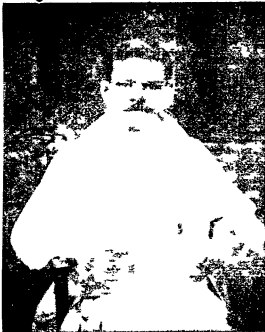
श्री० मगवान रसकप जी मन्त्री





बिहार

मध्य प्रदेश



भीरुत प० बाबुदेव शर्मा, मन्त्री
प्रधान— भीरुत वृषनन्दन सिंह जी रिट यर
एनसाईबल कमिश्नर बिहार उज्जैषा [इस समय
बानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट] (•जाक अर प्त)

मा०वनश्याम सिंह जी गुप्त प्रधान
कष्यत्त प्रातीय चारा सभा

मन्त्री— भीभीम सेन वर्मा
(•लाक अर प्त)

अ० भा० उपदेशक सघ



भी अचोच्चाप्रसाद जी बी. ए.
प्रधान



भी प्रकाशवी जी याजी
मन्त्री





शेष ग्रन्थों की नामावली,
जिनके चित्र प्राप्त नहीं हुये

१—प्रधान

महाशय कृष्ण जी प्रधान

बाबू मानक चन्द्र जी विविधपत्र दोआबा बालेक
जालन्धर शहर, मन्त्री।

६—मध्य मारत

प० बिलोकी नाथ जी भार्गव प्रधान

भी बोरसेन जी मन्त्री

७—पम्बई

भी कान्तिपाल जी प्रधान

स्नातक सत्यवत जी मन्त्री

८—छिम्ब

प्रो. ताराचन्द्र जी एम ए प्रधान

जी वेङ्कटमल जो मंत्री

१०—बकौदा

भी प० शान्तिप्रिय जी प्रधान

भी प्रसाधचन्द्र जी मंत्री

११—भार्ये प्रतिनिधि समा नैटाल दक्षिण अफ्रीका

प्रधान—राजदेव विह वीर विह

मंत्री—सत्यदेव जी मन्त्री

१२—भार्ये प्रतिनिधि समा मौरिसस

प्रधान—गोपीचन्द्र जी सचकर

मंत्री—श्रीव नारायण यादव

१३—भार्ये प्रतिनिधि समा ईस्ट अफ्रीका

प्रधान—डॉ. डी. पुटी

मंत्री—कृष्णदेव जी कपूर

१४—भा. प्र. नि. वसा किमी

प्रधान—जे. पी. महाराज

मन्त्री—गोपेश्वर नारायण जी पबिक

१५—आ० प्र० मि० क्लब उच्च माध्याम

सन्धी—जे. एच. मूलरा

१६—भार्ये प्रारंभिक समा

प्रधान—भी म० आनन्दरामो सरावती जी महाराज

मन्त्री—भी देवराज जी

सत्यार्थ प्रकाश का सुन्दर संस्करण

भार्ये बागलू की यह आनन्दक प्रसन्नता होगी कि परोपकारियों समा सत्यार्थ प्रकाश का सर्वज्ञ सुन्दर संस्करण प्रकाशित करने का निरचय कर चुकी है, यह शरद्वर्ष चित्तारवर्ष टाइम एगं विद्युत् रूप में प्रकाशित होगा।

परोपकारियों समा द्वारा अब तक २५ संस्करण प्रकाशित हुए हैं, बिचर यह है कि प्रत्येक संस्करण का परस्पर मिश्रण किया जाय, पुनः उक्त मिश्रण महर्षि स्वा० दयानन्द महाराज की हस्तलिखित पति से किया जाय। प्रतीक भी शुद्ध रूप में पति सहित हो, परन्तु यह कार्य उभी अवस्था में सम्भव हो सकता है जब प्रत्येक नरनारी स्वयं सक्रिय सहयोग प्रदान करें।

परोपकारियों समा के पुस्तकालय और वैदिक सभ्यालय में निम्न लिखित शरद्वर्षों की एक भी प्रति नहीं है:—

प्रथम शरद्वर्ष १८७५,	द्वितीय सं० १८७८
तृतीय " १९०६,	चतुर्थ " १९११
पंचम " १९१३,	षष्ठ " १९१६
सप्तम " १९१९,	अष्टम " १९२५
नवम " १९२६,	दशम " १९२६
एकादश " १९२८,	द्वादश " १९४४

(चौदहवें संस्करण की एक प्रति भी पुस्तकालय में ही है)

अब तक इन शरद्वर्षों की एक २ प्रति न मिल पाये, मिलान करना उचित न होगा। इसलिये प्रत्येक समा के अधिकारियों और प्रत्येक नरनारी से पैरी प्रार्थना है कि इन शरद्वर्षों में से जिस २ संस्करण की प्रति बाँट २ या बिचके पाए हो मुझे शारीरिक क्लेश प्रतिनिधि समा, नया बाजार इहली के गेटे से शीघ्र संचित करने का अनुरोध करें और अपना पूरा पता भी मेरे पास लिखें जिसके आधार पर अधिक में पत्र व्यवहार कर सकूँ।

निवेदक—

राजगुरु सुरेन्द्र शास्त्री प्रधान
शारीरिक आ० प्र० समा देहली





भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धारक ऋषि

स

न ५७ कोशुद्ध में बिजली के समान चमक कर भारतीय धीरता चिलीन हो गई थी। संस्कृति, अग्नेयी शिक्षा का क्लेशोपासना सूत्रकर वेदोद्योग होनी जोती थी, राजनैतिक पराश्रय के साथ साथ भारतीय अपनी सांस्कृतिक हीनता भी अनुभव कर रहे थे। अपने उच्चभेदिक साहित्य पर उन्हें कोई प्रेम न था। लोकेश्वर उच्च चरित्रवान और ज्ञानी अपने ऋषि मुनियों पर कोई आस्था न थी। भारतीय अपनी दृष्टि में अपने का अग्नेयों से हानि मानते थे। मुसलमान अग्नेयों को छाया में ही अपने को दृढ़ करने लग। अग्नेयी के साथ २ उर्दू के प्रधानता मिली।

ऐसे समय में तेजस्वी ऋषि ने भारतीय संस्कृत के दिव्य रूप को द्योतित कर दिया। भारतीय वेद, भूषण, भाषा, साहित्य और धर्म का अपमान देखकर ऋषि की आत्मा तप्त हो उठी। बस आह भर कर अग्नेयी सभ्यता के मतवाले भारतीयों को संबोधन किया:—

“देखो! (अग्नेय) अपने देश के बने हुए जूते का आकृष और कचहरिया में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने ही म समझ लो कि अपने देश के बने जूतों को भी कितनी मान प्रतिष्ठा करते हैं। उतनी भी अन्य देशस्थ मनुष्यों को नहीं करते।

देखो! कुछ ही वर्ष के ऊपर इस देश आये यूरोपियों को हुए और आज तक ये मोटे कपड़े आदि पहनते हैं, जैसे कि स्वदेश में पहनते थे परन्तु उन्होंने अपने देश का बाल खेलन नहीं छोड़ा। और तुम में से बहुत से लोगों ने उनक नकल करली। इसी से तुम निहुँदि और व ल'ग बुद्धिमान ठहरते हैं।”

स. प्र. ११ ए.

उपर ऋषि ने वेदोद्योग हिंदू जाति पर धार्मिक प्रहार करनेवाले ईसाई मुसलमानों का फटकारा जो हिन्दुओं का मजबूत उद्धारते थे।

ऋषि के समय में जो बड़े बड़े संस्कृत के विद्वान् स्वधर्म पर, कर्तव्यों पर विश्वास रखने वाले बहुत थे, पर साहस और सूझ की इनमें कमी थी। कुछ आत्मविश्वास जोशुके थे। ऋषि को आत्मविश्वास था। जिसको उन्होंने



शेखर

भारतीयों में भी उत्पन्न किया। और फिर यह आत्मविश्वास भारतीयों में बढ़ता ही गया।

भारतीय वेद, भारतीय भाषा, भारतीय धर्म, और भारतीय महापुरुष सबका ही ऋषि ने आत्मविश्वास पूर्वक मर्याद किया और इस पर बाहर से जो कुछ कूड़ा फेरकट, धूल धकड़ आ गिरा था उसे ऋषि ने तर्कवायु के ओकों से उड़ा दिया। यही कारण था।

ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज के बीच

ले०—श्री विहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ





महर्षि दयानन्द और स्वतन्त्र भारत

(ले श्री मूलचन्द्र अग्रवाल गोविन्दगढ़—बयपुर)

उत्तीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के काठियावाड़ प्रदेश ने दो महापुरुषों को जन्म दिया, पहले महर्षि स्वामी दयानन्द और दूसरे महात्मा गाँधी। भारतवर्ष में स्वराज्य की स्थापना को आवाज राष्ट्रीय महा-सभा के जन्म के भी बहुत पहले स्वामी दयानन्द ने उठाई, स्वामी जी ने स्वर्णयुग प्रकाश में दिलाया है कि 'कि कोई कितना ही कटे, परन्तु जो स्वदेशीय राश्व (स्वराज्य) होता है वह सर्वोपरि उचम होता है' अर्थात् वेद के एक मन्त्र का अर्थ करते

हुए ऋषि ने लिखा है कि "जब कि कर्म योगी प्रजागण सबसे प्रथम संगठित होता है, तब वह स्वराज्य प्राप्त करता है, जिस से श्रेष्ठ दूसरा कोई राज्य नहीं है"

मेरा ऐसा स्वप्न है कि स्वामी दयानन्द के वाद महात्मा गाँधी ने शाब्द ही ऐली कोई मूल मूल बात कही हो जिस का प्रारम्भ स्वामी दयानन्द ने ही किया हो इस लिए मैं श्री स्वामी जी को राष्ट्रीय (शेष अगले पृष्ठ पर)

अंग्रेजी शिक्षाकी धातु से उडकड कर भारतीयों के मस्तिष्क में जा पहुँचे। राजनैतिक परिस्थिति इनके अतृकूल पड़ी। भारतीय सभ्यता संस्कृति, भाषा, इतिहास किसी में इनकी आस्था न थी। न वही इनके महत्व को जानते ही थे। आज भी शासनसूत्र ऐसे ही स्वक्रियाओं का हाथ में है, इनके पीछे 'अधेनैव नीयमोना यथा अन्वा' के अतृ और प्रजा रोष में अकर पथभ्रष्ट हो रही है। पर मुसलमानों पर इनका कोई प्रभाव नहीं पडता। जिस विपैली संस्कृति के प्रभाव से एक आर्य जाति के दो टुकड़े हो गए, वही संस्कृति आज फिर लाड़ प्यार से पाली जा रही है। हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो ज ने पर भी कल्पित इण्डुस्तानी भाषा की "हाँक" आज भी लगाई जा रही है। भारतीय संस्कृति के विरोधी अपना जयघोष कर रहे हैं। "हरे-रथ द्वारे शिव शिव शिशानां कलकलाः" आवश्यकता है कि वैदिक केलरी आर्य समाज एक बार गरभकर इन भ्रमप्रवृत्तों को चुप करे, आर्य जाति को सही मार्ग दिखावे, संस्कृति क विषय में भ्रान्त फैलानेवाले संकर संस्कृति के पक्षपातियों से माननीय श्री सप्रवृणन्द जी के शब्दों में स्पष्ट करे—

'जब हम अपनी संस्कृति को भारतीय संस्कृति कहते हैं तो डीक कहते

हैं। लेकिन यह भूलना नहीं चाहिए कि यद्यपि हमारी सांस्कृतिक धारा का विभिन्न छोटो र धाराओं ने पुष्ट किया है, फिर भी उसकी मूलधारा का उद्गम उन लोगों की बौद्धिक और आध्यात्मिक विचार परम्परायें हैं, जिनकी संस्कृति का प्रतिनिधित्व वैदिक साहित्य करता है'। आर्य समाज ऋषि का उत्तराधिकारी है। उसे ऋषि के कार्य को पूरा करना है

सैकड़ों वर्षों की तपस्या और सहस्रों बलिदानों के उपरांत आर्यजाति का स्वतन्त्रता मिली है पर वह स्वतन्त्रता भी अन्तराय बहुत है। घर में लडनेवालों के भुइयूड मां वहीनों की लाज लुटने पर उठे पड जाते हैं। ईश्वर दया की वर्षा करे जयचन्द की चिता की इन चिन्मरियों पर। आज देश भक्त राष्ट्रीय लोगों ने संस्कृति का नाम लेते ही साम्प्रदायिकता का डीका लगाया जाता है। आर्यसमाज ही इन लोगों से कुछ कह सकता है। कड़ककर कह सकता है। अध्यात्मज्ञान मौन पड़ा है। मँडक गोर मूषा रहे हैं। नैतिकवाद टर्रा रहा है। आध ऋषियों की सहस्रों वर्षों की तपस्या और अतृभूतियों के फल हमारी संस्कृति को भी दौपना चाहते हैं। यह नहीं होगा। यह आर्य-भूमि है। पुण्य भूमि है। बड़े बड़े असुर यहाँ धरत हुए हैं। सावधान!





प्राचीन आर्य संस्कृति—

अज संस्कृति शब्द की भूमि है। पर साधारण जन इस शब्द से अपरिचित है। एक बिनाशोद्भूत युरोपियन संस्कृति दुसरी पूंजी पतियों और भ्रमवीधियों में भेद करने वाली संस्कृति है। जिनसे भीषण नर संहारक दा विश्वयुद्ध के फल मिले। तीसरी सती पस्विनी कीचिता की चिनगारियों की, युद्धों की निनीषका का स्मरण कराने वाली है। संस्कृति से सनाज और तथा राष्ट्र का निर्माण होता है। आर्य संस्कृति की आधार शिला धर्म, अर्थ, काम भाव है। अर्थ से शरीर की भूल काम से नर नारी का मनोरञ्जन, धर्म से बुद्धि मोक्ष से आत्मा का विशेष रक्षण है।
आर्य संस्कृति में चतुर्वर्ण का परस्पर सम्बन्ध है। अन्धो-धे भी है महर्षि व्यास ने धार्मिक संस्कृति का सुन्दर स्वरूप दिया है।

[मिथिले पुत्र का शेष]

जायति का जन्म दाता और महारथा जी को उनसे बचे हुए कार्य क्रम को सुन्दरता से पूरा करने वाले दम्बीर के रूप में मानता हूँ।

बुद्धि लोगों का ऐसा ख्याल है कि आर्य समाज का कार्य पूरा हो चुका है परन्तु आज हमारे देशके सात लाख गावों की क्या स्थिति है? वही अज्ञान, यही अंध विश्वास, वही निष्कृपता और गावों में वही गन्दगी प्रती उन्नी को लो है इस लिए भागवतवर्ष के समस्त आर्य समाजों को चाहिये कि अपना एक कार्यक्रम बनाकर नये युग का आरम्भ करें. आर्य समाज के कार्य को देख कर अन्य अनेक संस्थाओं भी कार्य करने लगेंगी जैसा कि अब तक होता रहा है.

महत्मा गांधी का आर्य समाज से किंचित मतभेद होने हुए भी उनकी स्वामी दयानन्द के कार्य और आर्य समाज के विषय में क्या भावना रही है. त ० २० अग्रेज १९३४ को अपने हाथ से मुझे लिखे पत्र में वे लिखते हैं " उनके (स्वामी दयानन्द के) कार्य की कीमत मेरे नज़दीक बहुत है आर्य समाज की भी मेरे नज़दीक बहुत कीमत है"

इस कीमत को सुरक्षित ही नहीं रखना श्रितित ऊँचा करना है।

("सुरीणा" विद्याभङ्गता साहित्यरत्न)

ऊर्ध्वानुः विरोधेष न च कश्चित् भूयोति मायु धर्मादर्थैश्च काम्यैश्च, तथमः कि न सेव्येते।

आर्य संस्कृति में अर्थ और काम पर धर्म का आक्रुण रहा है। शरीर बोध के लिये अर्थ आवश्यक है, पर काम की अति, और चौराबाजरी ने पूंजी-बो जन्म दिया इसके लिए आर्य-संस्कृति संवार को

'देन त्येचने भूजीयाः म एष; कश्चिद् धनम्' का संदेश देती है। इसी से वर्तमान लूच्य, अर्थात् वात शरण में रही शांति और श-तोष अमृत पिल्लया का सन्ना है। आज का धनिक आर्थिक लोभी, स्वार्थी वागार चोर तथा लभट प्रतीत होता है आर्य संस्कृति को—

"अद्रोहेयैव भूतानामस्य द्रोहेण वा पुना" का मूल मन्त्र देकर उचित वृत्त से जीवन यात्रा का संदेश देती है। आर्य संस्कृति का पाठक अहिंसा, सत्य, अस्तेय, दानवर्ष, अपरिग्रह" पांच यमों को अपना लक्ष्य मानता है। इसी प्रकार आर्यों की चतुराभम व्यवस्था में केवल २५ वर्ष के लिए यष्टरथा-श्रम में ही समित काम की आवश्यकता बताई है।

अभितेद्रियों के लिए यष्टरथाश्रम व्याज्य है। अघाबों दुर्बलैरिये, आज की बढ़ती हुई जन संख्या इस देश के लिए विषम समस्या (अग्रियाय) है। इसी से महर्षियों ने काम की भी धर्म से बाँधा था। आर्य संस्कृति की चौथी सीढ़ी मोक्ष है। मोक्ष के अर्थ, पापों से, दुःख से छूटना। कानून अपराधों की सखता कम नहीं करते। राज्य व्यवस्था, मनुष्य के मन को बदल सकते। पुलिस शारीरिक अपराधों की देख नहीं सकती है। मानसिक दोषों को नहीं मन नो " कत्येन शुष्यपति" सत्य से शुद्ध होता है। निर्विषय मन से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। वही आर्य संस्कृति का सार है। पुष्यार्थ चतुर्वर्ण की नींव पर आर्य संस्कृति का मध्य भवन युरोमित है

इसी की ओर पुनः लवको आना होगा।
'पूर्वा संस्कृति विरचारा'





हम किसपर जा रहे हैं

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

उपरोक्त वाक्य कान्ति के अग्रदूत महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने भारत की सुविद्यालय नगरी मुम्बई (बम्बई) में कहे थे। ऋषि ने सन् १८५७ ई० की कान्ति को भली प्रकार अपनी आँखों से देखा था और वह भी विचार किया होगा कि इतनी बड़ी कान्ति और शगुन के के साथ चलने के लिए कान्ति क्यों विफल हो गई। भगवान् जाने उनके हृदय में कान्ति की विफलता को देखकर क्या २ भाव आये होंगे और देश की तत्कालिक दुःवस्था को अनुभव कर कैसे घबराया होगा। परन्तु हमारे पास सम्प्रति जो उनके लेख हैं उनसे हमें यह अनुमान करना पड़ता है कि जो व्यक्ति घर का त्याग परमेश्वर की प्राप्ति के हेतु करता है वह बीच मार्ग में ही चलते २ कैंडे बह गया।

उन्होंने कहा था कि मैं अपनी विद्यालय आर्षि जाति का दुःवस्था में पड़े छोड़कर आकेले स्वर्ग जाना तुच्छ समझता हूँ। अतः मैं अपने सर्वत्व के निष्ठावर करके भीड़ जाति का उत्थान करूँगा और ही को स्वर्ग बनाऊँगा।

उन्होंने समाज चर्म और राष्ट्रीय आदि सभी दृष्टियों से जो देश की सेवा की है वह महान् है उनके प्रयोग में पत्र-पत्र पर सर्व प्रकार की देश जाति और समाजो-पयोग भावनाओं का प्राबल्य पाया जाता है। उन्होंने लिखा है कि "माता और पिता के समान भी सुखदाई विदेशी राज्य स्वदेशी जन्म प्राप्तों से ही है।" ये हैं ऋषि के देश भक्ति से भरे हुये वाक्य।

स्वदेशी राज्य के नष्ट होने और विदेशी राज्य के स्थापित होने के सम्बन्ध में ऋषि कहते हैं कि "आपस की कूट वैर भाव ईर्ष्या द्वेष ब्रह्मचर्य का

अभाव स्वार्थ परायणता आदि अनेक दुर्गुणों के कारण ही आर्य जाति का शार्थ-भौमिक चकवती राज्य नष्ट हुआ, यही तक नहीं किन्तु आर्य जाति अपने देश में भी अत्यन्त राज्य स्थापित न रख सका" फलतः ऋषि ने आर्य जाति के लोभे हुए गौरव की प्राप्ति के हेतु आर्य समाज की स्थापना बम्बई में की और देश वासियों को सन्देश दिया कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।"

ऋषि दयानन्द जी सरस्वती हमें तथा हमारे देश को जिस रूप में देखना चाहते थे आज हम उससे कोझी दूर हैं। आज भले ही हम स्वतन्त्रता का अनुभव करें परन्तु जो स्वतन्त्रता स्वराज्य अर्थात् राज्य या सुख का राज्य प्राप्त कराने में असमर्थ है वह स्वतन्त्रता कुछ नहीं है कोरी विडम्बना है।

हमारे देश के आज के शासक जो कल स्वतन्त्रता की लड़ाई में कप में कबा मिसा कर मातृभूमि के उदारार्थ लक्ष्य रहे थे उनको आज पदलोडुता स्वार्थ परता की बीमारी ने ऐसा दबोच रखा है कि वे देश के माँही इष्टानिष्ट के विचार से शून्य हो पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष दम चोर बाबारी घूस खोरी अनुचित पद पात आदि के शिकार होते बा रहे हैं जिसका फल होगा देश की स्वतन्त्रता सुख सम्पत्ति ऐश्वर्य का सर्व-नाश। अतः मैं ऋषि के अन्त्य भक्त अनुयायियों से कहना चाहता हूँ कि आर्य-वीरो उठो और महर्षि के दिये हुये आदेश का स्वयं पालन कर जनता बनसँ के सम्मुख इस ऋषि के निर्भीक महीसभ पर प्रतिज्ञा करो और ब्रत लो कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सतुष्ट न होना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये" इस आदेश का पालन प्रत्येक भारतीय नागरिक तथा शासक वर्ग से अब तक न करा लेंगे चाँतिसे न बैठेंगे।





महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा स्वराज्य

[लेखक—श्री पं. द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री, सिद्धांत शिरोमणि]

वर्तमान युग में 'सब प्रथम स्वराज्य' शब्द का उल्लेख महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में किया, विदेशी राज्य ऋषि को काटे की तरह लटकता था। भारतवासियों को पादाक्रान्त देखकर जो मर्मभेदी वदंगार ऋषि के मुख से निकले हैं उन्होंने देश में एक प्रबल वातावरण उत्पन्न किया जिसके परिणाम स्वरूप ही स्वराज्यान्दोलन खड़ा हुआ, इधर कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस तथा माय समाज के सहयोग ने इस आन्दोलन को एक बिराट रूप प्रदान किया। जनता के तत्त्वांग और बलिदानों ने अमेरिका में मस्तिष्क में एक भयङ्कर विभीषण उत्पन्न कर दी—छुड़ भयन्तराष्ट्रीय स्थिति बरूला और भारत की स्वतन्त्रता मिली। यह रचनात्मक कार्य का अद्भुत काल है—किस प्रकार का राष्ट्र बनाना है, यह एक विचारणीय है। इस निमाद्य काल में यदि हमने खूब प्रोच विचारकर समझ बूझकर राष्ट्र निर्माण के नकशे का चन्नाचन किया तो इससे अविक गम्भीर पूल अन्य क्या हो सकती है ? महर्षि दयानन्द सरस्वती जिन्हें राष्ट्र का स्वप्न ले रहे थे महत्तमा गावी जी जिन्हें एम राज्य की कल्पना कर रहे थे क्या हम आज उसी की आधार शिला स्थापित कर रहे हैं ? जोशयल्लिजम, बन्धुनिजम, भाद्वि अनेक इवमो की दीक्ष हो रही की प्रतीत होती है। हमारे नेता परिचम की चमचमाहट से प्रभ वित हुए हैं, वे परिचम की बाष्प भौतिक आमा को भारत राष्ट्र में देखना चाहते हैं। परन्तु मानवता, अद्वयता, आस्तिकता, विश्व-धुता, धार्मिकता, की तरफ आज के नेता यथेष्ट विचार करने में लक्ष्य नहीं प्रतीत होते। क्या इस तरह शान्ति सम्भव है ?

"न मे स्तेनो जनपेद न क्वर्यो, न मधराः ।

नाहादितानि न विद्वान् न स्वैरे स्वैरिणी कुत ॥ की चोपस्था क्या आज के राजक कर सकते हैं ? अनेक स्वर्षा स्वरा के साथ माय समाज ने भी 'स्वराज्य के आन्धोवन में पूर्ण भाग लिया और तीव्र संवेग से लिखा प्रिष्ठे माय समाज की सस्थाओं में उसके प्रचार के कार्यक्रम में स्वभावनः शिविजता आई। वृद्धि गवनेमैटकी की कूर दृष्टि भी आज समाज पर पड़ी—परन्तु सब बाबाओं को पार करता आर्य समाज आगे ही बढ़ता गया।

अब माय समाज का यह सुस्पष्ट कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपनी तेजस्विता प्रकट करें। अपनी बाकी तीव्र करे, अपनी समस्त शक्तियों को संगठित कर महर्षि प्रवृत्ति पथ पर ही स्वयं चलें तथा अर्थ्यों को चलने के लिये प्रेरित करें। हमें तो अपनी आभम-व्यवस्था एव वर्यो-व्यवस्था की ही वास्तविक रूप में पुनः स्थापना करनी है। शिष्टा पद्धति में गुरुकुल पद्धति को ही प्रचारित करना है। व्यापार उद्योग शिल्प कला, विज्ञान की उन्नति कर उनका सदुपयोग करना है। हमारा पूर्ण विश्वास है कि भारतीय संस्कृति द्वारा ही भारत का तथा समस्त विश्व का उद्धार होगा। और भारतीय संस्कृति का जोप संस्कृतिभारती में भरा हुआ है। यदि हमारी दिक्षा में अक्षुत आदित्य का प्रवेश अनिवाय रूप से हो जावे तो सरलता से ही जनता के मस्तिष्क में भारतीय संस्कृति की छाप पड़ सकती है। मनोवृत्ति, विचारधारा ठीक हो जायग। मनुष्य स्वयं सुराई से बचेगा। वह बलवान, शक्तिशाली स्वयं सन्ध तथा न्यायप्रिय बनेगा। यही महर्षि का स्वर्षा स्वरा था। आशा है महर्षि का उत्तराधिकारी आर्य समाज अब चेतनेगा और अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होगा।



अनुपम पुस्तकें

पुस्तक का नाम	लेखक	मूल्य
१ प्रभुभक्ति	श्री आनन्दस्वामीजी	१।)
२ प्यारा श्रृंगार	"	॥२)
३ महात्मा हंसराज	"	२।।)
४ प्रभुदर्शन	"	छप रही है।
५ नवीन व प्राचीन समाजवाद	म० नारायणस्वामीजी	१)
६ महर्षि दर्शन	प्रि० दीवानचन्द्रजी	२)
७ दयानन्द शतक	"	॥३)
८ जीवनज्योति	"	१)
९ अमृतवाणी	श्री प्रकाशानन्दजी	१-)
१० व्याख्यानमाला	श्री अच्युतानन्दजी	॥।।)
११ आर्यसमाज का दिग्दर्शन	श्री रामप्रसादजी	१।।)
१२ षड् दर्शनसमन्वय	श्री बुद्धदेव मीरपुरी	१।)
१३ वैदिक धर्म का महत्व	श्री त्रिलोकचन्द्रजी	२)

प्राप्ति-स्थान—अविद्याता, महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग, जालन्धर नगर।

भारत-सरकार से रजिस्टर्ड

३० वर्ष की परीक्षित जगत्प्रसिद्ध महौषधि

❀ लक्ष्मणाधारा ❀

सदैव पास रखिये

यहै स्व जीवन में यदि कुछ की नींद सोना चाहते हैं तो लक्ष्मणाधारा इनेशा पर में रखने से न चूकिये। इसके सेवन से हैजा, कै, दस्त पेट का दर्द, जो मिचलाना, कफ, लोंबी, दमा, शूल, सग्रहणी दस्त, मन्दाग्नि, अरुचि, सर्वस्वर आदि समस्त रोगों को दूर करनेवाली इज्जारी एजेण्टों द्वारा संसार में विक्रम वाली रामनाथ जगत्प्रसिद्ध दवा है। हर एक दवा विक्रेता के यहाँ मिलती है, यदि न मिले तो नीचे पते से मँगाविये। कीमत छोटी शीशी ॥।।, बड़ी शीशी १।।। दो सखा आठ आना ढाक लचें अलग। हर जगह मिलता है।

रूप विलास कम्पनी, नं० ४८३ धनकुट्टी कानपुर !

सफेद बाल काला

अनोखे तेल से बालों का पकना बन्द कर और पका बाल काचा पैदा होकर ६० वर्ष तक कला स्थायी रहेगा। लिर के दर्द व बकर का आना दूर कर आँस की व्योति को बढ़ाता है। एकाप बाल पका हो तो २।।) एकत्र ३ क १।।) आधा पका हो तो ३।।) एकत्र ३ ० ६।) और कुछ पका हो तो ५।) एकत्र ३ १ १।) बेकायदा साबित करने पर १००) ३।।) मिन्हें विश्वास न हो ७।।) का टिकट भेज कर शर्त लिखा लें।

पता:—जे० एम० मेडीकल होल,
(नं०शेखपुरा) ०

✽ आर्य मित्र ✽

मास्तिष्क एवं हृदय

सम्बन्धी सम्पूर्ण व्याधियों की विरहस्त चिकित्सा के लिये परामर्श कीजिए !

जीय व्याधि विशेषज्ञ—**कविराज योगेन्द्रपाल शास्त्री**

L.A.M.S. आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि

मुख्याधिष्ठाता—कन्या गुरुकुल हरद्वार ।

व्यवस्थापक—आयुर्वेद शक्ति आश्रम, कनखल ।

“दमा” और पुरानी खांसी के रोगियों ! नोट कर लो—

२४-२१ ५० (अब चूके तो फिर साल भर पछुताना पड़ेगा) २४-२१-५०

हर साल की तरह से इस साल भी हमारी जगत विख्यात ‘चित्रकूट’ महोपाधि के दो हजार पैकेट आश्रम में रोगियों को मुफ्त बांटे जायेंगे, जो एक ही खुराक (कार्ति.) पूर्णिया) ता० २४ नवम्बर को खोर में खाने से सदाके लिए इस दुष्ट रोगसे छुटकारा मिल जाता है, बाहर वाले जो रोगी समय पर यहाँ न आ सकें, स=) (२।६ -) विज्ञापन, रजिस्ट्री आदि खर्च मनीआर्डरसे भेजकर तुरत मँगा लें, जिसमें ठीक समय पर सेवन करके पूरा लाभ उठा सकें। देर करने से फिर गत वर्ष की तरह से सेकड़ों को निराश होना पड़ेगा। नोट कर लें कि वो० पी० किसी को नहीं भेजी जाती है। अमीर आदमी धर्मार्थ बाटने के लिए कमसे कम २५ आदमियों के लिए ४०,६० भेजें। बन्दी करें। अब चूक गये तो साल भर पछुताना पड़ेगा।

ता-रायसाहब के० एल्ल गर्मा रईस आश्रम [२१] ‘जगाधरी’ पूर्वी पञ्जाब

✽ मूल्य में कमी ✽

आर्यनगर सेटलमेंट लखनऊ

(वस्त्र विभाग)

हमारे कारखाने में नये और अच्छे डिजाइन के सुन्दर तथा मजबूत टिकाऊ कपड़े तैयार होते हैं जैसे कि झाड़न, तौलिये, चदरें सादी रज्जीन-साढ़ियों घोटियां, खदर, सर्दिंग, लाईनिंगक्लाथ, गद्दाक्लाथ, लुंगीक्लाथ, आदि २ मूल्य में १६ प्रति सैकड़ा कमी कर दी गई है। एजेंटों की भी आवश्यकता है।

१३ व्यवहार—नीचे लिखे पते पर करें।

मैनेजर आर्यनगरसेटलमेंट लखनऊ (आलमनगर रेलवे स्टेशन) E.I.R.

(५६)

धर्म--शिक्षा

(प्रथम भाग)

(भी प० शिवशर्मा जो बान-प्रस्थी) छपकर तैयार हो गई है। शुद्ध तथा बड़े साइज़ में छपी है ६।५) सैकड़ा भिनेनी शीघ्रता करें द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ भाग भी छप चुके हैं।

प्राप्ति स्थान—

श्री शिवशर्मा प्रकाशन

मन्दिर सम्मत्त (५० पी०)

दमा निवारक

श्वसासकारि

कफ, खाँसी, जुकाम, छाती में दर्द पव-लिवी की सूजन, स्वीट फूलना, अनिद्रा हफनी इत्यादि रोग इस अवलोक के सेवन से नष्ट होकर नया जीवन प्राप्त तरो है की २० तोले के डि० की० ६० २१ मदन मंजरी कामेशी जामनगर लखनऊ माताबबल पवारी, श्रीमोनाबाद



जाति भेद कैसे मिटाया जाय ?



ह बहाने की आवश्यकता नहीं कि जातपात की स्थल-आरत राष्ट्र के लिए' कौली अनिष्टकारी प्रमाणित हुई है। प्रश्न उठता है कि इस विनाशकारी प्रथा का अन्त कैसे हो ?

वस्तुतः जातपात कोई भौतिक वस्तु नहीं है जैसे कुर्सी मेज इत्यादि जिसको हम ले सकते हैं। इसे हम न देख सकते हैं, न सूँघ सकते हैं, न छू सकते हैं और न स्पर्श कर सकते हैं। वास्तव में जातपात केवल एक परिपाटी अथवा प्रथा है जिसने मनुष्य मनुष्य के बीच गहरा द्वेष उत्पन्न कर दिया है अथवा जो कहिये कि मनुष्य को मनुष्यत्व से गिरा दिया है। एक मनुष्य की सन्तानों, वे भी यह भाई भाई की तरह प्रेम से नहीं रहने देती। जातपात एक अदृश्य द्यौया या भूत है हमारा अज्ञान तथा बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक विकार है।

इससे छूटने का सीधा उपाय यही है कि आप परम पिता परमात्मा के, पितृ-व, धरती माता के मातृत्व एवं मनुष्य मात्र के आत्त्व के लक्ष्ये ज्ञान एवं रहस्य का समर्थन। इस्लाम धर्म सत्कार को दो भाँगे में बाँटता है दास इस्लाम व दासल हरबुधार्थात् इस्लामी सत्कार तथा मुक्त का अथवा बुधमनो का सत्कार, पर धर्तमान हिन्दू धर्म हिन्दू समाज को ही ३००० से अधिक सत्कारों में बाँटता है। जितनी जातिया या विरोधियाँ हैं स्वयं में एक सत्कार हैं। मैं वैदिक धर्म को प्रेम करता हूँ क्योंकि वक्ष्ये मनुष्यमात्र से प्रेम करने की शिक्षा है। इस्लाम से मुझे उसके दो सत्कारों के सिद्धान्त के कारण द्वेष है। वर्तमान हिन्दू धर्म से मुझे हिन्दुओं, वे ही ३०००

से अधिक सत्कारों में बाँटने के कारण घृणा है। हिन्दू धर्म केवल एक सामाजिक स्वगठन है जिसका आगत जात विराट्टो की प्रथा है। इस प्रथा के ही कारण स्वानन्वय वीर सावरकर का 'समस्त राजनीति का हिन्दू कर' का नारा विकसित हो गया और पाकिस्तान बन गया। यद वीर सावरकर और हिन्दू महासभा "समस्त हिन्दू समाज में एकता, समता, तथा आत्त्व की भावना" अर्थात् जातपात को नष्ट करने का नारा लगाते तो समस्त राजनीति का हिन्दू करण अपने आप हो जाता। न पाकिस्तान बनता न हिन्दुओं के राजनैतिक नेताओं सरदार पटेल एवं पटेल नेहरू को ७६ प्रतिशत हिन्दुओं के लिए २४ प्रतिशत मुसलमानों के बराबर बराबर अधिकारों की भीक्ष मागनी पड़ती और न यह भीक्ष २४ प्रतिशत मुसलमानों के प्रतिनिधि जिन्ना द्वारा तिरस्कृत की जाती। अपने ही देश में भारी बहुमत होते हुए भी हिन्दुओं को जो दुर्गांत दुर्वशा प्रथम अप्रतिष्ठा हुई वह सब अपने ही दोष के कारण थी।

४००० वर्ष से अपनी जातगत की प्रथा द्वारा हिन्दू जो परमात्मा के प्रति पाप करने आए हैं उसी पाप का दण्ड न्याय पिय परमात्मा की ओर से हमें मिला है। महान दुःख का विषय यह है कि इतना होते हुए भी हम नहीं चेन रहे हैं।

प्रत्येक पाप कर्म में कोई असत्य अथवा अवैज्ञानिक विचार रहता है। जातपात के पाप के मूल में एक भिन्नता एवं एक एकता का असत्य एवं अवैज्ञानिक विचार है। पशु और मनुष्य कर्म में भेद हो सकता है पर मनुष्य २ कर्म में कोई भेद नहीं है। मनुष्य





मात्र का भाव्य, एक नैतिक आवश्यकता ही नहीं, एक वैज्ञानिक सत्य भी है। वैदिकधर्मियों को उचित है कि इस निश्चित गुण का विकास करें। यह अनसाधारण का कार्य नहीं है। अनसाधारण तो लकीर के फकीर होते हैं। उनके धर्म का गुण मन्त्र होत है 'बाबा वाक्यम प्रमाणम्'।

आजकल जो कुछ थोड़े या बहुत पढ़े लिखे हैं उनमें एक विशेष रोग हो गया है। वह है अपने नाम के आगे जातीय उपनामों का बोझा जैसे बाजपेई, शुक्ल, सेठ, सक्सेना, अमवाल इत्यादि। साधारणतया यह प्रथा निर्दोष नहीं है। पड़ली बान तो यह है कि यह विदेशियों की नकल है। यूरोपियन लोगो में एक नाम तथा एक उपनाम होता है इसी उपनाम की प्रथा को अपनाकर भारतीय हिन्दू जातीय उपनामों का प्रयोग करने लगे। यह प्रथा २०० वर्ष के अन्दर की है। मुसलमानों काल में भी हिन्दुओं में जातीय उपनामों के जोड़ने की प्रथा नहीं थी।

यूरोपियनों के उपनाम (सर्नेम) जाति सूचक नहीं होते अतएव वह निर्दोष हैं। कुछ भारतीयों ने भी अपने उपनाम रखने के शौक को निर्दोष रूप दिया है जैसे भारतीय, आजद, विद्यार्थी, सत्यार्थी, मलिहाबादी इत्यादि इत्यादि। परन्तु जातीय उपनामों के विषय में ऐसा नहीं है। वे अत्यन्त दोषपूर्ण हैं और उनका प्रयोग में लाना दूषित भावनाओं को अग्रत करना है। इससे एक को समीप और दूसरे को दूर समझने का वातावरण रक्ष घटा हमारे सामने रहता है। इस जातीय भावना को बल देने में अंग्रेज शासकों ने बड़ा योग दिया। वे चाहते थे कि हिन्दुओं में राष्ट्रीय भावना का स्थान जातीय भावनाओं से ले। इंग्लिश वह जातीय भावना को बराबर प्रोत्साहन देते थे। प्रत्येक सरकारी कोणजमें लिख

रहता था (Caste of Hindu) 'कति यदि हिन्दू हो'। यदि मुसल अथवा ईसाई हो तो उसकी जात न पूछी जाती थी मुसलमान अपनी जाति सुनमान बता देता था तो सब विभागों के सरकारी अफसर सतुष्ट हो जाते थे। परन्तु हद्द के लिए ऐसा न था, उसे अपनी जात यानी ब्राह्मण कायस्थ ठाकुर बनिया और इसमें भी जो और छोटे भेद हैं सब बताने पड़ते थे।

ब्रिटिश सरकार निर्दयता के साथ जाति के पुच्छले से हिन्दू नागरिक का जन्म से मृत्यु पर्यन्त पीछा करती थी। पुत्र का जन्म हो तब, आ बच्चे का पाठशाला में पढ़ने ले जाते हैं तब भी यही न ड़ा नहीं छोड़ता। नाम, पिता का ना, स्थान, तो आवश्यक और सार्यक प्रश्न है। "आपकी जात ?" यह प्रश्न राष्ट्रीय जीवन का विघटक एवं विध्वंसक है। जब आर्य कोई प्रायदा वेबिए अथवा अरोविये तो रजिस्ट्री कराने के हेतु आपको रजिस्ट्रार के कार्यालय में जाना पड़ता है। वहाँ भी तीसरा प्रश्न यही है 'यदि आप हिन्दू हैं, तो आपकी जात ?' यह जात का प्रश्न मरने के पहिले ही नहीं, मरने के बाद भी पीछा नहीं छोड़ता। यदि यह कहा जाय तो भी अग्रतपुत्र न होगा कि ब्रिटिश शासन अपनी सत्ता के बल पर जाति विराद्री के नियमों को मनवाता था। यदि एक विराद्री का युवक दूसरी विराद्री की युवती से विवाह कर लेता था तो ऐसे विवाह की संतान को पिता की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं था।

स्वराज्य प्राप्त के बाद हमारे राजनैतिक नेताओंने इस श्रेक को सहारा बना छोड़ दिया है अब किसी भी सरकारी प्रपत्र (फॉर्म) में जात विराद्री लिखना आवश्यक नहीं है। कोई भी हिन्दू आर्यसमाजी, समातनी





बोध सिफल जैन ब्राह्म समाजों
इत्यादि आपस में विवाह कर
सकते हैं। वह विवाह भी कानून के
अनुकूल है और ऐसे विवाहों की
सन्तान भी अपने पिता की सम्पत्ति में पूर्ण
अधिकारी समझे जायगें। अब हिन्दू यदि
वह चाहे, तो जन्म से मृत्यु पर्यन्त जन्मना
जातपान के जुद्धोले पचड़े से मुक्त रह कर
एक सच्चा मानवीय, राष्ट्रीय, नैतिक एवं स्व-
तन्त्र जीवन बिता सकना है। राज्य को और ये
हमें कोई रुकावट नहीं। राज्य को इतना
और करना है कि वह जातपत को लिप
जितनी सस्थाएँ हैं उनको अवैध घोषित कर
दे, जैसे ब्राह्मण सभा, खत्री सभा, कायस्थ
पाठशाला, अहीर कालिज इत्यादि। इनमें जो
शिक्षण सस्थाएँ हैं वह तो उपयोगी है अतएव

उनका नाम बदल देना पर्याप्त
होगा। [परन्तु जहाँ तक जाति
समाजों का प्रश्न है भारत की राज्यसत्ता को
उन्हे बलपूर्वक नष्ट कर देना चाहिये।

साधारण नागरिकों का कर्तव्य है कि राज्य-
सत्ता को वह इसके लिये प्रेरित करें। आर्य
समाज को ऐसे अवसर पर बढ़ना चाहिए
और देश में एक सामाजिक क्रान्ति का सूत्र
पात करना चाहिए। आर्यसमाजियों को चाहिए
कि वे किसी भी जातीय संस्था के सदस्य न
हों, जो है वह तुरन्त त्यागपत्र दें। आर्य
समाजों, शत्री समाजों एवं कुमार समाजों के
साप्ताहिक सत्रों में भूल से भी ऐसा होने
पर इष्ट ही व्यवस्था हो। यह राष्ट्र निर्माण
के सच्चे आन्दोलन का प्रथम पग है।

* निर्वाण दिवस पर *

ऋषि-ऋषा चुकाने का व्रत लीजिए

वेदों का सन्देश देश विदेश में सुनाने के लिए—

“आर्यमित्र”

को दैनिक बनाइये

“आर्यमित्र प्रकाशन लिमिटेड” ५, मीराबाई मार्ग लखनऊ

हिस्से खरीद कर आप सहज ही पुण्य के भागो बन सकते हैं
आपके सहयोग के बिना दैनिक रुका हुआ है।

(३१ दिसम्बर १९४६ तक आडिट हुए हिसाब के अनुसार)

अधिकृत पूंजी ₹२०,००० विभक्त पूंजी ५,००,०००)

२५ प्रतिभाग के २० ००० भागों में विभक्त।

प्रार्थना-पत्र के साथ ११॥ प्रति भाग : दूसरी मांग पर ११॥) डा. अरेकटरों को इच्छानुसार।
५०७३ बिके हुए भागों का मातव्य धन १,२९,२२५), ५०७३ भागों का मातव्य धन ९३३११॥)
१,५०,०००) रु. प्राप्त होने पर “आर्यमित्र” दैनिक निकाल दिया जायगा।

एजेण्टों को कमीशन और सुविधाएँ। मैनेजिंग डा. अरेकटर।





भारति ब्रह्म से उभरकर कैसे हों ?



दा

पावली का परम पावन एवं आगया। उस महर्षि की याद आज भी हमारे हृदयों पर वैसा ही प्रभाव डाल रही है जैसा कि उन्होंने मृत्यु के समय अपने अन्तिम शब्दों

में कहा था "मन्दिर के कण्ठ खोल दो—मैंने पीछे छोड़े हो आओ" क्या हमने उस आज्ञा का पालन किया है यदि नहीं तो क्यों? यही प्रश्न है जिन पर आज विचार करना नितान्त आवश्यक है। महर्षि न्याय सत्य पथगामी बन कर विश्व के बोल हंस २ कर पीठे गये, और बड़े २ महाराजाओं के भी प्रलोभन पर अपने पथ से विचलित नहीं हुए। आज हमारी पद लोलुपता हमारे सामने बाधक है। हमारा स्वार्थ हमें पतन की ओर ले जा रहा है जब तक विचारों की एकता नहीं है तबतक ऊपर की बनावट क्या फल दे सकेगी। सत्यार्थ प्रकाश के अन्तिम चार समुद्रवास इसीलिये लिखे गये हैं कि दुनियाँ अंधेरे से निकल कर प्रकाश की ओर बढ़े तथा सत्य और अलस्य का निषेध करले। आज नवीन युग निर्माण हो रहा है। हमारे नेता गण दूसरे प्रवाह में बहे जा रहे हैं। यदि सत्य और स्याय पर होनेवाले कुठाराघातों की उपेक्षा कर दी गई तब आप सारे संसार को आर्य किस प्रकार बना सकेंगे। भारत स्वतन्त्र हो गया है। परन्तु धार्मिक भावनाओं पर भीषण कुराह डाला हुआ है। युवक समाज नवीन दलदल में फल रहा है। अरिज निर्माण का प्रश्न ही नहीं रहा। अश्वीन सिनेमाओं तथा चोरवाजोरों को खुला मोसाहन मिल रहा है। जब तक सदाचार की व्यवस्था नहीं

होगी तबतक असफलता ही दृष्टिगोचर रहेगी। भूषि ने तो ५ साल के बालक तथा बालिकाओं को पृथक शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था ली थी है आज का पञ्जति में आतूल मूल परि-



लेखक

वर्तन करने की आवश्यकता है। इस भूषि की बाटिका को निर्मोक्त्यागी और तपस्वियों की आवश्यकता है। केवल बातों से काम नहीं चलेगा। हमारी अहमंग्यता हमको यहाँ तक ले गई है कि संसार को धम दे रहा है अब आर्य समाज क्या करेगा? इस समय कार्य में उदासीनता भविष्य को अनिश्चित बना देगी। जिस शुद्धि कार्य के लिये हमारे कर्मवीर बलिदान होते चले गये वह अब कहाँ है? धर्म की आधार शिक्षा बलिदानों पर ही रखी जाती है जब इसमें त्यागी और तपस्वी मट चढ़ते हैं तभी यह बाटिका फूटती फलती है।

अवकाश सूचना

दीगवती के अवकाश के कारण आर्य मित्र का १६ नवम्बर का अंक बन्द रहेगा। अगला अंक २३ नवम्बर को प्रकाशित होगा। कृपया प्रारंभ नोट कर लें। —सम्पादक

[श्री अवधसिंहजी प्रचारक समाज, यू० पी०]



विद्यार्थियों, योग - अभ्यासियों एवं स्वाध्यायशीलव्यक्तियों द्वारा पढ़ने योग्य ग्रन्थ

मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प

[लेखक - स्वामी आत्मानन्दजी महाराज, भूतपूर्व आचार्य मुक्तिरामजी उपाध्याय गुरुकुल पोठोहार]

यह वही पुस्तक है जिसका पहला संस्करण हाथों हाथ विक्रय किया था। अब उसे पुनः संशोधित एवं परिवर्धित रूप में प्रकाशित किया गया है। बड़िया (२८ पॉन्ड का छपर कैलेंडर) कागज, आकर्षक टाइपिंग तथा टोस सानग्री से परिपूर्ण ३३४ पृष्ठ के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल २॥) साथ ही लेखक की जीवनी भी दी गई है।

आज ही भंगा कर पुस्तक में दिये गये अभ्यासों पर आचरण करके मन और आत्मा की शक्तियों को बढ़ाइये। याद रखिये मन की शक्ति के विकास से ही मनुष्य ब्रह्म बना करता है।

प्रकाशक—वैदिक साहित्य सदन, लालदरवाजा, सीताराम बाजार, देहली।

शास्त्रोक्त विधि द्वारा निर्मित—जगत् प्रसिद्ध

शुद्ध सुगन्धित हवन सामग्री

❀ मूल्य में भारी कमी ❀

नई, ताजी, शुद्ध, सुगन्धित, कीटाणुनाशक तथा स्वास्थ्यप्रद वस्तुओं को उचित मात्रा में मिश्रण करके तैयार की जाती है।

हवन सामग्री का मूल्य १॥) डेढ़ रुपये प्रति सेर के स्थान पर ॥) चोबड़ आने प्रति सेर कर दिया गया है। दल आने ॥) प्रति सेर के कमीशन का बह लाभ प्राइकों को १ एक महीने तक मिलेगा। इसके पश्चात् किली भी हालत में मूल्य में कोई कमी न हो सकेगी।

नमूना, ऐजेन्सी नियम आदि मुफ्त माँगाइये

सुरेन्द्र देव शास्त्री (स्नातक गुरुकुल)

आयुर्वेद शिरोमणि

आनन्द फार्मसी भोगांव मैनपुरी

समाजों के उत्सव

—श्री सर्वदानन्द साधु आश्रम (पु. काली नदी) का ४०वाँ उत्सव १८ से २० नवम्बर तक मनाया जायगा।
—आर्यसमाज खालापर (वहा रनपुर) का उत्सव २४ से २७ नवम्बर तक।

—आ० स० वाराणसी १ से १३ नवम्बर तक।

—आ० स० मैनपुरी २० से २४ नवम्बर तक।

—आ० स० प्रतापगढ़ १५ से १६ नवम्बर तक।

—आ० स० उज्जैन १६ से २१ नवम्बर तक।

—आ० स० गंध मुरादाबाद की ओर से १६ से २५ नवम्बर तक गढ़मुक्तेश्वर के मेले पर एक दिवस लगाया जायगा, जिसके संभालक श्रीराममोहन तथा संयोजक श्रीकमदीपप्रसाद होंगे

आचार्य विश्वश्रवाः जी का लिखा हुआ

‘यज्ञ पद्धति मीमांसा’

इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द लिखित यह पद्धति की गवेषणा पूर्ण व्याख्या है । यह सम्बन्धी जिन प्रश्नों का ज्ञान तब समाधान नहीं हुआ था उनका समाधान इस ग्रन्थ में है जैसे—१-अद्विष्टेऽनुमन्त्यश्च आदि मन्त्रों से पूर्व आदि दियोओं में जल तिष्ठान क्यों ? दक्षिण दिशा में क्यों नहीं ?

१-एक ही मन्त्र से पाच बार आहुति क्यों देनी ?

दो मन्त्रों से दूसरी समिधा की आहुति क्यों ?

४-कोई मन्त्र मीन बोलकर आहुति क्यों ?

इत्यादि अनेकों विषयों पर गवेषणापूर्ण विचार किया गया है । आचार्य जी का यह दावा है कि इस ग्रन्थ में आदि से अन्त तक उन्हीं बातों पर विचार किया गया है जिन बातों पर आर्य समाज के इतिहास में किसी विद्वान् ने विचार नहीं किया । भारतवर्ष के जिन आर्यसभ जो मे आचार्य जी ने इस ग्रन्थ की बातें सुनाई है वे सब समाजे इस ग्रंथ के छुड़ने की प्रबल प्रतीक्षा में थी ।

इस ग्रंथ में निम्न यह के सब ही मंत्रों पर विस्तृत और अति सरल व्याख्यान है । इस ग्रंथ में विशेष रूप से इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि एक मन्त्र के बाद के बाद वही दूसरा मन्त्र क्यों ऋषि बर ने रखा है । ‘विश्वानि देव’ आदि मंत्रों को मनोहारिणी व्याख्या सुन कर आप, मंत्र ग्रन्थ हो जावेगें । कोई भी आर्य इस ग्रंथ को विना लिये नहीं रह सकता । आचार्य जी ने यह भी इस ग्रंथ में सिद्ध किया है कि ऋषि के भिन्न २ ग्रंथों में लिखी हुई संध्या और हवन पद्धतियों में कोई भिन्नता नहीं है । ऋषि दयानन्द की आर्य बुद्धि का चमत्कार इस ग्रंथ में जगह जगह आप देखेंगे । शीघ्र आर्डर दीजिये । दो सहस्र प्रतिभां छापी थी । एक हजार प्रतिभां छुड़ने से पूर्व ही विक गई । सन्निवृत्त ग्रंथ का मूल्य ३)

पता—मैनेजर वेदमन्दिर ६६ बाजार मोतीलाल बरेली यू०पी०

आयुर्वेदिक प्रयोगशाला गुरुकुल वृन्दावन

च्यवनप्राश

पराग रस

बल, शीघ्र, बुद्धि एवम् स्फूर्ति-दायक सर्वोत्तम टानिक है । जीवन शक्ति के लिये अपूर्व सहायक यह रसानुपान पुत्रादि, बालों, हृदय को बरकत एवं बचमा पर अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है ।

प्रमेह और समस्त शीघ्र-विकारों की एकमात्र औषधि है । स्वन्दीय बसे महा भयङ्कर रोग पर अपना बाढ़ का सा असर दिखाती है । यहाँ भी यह बुद्धिघात दवाओं में से एक है ।

मूल्य १२ का ७) रुपया ।

मूल्य १ तो० ४) रुपया ।

देहली प्रांच—गुरुकुल वृन्दावन फार्मसी, नई सबक (देहली)

श्रद्धांजलि

२० भीलासचन्द्र जी

चन्ध चन्ध तू ऋषि दयानन्द, भारत भाग्य विधाता है । भारत की जागृति.. उन्नतिहित, पुण्य कार्य निभाता है ॥ नायक है तू मानव गण का, मनवता विकसित है । आर्यत्व का सतब सुमाने, पावकता सरधाने में ॥ धन्ध धन्ध तू अग्रगण्य है, मग में उद्योति जगाने में । धन्ध धन्ध तू जगत बन्ध है, जग में पर्य फैलाने ? अमर काम्य जो वेद जगत है, परमहितों की शिक्षा है । उसके फिर विकसित करने में, फिर से सत्य सुमाने में ॥ मानव फिर निज मानवता में, उन्नत हो और विकसित है ॥ इस आर्यतरव के बतलाने में, परम सत्य के अवलाने में ॥

गोली चल गई !

कठिन से कठिन और अर्थक-से अर्थकर दमा खांसो को २० मिनट में पहली मोश्राही से आगाम को एंटीडाल की गोली चल गई । दवा गुणहीन साबित होने पर दाम धापिसी की गारण्टी । मूल्य १० खुराक १॥ १०० खुराक १॥ डाक व्यव प्रलग ।

राजवैद्य डा० जोहरा, ऑंकार केमिकल वर्क्स, हरदोई यू० पी० ।

ट्राकोमीन



३ दिन में

तीनों का मुह काला

आँसों के पुराने रोहे (कुकर) माडा, जाला, परवाल, मेतियाभिद, न खुना, ठलहा, नजला, जर्बोत कम हो जाना चश्मा लगाने की आदत हत्या व नेत्रों के समस्त रोगों को बिना आपरे-शन दूर करने में रामबाण है। मूल्य १) शीशी, २२ शिशिया पर १ शीशी मुफ्त इनाम।

नपुंसकता १५(=) कुष्ट १०(॥), आतशक ७(॥) उपरोक्त तानों रोग चाहे वे कितने ही पुराने हों ३ दिन में शकिया लाम। लाम न होने पर दाम वारस की गारंटी * आड * देते समय रोग का पूरा हल जवाबी पत्र के साथ और पडवास भेजना लाभमी है।

राजवैद्य डा० जौहरी, ओंकार केमिकल वर्क्स, हरदोई यू० पी०।

अमेठीकी गृहस्थी की आवश्यकता

वेदना निग्रह रस

5 पैके की बुडिया से शिर दर्द जुकाम सर्दी हयारस देह दर्द घंट की शुरू और मलेरिया बुखार रोग

कुंवर आयुर्वेदिक फार्मसी
चावल मंडी, कानपुर

उपयोगी आविष्कार

आरम्भ में अन्वय-आयस करने और सुलेख सीखने वाले विद्यार्थियों को 'सहायक' पट्टी लेप—(तकनी. का सर्वोपयोगी काला पालिश) बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसकी 'प्रयोग विधि' इनकी सरल है कि छोटे २ बालक भी पट्टी को पीत कर शीघ्र ही लिखने योग्य बना लेने हैं और व्यवहार में लाने से उनके हाथ, मुँह और कपड़े काले नहीं होते। मूल्य 1), नमूना देा विसा। बकाशा को उजिन कमाराण।

विशेषअनुसूची के साथ अध्यापक, बुकलेलर और शिक्षा में स्वसत्ता का प्रेमो सर्व महाह्मभावों से प्रार्थना है कि वे विस्तृत विवरण के साथ नमूने की ३ दर्जन पुकिषा प्रथम १) मनोमार्डर से भेज कर एक बार परीक्षार्थ मगा लें। हम १२) मूल्य की ३६ पुडिया रजिस्टर्ड पार्सल से जिलमें ॥ ३) डाकव्यय हो लग जाता है) केवल एक बार भेजेंगे ताकि इस नवीन और उपयोगी वस्तु का सर्वत्र परिचय और पूर्ण अह्मत्व हो सके। अतः विश्वास है कि गुणव्राही सज्जन अपना बहुमूल्य सहयोग प्रदान करते हुए सेवा का अवसर दे कृतार्थ करेंगे।

प्रार्थी—

अध्यक्ष सहायक सदन अमरोहा (मुरादाबाद) उत्तरप्रदेश।

वीर्य सञ्जीवन सत (रजिस्टर्ड)

३० वर्ष की आजमूदा विश्व-प्रख्यात महौषधि

बदि आपका शरीर असमय में ही युक्तता जा रहा है, याददास्त साथ नहीं देती, शिर और रीढ़ में दर्द बना रहता है, किसी कार्य में जी नहीं लगता, स्वप्नदोष का विकार भी शरीर में घुन की तरह लगा है, प्रमेह आपकी शक्ति को लाने जा रहा है, तो कृपा कर आप हमारे सजीवन सत, का अवश्य प्रयोग करें। आपके शरीर में शक्ति बढ़ेगी, ताजा रक्त दौड़ेगा, श्व-गुणाव की तरह खिल उठेगा। प्रमेह और स्वप्नदोष हवा हो जायेंगे। बल, बुद्धि और जीवन से आपका जीवन पुनः खिल उठेगा। कीमत फी डिब्बा ३।—) तीन रुपया पांच आना, दो डिब्बा का ६।) डाक खर्च अलग।

पता—रूपविलास कम्पनी, नं० ४८२ धनकुटी, कानपुर

वर चाहिये

एक १५। वर्षीय गहोई अम बाल बचक योगीय स्वयं सुन्दर विज्ञान रत्न, उशीर्षा गृह कार्य में हर प्रकार से दक्ष कन्या के हिये। वर अथय सुन्दर सुरीषिषित आयु, २३, २५ वर्ष कुमार वैदिक धर्मी वैरयमात्र से हो। कन्या एक प्रसिद्ध कुलीन प्रामोष्य आर्य परि वार से है विवाह पूर्ण वैदिक रीति से होगा कन्या अवि० वहेज के इच्छुक व अक्षयवादी सज्जन पत्र लिखने का कष्ट न करे।

लेखराज आर्य
प्रम भटपुरा पो० अरमोही
सुराशाबाद

सूचना

आर्य जगत के सुप्रसिद्ध कवि एवं भजनोपदेशक कविरत्न प० प्रकाशचन्द्रजी 'प्रकाश' के सुयोग्य शिष्य भी-पन्नाबाल जी पीयूष 'संगीत सुराकर' विहालु श जो जो आर्य समाज के आर्य सज्जन आपने वर ३ व, पर्व १ विवाह आदि संस्कारों में बुझान चाहें वे निम्न पते पर श्वक्य हर करें।

सञ्जीत कला मन्दिर
द्वारा के० एल० पूर्ण
केसरगंज अजमेर

कार्यालय—आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश के

कार्यकर्ता गण



बैठे हुए—(बायें से दायें) १—भी गोपालचन्द्र झाकरी, २—समादक कार्यकर्ता मिश्र, ३—भी रमेशचन्द्र जो शास्त्री, विद्यालय विभाग
 ४—भी लालू बगलसहाद जो प्रकाशचन्द्र श्रेष्ठ व मिश्र, ५—भी देवी सहाद जो कोहरी ६० मंत्री सभा ५—भी पद्मलाल जो पत्र श्रेष्ठ, ६—भी
 कामेश्वरचौकी भीवास्तव चौधुरी शहाउद्दौल, ७—भी डा० राजेन्द्र कुमार जो अर्थ-मित्र प्रकाशक लिमिटेड ।
 खड़े हुए—(बायें से दायें) १—भी नीरसन कार्यकर्ता पोस्टमार्कर झा० प्र० सभा पोस्ट कार्यालय १—भी देवनाथ भारद्वाज उपदेष्टक, १—भी कादूराम जो
 भारतीय मुख्य लेखक सभा, —भी गुरदीन कर्मचारी ५—भी कले टूब पु जो कार्यकर्ता उपदेष्टक विभाग ।